ॐ

वर्ष १ अङ्क १ — आषाढ़ १९८१ — जून १९२४

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातकमण्डल गुरुकुलकांगड़ी का मासिकपत्र

ईळने त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः
हविष्मन्तो अलंकृतः। ऋग्वेद १। १४ । ५

"दर्शन"

इन लोचनों से प्रेम धारा थी निरन्तर बह रही।
मै था मग्न-मन 'क्या हुवा' कुछ भी ख़बर मुझ को नहीं ॥
उनके विमल पद कमल में वह मलिन जल था मिल रहा।
करके मधुर मुसकान तब मुझ से उन्हों ने यूं कहा ॥
संतुष्ट है हम भाव से ही भाव ही की चाह है।
इस चारु मुक्ताहार की हम को नहीं परवाह है ॥
कर जोड़कर मैंने कहा प्रभु ! देख कर शशि का उदय।
होता द्रवित है आप ही शशिकान्त मणि का भी हृदय ॥
उस की प्रकृति वैसी बनी इस में न उसका दोष है।
इस के लिये कोई कभी करता न उस पर रोष है ॥

पं० वागीश्वर विद्यालङ्कार

तुम्हारा अलङ्कार सचाई पर जिला हो !

(लेखक—श्री पूज्यपाद स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज)

मुझ से "अलङ्कार" के लिए लेख की याचना की गई है। गुरुकुल के स्नातक मिल कर एक समाचार पत्र निकालना चाहते हैं—उस का नामकरण संस्कार किया गया है "अलङ्कार"। गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के स्नातकों को जो उपाधियां दी जाती हैं उन के साथ "अलङ्कार" पद पीछे लगा रहता है शायद इसी से पत्र का नाम चुना गया है।

जैसे मनुष्य को अलंकृत करने का रिवाज है वैसे ही वस्तुओं को भी अलंकृत करने का रिवाज पुराना है। 'अलङ्कार' भी 'विद्या' की तरह दो धारी तलवार है। जहां विद्या संसार के लिए कल्याणकारिणी हो सकती है वहां वही विद्या संसार को नरक धाम भी बना सकी है। यदि सचाई से परिमार्जित विद्या संसार को सीधे मार्ग पर चला कर उसे स्वर्ग धाम बना सकी है तो चमकीले खोल के नीचे छिपाई हुई विद्या मनुष्य जाति को नरक कुण्ड में धकेल सकी है। 'अलङ्कार' मनुष्य या वस्तु के रूप को उठाने वाला नहीं, गिराने वाला भी हो सकता है। जिस वर्तन पर स्वाभाविक जिला की जाती है उस की आब बढ़ जाती है और चिर काल तक ठीक काम देता है, परन्तु जिस वर्तन पर उस का ऐब ढकने के लिए मुलम्मा चढ़ाया जाता है वह कु दिनों ऊपर से दिल खुश रख कर उ को वर्तने वाले का स्वास्थ्य भी विग' देता है। इसी प्रकार मनुष्य को : जहां स्वाभाविक साधन रूपी जिर श्रेय मार्ग की ओर ले जाकर अप और संसार के लिए कल्याणकारी बन ती है; वहां बनावटी आभूषण उस ऐब छिपा कर उसे अपने और संसा के लिए दुखदाई बनादेते हैं।

मेरे स्नातक धर्म-पुत्रो ! मैं परमेश्व से प्रार्थना करता हूं कि तुम्हा साहित्य सम्बन्धी परिश्रम सफ हो और उस के द्वारा तुम सच पर स्वाभाविक जिला चढ़ा य संसार के सामने सचाई का गौर बढ़ाने वाले और उसका वास्तवि स्वरूप दिखाने वाले सिद्ध हो। य ही धर्म है, इस लिए परमात्मा : सब को बलदें कि तुम प्रमाद, क्रो मोहादि के वश होकर कभी धर्म को न छोड़ो क्योंकि धर्म ही ि है जो मनुष्य का साथ कभी : छोडता। सत्य ही तुम्हारा पथदः हो ! ऐसा सत्य जो संसार में श। और सुख फैलाने वाला हो न कि ऐस कि अशान्ति फैला कर सर्वसाधार को सत्य से भी विमुख करदे शमित्योऽम्।

—:o:—

नमस्कार

(लेखक—श्री पं० देवशर्मा जी विद्यालङ्कार वेदोपाध्याय)

हे जगन्मातः! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। अपने दोनों हाथों को जोड कर तुम्हारे चरणों में रखता हूं। अपने प्राण और अपान, अपने सुख और दुःख, अपनी ईप्सा और जिहासा, अपने राग और द्वेष, अपने लाभ और हानि, अपने मान और अपमान, अपने जय और पराजय, अपनी सिद्धि और असिद्धि के दायें और बायें हाथों को जोड़ कर, हे मातः! मैं तुम्हारे चरणों में रखता हूं। मैं इन दोनों हाथों को जोड़कर—पूरी तरह मिलाकर—ही अब प्रणाम करना चाहता हूं और अपने अहंकार के मस्तक को झुका कर सदा के लिये तेरे चरणों में रख देना चाहता हूं। मातः! मैं कब यह परिपूर्ण नमस्कार कर कृतकृत्य हो सकूंगा? मेरा तो परम परम पुरुषार्थ यही है कि कभी ऐसा अपना सर्वभावेन नमस्कार तेरे चरणों में निवेदन कर सकूं।

* * *

तुम्हें नमस्कार करने के अतिरिक्त और मैं क्या करूं! तुम पुत्र की सब कामनाओं को पूरा करने वाली हो इस लिये, हे मातः, मुझे कुछ कामना नहीं रही है। तुम आवश्यक वस्तुओं की निरन्तर हम पर वर्षा कर रही हो इस लिये, हे मातः! मेरी कुछ याचना भी नहीं है प्रार्थना भी नहीं है। इस लिये मैं तो तुम्हें केवल नमस्कार करता हूं, मूक नमस्कार करता हूं, और चारों दिगन्तों तक आंख उठा कर देखता हूं, कि तुझे नमस्कार करने के अतिरिक्त और मुझे करना ही क्या है।

* * *

यह सब कुछ—यह सब अनन्त ब्रह्माण्ड—मुझे तुम्हारे पूजन के लिये ही मिला है। गुरुदेव ने मुझे यही सिखाया है। "प्रातः से सायंकाल तक और सायं से फिर प्रातःकाल तक मैं जो कुछ करता हूं—जो कुछ चेष्टा करता हूं जो कुछ इन्द्रियों से कर्म करता हूं, जो कुछ मन से क्रिया करता हूं, यह सब प्रतिक्षण का कर्म हे जगन्मातः! तेरा पूजन है। चौबीसों घंटे जो अन्दर रुधिर संचार होरहा है, जो हृदय की धडकन लगातार जारी है और जो कुछ अज्ञातरूप से अन्दर नाडियों का स्पन्दन होरहा है यह सब तुम्हारा नाम जपन है। हर समय जो मेरा एक एक करके श्वसन और प्रश्वसन हो रहा है यह अहोरात्र में इक्कीस हजार छः सौ वार तुझे अखण्ड नमन है—प्राण द्वारा इतनीवार सतत नमस्कार है। अहा! क्या ही आनन्द है कि सब कर्म नमस्कार में अवसित हो गये। कैसी निवृत्ति कैसी कर्त्तव्ययुक्तता की अवस्था है कि सिवाय नमस्कार करने के और कुछ कर्त्तव्य ही नहीं रहा।

* * *

तुम्हारे सिवाय इस दुनिया में और

कोई नमस्करणीय नही है। यह मैं जान गया हूं। मेरा सिर संसार में जहां कहीं झुकता है वहां तुम्हारा पवित्र "प्रकाश" पाकर ही झुकता है। जहां तुम्हारा प्रकाश नही है वहां यदि कोई बलात्कार से भी मेरा सिर झुकाना चाहता है— डंडे के जोर से झुकाना चाहता है, बन्दूकों और तोपों का भय दिखला कर झुकाना चाहता है तब भी नहीं झुकता। मालूम पड़ता है कि मेरा सिर टूट जायगा पर झुकेगा नहीं। किन्तु कहीं पर यदि तेरा कुछ भी प्रकाश दीख जाता है तो न जाने किस जादू से मेरी इसी गर्दन में वह लचक प्रकट होती है कि तुरन्त तेरे प्रकाश रूप चरणों में मेरा सिर जा पड़ता है।

ऐसा मालूम होता है कि मेरे सिर का यह स्वाभाविक धर्म है और तुम्हारे प्रकाश में मेरे मस्तक के लिये कोई स्वाभाविक चुम्बक शक्ति है जिसके कारण सिर बिना नमे रह ही नही सकता।

इस प्रकार के सतत अनुभव से मैने यह जाना है कि तुम्हारे सिवाय संसार में और कोई नमस्करणीय नही है।

* * *

मैं यह भी जान गया हूं कि इस विश्व के सब के सब नमस्कारों के एक मात्र भाजन भी तुम्ही हो। सच्चे दिल से जो कोई भी नमस्कार किस किसी के भी प्रति किया जाता है हे मातः! वह सब असल में तुम्हें ही पहुंचता है। मुझे तो इस व्यावहारिक दुनिया में जब कोई नमस्कार करता है मैं वह नमस्कार मातः! तुरंत तुझे निवेदन कर देता हूं। वह क्षणभर भी मेरे पास नहीं रहता। मेरे पास स्थान ही नहीं है जहां वह क्षण के लिये भी ठहर सके। मेरे इस भ्रम को दूर हुए तो चिर काल हो गया है कि मैं भी कोई चीज हूं जिसे कि नमस्कार लेने का हक है। सब तुम्हें ही नमस्कार होते हैं चाहे नमस्कार करने वाला भी इसे समझे या न समझे। मै तो अपने एक २ कर्म को भी नमस्कार का रूप देकर तुम्हारे पास पहुंचाने का यत्न करता हूं। फिर नमस्कारों का क्या कहना है, वे चाहे दूसरों के दिये हुए हों। ये सब तुम्हारे चरणार्पित है। हे मातः! इन्हें स्वीकार करो।

* * *

मुझे बालकपन से नमस्कार करना सिखाया गया था मैंने अपने बड़े भाईयों को नमस्कार करना सीखा। अपने माता और पिता को प्रणामकिया। गुरुओं के आगे सिर झुकाया। अन्य महात्माओं और संतों के चरणों में मस्तक रखा। पर जब मुझे पता लगा कि परम नमस्करणीया तो तुम हो, तब मैं घबराहट में पड़ गया कि अब तुम्हें मैं किस प्रकार प्रणाम करूं? तुम्हारे अदृश्य पैरों को मैं कहां पर ढूंढू? और यदि पैर मिल भी जावें तो तुम्हें नमस्कार करने के लिये हाथ कहां से लाऊं? किस सिर को तुम्हारे आगे झुकाऊं? नहीं, तुम्हारे चरण वह हैं जो इस संपूर्ण विश्व के आधार हैं। तुम्हारे दिये हुए सुख दुःखादि इन्हों

के रूप में मेरे खुले हुए हाथ हैं जिन्हें बिना जोड़े-बिना मिलाए तुम्हें नमस्कार करना असम्भव है। मेरे अन्दर 'अहङ्कार' का तत्त्व भी तुम ने दिया है जो कि मुझे और सब व्यक्तियों से, तुम से भी, विशेष बनाए रखता है अलग बनाए रखता है। इसी मस्तक को मैंने तुम्हारे आगे पूर्णतया झुका देने के लिये ही अब तक ऊंचा किये रखा है। हे मातः! अब मुझे अवसर दो कि मैं अब अन्त में तुम्हें भी प्रणाम कर लूं और प्रणाम कर कृतकृत्य हो जाऊं।

* * *

अब मैं यह देखता हूं कि सब ब्रह्माण्ड अपनी ब्रह्म से ब्रह्म, महान् से महान्, विशाल से विशाल वस्तुओं सहित सब तेरे चरणों में गिरा पड़ा है, जब मुझे यह दृश्य दिखाई देजाता है तो मैं भी अपना सब कुछ तुझे अर्पण करने के लिये आतुर होने लगता हूं और यह सचमुच अनुभव करने लगता हूं कि तुम्हें प्रणाम कर लेना ही जीवन का लक्ष्य है। अपने एक २ कर्म रूपी नमस्कारों द्वारा, आठों यागों के कर्मों से साष्टांग प्रणिपात करते हुए ही तेरे चरणों को मैंने प्राप्त करना है और फिर तेरे चरणों की धूलि में निश्चिन्त होकर लोटना है। तेरे चरणों की धूलि में निश्चिन्त होकर लोटना! इस से बढ़ कर और आनन्द क्या है, मोक्ष क्या है, प्राप्तव्य स्थान क्या है।

—:०:—

वैदिक अलंकार का स्वरूप

(लेखक—श्रीपाद दामोदर सातवलेकर)

इस बात को सब जानते ही हैं कि वेदों में अलंकारों का, रूपकों का तथा श्लेषों का महत्व अत्यंत है। परन्तु किस स्थान पर कौन सा अलंकार है, इस का निश्चय करना इस समय कठिन कार्य है। क्योंकि इसके लिये जैसे साधन ग्रन्थ चाहिये, वैसे अभी तक किसी ने बनाये नहीं हैं, और न ऐसे ग्रन्थ बनाने के विषय में किसी के प्रयत्न हो रहे हैं।

आर्य्य समाज ने वेदों के नाम की बहुत पुकार की है, परन्तु खंडनरूप कार्य करने में अधिक रुचि बढ़ाने के कारण उस को विधायक कार्य करने के लिये फुरसत नहीं है। वेदों के अभ्यास के साधन ग्रन्थ बनाने का महत्व पूर्ण कार्य इस समय होना आवश्यक है। यह इस समय न हुआ तो आगे भविष्य में जनता का विश्वास वेदों पर रखना अत्यन्त कठिन होगा। क्योंकि आवश्यक साधन ग्रन्थों के बिना वेद का निश्चित अर्थ करना अशक्य है। प्राचीन समय में चतुर्वेदी, त्रिवेदी, द्विवेदी, एकवेदी हुआ करते थे, उनके स्थान पर इस समय "चौबे, तिबे दुबे यकवे" रहे हैं, इन से कार्य चलना अशक्य है। चार वेद कंठ हों और आवश्यक शब्द व्युत्पत्ति का उत्तम ज्ञान हो, तो इस समय भी वेद का

अर्थ करना अशक्य नहीं है, परंतु ऐसा आदमी खपुष्प के समान दुर्लभ होगया है। इस लिये उक्त साधन ग्रन्थों की अत्यन्त आवश्यकता है। परंतु शोक है कि समाज का ध्यान इस ओर इस समय नहीं है, क्योंकि समाज की बागडोर जिन के हाथों में है, वे ही इस समय इस बात को समझते नहीं, और जो समझते होंगे उन को समाज में कोई पूछता नहीं है। इस अवस्था में विपक्षियों के आघात सहन करके चुप रहना ही आर्यवीरों को इस समय आवश्यक है। परंतु ब्रह्मचारी की स्फूर्ति से खड़ा हुआ समाज देर तक चुप नहीं रह सकता, इस लिये मुझे आशा है कि यदि इस शताब्दी के पूर्व नहीं, तो अगली शताब्दी उत्सव के पूर्व बहुत से साधन ग्रन्थ बन जायेंगे और वेदों का अभ्यास यथाशास्त्र प्रारम्भ होगा।

साधन ग्रन्थों में "वेद समन्वय" की आवश्यकता सब से प्रथम है। वेद समन्वय का तात्पर्य Analytical Concordance to the Vedas से है। इस का कार्य मैंने दो वर्ष पूर्व प्रारम्भ किया, परंतु खर्च बहुत होने के कारण डेढ़ हजार रुपये का व्यय करने के पश्चात् उस को बन्द रखना पड़ा। उस के बनाने का ही केवल व्यय करीब पच्चीस हजार रुपया लगेगा और छपाई का व्यय एक लाख से कम न होगा। इतना होने के पश्चात् सब दुनिया में इस की कम से कम कापियां बिकेंगी। क्योंकि इसे लेगा वही मनुष्य जिस को वेद का सत्य अर्थ ढूंढने की खुजली है। तात्पर्य लाख सवा लाख रुपया खर्च- केवल खर्च-करने के लिये जब होंगे, तब यह अत्यावश्यक साधन ग्रन्थ बनेगा। परंतु यह संभावना दीखती नहीं है।

आर्यों को इस बात का शोक होना चाहिये कि ईसामसीह की बाईबल का समन्वय कई प्रकार का बना है और उत्साही ईसाइयों ने बहुत धन का व्यय करके अच्छा बनाया भी है। परंतु यहां उस का खंडन करने वाले आर्य समाजी अपने पवित्र वेद का एक प्रकार का भी समन्वय नहीं बनाते हैं! यह आश्चर्य्य नहीं तो क्या है?

म० ब्लूमफील्ड ने चारों वेदों की पादानुक्रमणिका बनायी है। वैदिक शब्दों के विषय में जो कुछ उपलब्ध ज्ञान है उस का संग्रह डा० कीथ और मैकडोनेल ने किया है। उपनिषदों का समन्वय म० जेकोबी ने किया है। इस प्रकार युरोपीयन लोग अत्यंत उत्तम साधन ग्रन्थ निरंतर मेहनत करके और बड़ा धन व्यय करके बना रहे हैं। परंतु यहां आर्य लोग केवल खंडन के लिये जाग रहे हैं और शेष कार्य के लिये बिलकुल सो रहे हैं। ऐसी अवस्था देख कर हृदय में बड़ा दुःख होता है, परंतु "उत्पद्यन्ते विलीयन्ते दरिद्राणां मनोरथाः" इस नियम के अनुसार हृदय का दुःख फिर हृदय में ही लीन हो जाता है। अब कभी

सहृदय आत्मा उत्पन्न होगा, उस समय इस विचार के अनुसार कार्य होगा, ऐसा ही एक कविने कहा है.—

उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी

तात्पर्य यह कि इस समय तक एक शताब्दी का उत्सव आ रहा है और समाज का कार्य प्रारम्भ होकर चालीस वर्ष हो चुके हैं, इतने समय में इस समाज ने एक भः साधन ग्रन्थ तैयार करने का कष्ट नहीं उठाया है। स्वकीय धर्म पुस्तक के विषय में किसी भी जाति में जिस प्रकार की उदासीनता नहीं दिखाई देती, उस प्रकार की उदासीनता आर्यों में इस समय है। यह उदासीनता यहां तक है कि शताब्दी जैसे उत्सव के समय ईंट और पत्थरों के स्तंभ खड़े करने के विचार सर्व सम्मति से निश्चित होते हैं, परंतु ऋषि का भाष्य संपूर्ण मुद्रित करके अति अल्प मूल्य से देने का विचार मन में भी नहीं आता। मेरे ख्याल में यह शिथिलता की परमावधि है। अस्तु, यह विचार यहां इस लिये मन में आया कि वेदों के ऊपर जो अनंत आक्षेप हो रहे हैं, उन का उत्तर योग्य साधन ग्रन्थों के अभाव में कोई भी नहीं दे सकता। इस प्रकार का एक आक्षेप इस लेख के विचार के लिये आपके सामने प्रस्तुत करता हूं—

ऋ० ९। ११२ में एक सूक्त है। जिस का ऋषि "शिशु" है और देवता "पवमान सोम" है। "पवमान सोम" का अर्थ सोमवल्ली का इस सुप्रसिद्ध है। इस सूक्त के मंत्र ये हैं:—

नानानं वा उ नो धियो
विव्रतानि जनानाम्।
तक्षा रिष्टं रुतं भिषग्, ब्रह्मा सुन्वं-
तमिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ १॥
जरतीभिरोषधीभिः
पर्णेभिः शकुनानाम्।
कार्मारो अश्मभिर्द्युभिर्हिरण्यवन्त
मिच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ २॥
कारुरहं ततो भिषग्
उपलप्रक्षिणी नना।
नानाधियो वसूयवोऽनु गा इव
तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ३॥
अश्वो वोळ्हा सुखं रथं
हसनामुपमंत्रिणः।
शेपो रोमण्वन्तौ भेदौ, वारिन्मंडूक
इच्छतीन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ४॥

इस सूक्त के प्रत्येक मंत्र के अंत में "इद्रायेन्दो परिस्रव" ये शब्द हैं। युरोपीयन भाषांतरकार कहते हैं कि ये शब्द इस सूक्त में प्रक्षिप्त हैं। देखिये-

(१) म० ग्रिफिथ का मत—The hymn appears to be an old popular song, transformed into an address to Soma, by attaching to each stanza a refrain which has no connection with the subject of the song. (Rig.IX:112)

(२)डा० मूर का मत—This last

clause, which is repeated at the end of each of the verses, and transforms the hymn into an address to Some, is perhaps a later addition to an old song; as it seems to have no connection with the other parts of the verses to which it is attached. (Original S. Texts, V 424)

दोनों का तात्पर्य यह है कि "इस सूक्त के प्रत्येक मंत्र के अंत में जो "इंद्रायेन्दो परिस्रव" यह वाक्य है, उस का मूल मंत्र के साथ कोई संबंध नहीं है, इस लिये यह पीछे से मिलाया होगा।" अब विचार करना चाहिये कि, क्या यह वाक्य पीछे से मिलाया गया है, या सूक्त के साथ ही संबन्ध रखता है, तथा इस वाक्य का इतर मंत्रों के साथ सार्थ संबंध है वा नहीं। इस का विचार करने के पूर्व प्रत्येक मंत्र का अर्थ देखेंगे।

(१) (नः जनानां) हम लोगों के (वि व्रतानि) विभिन्न कर्म हैं (वा उ धियः नानानं) और बुद्धियां भी भिन्न भिन्न हैं। देखिये, (तक्षा रिष्टं) तर्खान टूटे पदार्थों को चाहता है, (भिषग् रुतं) वैद्य रोगी को चाहता है और (ब्रह्मा सुन्वंतं इच्छति) याजक यज्ञकर्ता की इच्छा करता है। इस लिये (इंदो) हे इंदु! तू (इंद्राय परिस्रव) इंद्र के लिये फैल जा।

(२) (जरतीभिः ओषधीभिः) परिपक्व औषधियों के साथ वैद्य, (शकुनानां पर्णेभिः) पक्षियों के पंखों को लेकर कुशल कारीगर, तथा (द्युभिः अश्मभिः) चमकदार हीरों के साथ (कार्मारः) सुनार (हिरण्यवन्तं इच्छति) धनवान को चाहता है। इस लिये हे इन्दु! तूं इंद्र के लिये फैल जा।

(३) (अहं कारुः) मैं कारीगर हूं, (ततः भिषग्) पिता वैद्य है, (नना उपलप्रक्षिणी) माता चक्की पीसती है। इस प्रकार (नानाधियः) नानाप्रकार के कर्म करने वाले हम हैं, सब कर्म हम इस लिये करते है कि हमें (वसूयवः) धन कमाने की इच्छा है। इस प्रकार विभिन्न उद्योग करते हुए हम सब (गाः इव अनुतस्थिम) गौवों के समान इकट्ठे रहते हैं। इस लिये हे इंदु! तू इन्द्र के लिये फैल जा।

(४) (वोळ्हा अश्वः सुखं रथं) गाड़ी का घोड़ा सुख से रथ खींचना चाहता है, (मन्त्रिणः हसनां उप) प्रधान मंत्री आदि हास्य विनोद करना चाहते हैं। (शेपः रोमण्वंतौ भेदौ) युवा युवती की इच्छा करता है तथा (मंडूकः वाः इत् इच्छति) मेंढक जल चाहता है। तात्पर्य यह की सब विना आयास सुख प्राप्त करना चाहते हैं। इस लिये हे इंदु! तूं इंद्र के लिये फैल जा।

यह शब्दार्थ ऊपर के मंत्रों का है। ऊपर ऊपर देखने से पता लगता है कि, मंत्र के साथ अंतिम वाक्य का कोई संबन्ध नही है। और यह वाक्य

प्रक्षिप्त होगा। परन्तु इस को प्रक्षिप्त कहने के पूर्व थोड़ासा अधिक विचार करने की आवश्यकता है। सूक्त का तात्पर्य निम्न प्रकार स्पष्ट है—

"हम सब लोग धन की इच्छा करते हुए विविध कर्म अपनी अपनी बुद्धियों के अनुसार करते हैं। (१) जो वैद्य हैं वे उत्तम औषधियों का संग्रह करके धनवान बीमार की प्रतीक्षा करते हैं, (२) मर्खान अपने शस्त्रास्त्र ठीक करके लकड़ी के काम के खरीदार का इंतजार करता है, (३) सुनार सोने और रत्नों के ज़ेवर बनाकर धनिक की प्रतीक्षा करता है, (४) दूसरा कारीगर पक्षियों के सुन्दर पंख इकट्ठे करके खरीदार की प्रतीक्षा में बैठा है, (५) पंडित लोग यज्ञ करने की इच्छा करने वाले धनी यजमान की प्रतीक्षा में हैं, (६) स्त्रियां चक्कियां पीस रही है, पिता वैद्य हुआ है तो लड़का कारीगर हुआ है। इस सब विभिन्न व्यवहार के मूल में धनेच्छा ही है। सब लोग धन कमाना चाहते हैं और इसीलिये जिस कला में जो प्रवीण हो सकता है, उस में वह कुशल बनता है, और अपनी प्रवीणता से धन कमाता है। सब लोग थोडे प्रयत्न से बहुत सुख प्राप्त करना चाहते हैं, यहां तक कि घोड़ा भी हलका रथ खींचने में सन्तुष्ट है, और बोझदार रथ खींचने में दुःखी होता है। राज्य के ओहदेदार मंत्री आदि भी काम करना नहीं चाहते परन्तु सदा हास्य विनोद करना चाहते हैं। इस प्रकार सब काम करते हुए ही सुख चाहते हैं। इस लिये हे इंदो! तू इन्द्र के लिये फैल जा। मंत्रों का उक्त भाव पूर्वोक्त सूक्त में स्पष्ट है, इस विषय में विवाद नहीं हो सकता। इस भाव के देखने से भी अंतिम वाक्य का इस से क्या संबध है इस का ज्ञान नहीं होता है। इस लिये इस की अधिक खोज करनी चाहिये। अधिक खोज करने के लिये बड़ी दूर भी जाने की आवश्यकता नहीं है। देखिये, इंदु और इन्द्र ये शब्द ही "इंद्रायेन्दो परिस्रव" इस वाक्य में मुख्य हैं। उन के मूल अर्थ और उनका श्लेषार्थ देखने से गूढ़ बात का स्पष्टीकरण हो सकता है। देखिये—

(१) इंद्रः —(इदि परमैश्वर्ये) इस धातु से यह शब्द बनता है इस लिये इसका अर्थ "ऐश्वर्यवान्" है। इंद्र का दूसरा नाम "मघवान्" अर्थात् धन वान् प्रसिद्ध ही है। तात्पर्य यह है कि धनवान्, धनिक, संपत्तिमान्, श्रीमान् ये अर्थ इंद्र शब्द के हैं इस में शंका नहीं हो सकती। इंद्र शब्द का अर्थ राजा भी होता है। नरेन्द्र, सुरेंद्र इत्यादि स्थानों में नरेश अर्थ ही स्पष्ट है। अर्थात् इंद्र शब्द का अर्थ "राजा अथवा श्रीमान्" है। इसके अन्य अर्थ सूर्य आदि प्रसिद्ध हैं।

(२) इन्दुः —इस शब्द का अर्थ "सोम" है। इसी शब्द में श्लेषार्थ है,

जिसके समझने से सब मंत्र का अर्थ खुल जाता है और विरोध नहीं रहता। इस का श्लेष निम्न प्रकार है—

इंदु
|
सोम
|
सोमवल्ली — षोडशपल्लवयुक्त
कलावान् चंद्र — षोडशकला युक्त

इंदु का अर्थ सोम है और सोम के दो अर्थ हैं (१) एक सोमवल्ली जिस का रस यज्ञ में पीया जाता है, (२) इस शब्द का दूसरा अर्थ है चाँद, और चन्द्र कलावान् होता है, चंद्र सोलह कलाओं से युक्त होता है। कला शब्द के दो अर्थ हैं (१) एक चंद्र की कला और (२) दूसरी हुनर की कला (Arts) इस मंत्र में हुनर की कला (Arts) अभीष्ट है और यही यहां श्लेषालंकार है। इसका फलितार्थ यह है (इंदो) हे कलावान्! तूं (इंद्राय) धनिक के पास (परिस्रव) जा। हे हुनर वाले मनुष्य! तूं श्रीमान् के पास अथवा उदार राजा के पास जा, और अपनी कलायें उन के सामने फैला कर दिखा। तुम्हारी कलाएं देख कर यदि वह संतुष्ट होगा, तो तुम को धन देगा। उक्त रूपक में भी चंद्र को सूर्य अपना थोड़ा सा धन (प्रकाश किरण) देता है और उसे प्रकाशित करता है। प्रतिदिन कलावान चंद्र एक एक कला सूर्य के सन्मुख करता है और उसी प्रमाण से धनी इंद्र उसको अधिक धन (प्रकाश) देता है। सूर्य के पास प्रकाश है और चंद्र के पास कलायें है। जितनी अधिक कलायें लेकर वह इंद्र (सूर्य) के सन्मुख हो जाता है उतना अधिक धन उस से कलावान चन्द्र को मिलता है। यह शुक्लपक्ष की उन्नति है। परंतु कृष्णपक्ष में वही चंद्र अपनी कलाओं की वृद्धि न करता हुआ एक एक कला भूल जाता है, इस लिये उस को धनिक से धन मिलता नहीं, वह भूखा मरने लग जाता है और कला हीन (हुनर हीन) होने के कारण अंत में उस का नाश होता है। यहां तक वह निर्धन हो जाता है कि अंतिम रात्री में वह अपने घर भी नहीं आता। फिर जब अपनी कला (हुनर) की उन्नति करता है तब उस की पुनः वैसी ही उन्नति होती है।

राष्ट्र में भी कलाओं की उन्नति होने से "राष्ट्रीय शुक्लपक्ष,, प्रकाशित होता है और कलाओं का क्षय होने से "राष्ट्रीय कृष्णपक्ष" होकर कला हीन राष्ट्र का अंत में अंधेरे में नाश ही होता है। इस लिये राष्ट्र में कलाओं की उन्नति करनी चाहिये-यह इस का तात्पर्य है।

हुनर की उन्नति से मनुष्य को धन प्राप्त होता है और धन से अन्य सुख मिल सकते हैं, जो मंत्रों के अन्य भागों में वर्णन किये हैं। मंत्र का कहना है कि वैद्य, कारीगर, याजक, सुनार आदि कलावान कारीगर यदि विविध कर्म इस लिये करते हैं कि उन को धन चाहिये, तो वे अपनी कारीगरी धनी

मनुष्यों के सन्मुख फैलावें, जिस से उन को धन प्राप्त हो सकता है। श्रीमानों को उत्तम भोग के पदार्थ चाहियें और कारीगरों को धन चाहिये। श्रीमान् स्वयं कारीगर नहीं हैं और कारीगर स्वयं धनी नहीं हैं। इस लिये अपनी कारीगरी की चीजें लेकर कलावानों को धनवानों के पास पहुंचना चाहिये। मंत्र का यह भी तात्पर्य है कि केवल कलावान् होने से ही धन नहीं मिल सकता, उन को (Salesmanship) विक्री करने की कला भी अवगत होनी चाहिये। जो बेचने में चतुर होता है वही धन कमा सकता है। इस लिये यह बेचने का चातुर्य भी प्राप्त करना चाहिये।

इस प्रकार विचार करने से पता लगता है कि पूर्वोक्त सूक्त के हर एक मंत्र में बार बार आनेवाला उक्त वाक्य न तो निरर्थक है और न प्रक्षिप्त है। परन्तु बिलकुल प्रसंगानुकूल सार्थ और योग्य सूक्त के योग्य स्थान में है, इस लिये प्रक्षिप्त नहीं है। यदि यह अर्थ सुसंगत है तो निम्न अनुमान स्पष्ट हो जाते हैं कि—

(१) "सोम" देवता के सब मंत्र एक ही सोमवल्ली अथवा "सोमरस" का भाव बताने वाले नहीं हैं। श्लेषार्थ, रूपकालंकार आदि के साथ अथवा अन्य रूप से अन्यान्य अर्थ बताने वाले भी हैं।

(२) यदि सोम का अर्थ "कला-वान्, कलायुक्त, हुनर वाला" अर्थात् कारीगर होना संभव है, तो एक हो देवता के मंत्रों में कितना विलक्षण अर्थ आना संभव है, यह भी इसी से स्पष्ट हो जाता है।

(३) तात्पर्य यह कि एक देवता का एक अर्थ सर्वत्र लगाना अयोग्य है। प्रसंगानु-सार एक ही देवता-वाचक एक शब्द के परस्पर भिन्न अनेक अर्थ होने संभव हैं। जैसा कि पूर्वोक्त मंत्रों में "इन्दु" का अर्थ सोम, सोमवल्ली, चंद्र, कलावान्, हुनर युक्त कारीगर होता है।

तात्पर्य यह है कि उक्त सूक्त यद्यपि पवमान सोम प्रकरण में पठित है तथापि सोमरस का भाव उस में नहीं है, उसका भाव "कारीगरी की उन्नति" है। इस भाव के न समझने के कारण ही युरोपीयन विद्वान् इस को प्रक्षिप्त कहते हैं, परन्तु यह उनकी गलती है।

इस प्रकार विचार करने पर सूक्तों की संगति लगाना संभव है। परन्तु अत्यावश्यक साधन ग्रन्थ न होने से विचार करना भी कठिन काम है। आशा है कि वेद को प्राणवत् समझने वाले सब आर्य सब से प्रथम साधन ग्रन्थ निर्माण करने के लिये अपना धन लगावेंगे और पीछे से आने वालों का मार्ग अधिक सुकर करेंगे।

* मेरी नौका *

चली प्रभु नौका है किस ओर ।
अगम गभीर महासागर है, कहीं ओर ना छोर ॥ ध्रुव ॥
मैं अबूझ कुछ सूझ न पड़ता, गरज रहे घनघोर ।
तरल तरंग रंग दिखलातीं, पवन चलत झकझोर ॥ १ ॥
कहां छिपा प्यारा ध्रुव मेरा, तोर प्रेम की डोर ।
भंवर बीच मैं भटक रहा हूं, विलपत विकल अघोर ॥ २ ॥
छोड़ छाड़ पतवार खड़ा हूं, प्रभु मुख दुख दृगजोर ।
करुणामय ! अब पार लगाओ, कैसे हुए हो कठोर ॥ ३ ॥
चञ्चल लोचन बने हुए हैं, तव मुख चन्द्रचकोर ।
"श्री हरि" तुम्हीं अनाथ-नाथ हो, करो कृपा की कोर ॥ ४ ॥

"श्री हरि"

वेद और कुर-आन

(लेखक श्री पं० जयदेव जी विद्यालंकार)

'वेद और कुर-आन' के विषय में लिखने के पूर्व मैं अपना कुछ परिचय देना आवश्यक समझता हूं। मैं स्वयं अरबी के ज्ञान से शून्य हूं, तो भी जिन २ शब्दों और विशेष बातों के विषय में लिखूंगा उन को अरबी के अच्छे २ विद्वानों के लिखे ग्रन्थों के आधार पर लिखूंगा, साथ ही अपने विचार विद्वानों के समक्ष रखूंगा जिससे वे स्वयं उस पर विचार करके मेरे विचारों को सत्य की कसौटी पर कसें।

पहले कुर-आन शब्द पर विचार कीजिए। कुर-आन का मूल धातु है 'कुरा'। कुरा, करा, क़िरा—इन से बहुत से शब्द बनते हैं—जैसे, क़िराअत, कुरआत। इस

कुरा धातु के बहुत से अर्थ हैं, जैसे पढ़ना, किसी के प्रति पढ़ना, किसी के साथ पढ़ना, किसी से शिक्षा लेना (विशेष कर अल्लाह से) श्लोक पाठ करना, कुर-आन से उद्धरण पढ़ कर सुनना, किसी का प्रतिनिधि होना।

(क़ुरा क़रा) चुन कर संग्रह करना। (क़रा कुरा) मैथुन करना, गर्भधारण करना, गर्भिणी होना, पैदा करना। (तक्रियात) -किसी को पढ़ाना, या पढ़ना सिखाना। (क्रिरा मुक़रुआत) किसी के साथ पढ़ना। (इक़्रिरा)लेख द्वारा संदेश भेजना, मासिक धर्म होना, ऋतु स्नात होना। (तक़र्रू) धर्म ग्रन्थों का स्वाध्याय करना तथा धर्म कार्य में लगा देना। (इन-क़्रिरा) अधीत, गाया गया। (इस्तिक़रा) किसी से पढ़ने को कहना। (देखो-स्टीन गैस कृत अरेबिक इंग्लिश डिक्शनरी का क़रा शब्द)

पाठक ध्यान रखें कि यही क़रा धातु है जिस से तस्करा, ज़िक़र और तक़रार, इनक़ार आदि शब्द भी बने हैं। संस्कृत में 'गॄ' और 'गृ' दो धातुयें हैं— जिन के अर्थ (गॄ घृ सेचने, गॄ विज्ञाने, ग निगरणे, गृ शब्दे) सेचन, विज्ञान, निगलना और शब्द करना है। इन अर्थों की तुलना आप अरबी धातु 'क़रा' के उपर्युक्त अर्थों से कीजिये।

पढ़ना, शिक्षा लेना, श्लोकपाठ करना, उद्धरण पढ़ कर सुनाना, पढ़ाना, पढ़ना सिखाना, संदेश भेजना धर्मग्रन्थ का स्वाध्याय करना, गाना, आदि अर्थ गृ शब्दे और गॄ विज्ञाने इन दो अर्थों के ही रूपान्तर हैं।

गर्भ धारण करना, गर्भिणी होना, मैथुन करना ये अर्थ 'गॄ घृ सेचने' इस सेचन अर्थ के रूपान्तर हैं। संस्कृत में सेचन का अर्थ सींचना, योनि में बीज वपन करना आदि है। गृ धातु से गिरति, उद्गिरति, गुरु, गिर् (वाणी) और उद्गार (वचन) आदि शब्दों की उत्पत्ति हुई है। अरब देश के रूखा होने के कारण वहाँ की भाषा में भी रुखावट आगयी है। इस कारण गृ धातु भी क़रा' रूप में बदल गयी है। इसी प्रकार गुरु शब्द कुरु रूपमें बदल गया।

कुर-आन-इस शब्द में दूसरा भाग, आन-यह शब्द वाणी शब्द का अरबी रूप है। यदि कुर-आन का रूपान्तर गुरु-वाणी करें तो कुछ भी असंगत नहीं है। वास्तव में यह गुरु महम्मद जी की वाणी है। जैसे गुरु नानक जी, दादू जी, कबीर जी आदि महात्मा हुए हैं उसी प्रकार आज से दो हज़ार वर्ष पहिले गुरु मुहम्मद जी ने अरबस्थान में कुर-आन का उपदेश लोगों को सुनाया। कुर-आन को शरीफ़ शब्द के साथ याद किया जाता है। यह शरीफ़ निश्चय से उसी प्रकार आदर वाचक शब्द है जिस प्रकार संस्कृत का श्री शब्द है। कुर-आन शरीफ़ निस्संदेह अरबस्थान की श्री गुरु वाणी है। इसमें अब कोई संदेह नहीं रह जाता। अब

हम कुर-आन की अन्य गुरु वाणियों से तुलना करते हैं।

गुरु नानक, गुरु कबीर, और गुरु दादू आदि जितने प्रान्त २ के गुरु हुए हैं वे सदा भ्रमण करते थे। वे अपने काल के आध्यात्मिक गुरु भी रहे हैं। ये महात्मा पुरुष अपने काल के अनाचार तथा सामाजिक अधः-पतन के दृश्यों को देख कर हृदय में कष्ट अनुभव करते थे और उस को संशोधन करने का प्रयत्न करते थे। अपने प्रबल प्रयत्न से वे सर्वत्र ज्ञान कथा करते और लोगों को सीधे मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करते थे। लोगों में प्रेम, संघ और उन्नति के भावों को जागृत करते थे और अपना मृत्यु के पश्चात् वे पर्याप्त ज्ञान भण्डार छोड़ जाते थे जिसे उनके शिष्य सं-ग्रह कर लेते थे और एक ग्रन्थ रूप से बनादेते थे, वही एक प्रकार से जनता के लिए धर्मग्रन्थ बनजाता था।

ठीक यही दशा श्री मुहम्मद की थी। तात्कालिक अरब की दशा वस्तुतः बहुत गिरी हुई थी। मूर्तिपूजक, पुरोहितों, तथा देवी देवताओं का, और उन के पुजारियों का बिलकुल वैसा ही आतंक था जैसा अब से १०० साल पहिले तीर्थस्थान पर पण्डों, और मन्दिरों के महन्तों का था और अब भी कतिपय स्थानों पर है। अरब जैसे अशिक्षित प्रान्त में मुहम्मद सा-हब ने अपने जीवन में वस्तुतः एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था। जो उस समय की अरब की अवस्था थी वह मुहम्मद साहब के जीवन से स्पष्ट प्रतीत होती है। यहाँ उक्त बातों का उल्लेख करना लेख को व्यर्थ बढ़ाना है। हम यहाँ केवल कुर-आन के विषय में लिखना चाहते हैं।

कुर-आन की रचना तथा क्रम को देखिये स्पष्ट प्रतीत होता है कि कुरान को ग्रन्थन करने वालों ने उस को साक्षात् प्रभु की वाणी बनाने का पूरा प्रयत्न किया है। जैसे नये कवि अपना काव्य बना कर उस में पूर्व कवियों की शैली के अनुसार सर्ग तथा नाटकों में अंकों की अव-तारणा करते हैं, और धर्म ग्रन्थ तथा स्मृति ग्रन्थ के कर्त्ता अध्यायों की अवतारणा करते हैं उसी प्रकार कुरान का संग्रह हो जाने पर संग्रह कर्त्ताओं ने उसको भी धर्मग्रन्थ-प्रभुवाणी का रूप देने का प्रयत्न किया है। हम यह निश्चय से कह सकते हैं कि जिस व्यक्ति ने भी कुरआन का संग्रह किया और उसको पुस्तक या ग्रन्थ का रूप दिया है उसको यह अवश्य ज्ञान था कि अरब के निवासी लोग अपने ग्रन्थों में सूर, सिपारा, रुकू तथा आयतों का ही विभाग करते हैं और जिस ग्रन्थ में ऐसा विभाग होगा लोग उसी को प्रभु-वाणी मानेंगे। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि हज़रत मुह-म्मद साहब स्वयं, या उनके गुरु जिब्राइल फ़रिश्ता जो उनको कुर-आन पढ़ाते थे वे अवश्य भारत के निवासी तथा ऋग्वेद के विद्वान् थे।

हमारा यह विचार निराधार नहीं है। कुर-आन की अन्तः साक्षि यह बतलाती है कि वह ऋग्वेद की एक शाखा है, और ऋग्वेदी आचार्य के ऋचाओं के विशेष संग्रह, या उपदिष्ट भाग पर एक व्याख्या है। ऋषि दयानन्द ठीक लिखगये हैं कि वेदों की शाखाएँ बहुत सी लुप्त होगयीं हैं और वे शाखायें स्वतः भिन्न भिन्न वेद नहीं प्रत्युत् वेद के व्याख्यान मात्र हैं। यह भी निःसंदेह सत्य है कि व्याख्यान या भाष्य या शाखाएँ स्वतः प्रमाण नहीं होतीं उनका प्रामाण्य परम्परागत है और वेदानुकूल भाग का ही प्रामाण्य होता है।

अब कुर-आन की रचना पर विचार कीजियेः—

कुर-आन में निम्नलिखित विभाग सूचक शब्द हैं (१) सूरत (२) पारा या सिपारा (३) आयत (४) कूफ़ा (५) मंज़िल—इन शब्दों पर विचार कीजिये—

१—सूरत—सूरत का अर्थ a row, पंक्ति, कतार, series, माला है—वेद में सूक्तों का क्रम है।

२—पारा—ये वेद भगवान् के 'प्रपाठक' का अनुकरण है। हस्तलिखित वेद सहिताओं में प्रत्येक पृष्ठ पर प्रपाठक का चिन्ह 'प्र०' लिखा रहता था। उसी को देख कर अरब वासियों ने धर्म ग्रन्थ के एक भाग का नाम 'पर' (पारा) रखदिया।

३—आयत—यह वेद के मन्त्रों का प्रतिनिधि है। वैदिक साहित्य में वे ऋषि जो मन्त्रों का साक्षात् ज्ञान पूर्वक दर्शन करते थे उन के विषय में लिखा जाता था 'स ऋषिरिमान्यातयामानि अपश्यत्'। उस ऋषि ने अमुक अमुक आयातयाम देखे। जो 'मन्त्र' ज्ञान रूप से ऋषियों के मस्तक में प्रकाशित होते थे उनको आयातयाम कहते थे। उसी का शेषांश आयात या आयत कुरआन में अब तक पाया जाता है।

अपने आध्यात्मिक गुरु का उपदेश सुनकर मुहम्मद भी विचार पूर्वक वेद के मन्त्रों के अर्थ देखता था और उनको अपनी भाषा में बड़ी प्रबल श्रद्धा से कहा करता था। वह अपने गुरु के उपदेश को अरबी में कहता था। परन्तु मूल ग्रन्थ उसका अवश्य किसी अन्य प्राचीन वैदिक भाषा में था अरबी में नहीं था—ऐसा प्रतीत होता है।

कुरान के सूर-ए-ख़ुज़रफ़ (सू० ४३) में लिखा हैः—हमने इसे (कुरान को) अर्बी में बनाया है ताकि तुम समझो (२) और यह हमारे यहाँ असल किताब में बड़े पाये की किताब है। (३) तो क्या इस वजह से कि तुम लोग हद से बाहर होगये हो हम बेतकल्लुफ हो कर शिक्षा करना छोड़ देगें (४) (देखो हिन्दी कुरान पृ० ४८७ अनुवादक रघुनाथप्रसाद मिश्र इटावा)

महाशय सेल का अनुवाद इस प्रकार हैः—

"We have ordained the same an

Arabic koran that ye may understand and it is certainly written in the original book kept with us being sublime and full of wisdom" इस वाक्य से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अरबी कुरान के अतिरिक्त और कोई एक मूल प्रामाणिक ग्रन्थ था जिस का सब प्रामाणिक मानते और आदर की दृष्टि से देखते थे जिसका नाम लेकर सब नबी और प्राफेट लोग अपनी वाणियों को प्रमाणित करते थे और लोगों की श्रद्धा खेंचते थे।

हमारे भारतीय आस्तिक विद्वान् अपने धर्मग्रन्थों को वेद महावृक्ष में टंगा हुआ पाते हैं। वे सदा श्रुति और वेद का नाम लेते हैं और उसी के अनुसार अपने ग्रन्थ को बतलाते हैं। वही बात हम पश्चिम देश में भी देखते हैं। कुरान ने भी अपने मूलग्रन्थ की सूचना दी है। अब प्रश्न यही है कि वह मूल ग्रन्थ कौनसा है?

सेल महाशय के उद्धरण में आये हुए 'The original book" वाक्य खण्ड पर सेल महाशय स्वयं टिप्पणी देते हैं:—

"The Preserved tablet, which is the original of all scriptures in general." एक सुरक्षित तख़्ती (शिला लेख) जो प्रायः सभी (पश्चिमी देशों के भी) धर्मग्रन्थों का मूल ग्रन्थ है।

पं० सत्यदेव ने (जो पहले मुसल्मान थे और अब कई सालों से आर्य होचुके हैं) लिखा है कि "कतिपय मुसल्मानों के विचारानुसार असल कुर-आन सिमरना की गुफ़ा में गुप्त हैं जो कयामत के समीप 'इमाम मेहदी' के साथ प्रगट होगा। परन्तु कुरान स्वयं भी इस मूलग्रन्थ के बारे में बहुत सी बातें बतलाता है।

सूरे-नजम (नक्षत्र) में लिखा है:—

"By the Star when it setteth your companion Mohammed erreth not, nor is he lead astray; neither doth he speak of his own will. It is no other than a revelation which hath been revealed unto him. One mighty in power endued with understanding taught it him and he appeared in the highest part of the horizon. Aterwards he approached the prophet and drew near unto him, until he was at the distance of two bows' length from him or yet nearer and he revealed unto his servant that which he revealed. "He also saw him another time by the Lote tree beyond which there is no passing, near it is the garden of eternal abode. When the Lote tree covered that which it covered, his eyesight turned not aside neither did it wander and he really beheld some of the greaest signs of his Lord.

कुरान के इस अनुवाद पर ध्यान देने से बहुत से रहस्य खुलते प्रतीत होते हैं। यहाँ पहले नक्षत्र की कसम खाई गई है। व्याख्याकार उस तारे को कृत्तिका नक्षत्र मानते हैं। कुरान की उत्पत्ति का विषय यहाँ स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह कुरान अरब में पैदा नहीं हुआ परन्तु "appeared in highest part of the horizon,,— कुरान का उपदेश करने वाला देव आकाश में सब से अधिक ऊँचाई पर प्रकट हुआ—वह उसके समीप आया दो धनुषों की दूरी पर रह गया, अर्थात्, वह इतने पास तक आगया जितने तक दो कमान नापी जा सकती थीं। वह और भी पास आगया हज़रत मुहम्मद ने उसको दूसरी बार बेरी के पास भी देखा। मज़ा यह कि बेरी के पास स्वर्ग का उद्यान था। और आगे जाने का रास्ता भी कोई न था। उसने उस पुरुष में भगवान् होने के चिन्ह देखे। मुसलमान व्याख्याकार इस वृक्ष को सातवें आस्मान पर मानते हैं। उस के परे ही खुदा था। ये सब रहस्य कुछ समझ में नहीं आता। मुहम्मद साहब ये सब बातें कुछ स्वप्न का सा वर्णन करते हुए कह गये। परन्तु विचारने से प्रतीत होता है कि कभी पूर्व जन्म में कार्त्तिक के दिनों में हज़रत मुहम्मद बद्रिकाश्रम गये हैं। वहाँ किसी गुरु ने उन को उपदेश किया है। और उसी की वासना इस-जन्म में उठी। उसी को वे इन शब्दों में कह रहे हैं। या हो सकता है कि उस समय के मूर्त्तिपूजकों के अनुकूल बद्रिकाश्रम और उसके पास, स्वर्ग की लता आदि पर लोग बहुत श्रद्धा रखते होंगे। इस कारण लोगों की श्रद्धा खेंचने के निमित्त अपनी कुरान को भी उसी आश्रम के समीप की बेरी के पास से साक्षात् भगवान् का उपदेश लेने की कल्पना की है।

भगवान् के चिन्ह देखे—यह स्पष्ट नहीं। इस पर मि० सेल ने लिखा है कि उसने इन्द्रियों की सूक्ष्म शक्ति और बुद्धि विषयक विस्मयजनक चमत्कार देखे। कदाचित् इस अवसर पर मुहम्मद को संवित्सिद्धि और सरस्वती-सिद्धि हो गयी हो— इसी को उन्हों ने भगवान् का साक्षात्कार समझा हो। उसी को याद कर के इस समय कुरान की प्रामाणिकता बढ़ाई जारही है।

कुर-आन की सूरे नरूज (दैवी चिन्ह) की २२ वीं आयत में लिखा है:-

Verily that which they reject is a glorious Koran *The original whereof is written in a tablet kept in heaven*,,

अर्थात् जिसको लोग मानने से इनकार करते हैं वह उत्कृष्ट कुर-आन है, जिसका मूल ग्रन्थ-भाग स्वर्ग में एक शिला पर लिखा है। इतने उद्धरणों से हमने पाठकों के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि कुर-आन हज़रत मुहम्मद की अपनी दिमाग़ी उत्पत्ति नहीं थी प्रत्युत एक पूर्व-देशवासी गुरु की वाणी थी। उसका मूल ग्रन्थ देव लोक में और देव वाणी (संस्कृत) में ही सुरक्षित रूप से था। वह स्वर्ग लोक भी बेरी के पास था। बेरी के पास

ही मुहम्मद साहब को मनुष्य रूप में भगवान् ने दर्शन दिये। यदि यह भारतवर्ष की हिमावृत चोटियों (स्वर्गभूमियों) का वर्णन नहीं तो और क्या है। गुरु को देव माना जाता है अतः मुहम्मद साहब ने भी अपने पूर्व देशवासी गुरु महात्मा को देव माना और स्थान २ पर उसको नाना रूपों में रखा, उसने जैसा सिखाया कहा।

अब मैं पाठकों के समक्ष इतना बतला देना चाहता हूं कि स्वर्ग क्या वस्तु है।

मुसलमान, ईसाई, और यहूदी आदि सबका इस विषय में ऐकमत्य है कि आदम पहले स्वर्ग में था और फिर उस को गिरा कर स्वर्ग से निकाल दिया। उस स्वर्ग के विषय में एक प्राचीन यहूदी ऐतिहासिक फ्लेवियस जोसेफस लिखता है:—

"यहूदी लोग, या मूसा भी गंगा, फ्रात, दिजलाथ, और नील नदी-इन सीमाओं से घिरे हुए प्रान्त को स्वर्ग कहते थे। आदम वहाँ का ही रहने वाला था।" और असली कुरान भी इसी स्वर्ग भूमि में मौजूद होना चाहिए। मौजूद भी है और वह है 'वेद'।

इतनी आलोचना से पाठक समझ सकते हैं कि हो न हो, यह कुरान वेद महा वृक्ष की एक शाखा की अरबी व्याख्या है—जो गुरु की वाणी है जिस को महम्मद साहब स्वयं, तथा कुरान के प्रणेता (खुद खुदा) भी उस वेद-ईश्वरीय ज्ञान का एक हिस्सा मानते हैं (कुर-आन-सूरे XXVI. १९३) इसी को जेबराइल स्वर्ग से यहाँ उतार लाया।

—:०:—

महात्मा-गान्धी तथा आर्यसमाज

(लेखक—श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार)

२९ मई के 'यङ्ग इन्डिया' में महात्मा गान्धी ने हिन्दु-मुसलमानों के पारस्परिक वैमनस्य पर अपने विद्वत्ता पूर्ण विचार प्रकट किये हैं। बीच २ में अनेक हिन्दु तथा मुस्लिम नेताओं का भी वर्णन किया है। इस समस्या पर लिखते हुए स्वामी श्रद्धानन्द जी का नाम न लेना लेख को अधूरा रखना था। स्वामी श्रद्धानन्द जी के प्रसङ्ग में महात्मा जी को ऋषि दयानन्द तथा 'आर्य्यसमाज' भी स्मरण हो आये और लगते हाथ उन्हों ने उन पर भी अपने सौजन्य तथा प्रेम पूर्ण प्रहार कर ही दिये। हम ने बहुत सोचा कि हिन्दु-मुस्लिम-समस्या पर लिखते हुए ऋषि दयानन्द की योग्यता पर सम्मतियें प्रकट करना कहां तक उचित है—एक राजनैतिक प्रश्न पर विचार करते हुए 'सत्यार्थप्रकाश' पर बहस करना कहां तक संगत है—परन्तु हमें इन दोनों का सम्बन्ध ढूंढने से भी न मिला, हां! बड़े आदमी जो कुछ करें वह शायद ठीक ही होता है इसीलिये महात्मा गान्धी ने हिन्दु-मुस्लिम प्रश्न

को हल करते हुए 'कुरान' 'बायबल' अथवा अन्य किसी धर्म ग्रन्थ पर सम्मति प्रकट न करते हुए 'वेद' तथा 'सत्यार्थ प्रकाश' पर ही अपने मत को प्रकाशित कर देना उचित समझा। अस्तु।

महात्मा जी के लेख में 'ऋषि दयानन्द' 'सत्यार्थ प्रकाश' 'आर्यसमाज तथा स्वामी 'श्रद्धानन्द जी'—इन चार पर जो विचार प्रकट किये गये हैं उन्हीं की यहां समीक्षा की जायगी।

ऋषि दयानन्द

ऋषि दयानन्द के सम्बन्ध में महात्मा जी का कथन सारांश में निम्न लिखित है:—

१. ऋषि दयानन्द असहिष्णु थे
२. संकुचित विचारों के थे
३. और, अन्य धर्मों से जानकारी न रखते थे

महात्मा जी के ये विचार नये नहीं हैं। वे बहुत देर से इन भावों की धीमी २ आवाज़ उठाते रहे हैं और सम्भवतः अब तक भी उन्हें अपने भावों को खुले तौर से प्रकट करने का मौका नहीं मिला। अभी तक वे अपने विचार प्रकट करने तक ही परिमित रहे हैं अपने कथन को पुष्टि में प्रमाण देने का उन्हों ने कभी कष्ट नहीं उठाया, इसीलिये अधिक न लिख कर हम ने उन के कथन मात्र को पाठकों के संमुख रख दिया है।

१. क्या ऋषि दयानन्द असहिष्णु थे?

इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिये यह जान लेना अत्यंत आवश्यक है कि महात्मा गान्धी ने असहिष्णु शब्द का प्रयोग किन अर्थों में किया है। महात्मा जी का यह अभिप्राय कभी नहीं हो सकता कि ऋषि दयानन्द प्रतिपक्षियों द्वारा किये गये शारीरिक प्रहारों को न सह सकते थे—अथवा इस प्रकार के भीरुता-पूर्ण आक्रमणों को देख कर क्रुद्ध हो जाते थे। जिस व्यक्ति ने शस्त्र की चोट खाकर शत्रु को गले लगा लिया हो, जिस ने विष देने वाले को कैद जाते देख कर उसे छुड़ाने के लिए विकलता प्रकट की हो, जिस ने विष का प्याला पीकर भी अपने घातक को दुःख-संतप्त देख कर भाग जाने की सलाह ही नहीं अपि तु तदर्थ सहायता भी दी हो—ऐसे व्यक्ति पर शारीरिक प्रहारों के न सहन कर सकने का कोई भूल से भी लाञ्छन नहीं लगा सकता, जान बूझ कर ऐसा करना तो 'सुतरां दूरे,'!

ऋषि दयानन्द असहिष्णु थे- इस का एक ही अभिप्राय हो सकता है और वह यह कि उन्हों ने विपक्षियों के खण्डन में अत्यन्त कठोर भाषा का प्रयोग किया है। महात्मा गान्धी का ऋषि दयानन्द को 'असहिष्णु' कहने से यही अभिप्राय प्रतीत होताहै।

धर्म-प्रवर्तकों तथा सुधारकों के भावों तथा उन की भाषा को साधारण व्यक्तियों के माप से जांचना भारी भूल है। अपने समय की घृणित अवस्थाओं को देख कर जिन विशाल-चेता महात्माओं के हृदय में विक्षोभ उत्पन्न हो जाता है वे ही अपनी शक्तियों को जागृत कर नवीन युग लाने का प्रयत्न करते हैं और अपने समय के एकत्रित हुए गन्द को दग्ध करने के लिये

दावानल की प्रचण्ड ज्वालाओं के रूप में चमक उठते हैं। उन के भाव, उन की भाषा, उन का जीवन अग्नि-स्वरूप होता है-लल्लो पत्तो से उन का काम नहीं चल सकता। इसी लिये ऋषि दयानन्द ने उग्र भाषा का प्रयोग किया है; 'भाई लोग' उसी भाषा को असहिष्णुता की भाषा कहने लगते हैं।

सुधारकों की भाषा की हमारी भाषा के साथ तुलना नहीं की जा सकती। उन की भाषा के स्वरूप को समझने के लिये उन्हीं की बिरादरी के लोगों की भाषा का अध्ययन करना परमावश्यक है। हम यहां ईसा मसीह तथा मुहम्मद की भाषा के कुछ नमूने पाठकों के सामने रखना चाहते हैं ताकि वे समझ सकें कि उन की तुलना में ऋषि दयानन्द की भाषा उपयुक्त थी अथवा अनुपयुक्त।

अपने समय के धर्म-ध्वजियों की मक्कारी देख कर ईसा के पवित्र हृदय से जो तीव्र शब्दों के उद्गार निकले उन का थोड़ा सा नमूना मैथ्यू की गोस्पल से नीचे उद्धृत किया जाता है। यह वक्तृता जनता के समक्ष दी गईथी:-'But woe unto you, Scribes and pharisees, *hypocrites*, for ye shut up the kingdom of heaven against men ···· Woe unto you, scribes and pharisees, hypocirtes, f*or ye devour widow's houses, and for a pretence make long prayer .... ye fools and blind......Ye blind guides which strain at a grat and swallow a camel.* Woe unot you scribes and pharisees, hypocrites, for ye are like unto *whited sepulchres*, which indeld appear beautiful outside but are within *full of dead men's bores*, and all uncleanliness........ *ye serpents, ye generation of vipres, how can ye escape the damnation of hell.*

ऊपर दिये हुए उद्धरण का अनुवाद देने की आवश्यकता नहीं। शब्द स्पष्ट हैं। ईसा ने यहूदियों को बेवकूफ़, सांपो की औलाद आदि शब्द कहे, परन्तु फिर भी महात्मा गान्धी जी की सम्मति में ईसा मसीह सहिष्णु तथा ऋषि दयानन्द असहिष्णु थे-यह आश्चर्य तथा खेद की बात है।

मुहम्मद के विषय में अधिक लिखने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। मुहम्मद के प्रचलित किये हुए धर्म के अनुसार दूसरे धर्म वाले से बहस करने का कुछ अभिप्राय ही नहीं-ऐसे काफ़िरों का तलवार के घाट उतारा जाना ही एक इलाज है। तलवार ही स्वर्ग तथा नरक की कुञ्जी है। इस्लाम के लिये खून बहाने वाला पापी भी मर कर स्वर्ग में आकर हूरों के आलिङ्गन का सुख उपभोग करता है।

'सूरतुत्तौब' की २६ आयत में लिखा है:—

"Make war upon such of those to whom the scriptures have been given as believe not in God, or in the last day,. and who for-

bid not that which God and his apostle have forbidden."

'सूरत्तु मुहम्मद' की चौथी आयत में लिखा है:—

"When ye encounter the infidels, *strike off their heads* till ye have made a great slaughter among them, and of the rest make fast the fetters.

विधर्मी को पाते ही उस का गला उतार दो और जी भर कर कत्ले आम करो, जी भरने पर बचे हुओं को कैद कर लो।

भाषा तथा सिद्धान्त-दोनों की दृष्टि से महात्मा गान्धी जी के प्रिय ईसा और मुहम्मद अधिक असहिष्णु प्रतीत होते हैं। हमारी सम्मति में तो सत्य यह है कि धर्म-प्रवर्तकों को ठीक समझने के लिये उन के मापक यन्त्र दूसरे ही हैं। इन सब की अपनी ही एक बिरादरी है-अपने ही भाव और अपनी ही भाषा है। जिन बातों को हम कठोर समझते हैं उन्हें कहने का उन को पूरा अधिकार होता है। अपने समय की अवस्थाओं को देख कर उन्हें जो दुःख हुआ है उस से वे बहुत प्रभावित हुए होते हैं। उन्हों ने देश की दशा पर आंसू बहा कर वह अधिकार प्राप्त किया हुआ होता है जिस से साधारण पुरुष वञ्चित होते हैं। इसीलिये ईसा, मुहम्मद तथा ऋषि दयानन्द की भाषा तथा उन के [illegible] पर सम्मति प्रकट करते हुए उन के प्राप्त अधिकारों को दृष्टि से ओझल नहीं करना चाहिये।

२. क्या ऋषि दयानन्द संकुचित विचारों के थे?—प्रथम प्रश्न का उत्तर पाने के अनन्तर दूसरा प्रश्न उपस्थित होता है 'क्या ऋषि संकुचित विचारों के थे?'—'क्या ऋषि दयानन्द ने अपने धर्म को संकुचित बनाने का प्रयत्न किया है?'—'क्या वे एक प्रकार की मूर्तिपूजा हटा कर दूसरे प्रकार की सूक्ष्म-मूर्तिपूजा के प्रवर्तन करने के अपराधी हैं?'

शायद ऋषि दयानन्द पर संकुचित विचारों के होने का यह पहली बार ही आक्षेप किया गया है। पटियाला अभियोग में दरबार की तरफ़ से मि० ग्रे० ने ऋषि दयानन्द पर 'असहिष्णुता' का आक्षेप किया था तदनन्तर अन्य अनेक पण्डितम्मन्यों के कृपा-कटाक्षों का इसी सम्बन्ध में आर्य समाज शिकार बनता रहा। परन्तु ऋषि दयानन्द को शायद पहली बार छोटे विचारों का कहे जाने का साहस किया गया है। सम्भवतः महात्मा गान्धी ने ये शब्द जल्दी में लिख दिये हों। यदि ऐसे हैं तो बहुत अच्छा है। अन्यथा महात्मा गान्धी सरीखे महा-व्यक्ति से ऐसा भ्रम-मूलक विचार किस प्रकार निकला, यह समझ ही नहीं आता।

इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश की भूमिका में जो कुछ लिखा है उस का उल्लेख कर देना अत्यावश्यक है। स्वामी जी लिखते हैं:—

"इस ग्रन्थ में कहीं २ भूल चूक से अथवा शोधने वा छापने में भूल चूक

रह जाय तो उस को जानने जनाने पर जैसा वह सत्य होगा वैसा ही कर दिया जायगा"

स्वामी जी आगे चल कर लिखते हैं:—

"यद्यपि आज कल बहुत से विद्वान् प्रत्येक मतों में हैं वे पक्षपात छोड़ सर्वतन्त्र सिद्धान्त अर्थात् जो २ बातें सब में अनुकूल सब में सत्य हैं उन का ग्रहण और जो एक दूसरे से विरुद्ध बातें हैं उन का त्याग कर परस्पर प्रीति से वर्तें वर्तावें तो जगत् का पूर्ण हित होवे, क्यों कि विद्वानों के विरोध से अविद्वानों में विरोध बढ़ कर अनेक विध दुःख की वृद्धि और सुख की हानि होती है"

इतना ही नहीं। स्वामी जी की उदारता इस से भी कहीं बढ़ कर थी। वे अन्य मतावलम्बियों के विषय में लिखते हैं:—

"जैसा मैं पुराण, जैनियों के ग्रन्थ, बायबिल और कुरान को प्रथम ही बुरी दृष्टि से न देख कर उन में से गुणों का ग्रहण और दोषों का त्याग तथा अन्य मनुष्य जाति की उन्नति के लिये प्रयत्न करता हूं, वैसा सब को करना योग्य है"

यह समझना कि स्वामी जी को बायबल, कुरान, पुराण आदि में दोष ही दोष दिखाई देते थे—भूल है। स्वामी जी उन की अच्छाईयों से भली भान्ति परिचित थे, परन्तु क्योंकि वे ईसाइत या इस्लाम पर कोई ग्रन्थ नहीं लिख रहे थे इस लिए उस ग्रन्थ में उन धर्मों की अच्छाई दिखाने की कोई आवश्यकता न थी। सच्चाई एक है—सब धर्मों में समान है। सच्चाई का प्रकाश करने के लिए ही ऋषि ने 'सत्यार्थ प्रकाश' ग्रन्थ लिखा ऋषि उस सच्चाई को प्रमाणित करने के लिए वेदों का उद्धरण देना बायबल और कुरान के उद्धरण देने की अपेक्षा कहीं अच्छा समझते थे। भूमिका में पूरा निर्देश कर दिया है कि वे संकुचित विचार से विधर्मियों के मान्य ग्रन्थों का खण्डन नहीं कर रहे, परन्तु उनकी अच्छाईयों को मान कर उन की बुराईयों का खण्डन करते हैं। हम समझते हैं कि इस भाव को भूमिका में ही स्पष्ट किया जा सकता था और वहां कर दिया गया है। आगे ग्रन्थ में स्थल २ पर इसी की मुहारनी रटने का कोई प्रयोजन नहीं दीख पड़ता। अत्यन्त खेद का स्थल है कि जो लोग स्वामी जी पर 'संकुचितपन' का दोष लगाते हैं वे सारी पुस्तक तो पढ़ जाते हैं परन्तु पुस्तक के प्रथम ४, ५ पृष्ठ देखते तक नहीं।

स्वामी जी संसार के सब धर्मों में सचाई देखते थे—यह उन्होंने स्वयं अपने ग्रन्थ की भूमिका में लिख दिया है। उसी सचाई का प्रतिपादन करने के लिए उन्होंने सत्यार्थ-प्रकाश के दस समुल्लास लिखे और झूठ का खन्डन करने के लिए कुल चार। क्या यह बात स्वयं उनके हृदय की उदारता तथा उनके विचारों की विशालता को सूचित नहीं करती?

महात्मा गान्धी का कथन है कि स्वामी दयानन्द ने हिन्दू धर्म के विस्तृत स्वरूप को न समझ कर उसे

संकुचित रूप दे दिया। ठीक! परन्तु क्या हम पूछने का साहस कर सकते हैं कि वह कौन सा विस्तृत हिन्दू-धर्म है जिस की तरफ महात्मा जी का इशारा है? हम तो अभी तक यह समझे बैठे थे कि ऋषि दयानन्द ने संकुचित हिन्दू-धर्म को विशाल बनाने के लिए उस की कूप-मण्डूकता को दूर करने का प्रयत्न किया। क्या छोटी उमर में सुकुमार बालकों के गलों में ब्याह की फांसी डाल देना ही हिन्दू-धर्म की विशालता को सूचित करता है? क्या बाल-विधवाओं का गगन-भेदी करुणा-क्रन्दन ही हिन्दू धर्म को उच्चता के शिखर पर पहुंचाता है? क्या अछूतों पर किये गये अत्याचार ही हिन्दू-धर्म के गौरव को बढ़ाते हैं? क्या बिरादरियों के क्रूर-व्यवहार ही हिन्दू धर्म की उदारता के अभिव्यञ्जक हैं? हिन्दू-धर्म को उदार कहना और आर्यसमाज को अनुदार कहना अपना सब से उपहास करवाना है।

यदि महात्मा गान्धी यह समझे बैठे हों कि ऋषि दयानन्द ने हिन्दू-धर्म मात्र के विरुद्ध आवाज़ उठाई थी तो वे भारी भ्रम में हैं। वे इस भ्रम को जितनी जल्दी दूर कर दें उतना ही उनके तथा हमारे लिए भला है। जिस हिन्दू-धर्म का ऋषि दयानन्द ने खण्डन किया उस का मन्डन करने के लिए महात्मा गान्धी भी उद्यत नहीं हो सकते। जिस उच्च तथा पवित्र हिन्दू-धर्म को गान्धी जी मानते हैं शायद उसी धर्म को 'वैदिक-धर्म' का नाम देकर ऋषि दयानन्द ने पुनरुज्जीवित किया। महात्मा गान्धी की भूल यही हुई है कि उन्होंने यह नहीं समझा कि ऋषि दयानन्द ने किस हिन्दू-धर्म पर आक्षेप किये हैं। उन्होंने गलती से यह समझ लिया है कि ऋषि दयानन्द के आक्षेप उनके मान्य हिन्दू-धर्म पर हैं। ऋषि के आक्षेप तो उन के समय में जैसा हिन्दू धर्म का प्रचलित स्वरूप था उस पर हैं। क्या उस स्वरूप को सत्य मानने के लिए महात्मा जी तय्यार हैं? हम समझते हैं, 'नहीं'।

ऋषि दयानन्द पर यह भी आक्षेप किया गया है कि वे एक प्रकार की मूर्तिपूजा को हटा कर सूक्ष्म-मूर्ति-पूजा प्रचलित कर गये। कैसे? महात्मा जी कहते हैं, क्योंकि स्वामी दयानन्द ने वेदों को सब सत्य विद्याओं का भण्डार मान लिया है, इस लिये उन्हों ने एक दूसरी प्रकार की मूर्त्ति-पूजा का ही प्रचार कर दिया है।

यदि यह सिद्धान्त यथार्थ प्रमाणित हो जाय कि वेद सब सत्य विद्याओं के पुस्तक हैं तब तो ऋषि दयानन्द का इस विचार को मानना मूर्ति पूजा नहीं कहला सकता। यदि यह मान लिया जाय कि वेद सत्य विद्याओं के पुस्तक नहीं हैं तभी स्वामी जी के इस सिद्धान्त के प्रचार को 'मूर्तिपूजा' का नाम दिया जा सकता है।

ऋषि दयानन्द की इस विषय में निश्चित सम्मति थी। वे वेद को ईश्वरीय ज्ञान मानते थे। वेद में सब सत्य विद्याओं का बीज भी स्वीकार करते थे। उन की सम्मति का आधार गप्प-बाजी न था। उन्होंने इस स-

चाई को तप तथा अनवरत ब्रह्मचर्य से खोज पाया था। इस सचाई को ढूंढने में उन्हें बरसों भटकना पड़ा था। उन के समय में उन जैसा संस्कृत का प्रतिभा-शाली विद्वान् ढूंढने से भी न मिलता था। दिग्गज पण्डितों का राजधानी वाराणसी में उन की ललकार को सुन कर प्रति वर्ष अगाध विद्या का अभिमान करने वाले अपना सिर नीचा कर लिया करते थे। ऋषि दयानन्द की आवाज़ वेदों को ईश्वरीय ज्ञान कहती थी। स्मरण रहे, वह खोखली आवाज़ न थी। उस आवाज़ के पीछे बहुत कुछ था। तपस्या थी, ब्रह्मचर्य था विद्या थी—क्या कुछ न था? ऋषि दयानन्द ने उस सचाई का प्रचार किया तथा अपने शिष्यों को उस का साक्षात्कार करने का आदेश किया। ऋषि के अनुयायी अनथक परिश्रम से इस दुर्गम कार्य में लग गए। वेदों का अध्ययन होना प्रारम्भ हो गया। प्राचीन सभ्यता का सूर्य दिनों दिन जाति के जीवन रूपी नभो मण्डल में ऊपर को चढने लगा। पिपासातुर नयनों से ऋषि भक्त प्रकाश की तरफ देखने लगे। धन्य हो महात्मा जी! इस सब को देख कर आप कह उठे-'मूर्तिपूजा'!

३. क्या ऋषि दयानन्द अन्य धर्मों से जानकारी न रखते थे?—महात्मा जी ने ऋषि के विषय में न जाने किस साहस से यह सम्मति प्रकट की है! यह आक्षेप ऋषि दयानन्द की विद्या पर है—उन की योग्यता पर है। ऋषि पर दया दिखाते हुए महात्मा जी लिखते हैं कि स्वामी जी ने अन्य धर्मों की कठोर आलोचना जानकारी न होने के कारण कर दी। महात्मा जी! यह आपकी भूल है।

ऋषि दयानन्द ईसाई पादरियों से अकसर मिलते रहा करते थे। ह्यूम, फ्रेडरिक, फ्रेन्थोम आदि युरोपियन पादरी बहुधा उन के पास आया जाया करते थे तथा उन की परस्पर धर्म चर्चा हुआ करती थी। मुसल्मानों के साथ भी वाद-विवाद होता ही रहता था। यह समझना भूल है कि किसी धर्म को समझने के लिये उस धर्म की पुस्तकों का ही अध्ययन करना चाहिये। मनुष्यों से मिल कर जो कुछ सीखा जा सकता है उस का शतांश भी पुस्तकों से नहीं सीखा जा सकता। हिन्दुओं तथा जैनियों की बहुत पुस्तकें स्वामी जी ने देखी थीं—महात्मा जी ने शायद इन दोनों धर्मों के विषय में इतने ग्रन्थों का आलोचन न किया हो जितना ऋषि दयानन्द ने किया था। इस विषय में विस्तार से आगे लिखा जायगा।

हां, ऋषि की समालोचना कहीं कहीं कठोर अवश्य हैं परन्तु निम्न लिखित उद्धरणों से स्पष्ट हो जायगा कि ऋषि ने ईसाईयत की आलोचना इतनी कठोर नहीं की जितनी खुद पाश्चात्य लोगों ने। उदाहरणार्थ कुछ एक अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वानों की सम्मतियें यहां उद्धृत की जाती हैं:-

महाशय Thomas paine अपनी पुस्तक Tha age of reason के ४२

पृष्ठ पर लिखते हैं:—

Among the detestable villains that in any period of the world have disgraced the name of man, it is impossible to find a greater than *moses* if this account be true.here is an order to butcher the boys, to massacre the mothers, and debauch the daughters.,

वही महाशय ४२ पृष्ठ पर लिखते हैं

"Good heaven! it is quite another thing, *it is a book of lies*, wickedness, and blasphemy......

महाशय Ingersoll (इंगरसोल) अपने व्याख्यानों के ४६ पृष्ठ पर लिखते हैं:—

Is the Bible civiized?

It upholds lying, larceny, robbery murder, the selling of diseased meat to strangers, and even the sacrifice of human beings to Jehovah.

यह सब कुछ बायबल को हिन्द भाषा में भी समझ सकने वाले विद्वानों ने लिखा है। ऋषि दयानन्द ने तो इन का शतांश भी नहीं लिखा।

लोगों का बहुत कुछ सन्देह ईसाइयत पर ही रहता है। वे समझते हैं कि स्वामी जी ने ईसाइयत को दूर देश का धर्म होने के कारण शायद भली प्रकार नहीं समझा। मुसलमानी धर्म पर की गई स्वामी जी की आलोचना से बहुत थोड़ों को विप्रतिपत्ति होगी। स्वामी जी के मुसलमानों के स्वर्ग के बेहूदा वर्णन पर जो कुछ लिखा है उस पर पटियाला अभियोग में मि० ग्रे ने भी मिथ्याप्रदर्शन का स्वामी जी पर आक्षेप किया था। परन्तु 'तफसीरुल कुरान' (३८,३९ पृ०) के सय्यद अहमद के निम्न लिखित उद्धरण से स्पष्ट हो जायगा कि ऋषि के वर्णन की अपेक्षा स्वयं मुसलमान कुरान के स्वर्ग के वर्णन को बेहूदा समझते हैं:—

"The conception that heaven has been made like a garden having palaces built of marble and studded with pearls, flourishing and green trees...a place where one denizen is lying encircling the waist of one houri another leaning upon the thigh of another, another nestlig a siren to his bosom, another still imprinting a delicious kiss on the lip of a (chaming flame) and people are enacting such tender scenes seated in differnt nook—*is so preposterous tnat one can not help exclaiming with astonishment.*

"*If this is paradise, our brothels are whitout exaggeration a thousand times more decent*"

अर्थात् मुहम्मदी स्वर्ग की अपेक्षा तो वेश्या-घर ही अच्छे हैं जहां इतनी अश्लीलता नहीं।

क्या स्वामी जी जैन-धर्म के विषय में जो कुछ लिख गये वह सुन सुना कर ही लिख गये या उस में भी स्वामी जी की विद्वता का कोई अंश छिपा हुआ है ? 'सत्यार्थ प्रकाश' की भूमिका का निम्न उद्धरण इस विषय पर बहुत प्रकाश डालता है:-

"जैनियों के ग्रन्थों में लाखों पुनरुक्त दोष हैं। और इन का यह भी स्वभाव है कि जो अपना ग्रन्थ दूसरे मत वाले के हाथ में हो वा छपा हो तो कोई कोई उस ग्रन्थ को अप्रमाण कहते हैं। यह बा[illegible]न उन की मिथ्या है क्योंकि जिस को कोई मानें कोई नहीं इस से वह ग्रन्थ जैन मत से बाहर नहीं हो सकता। हां! जिस को कोई न माने और न कभी किसी जैनी ने माना हो तब तो अग्राह्य हो सकता है परन्तु ऐसा कोई भी ग्रन्थ नहीं है जिस को कोई भी जैनी न मानता हो इस लिये जो जिस ग्रन्थ को मानता होगा उस ग्रन्थस्थ विषय का खण्डन मण्डन भी उसी के लिये समझा जाता है।

स्वामी जी के इस कथन से स्पष्ट है कि उनके कथन का आधार पर्याप्त गहरा था। महात्मा जी ने लिखा है कि इन धर्मों को सरसरी नजर से देखने वाला भी समझ सकता है कि स्वामी जी ने गलतियें की हैं। हमारी सम्मति में तो सरसरी नजर से धर्मों का अध्ययन करने वाला ही ऐसा कथन कर सकता है। महात्मा जी ने सम्भवतः इन धर्मों का सरसरी नज़र से ही अध्ययन किया है। गहराई तक पैठने के लिये सरसरी नज़रों से काम नहीं चल सकता। ऋषि दयानन्द ने तो इन मतों को समझ कर ही उन पर अपनी सम्मति दी है परन्तु महात्मा गान्धी ने 'स-र-स-री न-ज़-र' से अधिक काम लिया है।

इसी सरसरी नज़र का परिणाम है कि महात्मा जी कह उठे-हिन्दु धर्म में इतर मतावलम्बियों को स्वीकार करने की प्रथा प्रचलित न थी। यह कार्य आर्यसमाजियों ने ईसाइयों तथा मुसलमानों से सीखा।

महात्मा जी को मालूम होना चाहिये कि [illegible] कई शताब्दी पहिले भारत-वर्ष में बुद्ध भगवान् ने शुद्धि की प्रथा को पुनरुज्जीवित किया था। हिन्दु-धर्म को शुद्धि-शून्य कहना उसे 'संकुचित' बनाने का प्रयत्न करना है। स्वामी जी का दोष दर्शाने के लिये चले थे-स्वामी जी ने तो वह गल्ती नहीं की-महात्मा जी खुद वही गल्ती कर बैठे। हिन्दु-धर्म में शुद्धि की प्रथा बहुत देर से जारी थी। बौद्ध-प्रचारक भारतवर्ष तक परिमित नहीं रहे। सीरिया, एबीसीनिया, चीन, जापान आदि अनेक देशों में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए बौद्ध लोग संसार भर में भ्रमण करते रहे। ईसाइयों का *Conversion* बौद्धों के अभिषेक से लिया हुआ है। दोनों के यहां जल के छींटे देकर शुद्ध किया जाता है। सारे संस्कार में हिन्दुत्व की बू आती है। शुद्धि करना बौद्धों से ईसाइयों ने सीखा, ईसाइयों से आर्यसमाजियों ने नहीं।

बुद्ध भगवान् के अनन्तर शङ्करा-

चार्य ने यज्ञोपवीत तथा शिक्षा दे कर अनेकों को शुद्ध किया। शङ्कराचार्य की शङ्ख ध्वनि जिन २ के कर्ण-कुहरों में पड़ी वे सब शुद्ध समझ लिये गये। श्री माध्वाचार्य ने अनेक नीच जाति के लोगों को 'ब्राह्मण' बना दिया। भविष्य पुराण में लिखा है कि सरस्वती की आज्ञा से कण्व ने मिसर के दस हज़ार म्लेच्छों को आर्य बनाया। हमें समझ नहीं आता कि ऐसे प्रबल प्रमाणों के उपस्थित रहते हुए महात्मा गान्धी अपनी सम्मतियें किस आधार पर प्रकाशित किया करते हैं।

आर्य-समाज

महात्मा गान्धी के सन्मुख 'हिन्दु मुस्लिम एकता' का प्रश्न है। वे समझते हैं कि इस अनैक्य का कारण शुद्धि का आन्दोलन है-इसी लिये शुद्धि विषयक आन्दोलन का रोक देना परमावश्यक है। परन्तु जब तक आर्य समाज के दम में दम है तब तक शुद्धि का आन्दोलन कैसे रुक सकता है। अन्ततोगत्वा आर्य-समाज को कोसना आवश्यक सा ही उन्हें प्रतीत होने लगा। जब तक आर्य-समाज शुद्धि के कार्य को बन्द कर अलग नहीं हो जाता तब तक हिन्दु-मुस्लिम एकता भी नहीं हो सकती।

परन्तु इस विचार में कहां तक सत्यता है? क्या शुद्धि का कार्य छोड़ देने से हिन्दु-मुसल्मानों में एकता हो सकती है?—कभी नहीं। महात्मा गान्धी ने स्वयं लिखा है कि जब तक हिन्दु कमज़ोर हैं तब तक एकता की आशा करना मूर्खता है। बस, आर्य समाज पचास साल से यही चिल्ला रहा है। आर्य-समाज ने हिन्दुओं को दृढ़ बनाने का जितना प्रयत्न किया है उतना शायद ही कोई कर सका हो। दूसरे की बुराई के प्रतिपादन को अथवा उस की आलोचना को शायद महात्मा गान्धी स्वयं बुरा नहीं समझते। समझते होते तो प्रकरणाप्रकरण का तनिक भी ध्यान न धर वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने या न होने की बहस हिन्दु-मुसल्मानों के झगड़े पर लिखते हुए न छेड़ते। आलोचना करना बुरा नहीं है। महात्मा गान्धी सरकार की कड़ी से कड़ी आलोचना करते हैं। जहां दोष हों उन की आलोचना करना आवश्यक ही है। हां, हम इस बात को स्वीकार करने के लिये तय्यार हैं कि आलोचना प्रेम से होनी चाहिये-गाली गलौज का उस में समाविष्ट हो जाना सभ्यता के विरुद्ध है। परन्तु क्या महात्मा गान्धी दावे से कह सकते हैं कि आर्य समाजियों में अधिकांश संख्या अनियन्त्रित भाषण करने वालों की है? जहां तक हमें आर्य समाज के कार्य कर्ताओं के विषय में परिचय है हम कह सकते हैं कि उन में अनर्गल तथा भड़काने वाला भाषण करने वाले बहुत ही स्वल्प संख्या में हैं। वे आर्य समाज के प्रतिनिधि नहीं कहे जा सकते और ना ही उन के आधार पर आर्य समाज को बुरा भला कहा जा सकता है। क्या महात्मा गान्धी के अनुयायियों ने ही चौरा चारी में ज्यादतियां नहीं कीं। परन्तु क्या उन के कारण महात्मा जी

को दोषी ठहराया जा सकता है ?

आर्य समाज जो कुछ कर रही है वह सार्व-भौम-धर्म का विस्तार करने के हेतु ही कर रही है-उस कार्य में किसी का जी दुखाने की इच्छा नहीं। हां, नामर्दों किसी की खुशामद आर्य समाज से नहीं होती। सत्य का प्रचार तथा असत्य का समूलोन्मूलन आर्य समाज का ध्येय है। इस कार्य में यदि किसी को दुःख पहुंचता है तो आर्य समाज को भी दुःख पहुंचता है-परन्तु वैद्य का कार्य तो दवाई देकर रोग का इलाज करना ही है। हिन्दु-धर्म के अनेक रोगों का आर्य समाज इलाज कर चुका है और अब रोगी दिनों दिन चंगा होता चला जा रहा है।

महात्मा जी का कहना है कि आर्य समाजी बड़े झगड़ालू होते हैं, या दूसरों के साथ लड़ते रहते हैं या अपने साथ लड़ना प्रारम्भ कर देते हैं। हमें सन्देह है कि शायद महात्मा गान्धी मनुष्य मात्र को भ्रम से 'आर्य समाजी' समझने लग गये हैं! झगड़े तो हर जगह हैं। हरेक आदमी झगड़े करता है। हम ने तो कम से कम ऐसा कोई आदमी नहीं देखा जो झगड़ता न हो। महात्मा गान्धी शायद वर्तमान युग के सब से बड़े झगड़ालू हैं। खुद ही नहीं झगड़ते-सारे भारत को झगड़े में डाले हुए हैं! स्वराज्य पार्टी में झगड़े हैं, महात्मा जी की पार्टी में झगड़े हैं। ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में झगड़े हैं-झगड़ने वाली पार्टियों में झगड़े हैं-जीवन के साथ झगड़े का नित्य सम्बन्ध है।

आर्य समाज पर महात्मा जी ने एक भयंकर तथा अनर्थकारी आक्षेप किया है। वे कहते हैं कि उन्हें बताया गया है कि मुसल्मानों की तरह आर्य समाजी भी लड़कियों को भगाकर उन्हें शुद्ध किया करते हैं। महात्मा जी! यहां तो आप ने हद कर दी। हम यह भलीभान्ति समझते हैं कि आप ने आर्य-समाज पर कोई सीधा अथवा खुल्लम खुल्ला आक्षेप नहीं किया। यह तो आप का सौजन्य है। परन्तु आप ने इस वाक्य में जो कुछ भी लिख दिया है क्या उस के सम्भ-नीय परिणाम पर भी आप ने विचार किया? मुसल्मानों के विषय में तो ऐसी बातें सदा से कही जाती थीं आर्य समाजियों के विषय में मुसल्मानों के अतिरिक्त ऐसी बात अभी तक किसी ने अपने मुख से नहीं निकाली। एक तो यह कहने वाले मुसल्मान थे, अब दूसरे हैं आप! यदि आप ने ऐसा सुना था तो उसे इस प्रकार पूरा २ अनुसन्धान किये बिना छाप देना उत्तरदायित्व को समझने वाले सम्पादक के लिये शोभा नहीं देता। शब्द कठोर हैं- क्षमा करना। हमारे हृदय में आप के प्रति जितनी भक्ति है उतनी अन्य किसी के प्रति शायद ही हो। भक्ति के आवेश में ही आप से ये शिकायतें हैं! हम आप के प्रेम-पूर्ण हृदय को दिनों दिन अधिकाधिक समझते जाते हैं-इसीलिये तब आप से कठोर शब्दों का प्रयोग करते हुए भी नहीं हिचकिचाते।

सत्यार्थ--प्रकाश

महात्मा गांधी लिखते हैं कि आर्य समाजियों की इञ्जील 'सत्यार्थप्रकाश' के अध्ययन करने का उन्हें जेल में अवसर प्राप्त हुआ। ऋषि दयानन्द जैसे उच्च-कोटि के सुधारक ने इस पुस्तक को रच कर महात्मा जी को निराश कर दिया। महात्मा जी की सम्मति में आर्यसमाज की वर्तमान उन्नति सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं के कारण नहीं अपि तु स्वामी दयानन्द के उच्च आचार के कारण है।

हमें यह लिखते हुए दुःख होता है कि महात्मा जी ने आर्य समाज के सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न न करके उन पर सम्मति देने की जल्दी की है। आर्यसमाज से साधारण सी भी परिचिति रखने वाले को मालुम होना चाहिये कि आर्यसमाज की इञ्जील सत्यार्थप्रकाश नहीं अपितु वेद है।

सत्यार्थ-प्रकाश से महात्मा जी निराश हैं। होंगे! परन्तु उसी सत्यार्थ प्रकाश का मनन करने वाले दिवंगत पण्डित गुरुदत्त विद्यार्थी उस की एक एक पंक्ति पर मस्त हो जाते थे। पण्डित जी का कहना था कि उन्हों ने जितनी बार सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन किया उतनी ही बार उन्हें ऋषि की अगाध विद्या के समुद्र में से नवीन रत्न प्राप्त हुए। पढ़ने पर भी बहुत कुछ निर्भर होता है। पं० गुरुदत्त जी ने १४-१५ बार सत्यार्थ-प्रकाश का अध्ययन किया था।

महात्मा गांधी कौन्ट टालस्टाय को अपना गुरु मानते हैं। महात्मा जी के पास जेल में तीन सत्यार्थ प्रकाश भेजे गये थे—महात्मा जी के गुरु के पास भी समाजी भाइयों ने सत्यार्थ-प्रकाश भेज दिया था। वानप्रस्थ प्रकरण के रहस्यमय वर्णन को पढ़कर कौंट टालस्टाय सोचने लगे—'मैं घर क्यों बैठा हूं?' इन्हीं विचारों में निमग्न रूस के ऋषि घर से निकल गये और इसी आशय का एक पत्र 'वैदिक मैगज़ीन' के सम्पादक महोदय के नाम भेजा जो कि उस समय उक्त पत्र में प्रकाशित कर दिया गया था। आश्चर्य है कि जिस पुस्तक का प्रभाव गुरु पर आशातीत हुआ उसी पुस्तक को शिष्य ने निकम्मा कह कर एक तरफ़ कर दिया।

महात्मा गांधी के इस कथन से हम अक्षरशः सहमत हैं कि आर्यसमाज की जागृति का कारण सत्यार्थ-प्रकाश इतना नहीं जितना ऋषि का उच्च आचार है। परन्तु क्या हम विनय-पूर्वक पूछने का साहस कर सकते हैं कि किस धर्म में यह बात नही घटती? ईसाइयों की उन्नति तथा जागृति का कारण ईसामसीह का जीवन है—इञ्जील नहीं। मुसलमानों की बढ़ता का मुख्य हेतु मुहम्मद का अत्याचारों को सहन करने वाला जीवन है—कुरान नहीं। बौद्धों के संसार में व्याप्त होने में सहायक बुद्ध भगवान् का तपोमय पवित्र जीवन है-त्रिपिटक नहीं! धर्म के क्षेत्र में जिधर भी दृष्टि उठायें—उस की बढ़ती, जागृति तथा उन्नति का कारण उन २ धर्मों के प्रव-

लेकों का जीवन ही है—उन की लिखी धर्म-पुस्तकें नहीं। न जाने महात्मा जी को ऋषि दयानन्द पर आक्षेप करने का यह कौन सा तरीका सूझा। क्या इसी कारण बायबल, कुरान तथा त्रिपिटकों की निन्दा नहीं की जा सकती? महात्माओं के लेख की अपेक्षा उनके जीवन का सदा ही अधिक प्रभाव हुआ करता है—इस में किसे सन्देह हो सकता है महात्मा जी जब जेल चले गये थे तब 'यङ्ग इण्डिया' की जिल्दें वह कार्य न कर सकीं जो वे स्वयं कर गये।

स्वामी श्रद्धानन्द जी

महर्षि दयानन्द के अनन्तर यदि आर्यसमाज के नेताओं पर नज़र उठाई जाय तो स्वभावतः दृष्टि स्वामी श्रद्धानन्द जी पर जा पड़ती है। महर्षि के सिद्धान्तों को क्रियात्मक रूप देने का गौरव आर्यसामाजिक जगत् में जितना स्वामी जी को प्राप्त है उतना अन्य को नहीं। स्वामी श्रद्धानन्द जी के कार्य का—उनकी एक २ गति का यही मूल मन्त्र है। ऋषि दयानन्द ने 'कहा' स्वामी श्रद्धानन्द ने 'किया'। इस दृष्टि से देखने से स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन के रहस्य एक दम खुल जाते हैं।

महात्मा जी ने स्वामी जी को जल्दबाज़ तथा जोशीला कहा है। महात्मा जी ने यह भी लिखा है कि वे स्वामी जी को देर से जानते हैं और दिनोंदिन अधिक जानते जाते हैं। हम इस विषय में अधिक क्या कहें? हमारे लिये दोनों ही पूज्य व्यक्ति हैं। परन्तु क्या हम इतना कह देने का साहस कर सकते हैं कि हम स्वामी श्रद्धानन्द जी को १५ वर्ष से जानते हैं—उन के साथ निकटतम सम्बन्ध में रह चुके हैं। स्वामी जी के साथ सहवास से यदि हम पर कोई असर हुआ तो यही कि उन पर ऋषि दयानन्द के कार्य को क्रियात्मक रूप देने की धुन सवार है। वे सपने लेने वाले नहीं। 'कार्य' का नाम सुनते ही उनके 'हाथ' हिलने लगते हैं। कार्य करने में ही उनका शरीर स्वस्थ रह सकता है। हम तो जब स्वामी जी के रुग्ण होने का समाचार सुनते हैं, सहज कल्पना कर लेते हैं कि अब स्वामी जी खाली हैं। ऋषि दयानन्द के सपनों को शरीरधारी बनाने के लिए स्वामी श्रद्धानन्द जी अनवरत उद्योग करते रहे हैं। 'ब्रह्मचर्य' का शब्द भिन्न २ रूप धारण कर उनके वाक्यों में आ टपकता है। 'दलितोद्धार' के कार्य के साथ पच्चीस वर्ष पहले से उन का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। जालन्धर में आर्यसमाज के प्रधान की हैसीयत से पच्चीस साल पहले उन्होंने सैंकड़ों रहतियों की शुद्धि कराई—बिरादरी के अत्याचार सहे—मैदान में डटे रहे। 'वर्ण-व्यवस्था' का सुधार होना चाहिये, इस ध्येय को सन्मुख रख सब से प्रथम कृत्रिम जातपात को तिलाञ्जलि देने का उन्हीं ने श्रीगणेश किया। स्वामी श्रद्धानन्द जी के जीवन को यदि जल्दबाजी का जीवन कहा जा सकता है तो शायद भारत वर्ष भर में धैर्यशाली व्यक्ति ढूंढने से भी न मिलेगा।

स्वामी जी ने कांग्रेस को पवित्र-जीवन का प्रचार करते देखा—वे उस

में भाग लेने लगे। अमृतसर में स्वागत-कारिणी के सभापति की हैसीयत से उन्होंने जो भाषण दिया उस में इस बात को स्पष्ट कर दिया। कांग्रेस के प्लेट फार्म पर खड़े हो कर 'ब्रह्मचर्य' 'सच्चरित्रता, तथा पवित्रता के गीत स्वामी श्रद्धानन्द ने गाये। कांग्रेस में स्वामी जी ने सब से प्रथम 'अछूतोद्धार' का प्रस्ताव रक्खा। जब तक 'कांग्रेस' से आशा थी—साथ रहे। कांग्रेस को अपने लक्ष्य में सहायता देते न देख स्वतन्त्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। स्वामी जी ने शुद्धि, अछूतोद्धार, वर्ण-सुधार तथा ब्रह्मचर्य की प्रथा का पुनरुज्जीवन—सब आन्दोलन किये। कहनेवाले कहते हैं कि स्वामी जी जल्दबाज़ी करते हैं—परन्तु देखने वाले देखते हैं कि स्वामी जी एक ही उद्देश्य से अपने कार्य में आगे बढ़ते चले आ रहे हैं। उनका उद्देश्य पूरा होना चाहिए—ऋषि का मिशन कामयाब होना चाहिए—बहुत देर तक सपने लेते रहने से कार्य नहीं चल सकता। जल्दबाज़ी ? ओह! क्या २२ वर्ष का गुरुकुल का कार्य जल्दबाज़ी का नमूना है ? क्या वर्तमान हिन्दु-जगत् में उत्पन्न हुई जागृति जल्द-बाज़ी का नमूना है ? क्या अछूतों का अपनी स्थिति को समझने लग जाना जल्द बाज़ी का नमूना है ?

हम किसी पर आक्षेप नहीं करना चाहते। हमारे लिए सब एक समान पूज्य हैं। जो मनुष्य है उस में मनुष्य होने के कारण कमी भी अवश्य है। दोष किस में नहीं? जल्दबाज़ी किस में नहीं ? गुस्सा किस में नहीं ? किसी व्यक्ति को भलीभान्ति तभी समझा जा सकता है जब कि उस के जीवन की सब घटनाओं से हम परिचित हों। हम महात्मा गान्धी से यही प्रार्थना कर सकते हैं कि वे स्वामी श्रद्धानन्द जी को अधिक समझने का प्रयत्न करें। परन्तु एक बात का ध्यान रहे। महात्मा जी स्वामी श्रद्धानन्द जी को तभी भली भान्ति समझ सकेंगे जब वे ऋषि दयानन्द के सिद्धान्तों तथा आर्य समाज के कार्य-क्रम को सहानुभूति-पूर्वक समझने का प्रयत्न करेंगे। स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में ऋषि दयानन्द ने प्राण फूंका हुआ है।

—:o:—

अलंकार पत्र क्यों निकाला गया !

(ले०—श्री पं० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालिरत्न, मन्त्री स्नातकमण्डल)

स्नातक मण्डल को स्थापित हुए लग भग १०½ वर्ष व्यतीत हो गये। १९७० विक्रमी के फाल्गुन मास में इस मण्डल की स्थापना हुई थी। मण्डल के उद्देश्यों में एक मुख्य उद्देश्य यह था कि गुरुकुलोन्नति के साधनों पर विचार करना, और उन्हें कार्य में परिणत करने का प्रयत्न करना। फिर ६ वैशाख १९७६ तदनुसार १८ एप्रिल १९१९ के अधिवेशन में

वर्ष २, अङ्क १] मास, आषाढ़ [पूर्ण संख्या १३

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळने त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५

"तद्दूरे तदु अन्तिके"

(श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

दूर से दूर, पास से पास।
बाहर भीतर, जगह जगह पर, हे प्रभु! है तेरा ही वास॥
दृग में अंजन रूप, निरंजन! मन में रहता है भय-भंजन।
प्रातः सायं क्षितिज तटी में, होता है तेरा आभास॥
खिली लता के फूल फूल में, तरल नदी के कूल कूल में।
कोमल शीतल मलयानिल में, करता है तू ही उल्लास॥
उषा-दुलारे ओस कणों में, निशा कुसुम नक्षत्र गणों में।
नव शिशु के निष्पाप अधर में, दिखता है तेरा मृदु हास॥
तुहिनाचल के तुहिन पटल में, अतल जलधि जल मुक्ताफल में।
प्रकृति नटी के रूप रूप में, तेरा है स्वच्छन्द विलास॥

'मनु' तथा 'इन्द्र'

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

प्रत्येक भारतीय ने 'मनु' महाराज का नाम कई बार सुना है । उन्हीं के नाम से 'मनुस्मृति' नामक ग्रन्थ प्रसिद्ध है जिस में वैयक्तिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक नियमों का विधान है। प्रायः यह समझा जाता है कि मनु महाराज कोई एक व्यक्ति हुए हैं जिन्होंने भारत में शासन के नियमों का निर्माण कर अव्यवस्था को दूर किया। प्रकरण प्राप्त न होने के कारण हम यहां पर इस विषय की आलोचना नहीं करना चाहते । हमारा मत यह है कि मनु नाम से कोई एक ही व्यक्ति हुए हों, ऐसा नहीं है । व्यास,-गद्दी का नाम पड़ गया, शंकराचार्य भी गद्दी का नाम ही है, इसी प्रकार 'मनु' शब्द भी एक गद्दी के लिए प्रयुक्त होता रहा है। मनु शब्द की व्युत्पत्ति 'मन्' धातु से होती है। संस्कृत में इस शब्द का अर्थ मनन करना, नियम बनाना अथवा legislate करना है। मनु शब्द का धात्वर्थ ही नियामक अथवा legislator है । इन अर्थों में मनुस्मृति उस ग्रन्थ का नाम है जिस में भारत के प्रसिद्ध मनुओं के बनाए हुए नियमों का संग्रह हो। मनु जो कोई भी बन सकता था,परन्तु ऐसा बनने के लिए देश देशान्तरों के शासन सम्बन्धी नियमों का तुलनात्मक अध्ययन करने की योग्यता अपेक्षित होती थी। जिस व्यक्ति में इतनी योग्यता पायी जाती थी उसी को 'मनु' अर्थात् legislator की पदवी से विभूषित किया जाता था और उस के निर्दिष्ट किए हुए नियमों पर यथावत् विवेचन करके उनका समाज में प्रयोग प्रारम्भ हो जाता था । जिस प्रकार ईजिप्ट के राजाओं को फैरोहा कहा करते थे, पारसियों के शक्तिशाली राजाओं को क्सरसीज़ कहते थे, हिन्दुओं में शस्त्र से देश-रक्षा तथा देश-विस्तार करने वालों को क्षत्रिय नाम से पुकारते थे, इसी प्रकार नियमों के निर्माण में प्रचुर गति रखने वाले विद्वानों को मनु कहा करते थे।

ईजिप्शियन, यहूदी तथा ग्रीक हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। ईजिप्ट को शासन के नियम देने वाला मेनीज़ [Manes] था, जो कि मनु के अतिरिक्त दूसरा कोई न था। हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि भारतवर्ष से मनु महाराज ही ईजिप्ट चले गये थे। अभिप्राय इतना ही है कि भारतवर्ष में नियमों की रचना करने वाले को 'मनु' कहा जाता था, इस लिये ईजिप्शियन लोगों ने भी अपने देश में शासन की व्यवस्था करने वाले को 'मेनीज' नाम देना पसन्द किया। यहूदियों में नियमों का विधान करने वाला (law-giver) 'मूसा' (Moses) है । बाइबल के पुराणे अहदनामे के अनुसार 'मूसा' ही परमात्मा (जिहोवा) के पास जाकर दस आज्ञाओं [Ten Commandments] को लाया था। यहूदियों ने भी अपने

नियमों के उपदेष्टा को मनु का ही नाम दिया जो कि उन की भाषा में 'मूसा' के रूप में प्रचलित हुआ। ग्रीक लोगों का नियम-प्रवर्तक माइनोस [Minos] कहाता है । ग्रीक इतिहास के अनुसार 'माइनोस' पूर्व की तरफ़ से क्रीट शहर में आ कर रहने लगा । उसकी विद्वत्ता से प्रभावित हो कर शहर के निवासियों ने उस से नियन्त्रण के नियम बना देने का अनुरोध किया । इस अनुरोध को देख कर उसने उन से कुछ मोहलत मांगो और यात्रा करता हुआ ईजिप्ट जा निकला । ईजिप्ट में जा कर उस ने उस देश के नियमों का खब बारीकी से अध्ययन किया। ईजिप्ट से लौट कर वह एशिया, पर्शिया होता हुआ सिन्धु नदी के तटों पर भ्रमण करता रहा। इतने लम्बे चौड़े पर्यटन के अनन्तर वह फिर क्रीट को लौट कर चला गया जहां जा कर उसने देश के लिये नियमों की रचना की। उन नियमों को सारे ग्रीस ने स्वीकार कर लिया। इन घटनाओं को पढ़ते हुए विद्यार्थी के हृदय में तरह २ के भाव उठते हैं। ग्रीस का वह विद्वान् ईजिप्ट के शासकों से मिलता हुआ भारत में पहुंचा। हो न हो, अवश्य ईजिप्ट के धुरन्धर पण्डितों ने उसे अपने पाण्डित्य को पूर्ण करने के लिये विद्या की खान भारतवर्ष की तरफ़ संकेत किया होगा। इसी लिये तो वह महानुभाव एशिया को पार कर सिन्धु के किनारों की खाक छानता रहा। जब सब देशों में भ्रमण कर देश को नियन्त्रण में रखने वाले नियमों का उस ने तुलनात्मक अध्ययन कर के उन्हें ग्रीस की प्रजा के सन्मुख रखा होगा तब उस प्रजा ने भी स्वाभाविक तौर से उसे मनु (Minos) की पदवी से विभूषित किया होगा।

इस प्रकार समझ आ जाता है कि हिन्दुओं को 'मनुः' ईजिप्शियनों का 'मेनीज़', ग्रीक लोगों का 'माइनोस' तथा यहूदियों का 'मोज़ेज़'—चारों के चारों एक ही मनु शब्द के अपभ्रंश हैं और उन २ देशों में व्यवस्था के नियम बनाने वाले भिन्न २ व्यक्तियों के लिये प्रयुक्त होते रहे हैं । 'मेनीज़' 'माइनोस'-और 'मोज़ेज़' ये नाम बचपन से हो नहीं रखे गये थे परन्तु जब वे २ व्यक्ति नियमों के निर्माता बने तब भारत वर्ष की प्रचलित प्रथा के अनुसार उन का नाम मनु या [Legislator] रखा गया।

जिस प्रकार 'मनु' का नाम भिन्न २ रूप धारण कर संसार की समुन्नत सभ्यताओं का शासन करता रहा है इसी प्रकार 'इन्द्र' देवता का विचार भी प्रायः सभी पुराने धर्मों में पाया जाता है। दूसरे धर्मों में इन्द्र का स्थान समझने के लिये हमें भारतीय देवमाला में इन्द्र का स्वरूप समझ लेना चाहिये । संस्कृत में इन्द्र के लिये 'द्यौः'-'दिवस्पितर'-'इन्द्र'-'वज्री' आदि शब्द पाये जाते हैं। पुराणों ने इन्द्र को स्वर्ग का अधिपति बतलाया है—वह स्वर्ग का राजा है, देवताओं में बहुत ऊंचे स्थान का अधिकारी है। इन्द्र के कब्ज़े में बहुत सी अप्सरायें भी हैं। साधु, सत्पुरुषों का व्रत-भङ्ग

करने के लिये इन्द्र उन का दुरुपयोग करता ही रहता है। द्युलोक में उस का निवास-स्थान है। वह बिजुली की कड़क में कभी २ अपने उग्र-रूप की झांकियां दिखलाया करता है।

'द्यौः' की विसर्गों को यदि 'स्' कर दिया जाय तो 'द्यौः' शब्द का रूप 'द्यौस्' हो जाता है। 'द्यौस्' का अपभ्रंश 'द्युस्'-'दिउस्' होना कठिन नहीं है। 'दिउस्' बन कर ग्रीस में यही देवता 'ज़िउस' [Zeus] बन गया और पुजने लगा। ग्रीक-शब्द-शास्त्र के अनुसार [Zeus] शब्द की व्युत्पत्ति [Dies] से होती है अतः यह मानने में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि ग्रीक लोगों का सब से मुख्य देवता 'ज़ीयस' वैदिक 'द्यौस्' का ही अपभ्रंश है। ग्रीक लोगों को छोड़ दें, रोमन लोगों के यहां भी इन्द्र देवता की पूजा होती दिखाई देती है। रोम का मुख्य देवता 'जुपिटर' [Jupiter] था। यह 'जुपिटर'-'द्युपितर'-'दिवस्पितर' नहीं तो और क्या है? इन्द्र देवता ही 'ज़ीयस' नाम से ग्रीस में तथा 'जुपिटर' नाम से रोम में पूजा जाता था, इस में क्या अब कुछ भी सन्देह रह जाता है? इन सब शब्दों की परस्पर समता विलक्षण है, उसे देख कर किसी भी ढंग से उसे आकस्मिक नहीं कहा जा सकता। इस के अतिरिक्त इन भिन्न २ देवताओं को सन्मान भी तो इन्द्र का सा ही दिया गया है! इन सब से काम भी वही कराये गये हैं। रोम के प्रसिद्ध कवि ओविड ने जुपिटर को देवताओं में मुख्य दर्शाया है। सारी देव-मण्डली उसे अपना मूर्धन्य मानती है। जुपिटर बारम्बार बिजली की सी गर्जन करता है,—स्मरण रहे कि इन्द्र भी वज्री है—'वज्र' अर्थात् 'विद्युत्' के शस्त्र को धारण कर नभोमण्डल में हृदय को कंपा देने वाले घनघोरनाद को किया करता है। ओविड ने जुपिटर को आचार में भी शिथिल दिखाया है। जब हम स्मरण करते हैं कि इन्द्र के दरबार में भी अप्सराओं की भरमार रहा करती थी, वह दूसरों के आचारों को गिराने के लिये प्राणपन से प्रयत्न किया करता था और साथ ही स्वयं भी कई बार आचार भ्रष्टता के गढ़ों में गिरा करता था तब तो हमें इस बात में ज़रा भी सन्देह नहीं रहता कि हो न हो, यह जुपिटर पुराणों के इन्द्र देवता के अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है।

ग्रीकों का 'ज़ीयस' रोमनों का 'जुपिटर' हिन्दुओं के इन्द्र' देवता के ही दूसरे नाम हैं। इन के अतिरिक्त यहूदियों का जिहोवा 'Jehovah' भी 'द्यौः' का ही अपभ्रंश मालूम पड़ता है। जिस प्रकार 'द्यौः' का अपभ्रंश 'ज़ीयस' हो सकता है इसी प्रकार 'जिहोवा' भी हो सकता है- शब्द समानता तो इस कल्पना में समर्थक है ही परन्तु जिहोवा का वर्णन भी उसे हिन्दुओं के द्यौः' [इन्द्र] का ही अपभ्रंश सिद्ध करता है। यहूदियों के पुराणे अहकनामे [Old Testament] में जिहोवा का वर्णन बादल, आग और बिजली के रूप में पाया जाता है। पुराणा—अहकनामा इस विषय में तो कम से कम बड़ी परिपुष्ट सम्मति देता है कि जिहोवा कोई भी हो—वह 'वैदिक-देवता' तो अवश्य था। बाइबल की [Exodus]

पुस्तक के तीसरे अध्याय की चौथी आयत में जिहोवा मूसा को सम्बोधन कर के कहता है कि मेरा नाम–'I Am That I Am' या 'I Am' है। इस के लिये जिन शब्दों का प्रयोग है वे ध्यान देने योग्य हैं। वे शब्द हैं–Ehyeh ashar ehyeh, अयः अशर अयः। पारसियों की ज़िन्दावस्था में परमात्मा अपने बीस नाम गिनाता हुआ प्रथम नाम 'अह्मि' गिना कर आगे चल कर 'अह्मि यद् अह्मि' यह नाम गिनाता है। पारसी साहित्य से परिचिति रखने वाले पाठकों को विदित होगा कि संस्कृत का 'स'–ज़िन्द भाषा में जा कर 'ह' बन जाता है। इस प्रकार 'अह्मि यद् अह्मि' का रूप– अस्मि यद् अस्मि'–यह बनता है। यह नाम ही यहूदियों के यहां उस रूप में पाया जाता है जिस का हमने ऊपर उल्लेख किया परन्तु प्रारम्भ में यह यजुर्वेद से लिया गया! यजुर्वेद के २ रे अध्याय का २८ वां मत्र है, "इदमहं य एवास्मि सोऽस्म"। क्या यह वेदमन्त्र और पारसियों का 'अह्मि यद् ह्मि' एक ही नहीं है? यदि एक ही है तो मानना पड़ता है कि पारसियों तथा यहूदियों ने इसी मंत्र के आधार पर अपने देवता का नाम 'अह्म यद्ह्मि'—I Am That I Am रखा। कम से कम इस में सन्देह नहीं रह जाता कि यहूदियों का 'जिहोवा' कोई न कोई वैदिक देवता था। जो कुछ हम ऊपर लिख आये हैं उसके आधार पर हम यह कहने का साहस करते है कि वह देवता इन्द्र ही था। इन्द्र ही का 'द्यौः' नाम ग्रीकों के यहां 'ज़ीयस' पड़ा, इन्द्र ही का 'दिवस्पितर' नाम रोमनों के यहां 'जुपिटर' पड़ा और इन्द्र का 'द्यौः' नाम ही यहूदियों में जा कर 'जिहोवा' पड़ गया।

सभ्यता और शिक्षणालय

[भूमिका]

(ले० पं० भीमसेन जी विद्यालंकार)

'अलंकार' के पिछले अंकों में हम ने सभ्यताओं की परख विषय पर कुछ विचार प्रकट किये थे। उन लेखों में यह बताया गया था कि सभ्यता का उच्च से उच्च आदर्श क्या है? उस लेखमाला में यह स्पष्ट किया गया था कि उच्च सभ्यता का निर्णायक सिद्धान्त यही है कि मनुष्य दूसरे मनुष्य को अपना समझे। किसी दूसरे मनुष्य को घृणित न समझे। कौटिल्य अर्थ शास्त्र या भारतीय साहित्य की परिभाषा में 'आर्य' व 'सभ्य' आदमी वह है जो दूसरे को अपने समान समझे। 'आर्यः यः स्वमिव परं पश्यति'।

इस लेख माला में हम यह दिखाएंगे कि सभ्यताओं का विकास किस

प्रकार होता है । सभ्यताओं का विकास दो संस्थाओं से होता है । प्रथम जाति या राष्ट्र के 'परिवारगृह' । दूसरा जाति या राष्ट्र की 'पाठशालाएं' । कई विद्वान् विचारकों की दृष्टि में, किसी भी सभ्यता के स्वरूप को समझने के लिए उस जाति के 'साहित्य' का अनुशीलन करना ही एक मात्र उपाय है । निस्सन्देह किसी अंश तक जातियों तथा राष्ट्रों के साहित्य उस जाति की सभ्यता के प्रतिबिम्ब होते हैं; परन्तु यह चित्र, यह वर्णन लेखकों तथा कवियों के काल्पनिक विचारों से रंगे हुए होते हैं । इन पर पूरा भरोसा नहीं किया जा सकता । किसी भी सभ्यता की असली स्पिरिट तथा भावना को समझने के लिए हमें उस जाति के शिक्षणालयों तथा गृहपरिवारों के इतिहास का अनुशीलन करना चाहिए ।

'शिक्षणालय' और 'परिवारगृह' ही किसी राष्ट्र के विकास के अंकुर होते हैं । इन दो भिन्न २ संस्थाओं के कारण ही भिन्न २ देशों की सभ्यताएं भिन्न २ रूप में प्रकट होती हैं । शीत प्रधान देशों में 'परिवार गृहों' का निर्माण तथा संगठन जिस ढंग से या जिन अवस्थाओं में होगा, उष्ण प्रधान देशों मे यह विकास सर्वथा दूसरे ढंग से होगा । कई देशों में 'शिक्षणालयों' का निर्माण जंगलों में, नदियों के किनारे पर होगा, और कई देशों में महाद्वीपों और घाटियों से घिरे हुए स्थानों में 'परिवार गृह' और 'शिक्षणालय' स्थापित होंगे । इन भेदों के कारण कई देशों के रहने वाले, परिश्रमी और समुद्र यात्रा प्रेमी होंगे और कई जगह के लोग नैपाल वालों की तरह कठिन परिश्रमी होंगे । इन अवस्थाओं के कारण उन के मन और आत्मा का विकास भी भिन्न २ रूप में होगा । इस समय पाश्चात्य सभ्यता, पूर्वीय सभ्यता, प्राकृतिक सभ्यता और आध्यात्मिक सभ्यताओं के नाम से ही सभ्यताओं में भेद किया जाता है । इतना ही नहीं, कई विचारक अपनी २ भावना के अनुसार किसी एक सभ्यता को सब से उत्कृष्ट सिद्ध करने का यत्न करते हैं । इस समय हमारे देश में, विशेषतः आर्य समाज में, यह लहर चल गई है कि लोग पाश्चात्यसभ्यता और प्राकृतिक सभ्यता को समानार्थक समझते हैं और पाश्चात्य सभ्यता को प्राकृतिक सभ्यता का नाम देकर निन्दित बताते हैं । हमने जहां तक थोड़ा बहुत अध्ययन किया है हम इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि आजकल जिस सभ्यता को पाश्चात्य सभ्यता के नाम से याद किया जाता है वह किसी न किसी रूप में भारत

की सभ्यता भी रह चुकी है । महाभारत और अशोक तथा समुद्र गुप्त और हर्ष के समय की सभ्यताओं का जो इतिहास मिलता है उस से पता लगता है कि यहां भी लोग प्राकृतिक सभ्यता के वैभव तथा ऐश्वर्य का उपयोग करते थे । भेद ज़रूर था परन्तु वह भेद स्वाभाविक तथा अनिवार्य था । हमारी राय मे यदि हम वास्तव मे संसार की सभ्यताओं का अध्ययन या अनुशीलन करना चाहते है तो हमें चाहिये कि हम भिन्न २ देशों के 'शिक्षणालयों' तथा 'परिवारगृहों' का अध्ययन करे । हमारा विचार है कि हम इसी दृष्टि से इस लेख-माला मे संसार की सभ्यताओं का अध्ययन करें और पाठकों के सामने यह बात रखें कि यदि हम संसार मे उच्च से उच्च सभ्यता स्थापित करना चाहते है, संसार में शान्तिप्रधान तथा सर्वतोमुखी सभ्यता की स्थापना करना चाहते है तो हमें चाहिए कि अपने २ देश की शिक्षा प्रणाली और परिवार गृह संस्थाओं को देश की प्राकृतिक तथा आत्मिक अवस्थाओं के अनुकूल बनाएं* दूसरे दशों की सभ्यताओं की व्यर्थ में निन्दा न करें और नाही उनकी चमक दमक से चका चौंध होकर उनका अनुकरण करें । इस लेख माला में क्रमशः ग्रीस, रोम, मिश्र, असीरिया बैबिलोनिया, चीन, परशिया तथा भारतवर्ष की सभ्यताओं का इसी दृष्टि से विवेचन करेंगे । इस विवेचन मे तुलनात्मक दृष्टि से इन देशो की वर्तमान सभ्यता का उनकी प्राचीन सभ्यता से निरीक्षण होगा । सब से प्रथम हम अपने देश से ही इस का श्रीगणेश करेंगे क्योंकि ऐतिहासिक दृष्टि से भारतवर्ष की सभ्यता अन्य सब देशों से पुरानी है । यह ठीक है कि अभी तक पाश्चात्य ऐतिहासिक इस स्थापना को एक दम मानने को तय्यार नहीं है परन्तु यह भी निर्विवाद बात है कि वह आज तक इस स्थापना का खण्डन नहीं कर सके । इस बात पर सब सहमत है कि संसार के साहित्य में ऋग्वेद सब से पुराना ग्रन्थ है । इस लिए हम इस ऐतिहासिक परम्परा के अनुसार ही इस विषय में प्रवृत्त होंगे ।

---

* ऋषि दयानन्द इस युग में भारतीय सभ्यता के समर्थकों में शिरोमणि थे । परन्तु यह बात भी सब को मालूम है कि उन्होंने भारतीय सभ्यता को पुनः स्थापना या मण्डन करने के लिए पाश्चात्य सभ्यता या युरोपियन सभ्यता का खण्डन करने में अपना समय नहीं लगाया । उन्होंने कहीं यह नहीं लिखा कि यूरोपियन सभ्यता राक्षसों की सभ्यता है, युरोपियन सभ्यता में बुराइयां हैं उन्हें दूर करना चाहिए । ऋषि दयानन्द ने अपने व्याख्यानों में भारतीय सभ्यता को परिष्कृत करन पर बल दिया था उन्होंने पाश्चात्य सभ्यता या युरोपियन सभ्यता पर [Impeachment]दोषारोप नहीं किया ।

गम्भीरता !

(श्री पं० सत्यकाम जी विद्यालंकार)

इस विशाल-तम व्योम राशि पर
चढ़ी हुई है एक थकान,
अपने भार आप ही दब कर
हिमगिरि खड़ा उदास महान।
आँधी उठी, उठी,-थम चली
चढ़ी तरङ्गें, उतर चलीं,
फिर से वही थकावट जग के
अङ्ग अङ्ग में आन भरी॥

* * *

मैं तटस्थ था-दिल में मेरे
जोश उमङ्गें लेता था,
श्रोतृवृन्द! कह डालूं जो कुछ
तब मैं सुपने लेता था।
चण्ड बवण्डर उमड़ा आवे
मैं निश्चल ही खड़ा रहूं,
प्रबल वेग से उठें तरंगें
उन्हें चीरता बढ़ा चलूं॥

* * *

वह समक्ष था लक्ष्य दीखता
बहुत कठिन, पर क्या परवाह,
वहाँ पहुंच कर उथल पुथल कर
दूं, इस जग में थी यह चाह।
यही जोश ले आया था मैं
यहाँ और ही कुछ पाया,
वही थकावट का रँग सब पर
था वह मुझ पर भी छाया॥

तब से थका पड़ा था सहसा
गुप्त ज्ञान इक जान लिया,
गई थकावट सारी मेरी
जब से उस पर ध्यान दिया।
यहाँ जोश का काम नहीं है
ठण्डे हो कर चलना है,
उछल कूद का नाम नहीं है
पग पर पग धर बढ़ना है॥

* * *

जान हथेली पर रख कर क्या
नाज़ आप पर करना है,
जीना-मरना तुच्छ बात है
फिर फिर, जीना-मरना है।
देश-धर्म पर मरने वालो
हँस हँस कर मरना सीखो,
शौर्य दिखाना हो तो भाई
रो रो कर जीना सीखो॥

* * *

एक घड़ी भर दुःख भोग कर
मरना भी क्या मरना है,
जीवन भर को कठिन यातना
कठिन असल में सहना है।
थक कर दम ले, दम ले कर चल
गिर कर उठ जा, उठ कर फिर चल,
मर कर जीना, जी कर मरना
चक्र चला है यही-अचल॥

राष्ट्रीय एकता के होने में आजकल के कुछेक विघ्न

(ले० पं० आत्मानन्द जी विद्यालंकार)

हिन्दू मेलों को धैर्य से तटस्थ होकर देखने वाले भली भांति जानते हैं कि उन में मनुष्यों की चित्तमणियों के गूथन करने हारा कोई लक्ष्य-सूत्र नहीं होता। मेले में घूम रहे किसी से पूछा जाय—'भाई, यह कौन मेला है'? उत्तर मिलेगा—'बैशाखी का या बसन्त का या दसहरे का' इत्यादि। 'कर क्या रहे हो'? 'अजी सब घूम रहे है हम भी घूम रहे है'। ऐसे ही हमारे देश में स्वराज्य रूपी दूर तम लक्ष्य को बार बार पुकारते हुए भी इस की सिद्धि के उपायों में हमारी एक मति और एक यत्न सर्वथा नहीं। आकाश में बिखरे तारों की न्यांई हम भटक रहे हैं और हमारे शत्रु हंसते हैं।

मूलाच्चूल-एकता तो भगवान् ही जानें कब होगी। पर मूर्धन्य ऐक्य की सिद्धि तो सभी 'सर्वात्मना' चाहते हैं, चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान, पारसी हों सिक्ख हों ईसाई हों, नेता हो या जनता, सरकारी देसी लोग हों या ग़ैर सरकारी देसी लोग। स्वराज वादी, लिबरल, मुसलिमलीगर, खिलाफतिये, राजे, महाराजे, आर्यसमाजी, सनातनी, जमींदार, कृषक, कोठीदार, श्रमी, पंडित मौलवी, ये सभीजब जब अपने को रोग, दरिद्रता, दासता की बेड़ियों में अकड़ा हुआ देखते हैं कह उठतेहैं- "ओह! अभागा देश स्वतन्त्र नहीं इसो लिए ये क्लेश हैं, अपना राज हो तो देखो हम कैसे फलें फूलें"। पर प्रश्न होगा कि इष्ट सिद्धि में विघ्न कौन २ से हैं:—

१. देश का अतिविस्तार

२. सम्प्रदाय, भाषा, स्वभाव, दशा का अति वैविध्य

३. पिछली सात सदियों में देश की आंधी की सी हालत

४. सरकार का भाग्य और गूढ़ नीति

५. हमारा दौर्भाग्य और मूढ़नीति

ये तो सामान्य हैं, व्यापी हैं। दासता की सदियां इन्हीं में ओत—प्रोत पड़ी हैं पर हमें तो वर्तमान और विशेष विघ्न ढूंढने है। वे ये हैं:—

६. मुसलमानों का अतर्पणीय स्वार्थ और नीच भाव

७. लिबरलों के दिमागों और शरीरों पर बुढ़ापा

८. गांधी जी का हठ और मुसलमानों से मोह

९. नेताओं का अहङ्कार और लघुचित्तता

१०. श्री निवास शास्त्री का असाहस, और लाला जी की निर्बलता

११. समूची हिन्दू जाति की अकर्मण्यता और तेजोहीनता

पहले १, २,३, तो याप्य रोगों की न्याईं हैं, हम स्थूल बुद्धि पुरुषों को साध्य नहीं दीखते। अगले ४,५, शनैः २ दूर होंगे।

छटा तो बड़ा व्याकुल करता है। बिगड़े लड़कों की नाईं जितना इन से अच्छा वर्तो उतना ही एकता की जड़ पर ये अपने स्वार्थ का पैना कुठार रख देते हैं। खिलाफत तो पहले ही लंगड़ी थी। गांधी जी ने मुसल्मानों को मोहित करने के लिये बनावटी जोश की जांघ लगादी, आखिर वह भी टूट गई। विशेष साम्प्रदायिक स्वत्व इन्हें चाहियें थे, लखनऊ के कांग्रेस-लीग-समझौते से वे भी इन्हें मिले। अब नौकरियों में भी ये विशेष पद चाहते हैं, वे भी शनैः शनैः इन्हें मिलते जाते हैं। इस प्रकार आगे आगे उज्र, अड़ङ्गे, शरारतें बढ़ती जावेंगी। मि० मुहम्मद अली को राष्ट्रपति के पद से यह कहते तनिक लज्जा न आई कि अछूतों को धर्म परिवर्तन के लिये बांट लो। गान्धी जी भी कह देते हैं, हिन्दू तो बड़े भाई हैं। उन्हें भौतिक दान मुसल्मानों को बहुत भी देना पड़े तो कोई बात नहीं। क्योंकि मुसलमानों ने एकता और जातीय उद्योग में स्वार्थ के लिये कोई न कोई विघ्न तो डालना ही है।

सातवां विघ्न यह है कि लिबरलों की बुद्धि और शरीर जीर्ण शीर्ण हैं।

यह सत्य है कि इन्होंने प्रारम्भ से बहुत काल तक घनी देश-सेवा की है। दादा भाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, व्योमेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय, गोखले, अम्बिका चरण, आनन्द चार्लू, अयोध्या नाथ, गङ्गाप्रसाद, मुरलीधर आदि परलोकवासी और सुरेन्द्र, वाचा, पाल, शास्त्री, चिन्तामणि, श्री बेसेन्ट आदि इहलोकवासी मान्य मूर्तियों ने इस देश पर अनेकानेक उपकार किये हैं, भगवान् इनका, इनके बच्चे, पोतों का भी भला करे। पर इनकी बुद्धि में यौवन नहीं, शरीर में बल नहीं। समझते हैं, काफ़ी मिल गया। घोर कठोर उपाय, भूल कर भी नहीं वर्तने देते। दूसरी ओर जाति ऐसी सरपट दौड़ना चाहती है कि इन बूढ़ों के सिर दर्द हो जाता है।

आठवां विघ्न है गान्धी जी का हठ और मुसलमानों से मोह।

निस्सन्देह गान्धी मनुष्यों में देव है। गृही होता हुआ भी ब्रह्मचारी है। महामना है, दूरदर्शी है, दयासागर है, सत्य का प्रतिपालक है, पर हठी और मुसलमानों का मोही भी है। १० सत्त्वांश में १० तामसांश जोड़ दो, परिणाम गान्धी जी होगा। धृतराष्ट्र का दुर्योधन शारीर—पुत्र था। मुसलमानों में धर्मान्ध-जागरण गान्धी जी का मानस—पुत्र है। इस जागरण के साथ गान्धी जी का वैसा मोह रहा है जैसा धृ०······का दुर्०······के साथ। मालावार की दारुण घटनाओं पर गान्धी जी ने अपने मोहवश पर्दा डालना चाहा। मुसलमान डा० महमूद तक के कथन का तोड़ मरोड़ कर उलटा अर्थ करना चाहा पर उसने भी सत्य की इतनी हत्या को ठीक न ठहराया और गान्धी जी ने बात टाल दी। (अब हमें सूझा कि गान्धी जी यौगिक अर्थों में भी धृत—राष्ट्र हैं और मुसलमानी जोश दुर्-योधन और दुश्—शासन)। गान्धी जी इस मानस—पुत्र को पिछले ६ वर्षों में वश में नहीं कर सके और उस जोश ने जो घोर उद्दण्ड ताण्डव इस भारत रङ्ग-भूमि पर दिखाये वे

किसी विज्ञसे छिपे नहीं हैं। दोनों दोषी हैं, हिन्दू भी और मुसल्मान भी। न्याय कर्ता को तारतम्य और पहिल किस ने का यह बताना होता है न कि पोचा पाचो को फ़िक्र करना। महात्मा जी ने जेल से निकलने के बाद देश को नहीं देखा था। उन के मानस—पुत्रों ने कान भरे कि आर्य समाजियों ने स्वराज्य नौका में विद्रोह छिद्र कर दिया, गान्धी जी ने मोहवश मान लिया। इन मानस् पुत्रों ने विश्वास दिलाया, आर्य समाजी भी मुसल्मानों की तरह वैदिक धर्मी बनाने के लिये स्त्रियों को भगा ले जाते हैं। गान्धी जी ने लिख दिया- "ऐसा कहा जाता है"। पूछा गया "प्रमाण दीजिये" तो उत्तर मिलता है "मुझ से जो कहा गया मैंने लिख दिया, तुम सिद्ध करो कि तुम पर यह लाञ्छन युक्त नहीं।" अरे देवता! संसार आप की Statement की तरफ़ टिकटिकी लगाये बाट जोह रहा है और समझ रहा है कि इसमें सप्रमाण सत्य उक्तियां भरी होंगी। ऐसे गम्भीर वक्तव्य में आर्यों पर लाञ्छन अप्रमाण लगाना तर्क शास्त्र और धर्म शास्त्र को मोह के अन्ध कूप में धकेल देना है। कम से कम सत्य के परम पालक को यह शोभा न देता था। यह तो हुआ मोह। अब हठ भी सुनिये। जिस महामति राष्ट्र सूत्रधार ने भूचाल की तरह देश को हिला दिया; दया, अहिंसा, सत्य, का प्रचार किया; अंग्रेज़ी नीति के क्षुर को अपने असहकुसुम से ही कुण्ठित कर दिया; योरुप अमेरिका के अभिमानी मुनियों के मस्तिष्कों में खुजली पैदा कर दी; उसी ने चौरी चौरा, बर्दोली, राउण्ड टेबल कान्फ़रेन्स, मालाबार, कातने के आधार पर मत का अधिकार आदि विषयों पर देश को सहसा उन्मार्ग किया इस बात को देश और गान्धी जी के बहुत से मित्र और शत्रु दोनों ही मानते हैं। कोई पूछे विवेचन करो। उत्तर है—९० सत्वांश में १० अंश तामस [मोह, हठ] भी सम्मिलित हैं न!

राष्ट्र नेतृत्व जब महाबलियों के हाथ में आ जाता है तो वे चाहें देश को हिमाचल के उत्तुङ्ग शिखर पर ले जावें और वहां पहुँच कर अनुयायियों से कहें कि तुममें से दो चार ने रास्ते में पांच दस कौवों को मार डाला था अतः तुम में हिंसा का भाव है। मेरा तुम से किनारा है। स्वयं मार्ग ढूंढो और उतर जाओ। ठीक है, हमें राजनीति नहीं आती थी। इसी लिये इस सुन्दर गान्धी-हंस के पंखों में हमने डोरी बांध उस में पत्थर नहीं बांधे जिस से हम चोरी से शनैः २ नीचे तो उतर जाते। हमारा विवाद महात्मा जी के राजनीतिक ढंग से है। उन के दूसरे अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग जीवन से तो जातिको घना घना उपकार पहुँचा है, उसके लिये जाति उन की भूरि भूरि कृतज्ञ है।

अगला विघ्न इन नेताओं की अनुदात्त वृत्ति है। महात्मा उदात्त हैं, इतने कालापेक्षी नहीं। दास-नेहरू कालापेक्षी हैं, ऐसे उदात्त नहीं। मिल के चलें, बहुत कुछ बने, लोग मानें, सरकार कांपे-पर दौर्भाग्य हमारा है। गांधी जी विमान पर सवार हैं; दास-नेहरू मोटर पर; शास्त्री जी बैल गाड़ी में; लाला जी तटस्थ खड़े हैं; मालवीय जी

पुराने पण्डितों और काशीविश्वविद्यालयों में उलझे पड़े हैं; एनीबेसेन्ट अपना नया पन्थ चलाये फिरती हैं। जो ये सब एकमति, एकयत्न हो जाँय तो किसकी मजाल चूं भी करे।

दसवां विघ्न, श्री निवास शास्त्री और लाला जी की शिथिलता है। ये दोनों पक्षों में धीर हैं, गम्भीर हैं, देश को समझते हैं, जनता को इनकी बुद्धिमत्ता पर श्रद्धा है, देशदेशान्तरों में उन का नाम और काम प्रसिद्ध है, दिमाग इनका ठण्डा है पर दोनों आजकल जल्दी जल्दी विचार बदल लेते हैं। यदि ये आपस में, बैठ कर, विचार विनिमय करें तो दोनों का लेखा लगभग बराबर ही ठहरे। जो नीति ये खोजें उस पर यदि देश चले तो अगला कदम हम सफलता से उठा सकेंगे ऐसी हमारी श्रद्धा है।

अन्तिम पर अति दुःख का कारण हम हिन्दुओं की तेजो हीनता, मतिनाशत्व और अकर्मण्यता है। मुसलमान लोग कुरान और मुहम्मद पर एक हैं; सिक्ख, गुरुओं और ग्रन्थ साहब पर; ईसाई बाइबिल और ईसा पर। पर हम किसी बात पर एक नहीं होते। थोड़े से जैनियों को छोड़ कर परमात्मा और वेद के नाम पर एक हो सकते हैं पर होवें न! यही महारोग है। हम हिन्दुओं में चार खण्ड अब भी कुछ जीवित हैं। मराठे, सिक्ख, राजपूत, आर्य समाजी। मराठों को दूसरों पर श्रद्धा नहीं और दिल्ली से बहुत परे हैं। राजपूतों का खून ठण्डा हो चुका है। सिक्खों में बल है पर बुद्धि की कमी है। आर्यसमाजी अभिमानी और अविशाल हृदय होते जाते हैं। हिन्दुओं के ये चार दल भी मिल जाँय तो मुसलमान कांपे और सरकार का दिल दहले।

पर ऐसा हो न, तब। नहीं तो भगवान् ही सुमति दें। ऐ आर्य जाति जाग, सिर उठा, वीर प्रसविनी भूयाः! नहीं तो दासता में दो एक सदियां और बीत जावेंगी!

जन-तन्त्र शासन-प्रणाली

(लेखक— प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालंकार)

(१)

प्रारम्भिक विचार

अब से लगभग १॥ सदी पूर्व जन तन्त्र शासन-प्रणाली कहीं भी नहीं थी। फ्रांस, रूस, जर्मनी, इङ्गलैण्ड आदि यूरोपीय और भारत, चीन, जापान टर्की आदि एशियाई देशों में एक सत्तात्मक राजा ही शासन कर रहे थे। उस समय इङ्गलैण्ड में स्टुआर्ट राजा, फ्रांस में लुई, रूस में जार और भारत में मुसलमान व सिक्ख एक-शासकों का ही शासन था।

इसी प्रकार अन्य राष्ट्रों में भी भिन्न भिन्न सम्राटों के एकच्छत्र शासन विद्यमान थे। जनतन्त्र शासन प्रणाली का कहीं नाम भा न था। इन एक-शासकों के शासन का मूल सिद्धान्त यही था, कि हम ईश्वर के प्रतिनिधि है, हम में ईश्वरीय शक्ति है। जिस प्रकार इस ब्रह्माण्ड पर एक ईश्वर का अबाध शासन न्याय्य और आवश्यक है, उसी प्रकार एक देश पर उस के राजा का। 'जनता के अधिकार' 'वैयक्तिक स्वतन्त्रता' आदि शब्दों का उस समय कहीं पता भी न था।

अर्वाचीन काल में जनता के अधिकारों के लिए संघर्षण का प्रारम्भ सब से पहले इङ्गलैण्ड में होता है। जेम्स, चार्ल्स द्वितीय आदि के समय के झगड़ों और क्रान्तियों के साथ जनता अपने अधिकारों और स्वतन्त्रता के लिये युद्ध प्रारम्भ करती है। यद्यपि इङ्गलैण्ड ने जनतन्त्र शासन प्रणाली की ओर पहला कदम उठाया, पर उस की गति बहुत ही मन्द रही। १६ वीं सदी के प्रारम्भ में भी इङ्गलैण्ड जन तन्त्र नहीं था। इसके पश्चात् भी बहुत काल तक इङ्गलैण्ड में जन तन्त्र प्रणाली का पूरी तरह विकास नहीं होता। यह कथन भी सर्वथा निर्विवाद नहीं है, कि आज भी इङ्गलैण्ड पूर्ण रूप से जनतन्त्र राज्य होगया है। अभी इङ्गलैण्ड को पूर्ण रूप से जन तन्त्र होने के लिये अनेक दशाओं में से गुजरना आवश्यक होगा।

सन् १७७७ में अमेरिका में राज्य क्रान्ति हुई। अब से अर्वाचीन काल में जन तन्त्र शासन प्रणाली का उदय होता है। अमेरिकन राज्यक्रान्ति के उद्घोषणा पत्र में जिन सिद्धान्तों और विचारों को उद्घोषित किया गया था वे अब भी जन तन्त्र शासन प्रणाली के आधार समझे जा सकते हैं। सन् १७८६ में फ्रांस में राज्य क्रान्ति हुई। समानता, स्वतन्त्रता और भ्रातृ-भाव-ये सिद्धान्त इस क्रान्ति में डङ्के की चोट के साथ सुनाये गये। फ्रांस ने पुराणे आचार, विचार-सब को जड़ से उखाड़ दिया और नवीन युग का प्रारम्भ किया। नये सिद्धान्तों का प्रभाव फ्रांस तक ही सीमित नहीं रहा। जिस प्रकार तालाब में पत्थर फैंकने से लहरें चारों ओर दूर दूर तक फैल जाती हैं, उसी प्रकार फ्रांस से इन सिद्धान्तों की लहरें सारे योरोप में फैल गईं, अन्य राष्ट्रों की जनता में भी उत्साह का संचार हुवा और उन्होंने भी क्रान्तियां कीं। १६ वीं सदी के यूरोप के इतिहास में यह प्रक्रिया स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि जब जब फ्रांस में क्रान्ति होती है, उसके प्रभाव से अन्य देशों में भी जातियां स्वतन्त्रता और अपने अधिकारों के लिए उद्योग करती हैं। इसी प्रक्रिया से अनेक राष्ट्रों में एक शासन का अन्त हुवा और जन तन्त्र शासन प्रणाली का प्रारम्भ हुवा। धीरे धीरे सारे यूरोप में सम्राटों की गद्दियां हिल गईं। जनता का अधिकार होगया। अनेक प्राचीन राज वंशों का मूलोच्छेद होगया। जिन सम्राटों ने जनता को सम्पूर्ण अधिकार देना स्वीकृत कर

लिया-केवल नाम मात्र रह कर जिन्हों ने अपनी सत्ता बचानी चाही, वे ही आज शेष हैं। न केवल यूरोप में पर अन्य महाद्वीपों में भी अनेक प्राचीन राजवंश आज भूत के विषय होगये हैं। एशिया और अफ्रिका में भी आज जनता के अधिकारों और स्वतन्त्रता की दुन्दुभि बज रही है। जिस जन तन्त्र शासन प्रणाली की लहर ने संसार के नक्शे में, और इतिहास के रंग मञ्च पर इतना परिवर्तन ला दिया, वह क्या है? इस विषय पर हमने विचार करना है। इस लेख में हमने ऐतिहासिक और विचारात्मक दृष्टि से यह सोचना है कि जन तन्त्र शासन प्रणाली क्या है और वह कहां तक सफल हुई है।

तीन तरह की शासन प्रणालियां हो सकती हैं— एकतंत्र, श्रेणितन्त्र, और जन तन्त्र। एक तन्त्र शासन प्रणाली वह है, जिस में कि राष्ट्र की शासन शक्ति किसी एक व्यक्ति में निहित हो। श्रेणितंत्र शासन प्रणाली वह है, जिस में कि राष्ट्र की शासन शक्ति किसी श्रेणि में निहित हो। और जन तन्त्र शासन प्रणाली वह है जिस में कि राष्ट्र की शासन शक्ति किसी एक व्यक्ति या एक श्रेणि में निहित न हो, परन्तु सम्पूर्ण जनता में ही निहित हो। जिस शासन प्रणाली में शासन जनता के आधीन हो, जनता स्वयं या अपने प्रतिनिधियों द्वारा नियम निर्माण करती हो, उसे जन तन्त्र शासन प्रणाली कहते हैं। अभिप्राय यह है कि प्रभुता (सौवरेनिटी) यदि जनता में निहित हो तो वह शासन जन तन्त्र शासन कहलावेगा। रिपब्लिक या गण-प्रणाली और जन-तन्त्र में भेद करना चाहिए। हो सकता है, कि किसी राष्ट्र में राज्य का सारा कार्य एक व्यक्ति के नाम पर किया जाता हो, पर राज्य करने वाली जनता ही हो; ऐसे राज्य को जन तंत्र तो कहा जायगा, पर रिपब्लिक या गण नहीं। इसी प्रकार होसकता है, कि कोई राष्ट्र राजा रहित हो, उस में कोई ऐसा व्यक्ति न हो, जिस के नाम पर कि राज्य के सब कार्य किये जाते हों पर उस में प्रभुता जनता में निहित न हो। ऐसा राष्ट्र रिपब्लिक या गण तो कहायेगा, पर जन तन्त्र नहीं। सार यह है कि जिस राष्ट्र के शासन में जितना भी जनता का हाथ हो, वह राष्ट्र उतना ही जन तंत्र है।

अर्वाचीन काल में जिस समय जन तंत्र शासन प्रणाली का प्रारम्भ हुवा, उस समय इसके अभिभावकों ने जन तन्त्र के विषय में अनेक प्रकार की कल्पनायें की थीं। सम्राटों के एक शासन से तङ्ग आये हुवे जनता के नेताओं ने जन तन्त्र को बड़ी आशा और उत्कण्ठा के साथ देखा था। उस समय के लोगों की जन तन्त्र विषयक कल्पनाओं को लार्ड ब्राईस ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'मोडर्न डिमोक्रसीज़' में इस प्रकार वर्णित किया है—"जनतन्त्र शासन प्रणाली में प्रत्येक नागरिक सार्वजनिक व राष्ट्रीय कार्यों में निरन्तर ध्यान देता रहेगा। वह यह समझेगा, कि यह मेरा कर्तव्य है और इस में मेरा

हित भी है। वह नीति विषयक मुख्य बातों पर पूरा ध्यान देने का यत्न करेगा और यह करते हुवे अपने वैयक्तिक हित की अपेक्षा सार्वजनिक हित को अधिक दृष्टि में रखेगा तथा स्वतन्त्र और निष्पक्षपात रहेगा। जनतन्त्र शासन प्रणाली में प्रत्येक नागरिक अपने सम्मति देने के अधिकार का सदा उपयोग करेगा और किसी व्यक्ति को तभी सम्मति देगा, जब कि वह उस की योग्यता और ईमानदारी से सन्तुष्ट हो जायगा। यदि उसे नियामक सभा आदि में चुना जाय तो इसके लिये अपनी योग्यता की जांच कर अवश्य तैयार हो जायगा क्योंकि सार्वजनिक सेवा प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है। नियामक सभायें ऐसे ही सुयोग्य, शुद्ध हृदय और जन सेवा के लिये उद्यत तथा उत्सुक लोगों से बनी होंगी। रिश्वत, घूसखोरी आदि का नाम भी न होगा। चाहे सब नेता एक मन के न हों, चाहे सभायें सदा बुद्धिमान् न हों, चाहे शासक सदा निपुण न हों, पर सब उत्साही और ईमानदार अवश्य होंगे। विश्वास और सदिच्छा का वातावरण अवश्य होना चाहिये। झगड़े उत्पन्न करने वाली बहुत सी बातें होंगी ही नहीं, क्योंकि किसी को विशेष अधिकार प्राप्त न होंगे, जिस से कि स्पर्धा उत्पन्न हो। पद इसी लिये होंगे, कि सार्वजनिक सेवा का उत्तम अवसर मिल सके। सब की शक्ति और अधिकार बराबर होंगे, कानून के सामने सब एक समान होंगे"

जनतन्त्र शासन प्रणाली का निस्सन्देह यही आदर्श है। यदि कभी जनतन्त्र शासन प्रणाली पूर्णावस्था को प्राप्त होगी, तो उस में प्रत्येक नागरिक वस्तुतः ही ऐसा होगा। जनतन्त्र शासन की यह कल्पना कितनी गम्भीर उपयोगी और आदर्श है, यह दिखाने की यहां आवश्यकता नहीं। यह राजनीति शास्त्र के अत्यन्त गम्भीर सिद्धान्तों पर स्थित है। शुक्राचार्य के शब्दों में 'अप्रेरित हितकरं सर्वराष्ट्रं भवेत् यथा' का उच्च आदर्श केवल इसी अवस्था में पूरा हो सकता है। समानता, स्वाधीनता और भ्रातृभाव-इन सिद्धान्तों के बल से एक शासनों को गद्दियां दिलाई गई थीं, इन्हीं को पूर्णरूप से क्रियारूप में परिणत करना जनतन्त्र शासन प्रणाली का उद्देश्य होना चाहिये। अर्वाचीन काल में जनतन्त्र शासन को प्रारम्भ हुवे एक सदी से अधिक समय गुजर गया, पर यह उद्देश्य पूरी तरह से पूरा नहीं हुवा।

मनुष्य स्वयं अपूर्ण है। अतः यदि उसके कार्यों में अपूर्णता हो तो इस में आश्चर्य ही क्या है? हम किसी चीज की उत्तमता तुलनात्मक दृष्टि से ही निश्चित कर सकते हैं। पूर्ण व आदर्श अवस्था ही उत्तम हो, यह बात नहीं। उत्तम वही है, जो तुलनात्मक दृष्टि से अधिक अच्छी है। इसी कसौटी पर हम देखेंगे कि ऊपर बताये हुवे तीन शासन प्रकारों में जनतन्त्र शासन का कौन सा स्थान है। (क्रमशः)

"गमी में खुशी"

(श्री पं० धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

जब गम नहीं था तेरा गम में, पड़ा हुआ था।
गमगीन तेरे गम में, गम से बरी हुआ हूँ ॥

जब बे-फ़िकर था तुझ से फ़िकरें लगी हुई थीं।
जब से फ़िकर है तेरी, मैं बेफ़िकर हुआ हूँ ॥

जब भय नहीं था तेरा, भय-भीत हो रहा था।
जब भय हुआ है तेरा, निर्भय हुआ हुआ हूँ ॥

जब तक नहीं दिया धन तब तक ग़रीब था मैं।
सब कुछ तुझे ही देकर, अब मैं धनी हुआ हूँ ॥

हँसता था रात दिन मैं दिल में ख़ुशी नहीं थी।
रो रो के तेरे गम में, अब खूब खुश हुआ हूँ ॥

संसार के धार्मिक विचार

(ले० श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति)

(१) मिसर

प्राचीन मिसर

ईजिप्ट, मिश्र या मिसर देश का इतिहास कहाँ से आरम्भ होता है? इस प्रश्न का उत्तर आज तक भी नहीं मिला। ईजिप्टौलोजिस्ट लोगों ने बहुत कोशिश की है परन्तु अभी तक कोई निश्चित उत्तर नहीं दे सके। मिसर के प्रारम्भ के निवासी कहाँ से आकर आबाद हुए, यह भी कहना कठिन है, इस विषय में कई भिन्न २ मत हैं। मध्य अफ्रीका, मेसोपोटामिया आदि अनेक स्थान मिसर के आदिम निवासियों के जन्मस्थान बताये जाते हैं। इतिहास लेखकों का वहाँ पर भी एकमत नहीं हुआ। प्रारम्भ में मिसर का क्या धर्म था? इस प्रश्न के उत्तर में भी इतिहास लेखक चकरा जाते हैं। जिस समय से मिसर का विदित इतिहास आरम्भ होता है, वह ईसा से लग भग ४००० वर्ष पूर्व का है, परन्तु वह समय भी एक प्रकार से अन्धका-

राच्छेन्न ही है। कल्पना की बत्ती से जो थोड़ा बहुत देखा जा सकता है, उसे इतिहास के नाम से पुकारें या न पुकारें, यह भी सन्दिग्ध है। तो भी हमें कल्पना का सहारा लेना ही पड़ता है। पुराने यूनानी लेखकों के लेखों से मिसर के सम्बन्ध में जो ज्ञान प्राप्त हुआ था, वह ज़मीन की कोख में से निकले हुए लेखों और पदार्थों से परिपुष्ट हुआ है। प्राचीन मिसर के बहुत से रहस्य भूगर्भ ने निकाल दिये हैं, और बहुत से अब भी निकल रहे हैं। उनकी सहायता से मिसर के सम्बन्ध में जो कुछ विदित हुआ है, वह बहुत मनोरंजक है। उसका यदि ध्यान से अनुशीलन किया जाय, तो हमें 'कब' और 'कहाँ से' के बहुत से रहस्य भी विदित हो जायंगे।

ईश्वर सम्बन्धी विचार

हम ईश्वर सम्बन्धी विचारों से आरम्भ करते हैं। प्राचीन मिसर के जितने भी लेख या ग्रन्थ मिले हैं उन से तथा यूनानियों तथा अन्यविदेशियों के ग्रन्थों में जो वर्णन मिलता है, उससे प्रतीत होता है कि मिसर के निवासियों के ईश्वर सम्बन्धी विचार दो प्रकार के थे। दो लहरें साथ ही साथ चलती थीं। वह दोनों एक दूसरे से विरुद्ध दिखाई देती हुई भी व्यवहार में दायें बायें हो कर बहती थीं। एक ओर बहुदेवतावाद था, और दूसरी ओर एकेश्वरवाद था। बहु देवतावाद जिस साहित्यिक पूर्णता के साथ मिसर में पाया जाता था, बहुत थोड़े देशों में पाया जाता होगा। पूरा २ देवताओं का परिवार था, जिस में हरेक इकाई नियत स्थान पर बिठा दी गई थी। देवताओं की वंश परम्परा, उनकी आकृति, उनके जीवन चरित्र और उन के कर्तव्य- यह सब कुछ निश्चित कर दिया गया था। ज्यों २ समय बीतता गया, देवताओं की संख्या बढ़ती गई।

बहुदेवतावाद की इस लहर के साथ ही एकेश्वरवाद की एक जबर्दस्त लहर भी चलती दिखाई देती है। वह लहर पुरानी है, या अर्वाचीन-यह अभी तक निश्चय नहीं किया जा सका। मिसर के निवासी बहुदेवतावाद से एकेश्वरवाद की ओर गये, या एकेश्वरवाद से बहुदेवतावाद की ओर, अभी तक यह फैसला नहीं हो सका। जिस समय हम मिसर के विचारों की प्रारम्भिक दशा में पहुँचते हैं, तो भी अनेकदेवतावाद और एकेश्वरवाद परस्पर मिले हुए ही दिखाई देते हैं; प्रारम्भ में क्या था, यह कौन कह सकता है? वह समय हमारे लिये तिरोहित है। हमारे लिये वही काल प्रारम्भिक है, जिसकी कुछ झलक हमारी दृष्टि में आ जाय। उस काल में हमें दोनों विचारों के चिन्ह मिलते हैं।

अनेक देवता वाद

समय के विषय में निश्चय से कुछ नहीं कहा जा सकता तो भी ईसा से लगभग ३००० वर्ष पूर्व मिसर के धार्मिक विचारों की जो परिस्थिति थी, उसका एक अच्छा ब्योरा दिया जा सकता है। प्रतीत होता है कि एक

समय मिसर का सामाजिक संगठन बहुत शिथिल था। उस समय परिवार को ही समाज की इकाई माना जाता था। हरेक बड़े परिवार का अपना देवता था। जब परिवारों के कुल, और कुलों के ग्राम बन गये, तब परिवारों के देवता कुलों या ग्रामों के देवता बन गये। कुल या ग्राम में जो परिवार अधिक बलवान् हुआ, उसी का देवता मुख्य माना जाने लगा। इसी प्रकार यह भी समझा जा सकता है कि जहाँ किसी कुल के अनेक टुकड़े हो गये–वहाँ एक देवता की प्रधानता भी जाती रही। ग्रामों के नगर बन गये, और इसके साथ ही साथ ग्राम देवताओं को नगर देवताओं ने दबा लिया। कहीं विकास और कहीं ह्रास दोनों ही नियम चलते रहे, जहाँ आबादी का संगठन मज़बूत होगया वहाँ एकेश्वरवाद का विकास दिखाई देने लगा, और जहाँ संगठन शिथिल होगया और विच्छिन्नता आगई, वहाँ अनेक देवतावाद की ओर प्रवृत्ति दिखाई दी। एक समय आया जब मिसर—उत्तर और दक्षिण—या ऊंचा और नीचा—इन दो भागों में विभक्त होगया, उस समय देवमाला भी दो श्रेणियों में आगई। मिसर के इतिहास में ऐसा भी समय आया, जब देश की राजनीतिक एकता पूर्ण होती दिखाई दी, उसके साथ ही राजबल से एक देवता की पूजा प्रचलित करने का यत्न भी किया गया।

मिसर के इतिहास में वह परीक्षण भी बिलकुल नया था। चौथा अमोनोथस उस समय राजगद्दी पर बैठा, जब मिसर में अनेकदेवतावाद पूरे ज़ोर पर था। अनेक देवताओं में से भी 'अतन—रा' और 'अमुन—रा' नाम के देवता अधिक पूजनीय समझे जाते थे। दोनों के पुजारियों की संख्या बहुत बड़ी थी। अमोनोथस अतन–रा (सूर्य मण्डल) का उपासक था। अमुन—रा की पूजा से उसे चिढ़ थी। स्वभाव से उसका मन एक देवतावाद की ओर झुकता था। उसने देश में घोषणा कर दी कि सारी प्रजा अतन—रा की पूजा किया करे। अतन—रा की पूजा चाहे कितने ही भिन्न २ नामों से हो, परन्तु किसी दूसरे की पूजा न होने पावे। एक वार निश्चय कर लेने पर फिर रोकना कठिन था। अमोनोथस ने अतन–रा के नाम पर एक नया मन्दिर बनवाया, उसी के साथ देवता के नाम पर ही एक नई राजधानी बनवाई, सारे देश में आज्ञा होगई कि कोई व्यक्ति दूसरे देवता की उपासना न करने पावे। जिस किसी ने विरोध किया, उसे दण्ड दिया गया। राजबल से एकेश्वरवाद के प्रचार के संसार में अनेक यत्न हुए हैं, उन में अमोनोथस का यत्न विशेष ही महत्व रखता है क्योंकि वह एक ऐसे देश में किया गया था, जिस में अनेक देवतावाद स्थिर हो चुका था।

अमोनोथस के जीवन काल में अतन—रा की पूजा चल गई, और अमुन—रा के पुजारी बेरोज़गार होकर भटकने लगे, परन्तु उसकी मृत्यु के के पीछे मिसर फिर अपनी उसी दशा

में चला गया, जिसे उसकी स्वाभाविक दशा कह सकते हैं। उत्तराधिकारी पर अमुन—रा के पुजारियों ने काबू पा-लिया और देश में फिर अनेक देवता वाद पूरे ज़ोर से चल निकला।

देवमण्डल की नींव

मिसर क धार्मिक विचारों का अनुशीलन हम नीचे से आरम्भ करते हैं। उनके देवता सम्बन्धी विचारों का आरम्भ पशु—पूजा से होता है। जब से मिसर का चित्रपट शेष संसार की दृष्टि में आता है, तभी से हम उस के निवासियों को पशु पूजा के जाल में फँसा हुआ पाते हैं।

हरेक शहर और हरेक कुल का अलग उपास्य पशु था। कहीं घड़ि-याल, कहीं मगर, कहीं बकरी और कहीं बाज़ को पवित्र पशु माना जाता था। बड़े २ विशाल मन्दिरों में बन्दर या बकरी के देवता रूप में दर्शन कर के विधर्मी लोग चकित हो जाते थे। जिस नगर या ग्राम का जो देवता होता था, वह उसमें अवध्य माना जाता था। कभी २ तो केवल पशुओं की ख़ातिर जातियों में युद्ध छिड़ जाते थे। प्रायः यह पशु स्थानीय देवता ही माने जाते थे, परन्तु कभी २ किसी एक पशु को सार्वदेशिक महत्व भी मिल जाता था। बैल को यह महत्व मिल गया था।

पशुपूजा किस प्रकार आरम्भ हुई, यह कहना तो कठिन है, परन्तु मिसर के लोग क्या मानते थे, यह मालूम है। मिसर के निवासी समझते थे कि देवता लोग मनुष्यों को देख भाल करने के लिये पशुरूप में भूमण्डल पर विच-रते हैं। जिसको जिस में देवता का रूप दिखाई दिया, वह उसी को पवित्र मान कर पूजने लगता था। मालूम होता है कि पशुओं को देवताओं का गुप्तनिवासस्थान समझ कर ही मिसर के निवासी पूज्य समझते थे।

पशु से देवता

पशु को देवता का अधिष्ठान मान-कर पशु और देवता को समान मान लेना कुछ मुश्किल नहीं था। कई देवताओं के चित्र पशु या पक्षी के रूप में मिलते हैं। होरस नाम के देवता का चित्र उक़ाब की सूरत से मिलता है। इस के साथ ही साथ आधे पशु और आधे मनुष्य की कल्पना भी दिखाई देती है। भारतीय साहित्य के किन्नारों की भाँति मिसर में भी अर्ध मनुष्य पाये जाते हैं। प्रायः सभी देवताओं में मनुष्य और पशु का मिश्रण है, ओसिरिस का सिर बैल या बन्दर का सा है; होरस का सिर उकाब का सा है; बिल्ली के सिर और औरत के शरीर से बास्ट का चित्र बना है; चनूम का चित्र मेंढे का सा है। इसी प्रकार मिसर के पवित्र देवता मनुष्य और पशु के मिश्रण से बने हैं। देवमाला के अधिक से अधिक फैलाव के समय में भी मिसर निवा-सियों ने देवताओं में से पशु के अंश को अलग नहीं किया। (क्रमशः)

खूनी

(लेखक—श्रीयुत गुप्त)

अदालत ने बड़ी गम्भीरता से पूछा—"क्यों कल्लू, मङ्गल महाजन का खून तुम्हीं ने किया है?"

कल्लू ने सिर झुका कर उत्तर दिया—"हां सरकार!"

न्यायालय में कल्लू और मङ्गल दोनों के सम्बन्धी, जानकार, सरकारी वकील, पुलिस के आदमी—ये सब लोग मौजूद थे। सब ने एक वार आश्चर्य पूर्ण नेत्रों से कल्लू की ओर देखा।

अदालत ने देखा कि कल्लू कुछ कहते कहते रुक गया है। इस लिये उन्हों ने फिर पूछा—"तुम्हें इस खून के सम्बन्ध में कुछ कहना है?"

कल्लू दो एक क्षण चुप रहने के उपरान्त बोला—"सरकार! अगर इजाज़त हो तो मैं अपना पूरा बयान देना चाहता हूँ।"

अदालत ने ज़रा नरम आवाज़ से कहा—"हां, हां, कहना शुरू करो।"

कल्लू एक अपढ़ गंवार किसान था, परन्तु न मालूम उस समय उस में इतनी प्रतिभा कहां से आगई! अपने रुंधे हुए कण्ठ को साफ कर के वह बोला—

(१)

मैं हाजीपुर गांव का रहने वाला हूं। मेरी उम्र इस समय लगभग ४० बरस की है। गांव में मेरी २० बीघा मौरूसी जमीन थी। अभी डेढ़ बरस की बात है, उस समय मेरी तीन सन्तानें और एक घर वाली थी। मेरी सन्तानों में एक लड़की थी, उस की उम्र १३ बरस की थी, बाकी दोनों लड़के अभी छोटी उम्र के ही थे। इतनी जमीन से हम पांचों प्राणी भली प्रकार गुजारा कर लिया करते थे। उस समय मैं गांव के मुखिया लोगों में से था। परन्तु कर्मों के फेर से मेरी हालत में अचानक परिवर्तन आगया।

चैत का महीना था। गेहूँ की फसल पक चुकी थी। गांव वालों को खुशी का ठिकाना न था। साल भर में यही दिन होते हैं जब कि सब गांव वालों को भर-पेट खाना मिला करता है। गेहूँ के सुनहरी रंग के सिट्टों को देख कर हम लोग फूले न समाते थे।

मेरी जमीन की फसल भी खूब अच्छी नजर आती थी, उसे देख कर मेरा हृदय प्रसन्नता से बल्लियों उछलने लगता था। वैशाख मास के अन्त में मेरी लड़की की शादी थी। मैं बिल्कुल निश्चिन्त था, समझता था कि इस साल की फसल से शादी का खर्च जुटाने लायक आमदनी अवश्य हो जायगी।

परन्तु शायद ईश्वर को यह बात मंजूर न थी। एक दिन रात के समय गाँव के सब लोग चौपाल में बैठ कर बात चीत कर रहे थे। गाना बजाना हो रहा था। सितार की लय खूब मिल रही थी। अचानक

बड़े ज़ोर से आंधी चलने लगी। सब लोग अपने अपने घरों की तरफ भाग खड़े हुए। संगत बीच में ही टूट गई। आंधी बड़े वेग से चल रही थी— मालूम होता था कि हम लोगों की झोंपड़ियां उड़ जांयगी। परन्तु थोड़ी देर में आंधी रुक गई। हम लोगों को कुछ ढारस बंधी ही थी कि आकाश में बिजली चमकने लगी, थोड़ी देर बाद ही बड़े ज़ोर से वर्षा होने लगी। देखते ही देखते हमारी आशाओं पर तुशार पात होगया, बड़े बड़े ओले गिरने लगे! सारे गांव में हाहाकार मच गया। बाहर-खेतों में, फूस की छतों पर, घने घने वृक्षों पर-सब कहीं बड़े बड़े ओले पड़ रहे थे, और अन्दर-झोंपड़ियों में-गरीब किसानों का रोना धोना मचा हुवा था। करीब दो घण्टे तक यही हाल रहा, तब कहीं जाकर यह उपद्रव शान्त हुवा। ज़ोर ज़ोर से ठण्डी हवा चल रही थी, हम लोग सब कुछ ईश्वर के भरोसे छोड़ कर अपनी झोपड़ियों में ही पड़े हुए थे।

प्रातः काल हुवा। मैं भागा भागा अपने खेत में पहुँचा। मेरी घरवाली भी मेरे साथ थी। खेत में पहुंचते ही कलेजा मुंह को आने लगा। मैं रोना चाहता था पर रुलाई न आती थी। मैंने देखा कि सारी फसल बिलकुल झड़ गई है। बिट्टों पर एक भी दाना नहीं बचा है, सब के सब बिलकुल झड़ गये हैं। सब खेतों का यही हाल था। गांव भर में मातम छाया हुवा था।

(२)

मैं मङ्गल महाजन के घर के दरवाजे पर आधी धूप और आधी छाया में लेटा हुवा था। दिन के १२ बज चुके थे। मेरे शरीर में ज़रा भी ताक़त नहीं बची थी। मैं दो दिन से भूखा था। इस हालत में भी मैं अपने लिये ज़रा भी चिन्तित नहीं था; एक और चिन्ता थी जो मुझे धीरे२ जला रही थी, सुखा रही थी; उस के सामने भूखा रहना, धूप सहना-ये सब बातें किसी गिनती की न थीं। वह चिन्ता थी 'नथिया' के विवाह की। विवाह की तारीख आने में केवल १० दिन ही बचे थे, परन्तु मैं रुपयों का इन्तज़ाम बिल्कुल न कर सका था। अगर विवाह की तारीख टल जाती तो 'नथिया' को जन्म भर कुमारी ही रहना पड़ता! मैं रुपयों की चिन्ता में दिन भर चक्कर लगाया करता था परन्तु अभी तक कोई इन्तज़ाम न कर सका था।

सख़्त गरमी मालूम हो रही थी फिर भी दरवाज़े के अन्दर प्रवेश करने की मेरी हिम्मत न होती थी। तीन चार दिन से लगातार मैं मङ्गल के घर आया करता था, परन्तु वह मुझे सदैव खींच खांच कर घर के बाहर कर दिया करता था— इसी कारण आज मैं दरवाजे के बाहर ही धरना देकर बैठ गया।

आधा दिन ढल चुकने के बाद मङ्गल पानी का लोटा लेकर कुल्ला करने के लिये घर के बाहर आया। मुंह साफ कर लेने के बाद वह दो तीन मिनट तक मेरी ओर देखता रहा। इस के बाद उसने मुझ से पूछा-"तुम्हें

कुल कितना रुपया चाहिये ?" मैं एक दम उठ बैठा, मैंने शीघ्रता से से उत्तर दिया-"७० रुपया।" दो एक क्षण तक चुप रह कर मङ्गल ने कहा "अन्दर आओ।" मङ्गल का चेहरा उस समय मुझे अच्छा नहीं मालूम हो रहा था, परन्तु रुपया मिलने की खुशी में मैंने उस ओर ध्यान न दिया। रुपया मिलने लगा है, यह जान कर मेरे दुर्बल शरीर में फिर से बल का सञ्चार हो आया। मैं मङ्गल के घर में प्रविष्ट हुआ।

मङ्गल ने शीघ्रता से ६५ रुपये गिन कर मुझे दे दिये। ५ रुपये पुरस्कार के तौर पर उसने अपने पास रख लिये। तब अपनी बही पर कुछ लिख कर, उस के पास ही लगे हुए एक टिकट पर उसने मुझे अंगूठा लगाने को कहा। मैंने बिना कुछ सोचे विचारे खुशी से अगूठे का निशान कर दिया। मैं डर रहा था कि अगर कुछ पूछ पाछ लूं तो कहीं यह रुपया देने से इन्कार न कर दे। अगूंठा लगा चुकने पर मैंने डरते डरते पूछा-"सूद की दर *क्या रक्खी है।" मङ्गल ने उत्तर दिया-* "बहुत नहीं। यही दुगने के करीब। एक साल में चुका देना।" मैंने फिर और कुछ नहीं पूछा, मङ्गल का उत्तर भी मुझे पूरी तरह समझ नहीं आया। मैं रुपये बांध कर अपने घर की ओर चला—उस समय मैं ऐसा अनुभव कर रहा था कि मानो मैंने राज पा लिया।

(३)

ठीक एक साल बाद बड़ी खुशी से मैंने मंगल के घर पैर रक्खा। मेरे पल्ले में उस समय १०० रुपये बंधे हुए थे। इस साल गेहूँ की फसल अच्छी हुई थी, मैं भली प्रकार अपना कर्जा उतार सकता था। साल भर में मङ्गल के घर दूध, घी, घास, गन्ने, शाक आदि पहुँचाता रहा था। जो कुछ मैं ले जाता था मङ्गल उसे प्रसन्नता से ले लेता था, एक बार भी किसी बात के लिये उस ने मुझे तंग नहीं किया। कर्ज़ या सूद का प्रश्न तो उस ने कभी भी नहीं छेड़ा। मङ्गल के इस व्यवहार के प्रभाव से मैं उसे देवता समझने लगा था। मेरी नज़र में जो महाजन अपने ऋणी लोगों को तंग नहीं करता वह देवताओं से कम नहीं है।

मङ्गल अपनी बैठक में बैठा हुवा बही की जांच पड़ताल कर रहा था, मैंने उसे बन्दगी की। मुझ पर नज़र पड़ते ही मङ्गल की आंखें कुछ झेपने सी लगीं; परन्तु मैंने उस ओर ध्यान न दिया। मैंने बड़ी नम्रता से कहा-"भाई मङ्गल शाह, वैसे तो तुम्हारा ऋण मेरे सिर से कभी उतर ही नहीं सकता, परन्तु ईश्वर की कृपा से जो कुछ बन पड़ा है, तुम्हारी सेवा में लाया हूं। तुम्हारे हिसाब से सूद मिला कर मुझ पर क्या पड़ता है?"

मङ्गल ने मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर कहा-"तुम्हारी फसल तो इस साल बहुत अच्छी हुई परन्तु हमें उस का *ज़रा भी स्वाद न मिला।"*

मैंने बात टाल कर फिर पूछा-"मुझ गरीब के लिये क्या हुक्म है?"

मङ्गल कुछ देर तक चुप रहा। वह जो कुछ कहना चाहता था, शायद उस के लिये अपने दिल को मजबूत

कर रहा था। मुझ पर अगर कोई छुरी का वार भी कर देता तो मैं इतना न चौंकता जितना कि मङ्गल की यह बात सुन कर चौंका ! उस ने कहा–"तुम ने मुझ से ७०० रुपया लिया था, ३०० रुपया उस पर सूद बैठता है, इस प्रकार तुम पर मेरा १००० का दावा है।"

मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा। मैंने चीखती हुई आवाज़ में कहा-"सात सौ नहीं, सत्तर।"

मङ्गल जबरदस्ती मुस्कराया; उस ने कर्कश स्वर में उत्तर दिया- "तब इस का निर्णय अदालत में होगा। मेरे पास तुम्हारे दस्तख़त मौजूद हैं।" मैं कांप रहा था। मेरे होश हवास गुम हो गये थे। सहसा मङ्गल का मकान छोड़ कर मैं बाहर निकल आया। उस समय मेरी आंखों से आंसू बह रहे थे। मैं क्रोध से अन्धा और दुःख से पागल हो रहा था, परन्तु मुझे कुछ भी सूझता नहीं था। हाय, यह दुनियां इतनी खोटी है !

(४)

लोग कहते थे कि मेरा दिमाग़ फिर गया है। शायद उन का यह कहना ठीक था। मुझे कुछ भी नहीं सूझता था। मेरे लिये खाना, पीना, सोना सब हराम हो गए थे। कभी क्रोध से भर उठता था; परन्तु उस के दूसरे क्षण ही अपने को सर्वथा निस्सहाय पाकर रो उठता था। सारी उम्र में मुझ पर इतनी बड़ी आफत कभी न आई थी। लोग मुझे कहते थे कि अदालत में अपने बचाव की पूरी कोशिश करो। परन्तु मेरा दिमाग़ सचमुच ठिकाने नहीं था, इस लिये मैंने अपने बचाव का ज़रा भी यत्न न किया। मुझे धनी आदमियों के न्याय पर ज़रा भी विश्वास न रहा था, अदालत को मैं इन्हीं लोगों की ढाल समझता था।

आखिर वह दिन भी आगया। दो सिपाही हथकड़ी लगा कर मुझे अदालत में ले आये। अदालत के सामने मङ्गल ने मेरे अंगूठे के निशान वाली बही पेश कर दी। मेरा बयान लिया गया। मैंने सिर्फ इतना ही कहा–"मङ्गल से मैंने ऋण तो लिया था, परन्तु सात सौ का नहीं, सत्तर का।" मेरे हक में कोई दलील नहीं थी। इस लिये अदालत ने मेरी सारी जायदाद को कुर्क कर के ऋण उतराने की आज्ञा के साथ ही साथ मुझे तीन महीने की कड़ी कैद का दण्ड भी दे दिया। अदालत का निर्णय सुनते ही मैंने एक बार आंखें उठा कर मङ्गल की ओर देखा, मेरी आंखों में आंसू भरे हुए थे। मङ्गल मेरी ओर देख न सका, उस की आंखें नीची हो गई। इसी समय एक सिपाही ने मेरे पास आकर बाहर चलने का संकेत किया।

(५)

सांझ का समय था, जब कि तीन महीने की पूरी कैद भुगत कर मैं हाजीपुर वापिस आया। बरसात के दिन थे, चारों ओर खूब हरियावल छाई हुई थी। गांव के पश्चिम की ओर एक नाला था; यह नाला इस समय खूब वेग से चल रहा था। आकाश में हलके हलके बादल छाए हुए थे। सूर्य की अन्तिम किरणों के कारण ये बादल बड़े

सुहावने मालूम हो रहे थे। गांव के बाहर हरे हरे मैदान में लड़के खेल रहे थे। नाले के किनारे गांव के पशु पानी पी रहे थे। पूरे तीन महीने बाद गांव का वही सुहावना दृश्य मेरी आंखों के सामने आया। परन्तु इस ओर मेरा ध्यान बिलकुल नहीं था।

मेरा कलेजा धड़क रहा था; मैं जल्दी जल्दी अपने घर की ओर बढ़ा जा रहा था। अपने बच्चों से मिलने की आशा से मेरे दिल में उत्साह भरा हुवा था, खूब उमंगें उठ रहीं थीं। परन्तु ओफ़, मेरे उल्लास पूर्ण हृदय पर मानो किसी ने हथौड़े का भरपूर प्रहार कर दिया! वह टूक टूक हो गया। मैंने देखा, मेरे घर के द्वार पर ताला पड़ा हुवा है। एक दम वही कुर्की का पुराना दृश्य मेरी आंखों के सामने घूम गया। मैं किस भूल में था। यह घर तो अब मङ्गल का है!

मेरी आंखों के सामने अंधेरा छा गया। मुझे कुछ भी नहीं दीख रहा था; मेरी झोंपड़ी, गांव, लड़कों का शोर, आकाश का सुन्दर दृश्य—ये सब मेरे ध्यानसे सहसा ओझल हो गये। मैं सिर पकड़ कर वहीं बैठ गया। मालूम नहीं कितनी देर तक इसी अवस्था में मैं वहां पड़ा रहा। जब मुझे होश आया तब मैंने देखा कि गांव के लोगों ने मुझे घेर रक्खा है। सुक्खन मेरा पड़ौसी था। मैंने उस की तरफ़ देख कर पूछा-"भाई सुक्खू, मेरे घर के लोग कहां हैं?" सुक्खन मेरे प्रश्न का कोई उत्तर न दे सका। कोई दूसरा आदमी भी कुछ न बोला। मैंने फिर पूछा- "क्यों भाई, क्या तुम उन के बारे में कुछ नहीं जानते?"

सुक्खन अब चुप न रह सका। सिर झुका कर वह धीरे से बोला "भाई कल्लू, एक महीने से ऊपर हो गया। तुम्हारी घरवाली ने इस नाले में डूब कर प्राण दे दिये।" इतना कह कर वह चुप हो गया। किसी प्रकार का कोई भाव प्रकट किये बिना ही मैंने कहा- "हां, हां, कहे चलो, मेरे दोनों लड़कों का क्या हुवा?" सुक्खन ने उत्तर दिया- "उन्हें मङ्गल अपने साथ ही शहर में ले गया था।"

सहसा मैं उठ खड़ा हुवा। लोग समझते थे कि अपने घर का हाल सुन कर मैं रोऊंगा, चिल्लाऊंगा। परन्तु मैं एक शब्द भी न बोला, धीरे धीरे मैं गांव के बाहर की ओर चला। मेरी अवस्था देख कर मुझे रोकने का साहस किसी को न हुवा। मैं गांव के बाहर नाले के किनारे पहुंचा। इरादा था कि मैं भी इसी में कूद कर अपने प्राण दे दूंगा। परन्तु नाले के किनारे पहुँचते ही मेरे दिल में एक और ख्याल आया। आत्म-हत्या के विचार को थोड़ी देर के लिये मैंने मुल्तवी कर दिया।

इस समय तक चांद निकल आया था, परन्तु बादलों के कारण रात पूरी तरह उजेली न हो सकी थी। मैं शहर की तरफ चला। मेरे शरीर में बिजली के समान फुर्ती आ गई। शहर गांव से केवल ५ मील के अन्तर पर ही था। थोड़ी देर में मैं महाजन के दरवाजे पर जा पहुंचा।

दरवाजा खुला हुवा था। वहां पहुंचते ही मैं थोड़ी देर के लिये रुका। उस समय मेरा खून बड़े वेग से चल

रहा था। थोड़ी देर रुक कर मैं मकान में प्रविष्ट हो गया।

पहली ही नज़र में मैंने देखा कि आंगन में मेरा बड़ा लड़का घर के जूठे बरतन साफ़ कर रहा है। मैंने अपनी नज़र और आगे दौड़ाई। देखा, बरामदे के नीचे दीये के धुंधले प्रकाश में मेरा छोटा लड़का खड़ा रो रहा है। मङ्गल भी उस के पास ही खड़ा है। मैंने अभी नज़र उठाई ही थी कि मङ्गल ने उस के मुंह पर एक चपत लगाई और गाली देकर कहा- "भूख, भूख चिल्लाता है, काम कुछ भी नहीं करता।"

मेरे सिर पर खून सवार हो गया। बरामदे में ही एक ओर एक बड़ा सा गण्डासा रक्खा हुवा था, मैंने झपट कर उसे उठा लिया। अचानक मुझे इस भयङ्कर रूप में देख कर मङ्गल अभी चिल्लाया ही था कि पांच, सात वार कर के मैंने उस का काम तमाम कर दिया। मेरी इच्छा थी कि उसी गण्डासे से मैं अपने को भी वहीं समाप्त कर लूं, परन्तु इसी समय लोगों ने आकर मुझे पकड़ लिया।

* * * *

इतना कह कर कल्लू चुप हो गया। उसकी आंखों से दो-चार बूंद आंसू टपक पड़े।

अदालत में बिल्कुल सन्नाटा छाया हुवा था। जज साहब बड़े ध्यान से कल्लू किसान का इज़हार सुन रहे थे। उस का कथन समाप्त हो चुकने पर वह एक शब्द भी नहीं बोले। मुज़रिम अपना कसूर स्वीकार करता है यह देख कर, एक ठण्डा श्वास ले कर, उन्हों ने लाल स्याही से कल्लू के प्राण-दण्ड की आज्ञा लिख कर अपना होल्डर तोड़ दिया।

* * * *

अगले दिन अलाहाबाद के दैनिक-पत्र 'लीडर' में समाचार छपा कि जज साहब ने जजी से अस्तीफ़ा दे दिया है।

—*:*:*—

सम्पादकीय

लाला गंगाराम का गुप्त पत्र

२२ मई के 'आर्य-जगत्' में 'आर्य समाज के छिपे शत्रुओं का गुप्त पत्र' इस शीर्षक से एक लेख निकला है जिस में शिमला आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्य कर्ता लाला गंगाराम का एक पत्र प्रकाशित हुआ है। सहयोगी की दृष्टि में लाला गंगाराम का यह कार्य अनुचित है। पत्र इस प्रकार है:—

(गुप्त) शिमला ता० २३-४-२५

श्रीमान् महाशय जी नमस्ते !

गत नवम्बर मास में आर्य समाज बच्छोवाली ने अपने वार्षिकोत्सव का कुछ भाग आर्य्य समाज अनारकली के साथ मिल कर मानाया था। इसके अतिरिक्त बहुतसी आर्यसमाजें दीपमालिका, विजय दशमी व शिवरात्रि आदि के त्योहारों को कालेज विभाग की स्थानिक आर्यसमाजों से मिल कर मानाया करती हैं। गुरुकुल विभाग के कई एक प्रसिद्ध विद्वान् तथा व्याख्याता भी

कालेज समाज की वेदी पर जाकर भाषण दे आते हैं। कुछ एक स्थानों पर महात्मा समाजों के संचालक कालेज विभाग के मुख्य २ व्याख्याताओं को बुला कर व्याख्यान दिलाने में कुछ हानि नहीं समझते। इस से सामान्य मनुष्यों के हृदयों में स्वभावतः संदेह उत्पन्न होता है कि दोनों पक्षों में कुछ मतभेद नहीं रहा। यदि कुछ था भी तो वह भी मिट गया है क्योंकि उन के विचार में कालेज समाज के संचालकों का "मांस भक्षण" को वेद विरुद्ध स्वीकार कर लेना पर्याप्त है। शिक्षा सम्बन्धी जो कुछ भेद था, वह भी अब जाता रहा है— क्योंकि कालेज विभाग का 'ब्राह्मविद्यालय' खोलना इस बात का प्रमाण है।

मैं इस पत्र में उस लम्बी कथा के वर्णन करने की आवश्यकता नहीं समझता कि पञ्जाब में क्यों दो विभाग हुए। परन्तु जो लोग समाजों में अगुआ बन कर काम करते रहे हैं और अब भी करते हैं, वह इस बात के साक्षी हैं कि यद्यपि वाह्य रूप में कोई कार्य भेद प्रतीत नहीं होता तथापि कार्य्य रीति में व दृष्टिकोण में अब भी बहुत बड़ा भेद है। दृष्टान्त रूप से गुरुकुल विभाग की आर्य समाजें मांसाहारी को "आर्य सभासद्" बनाने में बड़ा संकोच करती हैं किन्तु कालेज विभाग की समाजों में अभी तक इस के सम्बन्ध में खुली छुट्टी है। यही कारण है कि कालेज विभाग के मुख्य नेता अभी तक मांस का आहार करते हैं। दोनों पक्षों में कार्य रीति व नीति में पर्य्याप्त भेद है ही। कालेज विभाग की समाजों में वार्षिकोत्सव के समय देवियों के आगे परदे का अब तक न हटाना पुराने विचार के प्रभाव का प्रमाण है। अस्तु, यह तो बहुत छोटी बातें हैं। वह लोग जो समाजों में कार्य्य करते हैं, इस भेद को भली प्रकार जानते हैं।

अब प्रश्न केवल इतना है कि श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब से सम्बन्धित समाजों की रीति व नीति एक सी होनी चाहिए। यद्यपि सभा की नीति इस सम्बन्ध में निश्चित है, तथापि समाजें उस आज्ञा को ध्यान में न रखती हुई गड़ बड़ में पड़ जाती हैं और अपने ही सभासदों में मतभेद उत्पन्न कर देती हैं। यदि आप इस विचार से सहमत हैं कि प्रतिनिधि सभा से सम्बन्धित समाजों की नीति एक सी होनी चाहिए और यदि आप के विचार में पुरानी नीति में कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है तो आप कृपया अपनी (अपनी समाज की) सम्मति से मुझे शीघ्र सूचना देने की कृपा करें, ताकि मैं सभा के आगामी वृहद् अधिवेशन में एक ऐसा प्रस्ताव उपस्थित कर सकूं जो सब को मान्य हो।

भवदीय मङ्गलाभिलाषी—

गंगाराम

कसुम्पटी शिमला

हम ने पत्र को प्रारम्भ से अन्त तक कई वार पढ़ा परन्तु हमें समझ ही नहीं आया कि इस में कौन सी ऐसी बात है जिस के कारण सहयोगी ने लाला गंगाराम को आर्य-समाज के छिपे शत्रुओं में गिनने का साहस किया है। पत्र का अभिप्राय स्पष्ट है। लाला गंगाराम समझते हैं कि दोनों पार्टियों के दृष्टि—कोणों में मौलिक भेद है। गुरुकुल पार्टी में मांसाहारी को सभासद् भी नहीं बनाया जाता, कालिज पार्टी में मांसाहारी व्यक्ति कालेजों के प्रिन्सिपल तक बन सकते हैं। परन्तु साथ ही लाला गंगाराम इस बात को भी अनुभव करते हैं कि उन से विरुद्ध सम्मति रखने वाले लोग भी गुरुकुल विभाग में विद्यमान हैं। लाला गंगाराम के

पत्र से मालूम होता है कि वे इस विषय में सब समाजों की सम्मति इकट्ठी करना चाहते हैं, अपनी सम्मति के अनुसार समाजों को चलाने के लिये कोई गुप्त षड्-यन्त्र नहीं रच रहे। इसीलिये पत्र के अन्त में उन्हों ने लिखा है कि यदि इस समय समाज की पुरानी नीति में परिवर्तन की आवश्यकता हो तो उस के लिये भी वे प्रतिनिधि सभा के वृहदधिवेशन में ऐसा प्रस्ताव रखने के लिये तैय्यार हैं जो सब को मान्य हो। इस प्रकार के पत्र को वही व्यक्ति षड्—यन्त्र समझ सकता है जो स्वयं किसी षड्-यन्त्र में लगा हो और अपने पाप को दूसरे के सिर मढ़ कर अपने को निष्कलंक सिद्ध कर देने की फ़िक्र में हो। इस समय प्रत्येक आर्य-समाजी मिलाप के सपने ले रहा है। परन्तु 'मिलाप' 'मिलाप' चिल्लाने से मिलाप न होगा। दोनों विभागों के मत—भेदों पर सब समाजों को विचार करना होगा और अपनी निश्चित नीति का निर्धारण करना होगा। हम लाला गंगाराम को सलाह देंगे कि यदि उन्हों ने अपने पत्र को सब समाजों के पास न भेजा हो तो शीघ्र ही भेजें और बहु सम्मति के अनुसार अपने प्रस्ताव को ऐसा रूप दें जो सर्व मान्य हो सके। हमें आश्चर्य है कि 'आर्य—जगत्' के अनुभवी सम्पादक ने सदिच्छा से प्रेरित पत्र को षड्-यन्त्र का सा भयानक रूप देकर एक सज्जन को क्यों बदनाम किया है? सहयोगी का यह प्रयत्न अत्यन्त घृणित तथा लज्जास्पद है।

—*:*:*—

हिन्दू वा आर्य

आर्य-समाज की स्थापना १८७५ ई० में हुई और तब से उस की तरफ़ से हिन्दू शब्द की जगह आर्य शब्द के प्रयुक्त किये जाने पर विशेष बल दिया गया। परन्तु १८७० ई० में काशी के प्रसिद्ध २ पण्डितों ने भी इस प्रश्न पर यही व्यवस्था दी थी। इस विषय की एक पुरानी व्यवस्था ढूंढ कर श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी ने 'अर्जुन' में प्रकाशित की है। व्यवस्था इस प्रकार है:—

[प्रश्न]

श्रीमद् भागवत, एकादश स्कन्ध, सत्रहवें अध्याय में लिखा है कि सतयुग में हंसवर्ण सब कोई कहावते थे; और त्रेता में हंसोक्त चार वर्ण, चार आश्रम का विभाग होता गया। इस कारण वर्णाश्रमी कहाये। अब सब कोई हिन्दू नाम करके ख्याल करते हैं। सो हिन्दू शब्द की चर्चा कोई शास्त्र में नहीं मिलता। इस हेतु हम यह जानना चाहते हैं कि हिन्दू कहावना उचित कि वा अनुचित है?

[उत्तर]

वर्णाश्रमी देश बोधक जो हिन्दू शब्द है सो यवन संकेतित है। वर्णाश्रमी बोधक जो हिन्दू शब्द है वह भी यवन संकेतित है। इस कारण हिन्दू कहावना सर्वथा अनुचित है। यह निर्णय श्री काशी मध्य टेढ नीम तले श्रीमहाराजाधिराज काशीराज महाराज संरक्षित धर्म-सभा में सब लोगों ने किया। हस्ताक्षरः—

[१] श्री विश्वनाथ शर्मा [२] श्री गृह मुन शर्मा [३] श्री प्यारे शर्मा [४] श्री छमकी शर्मा [५] श्री रामशरण शर्मा [६] श्री हर्षनाथ शर्मा [७] श्री बाबूनाथ शर्मा [८] श्री सवनमुनि शर्मा [९] श्री हरिदत्त शर्मा [१०] श्री महताब नारायण शर्मा [११] श्रीभानु शर्मा [१२] श्री आदिनाथ शर्मा [१३] श्री नन्दिपत शर्मा [१४] श्री श्यामलाल शर्मा [१५] श्री प्रभुनाथ शर्मा [१६] श्री हरिहर शर्मा [१७] श्री द्विवेदी वस्त

राम शर्मा [१८] श्री ताराचरण शर्मा [१९] श्री राधामोहन शर्मा [२०] श्री नवीन नारायण शर्मा [२१] श्री कैलाश शर्मा [२२] श्री कालिका प्रसाद शर्मा [२३] श्री मन्मोहन शर्मा [२४] श्री स्ववँश शर्मा [२५] श्री गुदम शर्मा [२६] श्री रघुनन्दन शर्मा [२७] श्री चन्द्र-शर्मा [२८] श्री कीर्तिनाथ शर्मा [२९] श्री गोपाल शर्मा [३०] श्री द्वारिकानाथ शर्मा [३१] श्री राजाराम शास्त्री [३२] श्री बाल शास्त्री [३३] श्री शाखाराम भट्ट [३४] श्री वासुदेव शास्त्री [३५] श्री चन्द्रशेखर शर्मा [३६] श्री देवदत्त शर्मा [३७] श्री घनश्याम शर्मा [३८] श्री रमापति शर्मा [३९] श्री श्यामाचरण शर्मा [४०] श्री जागेश्वर शर्मा [४१] श्री गम्बिकादत्त शर्मा [४२] श्री चण्डीदत्त शर्मा [४३] श्री दुर्गाप्रसाद शर्मा [४४] श्री गोस्वामी पँ० रघुनाथप्रसाद [४५] श्री बाबा शास्त्री।

हिन्दू शब्दो हि यवनेष्वधर्मिजन बोधकः।
अतोनार्हतितच्छब्द बोध्यताँसकलोजनः॥
पापिनाँ पापी यवनः सङ्केतं कृतवान्नरः।
नोचितः स्वीकृतोस्माभिर्हिन्दूशब्द इतीरितः॥
काफ़िर को हिन्दू कहत, यवन स्व भाषा माँहि।
ताते हिंदूनाम यह, उचित कहइबो नांहि॥

इस व्यवस्था के अनुसार ही काशी के बड़े २ मन्दिरों के दर्वाज़ों पर 'आर्येतराणां प्रवेशो निषिद्धः' लिखा गया है। ऐसी अवस्था में अब तक 'आर्य' शब्द को सर्वत्र न अपनाये जाने का कारण दुराग्रह के अतिरिक्त और क्या हो सकता है?

एक और व्यवस्था

हिन्दू-महासभा ने देशोद्धार का जो थोड़ा बहुत काम अपने हाथ में लिया था वह काशी में ऊंघने वाले पण्डितों को रुचा नहीं। उन्हों ने महासभा पर क्रुद्ध हो कर काशी से हाल ही में प्रकाशित होने वाले 'वर्णाश्रम' पत्र में सभा के विरुद्ध एक व्यवस्था प्रकाशित की है। इस व्यवस्था के नीचे म० म० लक्ष्मण शास्त्री द्रविड, म० म० पं० नित्यानन्द पर्वती, म० म. पं० वामाचरण भट्टाचार्य. पं० अम्बादास प्रभृति विद्वानों के हस्ताक्षर हैं। व्यवस्था के शब्द ये हैं:—

"वर्णाश्रमधर्म्मानुयायिनां पुरतो निवेदनं काशीस्थविदुषाम्। पञ्चषेभ्योवत्सरेभ्यः प्रादुर्भावमुपगता हिन्दुमहासभा नाम्नी काचन समितिः पाश्चात्यशिक्षासंस्कृतमतीनां कतिपयानां प्रयत्नेन क्रमशः स्वयं सनातनधर्मविरोधं प्रकटयन्ती श्रद्धालूनां सनातनधर्मानुयायिनां मनः सुकर्यञ्चिन्सन्देहस्याम्तरं प्रयच्छन्ती त्यस्माभिः स्पष्टाक्षरेणेदमावेद्यते यदियं सभा सर्वथा नास्माकमनुमता प्रत्युत सनातनधर्मद्रुमस्यकुठाराघात स्वरूपेति। कैश्चिदपि धर्मश्रद्धालुभिस्तत्र सहयोगो न देयः। तथा धर्मव्याजेनाधर्मस्य सर्वत्र प्रचारं विदधती भारतधर्म म(हा)मण्डलप्रभृति समितिरपि न सहयोगार्हा। इत्थमाभिः सभाभिरितः परमपि सनातन धर्मविरोधः कथमपि क्रियेत चेतत्रास्माभिरवश्यं विरोधः करिष्यत इति॥"

इस घोषणा का अभिप्राय यह है कि कुछेक अंग्रेज़ी पढ़े लिखे लोगों ने सानातन-धर्म रूपी वृक्ष की जड़ों पर कुल्हाड़ा चलाने के लिये हिन्दू महासभा चलाई है। यह धर्म के नाम पर अधर्म का प्रचार कर रही है, इस लिये इस के साथ कोई सहयोग न दे।

वाहरे पण्डितो! जब तुम से लोग शास्त्रों के ठेकेदार बने तब शास्त्रों का बेड़ा ग़र्क न होता तो और क्या होता! हिमाकत की भी कोई हद्द होती है, तुम उसे भी पार कर गये। हिन्दू महासभा पहले तो कर ही कुछ नहीं रही और जो कुछ थोड़ा बहुत कर भी

रही है उसे भी तुम बिना किसी शास्त्र का हवाला दिये मौलवी-मुल्लाओं की तरह फ़तवे निकाल निकाल कर ही रद्द करना चाहते हो ! किस भूल में पड़े सो रहे हो ? ज़रा आंख खोल कर तो देखो कि तुम किसी को याद भी हो या नहीं ! ज़माना तुम से बहुत आगे निकल गया है। जब तुम खुर्राटे लगा रहे थे तभी आर्य समाजी तुम्हारे वेद शास्त्रों को बग़ल में दाब कर ज़माने के साथ हो लिये थे। जल्दी २ उठ कर धोती सम्हाल कर दौड़ो-ज़माना और वेद-शास्त्र तुम से बहुत आगे निकल चुके हैं !

औरङ्गजेब की घोषणा

भारतवर्ष के इतिहास में औरंगजेब का नाम बहुत बदनाम है। कहा जाता है कि उसने हिन्दुओं पर बहुत अत्याचार किये, देवमन्दिरों को तुड़वाया और तीर्थस्थानों को भ्रष्ट किया। इस समय तक जो इतिहास लिखे गये हैं, उन में औरङ्गजेब एक क्रूर, धर्मान्ध और अत्याचारी बादशाह है। परन्तु धीरे धीरे कुछ ऐसे ऐतिहासिक तथ्य प्रगट हो रहे हैं, जो औरङ्गजेब के इतिहास पर नया प्रकाश डालते हैं। अभी कुछ समय हुआ, शारदापीठ के श्री जगद्गुरु शङ्कराचार्य ने एक व्याख्यान में कहा था कि औरङ्गजेब ने अनेक मन्दिरों पर इस लिये आक्रमण किया क्योंकि वे राजनीतिक विद्रोहियों के अड्डे बने हुवे थे और उन का प्रयोग औरङ्गजेब के शासन को उलटने के लिये किया जाता था। अभी बिलायत के 'इस्लामिक रिव्यू' में औरङ्गजेब की एक पुरानी घोषणा प्रकाशित हुई है, जिस में बादशाह की ओर से कहा गया है कि:—

"हम घोषणा करते हैं कि हिन्दुओं के पूजा-स्थान और मन्दिरों की रक्षा की जावे और हमारे नोटिस में यह बात आई है कि कुछ लोगों ने बनारस के ब्राह्मणों के साथ क्रूरता और घृणा का व्यवहार किया। क्योंकि इस बात से हिन्दुओं को बहुत चोट पहुंचती है हम घोषणा करते हैं कि इस घोषणा की तारीख से हिन्दुओं को किसी प्रकार न सताया जावे और उनकी पूजा में बाधा न डाली जावे। हमारी हिन्दु प्रजा शान्ति और समृद्धि से युक्त हो यह हमारी कामना है"

यदि यह घोषणा सत्य है, तो औरङ्गजेब के इतिहास में बहुत से परिवर्तन करने की आवश्यकता होगी।

हिन्दू-धर्म

(१)

कलकत्ता की हाईकोर्ट के जज मि० पेज ने, जोगेन्द्रनाथ खान नामक व्यक्ति को अपनी स्त्री लीलावती की हत्या करने के अपराध में, मृत्यु-दण्ड दिया है। इस हत्या की कहानी विचित्र है। दो साल हुए ८ वर्ष की उम्र में लीलावती का विवाह जोगेन्द्र के साथ हुवा था परन्तु अभी तक लीला अपने माता पिता के साथ ही कलकत्ते में रहती थी। जोगेन्द्र, लीला को मिदनापुर ज़िले में अपने स्थान पर लिवा ले जाने के लिये ६ फरवरी को कलकत्ते पहुँचा परन्तु क्योंकि अगले पांच दिन अशुभ थे इसलिये लड़की के माता पिता ने जोगेन्द्र से कुछ दिन वहीं विश्राम करने का अनुरोध किया। जोगेन्द्र

ने स्वीकार कर लिया। पहली दो रात दोनों एक ही कमरे में सोये परन्तु तीसरी रात लड़की ने अपने पति के कमरे में सोने से इन्कार कर दिया। उस रात वह अपनी माता के साथ सोयी। १२फ़र्वरी को रात को जोगेन्द्र ने पान मंगवाया। उस की सास ने लड़की के हाथ पान भेज दिया। जोगेन्द्र ने कमरा बन्द कर लिया और कुछ देर बाद लड़की की माता को प्रहारों की आवाज़ तथा चीख सुनाई दी। वह भागी हुई कमरे की तरफ लपकी परन्तु क्या देखती है कि उस की प्यारी पुत्री औंधे मुंह खून में लतपत पड़ी है।

नर-पशुओं के हाथ में आठ २ वर्ष की कोमल बालिकाएँ सुपुर्द कर देने का यह नतीजा है। जोगेन्द्र के पैशाचिक कृत्य को सुन कर किस का हृदय कांप नहीं उठता, परन्तु जिन माता पिताओं ने अपनी कन्या को इतनी छोटी उम्र में व्याह दिया, उन के सिर से यह खून का पाप जन्म-जन्मान्तरों में भी नहीं उतर सकता। जोगेन्द्र को तो फांसी मिल गई परन्तु उस पाप का प्रारम्भ करने वाले लड़की के माता पिता फिर से वैसे ही पाप दोहराने के लिये समाज के भीतर खुले फिरेंगे! पाप करने वालों में से कुछेक को सज़ा मिल गई, परन्तु वह पाप फिर डंके की चोट पांव पसार कर वैसे का वैसा बना रहेगा-क्या इस से भी ज़ियादह कोई अनर्थ हो सकता है ?

सरकार का कहना है कि वह बाल विवाह को बन्द नहीं कर सकती। धार्मिक मामलों में हस्ताक्षेप करना उसका काम नहीं है। हम इस बात को भली भांति समझते हैं कि हमारी सरकार का यह बहाना मात्र है। जहां सरकार को अपना काम बनता दीखता है वहां वह इन बारीकियों को ताक में रख देती है परन्तु फिर भी सरकार के पास इस काम में हस्ताक्षेप नैं करने का बहाना तो बना ही हुआ है। परन्तु हिन्दुओ ! तुम बतलाओ, तुम्हारे पास क्या बहाना है ? कौन सा वेद, कौन सा शास्त्र दस वर्ष की लड़की को एक नर-पिशाच के साथ सोने की आज्ञा देता है ? ब्रह्मचर्य का नाम लेने वाले ऋषियों की सन्तान की यह दुरवस्था ! यह दुर्गति !! ऐसा हिन्दू धर्म कब तक चल सकेगा ?

(२)

रोमन रोलैण्ड ने 'महात्मा गान्धी' पर एक पुस्तक लिखी है जिस के १४० पृ० पर एक नवयुवक का उल्लेख है। युवक ने ब्राह्मण होते हुए भी, महात्मा जी के विचारों से प्रभावित हो कर, भङ्गियों में काम करना स्वीकार किया।

इस पुस्तक की समालोचना युरोप में, स्विट्ज़रलैण्ड के पादरी गैसटन रोज़लैट ने की है। ये पादरी महोदय दक्षिणी भारत के मुल्की शहर में बहुत देर तक कार्य करते रहे हैं। पादरी महोदय इस घटना के विषय में लिखते हैं कि घटना तो निस्सन्देह सत्य है परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि वह युवक जिस के हृदय में अन्त्यज जातियों के सुधार की आग सुलग चुकी थी, हिन्दू रहता हुआ इस

कार्य को नहीं कर सका। हिन्दू-धर्म अछूतों से छुआ जाकर स्वयं अछूत हो जाता है। उस नवयुवक को इस कार्य के करने के लिए ईसाई हो जाना पड़ा। ईसाई धर्म की शरण में आकर वह अपने उद्देश्य को पूर्ण कर सका।

यदि यह घटना सत्य है तो हिन्दू-धर्म का दिवाला बोल गया समझना चाहिये। हमें आश्चर्य है कि वह युवक ईसाई होने की अपेक्षा आर्य-समाजी क्यों नहीं होगया। परन्तु यदि यह घटना असत्य भी हो तो भी इस में सन्देह नहीं कि हिन्दू धर्म के वर्तमान स्वरूप में किसी भी हिन्दू-नव-युवक के सन्मुख यह समस्या उपस्थित हो सकती है। ऐसी अवस्था में अपने को हिन्दू कहलाना छोड़ने के अतिरिक्त दूसरा कोई चारा नहीं दिखाई देता।

पहले कुंए आदि पर चढ़ने के लिए हमारे भाई ईसाई-मुसलमान होते थे, अब अछूतोद्धार आदि धर्म-कार्य करने के लिये भी हिन्दू-धर्म को छोड़ना पड़ेगा। तंग-दिल हिन्दू, अछूतों को तो घृणा की दृष्टि से देखते ही हैं परन्तु उन में काम करने वालों को भी 'अछूत' कह दिया करते हैं। जिस धर्म की ऐसी हालत होजाय उस की ज़िन्दगी के दिन थोड़े ही रह गये समझने चाहियें।

—:*:—

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—गर्मियां समाप्त हो रही हैं। आकाश में बादल घिरने लगे हैं। थोड़ी बहुत बूंदें भी बरस चुकी हैं। कुल-वासी उत्सुकता से वर्षा ऋतु की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वर्षा ऋतु में गुरुकुल भूमि की जो अपूर्व शोभा होती है, उसे कौन कुल-पुत्र भुला सकता है। गङ्गा निरन्तर बढ़ रही है। पहले पुल टूटे थे, नाव चलती थी। अब नाव भी नहीं चल सकती, गङ्गा काफी बढ़ गई है। तमेड़ चलने लगी है।

बन्ध की मुरम्मत—पिछले वर्ष बाढ़ के कारण गङ्गा का रुख बहुत बदल गया है। अब गङ्गा की बङ्गले पर सीधी टक्कर लगती है। उधर गङ्गा का बन्ध बहुत कमजोर हो गया है। यदि अभी से कुछ इलाज न किया गया, तो आगामी वर्षा-ऋतु में बंगले का बच सकना बहुत कठिन है। यही ध्यान में रख कर टूटे-फूटे बन्ध की मुरम्मत कराने का उद्योग हो रहा है। सब कुलवासी-ब्रह्मचारी और उपाध्याय इसके लिये दत्त-चित्त हो कर कार्य कर रहे हैं। स्वयं नाव पर गङ्गा पार से पत्थर ढोकर लाते हैं और बन्ध की मुरम्मत करते हैं। बन्ध के ठीक होने में लगभग एक सप्ताह लगेगा, इस समय के लिये पढ़ाईयां बन्द कर दी गई हैं।

आयुर्वेद महाविद्यालय—गुरुकुल का आयुर्वेद महाविद्यालय निरन्तर उन्नति कर रहा है। इस वर्ष इस महाविद्यालय के शिक्षा वर्ग में वृद्धि की गई है। कविराज श्री. दिनेशानन्द जी भट्टाचार्य आयुर्वेद के और श्री. डा० अमरनाथ एम.बी.बी.एस. पाश्चात्य चिकित्सा के नवीन उपाध्याय नियत हुवे हैं। शिक्षक वर्ग में इन दो विद्वानों की वृद्धि निस्सन्देह बहुत लाभ कारक होगी।

इस वर्ष आयुर्वेद को क्रियात्मक शिक्षा पर भी बहुत ध्यान दिया जा रहा है। शल्यतन्त्र और शरीर विद्या की शिक्षा के लिये शव-छेदन(डिसेक्शन) का प्रबन्ध हो गया है। एक सप्ताह के भीतर ही तीन लाशें आ चुकी हैं, और आयुर्वेद के विद्यार्थी इन से बहुत लाभ उठा रहे हैं।

गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय की महत्ता अब बाहर भी स्वीकृत की जाने लगी है। पिछले दिनों संयुक्त प्रान्त की सरकार ने 'भारतीय चिकित्सा' की उन्नति के साधनों पर विचार करने के लिये एक 'समिति' नियत की थी। हर्ष की बात है कि 'गुरुकुलीय आयुर्वेद महाविद्यालय' के अध्यक्ष भी इस समिति के सदस्य नियत हुवे हैं।

व्रताभ्यास की शिक्षा—गुरुकुल की परीक्षाओं के नियन्त्रण के लिये 'शिक्षा-पटल' देर से बन चुका है। इस वार आर्यप्रतिनिधि सभा पंजाब के साधारण अधिवेशन के समय शिक्षा–पटल की भी बैठक हुई जिस में ब्रह्मचारियों के गुरुकुलीय जीवन को अधिक उच्च बनाने के उद्देश्य से पाठविधि में एक नवीन विषय का प्रवेश सर्वसम्मति से निर्धारित हुआ। यह विषय है–व्रताभ्यास'। जिस प्रकार वेद, साहित्य, अंग्रेज़ी आदि अन्य विषयों में उत्तीर्ण होना आवश्यक समझा जाता है, इसी प्रकार व्रताभ्यास में उत्तीर्ण होना भी आवश्यक समझा जायगा। ब्रह्मचारियों को नित्य नियमों के यथावत् पालन करने पर, शिष्टाचार पूर्वक आज्ञापालन करने पर तथा अन्य साधारण व्यवहार के आधार पर अङ्क दिये जावेंगे जिन का महत्व उतना ही होगा जितना किसी अन्य विषय के अङ्कों का होता है। इस विषय में प्रतिमास अङ्क दिये जावेंगे और उन की सूचना ब्रह्मचारियों के संरक्षकों को दी जाती रहेगी। आशा की जाती है कि इस प्रकार गुरुकुलीय –जीवन को शिक्षा का आवश्यक अङ्ग बनाने का परिणाम अच्छा निकलेगा।

गुरुकुलीय सभायें— पिछले दिनों 'गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का सातवां वार्षिक अधिवेशन बहुत समारोह के साथ मनाया गया। श्रीयुत स्ना० सत्यकाम जी विद्यालङ्कार सभापति थे। अनेक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुवे। सम्मेलन के साथ 'कवि दरबार' और 'कविता सम्मेलन' भी हुवे। एक प्रस्ताव के अनुसार गुरुकुल में 'हिन्दी साहित्य मण्डल' की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य कुल वासियों में हिन्दी साहित्य की चर्चा के साधन उपस्थित करना है। आशा है, यह मण्डल अपने उद्देश्य में सफल होगा और कुलवासी इस से बहुत लाभ उठा सकेंगे।

इस मास 'संस्कृत कविता सम्मेलन' भी पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार के सभापतित्व में सफलता पूर्वक किया गया। सब सभायें अपने साप्ताहिक अधिवेशन नियम पूर्वक कर रही हैं। पत्रिकायें भी सफलता पूर्वक प्रकाशित हो रही हैं।

श्री प्रो० रामदेव जी— गुरुकुल के उपाचार्य श्री प्रो० रामदेव जी का स्वास्थ्य बहुत अच्छा नहीं है। स्वास्थ्य लाभ करने और पूर्ण विश्राम के लिये उन्हें डाक्टरों ने शिमले में रहने की सलाह दी है। इसी के अनुसार प्रोफेसर जी शिमले चले गये हैं, और सम्भवतः दो तीन महीने तक वहीं पर विश्राम करेंगे।

अलंकार के प्रथम वर्ष के आय व्यय का ब्योरा (आय)

मास	दान तथा चन्दा	चन्दा	विज्ञापन	कागज़ बिक्री	शताब्दी अंक		अन्य विभाग	योग
चैत्र १९८१	५६)	×	×	×	×	वर्ष भर में स्नातकमण्डल के लिये डाकव्यय	×	५६)
बैशाख, ज्येष्ठ	५७॥)	३७॥)	×	×	×		×	९५)
आषाढ़	१२२।=)॥।	२२३)	×	×	×		×	३४५।=)॥।
श्रावण	४६=)	१४३॥)॥	५)	७॥)	×		॥)॥।२	२०२॥≡)।२
भाद्रपद	२)	२१॥)	६)	×	।-)		×	२९॥।-)
आश्विन	६॥।=)	३१)	×	×	×		×	३७॥।=)
कार्तिक पौष	१०)	१२=)	×	×	×		६॥।=।	२९)
माघ	×	७३)	×	×	४-)		१२)	८९-)
फाल्गुन	५)	६८)	७)	॥≡)॥	५८॥≡)		१६)	१५५।≡)॥
चैत्र	×	६४।=)	२९)	८।≡॥	४।≡)		×	१०६।)॥।
बैशाख, ज्येष्ठ	५)	१२७-)	१२)	१५॥)	४३।=)	३।≡)	२६॥-)	२२२॥।≡)
योग	२१३॥।=॥।	८०१-)॥	५९)	३२≡)	११०॥।=)	३।≡)	६२≡)॥।२	१३८२॥।)२

(व्यय)

मास	कागज़	छपाई	डाकव्यय	[illegible]	[illegible]	अन्य विभाग	योग
चैत्र १९८१	×	×	॥)	×	॥।)॥।	×	१।)॥।
बैशाख, ज्येष्ठ	×	६॥।)॥।	११-)	×	१।)	×	१९-)॥।
आषाढ़	×	६०=)॥।	२७॥≡॥	×	×	×	८८=)
श्रावण	१७३।≡	६२=)॥	७॥≡)॥	×	×	×	२४४-)
भाद्रपद	×	५५॥।)	१९॥-)॥	×	४॥।-)	×	८०=)॥।
आश्विन	×	×	४।=)॥।	×	६॥-)॥	×	११)
कार्तिक-पौष	१७७≡	६०।)	११।-)॥	×	×	×	२४८।॥)।
माघ	×	×	१७-)	१४-)॥।	×	११॥।=)	४३)॥।
फाल्गुन	×	१२७॥।=)	१८)॥	२॥)॥	×	९॥=)	१५८-)
चैत्र	×	×	१४)॥	५७)	×	१८॥।≡	८९॥।≡)॥
बैशाख, ज्येष्ठ	×	२७८॥≡)	१९)	७५)	७॥।-)	२१॥।)॥।२	४०२॥)॥।२
[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]	[illegible]

वर्ष २, अङ्क २ Registered No A 1340

ओ३म्

श्रावण १९८२] Gurukula Kangri [जुलाई १९२५

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

मुख्य संपादक—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विषय सूची

विदेश से ४) एक प्रति का ।-) वार्षिकमूल्य ३)

वर्ष २, अङ्क २]　　मास, श्रावण　　[पूर्ण संख्या १४

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५

पराधीन-जीवन

(श्री हरि)

[१]

दर दर के बन दीन भिखारी, अलख जगाना भी अच्छा।
पाटाम्बर को छोड़ गेरुये, वसन रंगाना भी अच्छा॥
महलों से मुख मोड़ विपिन में, कुटी बनाना भी अच्छा।
पद पद पर निज प्रिय जीवन की, त्रुटी दिखाना भी अच्छा॥

[२]

वन वन के बन वनचर दुःख के, दिवस बिताना भी अच्छा।
प्रियजन के सम खग मृग गन से, मन बहलाना भी अच्छा॥
कन्टक-कुसुम, दुःख सुख, सब कुछ, जीवन के मग में अच्छा।
पराधीन हो कर जीना ही, नहीं [illegible] में अच्छा॥

संसार के धर्मों की कुछ समानताएं

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

संसार के धर्मों में इतनी समानता है कि उन के तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी की प्रवृत्ति कभी खण्डन की तरफ़ नहीं झुकती। गम्भीर अध्ययन करने का यही सहज परिणाम निकलता है कि विद्यार्थी सच्चाई के विश्व-व्यापी स्वरूप की खोज करने लगता है। उसे सब धर्मों में सृष्टि-चक्र के एक ही सिद्धान्त भिन्न २ रूप धारण किये हुए दिखाई देते हैं। धर्मों के खोज-पूर्ण पाठ से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि भिन्न २ धर्म, एक ही धर्म के पुत्र-पौत्र हैं, उन में तात्विक भेद नहीं। धर्मों की इस समानता को अनेक प्रमाणों से पुष्ट किया जा सकता है परन्तु हम यहां इस्लाम, ईसाइयत, पारसी धर्म तथा वैदिक-धर्म की कुछ मोटी २ समानताओं को ही पाठकों के सन्मुख रखेंगे।

१. मुसल्मानों का विचार है कि मनुष्य से सूक्ष्म सत्ता रखने वाले फ़रिश्तों का शरीर आग का बना होता है। ईसाइयों तथा यहूदियों का भी यही ख़्याल है। परन्तु इस विचार की जड़, संस्कृत का 'देव' शब्द है। 'देव' की व्युत्पत्ति करते हुए निरुक्तकार लिखते हैं-देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा। देव का अर्थ दान देना, प्रकाश वा द्युति-युक्त होना है। हम इस बात को मानने के लिये तैयार नहीं कि वैदिक साहित्य में फ़रिश्तों की कोई पृथक् सत्ता मानी गई है। परन्तु हां, देवताओं की कल्पना से ही फ़रिश्तों की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है और फ़रिश्तों के शरीरों का अग्नियुक्त होने का आधार 'देव' शब्द का यौगिक अर्थ ही है-यह स्पष्ट है। वैदिक साहित्य में देव-कल्पना भिन्न २ प्राकृतिक शक्तियों के ऊपर की गई थी, पृथक् चेतन सत्ताओं को लक्ष्य में रख कर नहीं। प्रकरणप्राप्त न होने के कारण इस स्थापना का विस्तृत विवेचन यहां नहीं किया जा सकता।

फ़रिश्तों के विषय में यह विचार भी पाया जाता है कि वे आस्मान में रहते हैं। निरुक्त ७। १५ में भी 'देव' [फ़रिश्ते] की व्युत्पत्ति करते हुए लिखा है—'द्यु स्थानो भवतीति वा' —अर्थात्, जो द्यु [आस्मान] में रहे उसे देव कहते हैं। इस में सन्देह नहीं कि देवतावाद का वैदिक उच्च विचार फ़रिश्तों के विचार के रूप में आकर बहुत गिर गया है, परन्तु उस पर तो अब अफ़सोस ज़ाहिर करने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया जा सकता। हमारा प्रतिपाद्य विषय यहां इतना ही है कि फ़रिश्तों का मानना मुसल्मानों तथा यहूदियों में ही नहीं परन्तु अपने यहां भी पाया जाता है।

२. मुसल्मानों तथा पारसियों के धर्म ग्रन्थों के अनुसार स्वर्ग में प्रविष्ट होने से पहले एक पुल पर से गु-

ज़रना पड़ता है। यह पुल नरक के ऊपर से हो कर जाता है और बाल से भी बारीक तथा तलवार की धार से भी तेज़ है। मुसलमान लोगों को मुहम्मद इस पुल पर से हाथ पकड़ कर पार गुज़ार देगा परन्तु इतर धर्मावलम्बी इस की तेज़ धार पर न चल सकने के कारण नीचे नरक में ढुलक पड़ेंगे। मुहम्मद ने इस पुल का नाम 'अल-सिरात' रखा है। यहूदी भी इस प्रकार के पुल में विश्वास करते हैं और उसे तागे के समान बारीक बतलाते हैं। पारसियों के यहां भी यह विचार जैसे का तैसा पाया जाता है और वे अपनी भाषा में इस पुल को 'पुल-चिनवद' कहते हैं। कठोपनिषद् के १ अध्याय की ३य वल्ली में धर्म के मार्ग पर चलने की विषमता को दर्शाते हुए लिखा है —क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति। अर्थ स्पष्ट है— वह रास्ता दुर्गम है, छुरे की तेज़ धार पर चलने के समान है। इस में सन्देह नहीं कि उपनिषद् में यह विचार अभी आध्यात्मिक भाव की अवस्था में ही पाया जाता है परन्तु इस के वर्णन करने का प्रकार बिल्कुल वही है जो मुसलमानों, यहूदियों तथा पारसियों के यहां पाया जाता है। धर्म के मार्ग पर चलना छुरे की तेज़ धार पर चलने के समान है—यही भाव अवस्थान्तर तथा देशान्तर में जा कर स्वर्ग में ले जाने वाले पुल के रूप में परिणत हो गया परन्तु उस का वर्णन-प्रकार फिर बहुत कुछ वैसा ही बना रहा।

३. मुसलमानों का कथन है कि 'अल-सिरात' पर से गुज़र कर मनुष्य बहिश्त में पहुँचता है जो कि सातवें आसमान पर स्थित है। मुसलमानों के बहिश्त में बाग़ बग़ीचे, दूध और शहद की नदियां हैं और साथ ही उन्हें ७० हूरें भी मिलती हैं। यहूदियों के स्वर्ग का भी यही हाल है—उन्हें भी अन्य सब भोग्य पदार्थों के साथ यौवनारूढ़ कन्याएं मिलती हैं। पारसी स्वर्ग को बहिश्त कहते हैं और स्वर्ग की अप्सराओं को हूरें-बहिश्त कहते हैं। यह हूरों का सर्व-व्यापी विचार भी वैदिक साहित्य में पाया जाता है। पहले तो 'हूर' शब्द ही 'अप्सरा' से निकला है। 'अप्सरा' शब्द का 'अप्' उड़ गया है और 'स' को 'ह' हो गया है। 'सरा', 'हरा' और 'हूरा', 'हूर' बन गया। अप् का उड़ जाना कोई अचम्भे की बात नहीं। शब्द-शास्त्र मे ऐसे अनेक उदाहरण पाये जाते हैं जहां लम्बे शब्दों को संक्षिप्त कर लिया गया है। वेद में 'प्सर' शब्द का प्रयोग 'रूप' अर्थ में आता है। प्सर से ही अप्सरा बनता है। प्सर से ही हूर बनता है। प्सर के स उड़ जाने से 'परी' तथा परी से अंग्रेज़ी का फ़ेयरी (Fairy) शब्द बनता है। इस के अतिरिक्त स्वर्ग में अप्सराओं के मिलने का विचार उपनिषदों में भी पाया जाता है। कठोपनिषद् के प्रथमाध्याय की प्रथम बल्ली में नचिकेता की कथा पायी जाती है। इस कथा के अनुसार नचिकेता के पिता वाजश्रवस् ने यज्ञ कर के सब कुछ दान में दे दिया। यह देख कर नचिकेता के हृदय में भी श्रद्धा उमड़ पड़ी और वह अपने पिता से

पूछने लगा कि मुझे किस को दोगे। पिता ने कहा-- तुम्हें मृत्यु के सुपुर्द करूंगा। नचिकेता को मृत्यु के पास पहुँचा दिया गया। मर कर नचिकेता स्वर्ग लोक में पहुंचा तो उसके सामने स्वर्ग के प्रलोभन रखे गये। उसे कहा गया, तुम्हें जिस किसी वस्तु को आवश्यकता है वही तुम्हारे लिये प्रस्तुत की जा सकती है। अन्त में कहा है--
"इमा रामाः सरथाः सतूर्याः नहीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः। आभिः प्रत्ताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः"
हे नचिकेता! इस स्वर्ग लोक में ये मद-मत्त रमणियें तुम्हारी सेवा करने के लिये तैयार हैं, इन के साथ विहार करते हुए चैन करो, इस से अधिक तुम्हें क्या चाहिये? जो उच्च आध्यात्मिक भाव इस कथा में वर्णित है उसे कठोपनिषद् की कथा में कई बार पाठकों ने सुन रखा होगा, उसे स्पष्ट करने का यह स्थल नहीं है। यहां तो इतना ही दिखाना है कि उपनिषदों का भाव किस विकृत रूप में पारसी, यहूदी तथा मुसलमान—इन सब में पहुँच गया। नचिकेता को मृत्यु के पास पहुंचने पर भिन्न २ प्रलोभन दिये गये और उन में से सब से जबर्दस्त प्रलोभन अप्सराओं का दिया गया। इस का आध्यात्मिक भाव जो है सो है ही परन्तु इस में सन्देह नहीं कि इसी भाव ने अन्य धर्मों में जा कर एक विकृत रूप धारण किया जोकि इस समय उन में हूरों के रूप में पाया जाता है।

उपनिषदों से पूर्वकालीन वैदिक साहित्य का अनुशीलन करने से भी इस कथन की पुष्टि होती है। अथर्व-वेद में कुछ मन्त्र ऐसे पाये जाते हैं जिन का यदि लौकिक संस्कृत से ही अर्थ किया जाय तो वह बिल्कुल मुसलमानों के स्वर्ग से मिलता है। अथर्व ७। सू. ३४। १३६ में निम्न मन्त्र पाया जाता है:
"घृतह्रदा मधुकूलाः सुरोदकाः क्षीरेणपूर्णा उदकेन दध्ना। एतास्त्वा धारा उप यन्तु सर्वाः स्वर्गे लोके मधुमत्पिन्वमाना उप त्वा तिष्ठन्तु पुष्करिणीः समन्ताः।" इस मन्त्र का मोटा २ अर्थ यही है कि तुझे स्वर्ग में घी, दूध, शहद, शराब आदि की नदियें मिलें। इसी स्थल के दूसरे मन्त्र में तो यहां तक लिखा है कि—"स्वर्गेलोके बहुस्त्रैणमेषाम्"—अर्थात् स्वर्ग लोक में उन्हें बहुत स्त्रियें मिलती हैं।

वैदिक साहित्य में स्वर्ग लोक का क्या अर्थ है, उपरोक्त मन्त्रों के यथार्थ अर्थ क्या हैं— इत्यादि विषयों पर यहां प्रकाश नहीं डाला जा सकता। हमारे कथन का अभिप्राय इतना ही है कि स्वर्ग का जो चित्र इतर धर्मों में पाया जाता है हूबहू वैसा ही चित्र वैदिक साहित्य में भी मिलता है। फ़रक इतना है कि ईसाइयत, इस्लाम आदि धर्मों के अनुयायी अभी तक स्वर्ग की उस कल्पना को यथार्थ मानते हैं, वैदिक धर्मानुयायी उसे आलंकारिक बताते हैं। इस भेद के रहते हुए, समानता, असाधारण है; उपेक्षणीय नहीं।

४. सृष्ट्युत्पत्ति की कथा तो सब धर्मों में इतनी मिलती है जिसका कुछ हद्दोहिसाब नहीं। इसकी विस्तृत

तुलना अगले लेख में की जायगी परन्तु क्योंकि इस लेख में कुछ साधारण तुलनाओं पर प्रकाश डाला जा रहा है इसलिये इस विषय की साधारण तथा प्रारम्भिक तुलना पर कुछ लिख देना आवश्यक प्रतीत होता है।

सृष्टि के प्रारम्भ का वर्णन करते हुए ईसाइयों की धर्म पुस्तक बाइबल में लिखा है:— And darkness was upon the face of the deep अर्थात्, प्रारम्भ में अन्धकार ही अन्धकार था। मुसल्मान तथा यहूदी भी इस स्थापना को स्वीकार करते हैं। ऋग्वेद। मण्डल १०। अनुवाक् ११। सूक्त १३० में लिखा है—'तम आसीत्तमसा गूढमग्रे'। तम का अर्थ है अन्धकार। अर्थात् प्रारम्भ में अन्धकार ही अन्धकार था। बाइबल तथा वेद दोनों का एक ही कथन है—ज़रा भी भेद नहीं।

इस के आगे बाइबल की दूसरी आयत में लिखा है— And the Spirit of God moved upon the surface of the waters अर्थात्, परमात्मा की आत्मा जल के ऊपर हिल-जुल रही थी। ऋग्वेद के उसी मन्त्र का अगला पद है—'अप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदं, तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्।' सलिल का प्रचलित संस्कृत में अर्थ है पानी, जल। अर्थात् पहले पहल जो अन्धकार से आच्छन्न सलिल (जल) था वह तुच्छ्य (परमात्मा) से अपिहित (ढका) हुआ था। कहने का अभिप्राय यह हुआ कि परमात्मा की आत्मा सलिल (जल) के ऊपर लोट रही थी। दोनों भाव अक्षरशः एक ही हैं।

फिर क्या हुआ? बाइबल में लिखा है— And God said let there be light and there was light परमात्मा ने कहा, प्रकाश हो जाय और प्रकाश हो गया। कुछ ही शब्दों के हेर-फेर से यही सिद्धान्त मुसल्मानों का है। ऋग्वेद के ऊपर उद्धृत किये हुए मन्त्र का अन्तिम पद है—'तपसस्तन्महिना जायतैकम्'। तप का सम्बन्ध ताप [Heat] से है परन्तु प्रकाश [Light] भी साधारण अवस्थाओं में ताप से मिला ही रहता है। 'तप की महिमा से' का मोटा अर्थ 'प्रकाश की महिमा से'—यह भी किया जा सकता है। इस प्रकार बाइबल के पुराणे अहदनामे की सारी की सारी पहली आयत ऋग्वेद के उपरोक्त मन्त्र का अक्षरशः अनुवाद है।

इस विषय में हमारे पास अन्य प्रमाण भी मौजूद हैं। उपर्युक्त उद्धरण में हम ने सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी विचार में तीन समानताएं दिखायी हैं:—

१. प्रारम्भ में अन्धकार का आवरण होना, २. परमात्मा का जल पर लोटना तथा ३. उच्चारण मात्र से सृष्टि का उत्पन्न हो जाना।

ये तीनों विचार बाइबल की एक आयत में जिस क्रम से पाये जाते हैं उसी क्रम से ऋग्वेद के एक मन्त्र में पाये जाते हैं। इतना ही नहीं। ये तीनों विचार वेदों से पिछले साहित्य में अलग २ भी पाये जाते हैं। प्रकृति की अव्यक्तावस्था को अन्धकारावृत सभी मानते ही हैं, यह तो दार्शनिक

विचार ही है परन्तु परमात्मा के जल पर स्थित होने को भी पुराणों में स्वीकार किया है। कौन नहीं जानता कि विष्णु महाराज समुद्र पर लेटे हुए हैं! परमात्मा का एक नाम 'नारायण' है जिस की वैदिक व्युत्पत्ति जो है सो है ही परन्तु पौराणिक व्युत्पत्ति है—'आपो नारा इति प्रोक्ताः'। 'नाराः' का अर्थ है 'जल' और 'अयन' का अर्थ है 'स्थान'। 'नारायण' का पौराणिक अर्थ हुआ—'जल जिस का स्थान हो'। अतः यदि बाइबल ने कह दिया कि परमात्मा की आत्मा जल पर तैरती थी तो वह कोई नया ख़्याल नहीं—पुराना ही ख़्याल है और अपने वेदों से ही लिया हुआ है। बाकी रहा, तीसरी समानता;

शब्द के उच्चारण मात्र से सृष्टि का उत्पन्न होना। यह कल्पना बायबल में एक अन्य स्थल पर भी पायी जाती है। जौनकी गौस्पल के प्रारम्भ में ही लिखा है—In the beginning was the Word, and the Word was with God, and the word was God...... All things were made by Him अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में शब्द था; शब्द ही ब्रह्म था और शब्द ने ही सब कुछ बना डाला। कुरान में भी लिखा है कि परमात्मा ने कहा—'कुन'—'हो जा'—और सृष्टि बन गई! यह विचार भी उपनिषदों का है। उपनिषदों में लिखा है- स पेक्ष्यत्, सोऽकामयत्, सोऽसृजत।

'शब्द' से सृष्टि रचना का विचार जौन ने ग्रीक लोगों से लिया जो कि Logos से सृष्ट्युत्पत्ति मानते थे। ग्रीक दार्शनिकों ने Logos तथा परमात्मा को अभिन्न सा समझ लिया था परन्तु यह विचार भी उपनिषदों का ही था। उपनिषदों में लिखा है—'शब्दं ब्रह्म'। शब्द ही ब्रह्म है। परमात्मा के ईक्षण मात्र से, संकल्प मात्र से, शब्द मात्र से सृष्टि की रचना हुई—यह विचार वेदों तथा उपनिषदों से प्रारम्भ हो कर संसार के सभी बड़े २ धर्मों में पाया जाता है। सम्भवतः इसी विचार से, शून्य से उत्पत्ति मानने के विचारों का भी उदय हुआ। लोगों ने समझ लिया कि यदि परमात्मा के शब्द मात्र से सृष्ट्युत्पत्ति हो सकती है तो वह अभाव से ही हुई होगी।

यद्यपि हम यहां पर वैदिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन नहीं कर रहे अपि तु केवल संसार के बड़े २ धर्मों की कुछ समानताएं ही दर्शा रहे हैं तथापि प्रकरण प्राप्त विषय तथा इस लेख का बहुत कुछ शब्द-शास्त्र से सम्बन्ध होने के कारण इस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है।

ईसाई, मुसलमान तथा यहूदी, शून्य से सृष्टि मानते हैं क्योंकि उन के धर्म-ग्रन्थों के अनुसार परमात्मा के शब्द- ईक्षण-मात्र से सृष्ट्युत्पत्ति हुई। परन्तु वे यह भूल जाते हैं कि उन्हीं के धर्म- ग्रन्थों में लिखा है कि परमात्मा की आत्मा 'जल' के ऊपर तैर रही थी। अतः उन्हीं के धर्म-ग्रन्थों के अनुसार परमात्मा के साथ 'जल' भी मौजूद था। वेदों के अनुसार 'सलिल' था। 'सलिल' शब्द का

लौकिक संस्कृत में पानी अर्थ है ही! परन्तु इस का क्या अभिप्राय? परमात्मा के साथ पानी कैसे मौजूद था?

इतरधर्मावलम्बियों को यही धोखा हुआ है। सलिल का अर्थ उन्हों ने पानी कर लिया। परन्तु नहीं, वैदिक संस्कृत के अनुसार 'सलिल' का अर्थ है—'प्रकृति'। सति लीयते इति सलिलम्-जो सदवस्था में लीन हो जाये उसे सलिल कहते हैं। प्रकृति नष्ट नहीं होती। अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं होती। सलिल से, प्रकृति से, Matter से ही सृष्टि की उत्पत्ति होती है और वह प्रकृति अनादि काल से परमात्मा के साथ रहती है—यही उक्त वेद मन्त्र का अभिप्राय है। ऋषि दयानन्द ने इसी लिये वेदों के यौगिक अर्थ करने पर बल दिया है। वेदों के रूढ़ि अर्थ करना भी एक प्रकार की मूर्तिपूजा है और उसी का परिणाम ही 'सलिल' शब्द का इतिहास है। एक भारी आध्यात्मिक सच्चाई रूढि अर्थ करने से कितनी उपहासास्पद हो सकती है, इस का क्या ही अच्छा नमूना है!

सृष्टि तथा सृष्ट्युत्पत्ति सम्बन्धी इन साधारण समानताओं के अनन्तर हम सृष्ट्युत्पत्ति की एक अपूर्व तथा आश्चर्यकारी समानता का दिग्दर्शन अगले लेख में करायेंगे।

परिवर्तन—तत्व

परिवर्तन—रत जयति सतत संसार सत्य-मय
सुन्दर सरल सुढाल सुगम सुविधा-सुकृत्य-मय

परिवर्तन है प्राण प्रकृति के अविकल क्रम का
परिवर्तन-क्रम ज्ञान मर्म है निगमागम का

परिवर्तन है हीर सृष्टि के सौन्दर्यों का
परिवर्तन है बीज विश्व के आश्चर्यों का

निभ सकता नहिं प्रकृत धर्म-क्रम परिवर्तन बिन
चल सकता नहिं प्रगति-कर्म क्रम परिवर्तन बिन

परिवर्तन का अतः अरे मत कर अवहेलन
लख ले उसका सुघर स्व-सत्ता से शुचि मेलन

पाय तत्व का ज्ञान तथ्य को स्वीय बनाले
परिवर्तन-आदर्श आशुता से अपनाले

मलिंगार
मसूरी ७.५.२५

—श्रीधर पाठक।

हिन्दुओं के प्रति

(द्रष्टा)

हिन्दू जाति को अपने विविध प्रकार के वास्तविक बल का—अपने शारीरिक बल का, ऐक्य बल का, अनुराग-बल का—यथार्थ अथवा पर्याप्त परिचय नहीं है, इसी से उस की कर्तव्य-निष्ठता में शोचनीय शिथिलता अधिष्ठित हो रही है। जाति-पांति-जनित अगणित सामाजिक भेद विभेद, छूआ—छूत, मतमतान्तर, धार्मिक-दृष्टि कोण की विभिन्नता से उत्पन्न अनेकों सम्प्रदाय और इन सब में अटूट आग्रह का अभ्यास तथा अनेकों अन्य दुःस्थितियां और अशक्तियां हिन्दुओं को उस एकीभूत आत्म-बल और सुदृढीभूत दुर्धर्षता के घनीभूत गुणों से सदैव वंचित रखती हैं जिनके बिना इस युग में कोई जाति, इतर जातियों की प्रबल प्रतियोगिता में, अपने स्वत्वों और सत्वों का सर्वांगीण संरक्षण नहीं कर सकती। इस स्थिति का मुख्य कारण हमारी अपरिर्वतन—शीलता है। हमें चाहिये कि सार्वभौम और सर्वकालीन शाश्वत धर्म पर दृढ़ता से आरूढ़ रहते हुए अपने उन उपधर्मों को जो शाश्वत धर्म के आधार पर देश और काल की स्थिति जनित अपेक्षा-पूर्ति के लिये हमारे पूर्वजों ने समय समय पर बना लिये थे और जिन में से बहुत से अब तक प्रचलित हैं, स्थिति परिवर्तन के साथ साथ, शाश्वत सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुए परिर्वर्तित करते रहें।

जातक, उपनयन, विवाह, अन्त्येष्टि संस्कार; विद्योपार्जन, धनोपार्जन; गार्हस्थ्य जीवन; तथा सामाजिक व्यावहारिक जीवन अर्थात् परस्पर में रहन सहन, उठन बैठन, खान पान, स्पर्शास्पर्श; तथा आचार विचार, आहार विहार सम्बन्धी आचरण; तथा सामान्य यात्रा, तीर्थ यात्रा, विदेश यात्रा, आदि नैत्यिक व्यापारों से सम्बद्ध जो नियम हैं, वह सभी उपधर्म हैं। इन में देश और काल की विभिन्नता से परस्पर विभिन्नता होते हुए आवश्यकता के अनुसार बार बार परिवर्तन करना एक महान धार्मिक कर्तव्य है।

हिन्दू जनता का मनन—शील शिक्षित विभाग इस महत्व-विशिष्ट रहस्य से निश्चय ही भली भांति अभिज्ञ है। क्या उस की सेवा में इस तत्व की सुविस्तृत व्याख्या करने

की आवश्यकता है ? समस्त हिन्दू समाज इस बात से न्यूनाधिक परिचित है। इतना ही नहीं वह अपने चारों ओर, और स्वयं अपने में, सर्वत्रैव प्रतिक्षण परिवर्तन प्रवर्तित होता देखता है; वह जानता है कि सांसारिक जीवन-मात्र परिवर्तन-मय है, बिना परिवर्तन के जीवन असम्भव है। संक्षेपतः मानव समाज का सारा जीवन ईश्वरीय धर्म और मानवीय उपधर्म के आधार पर ही स्थिर रह सकता है। ईश्वरीय धर्म शाश्वत और अपरिवर्तनीय है, मानवीय उपधर्म दैशिक और कालिक (अथवा कहिये स्थानिक और क्षणिक) है। उस में, दैशिक और कालिक परिस्थिति परिवर्तित होने पर परिवर्तन करना आवश्यक होता है। अतः हिन्दू जाति को जीवित रहने के लिये अपने उपधर्मों में ऐसे प्रबल परिवर्तन कर डालने चाहियें जिन में हिन्दू—सत्ता को चिरस्थिर रखने की व्यापक शक्ति हो। अपनी सारी दुर्बलताओं का स्वरूप-ज्ञान प्राप्त करके उन्हें एक एक करके तुरन्त त्याग देना चाहिये और संसार भर की सबलताओं का अनुशीलन पूर्वक संग्रह करना चाहिये; अपने रग रग और रेशे रेशे में, नस नस और हड्डी हड्डी में अविकल विश्व-प्रेम के साथ ही पर-आक्रमण-क्षम प्रबल पराक्रम का पर्याप्त समावेश करने में सदैव संसक्त रहना चाहिये। अपनी "छुई मुई" प्रकृति को "पारस" प्रकृति में परिवर्तित कर लेना चाहिये। आवश्यकता पड़ने पर "रक्तबीज" बन जाने की सुगमता संपादन कर लेनी चाहिये। अवसर उपस्थित होने पर अपने बलिष्ट वीर्य, अधृष्य धैर्य, और अक्षय्य शौर्य की संसार पर छाप लगा देने का पक्का संकल्प कर लेना चाहिये। जीवित विश्व में जीवित जातियों की धाक इसी विधि से जमती है, उस के लिये दूसरा विधान नहीं है। और यह स्पष्ट है कि किसी को न सताओ, पर जो तुम को सतावे या सताने की चेष्टा करे उसे दिखादो कि तुम को सताना एक अति कठिन व्यापार है। जातीय धाक का यही सच्चा स्वरूप है। जातीय धाक जातीय जीवन की आवश्यक सामग्रियों में है।

वर्णाश्रम प्रथा को यदि तुम अपनी जातीयता का प्राण समझते हो तो उसे उसके असली (आद्य) रूप में ले आओ, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति में प्रत्येक वर्ण की शक्ति का संनिधान करने के प्रयत्न में भी प्रवृत हो जाओ। प्रत्येक

वर्ण में चातुर्वर्ण्य की प्रवृत्ति प्रतिष्ठित हो जानी आवश्यक है। बल्कि इस से भी अधिकतर शक्ति का संचार और संग्रह प्रत्येक हृदय में हो जाना अपेक्षित है। याद रक्खो, इस जीवित-मर्त्य संश्लिष्ट सबल संसार में निर्बलों को मौत ही मौत है। सिर्फ सबलों और समर्थों ही को, जो कि मनुष्य की भांति जीने और मरने की कला में कुशल हैं और तदनुकूल आचरण के अभ्यासी हैं, जीवन के सुखों के उपभोग करने का अधिकार है।

हम को अपनी शक्ति की सत्ता विश्व की आंखो के सामने प्रदर्शित करने का अभ्यास डालना चाहिये। हम उन शक्तिशाली गुणों का गृहण क्यों नहीं करते जिन से हमारी ओर सारा संसार सदैव समुचित समादर की दृष्टि से ही देखे और कोई सुर या असुर अवहेलना की उंगली न उठा सके? हम में किस क्षमता की कमी है, किस संभावना की असंभावना है? हमें अपने को अपनी अन्तर्दृष्टि से देखना चाहिये। क्या यह आश्चर्य और लज्जा की बात नहीं है कि हमारी इतनी अधिक संख्या होने पर भी हम में इतनी अधिक निर्बलता है? सोचने का विषय है कि हमारा हिन्दू होना हमारे लिये गर्व और गौरव की बात है या लज्जा का हेतु है। जब हिन्दू हिन्दू से भेंट होती है, हृदय में कैसा भाव उत्थित होता है? क्या एक हिन्दू दूसरे हिन्दू से हमेशा दिल खोल कर और सच्चे प्रेमभाव से मिलता है? एक हिन्दू का दूसरे हिन्दू से संसार में क्या नाता है, क्या सगापन है? यदि हम अपने वास्तविक रूप को जानें और अपनी प्रकृत शक्ति को पहचाने तथा उस का उचित उपयोग करें तो हमारे लिये क्या क्या श्रेय संभव नहीं हैं?

हम बात बात में शास्त्र की दुहाई देते हैं। सारे संकटों से उद्धार का उपाय उसी में ढूँढते हैं, और यह नहीं देखते कि सारा सच्चा शास्त्र, सूत्र रूप में, हमारे सच्चे हृदय में भरा हुआ है। क्या हमारा शास्त्र हम को किसी उचित आवश्यक आचरण से रोकता है? क्या हमारा शास्त्र हमको किसी कल्याण-कर कार्य के अनुष्ठान में प्रवृत्त होने का निषेध करता है? क्या वह हमें असमर्थ, निष्क्रिय, परावलम्बी दास बनने का विधान करता है? क्या वह हमें दिन दिन दैन्य के गहन-गर्त में गिरने से बचने की विशिष्ट विधि नहीं बताता? क्या शास्त्र हम

से हमारी नर-देह-प्राप्त पवित्र प्रवृतियों तथा सहज स्वतंत्रताओं को अन्याय्यतया छीनता है ? पुरुषों को पुरुषों के और स्त्रियों को स्त्रियों के अधिकार देने में हिचकिचाता या "गोलमाल" डालता है ? अनेकों असंभवनीय संभावनाओं का प्रलोभन अथवा असंभाव्य भय दिखाकर हमारे जीवन को कठिन समस्यामय बनाता है ? उलझनों को सुलझाता नहीं, फैलाता है ? यदि हमारा शास्त्र इन या इन के ढंग की अन्य विशेषताओं से विशिष्ट है तो उस का शासन हम न मानेंगे, उस को हम बदल डालेंगे। यदि हम उसे न बदल डालेंगे तो वह हमें दल डालेगा, कुचल डालेगा। रक्षक से भक्षक और शासक से नाशक बन जायगा। हमारा शास्त्र हमारे पूर्वजों की बनाई वस्तु है। हमारे पूर्वज बहुज्ञ और दूरदर्शी अवश्य थे, परन्तु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नहीं थे। जो उन का दृष्टि-कोण था, जिस से कि उन्होंने शास्त्र की सृष्टि की थी, वह हमारा दृष्टि-कोण नहीं है। दृष्टि-कोण सर्वकाल के लिये एक नहीं रह सकता; कुछ काल के अनन्तर, परिवर्तन-रत काल-चक्र के बल से, बदल जाता है। दृष्टि दौड़ाओ और देखो कि काल क्या सृष्टि कर रहा है। पूर्व दृष्टि-कोण अब किस स्थल पर है और कितना जल्द जल्द बदल रहा है। बदले और बदलते हुए दृष्टि-कोण से वीक्षण करो और आवश्यकतानुसार निस्सार अंगों का पुनः संस्कार आरम्भ करदो। समग्र विग्रह को परिवर्तन की तीव्र शान पर चढ़ा दो या और औजारों द्वारा चिरकाल से चढ़े हुए मैल और मोरचे को घिस कर, रगड़कर, खुरचकर, निकाल डालो और नवीन संचार चलने दो।

* स्वदेशानुराग *

घिस जाय सिल पर क्यों न, चन्दन की महक जाती नहीं।
बंध जाल में भी बुलबुलों की, वह चहक जाती नहीं॥
अभिजात मित्र, अमित्र हो, दुःख बीज को बोता नहीं।
प्रिय देश के दुःख से जला, सुख नींद से सोता नहीं॥ १॥

मद-मत्त-करि-वर-वृन्द में भी, सिंह शिशु डरता नहीं।
बलिदान हो जो जन्मभू पर, वह अमर मरता नहीं॥
परमार्थ प्रेमी स्वार्थहित नित, पाप को ढोता नहीं।
प्रिय देश के दुःख से जला, सुख नींद से सोता नहीं॥ २॥

* यमयमी-सूक्त *

(ले०—प्रो० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न)

श्री पं० चमूपति जी एम. ए. ने यमयमी-सूक्त को विचित्र व्याख्या करते हुए जिस अनर्गल प्रणाली का आश्रय लिया है और जिस प्रकार वैदिक शब्दों का अनर्थ किया है, उसे देख कर अत्यन्त खेद होता है और सहसा महाभारत को यह उक्ति स्मरण आ जाती है 'बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति'। क्या इस प्रकार की व्याख्याओं से वेद का उद्धार होगा या संहार होगा? यदि इस प्रकार के व्याख्यान वेद-भक्तों को भक्ति को बढ़ाने लगे तो समझिए, वेदोद्धार का कार्य उस से भी अधिक पीछे पड़ जावेगा जितना कि ऋषि दयानन्द के प्रकाश से पूर्व था। श्री पं० सातवलेकर जी ने बड़े स्पष्ट शब्दों में श्री पं० चमूपति जी के लेख का उत्तर देते हुए उसकी अनर्थकता सिद्ध की, परन्तु पण्डित जी को फिर भी अपनी त्रुटि का ज्ञान नहीं हुआ और उन्हों ने अपने पूर्व लेख को ही परिपुष्ट करने का साहस किया। मैं समझता हूं इस में एक घुण्डी है, जब तक उस घुण्डी को नहीं खोला जाता तब तक सचाई को भी पं० चमूपति जी मानने को तय्यार नहीं होंगे। वह घुण्डी यह है कि आर्यसमाज के प्रवर्तक ऋषि दयानन्द ने यमयमी सूक्तान्तर्गत 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' की व्याख्या नियोग परक की है। जब तक यह गांठ नहीं खुलती तब तक पण्डित जी दिन को रात बना कर भी वेद-मंत्रों की व्याख्या करने में अपने आपको कृतकृत्य समझेंगे।

हम अपने इस लेख को तीन खण्डों में विभक्त करेंगे—

पहला, पं० चमूपति जी की स्थापनाओं का खण्डन। दूसरा स्वपक्ष-स्थापन। और तीसरा, तदनुसार यमयमी-सूक्त की व्याख्या करते हुए उस की पुष्टि।

यमयमी-सूक्त के सत्यार्थ को परिपुष्ट करने से पूर्व पं० चमूपति जी की अनर्गल व्याख्या की आलोचना करनी आवश्यक है। आइए, पाठकवृन्द! पहले उसकी पड़ताल करलें।

I. पूर्वपक्षी की स्थापनाओं का खण्डन।

पं० चमूपति जी ने अपने दोनों लेखों में मुख्यतया चार स्थापनायें की हैं, जिन पर उनका संपूर्ण महल खड़ा है। वे चार स्थापनायें ये हैं—

१. यमयमी पतिपत्नी हैं।

२. भ्राता स्वसा का अर्थ पति पत्नी है।

३. 'यम' सन्यासी होने वाला वैरागी है।

४. ऋषि दयानन्द 'यम' के इस भाव के पोषक हैं।

१. यमयमी पति पत्नी हैं।

१. ब्राह्मण ग्रन्थों का अनर्थ —पं० चमूपति जी ने यमयमी को पतिपत्नी सिद्ध करने के लिये ब्राह्मण-वचनों का जो अनर्थ किया है वह अत्यन्त खेद जनक है।

(क) 'अग्निर्वै यम इयं (पृथिवी) यमी आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' इस शतपथ के प्रमाण (७. २. १. १०) को प्रस्तुत करते हुए परिणाम निकालते हैं कि यहां यम यमी का संबन्ध पति पत्नी का ही प्रतिपादन किया हुआ है।

श्रीमन्! यहां तो यम यमी का कोई भी संबन्ध प्रतिपादन नहीं किया, प्रत्युत 'आभ्यां हीदं सर्वं यतम्' के अनुसार 'यम' धातु से यम यमी का निर्वचन करते हुए पुंलिङ्ग होने से अग्नि का नाम यम और पृथिवी को यमी बतलाया है। आपका यह तर्क ऐसा ही है कि जैसे कोई याज्ञवल्क्य गार्गी के समय में आर्यावर्त की स्थिति का वर्णन करते हुए यह कह दे कि उस समय याज्ञवल्क्य विद्वान् था और गार्गी विदुषी थी क्योंकि इन दोनों ने पूर्ण विद्या प्राप्त की हुई थी और इस से आप यह परिणाम निकाल लें कि याज्ञवल्क्य गार्गी का पति था।

(ख) पं० सातवलेकर जी के लेख को देख कर आपकी भी उपर्युक्त ब्राह्मण वचन से पूरी संतुष्टि नहीं हुई, अतः आपने अपनी स्थापना को पुष्ट करने के लिये फिर तैत्तिरीय ब्राह्मण का सहारा लिया। आप लिखते हैं—"लीजिए तैत्तिरीय ब्राह्मण में 'अग्ने पृथिवीपते' यह पाठ मिलता है। सम्भव है आपको आपत्ति हो कि 'पति' का अर्थ यहां स्वामी है। आगे चल कर कहा है 'तस्मिन् योनौ प्रजनौ प्रजायेय' अर्थात् इस गर्भ में मैं गर्भाधान करूं। प्रकरण उस प्रकार के पतित्व का है जिससे प्रजनन होता है"।

वाचकवृन्द! इस स्थल पर तो हमारे योग्य पण्डित जी ने विचित्र कौशल दर्शाया है। 'ईशावास्यमिदं सर्वं' में आये 'ईशा' शब्द मात्र से ईसाइओं के ईसा की सिद्धि से भी आगे बढ़ कर प्रकरण द्वारा भी यम यमी को पतिपत्नी सिद्ध कर दिया। लीजिए, पहले पं० जी के दर्शाये प्रकरण को तो देख लीजिए—

'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि, अनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिषः, ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥"

अग्ने पृथिवीपते! सोम वीरुधां पते! त्वष्टः समिधां पते! विष्णवाशानांपते! मित्र सत्यानां पते! मरुतो गणानांपतयः! रुद्र पशूनां पते! वरुण धर्मणां पते! इन्द्रौजसांपते! बृहस्पते ब्रह्मणस्पते! आरुचा रोचेऽहं स्वयम्, रुचा रुरुचे रोचमानः। अतीत्यादः स्वराभरेह, तस्मिन्योनौ प्रजनौ प्रजायेय। वयं स्याम पतयो रयीणाम्। भूर्भुवः स्वः स्वाहा॥ ३ का० ११ प्रपा० ४ अनु०

अर्थ—हे अन्नपति परमेश्वर! हमें आरोग्य तथा बल को देने वाले अन्न को प्रदान कीजिए। आत्मसमर्पक अपने भक्त को दुःख सागर से तराइए। और, हमारे मनुष्यों तथा पशुओं में बल को स्थापित कीजिए।

पृथिवी के स्वामी अग्रणी ! औषधियों के मालिक शान्तिधाम ! चन्द्नादि शुष्क इन्धनों के पति दीप्तिमान् ! दिशा उपदिशाओं के स्वामी सर्वव्यापक ! सत्य नियमों के स्वामी मित्र ! सत्य धर्मों के पति पापान्धकार-निवारक ! वसु रुद्र आदित्य आदि गणों के स्वामी जीवनाधार ! पशुओं के स्वामी रोगनिवारक! बलों के भण्डार, सामर्थ्यशाली होते हुए दुष्टों के विदारक ! महती वाणी के पति वेदपति परमात्मन् ! मैं सात्विक अन्न के सेवन द्वारा स्वयं दीप्ति से प्रदीप्त होऊं और स्वयं प्रदीप्त होता हुआ अपनी दीप्ति से दूसरों को भी प्रदीप्त करूं। हे प्रभो ! सांसारिक सुख को छोड़ कर उस पारलौकिक सुख को मुझ में धारण कीजिए, अर्थात् अभ्युदय के पश्चात् निःश्रेयस सुख को प्राप्त कराइए। ऐसे सुखसम्पन्न गृहस्थ धाम में प्रकृष्ट सन्तान को पैदा करूं। एवं, हम सब भूलोक अन्तरिक्षलोक और द्युलोक-तीनों लोकों के धनों के स्वामी बनें। प्रभो ! यह मेरी प्रार्थना सच्ची हार्दिक प्रार्थना है।

वाचकवृन्द ! यह है प्रकरण। उपर्युक्त प्रकरण के इतने स्पष्ट होते हुए पं० चमूपति जी को अग्नि तथा पृथिवी का परस्पर में पतिपत्नी संबन्ध जोड़ने की न जाने कैसे सूझी। पण्डित जी के हाथ में कोई अद्भुत करामात हो तो ऐसा होना संभव है कि अपनी माया से सूर्य को भी चांद बना कर दिखादें।

'अन्नपतेऽन्नस्य नो देहि' आदि मन्त्र यजुर्वेद के ११ वें अध्याय का ८३ वां मंत्र है। उसी की विस्तृत व्याख्या यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण ने की है।

(ग) गोपथ उ० २. ९ का 'पृथिव्यग्नेः पत्नी' प्रमाण पेश करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं "यम यमी का पतिपत्नीभाव इससे तो नितरां स्पष्ट ही है कि अग्नि (यम) पृथिवी (यमी) की पत्नी है"।

पाठकवृन्द ! जरा इस अमोघ अस्त्र की भी जांच कर लीजिए। गोपथ का उपर्युक्त प्रकरण इस प्रकार है—

आग्नीध्रो देवपत्नीर्व्याचष्टे। पृथिव्यग्नेः पत्नी, वाग् वातस्य पत्नी, सेनेन्द्रस्य पत्नी, धेना बृहस्पतेः पत्नी, पथ्या पूष्णः पत्नी, गायत्री वसूनां पत्नी, त्रिष्टुप् रुद्राणां पत्नी, जगत्यादित्यानां पत्नी, अनुष्टुप् मित्रस्य पत्नी, विराड् वरुणस्य पत्नी, पंक्तिर्विष्णोः पत्नी, दीक्षा सोमस्य राज्ञः पत्नीति।

मैं इसकी व्याख्या पण्डित जी पर ही छोड़ता हूं। वे ही बतलावें कि इस स्थल पर पतिपत्नी के संबन्ध का क्या रहस्य है? अथवा यहां 'पत्नी' शब्द किसी और ही अर्थ का द्योतक है जो आप के अभिप्राय को सिद्ध नहीं करता? एवं कोई भी ब्राह्मण-वचन पण्डित जी के मत का पोषक नहीं दीख पड़ता।

(२) सूक्त की अन्तःसाक्षि पतिपत्नी के विरुद्ध है—परन्तु इसके विपरीत यम यमी सूक्त की अन्तः साक्षि यमयमी के पतिपत्नी-भाव को पुष्ट नहीं करती, प्रत्युत उसके सर्वथा विरुद्ध ही पड़ती है। सूक्त के सातवें मंत्र में आता है 'जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्याम्'। इसका अर्थ पण्डित जी भी यही करते हैं कि

पति के लिये जायारूप में मैं अपना शरीर प्रकट करूं। इससे अत्यन्त स्पष्ट है कि 'यमो' अभी 'यम' की जाया अर्थात् पत्नी नहीं परन्तु पत्नी बनना चाहती है।

(३) यास्क पति पत्नी के विरुद्ध है—(क) यदि 'अग्निर्वै यम इयं यमी' इस शतपथ-वचन का आश्रय लेकर प्रस्तुत सूक्त में यमयमी को पति पत्नी माना जावे तो यह यास्कमत के सर्वथा विपरीत है। अग्नि और पृथिवी देवता पृथिवीस्थानीय हैं। परन्तु यास्क इस सूक्त में यम यमी को मध्यमस्थानीय देवता मानता है (निरु० ११ अ० २४ श०)।

(ख) और यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो यास्क यमी का निर्वचन 'यमस्य पत्नी' ऐसा अवश्य करते जैसा कि इसी ११ वें अध्याय में आये 'इन्द्राणी' का 'इन्द्रस्य पत्नी' और 'रोदसी' का 'रुद्रस्य पत्नी' किया है। अतः स्पष्ट है कि यास्क 'यमी' को 'यमपत्नी' नहीं समझते।

२. भ्राता स्वसा का अर्थ पति पत्नी है।

जो विद्वान् अपनी माया से यम यमी को उपर्युक्त ब्राह्मण-वचनों में पति पत्नी दिखला सकते हैं, उनके लिये यह कोई कठिन कार्य नहीं कि भ्राता को पति और स्वसा को पत्नी बनादें। आइए, इस की भी परीक्षा कर लें।

भ्राता—सायण और यास्काचार्य के प्रमाण देते हुए आपने भाई के अतिरिक्त भ्राता के भर्ता, पोषक, भागहर्ता-ये अर्थ और दिये हैं। और लिखा है "लौकिक भाषा में भ्राता शब्द का प्रयोग केवल भाई अर्थ में होता है, पोषक तथा भागहर्ता-इन अर्थों में केवल वेद ही में इस शब्द का प्रयोग है"।

पण्डित जी यहां कुछ भ्रम में पड़ गये हैं। वह यह भूल गये हैं कि भाई के वाचक 'भ्राता' शब्द का क्या निर्वचन है। यास्क का पाठ पण्डित जी ने पूरा नहीं दिया मैं उसे पूरा कर देता हूं—भरतेर्हरतिकर्मणो हरते भागं, भर्तव्यो भवतीति वा।

पण्डित जी! भाई के वाचक भ्राता शब्द के ही ये तीन निर्वचन हैं। भर्ता (पोषक) भागहर्ता, और भर्तव्य होने से भाई को भ्राता कहते हैं। पिता के पश्चात् भाई ही बहिन का पोषक होता है अतः वह भर्ता है, भाई दायभाग का आहरण करता है अतः वह भागहर्ता है, भाई भाई को परस्पर में एक दूसरे की पालना करनी चाहिए अतः वह भर्तव्य है।

पण्डित जी द्वारा निर्दिष्ट 'परायाहि मघवन्' (ऋ० ३. ५३. ५) और 'अस्य वामस्य पलितस्य' (ऋ. १. १६४. १) मंत्रों में आये 'भ्राता' शब्द का अर्थ भर्ता भाई ही है अन्य कुछ नहीं। 'अस्य वामस्य' मंत्र में सूर्य अशनि और अग्नि-इन तीन को भाई बतलाते हुए त्रिविध अग्नि का प्रतिपादन किया है। मंत्र तथा 'भ्राता' शब्द की विस्तृत व्याख्या लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में की है।

स्वसा—'स्वसृ' शब्द के निर्वचन में पण्डित जी यास्क (११ अ० ३२ ख०)

को बिलकुल भूल गये, क्योंकि वह उनके विपरीत पड़ता था। अच्छा, पण्डित जी जिससे बचना चाहते हैं उसे हम भी छोड़ देते हैं और उन के तर्क की ओर आते हैं।

'स्वसृ' का अर्थ अंगुलि निघण्टु-पठित है और सायण ने ऋ० १. ९२. ११ में 'स्वसारम्' का अर्थ 'स्वयमेव सरन्तीं निशाम्' किया है, अतः 'स्वसृ' का अर्थ 'अभिसारिका पत्नी' भी है।

इस अद्भुत तर्क को देखिए क्या उत्तम परिणाम निकलते हैं। 'गो' का अर्थ गाय, सूर्य, भूमि, मेघ, सूर्यरश्मि आदि है अतः 'गच्छतीति गौः' निर्वचन से 'गो' का अर्थ घोड़ा और गधा भी है। 'पिता' का अर्थ बाप, सूर्य, परमेश्वर, गुरु, उपदेशक है, अतः पालक होने से पति भी पिता है। 'माता' का अर्थ मां, परमेश्वर, प्रकृति है अतः उत्तमोत्तम भोज्य पदार्थों के बनाने से पुत्री भी माता है। भगवन्! ऐसे सुतर्क से काम नहीं चलेगा।

मैं निश्चय से कह सकता हूँ कि अभी तक किसी भी प्राचीन आचार्य ने भ्राता का अर्थ पति और स्वसा का अर्थ पत्नी नहीं किया। यदि किया है तो पण्डित जी उसका प्रमाण पेश करें। बिना प्रमाण के पण्डित जी का तर्क लंगड़ा है और भयङ्कर गढ़े में गिराने वाला है।

शब्दों के यौगिकत्व से यह अभिप्राय नहीं कि आप मनघड़न्त अर्थ करते जावें। यदि यह विचार है तो सर्वथा अशुद्ध और निरुक्त-शास्त्र के विपरीत है। इस विचार को एकदम मन से दूर कर देना चाहिए। लौकिक भाषा में पाचक, कहार (क=उदक) परिव्राजक आदि यौगिक शब्द हैं परन्तु फिर भी वे रसोइए, जल भरने वाले कहार और पर्य्यटन करने वाले सन्यासी के लिये ही प्रयुक्त होते हैं। पण्डित जी के मतानुसार प्रत्येक गृहिणी को पाचिका, सब मनुष्यों और स्त्रियों को कहार या कहारी और प्रत्येक चलने फिरने वाले स्त्री पुरुष को परिव्राजिका या परिव्राजक नहीं कहा जाता। हमें आश्चर्य है कि वेदाध्ययन के इन प्रारम्भिक नियमों की ओर तनिक भी ध्यान क्यों नहीं दिया गया।

३. यम सन्यासी होने वाला वैरागी है।

पं० चमूपति जी लिखते हैं कि प्रस्तुत सूक्त में 'यम' सन्यासाश्रम में प्रवेशेच्छुक संयमी महात्मा है। सूक्त-रचना को देखने से स्पष्टतया पता लगता है कि यम ऐसा पुरुष नहीं।

(क) लम्बे संवाद के पश्चात् १२ वें मंत्र में यम ने पतिपत्नी के संबन्ध की अन्तिम अस्वीकृति बड़े प्रबल शब्दों में प्रकाशित करदी। और संबन्ध न करने का कारण 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्' कहते हुए 'न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्' से जतला दिया कि बस मैं यह संबन्ध नहीं करूंगा।

यदि वह सन्यासी होना चाहता है और इसलिये संबन्ध नहीं करता तो वही कारण बतलाना चाहिए था, पाप कारण नहीं हो सकता। पाप तो कारण तब होता जब कि वह वनस्थ या संन्यस्त अवस्था में होता। जब तक उसने गृहत्याग नहीं किया तबतक धर्मानुसार ऋतुगामी होने पर कोई पाप नहीं। पाप की युक्ति तभी चरितार्थ हो सकती है जब कि यम यमी का संबन्ध पति पत्नी का न हो।

(ख) जब 'यमी' यम के अन्तिम वचन से निराश हो गई तब वह १३ वें मंत्र में कहती है कि मैं तेरे मन और हृदय को नहीं खींच सकी। अस्तु, तू किसी अन्य स्त्री के साथ ही संबन्ध स्थापित करेगा। उसके उत्तर में अन्तिम इस से मंत्र में यम कहता है, हां, तू किसी अन्य पुरुष को ही अपना पति बना। साफ है कि दोनों ही गृहस्थ-धर्म को तो पालन करना चाहते हैं, परन्तु परस्पर में नहीं।

इस स्पष्ट वर्णन को पं० चमूपति जी ने 'स्त्री-सुलभ तीक्ष्णता से कटाक्ष किया' और 'यम यह कहां स्वीकार करता है कि मैं दूसरी स्त्री को आलिङ्गन दूंगा' कह कर टालना चाहा है। आश्चर्य है, पण्डित जी ने यहां पर सभ्य तरीके के मनुष्य-स्वभाव को सर्वथा भुला दिया। यदि कोई स्त्री किसी दूसरे पुरुष से विवाह-संबन्ध का प्रस्ताव करती है तो अनिच्छा होने पर यही उत्तर मिलेगा कि मैं आप से संबन्ध नहीं करना चाहता। उसके साथ यह कभी नहीं कहा जावेगा मैं अमुक के साथ संबन्ध करूंगा। वैदिक वर्णन मनुष्य-स्वभाव के इस उच्च तरीके की शिक्षा क्यों न देता। अतः, १३ वें मंत्र के पूर्वार्ध का ही उत्तर देना उचित था और 'अन्या किल त्वां' इत्यादि उत्तरार्ध के लिये मौनावलम्बन ही योग्य था।

(ग) नियोग के प्रतिपादन के लिये सन्यासी होने वाले यम और उस की पत्नी का यह संवाद किसी उच्च भाव का द्योतक नहीं। यदि गृहस्थाश्रम में ही किसी महात्मा को पूर्ण वैराग्य उत्पन्न होगया हो तो वैदिक मर्यादा से परिपूरिता सहधर्मिणी का भी वैसा ही उज्वल चरित्र खींचना बड़ा भावपूर्ण होता। आप ही विचारिए कि बड़े परिश्रम से अत्यन्त खींचातानी के साथ आपके मतानुसार यमयमी-सूक्त का अर्थ करने पर भी एक यति सन्यासी की सहधर्मिणी का यह चरित्र शोभाजनक है या उपनिषत्प्रतिपादित याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी का 'येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्य्याम' इत्यादि चरित्र उज्ज्वल है? नियोग का प्रतिपादन तो किसी अन्य विधि से और इस से भी अच्छे तरीके पर हो सकता था। अतः, बलात्कार 'यम' को 'सन्यासी होने वाला' मानकर सूक्त की संगति लगाना वेद के गौरव को घटाना है।

(घ) 'नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे' आदि पराशर-स्मृति का प्रमाण उद्धृत करते हुए पं० चमूपति जी लिखते हैं कि सन्यासी हो जाने पर सन्तानाभाव में पत्नी को नियोग करने का अधिकार है। ठीक है, परन्तु आपका यम तो

सन्यासी नहीं है सन्यासी होना चाहता है। इस सूक्त के प्रथम ही मंत्र में आप 'पितुर्नपातमादधीत' वाक्य का अर्थ 'अपने पिता की सन्तति को चलाये' करते हुए पण्डित जी भी इस बात को स्वीकृत करते हैं कि 'यम' की अभी कोई सन्तान नहीं हुई।

क्या यह यम विवाह करते ही पूर्ण वैरागी होगये ? और क्या इस बात को वेद आज्ञा दे सकता है कि कोई मनुष्य विवाह करते ही बिना सन्तानोत्पत्ति किये घर छोड़ कर भाग जावे और पत्नी को दुरवस्था में डाल दे ? यदि ऐसा आकस्मिक वैराग्य है तो मैं समझता हूं वह सर्वथा झूठा वैराग्य ही होगा उसे हम सच्चा और पूर्ण वैराग्य कभी नहीं कह सकते। यदि उस वैरागी ने गृह-त्याग करना ही था तो दो मास के पश्चात् भी कर सकता था, इस अन्तर में गर्भाधान करके पितृ ऋण से मुक्त हो जाता और व्यर्थ में ही पत्नी को आपत्काल में डाल कर नियोग के लिये बाधित न करता।

४. ऋषि दयानन्द के अर्थ से विरोध।

पं० चमूपति जी ने 'यम' को सन्यासी मानकर यथा कथंचित् यमयमी-सूक्त की संगति लगाने का प्रयत्न केवल इस लिये किया है कि आचार्य दयानन्द ने सत्यार्थप्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' की व्याख्या नियोग परक की है। परन्तु पता लगता है कि ऋषि के पोषक पण्डित जी ने संगति लगाते समय सत्यार्थप्रकाश के उस स्थल को भी पढ़ने का कष्ट नहीं किया। आप ऋषि दयानन्द के नाम पर सूक्त की संगति तो लगाने बैठे, परन्तु संगति लगाते २ ऋषि के अर्थ से अत्यन्त दूर चले गये, और अपनी मनघड़न्त व्याख्या को आर्षानुकूल प्रसिद्ध किया।

अब आप ऋषि के ही शब्दों में 'अन्यमिच्छस्व' की व्याख्या देखिए—

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे तब अपनी स्त्री को आज्ञा देवे कि (सुभगे!) हे सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री! तू (मत्) मुझ से (अन्यम्) दूसरे पति को (इच्छस्व) इच्छा कर, क्यों कि अब मुझ से सन्तानोत्पत्ति न हो सकेगी। तब स्त्री दूसरे से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति करे, परन्तु उस विवाहित महाशय पति कि सेवा में तत्पर रहे। वैसे ही स्त्री भी जब रोग आदि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे, तब अपने पति को आज्ञा देवे कि हे स्वामी! आप सन्तानोत्पत्ति की इच्छा मुझ से छोड़ के किसी दूसरी विधवा स्त्री से नियोग करके सन्तानोत्पत्ति कीजिए"।

"जब पति सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे' इस वाक्य को "वैसे ही स्त्री भी जब रोगादि दोषों से ग्रस्त होकर सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ होवे" इस वाक्य के साथ मिला कर संगति लगाने से साफ पता लगता है कि यहां रोगजन्य असमर्थता ही अभिप्रेत है, सन्यासिजन्य असमर्थता

नहीं। और फिर 'परन्तु उस विवाहित महाशय पति की सेवा में तत्पर रहे' यह वाक्य ऋषि के भाव को और भी स्पष्ट कर देता है।

पण्डित जी ! यहां तो स्वामी जी को 'यम' का अर्थ 'सन्यासी' अभिप्रेत ही नहीं।

'यमाय' का अर्थ यजुर्वेद ७. ४१ में ऋषि ने 'गृहाश्रमजन्यविषयसेवनानुपरताय यमनियमादियुक्ताय' किया है और यहां सत्यार्थप्रकाश में यमयमी सूक्तान्तर्गत 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' का अर्थ नियोग परक किया है, अतः इस सूक्त में ऋषि को 'यम' से सन्यासी अभिप्रेत है-यह संयोजन 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा भानमती ने कुणवा जोड़ा' के समान ही है।

पाठकगण ! पण्डित जी की इन चारों स्थापनाओं में कितना बल है, यह आप ने जांच लिया। ऐसी स्थापनाओं के आधार पर भवन कितना दृढ़ बन सकता है, इसे आप स्वयं ही विचार सकते हैं। स्पष्ट है कि उस में अवश्यमेव अनेक दोष होंगे। अतः, उन सब को यहां समालोचना न करते हुए हम यथार्थ पक्ष को स्थापना करते हैं। उस में यथावसर कुछ एक अन्य दोषों की भी परीक्षा हो जावेगी।

II. स्वपक्ष-स्थापन।

(१) हमारा मत है कि प्रस्तुत सूक्त में यम यमी निस्सन्देह भाई बहिन हैं। इसकी पुष्टि के लिये हम निम्न लिखित प्रमाण पेश करते हैं—

(क) अन्तः साक्षि—किसी की पुष्टि के लिये सब से प्रबल प्रमाण अन्तः साक्षि ही हुआ करता है। मंत्र ११ में यम यमी के लिये 'भ्राता' 'स्वसा' का प्रयोग किया गया है। और १२ वें मंत्र 'पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्' में फिर यमी के लिये 'स्वसारं' प्रयुक्त है। ये शब्द सिवाय भाई बहिन के अन्य किसी भाव में कभी प्रयुक्त ही नहीं होते—यह हम पहले दर्शा ही चुके हैं।

(ख) लौकिक संस्कृत का प्रमाण—पं० चमूपति जी व्याकरण का सहारा लेकर बड़े दावे के साथ कहते हैं कि 'यम' की बहिन 'यमा' हो सकती है 'यमी' कभी नहीं। 'यमी' का अर्थ सदैव 'यम की पत्नी' ही होगा। उनके इस लेख से पता लगता है कि वे लौकिक संस्कृत से अत्यन्त अनभिज्ञ हैं। आप ज़रा शब्दकल्पद्रुम वाचस्पत्य तथा अमरकोश आदि कोषों को देखिए।

(१) वहां 'यमुना' नदी के 'यमभगिनी' और 'यमी' ये दो नाम और दिये हुए हैं। एवं, 'यम' का पर्यायवाची 'यमुनाभ्राता' बतलाया गया है। हमें इस कल्पना में जाने की कोई आवश्यकता नहीं कि 'यम' यमुना नदी का भाई क्यों है ? परन्तु यह स्पष्ट है 'यम' यमुनाभ्राता है और 'यमुना' के समानार्थक शब्द 'यमभगिनी' और 'यमी' भी हैं। अतः निस्सन्देह यम यमी भाई बहिन हुए।

(२) और देखिए, भाईदूज नामक प्रसिद्ध त्योहार जो दीपावली के

तीसरे दिन प्रायः संपूर्ण भारत में मनाया जाता है उसका संस्कृतनाम 'भ्रातृ-द्वितीया' है। 'भ्रातृद्वितीया' का पर्यायवाची नाम 'यमद्वितीया' कोषों में उल्लिखित है। इससे भी यही परिणाम निकलता है कि यम यमी भाई बहिन ही हैं।

(३) परन्तु इसके विपरीत संस्कृत का अत्यन्त स्पष्ट प्रमाण है कि 'यम' की पत्नी का नाम 'यमी' बिल्कुल नहीं। शब्दकल्पद्रुम में 'यमपत्नी' का अर्थ लिखा है 'यमस्य भार्या। यमस्य द्वे भार्ये धूमोर्णा विजयेति जटाधरः'।

एवं, कोषकार 'यमपत्नी' का अर्थ यमुना तथा यमभगिनी करता है। यदि 'यमी' यमपत्नी होती तो अवश्यमेव 'यमी' का अर्थ यमपत्नी करता। अतः यह असंदिग्ध है कि 'यमी' यम की पत्नी नहीं प्रत्युत भगिनी है। व्याकरण से चाहे 'यमी' का अर्थ 'यमपत्नी' भी हो सकता हो, परन्तु साहित्य की दृष्टि से वह सर्वथा अशुद्ध ही कहलायेगा।

(ग) व्याकरण प्रमाण—इतने स्पष्ट प्रमाणों के होते हुए यम-भगिनी के अर्थ में प्रयुक्त 'यमी' की सिद्धि के लिये व्याकरण-प्रमाण देने की आवश्यकता नहीं। परन्तु यदि फिर भी आग्रह हो तो लीजिए व्याकरण-प्रमाण भी दे देते हैं।

पं० चमूपति जी पुंयोगादाख्यायाम् (पा० ४.१.४८) सूत्र देकर सिद्ध करते हैं कि यमपत्नी अर्थ में ही 'यम' से 'ङीष्' प्रत्यय होगा अन्यथा नहीं। पण्डित जी! 'पुंयोगादाख्यायाम्' का अर्थ तो यह है कि जो पुल्लिङ्ग नाम पुरुष के योग से स्त्रीलिङ्ग में प्रयुक्त है उससे 'ङीष्' हो जाता है। यहां स्त्रीपुरुष का एकमात्र दम्पतीभाव कहां से आगया? स्त्री पुरुष के संबन्ध पितापुत्री, भाई बहिन भी तो हैं? वे कैसे छूट जावेंगे? अत एव कौमुदीकार लिखते हैं "योगः संबन्धः। सचेह दम्पतिभाव एवेति नाग्रहः। संकोचे मानाभावात्" अर्थात् योग कहते हैं संबन्ध को। और वह यहां दम्पतिभाव ही है- ऐसा आग्रह नहीं, क्योंकि स्त्री पुरुष के संबन्ध को संकुचित अर्थ में ग्रहण करने के लिये कोई प्रमाण नहीं। आगे कौमुदीकार उदाहरण देता है कि केकय राजा की पुत्री का नाम 'केकयी' इसी सूत्र से निष्पन्न होता है। पण्डित जी के व्याकरणानुसार तो 'केकयी' केकय की पत्नी बन जावेगी। भगवन्! ऐसा अनर्थ न कीजिए। पुत्री को पुत्री और बहिन को बहिन ही रहने दीजिए, उन्हें पिता या भाई को पत्नी न बनाइए।

इस प्रकार आपने देख लिया कि अभी तक संस्कृत वाङ्मय में यमयमी का यदि कोई संबन्ध स्थापित है तो एकमात्र भाई बहिन का ही है अन्य कोई नहीं।

(२) 'यम' सहजात जोड़ा और असहजात जोड़ा इन दोनों अर्थों में प्रयुक्त होता है। यहां असहजात जोड़े के अर्थ में प्रयुक्त है। एवं, यम और यमी सगोत्र भाई बहिन हैं सगे नहीं।

संपूर्ण सूक्त में ऐसा कोई शब्द नहीं जिससे सगे भाई बहिनों की कल्पना की जा सके। पंचम मंत्र के 'गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कः' वचन को देख कर

कई लोग भ्रम में पड़ जाते हैं कि यहां तो स्पष्टतया सगे भाई बहिन ही अभिप्रेत हैं। यह उन की भूल है। यहां पर 'नौ' शब्द द्वितीयान्त नहीं प्रत्युत षष्ठ्यन्त है। एवं, इसका अर्थ यह होगा कि 'उत्पादक परमेश्वर ने हमारे कई भाई बहिनों को गर्भ में दम्पती बनाया है'।

(३) गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः। १०.८५.३६
विधवेव देवरम् मर्यं न योषा। ऋ०१०.४०,२
उदीष्व नार्यभिजीवलोकम्। ऋ०१०.१८.८

इत्यादि मंत्रों में विवाह और नियोग का सामान्यतया विधान है। परन्तु यमयमी-सूक्त सगोत्र-विवाह और सगोत्र-नियोग का निषेधक है।

असपिण्डा च या मातुरसगोत्रा च या पितुः।
सा प्रशस्ता द्विजातीनां दारकर्मणि मैथुने॥ मनु ३.५

अर्थात्, जो स्त्री माता की छः पीढ़ी और पिता के गोत्र की न हो, वह द्विजों के लिये (दारकर्मणि) विवाहार्थ और (मैथुने) नियोग में गर्भधारणार्थ प्रशस्त है।

उपर्युक्त मनुवचन का मूल यही यमयमी-सूक्त है। इसी वेदाज्ञा को सामने रखते हुए ऋषि दयानन्द ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के नियोग प्रकरण में लिखते हैं—"परन्तु माता, गुरुपत्नी, भगिनि, कन्या, पुत्रवधू आदि के साथ नियोग करने का सर्वथा निषेध है।" अत एव पुत्री का नाम 'दुहिता' है क्योंकि वह 'दूरे हिता' होती है। विवाह या नियोग के संबन्ध के लिये सगोत्रों से बाहर दूर निहित होती है।

सपिण्ड, सगोत्र, सनाभि, सजाति—ये सब शब्द शब्दकल्पद्रुम ने समानार्थक बतलाये हैं। इस अर्थ में 'जामि' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है जिसकी सिद्धि हम अभी करेंगे।

चतुर्थ मन्त्र में आये 'गन्धर्वो अप्सु अप्या च योषा' 'सा नौ नाभिः' 'परमं जामि तन्नौ' और १० वें मंत्र का 'जामयः' शब्द इसी सगोत्रता का द्योतक है।

(४) ये यम और यमी पूर्ण सन्यासी हैं। मन्त्र-व्याख्या के देखने से आपको स्पष्टतया ज्ञात हो जावेगा कि यमी के संयम में भी कोई सन्देह लव नहीं। 'पितुर्नपातमादधीत वेधा' 'एकस्य चित्त्वजसं मर्त्यस्य' 'विवृहेव रथ्येव चक्रा' आदि में यमी उच्च उद्देश्य का ही निर्देश कर रही है।

'काममूता' में उसने स्पष्टतया ही कह दिया है कि मैं यथेष्ट प्रवृत्तचेता होती हुई इस संबन्ध के लिये कह रही हूं।

अन्त में अपने प्रस्ताव के न माने जाने पर दुःखी नहीं होती प्रत्युत 'बतो बतासि' कहती हुई बड़ी प्रसन्नता प्रकट कर रही है। यमी का प्रस्ताव अशिष्ट

है, भाव पापपूर्ण नहीं प्रत्युत पवित्र है।

सगोत्र वालों में दम्पती संबन्ध मनुष्य की कल्पना के भी बाहर है—यह बात ठीक नहीं। इस पाप-कर्म को अनेक जातियें और व्यक्तियें करती रही हैं और कर रही हैं। इस का निषेध करना आवश्यक ही था।

सगोत्र वालों में विवाह के लिये जिस किसी तरह भी बुद्धि और हृदय को अपील किया जा सकता है, किया गया। और फिर उसके ठीक २ उत्तर देकर निषेधात्मक परिणाम निकाला गया जिस से प्रस्तावकर्त्री यमी भी सहमत हो गई। यह है संवाद का रहस्य।

पं० चमूपति जी को भाई बहिन के पक्ष में 'बाजारू बातों' की गन्ध आने का एक मात्र कारण मंत्रों के यथार्थ अर्थों को न समझना ही है।

(५) यमयमी-सूक्त के नियोगपक्ष में यह स्पष्टतया विदित होता है कि 'यमी' का पति जीवित है परन्तु उस से कोई सन्तान नहीं हुई। प्रथम ही मंत्र में यमी कह रही है 'पितुर्नपातमादधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः' अर्थात् पितृवंश की चिन्ता करता हुआ मेरा विधाता पति पृथिवी पर अपने पिता के वंश का नष्ट न होने देने वाले प्रकृष्ट पौत्र को धारण करे।

सातवें मत्र में यमी कहती है 'विवृहेव रथ्येव चक्रा' हम पतिपत्नी रथ के दोनों चक्रों के समान मिलकर उद्योग करें।

६वें मंत्र में 'यम' यमी और उस के पूर्व पति—दोनों के लिये परमेश्वर से कल्याण-प्रार्थना करता है।

नियोग-पक्ष में १३ वें तथा १४वें मंत्र को देखने से यह भी विदित होता है कि 'यम' की पत्नी से भी कोई सन्तान नहीं हुई। अतः वह भी किसी से नियोग करना चाहता है। परन्तु यह स्पष्ट नहीं कि उस की पत्नी जीवित है या मर चुकी है। परन्तु यह असंदिग्ध है कि 'यमी' का पति अभी जीता है।

जिस प्रकार यम भाई ने यमी बहिन के लिये 'अन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत्' का प्रयोग किया है उसी प्रकार असमर्थ पति पत्नी को और असमर्थ पत्नी पति को यह बात कह सकती है। अतएव ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ-प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में नियोग-प्रकरणगत उपर्युक्त मंत्र वचन का अर्थ 'हे सौभाग्य की इच्छा करने हारी स्त्री' इत्यादि किया है।

(६) अब 'जामि' शब्द पर और विचार करना रहगया है जिस के कारण सायणाचार्य तथा उस के अनुयायी विद्वान् 'आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि' मंत्र के अर्थ का अनर्थ करते हैं।

'जामि' पर विस्तृत विवेचन लेखक ने वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य में किया है। यहां पर संक्षेप से ही लिखा जावेगा।

'आ घा ता गच्छान्' मंत्र की व्याख्या यास्काचार्य ने नि० ४ अ० ४६ श० में की है। वहां 'जामयः' 'अजामि' का अर्थ करते हुए लिखते हैं—जाम्यतिरे-

कनाम बालिशस्य वा समानजातीयस्य चोपजनः" । जामि अतिरेक का नाम है, मूर्ख का वाचक है, और समानजातीय अर्थात् सजाति का बोधक है । 'जामि' समानजातीय अर्थ में 'जा' में 'मि' का आगम करने से सिद्ध होता है। एकस्मिन्कुले जायते इति जा, जा एव जामि-यह निर्वचन सजाति अर्थ में होगा।

दुर्गाचार्य ने अपनी व्याख्या में 'असमानजातीयस्य' ऐसा पदच्छेद किया है । पं० चमूपति जी ने भी बिना विचारे उसे ही मान लिया है। परन्तु यह उन की नितान्त भूल है । एक तो निघण्टु-व्याख्याकार देवराजयज्वा ने 'अतिरेकबालिशसमानजातीयानां वाचको जामिशब्दः' लिखते हुए 'समानजातीय' ही पाठ माना है । और दूसरा 'असमानजातीयस्य वा उपजनः' इस पाठ से कोई आशय ही नहीं निकलता ।'असमानजातीय' मानने से 'जामि' का निर्वाचन क्या होगा ? और तीसरे, सायणादि भाष्यकारों ने 'समानजातीय' के आधार पर अनेक स्थलों पर जामि का अर्थ 'ज्ञाति' या 'बन्धु' किया है । अतः 'समानजातीयस्य' ऐसा पाठ मानना ही संगत है ।

यास्काचार्य ने 'आ घा ता गच्छान्' की व्याख्या में 'जामि' का पहला अर्थ 'अतिरेक' दिया है । अतः प्रस्तुत मंत्र में यह अर्थ अवश्य होना चाहिए।

अतिरेक के बारे में देखिए सायण क्या कहता है—

(क) जामि अतिरेकनाम, अतिरिक्तं अहितं प्रयोजनरहितम् । ऋ. ८. ६. ३.

(ख) जामि प्रवृद्धं सर्वमतिरिच्य वर्तमानम् । ऋ० ८.६१.४

(ग) अजामि दोषरहितम् । ऋ० ५. १६. ४

(घ) जामि योग्यमनुरूपम् । ऋ० १०. ८. ७

यहां तीसरा अर्थ पहिले अतिरेक के भाव को बतलाता है और चौथा अर्थ दूसरे अतिरेक का निर्देश करता है । 'अजामि' के 'दोषरहितम्' अर्थ में 'जामि' (बालिश) मूर्खता के भाव को भी प्रकट करता है ।

एवं, आप देखिए कि 'जामि' के यास्ककृत तीनों अर्थ किस प्रकार 'आ घा ता गच्छान्' मंत्रमें सुसंगत होते हैं। अतएव 'यत्र जामयः कृणवन् अजामि' का अर्थ मैंने यह किया है—जहां कि सगोत्र (सजाति) स्त्री पुरुष महत्त्वयुक्त योग्य अनुरूप कार्य्य करेंगे।

वाचक वृन्द ! यद्यपि पं० चमूपति जी लिखते हैं कि ब्राह्मणग्रन्थ, यास्काचार्य, ऋषि दयानन्द, और व्याकरण-सब उन के मत का पोषण करते हैं । परन्तु यहां तक के मेरे लेख से आप को भलीभांति विदित होगया होगा कि इन में से कोई भी इनके मत का पोषक नहीं प्रत्युत सब के सब नितान्त विरुद्ध हैं । परन्तु मेरे पक्ष में ब्राह्मण, यास्काचार्य, ऋषिदयानन्द, व्याकरण, सायणाचार्य, बृहद्देवता आदि सभी हैं ।इन सब का समन्वय सिद्धान्तरूप से मेरे पक्ष में ही हो रहा है ।

अब आप मेरे लेख के तीसरे भाग 'मंत्र-व्याख्या' की ओर आइए। और देखिए उस व्याख्या से मेरे पक्ष की किस तरह पुष्टि हो रही है।

III. मंत्र-व्याख्या।

यमी की उक्ति।

ओ चित्सखायं सख्या ववृत्यां तिरः पुरूचिदर्णवं जगन्वान्।
पितुर्नपातमादधीत वेधा अधिक्षमि प्रतरं दीध्यानः ॥ १ ॥

(ओ चित् !) हे ज्ञानवान् यम ! (सखायं चित् सख्या ववृत्याम्) तुझ श्रेष्ठ मित्र को मैं गृहस्थ-धर्म के लिये बरूं-ग्रहण करूं (तिरः अर्णवं चित् पुरु जगन्वान्) यतः तू विद्यमान भवसागर में संपूर्णता को-पूर्ण यौवन को प्राप्त कर चुका है। (दीध्यानः वेधा)प्रकाशमान या हमारा ध्यान करता हुआ-हमारे पर अनुग्रह करता हुआ विधाता प्रभु (अधिक्षमि) पृथिवी स्थानीय मुझ स्त्री में (पितुःप्रतरं नपातं) पितृवंश को नष्ट न होने देने वाली प्रकृष्ट सन्तान को (आदधीत) धारण करे।

नियोग पक्ष में—(दीध्यानः वेधा) पितृवंश की चिन्ता करता हुआ मेरा विधाता पति (अधिक्षमि) पृथिवी पर (पितुः प्रतरं नपातं आदधीत) अपने पिता के वंश को नष्ट न होने देने वाले प्रकृष्ट पौत्र को धारण करे।

विशेष—दूसरा 'चित्' पूजार्थक है (निरु० १ अ० ४ ख०) सख्या = सख्याय, सुपां सुलुक् (पाणि० ७. १. ३९) से 'ङे' को 'आ'। तिरस् = प्राप्तम् (निरु० ३ अ० २० ख०)। पुरु = संपूर्णता, देखिए सुश्रुत क्या कहता है—चतस्रोवस्था शरीरस्य वृद्धिर्यौवनं संपूर्णता ततः किञ्चित्परिहाणिश्चेति। पूर्ण यौवन के पश्चात् चौथी वृद्धावस्था में विवाह या नियोग संबन्ध नहीं हो सकता। इस संबन्ध के लिये पूर्ण योवनावस्था ही सर्वोत्कृष्ट समझी जाती है। अतः उसी का यहां निर्देश किया गया है। 'दीध्यानः' रूप दीप्त्यर्थक 'दीधीङ्' या 'ध्यै' चिन्तायाम्-इन दोनों धातुओं से निष्पन्न होता है। क्षमि = क्षमायां, यहा आतो धातोः (पाणि० ६. ४. १४०) में 'आतः' योग विभाग से 'आ' का लोप हो गया है। जैसे क्त्वो ल्यप् (पा० ७. १. ३७) हलः श्नः शानज्झौ (पा० ३. १. ८३) इन पाणिनि सूत्रों में 'क्त्वायाः' को जगह क्त्वः' और 'श्नायाः' की जगह 'श्नः' आकारलोप से हो गया है। नपात् = पुत्र या पौत्र, न पातयतीति न पात्।

मंत्र से स्पष्ट है कि यहां भोग के लिये विवाह या नियोग का संबन्ध नहीं हो रहा प्रत्युत प्रकृष्ट सन्तान पैदा करना ही इसका एकमात्र उद्देश्य है, जैसे 'गर्भं धाता दधातु ते' आदि मंत्रों में प्रतिपादन किया हुआ है।

यम की उक्ति।

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् सलक्ष्मा यद् विषुरूपा भवाति।
महस्पुत्रासो असुरस्य वीरा दिवोधर्तार उर्विया परिख्यन् ॥ २ ॥

(ते सखा एतत् सख्यं न वष्टि) हे यमि बहिन ! तेरा मित्र ऐसे गृहस्थ को नहीं पसन्द करता (यत् सलक्ष्मा विषुरूपा भवाति) यतः, समान चिन्हों

वाली बहिन विषरूपा होती है, विवाह या नियोग के लिये अयोग्य होती है। (महः असुरस्य), पूज्य प्राणाधार परमेश्वर के (वीराः) वीर-पापनाशक (दिवः धर्तारः) और सत्य-प्रकाश-प्रशस्त्री वेदवाणी के धारण करने वाले (पुत्रासः, उर्विया परिख्यन्) पुत्र बड़े बल से ऐसे संबन्ध का प्रत्याख्यान करते हैं।

विशेष—सगोत्र को पुरुष प्रायः सलक्ष्म ही हुआ करते हैं। भाई बहिन मामा भानजा आदि के रूप किस तरह मिलते जुलते होते हैं, इसे प्रत्येक रूपदर्शी समझ सकता है। पं० चमूपति जी ने इस वैज्ञानिक सचाई को टालना चाहा है, परन्तु यह उनकी सरासर भूल है। इस समानता के कारणों को भी यदि आप ढूंडना चाहें तो आयुर्वेद-विज्ञान के शरीरशास्त्र को पढ़ लीजिए। वैज्ञानिक दृष्टि से ऐसा सलक्ष्म-संबन्ध दोषपूर्ण होने से सर्वथा त्याज्य है। वेद इसी सगोत्र विवाह या नियोग को विषमरूप कहता हुआ निषेध कर रहा है।

विषु, विषुण, विषुण, विषम-ये सब शब्द वेद में समानार्थक हैं। (निरु० ४ अ० ४५ श०, ११ अ० १६ श०, १२ अ० १० श०) वीर=पापनाशक, वीरयत्यमित्रान् (निरु० १ अ० ७ ख०)। उर्विया=उरुणा, 'टा' को जगह 'इयाट्' (पाणि० धा० ७. १. ३६)। अपपरी वर्जने (१. ४. ८८) में पाणिनि 'परि' को वर्जनार्थक भी मानते हैं।

य इन्दोः पवमानस्यानुधामान्यक्रमीत्।

तमाहुः सुप्रजा इति यस्ते सोमाविधन्मनः॥ ऋ० ६. ११४. १

(यः इन्दोः पवमानस्य) जो मनुष्य ऐश्वर्यधाम पावक परमात्मा के (धामानि अनु अक्रमीत्) सर्वसत्यविद्यास्थानों वेदों का अनुकरण करता है (सोम! यः ते मनः अविधत्) और हे शान्तिधाम! जो तेरे मनोनुकूल-तेरी आज्ञाओं के अनुसार चलता है (तं सुप्रजाः इति आहुः) विद्वान लोग उसको तुम्हारा 'सुपुत्र' कहते हैं।

यह है परमेश्वर के सुपुत्र का लक्षण। ऐसे सुपुत्र वेद की आज्ञाओं से प्रभावित हो कर सलक्ष्म-संबन्ध का बड़ा घोर प्रत्याख्यान करते हैं अतः यह संबन्ध अनिष्ट है, यम ऐसे सम्बन्ध को नहीं चाहता।

यमी की उक्ति।

उशन्ति घा ते अमृतास एतदेकस्य चित् त्यजसं मर्त्यस्य।

नि ते मनो मनसि धाय्यस्मे जन्युः पतिस्तन्वमाविविश्याः॥ ३॥

(ते अमृतासः घ) हे यम भ्रातः! वे अमृतपुत्र भी (एकस्यचित् मर्त्यस्य) एक मनुष्य के (एतत् त्यजसं) इस एक स्त्री-रत्न को (उशन्ति) चाहते हैं। (ते मनः अस्मे मनसि निधायि) अतः तेरा मन मेरे मन में निरन्तर स्थित हो, (जन्युः पतिः तन्वं आविविश्याः) और सन्तानोत्पत्ति करने वाला पति होकर इस शरीर को-मुझ को-प्राप्त हो।

नियोगपक्ष में—हे यम भ्रातः! वे अमृतपुत्र भी प्रत्येक मनुष्य के इस पुत्र-रत्न को चाहते हैं। अतः तेरा मन मेरे मन में नियोग पूर्वक स्थित हो, और सन्तानोत्पत्ति करने वाला पति बनकर मेरे शरीर में प्रविष्ट हो, अर्थात् मेरे अन्दर गर्भ धारण कर।

विशेष—त्यजस = धन, त्यज्यते म्रियमाणस्य पुरुषस्यैहैवेति त्यजसम्। मरते हुए मनुष्य का धन यहीं छूट जाता है। धन मनुष्य के साथ नहीं जाता प्रत्युत यहीं रह जाता है। यास्काचार्य ने "परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः नित्यस्य रायः पतयः स्याम। न शेषो अग्ने" इत्यादि मंत्र की व्याख्या करते हुए लिखा है 'रेक्ण इति धननाम, रिच्यते प्रयतः। शेष इत्यपत्यनाम शिष्यते प्रयतः (३२ अ० २ ख) अर्थात् 'रेक्णस्' धनवाची है यतः स्वामी के मरने पर रिक्त रहजाता है, यहीं छूट जाता है। और 'शेष' का अर्थ अपत्य है, क्योंकि पिता के मरने पर सन्तान अवशिष्ट रह जाती है। 'परिषद्यं' मंत्र में धनवाची 'रेक्णः तथा 'रायः' शब्द यास्क ने 'पुत्र' अर्थ में प्रयुक्त किये हैं और इसी तरह 'स्त्री' को भी वेद ने बहुत्र धन कहा है अतः प्रस्तुत मन्त्र में 'त्यजस' के स्त्रीरत्न और पुत्ररत्न, ये अर्थ किये गये हैं।

विवाह-पक्ष में यमी कहती है कि वे अमृत-पुत्र भी इससे सहमत हैं कि एक पुरुष की एक पत्नी होनी चाहिए। यम! आपकी अभीतक कोई पत्नी नहीं और मेरा अभीतक कोई पति नहीं। अतः आइए सन्तानोत्पत्ति के लिये हम दोनों विवाह करलें।

नियोग पक्ष में यमी का कथन है कि प्रत्येक मनुष्य का एक न एक पुत्ररत्न अवश्य होना चाहिए—यह सिद्धान्त शिष्ट-सम्मत है। मेरा पति रोग आदि के कारण जन्यु अर्थात् सन्तानोत्पत्ति करने में असमर्थ है, अतः आप मेरे जन्यु (सन्तानोत्पत्तिकर्ता) पति बन कर मेरे अन्दर गर्भ धारण कीजिए।

यहां पर भी विवाह या नियोग एकमात्र सन्तानोत्पत्ति-हेतुक ही बतलाया गया है विषयभोग के लिये नहीं।

'मेरे शरीर में प्रविष्ट हो' के यथोक्त भाव को समझने के किये 'आत्मा वै पुत्रनामासि' 'एतैरेव प्राणैः सह पुत्रमाविशति' आदि वचनों का ध्यान कीजिए।

यम की उक्ति।

न यत्पुरा चकृम कद्ध नूनमृता वदन्तो अनृतं रपेम।
गन्धर्वो अप्स्वप्या च योषा सा नौ नाभिः परमं जामि तन्नौ ॥ ४ ॥

(यत् पुरा न चकृम) जो पहले ऐसा सगोत्र-संबन्ध हम अमृत-पुत्रों ने नहीं किया (कत् ह नूनं) भला अब कैसे (ऋता वदन्तः) सत्यनियमों को जतलाते हुए (अनृतं रपेम) असत्य नियम का प्रचार करें? (गन्धर्वः अप्सु) मेरा वेदज्ञ पिता प्राप्त संबन्धों में से है—तुम्हारे निकट संबन्धों में से

है, (योषा च अप्या) और मेरी माता निकटसंबन्धिनी है । (सा नः नाभिः) वह मेरी माता और वह मेरे पिता हम सब भाई बहिनों के सनाभि हैं-सगोत्र हैं (तत् नौ) इस लिये हम दोनों का (परमं जामि) परम सजातित्व है। अतः हमारे में विवाह या नियोग के संबन्ध का होना सर्वथा नियम विरुद्ध है।

विशेष—एवं, यम उत्तर देता है कि हे बहिन! यह ठीक है कि एक पुरुष की एक पत्नी होनी चाहिए और प्रत्येक पुरुष का कोई न कोई पुत्र-रत्न आवश्यक है। परन्तु इसकी पूर्ति के लिये सगोत्र भाई बहिनों का विवाह या नियोग सत्य-नियमों के सर्वथा विपरीत है। ऐसे सत्य धर्म का विलोप कभी नहीं किया गया। अतः तुम्हारी प्रार्थना को मैं स्वीकार नहीं कर सकता।

यमी की उक्ति।

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः ।
नकिरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौ ॥ ५ ॥

(देवः सविता विश्वरूपः त्वष्टा जनिता) हे भाई! सर्वप्रकाशक सर्वप्रेरक सर्वद्रष्टा और जगत्कर्ता हमारे उत्पादक परमेश्वर ने (नौ गर्भे नु दम्पती कः) हमारे कई भाई बहिनों को गर्भ में दम्पती बनाया है। (अस्य व्रतानि नकिः प्रमिनन्ति) इस प्रभु के नियमों को कोई नहीं तोड़ सकते। (अस्य नौ पृथिवी उत द्यौः वेद) इस बात को हमारे में से प्रत्येक स्त्री और पुरुष जानता है।

विशेष—यमी कहती है भाई! यह तूने कैसे कह दिया कि सगोत्र स्त्री पुरुषों का संबन्ध पहले कभी नहीं हुवा और ऐसा संबन्ध ईश्वरीय सत्यनियमों के विरुद्ध है? क्या तुम यह नहीं जानते कि हमारे कई भाई बहिन जोड़े के रूप में पैदा हुए हैं। क्या उन्हें परमेश्वर ने एक ही गर्भ में इकट्ठे संबद्ध नहीं रखा? क्या वे दम्पती की तरह एक ही स्थान में सहवास नहीं करते रहे? अतः, यह ईश्वरीय नियम तो यही बतलाता है कि सहजात भाई बहिनों तक में संबन्ध हो सकता है। यह तुम जानते ही हो कि ईश्वरीय नियमों का भंग किसी को भी न करना चाहिए। इस सत्य सिद्धान्त के साक्षि प्रत्येक स्त्री पुरुष हैं। अतः भाई! ईश्वरीय नियमों का पालन इसी में है कि मुझ से विवाह या नियोग करो।

यम की उक्ति।

को अस्य वेद प्रथमस्याह्नः क ईं ददर्श क इह प्रवोचत् ।
बृहन्मित्रस्य वरुणस्य धाम कदु ब्रव आहनो वीच्या नॄन् ॥ ६ ॥

(अस्य प्रथमस्य अह्नः कः वेद) हे यमी! गर्भवास के इस पूर्वकाल के तत्त्व को कौन जानता है? (कः ईम् ददर्श) किसने इस पूर्वकाल के तत्त्व का साक्षात्कार किया है? (कः इह प्रवोचत्) और कौन उस गर्भवास-तत्त्व का यहां प्रवचन कर सकता है? अर्थात् गर्भवास के रहस्य को कोई नहीं समझ सकता। (मित्रस्य वरुणस्य धाम बृहत्) सब के मित्र श्रेष्ठ परमे-

श्वर का सामर्थ्य-तेज महान् है। (आहनः !) हे असभ्यभाषिणि बहिन ! (कत् उ वीच्य) तब तू कैसे विवेचन करके निश्चय पूर्वक (नून् ब्रवः) भाईयों को यह कहती है कि सगोत्र भाई बहिनों का सम्बन्ध ईश्वरीय नियमों के अनुकूल है ? अर्थात् तेरा यह कथन असत्य है।

विशेष—यम कहता है कि गर्भवास के समय युगल भाई बहिनों को दम्पती के रूप में किस नें जाना देखा या कहा है। अनन्त सामर्थ्यवान् परमेश्वर की महिमा को समझना अत्यन्त दुष्कर है। गाढ़ सुषुप्ति की अवस्था में स्त्री पुरुष इकट्ठे नग्न पड़े रहें, इस से उनका दम्पतीभाव स्थापित नहीं होता है। दम्पतीभाव किसी विशेष धर्म को लेकर स्थापित होता है, एकमात्र सहवास से ही दम्पती नहीं कहलाये जाते। अतः ऐसा कोई सत्य नियम नहीं जिससे सगोत्र स्त्री पुरुषों में विवाह या नियोग का संबन्ध स्थापित होसके।

वीच्य = विविच्य। इसी सूक्त के ८वें मंत्र की व्याख्या करते हुए यास्क ने नि० ५ अ० ११ श० में 'आहनः' का अर्थ 'असभ्यभाषिणि !' किया है।

यमी की उक्ति।

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय।
जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां वि चिद्वृहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

(समाने योनौ सहशेय्याय) समान गृहस्थाश्रम में सहवास के लिये अर्थात् परस्पर में विवाह के लिये (मा यम्यं) मुझ यमी को (यमस्य कामः आ अगन्) यम की कामना आयी है। अतः स्वयंम्बर-विवाह के अनुसार (पत्ये जाया इव तन्वं रिरिच्याम्) पति के लिये जाया की तरह जायाभाव से शरीर को तुझ से जोड़ूं—अपना तन तुझ पति के अर्पित करदूं। (चित् रथ्या चक्रा इव विवृहेव) और रथ के दोनो चक्रों के समान मिलकर हम उद्योग करें—धर्म अर्थ काम मोक्ष का सम्पादन करें।

नियोग पक्ष में—समान स्थान में सहवास के लिए-गर्भधारण करने के लिए मुझ यमी को तुझ यम की कामना है। अतः स्वयंवर-नियोग के अनुसार जैसे मैं अपने पति के लिए जायाभाव से अपने शरीर को फैलाती थी वैसे तेरे लिए अपनें शरीर को फैलाऊं, जिस से सन्तानोत्पत्ति होने पर हम पतिपत्नी रथ के दोनों चक्रों के समान मिल कर उद्योग करें।

विशेष—अब यहां यमी कामना की-स्वयंवर की-युक्ति प्रस्तुत करती है। वह कहती है कि स्वयंवर-विवाह या स्वयंवर-नियोग तो आप्त सिद्धान्त है। यम ! मैंनें विवाह या नियोग के लिए तुझे ही चुना है, अतः तू मेरे से संबन्ध करले।

बिना सन्तान के प्रायः गृहस्थ कैसा दुःखधाम बन जाता है यह किसी से छिपा नहीं। सर्वदा सन्तान-चिन्ता से दुःखी रहने के कारण स्त्री पुरुष पूरे

साहस के साथ पुरुषार्थ-लाभ नहीं कर सकते। अतः पुत्रविहीना यमी 'यम' से कहती है कि मैं जैसे अपने पति के लिये जायाभाव से शरीर को फैलाती थी वैसे मैं तेरे लिए अपने शरीर को फैलाऊं जिस से सन्तानोत्पत्ति होने पर हम पतिपत्नी रथ के दोनों चक्रों के समान मिलकर उद्योग करें।

नियोग पक्ष में 'विवृहेव' से स्पष्ट परिज्ञात होता है कि यमी का पति जीवित है मृत नहीं।

'रिरिच्याम्' में रिच वियोजनसंपर्चनयोः धातु है।

यम की उक्ति।

न तिष्ठन्ति न निमिषन्त्येते देवानां स्पश इह ये चरन्ति।
अन्येन मदाहनो याहि तूयं तेन विवृह रथ्येव चक्रा॥ ८॥

(एते देवानां स्पशः) ये ईश्वरीय नियमों के गुप्तचर (ये इह चरन्ति) जो इस संसार में विचर रहे हैं (न तिष्ठन्ति न निमिषन्ति) वे न ठहरते हैं और न आंख झपकते हैं। (आहनः) अतः, हे असभ्यभाषिणि! (मत् अन्येन तूयं याहि) मेरे से भिन्न दूसरे पुरुष के साथ शीघ्र जायात्व को प्राप्त कर। (तेन रथ्या चक्रा इव विवृह) और उस पति के साथ मिलकर रथ के दोनों चक्रों की तरह उद्योग कर।

नियोग पक्ष में—(मत् अन्येन तूयं याहि) मेरे से भिन्न दूसरे पुरुष के द्वारा शीघ्र सन्तान को प्राप्त कर (तेन रथ्या चक्रा इव विवृह) और उस सन्तानलाभ से तू अपने पति के साथ मिलकर रथ के चक्रों की तरह उद्योग कर।

विशेष—यम कहता है कि सगोत्र वालों में विवाह या नियोग के संबन्ध की कामना करना पाप है। परमेश्वर के गुप्तचर निरन्तर इस संसार में विचर रहे है। वे एक क्षण के लिये भी न ठहरते हैं और न आंख झपकते हैं, प्रत्युत लगातार हमारे कर्मों को देख रहे हैं। ये ईश्वरीय-नियम रूपी गुप्तचर यद्यपि हमें नहीं दीख पड़ते तथापि ये अपना कार्य निरन्तर कर ही रहे हैं। तदनुसार राजाओं के महाराजा परमेश्वर की तरफ से पापकर्म का दण्ड अवश्य मिलेगा। अतः हे बहिन! तू यह अशुभ कामना एकदम त्याग दे और अन्य पुरुष के साथ संबन्ध कर।

'स्पश' शब्द गुप्तचर के लिये लौकिक साहित्य में प्रयुक्त होता है। वेद में उस की जगह 'स्पश्' का प्रयोग है। ऋ० ४. ४. ३ में भी इसी रूप में प्रयुक्त हुआ है। दर्शनार्थक 'पश्' से 'क्विप्' और सुडागम।

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवापृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि॥ ९॥

(अस्मै रात्रिभिः अहभिः दशस्येत्) इस ब्याहे जाने वाले दम्पती-युगल के लिये अथवा नियोग द्वारा पुत्रलाभ हो जाने पर पुराने दम्पतीयुगल

के लिये परमात्मा अहर्निश सुख प्रदान करे, (सूर्यस्य चक्षुः मुहुः उन्मिमीयात्) सूर्य के प्रकाश को बहुत देर तक उत्तमतया निर्मित करे । (मिथुना दिवापृथिव्या सबन्धू) ये दोनों स्त्री पुरुष समानभाव से परस्पर में बंधे रहें । (यमीः यमस्य अजामि बिभृयात्) और यमी मुझ यम के दोषरहित बन्धुत्व को धारण करे ।

पूर्व तथा अपर मंत्र के अनुसार अपने को छोड़ कर जिस अन्य पुरुष के साथ बहिन का विवाह या नियोग होगा—उस दम्पतीयुगल को लक्ष्य में रखकर यम इस मंत्र में प्रभु से प्रार्थना करता है कि हे प्रभो ! इस ब्याहे जाने वाले दम्पतियुगल के लिये अथवा नियोग द्वारा पुत्रलाभ हो जाने पर पुराने दम्पतियुगल के लिये रात और दिन सुख देने हारे हों । इन की चक्षु आदि इन्द्रियें दीर्घकाल तक अविकल रहें और ये चिरायु हों । यह जोड़ा समान भाव से परस्पर में बंधा रहे । और हम भाई बहिनों का सम्बन्ध वैसा ही निष्कलङ्क और पवित्र बना रहे ।

आ घा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उपबर्बृहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ १० ॥

(ता उतरा युगानि घ आगच्छान्) वे उत्तर काल भी ऐसे ही आवेंगे (यत्र जामयः अजामि कृणवन्) जहां कि सगोत्र स्त्री पुरुष महत्त्वयुक्त योग्य अनुरूप कार्य करेंगें । अर्थात् पहले भी सगोत्र वालों में विवाह या नियोग का संबन्ध नहीं था, आगे भी ऐसा ही रहेगा । यह ईश्वरीय नियम तीनों कालों में एकरस है अटल है । (सुभगे) अतः हे सौभाग्य की इच्छा रखने हारी यमी ! (मत् अन्येन) मेरे से भिन्न दूसरे पति को विवाह या नियोग के लिये (इच्छस्व) इच्छा कर (वृषभाय बाहुं उपबर्हि) और उस वीर्यवान् पति के लिये अपनी बाहु को बढ़ा—उसे बाहुदान कर । घ=अपि ।

यमी की उक्ति ।

किं भ्रातासद् यदनाथं भवाति किमु स्वसा यन्निर्ऋतिर्निगच्छात् ।
काममूता बह्वेतद्‌ रपामि तन्वा मे तन्वं संपिपृग्धि ॥ ११ ॥

(किं भ्राता असत्) वह क्या भाई (यत् अनाथं भवाति) जो बहिन की माँग को न पूर्ण करने वाला है ? (उ किं स्वसा यत् निर्ऋतिः निगच्छात्) और वह क्या बहिन है जिस को भाई के होते हुए दुःख प्राप्त हो ? (कामं ऊता) हे भाई ! मैं यथेष्ट प्रवृद्धचेता होती हुई (एतत् बहु रपामि) इस विवाह या नियोग के बारे में बहुत कह रही हूँ । (मे तन्वा तन्वं संपिपृग्धि) अतः भाई ! मेरे तन के साथ अपने तन को जोड़ो, अर्थात् मेरे साथ विवाह या नियोग का संबन्ध स्थापित करो ।

विशेष—यमी अपने भाई से कह रही है कि भाई ! वह किस बात का भाई जो अपनी बहिन की माँग को, प्रार्थना को, या इच्छा को पूरा नहीं करता । और वह कैसी बहिन जो भाई के रहते हुए दुःख तो पाती है परन्तु अपने भाई

से सहायता नहीं लेती। अतः भाई! तुझे मेरी मांग पूरी करनी चाहिए। और मेरा भी यही कर्तव्य है कि मैं तेरे से सहायता लेकर अपने कष्ट को दूर करूं। भाई! मेरी यह मांग किसी पापवासना को लेकर पैदा नहीं हुई अपितु पूर्ण पवित्र भावों से भरी हुई है। अतः तू मेरे से विवाह या नियोग कर।

'नाथ' धातु याचना और इच्छा अर्थ में भी धातुपाठ में पठित है। 'कामम्' अव्यय यथेष्टवाची प्रसिद्ध हो है। धातुपाठ में 'अव' धातु गति रक्षण कान्ति प्रीति वृद्धि आदि १६ अर्थों में पठित है। 'ऊता' में 'अव' वृद्ध्यर्थक प्रयुक्त है।

'काममूता' से स्पष्ट है कि बहिन की उक्ति पवित्रभाव से परिपूर्ण है। वह किसी विषयवासना से प्रेरित होकर यम से विवाह या नियोग के लिये नहीं कह रही।

यम की उक्ति।

नवा उ ते तन्वा तन्वं संपपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात्।
अन्येन मत्प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत्॥ १२॥

(ते तन्वा तन्वं न वै उ संपपृच्याम्) बहिन! मैं तेरे तन के साथ अपने तन को निश्चय पूर्वक नहीं जोड़ूंगा (यः स्वसारं निगच्छात्) क्योंकि जो बहिन को विवाह संबन्ध या नियोग संबन्ध से प्राप्त होता है (पापं आहुः) उसे विद्वान् लोग पापी कहते हैं। (मत् अन्येन) अतः मेरे से भिन्न दूसरे पुरुष के साथ (प्रमुदः कल्पयस्व) विवाह या नियोगजन्य सुखों को मना। (सुभगे ते भ्राता एतत् न वष्टि) हे सौभाग्य को चाहने वाली बहिन! तेरा भाई इस विवाह कर्म या नियोग कर्म को नहीं चाहता।

यम कहता है कि बहिन! यह ठीक है कि मुझे तेरी इच्छा पूर्ण करनी चाहिए। और तेरा भी यह धर्म है कि तू मेरे से सहायता ले। और यह भी सच है कि तू प्रवृद्धचेता है और पवित्रभाव से प्रेरित होकर ही मुझे कह रही है। परन्तु बहिन! हमें ऐसा कर्म तो न करना चाहिए जिस का परिणाम पाप हो। सगोत्र भाई बहिनों के संबन्ध को पाप माना जाता है। अतः, बहिन! यह तू निश्चय जान कि मैं तेरे से विवाह या नियोग किसी भी अवस्था में नहीं कर सकता। इस लिये तू किसी अन्य पुरुष के साथ यह संबन्ध स्थापित कर। मैं इस संबन्ध को नहीं करूंगा।

यमी की उक्ति।

बतो बतासि यम नैव ते मनो हृदयञ्चाविदाम।
अन्या किल त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्॥ १३॥

(यम बत बतः असि) यम! मुझे बड़ा सन्तोष है कि तू धर्म-दुर्बल धर्म-भीरु है। (ते मनः हृदयं च न एव अविदाम) इसी लिये तेरे मन और हृदय को मैंने नाही पाया। (वृक्षं लिबुजा इव) वृक्ष को लता की तरह (युक्तं कक्ष्या इव) और ब्रह्मचर्य-युक्त ब्रह्मचारी को मेखला के समान या पुरुषार्थ-

युक्त पुरुषार्थी को उद्योग के समान (अन्या किल त्वां परिष्वजाते) अन्य ही विवाहित या नियुक्त पत्नी तुझे आलिङ्गन करेगी।

विशेष—यम के उत्तर प्रत्युत्तर से अत्यन्त प्रसन्न होकर यमी कहती है—यम! यह देख कर मुझे बड़ा हर्ष हुआ कि तू धर्म-दुर्बल अर्थात् धर्म के सामने सिर झुकाने वाला ही सिद्ध हुआ। मैंने पहले प्रभावोत्पादक तर्क करते हुए बुद्धिबल से तुझे मनाना चाहा। परन्तु तूने उन तर्कों का ऐसा समाधान किया कि मुझे चुप होना पड़ा। फिर मैंने 'किं भ्रातासद्' आदि मंत्र से तेरे हृदय को अपील करना चाहा। परन्तु उस अमोघ अस्त्र से भी मुझे असफलता ही हुई। इस प्रकार तेरी धर्मनिष्ठा के कारण मैं तेरे मन और हृदय को किसी तरह भी अपनी ओर न खींच सकी— यह देख कर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता है। अच्छा, अब तू जैसे वृक्ष के साथ लता रहती है, ब्रह्मचारी के साथ मेखला रहती है, या पुरुषार्थी के साथ क्रियाशीलता रहती है, एवं किसी अन्य योग्य स्त्री को विवाह या नियोग के लिये अपने साथ संबन्धित कर।

'बत' निपात लौकिक संस्कृत के कोषों में संतोषार्थक पढ़ा है। और इसी मंत्र की व्याख्या करते हुए यास्काचार्य (११ अ० २४ श०) 'बतः' का अर्थ 'दुर्बलः' करते हैं।

'कक्ष्या गृहप्रकोष्ठे स्यात् सादृश्योद्योगकाञ्चिषु। बृहतिकेभनाड्योश्च' इस वचन में हेमचन्द्र ने 'कक्ष्या' के गृह, प्रकोष्ठ, सादृश्य, उद्योग, काञ्चि अर्थात् मेखला, बृहतिका (उत्तरीय वस्त्र) हथिनी और नाड़ी—ये अर्थ किये हैं।

यम की उक्ति।

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परिष्वजाते लिबुजेव वृक्षम्।
तस्य वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा कृणुष्व संविदं सुभद्राम्॥ १४॥

(यमि उ त्वं अन्यं सु) हे यमि! इसी तरह तू अन्य पुरुष से शोभनभाव से संबन्ध कर। (उ वृक्षं लिबुजा इव अन्यः त्वां परिष्वजाते) और वृक्ष को लता की तरह दूसरा पुरुष तेरे से संबन्ध करे। (वा तस्य मनः त्वं इच्छ) और उसके मन को तू चाह (वा सः तव) और वह तेरे चित्त को चाहे। (अध) एवं परस्पर एकचित्त हो कर (सुभद्रां संविदं कृणुष्व) कल्याणमय संयम या आचार को बना।

विशेष—इन दोनों मंत्रों की वाक्य-रचना और इस अन्तिम मंत्र के 'अन्यमू' वाले 'उ' के प्रयोग से अत्यन्त स्पष्ट है कि यम यमी दोनों विवाह या नियोग तो करना चाहते हैं, परन्तु परस्पर में ऐसे संबन्ध का प्रत्याख्यान किया गया है।

'वा' निपात समुच्चय अर्थ में यास्क ने माना है (निरु० १ अ० ५ ख०)

"संवित् संभाषणे ज्ञाने संयमे नाम्नि तोषणे। क्रियाकारे (कर्मनियमे) प्रतिज्ञायां संकेताचारयोरपि॥" यहां हेमचन्द्र ने 'संवित्' का अर्थ संयम और आचार भी स्वीकृत किया है।

सम्पादकीय

देशबन्धु दास !

✓देशबन्धु चित्त-रञ्जन दास, आँखें चौंधिया देने वाले धूम्रकेतु के समान, भारत के राजनीतिक नभोमण्डल में एकदम चमके, और अभी हम उस उग्र आलोक की प्रचण्डता से सहसा-निमीलित-नेत्रों को उद्घाटित न कर पाये थे कि क्षणों में ही तेजःपुञ्ज की अथाह वृष्टि कर, अन्तर्धान भी हो गये! अभी तो वे आये ही थे, आह! वे आने से पहिले ही चल भी दिये ! उस दिन किसी को विश्वास न होता था। बंगाल में द्वैध-शासन के टूट जाने पर देशबन्धु की जयकार पुकारी जा रही थी। इस अभूतपूर्व विजय के उपलक्ष्य में विजेता की किसी विलक्षण घोषणा की प्रतीक्षा हो रही थी। इसी प्रतीक्षा में दैनिक-पत्रों को हाथ में उठाया था, परन्तु—'हमरे मन कछु और है, विधना के मन और'—जिस २ ने पत्र उठाया उसी पर मानो अनभ्र वज्रपात हुआ और वह भौंचक्का सा खड़ा देखने लगा। क्षणभर में मातम छा गया—देशबन्धु की मृत्यु के समाचार ने मित्र, शत्रु, बाल, युवा, वृद्ध, सभी को रुला दिया और भारत-माता को निस्सीम दुःख-सागर में डुबो दिया।✓

इस दुःख के आवेग में बार २ यही स्मरण कर के सन्तोष होता है कि यद्यपि देशबन्धु हमारी आँखों के सन्मुख बहुत थोड़ी देर तक न रहे तथापि जब तक रहे, पूरे रूप में रहे, बड़ी ज़ोर से रहे, ऐसे रहे कि इतनी ही देर में सब की आँखों और दिलों में बस गये, घर कर गये। देशबन्धु ने अपने भौतिक शरीर को इस प्रकार क्यों समेट लिया? कहीं उन की व्यथित आत्मा एक शरीर को स्वराज्य-संग्राम में निर्बल पाकर अपने देशवासियों के तैंतीस करोड़ शरीरों को तो अपना शरीर बनाने के लिये व्याकुल नहीं हो उठी? कहीं देशबन्धु दास, करोड़ों देशबन्धुओं के रूप में जन्म लेने के लिये तो नहीं मरे? कहीं भारतवासियों के हृदय हृदय में अपनी प्रतिकृति बैठा देने के लिये तो वे अकस्मात् ओझल नहीं हुए?

कौन जानता है इस दैवीय प्रकोप का वास्तविक अभिप्राय क्या है? इस में सन्देह नहीं कि वे भारत-माता के उन पुत्रों में से थे जो अकेले उस की गोद को भर रहे थे। करोड़ों के रहते हुए भी उन के चले जाने से वह गोद खाली हो गई, सूनी हो गई, माता लुट गई। भारत माता को सान्त्वना तभी मिलेगी जब यह अभाव पूरा होगा। देशबन्धु की आत्मा तभी शान्ति लाभ करेगी जब भारत-जननी के करुण-क्रन्दन को सुन कर देश की मिट्टी से बना एक २ शरीर अपनी माता के बन्धनों को काटने के लिये, परमात्मा को साक्षी करके, प्रण कर लेगा और उस प्रण के निबाहने में ही लड़ाई के मैदान में डटा हुआ देशबन्धु की तरह प्राण दे देगा। देशबन्धु के अभाव को पूरा करने की ज़िम्मेवारी भारत-माता के एक २ पुत्र के

कन्धे पर आ पड़ी है। स्वतन्त्रता देवी के लिए कर्मण्यता की वेदी पर उस देशभक्त वीर ने अपने तन-मन-धन-परिजन-सर्वस्व को बलि चढ़ा दिया। आज वह अजेय योद्धा अपने जीवन की अन्तिम आहुति देकर इस पार से उस पार जा खड़ा हुआ है। विश्व-वैतरणी के उस किनारे पर खड़ी देशबन्धु की अमर-आत्मा, इस किनारे, मातृभूमि की स्वतन्त्रता के लिए चलते युद्ध को बड़ी उत्सुकता पूर्वक दिव्य-चक्षुओं से टिकटिकी बाँधे देख रही है। कान लगा कर सुनो, उस आत्मा के धीमे २ शब्द इस पार भी सुनाई दे रहे हैं। वह कह रही है: "मेरे अभाव को पूरा करो!"

देशबन्धु जिए या मरे, इस का फ़ैसला करना अब उन के देशभाइयों के हाथ में है। देशबन्धु, सौ वर्ष और जी जाते और भारत-माता का एक बन्धन भी शिथिल न होने पाता तो उन का जीना, मरने के बराबर होता। देशबन्धु मर गये हैं, भौतिक लीला संवरण कर चुके हैं परन्तु यदि इस समय उन का प्राण-वायु भारत भर में व्याप्त हो कर प्रत्येक छाती को देशभक्ति के दम से भर दे तो उन का मरना भी जीने से बढ़ कर होगा, मुर्दों को भी ज़िन्दा करने वाला होगा। देशबन्धु मरना नहीं चाहते, जीना चाहते हैं; और इसी लिए देश के अपने भाइयों और बहनों को पुकार २ कर कह रहे हैं,— "मेरे जीने मरने का फैसला करना तुम्हारे हाथ में है। मेरे अभाव को पूरा करो। मुझे अमर बना दो"।

क्या देशबन्धु की आवाज़ बहरे कानों पर पड़ेगी? क्या हम, बल संचय करके यह कहने का साहस कर सकेंगे कि देशबन्धु मरे नहीं, ज़िन्दा हैं? क्या हम इस से भी एक कदम आगे बढ़ कर कह सकेंगे कि यदि देशबन्धु मर गये हों तो भी हम उन्हें अमर करने के लिये कमर कस कर खड़े हैं?—देशबन्धु की आत्मा इन प्रश्नों के उत्तर की प्रतीक्षा कर रही है और न जाने कब तक करती रहेगी!!

भारत-सचिव का वक्तव्य

मौन्ट-फ़ोर्ड सुधार स्कीम के अपर्याप्त होने के कारण भारत में बढ़ते असन्तोष पर विचार करने के लिए भारत-सचिव ने लार्ड रेडिंग को विलायत की यात्रा कराई। बहुत दिनों तक दोनों में खूब मन्त्रणा होती रही। पिछली ७ जुलाई को भारत-सचिव लार्ड बर्कनहेड ने पार्लियामेण्ट में इन मन्त्रणाओं का परिणाम स्वरूप अपना वक्तव्य भी कह दिया। इस वक्तव्य में ऐसी एक बात भी नहीं कही गई जिस के लिए लार्ड रेडिङ्ग को भारत से बुलाया जाता। इतने दिनों तक ज़मीन-आस्मान एक कर के, दुनियाँ भर में शोर मचा कर भारत-सचिव इसी परिणाम पर पहुँचे कि चलो, अभी कुछ न करना ही अच्छा है! भारत के साथ कैसा मखौल किया गया है! क्या मामूली रोज़ाना अख़बारों को पढ़ कर भारतसचिव ऐसा ही वक्तव्य प्रकाशित न कर सकते थे? ऐसे शून्य, अपमानजनक वक्तव्यों को सुनने के हम आदी हो चुके हैं परन्तु लार्ड बर्कनहेड ने जिस आडम्बर को रच कर भारत की उभरती हुई इच्छाओं को ठुकराया

है उसे देख कर किस आत्म-गौरवान्वित देश के मार्मिक-स्थल पर असह्य आघात नहीं पहुँचता ?

लार्ड बर्कनहेड के कथन का सार यह है कि भारत एक देश नहीं, उस में एक जातीयता नहीं; वह युरोप की तरह महा-प्रदेश है। इस महाप्रदेश में हिन्दु-मुसलमान, ब्राह्मणाब्रह्मण अनेक जातिएँ, उपजातियें रहती हैं जो आपस में एक दूसरे के खून की प्यासी हैं। इस के साथ ही इस महा-प्रदेश में पंजाब, बंगाल, मद्रास आदि भिन्न २ देश हैं जिन की युरोप के भिन्न २ देशों के साथ तुलना की जा सकती है। अंग्रेज़ भारत को छोड़ जाँय तो भारतवासी आपस में लड़ कर मर जायें। एशियन सोसाइटी के डिनर में भी हज़रत ने इन्हीं भावों को सन्मुख रखते हुए कहा था कि हम हिन्दुस्तान की तलवार के ज़ोर से ही रक्षा कर रहे हैं। इन में जातीयता के भाव आ जायँ, ये एक हो जायँ, आपस में लड़ना छोड़ दें तभी तो अंग्रेज़ हिन्दुस्तान को छोड़ सकते हैं, नहीं तो अनर्थ न हो जाय, भारतवर्ष तबाह न हो जाय ! हमें आश्चर्य तथा खेद इसी बात का होता है कि यह सब कुछ सीखने के लिए ही भारत-सचिव को, वाइसराय को भारत से बुलाना पड़ा। यह तो अंग्रेज़ लोग सदा से ही कहते चले आये हैं, इस में कौनसी नई बात धरी थी जो लार्ड रेडिंग ही जाकर लार्ड बर्कनहेड को सिखाते !

भारत में एक जातीयता न होने की बात देर से कही जा रही है लेकिन यह सरासर झूठ है। इस देश के इतिहास में 'भारत' तथा 'आर्य' शब्दों का प्रयोग सदा भारतवर्ष तथा आर्यावर्त भर में रहने वाले सम्पूर्ण नर-नारियों के एक समुदाय के लिए होता रहा है। हिन्दुस्तान शब्द में भी यही भाव प्रधान है। हिन्दू शब्द धर्म सूचक नहीं परन्तु देश सूचक है क्योंकि यह सिन्धु शब्द का अपभ्रंश है। सिन्धु के इस पार रहने वाले सभी हिन्दुस्तानी कहाते थे, एक जातीयता के सूत्र में बँधे हुए थे। भारतवर्ष की सबसे बड़ी बदकिस्मती यह है कि इस के इतिहास को अपने देश के लेखक नहीं मिले। अन्य देशों के इतिहास-लेखकों ने अपने २ देशों की घटनाओं का वर्णन करते हुए लड़ाई झगड़ों, परस्पर कलहों, ईर्षा—द्वेषों तथा घर की उस समय की फूटों की तरफ इशारा तक नहीं किया जब कि वे विदेशी शासनों के आधीन स्वतन्त्रता के युद्ध की तैयारियाँ कर रहे थे। इस के विपरीत, उन लेखकों का आदि से अन्त तक, यही दर्शाने का उद्योग रहा है कि वे निरन्तर एक जातीय संगठन में, एक ही इच्छाओं, भावनाओं तथा आदर्शों में पिरोए हुए थे। अपनी निर्बलता के इतिहास को वे बिल्कुल लाँघ गये हैं। भारत का दौर्भाग्य यही रहा है कि इस के विदेशी इतिहास लेखकों ने यहाँ के निवासियों के उत्साह, जोश तथा उमंग पर सदा के लिए पाला डाल देने के उद्देश्य से अपने २ इतिहासों में भारत के पराजयों का ही कालिमा-पूर्ण चित्र खींचा है जिस से उनकी आत्म-ग्लानि उन्हें किसी काम के योग्य न रहने दे। इन स्वार्थी इतिहास-लेखकों ने अशोक,

चन्द्रगुप्त, समुद्रगुप्त आदि के दिग्दिगन्त-व्यापी साम्राज्यों का जो फीका वर्णन किया है उसे पढ़ कर इनकी मानसिक कलुषता में तनिक भी सन्देह नहीं रहता। वास्तव में इन राजाओं ने भारतवर्ष में ऐसे राष्ट्र की आधार शिला रख दी थी जिसे ग्रेट ब्रिटेन के 'एम्पायर' की तरह साम्राज्य कहा जा सकता था। वह साम्राज्य इतना ही स्थिर रहा जितने रोम तथा ग्रीस के साम्राज्य स्थिर रहे। उन राष्ट्रों में एक जातीयता ही उत्पन्न न हो गई थी परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय भावना भी जाग्रत हो रही थी। उस समय का हमारे सामने चित्र खींचने के लिए देशभक्त भारतीय इतिहासज्ञों की लेखनी उठनी चाहिये। हां, यह एक जातीयता धीरे २ से टूट रही थी जब कि विदेशियों के आक्रमणों से, फिर से भारत अपनी पुरानी सभ्यता तथा संस्कृति की एकता का नाम लेकर बिखरते हुए मनकों को माला बनाने के लिए समेटने लगा। मुगलों के शासन काल में भारत की जातीय-एकता का मराठों तथा सिक्खों के उद्योग से पुनरुज्जीवन हो रहा था और दावे से कहा जा सकता है कि यदि इस बीच में भारत का शासन कम्पनी के हाथ और उनसे ब्रिटेन के हाथ न आ जाता तो प्रबुद्ध होती हुई जातीय-एकता अब तक अपने यौवन में पहुंच चुकी होती।

अंग्रेज़ों के भारत में आने से पहले यहाँ जातीयता उत्पन्न हो रही थी, यह बात इतिहास से साधारण सा परिचय रखने वाले व्यक्ति को भी विदित होनी चाहिये। तब से १७० वर्ष तक अंग्रेज़ों के भारत में राज्य करने के अनन्तर आज भारत-सचिव का कहना है कि भारत में जातीयता नहीं। यदि यह बात ठीक है तो इस का कारण अवश्य ढूंढना चाहिये। मुसल्मानों के राज्य के समय झगड़ा हिन्दुओं तथा मुसल्मानों में था और वे दोनों किसी न किसी तरह आपस में समझ रहे थे। कोई तीसरी शक्ति न आती तो झगड़ा अब तक का समाप्त हुआ होता। सम्भव है इसे समाप्त करने के लिये तलवारें खड़कतीं, खून की नदिएं बहतीं परन्तु इस में सन्देह नहीं कि यह समस्या इतनी देर तक न चलती। इसका अन्त शीघ्र ही हो जाता और भारत पर जातीयता के न होने का दोष आज कोई न दे सकता। अंग्रेज़ों के आ जाने से इस झगड़े का समाप्त न होने देना तथा इसे धीरे २ सुलगाते रहना उनका स्वार्थ होगया। उनके यहाँ पाँव जमने में यही तो सब से बड़ा साधन हो सकता था। हिन्दु-मुसलमान सदा लड़ते रहें और अंग्रेज़ उन दोनों के सिर पर तलवार का भय दिखा कर संसार के सामने अपने शान्ति के मिशन की घोषणा करते रहें! हिन्दू-मुसल्मानों के झगड़े को यह तूल रूप दिया ही हमारी माई-बाप सरकार ने है। मिन्टो-मोर्ले सुधारों के समय का वर्णन करते हुए लार्ड मोर्ले ने अपने 'रिकलेकशन्स' में मिन्टो को लिखी एक चिट्ठी दी है जिस में भारत के वायसराय को संबोधन कर के लिखा है—'You started the Muslim hare.' घटना का स्वरूप यह

है कि सुधारों की घोषणा करने से पहले मिन्टो ने कुछ मुसल्मानों को बुला कर कहा कि तुम अपनी जाति के लिये Communal representation (जाति-गत-प्रतिनिधित्व) मांगो और तुम्हें दिया जायगा। तब से हिन्दु-मुसल्मानों के धार्मिक झगड़े ने राजनीति के क्षेत्र में पदार्पण किया और भारतवर्ष की जातीयता के वायु-मण्डल में विष का सञ्चार कर दिया। इस समय भी इस झगड़े के अधिकाधिक बढ़ने का श्रेय हमारे रक्षकों को ही है।

परन्तु हम तो इन सब बातों के होते हुए भी यह मानने के लिये तैय्यार नहीं कि भारत-देश जातीयता से शून्य है। तीसरी शक्ति के लाख कोशिश करने पर भी विश्व-व्यापी जातीयता की लहरें भारत में उमड़ रही हैं और आज भारत में इतनी जातीयता अवश्य दिखाई देती है जिस पर विश्वास किया जा सके और जिस के आधार पर, भारत, संसार के सन्मुख अपने स्वतन्त्र होने का दावा रख सके। इटली जिस दिन स्वाधीन हुआ उस दिन उस में इतनी ही जातीयता थी जितनी आज भारत में दिखाई देती है। कनाडा में तो स्वतन्त्र होते समय इतने भी जातीयता के बीज न थे। यदि वे देश स्वतन्त्र हो गये तो भारत स्वतन्त्र क्यों नहीं हो सकता? हिन्दु-मुसल्मानों, ब्राह्मणाब्राह्मणों के धार्मिक झगड़े दूसरे नामों से क्या युरुप में न थे? सारे युरुप में रोमन कैथोलिक और प्रोटस्टेन्ट लोगों ने एक दूसरे का खून बहाया है। स्पेन में इन्कीज़ीशन रही, फ्रांस में ह्यूगनौट के अनुयायियों पर कैथोलिक लोगों की तरफ़ से अमानुषिक अत्याचार होते रहे, इङ्गलेंड में घरेलु-झगड़े नाक में दम करते रहे! यदि इन सब के होते हुए इन देशों में एक जातीयता थी तो आज भारत में एक जातीयता क्यों न मानी जाय?

जातीयता की सब से बड़ी शर्त एक है। परस्पर झगड़ते हुए भी यदि किसी देश के लोग यह अनुभव करते हैं कि संसार के अन्य देशों तथा मनुष्यों की अपेक्षा उनका अपने देश तथा अपने देश के मनुष्यों से अधिक सम्बन्ध है तो उस देश में जातीयता के भावों की मौजूदगी से इन्कार नहीं किया जा सकता। भारत वर्ष के सभी लोगों में ये भाव पाये जाते हैं। हाँ, यहाँ, जातीयता के लिए जिस एक परमावश्यक वस्तु की आवश्यकता है वह एक वस्तु ही नहीं पायी जाती, और वह है स्वराज्य! स्वराज्य के बिना किसी देश में जातीयता अपने पूर्ण रूप को नहीं धारण कर सकती। मानना पड़ता है कि स्वराज्य न होने के कारण आज भारत की जातीयता का शरीर अधूरा है परन्तु लार्ड बर्कनहेड का कहना है कि जातीयता न होने के कारण भारत को स्वराज्य नहीं मिल सकता। क्या अजीब चक्कर है! लार्ड बर्कनहेड ने अपनी वक्तृता झाड़ते हुए अपनी युक्ति को इस अन्योन्याश्रय दोष से बचाने का प्रयत्न नहीं किया!

जिन्होंने रेडिंग तथा बर्कनहेड के संवाद से शेख़चिल्ली के हवाई

किले बनाने शुरु कर दिये थे उन की आँखें अब तक खुल चुकी होंगी। उन्हें समझ पड़ने लगा होगा कि ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों की भारत के प्रति सहानुभूति का दिवाला निकल चुका है। हमारा विचार है कि ब्रिटेन ने पर्याप्त उदाहरणों से सिद्ध कर दिया है कि भारत को उस से किसी प्रकार की सहायता की आशा न करनी चाहिये। ऐसी अवस्था में हमारे देश भाइयों के सन्मुख एक ही रास्ता खुला है। जितना समय हम आशा तथा प्रतीक्षा में व्यतीत करते हैं उस से अपने संगठन में ही शिथिलता बढ़ती है, अपना चलाया हुआ कार्य ही दस कदम पीछे जा पड़ता है। ये लोग कान्फरेन्सें किया करें, लैक्चर दिया करें, किसी की रत्ती-भर भी पर्वा न करते हुए मातृभूमि को हृदय में मूर्ति स्थापित कर कमर कस लेने से ही उद्धार हो सकता है, अन्य किसी भी उपाय से नहीं। स्मरण रखना चाहिए, स्वतन्त्रता, स्वावलम्बन से मिलती है क्योंकि स्वावलम्बन का ही दूसरा नाम स्वतन्त्रता है !

भारत में विधवाएं

१९२१ की भारत-गणना के अनुसार हमारे देश में पांच वर्ष से कम आयु की ११८९२ विधवाएँ हैं। न जाने इस दुर्भाग्य देश पर भगवान् की कब कृपा होगी। हम कब समझ सकेंगे कि देश में इतनी विधवाओं के रहते भारत-माता का वैधव्य भी दूर नहीं हो सकता ! विधवा पुत्रियों को गोद में रखते हुए क्या माता का सुहाग बना रह सकता है ? भारत-माता की गोद में जितनी विधवा-पुत्रियें हैं उन की संख्या को देख कर माता के मुख पर पड़ी वैधव्य-दुःख की झुर्रियों का अभिप्राय तत्काल समझ आ जाता है। १९२१ की गणना के अनुसार हिन्दू विधवाओं की संख्या निम्न लिखित है:—

आयु	संख्या
०—१	५९७
१—२	४९४
२—३	१२५७
३—४	२८३७
४—५	६७०७
कुल	११८९२
५-१०	८५०३७
१०-१५	२३२१४७
१५-२०	३९६१७२
२०-२५	७३२८२०
२५-३०	११६३७२०
कुल	२६१९८९६
सर्व योग	२६३१७८८

साढ़े छब्बीस लाख के लगभग भारत की होनहार पुत्रियें तीस वर्ष से कम आयु की मौजूद हैं। इस उम्र से ऊपर चल कर तो वैधव्य आ ही जाता है क्योंकि इस हतभाग्य देश में आयु की औसत ही २१ वर्ष के ऊपर नहीं है ! जब तक देश में इतनी विधवाएं रहेंगी तब तक भारत-माता को शृङ्गार करने का कोई अधिकार नहीं !!

धार्मिक झगड़े

मुसलमानों की तरफ़ से अपनी संख्या-वृद्धि के लिए जो अनुचित उद्योग हो रहे हैं वे दिनोंदिन भयानक रूप धारण करते चले जा रहे हैं।

ओ३म्

वर्ष १ अङ्क २

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

श्रावण १९८१
जौलाई १९२४

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः
हविष्मन्तो अलंकृतः। ऋग्वेद १। १४। ५

"अनन्त व्यथा"

कब अनन्त आँखों से तेरा हे ! अनन्त ! दर्शन होगा ?,
कब अनन्त जिह्वाओं से प्रभु ! तेरा गुण कीर्तन होगा ? ।
कब अनन्त कानों से मधु-मय तेरा नाम श्रवण होगा?,
कब अनन्त बाहों से प्यारे! तेरा आलिङ्गन होगा ? ।

तुझ असीम में सीमाएँ सब कब जायेंगी टूट ?,
बेहद दर्द अनन्त होने को कब जायेगा छूट ? ॥

(पं० वंशीधर जी विद्यालङ्कार)

शब्द-शास्त्र तथा प्राचीन आर्य सभ्यता

(लेखक श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

आज कल, दिनों दिन, पुरातन वस्तुओं की मांग बढ़ती जा रही है। ऐतिहासिक नगरों में नित्य नये २ अजायब-घर खोले जा रहे हैं। अनेक स्थलों पर तो अजायब-घर इतने सुसज्जित किये गये हैं कि उन्हें देख कर सहज ही में एक ग्राम की कल्पना की जा सकती है।

सार्वजनिक अद्भुतालयों की वृद्धि के साथ साथ जनता में पुरातन पदार्थों के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया है। गृहस्थी लोग पुरानी वस्तुएँ रखने में गौरव समझने लगे हैं। एक ने प्राचीन सिक्के सम्भाल कर रखे हैं तो दूसरा पुरानी टिकटों का संग्रह करता दीख पड़ता है। पुरानी पुस्तकें, पुराने चित्र, पुराने रत्न—ज्यों २ नया समय आता जाता है त्यों २ पुराने समय की यादगार की प्रत्येक वस्तु को मनुष्य बड़े परिश्रम तथा कौतूहल से सुरक्षित रखने का प्रयत्न कर रहा है।

कई वस्तुएँ जितनी पुरानी हों उतना ही उनका दाम बढ़ कर होता है। प्रत्येक व्यक्ति रोम, ग्रीस, ईजिप्ट या बैबिलोनिया की पुरानी चीज़ों को नहीं ख़रीद सकता। इन वस्तुओं का दाम इन के पुराने होने के साथ २ बढ़ता ही जाता है। हां, कई ऐसी भी चीज़ें हैं जो बिना दाम मिल सकती हैं—चाहे वे कितनी भी पुरानी हो जाँय उन का दाम रत्ती भर भी नहीं बढ़ता। उन्हें एकत्रित करना हमारी सामर्थ्य के भीतर ही नहीं परन्तु प्रत्येक व्यक्ति के निकट उन का बहुत कुछ संग्रह सदा ही बना रहता है। उन वस्तुओं को क्रम-बद्ध करना हम में से थोड़े ही सीखते हैं परन्तु सीख जाने वालों को जो आनन्द उपलब्ध होता है वह पुराने सिक्कों, पुरानी पुस्तकों या पुराने चित्रों का अनुशीलन करने से उपलब्ध नहीं होता! यह अद्भुतालय प्रत्येक व्यक्ति के पास है—कमी इस का उपयोग करने वालों की है!

इस अद्भुतालय का नाम है—'भाषा'। संस्कृत, फ्रेंच, जर्मन, ग्रीक,—संसार की किसी भाषा का भी अध्ययन कीजिये, आपको उस में अनेक शब्द मिलेंगे जो मिश्र के अचम्भे में डाल देने वाले पिरैमिडों से भी पुराने हैं। पुराने से पुराना वृत्त, सिक्का या शिला-लेख प्राचीनता में शब्दों का मुकाबिला नहीं कर सकता। शब्दों की रचना इन सब वस्तुओं से पहले की गई थी—मनुष्य के मस्तिष्क की उत्पत्ति के साथ २ शब्दों की भी उत्पत्ति हुई। शब्दों का अद्भुतालय कैसा अद्भुत है-पुराने से पुराना है और सस्ते से सस्ता है।

प्राचीन पुस्तकों का अध्ययन करने से तात्कालिक सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। प्राचीन सिक्कों की बनावट तथा मुहर देख कर उस समय के लोगों के विषय में बहुत कुछ पता चलता है। प्राचीन खण्डरातों तथा शिला-लेखों से उस समय की कारी-

गरी एवं अन्यान्य अनेक नवीन गवेषणाएँ की जाती हैं। ठीक इसी तरह प्राचीन शब्दों का गहराई से अनुशीलन करने से प्राचीन सभ्यता तथा रीति रिवाजों के विषय में नये २ रहस्य खुलते हैं जिन का कुछ दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न इस लेख द्वारा किया जायगा।

प्रा० मैक्समूलर ने भारतीय, पारसी, लातीनी, यूनानी, इटैलियन, फ्रेंच, जर्मन आदि सब जातियों के लिए 'आर्य' शब्द का प्रयोग किया है। अनेक पाश्चात्य विद्वानों के मत में आर्य-जाति का आदिम निवास स्थान मध्य-एशिया के कैस्पियन समुद्र का दक्षिण प्रान्त है। वहीं से संसार में आर्य जातियें फैली हैं। जिस समय मध्य एशिया में आर्य जातियें सह-भाव से रहती थीं उस समय वे एक ही भाषा का व्यवहार करती थीं। उस भाषा के स्वरूप के विषय में निश्चयरूपेण कुछ नहीं कहा जा सकता परन्तु इस में कोई सन्देह नहीं कि वही भाषा आर्यभाषाओं की जन्मदातृ है।

मध्य-एशिया से आर्य-जाति दो मुख्य शाखाओं में विभक्त हो गई। एक शाखा एशिया की ओर को बढ़ी, दूसरी ने युरूप की राह ली। एशिया की तरफ़ जाने वाली शाखा के भी दो हिस्से हो गये—पारसी तथा भारतीय; युरुप की तरफ जाने वाली शाखा, उत्तर तथा दक्षिण, दो दिशाओं में विभक्त हो गई। उत्तरीय युरुप में जा कर बसने वाले लोग ही अंग्रेज़, जर्मन आदि हैं; दक्षिण युरुप में जाने वाले ग्रीक, लैटिन, इटैलिक, फ्रेन्च तथा स्पेनिश हैं। मूलतः ये सब जातियें आर्य-जाति की ही शाखा, उपशाखा हैं।

आर्य-जाति के इतिहास में सब से प्रथम मुख्य घटना एक दूसरे से जुदा होने की है। बहुत देर तक वे लोग एक ही स्थान पर मध्य—एशिया में इकट्ठे रहे परन्तु संख्या-वृद्धि के कारण परिमित स्थान में न रह सके अतः एक दूसरे से जुदा होने लगे। इसी समय को पाश्चात्य विद्वान् Aryan Separation (आर्यों की जुदाई) का नाम देते हैं।

जिस समय आर्य लोग इकट्ठे रहते थे—उस समय भारतीय, पारसी लातीनी, यूनानी, अंग्रेज़ और जर्मन सब एक ही स्थान पर थे—उस समय की क्या सभ्यता थी? Aryan Separation से पहले 'आर्यों' की उन्नति कहां तक पहुँच चुकी थी?

इस प्रश्न को दो तरह से हल किया जाता है। प्राचीन 'ऐतिहासिक स्मारक चिन्हों' की साक्षी द्वारा (Archœological Evidence) तथा प्राचीन 'शब्दों' की साक्षी द्वारा (Philological Evidence)। भूमि को खोदने से अनेक ऐसी वस्तुएँ उपलब्ध हुई हैं जिन से प्राचीन आर्य्य सभ्यता पर बहुत प्रकाश पड़ता है। परन्तु इन में मुख्य मार्ग शब्दों की सहायता द्वारा अन्वेषण करने का है। मनुष्य की भाषा जितनी उन्नत होगी उतने ही उस के विचार भी उन्नत होंगे। मैक्समूलर आदि अनेक विद्वानों ने शब्द-शास्त्र की सहायता द्वारा प्राचीन आर्य सभ्यता को चित्रित करने का

सराहनीय उद्योग किया है। ऐतिहासिक-स्मारक-चिन्हों की साक्षी पर अधिक न लिख कर हम शब्द-शास्त्र द्वारा की गई खोजों पर ही अपने विचार प्रकट करेंगे।

महाशय टेलर अपनी पुस्तक 'The Origin of the Aryans' के १३२ पृ० पर प्राचीन आर्य सभ्यता का चित्र इस प्रकार खींचते हैं:—

"आर्य लोग पशुओं के पालन से अपने जीवन का निर्वाह किया करते थे। जंगली लोगों को अपने पशुओं की रक्षा के लिए कुत्ते की आवश्यकता पड़ती है-उन्हों ने कुत्ते को पालतू बना लिया था। वे शायद ताँबे से परिचित थे परन्तु अन्य किसी धातु के विषय में उन्हें कोई ज्ञान न था। गर्मियों में वे छप्पर डाल कर रहते थे, सर्दियों में ज़मीन में गढे खोद कर अपना बचाव करते थे। हड्डी की सूईयों से चमड़ा सी कर शरीर ढाँपते थे। लकड़ियों को घिस कर वे अग्नि प्रदीप्त करते थे। सौ तक गिन सकते थे। कृषि विद्या से उन का परिचित होना सन्देहास्पद है! विवाह के अतिरिक्त उन के समाज में कोई संस्था न थी। वे बहु विवाह करते थे। मनुष्य को देवता पर बलि चढ़ाते थे। उन के पास रक्षा के साधनों का अभाव था। उन की सम्पत्ति 'पशु' थे—'भूमि' को धन समझने की अवस्था तक वे अभी नहीं पहुंचे थे"।

प्राचीन-आर्य-सभ्यता की इस अवस्था को शब्द-शास्त्र (Philology) द्वारा कहाँ तक पुष्टि मिलती है, इसी प्रश्न पर हम ने अब विचार करना है।

प्राचीन आर्यों की सामाजिक अवस्था पर विचार करते हुए कुछ एक विद्वान् कहते हैं कि आर्यों की सामाजिक उन्नति बहुत पीछे थी। विकासवाद के अनुसार संसार के इतिहास में एक समय ऐसा आया था जब माता ही गृह-शासन में प्रधान थी। वही सन्तान का भरण-पोषण करती थी, पिता कभी २ आता जाता था। पशुओं में ऐसा ही पाया जाता है। बच्चे की रक्षा का भार माता पर ही रहता है। आर्य लोग इस अवस्था से नहीं निकले थे तभी तो 'मातापितरौ' में माता शब्द का प्रयोग पिता से पहले होता है। 'मातृमान्, पितृमान्, आचार्यवान् पुरुषो वेद'—इस वाक्य में भी माता को ही पहले स्थान दिया गया है। विकास की इस अवस्था का नाम Metrocratic stage (मातृ-शासन काल) है।

जो बात हमें सपने में भी नहीं सूझी वही अन्वेषण-प्रिय पाश्चात्य विद्वानों के लिए विकास के सिद्धान्त को पुष्ट करने में प्रमाण भूत सिद्ध हो गई! जिन शब्द-शास्त्रज्ञ विद्वानों की यह कल्पना है उन्हें यह भूल गया कि यदि आर्य लोग मातृ-शासन-काल की अवस्था में थे तो 'माता' शब्द का अर्थ 'भरण-पोषण करने वाली' होना चाहिए था। है ठीक उल्टा! 'पिता' शब्द की व्युत्पत्ति है-पाति, रक्षतीति पिता; जो भरण-पोषण करे उसे 'पिता' कहते हैं। पिता शब्द का अर्थ स्वतः पाश्चात्य कल्पना को निर्मूल प्रमाणित करता है। इस के अतिरिक्त 'माता च पिता च' का समस्त शब्द

'पितरौ' बनता है—'मातरौ' नहीं। इस से भी स्पष्ट है कि आर्य लोग पिता को परिवार का भरण-पोषण करने वाला समझते थे, माता को नहीं। 'माता' शब्द को प्रधानता देने का कारण उन का मातृ-शक्ति के महत्व को समझना था।

पिता शब्द के लिए लैटिन में pater तथा ट्यूटैनिक भाषा में fadar शब्द पाया जाता है—अतः आर्यों के परस्पर जुदा होने से पहले 'पिता' शब्द का प्रयोग सब आर्यों में पाया जाता था और वे पिता को ही परिवार का रक्षक समझते थे।

महाशय टेलर के कथनानुसार आर्य लोग परिवार-निर्माण से परिचित न थे। विवाह-सम्बन्ध वे करते थे परन्तु उस में भी कोई विशेष नियम न था। कल्पना विकासवाद को दृष्टि में रख कर की गई है। इसे सिद्ध करने के लिए उनके पास कोई प्रबल प्रमाण नहीं—इस के प्रतिकूल अनेक प्रमाण विद्यमान हैं।

संस्कृत, लैटिन, ग्रीक, स्लैवोनिक तथा ट्यूटोनिक-सब भाषाओं में परिवार-सम्बन्ध-सूचक मिलते-जुलते शब्द उपलब्ध होते हैं जिन से स्पष्ट सिद्ध है कि Aryan Separation से पहले आर्यों में परिवार सम्बन्ध की व्यवस्था भी दृढ़ हो चुकी थी। लैटिन में श्वशुर के लिये Socer (सोसर) शब्द पाया जाता है ; स्लैवोनिक में Svekru (स्वकरु) तथा ग्रीक में Ekvpos (एकवपोस) शब्द पाये जाते हैं। पुत्र-वधु के लिए संस्कृत में स्नुषा; लैटिन में Nurus (नुरुस्) ; ग्रीक में Nnos (नौस्); स्लैवोनिक में स्नुचा तथा ट्यूटोनिक में स्नुरा शब्द पाये जाते हैं। पोते के लिए संस्कृत में नप्ता; लैटिन में Nepos (नेपोस) तथा स्लैवोनिक में Netij(नेतिज) शब्द पाये जाते हैं। परिवार के लिए संस्कृत में गण; लैटिन में Genus (जेनस); ग्रीक में गेनौस तथा ट्यूटोनिक भाषा में Kuni (कुनी) शब्द पाये जाते हैं। क्या इन सब शब्दों की परस्पर समानता से यह सिद्ध नहीं हो जाता कि जिस समय ग्रीक, लैटिन, भारतीय, ट्यूटैनिक था स्लैव लोग इकट्ठे रहते थे उस समय उन में परिवार की व्यवस्था वर्तमान थी ?

कहा जाता है कि आर्य लोग बहु-विवाह करते थे। यह भी विकास वादियों की अनर्गल कल्पना है क्योंकि वेदों में पति-पत्नी का वर्णन करते हुए सर्वत्र 'नौ' अर्थात् द्विवचन का प्रयोग किया है-बहु वचन का कहीं नहीं।

'भ्राता' शब्द 'भृ' धातु से व्युत्पन्न होता है। भ्राता शब्द का अर्थ है-'भाई'। भर्ता का अर्थ है-'पति'। क्योंकि दोनों शब्द एक ही धातु से निष्पन्न होते हैं अतः पाश्चात्य शब्द—शास्त्रज्ञों की सम्मति है कि भारतीय आर्यों में बहिन से विवाह कर लेने की प्रथा प्रचलित थी। 'भ्राता' ही 'भर्ता' हो सकता था। विकास वाद की दृष्टि से समाज के विकास में ऐसी अवस्था आनी ही चाहिए—इस का प्रमाण उन्हें इन दोनों शब्दों के एक ही धातु से नि-

स्पन्न होने में मिल जाता है।

भारत के प्राचीन शब्द-शास्त्री (Philologist) यास्क मुनि को जो बातें न सूझीं वे आज कल के पण्डितम्मन्य विकास-वादी बड़े गर्व से प्रतिपादन कर रहे हैं। इन विद्वानों के कथनानुसार प्राचीन आर्य लोग घर ही में शादी कर लेते थे क्योंकि भ्राता तथा भर्ता दोनों शब्दों की रचना में एक ही धातु दीख पड़ती है। परन्तु यास्क मुनि ने 'दुहिता' शब्द की व्युत्पत्ति करते हुए 'दुहिता कस्मात्—दूरं हिता भवतीति' लिखा है। लड़की को दुहिता इस लिए कहते हैं क्योंकि उस की दूर शादी की जाती है। दुहिता शब्द की व्युत्पत्ति ही विकास के विचार का खण्डन करती है। सब प्राचीन आर्य जातियों में दुहिता शब्द ही लड़की के लिए प्रयुक्त होता है। ग्रीक में 'तुगातेर'; ट्यूटौनिक में 'दाहतर'; स्लेवौनिक में 'दुश्तर' तथा जिन्द में 'दुग्घतर' शब्द संस्कृत के 'दुहितर' शब्द से ही मिलते जुलते हैं अतः आर्य लोग लड़की का दूर देश में ही विवाह करते थे—भाई बहिन का विवाह नहीं करते थे।

मैक्स मूलर महोदय ने अपनी पुस्तक 'Biographies of Words and the Home of the Aryas' में कुछ शब्दों की व्युत्पत्ति दर्शाते हुए यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि भारतीय—आर्य सभ्यता की दृष्टि से अभी विकसित नहीं हुए थे। वे लोग पशु को अपना धन समझते थे—अभी 'भू-सम्पत्ति' के विचार का विकास नहीं हुआ था। वेद में 'गोप' शब्द का अर्थ 'राजा' है, परन्तु वास्तव में गोप का धात्वर्थ 'गौओं की रक्षा करने वाला' है। जो गौओं का मालिक था, जिस के पास अधिक पशु थे वही गोप कहाता था। परन्तु क्योंकि अधिक पशुओं वाला ही सम्पत्तिशाली समझा जाता था अतः कालान्तर में गोप शब्द का अर्थ 'राजा' हो गया। वेद में 'गोष्ठ' शब्द का अर्थ 'सभा' है परन्तु वास्तव में इस के मूल में भी गो शब्द ही पड़ा हुआ है। 'गविष्ठि' का अर्थ 'युद्ध में' है। इस का कारण यही है कि प्रारम्भ में गौओं के लिए ही युद्ध होते थे। 'गोत्र' शब्द का अर्थ 'वंश' हो गया है परन्तु 'गौओं का त्राण करना' यही इस शब्द का प्रारम्भिक अर्थ है।

इस सारे युक्त्युपक्रम में गो का अर्थ गौ मान लिया गया है। पाश्चात्य विद्वानों को अपने काम की बात ढूँढ़ निकालने की बड़ी अच्छी तरकीब आती है। उन्हें यह सर्वथा भूल गया कि 'गो' शब्द के दोनों ही अर्थ हैं—गौ तथा भूमि। जिन युक्तियों से वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि प्राचीन आर्य ग्वालों का जीवन (Pastoral life) व्यतीत करते थे ठीक उन्हीं युक्तियों से यह सिद्ध हो जाता है कि वे भूमि को सम्पत्ति मानने के जीवन तक (Agricultural life) विकसित हो चुके थे-क्योंकि 'गो' शब्द के भूमि अर्थ के लिए ग्रीक में भी 'गे' शब्द पाया जाता है जिस से अंग्रेज़ी का 'जियोलोजी' शब्द बना है। इस के अतिरिक्त ऐसा भी प्रतीत होता है कि

प्राचीन आर्यों की भाषा में 'गो' शब्द का मुख्य अर्थ भूमि ही था क्योंकि निघण्टुकार ने पृथिवी के नामों का वर्णन करते हुए 'गो-ग्मा-ज्मा-क्ष्मा' इत्यादि पाठ में 'गो' शब्द को सब से पहले रक्खा है। जिस प्रकार इस समय 'गो' शब्द का उच्चारण करते ही हमें सास्नादिमती व्यक्ति का ज्ञान होता है ठीक इसी प्रकार निघण्टु के रचयिता के समय 'गो' शब्द का उच्चारण करते ही पृथिवी का ग्रहण होता था।

अपने विचार की पुष्टि में मैक्स मूलर ने तीन और युक्तियें दी हैं जिन्हें समाधान-सहित नीचे दिया जाता है:—

(क) प्राचीन आर्यों की भाषाओं में दुहिता शब्द सर्वत्र पाया जाता है। 'दुहिता' शब्द का अर्थ है 'दूध बेचने वाली' (Milkmaid) । जैसे आजकल गाँवों के लोगों की लड़कियाँ सिर पर दूध रख कर शहरों में बेचती फिरती हैं इसी तरह आर्य लोगों की लड़कियाँ दूध बेचा करती थीं-इसीलिए लड़की का नाम ही दुहिता रक्खा है।

यह अत्यन्त भ्रम-मूलक कल्पना है। दुहिता शब्द का अर्थ जैसा हम ऊपर दिखा चुके हैं 'दूर भेजी गई' है 'ग्वालन' नहीं। यास्क ने दुहिता की व्युत्पत्ति करते हुए-'दोग्धेर्वा'-यह भी लिखा है। सम्भवतः इसी अर्थ को ले कर यह कल्पना की गई है। परन्तु 'दोग्धेर्वा' की व्याख्या करते हुए देवराज यज्वा ने लिखा है-'सा हि नित्यमेव पितुः सकाशात् द्रव्यं दोग्धि'-अर्थात् वह सदा पिता के धन को दोहती रहती है अतः उसे 'दुहिता' कहते हैं, दूध बेचती है इस लिए नहीं। दुह् धातु का अर्थ 'भरना' भी है। स्त्री खाली घर को भर देती है-उस के आ जाने से घर का खालीपन चला जाता है, इस लिए भी लड़की को 'दुहिता' कह सकते हैं।

(ख) 'पशु' शब्द का अर्थ है जानवर। लैटिन में Pecu (पेकु) शब्द का अर्थ भी जानवर है। परन्तु अंग्रेज़ी के Pecuniary (धन सम्बन्धी) शब्द में Pecu शब्द का अर्थ 'धन' हो जाता है। इस से पाश्चात्य-शब्द शास्त्र-वेत्ता यही परिणाम निकालते हैं कि 'पशु' ही कालान्तर में 'धन' अर्थ का द्योतन करने लगा क्योंकि आर्यों की सभ्यता में पशु को ही धन समझा जाता था।

इस का उत्तर यही है कि लैटिन भाषा के अतिरिक्त अन्य किसी आर्य-भाषा में पशु शब्द का अर्थ धन नहीं पाया जाता। यदि मान भी लिया जाय कि सब आर्य पशु को ही धन मानते थे तो भी इस से विकास-वाद की किसी कल्पना की पुष्टि नहीं होती। 'पशु' को तो अब भी धन समझा ही जाता है। और वह धन है भी। परन्तु पशु को ही धन समझा जाता था, इस इस कल्पना की इस से पुष्टि नहीं होती।

(ग) 'आर्य' शब्द के प्रयोग को देख कर कई विद्वानों का कथन है कि जब आर्य लोग कुछ खेती करना सीख गये तब का यह शब्द है। उन के मत में 'आर्य' शब्द का अर्थ है-भूमिपति, कृषक या Landholder। मैक्स मूलर ने आर्य शब्द को 'ऋ' धातु से निकाल

कर इस का 'खनन' अर्थ किया है। आर्य लोग कुछ २ खेती करना सीखे थे-पूरा नहीं-यह 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति से सिद्ध किया जाता है।

यह कल्पना सर्वथा नवीन है। 'आर्य' शब्द का अभी तक हम लोग 'श्रेष्ठ' यह अर्थ सुना करते थे। यदि इस का 'कृषक' अर्थ भी मान लिया जाय तो भी पाश्चात्य विद्वानों की कल्पना का यह शब्द खण्डन करता है। यदि वे कृषक थे तो वे ग्वाले न थे। आर्य शब्द का कोष में 'वैश्य' अर्थ पाया जाता है। आर्य लोग उन्नत अवस्था में थे, अपने को श्रेष्ठ समझते थे तथा व्यापार में दक्ष थे-यह सब कुछ 'आर्य' शब्द की व्युत्पत्ति से स्पष्ट है।

—:*:—

भौंरा

(श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

इन झाड़ियों में भौंरे ! तू क्यों भटक रहा है ?
सूखी कटीली डालों में क्यों अटक रहा है ? ॥ १ ॥

फिर तो नहीं खिलेगी मुरझा गई कली जो,
किस आस से तू इन में सिर अब पटक रहा है ? ॥ २ ॥

खिल खिल बहार इक दिन की ये दिखा गए गुल,
परदा जुदाई का अब इन पर लटक रहा है ! ॥ ३ ॥

ऐसा फिरा है पानी सब ढल गई जवानी,
अब वह न रंग फ़ानी इन में चटक रहा है ! ॥ ४ ॥

समझा जिसे इन्हों ने प्यारा व इक सहारा,
उस ही हवा का झोंका इन को झटक रहा है ! ॥ ५ ॥

कुछ सोच तो ज़रा तू पागल क्यों बन रहा है,
चितवन पै किस की भूला अब तक मटक रहा है ? ॥६॥

काँटों से इन के बिंध कर लोहू लुहान हो कर,
मर जायगा तू—मेरे दिल में खटक रहा है ! ॥ ७ ॥

क्रियात्मक-धर्म

(ले० श्री स्नातक केशवदेव जी सिद्धान्तालंकार)

पिछले दिनों एण्डेल महोदय (भूतपूर्व प्रिन्सिपल सैन्ट्रल हिन्दू कालिज, बनारस) के एक व्याख्यान का सुनने का अवसर मिला। एक बात जो व्याख्याता ने हिन्दुस्तानियों और पश्चिम-देश वासियों में भेद करने वाली कही, अधिक ध्यान देने योग्य है। उन्होंने कहा कि हिन्दुस्तानी भी योरपीयों के अनुकरण में बड़ी २ सभाएँ कायम करते, और बड़े २ प्रस्ताव पास करते हैं। परन्तु उनकी सत्ता एक रीते ढोल के सिवाय कुछ नहीं जिसका शोर तो बड़ी दूर तक सुनाई देता है, परन्तु अन्दर केवल खोखलापन है।

यह अक्रियात्मकता न केवल राजनीतिक या सामाजिक क्षेत्रों में ही अनुभव की जाती है, अपितु प्रत्येक क्षेत्र के नेता लोग इसे विशेषतया अनुभव करते हैं।

२

अभी जब महाशय एण्ड्रूज़ विलायत से अन्तिम बार भारत लौटे, तब उन्होंने मौडर्नारिव्यू में, अपने नवीन अनुभवों पर कुछ लिखित विचार प्रकाशित किए, जिन में से एक लेख जिसका शीर्षक Christ and India था विशेष उपयोगी है। उसमें वे लिखते हैं कि इस वर्ष जब बड़े दिनों की छुट्टियों में मैं विलायत था, मैंने Christmas bells या बड़े दिनोंके उपलक्ष्य में बजने वाली चर्च की घण्टियाँ सुनीं। देशभक्त एण्ड्रूज़ लिखते हैं कि यद्यपि मैं अरसे से उन्हें सुनने का आदी रहा हूँ तथापि आज से पहिले ये मुझे इतनी कभी नहीं अखरीं जितनी इस बार। मैं अपने चारों ओर हज़रत ईसा के शान्ति और सदिच्छा के मधुर उपदेशों से ठीक विरुद्ध परिस्थिति पाता था। मुझे फ्रांस जाने का अवसर हुआ। यद्यपि योरोपीय महाभारत को समाप्त हुए कई वर्ष हो गये, तब भी फ्रांस की विद्वेषाग्नि पूर्वापेक्षया तनिक भी नहीं घटी। इंग्लैण्ड में यद्यपि यह आग नहीं सुलगती, तथापि व्यापार की शिथिलता और मज़दूरों की बेरोज़गारी की समस्या ने सारे वायुमण्डल को परस्पर जाति-घृणा से अत्यन्त दुर्गन्धित कर रक्खा है। आयर्लैण्ड में भी यद्यपि स्वतन्त्र शासन (Free state) का विधान हो चुका है तथापि अपने प्रबल पड़ोसी का आतङ्क सदा प्रजा को उद्विग्न बनाये रखता है। जर्मनी बेचारे को तो अपनी बेहद ग़रीबी और पेटका सवाल ही किसी करवट चैन नहीं लेने देता। लेखक लिखता है कि इस दशा में इञ्जील के Sermon on the Mount की सुध किसे आ सकती है?

वह कहता है कि इस समय मैंने पूरे तौर से अनुभव किया कि Profession of Christianity और Practice of Christianity में अर्थात्, ईसाइयत के प्रचार और आचार में कितना महान् भेद है। इस अवसर पर लेखक को स्वभावतः हज़रत ईसा का यह वाक्य स्मरण

आता है, जिसमें उसने कहा है:—

"Not everyone that saith unto me, Lord, Lord, shall enter into the kingdom of heaven, but he that doeth the will of my Father which is in heaven."

अर्थात् वह मनुष्य जो केवल मुख से परमात्मा का नाम उच्चारण करता है- स्वर्ग-राज्य में नहीं जा सकता, प्रत्युत् जो मेरे पिता (ईश्वर) की आज्ञा का पालन करता है, वही देव-लोक का निवासी बन सकता है। यह है. विचारात्मक और क्रियात्मक धर्म में भेद।

३

स्वामी विवेकानन्द ने एक बार अमेरिका में व्याख्यान देते हुए बतलाया था कि किस तरह सद्विचार और शान्ति का उपदेश करने वाले धर्म, समय के गुज़रने से दुराग्रह और अशान्ति के केन्द्र बन जाते हैं। वही धर्म जो आज पारस्परिक जातीय कलहों को देख कर उन्हें मिटाने के लिए 'प्रेम' और 'अहिंसा' का अमोघ शस्त्र लेकर मैदान में निकला था, दुनियाँ की ज़हरीली हवा लगते ही मोम और मक्खन से भी कोमल शस्त्र फौलाद से भी कठोर तलवार का रूप धारण कर शत्रुओं के सिरों पर ताण्डवनृत्य करने लगता है। यह अन्तर मन्तव्यों और कर्तव्यों का है। इसी लिए जब तक कोई धर्म Practice या 'क्रिया' में ही रहता है, तब तक तो उसका कदम अपने उद्दिष्ट मार्ग पर बराबर बढ़ता चला जाता है, परन्तु ज्यों ही उसने मठ वा मण्डलियाँ बनाने की इच्छा की त्यों ही धर्म का वास्तविक भाव लुप्त हो जाता है, केवल उसकी बाह्य आकृति बाकी नज़र आने लगती है। अब उस 'प्रेम' और 'शान्ति' के धर्म में आन्तरिक कलहों की बुनियाद पड़ती है, और धर्म एक पेशे (Profession) का रूप धारण कर लेता है। धर्म के इस परिवर्त्तित आकार को देख कर लोग समझने लगते हैं कि धर्म ही सब लड़ाइयों की जड़ है। परन्तु हमारा उन महानुभावों से एक उच्च कोटि के लेखक के शब्दों में निम्न निवेदन है कि:—"ये लड़ाइयाँ, जिन्हें इतिहास 'धार्मिक—युद्धों' के नाम से बतलाता है, वस्तुतः धर्मों के कारण नहीं हुईं अपितु धर्मों की बिगड़ी हुई दशाओं के कारण हुई हैं"।

४

स्वामी सत्यदेव ने जर्मनी जाने से पूर्व एक हिन्दी मासिक पत्रिका में लेख लिखा था, जिसका शीर्षक था. 'नकद और उधार धर्म'। उस में उन्हों ने इन उपर्युक्त दोनों भावों को 'उधार' और 'नकद' के नामों से उल्लिखित किया था। वास्तव में जब तक कोई धर्म नकद या क्रियात्मक रूप में रहता है, तब तक तो वह अपने उद्देश्य को पूरा कर पाता है। ज्योंही उसकी सारी पूँजी बहीखाते की किताबों में उधार की तरफ़ दर्ज हुई और नकद नारायण नाराज़ हो गये, त्यों ही शान्ति और सुख को बरसाने वाला—धर्म, उधार रूप में, अशान्ति और दुःख की प्रचण्ड आग बरसाने वाला हो

जाता है। यह 'नकद' और 'उधार' धर्म, क्रियात्मक और विचारात्मक धर्मों के दूसरे नाम हैं।

५

ईसाइयत 'प्रेम' और 'भ्रातृभाव' का मनोहर उपदेश देने के लिए उठो। जब तक प्रचारकों में त्याग और सहन शीलता रही, इसने भी खूब दौड़ें लगाईं। सैंकड़ों, हज़ारों को प्रतिदिन अपने पीछे चलाया। परन्तु ज्यों ही राज-मद ने इससे 'त्याग' और अपूर्व 'सहिष्णुता' के गुण छीन लिए इसकी दौड़ें रुक गईं। धीरे २ पैरों में बेड़ियाँ पड़ गईं। वही 'प्रेम' और 'एकता' का धर्म द्वेष और लड़ाई का कारण बन गया।

इस्लाम भी अपनी उच्च आकांक्षाओं को लेकर मक्के शरीफ़ से चला। इसके पैग़म्बर ने एक अल्लाह की इबादत सिखाते हुए, उसके 'रहिमान और रहीम' होने की दुहाई दी, और उस खुदा की वसीह दरगाह में हर अमीरो ग़रीब औ तिफ्लो ज़ईफ़ को एक हो जाने का सुन्दर उपदेश दिया। परन्तु समय के परिवर्तन से, हज़रत आदम, अपनी नग्न—अवस्था में देर तक न रह सके। प्रकृति के आवरण के साथ २ उनकी वह स्वभाव सिद्ध शुद्धता काफ़ूर हो गई, और वह रहिमान और रहीम का पाक मज़हब, हर कौम व मुल्क के खून में रंग गया।

यही दशा बौद्ध और पौराणिक धर्मों की हुई। दोनों ही 'अहिंसा' और 'परोपकार' के परम धर्मों का उपदेश करने वाले, प्राणिमात्र को परम पिता का अमृत पुत्र समझने वाले एक दूसरे को जीता जला देते हैं, नौकाओं में भर कर सिन्धु के अथाह जल में विलीन कर देते हैं। पारस्परिक वैमनस्य इतना अधिक बढ़ जाता है कि उनमें से एक को सदा के लिए अपनी प्यारी जननी जन्मभूमि को अन्तिम प्रणाम करना पड़ता है।

ये हैं भिन्न २ धर्मों और मतों के परिणाम। समय का चक्र और अवस्थाओं का परिवर्त्तन उन्हें कहाँ २ पहुँचा देता है!

६

हम आर्य-समाजी हैं। हमें आर्य-समाज से प्रेम है। इस लिए अन्त में साधारण आलोचना को छोड़ कर हम, बड़े अदब से, आर्यसमाज के नेताओं और कार्य कर्त्ताओं से दो २ बातें करना चाहते हैं। सबसे पहिले क्या हम पूछ सकते हैं कि आर्य-समाज भी अन्य धर्मों या मतों की तरह एक Profession या पेशा तो नहीं बन रहा? क्या इसमें भी औरों की तरह दिखावे का भाव, कर्त्तव्य-भाव की अपेक्षा प्रबल तो नहीं हो रहा? हमें तो इसका 'नहीं' में उत्तर देते हुए संकोच होता है। हम भली भाँति जानते हैं कि अन्य धर्मों (मतों) की अपेक्षा इसमें क्रियात्मकता बहुत अधिक है। हम तो उसे उस आदर्श की ऊँचाई तक चढ़ा हुआ देखना चाहते हैं, जिस तक उसका आचार्य ऋषि दयानन्द उसे ले जाना चाहता था।

१. पिछले दिनों हमें, पञ्जाब में 'दलितोद्धार' का काम करने का अवसर प्राप्त हुआ। हम यद्यपि अन्य

सब प्रान्तों की अपेक्षा छूतछात के मसले में अधिक आज़ाद हैं, तब भी अभी तक हम में बहुत तंगदिली बाकी है। इतनी कोशिशों के बीच भी हमारे घरों में हमारी दलीज़ के ऊपर अभी तक आर्य-समाज को पैर धरने का साहस नहीं हुआ। हमें तो बहुत बार निराशा की अवस्था में ऐसा प्रतीत होने लगता था कि आर्य-समाजियों का सारा धर्म, केवल ज़बानी जमा खर्च तक ही सीमित है।

२. यही हाल जात-पात के झगड़ों का है। कहने को तो हम गुण कर्मानुसार वर्णव्यवस्था के ढोल पीटते और बड़े २ बहस मुबाहिसे भी करते हैं, परन्तु कितने आर्यसमाजी ऐसे हैं, क्या हम पूछने का साहस कर सकते हैं कि कितने आर्यसमाजी लीडर भी ऐसे हैं, जिन्होंने अपनी लड़कियों और लड़कों की शादियाँ, वर्त्तमान जाति बन्धन तोड़ कर की हों ?

३. वेदों के स्वाध्याय की तो बात ही जाने दीजिए। उन्हें तो अब तक भी Sealed books ही समझा जाता है। हमें नहीं समझ आता कि ऐसी अवस्था में वेदों का नाम लेकर बड़ी २ अपीलें करना और स्वयं वेद का एक मन्त्र तक भी ठीक उच्चारण न कर सकना कहाँ तक शोभा देता है ?

हम चाहते हैं कि जिस समय कोई सज्जन आर्य-समाज के सभासद् बनने लगें उन्हें चाहिए कि वह भी बौद्ध भिक्षुओं की तरह पहिले अपने अन्तरात्मा से पूछ लें कि वे उन नियमों का पालन भी कर सकेंगे या नहीं ? अन्यथा ऐसे करोड़ों से भी ऋषि के पवित्र मिशन का वह काम न हो सकेगा जो केवल अंगुलियों पर गिने जा सकने वाले, कुछ, पूर्ण त्यागी, सदाचारी और मन, वचन तथा कर्म में एकता रखने वाले सच्चे आर्यपुरुषों से हो सकता है।

हम चाहते हैं कि प्रत्येक धर्म अपने शुद्ध नग्न और क्रियात्मक स्वरूप को पहिचाने, वर्त्तमान विकृत आकार से होने वाली बुराइयों से बच कर अपने मुख्य—उद्देश्य शान्ति और परस्पर प्रेम-प्रसार में अग्रेसर हो।

वेदोक्त यज्ञ-विधान

(लेखक—श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार पालिरत्न वेदोपाध्याय)

स्मृति ग्रन्थों, गृह्यसूत्रों एवं ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों में जो यज्ञ विधान पाये जाते हैं उन में से कुछ एक विधानों को हम प्रस्तुत लेख में वेद द्वारा प्रमाणित करना चाहते हैं। आशा है पाठकों के लिए यह लेख उपयोगी सिद्ध होगा।

यज्ञ सामग्री

ऋषि दयानन्द ने संस्कारविधि में यज्ञ के लिए चार प्रकार की सामग्रियों का विधान किया है—सुगन्धिप्रद, पुष्टिदायक, वृष्टिप्रद, और आरोग्यतावर्धक। इसको प्रमाणित

करने वाला ऋग्वेद २. ३७. ४. का निम्न लिखित मंत्र है:—

> अपाद्धोत्रादुत पोत्रादमत्तोत
> नेष्ट्रादजुषत प्रयो हितम् ।
> तुरीयं पात्रममृक्तममर्त्यं
> द्रविणोदाः पिबतु द्राविणोदसः ॥

इस मंत्र का देवता द्रविणोदस् है। यास्काचार्य ने इसी मंत्र की व्याख्या में द्रविणोदस् का अर्थ अग्नि किया है क्योंकि वह बल और धन को देने हारी है। अब आप वेदमंत्र का अर्थ देखिये:—

(द्राविणोदसः द्रविणोदाः)ऋत्विजों द्वारा प्रदीप्त अग्नि (हितं प्रयः होत्रात् अपात्) हितकारी हवि को वृष्टिप्रद याग से पान करे। (उत पोत्रात्, उत नेष्ट्रात् अजुषत) और वह अग्नि हितकारी हवि को सुगन्धि प्रद याग तथा पुष्टिदायक याग से सेवन करे, (तुरीयं अमर्त्यं अमृक्तं पात्रं पिबतु) और चौथी अकालमृत्यु से बचाने हारी ओषधादि रोगनाशक हवि को पीवे। (अमत्त) एवं यह अग्नि हमें सुखी करे। यास्काचार्य ने द्राविणोदस् का अर्थ 'ऋत्विजोंद्वारा प्रदीप्त' ऐसा किया है, क्योंकि अग्नि को हविरूपी धन देने से (अर्थात् यज्ञ में आहुति डालने से) द्रविणोदस् का अर्थ हुआ ऋत्विज्, एवं ऋत्विज् से पैदा की गई—प्रदीप्त की गई—अग्नि द्राविणोदस् हुई। पोत्र शब्द पूङ् पवने धातु से बनता है जिसका अर्थ है पावक, अर्थात् वह यज्ञ जिस से वायुमण्डल की अपवित्र वायु दूर हो जावे और उसकी जगह पवित्र-सुगन्धित हवा का प्रवेश हो। नेष्ट्र शब्द णिजिर् पोषणे धातु का रूप है। एवं नेष्ट्र का अर्थ हुआ पुष्टिदायक यज्ञ। वाचस्पत्यादि संस्कृत कोषों अमृत का अर्थ औषध किया है, उसी का रूपान्तर वेद में अमृक्त है। पात्र = हवि। एवं, पोत्र (सुगन्धित) नेष्ट्र (पुष्टि दायक) अमर्त्य अमृक्त अकाल मृत्यु से बचाने हारी औषध) ये तीन प्रकार की हवियें स्पष्टतया कही गईं। होत्र का शब्दार्थ हु दाने धातु से देने हारा है, परन्तु इस स्थल पर 'वृष्टि देने हारा' समझा जावेगा।

अब पाठकों को भली प्रकार विदित होगया होगा कि उपर्युक्त वेद की आज्ञानुसार मनुष्यों को समय २ पर पुष्टिप्रद रोगनाशक, सुगन्धि दायक और वृष्टिप्रद हवियों से यज्ञ करते हुए सुखलाभ करना चाहिए। परन्तु हम इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते कि किस ऋतु में कैसा हवन सामग्री का प्रयोग करना चाहिए, इसीलिए हमें यज्ञों द्वारा अभीष्ट फल प्राप्त नहीं होता।

हवियें

उपर्युक्त वेदमंत्र में यज्ञ-सामग्रियों के परिणाम के आधार पर चार भेद बतलाये गये। ऋ. ७,२,२ का निम्नलिखित मन्त्रांश उन सामग्रियों के दो रूपों को दर्शाता है:—

> स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या ।

वायु, वृष्टिजल आदि देव दो प्रकार की हवियों का आस्वादन करें।

यास्काचार्य ने इस मंत्र-भाग की व्याख्या इस प्रकार की है—"स्वदयन्तु देवा उभयानि हवींषि सोमं चेतराणिचेति वा, तान्त्राणि चावापिकानि चेति वा"। तन्त्र तथा आवाप शब्द के अर्थ शब्दकल्पद्रुम कोष ने "तन्त्रं उभयार्थैकप्रयोगः (सामान्यहोमः) आवापः प्रधानहोमः" किये हैं। अब पाठक हवि के दो भेदों को समझ सकेंगे। एक तो सोम अर्थात् सोमरस दूध, घृत आदि रस पदार्थ; दूसरे रसेतर मिष्ट, अन्नादि द्रव्य। अथवा एक तो सामान्य होम की हवि, और दूसरी प्रधान होम की हवि; जैसे संस्कारादि यज्ञों में सामान्य, प्रधान दोनों प्रकार के होम किये जाते हैं।

यज्ञ में श्रद्धा

मनुष्य जो कोई भी शुभ-कर्म करे वह श्रद्धापूर्वक अवश्य होना चाहिए। बिना श्रद्धा के किया हुआ कर्म अभीष्ट सिद्धि नहीं कराता। यदि हमारी किसी किये जाने वाले शुभ-कर्म में श्रद्धा नहीं तो अवश्यमेव उस कार्य के करने में कोई त्रुटि या विगुणता आजावेगी। कर्म उत्तमतया तभी किया जा सकता है जब कि कर्ता का दिल भी उसी में लगा हुआ हो। बिना दिल के शरीर निकम्मा है। इसी अटल सत्य सिद्धान्त को सामने रखते हुए ऋ. १०. १५१. १ में कहा गया।

श्रद्धयाग्निः समिध्यते
श्रद्धया हूयते हविः।

श्रद्धा से यज्ञाग्नि प्रदीप्त की जाती है, और श्रद्धा से हवि की आहुति दी जाती है। परन्तु आज कल के हमारे यज्ञ इस वैदिक आज्ञा से सर्वथा विपरीत हैं। पहले तो हम यज्ञ करते ही नहीं और जो करते हैं उन में से अधिकांश बेगार काटते हैं। संस्कारों में प्रायः यह दृश्य देखने में आता है। संस्कार में न यजमान का ध्यान होता है और न पुरोहित आदि ऋत्विजों का। उपस्थित महाशयों की तो दुनियाँ भर की बातें सब वहीं होती हैं। परिणाम यह होता है कि संस्कार का प्रभाव किसी के दिल पर नहीं होता और हमारे सब कर्म निष्फल सिद्ध होते हैं।

'स्वाहा' का प्रयोग

स्वाहाकार पूर्वक यज्ञ में आहुति देनी चाहिएँ—इस को प्रमाणित करने वाला ऋ. १०. ११०. ११ का निम्नलिखित मंत्रांश है:—

स्वाहाकृतं हविरदन्तु देवाः।

वायु, वृष्टि जल आदि देव स्वाहाकार से अग्निज्वाला में प्रक्षिप्त हवि का सेवन करें।

"स्वाहा" शब्द का निर्वचन करते हुए यास्काचार्य लिखते हैं "सु आह सु आहुतं हविर्जुहोतीतिवा" अर्थात् इस यज्ञकर्ता ने मंत्र द्वारा जो प्रार्थना आदि कही वह सत्य कही है, ये शब्द वक्ता के हृदय से निकले हुए हैं केवल वाणी से नहीं। अथवा यह यज्ञकर्ता सुष्टुतया हवि की आहुति देता है। एवं प्रत्येक मंत्र की समाप्ति में "स्वाहा" का उच्चारण करते हुए जब हम यज्ञ में आहुति डालते हैं तो प्रत्येक बार पुनः २ हम इस बात को मन में दृढ़ता पूर्वक धारण करते हैं कि हम जो मंत्रोच्चारण कर रहे हैं उस में उपदिष्ट

शिक्षाओं को हृदय से निकली हुई समझकर तदनुकूल आचरण करते हैं, और यज्ञ में हवि की आहुति विधि-पूर्वक डालते हैं। पर वेद की उपर्युक्त आज्ञा तो तभी पालन हो सके जब यज्ञकर्ता लोग वेद का स्वाध्याय करते हों, और उनके अर्थों से भली प्रकार परिचित हों। परन्तु इस ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया जाता। ऋषि दयानन्द ने संस्कार विधि के सामान्य प्रकरण में बड़ी स्पष्टता से लिखा "सब संस्कारों में मधुर स्वर से मन्त्रोच्चारण यजमान ही करे। न शीघ्र, न विलम्ब से उच्चारण करे किन्तु मध्य भाग से जैसा कि जिस वेद का उच्चारण है, करे। यदि यजमान न पढ़ा हो तो इतने मंत्र तो अवश्य पढ़ लेवे। यदि कोई कार्य कर्ता जड़ मन्द-मति काला अक्षर भैंस बराबर जानता हो तो वह शूद्र है अर्थात् शूद्र मन्त्रोच्चारण में असमर्थ हो तो पुरोहित और ऋत्विज् मन्त्रोच्चारण करे, और कर्म उसी मूढ़ यजमान के हाथ से करावे।"

यज्ञ में पूर्व दिशा

ऋ० १०. ११०. ४ के यज्ञ प्रकरण में "प्राचीनं बर्हिः" यह शब्द आये हैं। इसी मंत्र की व्याख्या में बर्हिः का अर्थ यास्क ने अग्नि किया है, और बतलाया है कि अग्निशाला अर्थात् यज्ञ-देश पूर्व दिशा की ओर होना चाहिए।

यज्ञ विषयक विधानों को हम ने वेद के प्रमाणों से पुष्ट करने का संक्षेप से यत्न किया है। इन की विस्तृत व्याख्या हम 'वेदार्थ-दीपक' नामी निरुक्तार्य-भाषा-भाष्य में करने का उद्योग करेंगे जो दयानन्द-जन्म-शताब्दी के अवसर पर प्रकाशित होगा।

———:o:———

क्रान्ति करो पर शान्त बने रहो

(श्री हरि)

जीवन है जबलौं जग में, तबलौं निज देश सनेह सने रहो,
भारतभूमि पै वारन को, तन प्रानन को तृन तुल्य गने रहो।
शासकहूं के कुशासन में, प्रन पालन को धृति तान तने रहो,
"श्री हरि" चित्त में धारि अहिंसहि, **क्रान्ति करो पर शान्त बने रहो।**

* * * * * *

मानिन में बनि मानी सदा, निज आन की मान की ठान ठने रहो,
प्रेमिन में बनि प्रेम स्वरूप, सनेह सुधा सों समोद सने रहो॥
"श्री हरि" क्रूर, कुशील, कमीनन, कूकुर से कपटीन गने रहो,
त्यों ही कुशासक शासन में नित, **क्रान्ति करो पर शान्त बने रहो।**

"अछूत"

(लेखक—श्री० चन्द्रगुप्त, उपस्नातक, गुरुकुल कांगड़ी)

(१)

"खड़ा रह छोकरे!" कह कर, बेंत हाथ में लेकर डाक्टर साहब उस बेचारे बालक पर झपटे। बेचारा बालक सहम गया। वह गिड़गिड़ाना छोड़ कर सोच ही रहा था कि अब क्या किया जाय, इतने में डाक्टर साहब उस की नंगी, काली पीठ पर बेंत बरसाने लगे। बालक अपनी माता की बीमारी के कारण पहले ही उदास था, डाक्टर साहब के हाथ से बेंत खाकर वह माता का दुःख भूल गया। बेंत की मार से उस की पीठ जल उठी; बालक चिल्ला चिल्ला कर रोने लगा। डाक्टर साहब आखिर डाक्टर ही थे; पांच सात जड़ कर उन्होंने भेरी को छोड़ दिया। उन्होंने सोचा कि अगर वह बेहोश होगया तो उस की दवा भी उन्हें ही करनी पड़ेगी। भेरी १२ बरस का बालक था वह सड़क पर लोट लोट कर रोने लगा। डाक्टर साहब उस के आक्रन्दन से और भी अधिक क्रुद्ध हुए। वे द्विज थे; भेरी अछूत जाति का बालक था, अतः वे स्वयं अपने हाथों से उसे कैसे छू सकते थे! आखिर तंग होकर उन्होंने हस्पताल के भंगी को आवाज़ दी। वह लम्बा-चौड़ा जवान पंजाबी ढंग का तम्बा पहने हुये वहाँ आ हाज़िर हुआ। डाक्टर साहब ने उस से कहा "जाओ, इस पाजी को कहीं दूर फैंक आओ।" अत्याचार पीड़ित लोगों में परस्पर सहानुभूति का सर्वथा अभाव हुआ करता है। भंगी प्रसन्न होकर शीघ्रता से उस बालक पर झपटा। बालक दोनों बाहुओं में सिर छिपा कर ज़ोर ज़ोर से रो रहा था। अचानक दो कर्कश हाथों ने उस की टांगों को जकड़ लिया। भेरी चौंक कर यह देखने भी नहीं पाया था कि क्या हुआ, इतने में पक्की सड़क पर उस की पीठ रगड़ी जाने लगी। बेंत की मार पर यह व्यथा! भेरी ज़ोर ज़ोर से चिल्लाने लगा। वह समझता था कि मेरी इन करुण-पुकारों से लोग मुझ पर दया करेंगे। परन्तु वह बेचारा अज्ञानी था; अछूतों के प्रति दया करना हिन्दुओं के लिए पाप है। भेरी दुःख से चिल्ला रहा था, हस्पताल के पक्के फ़र्श पर बैठे हुए मरीज़ भी उसे देख कर हंस रहे थे। भंगी इसी अवस्था में भेरी को कहीं दूर डाल आया।

भेरी एक अछूत बालक था। उस की माता कागज़ के खिलौने बनाकर बेचा करती थी। मालाबार के 'पीसी' नामक कसबे में ये दोनों प्राणी रहा करते थे। जब भेरी चार बरस का था तब उस के पिता और बड़ा भाई दोनों हैज़े से मर गए थे। तब इस घर में केवल यही दो प्राणी बचे थे। भेरी माता को खिलौने बनाने में सहायता दिया करता था। इस काम से उन लोगों को जो कुछ प्राप्त होता था, उसी से

दोनों गुज़ारा किया करते। एक बार भेरी की माता को अचानक बड़े ज़ोर से सिर-दर्द उठा। मालाबार में गर्मी बड़े ज़ोर से पड़ती है, अतः वहाँ सिरदर्द की बीमारी अक्सर हुआ करती है। वहाँ सिर-दर्द से कितने ही आदमी मर जाते हैं और कितने ही पागल हो जाते हैं। भेरी की बुढ़िया माता भी सिर-दर्द के कारण खाट पर पड़े पड़े तड़पने लगी। भेरी घबरा गया। वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो रहा था, उस की माता ने बड़े कष्टसे कहा—"भेरी, जा हस्पताल से कोई दवा ले आ"। भेरी हस्पताल का स्थान जानता था। वह बेतहाशा भागा हुआ वहाँ जा पहुँचा। सायंकाल का समय था; सड़क के किनारे ऊँचे फ़र्श पर बाहर बैठे हुए डाक्टर साहब बीमारों को देख रहे थे। पास ही बीसियों विचित्र प्रकार के बीमार बैठे बैठे अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे थे। भेरी का काला काला शरीर बिल्कुल नंगा था, केवल कमर के चारों ओर उस ने एक फटा सा कपड़ा लपेट रक्खा था। वह हाँपता हुवा डाक्टर साहब के पास जा खड़ा हुआ। जाते ही वह हाथ जोड़ कर कहने लगा—"साहब! मेहरबानी करो, मेरी माता—" उस की बात पूरी न हुई थी कि डाक्टर साहब ने झिड़क कर कहा—"भागो यहाँ से"। भेरी और भी अधिक करुणापूर्ण आवाज़ से गिड़गिड़ाने लगा। डाक्टर साहब ने दो चार गालियाँ देकर कहा—"बदमाश! जाता है कि नहीं"। भेरी डर गया, वह फ़र्श से नीचे उतर कर सड़क पर चला आया और फिर डाक्टर साहब के पास आकर गिड़गिड़ाने लगा। डाक्टर साहब चुपचाप अपना काम करते रहे, परन्तु उन का गुस्सा बढ़ने लगा। करीब दस मिनट तक भेरी इसी प्रकार अनुनय विनय करता रहा; अन्त में वे और अधिक सह नहीं सके। इस के बाद उन्होंने जो कुछ किया वह हम पहिले ही लिख चुके हैं।

(२)

बुढ़िया ने बड़े कष्टसे कहा "ईश्वर दुश्मन को भी ऐसी तकलीफ़ न दे"। वह बड़ा कष्ट अनुभव कर रही थी। इतने में उसे घर के दरवाज़े पर किसी के सिसकने की आवाज़ सुनाई दी। इस के तीन चार क्षण बाद ही अभागा भेरी दरवाज़ा खोल कर अन्दर प्रविष्ट हुआ। वह रोते रोते थक चुका था। अब वह सिसकियाँ भर रहा था। बुढ़िया ने देखा कि भेरी दवाई नहीं लाया, उल्टा नयी एक आफ़त उठा लाया है। परन्तु उस के लिये यह नयी बात नहीं थी: उस का भेरी प्रायः लोगों से मार खा कर रोते रोते घर वापिस आया करता था। भेरी आते ही एक दूसरी खाट पर लेट गया। माँ बेटा दोनों तकलीफ़ में थे। बुढ़िया कष्ट से कराह रही थी और बच्चा सिसक सिसक कर रो रहा था। घर में एक विचित्र दृश्य था। रोते रोते थके माँदे भेरी को नींद आगयी। सूर्य डूब गया। अन्धेरी रात थी। आकाश में तारे चमक रहे थे। इन दोनों अभागों की कुटिया शहर के बाहर थी। शहर में से लोगों के गाने बजाने का अस्पष्ट शब्द आरहा था;

परन्तु इस कुटिया में पूरी तरह सन्नाटा छाया हुआ था।

आठ बजे के करीब बुढ़िया की सिरदर्द बहुत कम हो गयी। 'जिस का कोई सहायक नहीं होता उन की ईश्वर रक्षा करता है'। थोडी देर में बुढ़िया बिल्कुल स्वस्थ हो गयी। उस ने उठ कर देखा कि उस का भेरी अभी तक मज़े में सोया हुआ है। बुढ़िया ने उसे जगा कर आश्वासन दिया। इस के बाद माँ बेटा दोनों आंगन में आकर सो रहे।

(३)

उस दिन कुएँ पर बड़ी भीड़ थी। आस पास के कुओं की सफाई हो रही थी अतः लोगों का जमाव बहुत अधिक था। भेरी की बुढ़िया माता सदैव उसी कुएँ से पानी लिया करती थी। उसे कुएँ के डोल को छूने का अधिकार नहीं था। बाकी पानी भरने वालों से अनुनय विनय कर के वह अपने दोनों घड़े भर लिया करती थी। यूं तो सदैव ही पानी लेते समय उसे बीसियों घुड़कियाँ सुननी पड़ती थीं, परन्तु उस दिन तो बुढ़िया बेचारी की ओर किसी ने ध्यान भी नहीं दिया। उसे इन्तज़ार करते करते दो घन्टे बीत गये, सूरज खूब ऊपर चढ़ आया, भेरी की माँ की ओर किसी ने आँख भी न उठाई। प्रत्येक नवागन्तुक उसे घुड़कियाँ देकर परे रहने के लिये कहता था। उसने देखा कि उसी की जाति के लोग जो हिन्दू धर्म को छोड़ कर मुसलमान या ईसाई हो गये हैं, निःशंक होकर खूब मज़े में पानी भर रहे हैं। बुढ़िया ने यह नहीं सोचा कि यह अनर्थ क्यों है। वह धर्मभीरु थी, खड़े खड़े अपने भाग्यों को कोसती रही। वह प्रत्येक पानी भरने वाले से अपने लिये प्रार्थना करती थी, परन्तु सर्वथा निष्फल।

आठ बजे के बाद एक लम्बा चौड़ा मनुष्य आकर, आस पास के लोगों को धकेल कर पानी भरने लगा। बुढ़िया ने यथापूर्व इस व्यक्ति से पानी के लिये प्रार्थना की। इतनी देर प्रतीक्षा करते करते, थक कर, वह अपने घड़े उठा कर कुएँ के बिल्कुल पास आ गई थी। उस उद्धत व्यक्ति ने बुढ़िया की गिड़गिड़ाहट सुनकर, एक बार घूर कर उस की ओर देखा, फिर वह अपने काम में लग गया। बुढ़िया उस के घूरने से यह नहीं समझ सकी कि उसे क्रोध आ रहा है; उस ने सोचा कि शायद भलामानस है, मुझ पर रहम खाएगा। उस ने फिर कहा—"ज़रा मुझ पर भी रहम कीजिये, मैं बड़ी देर से इन्तज़ार कर रही हूँ"। बस, ज्वालामुखी फूट पड़ा, उस हट्टे कट्टे भलेमानस ने लात मार कर उस बुढ़िया के घड़े फोड़ डाले। आस पास के लोग उस दुष्ट की इस हरकत को देख कर हँसने लगे। पचास बरस की बुढ़िया इस अपमान को नहीं सह सकी। दो घन्टे तक गिड़गिड़ाने के बाद, प्रतीक्षा करने के बाद उसे यह फल मिला। बिचारी अभागिन, निस्सहाय बुढ़िया रोने लगी, आस पास के हिन्दू हँसने लगे। हम लोग कहते हैं कि हमारा हिन्दू धर्म बड़ा उदार है; क्या उस की चरम सीमा है।

४

मालाबार के मुसलमान भड़क गये।

मालाबार के अधिकांश भाग में एक गदर सा मच गया। मुसलमान लोग खिलाफ़त के निर्णय से असन्तुष्ट थे वे मौका पा कर मालाबार में मुसलमान राज्य का स्वप्न लेने लगे। सरकार ने बड़ी अक्लमन्दी से उपद्रव को नया रूप देने का यत्न किया। असहयोग के दिन थे; सरकार घबराई हुई थी; वह चाहती थी कि किसी तरह हिन्दू मुसलमान फट जावें। मालाबार के उपद्रव के कारण उसे इस बात का मौका मिल गया। उस ने दंगे को दवाने का यत्न वहीं तक किया जहाँ तक कि उसे हानि पहुँचने की सम्भावना थी। फल यह हुआ कि दंगे ने हिन्दू—मुस्लिम उपद्रव का स्वरूप धारण कर लिया।

पीसी कस्बे की आबादी लगभग ५ हज़ार थी। उन में से तीन हज़ार हिन्दू और दो हज़ार मुसलमान थे। परन्तु हिन्दुओं में परस्पर मेल नहीं था। मुसलमान लोगों के गिरोह कस्बे पर आक्रमण करने लगे। हिन्दुओं पर आफ़त आगई। उन का घर से बाहर निकलना कठिन होगया।

पीसी कस्बे के बाहर हिन्दुओं का एक बड़ा पुराना मन्दिर था। इस में श्रीराम की मूर्त्ति स्थापित थी। दूर दूर के ग्रामों तक इस की बड़ी प्रतिष्ठा थी। इस मन्दिर के महन्त के पास बड़ी जायदाद जमा थी। वह लाखों का मालिक था। हिन्दु अछूतों को इस मन्दिर की चारदीवारी को छूने का भी अधिकार नहीं था। मुसल्मानों ने धावा कर के इस मन्दिर पर अधिकार कर लिया। मन्दिर के पुजारी भाग गए। मुसलमानों ने यत्न कर के मन्दिर के कोश का पता लगा लिया। इस मन्दिर से उन्हें खूब रुपया मिला। बड़ी देर तक वे लोग इस मन्दिर को अपवित्र करते रहे।

मुसलमान लोग बाकायदा कोर्ट लगा कर हिन्दू कैदियों का निर्णय किया करते थे। मन्दिर के दालान को उन्हों ने अपना कोर्ट बनाया। एक मौलवी जज बनाया गया। पाँच मौलवी जूरी नियुक्त किये। आक्रमणकर्त्ता लोग जो हिन्दू पाते थे उसे इस मन्दिर में भेज देते थे। जज उन से केवल इतना ही प्रश्न करता था—"क्या तुम इस्लाम को कबूल करते हो"? 'हां' में उत्तर देने वाले की चोटी एक दम काट दी जाती थी। उसे कलमा पढ़वाने के लिये दूसरे कमरे में एक मौलवी के पास भेज दिया जाता था। 'नहीं' में उत्तर देने वालों को मुसलमानी शिरह के अनुसार बड़े बड़े भयङ्कर दण्ड मिलते थे। करीब दो बजे तक यही कार्य होता रहा। अन्त में नये कैदी आने बन्द हो गये। तब जज साहब ने कहा कि इस समय मन्दिर की मूर्त्ति को तोड़ना चाहिए। अभी यह विचार हो ही रहा था कि इस मूर्त्ति को किस प्रकार तोड़ा जाए, इतने में दो मुसलमान एक अभागिनी बुढ़िया को अन्दर ले आये। जज को बताया गया कि यह औरत अछूत जाति की है। यह अभागिनी और कोई नहीं, भेरी की दुःखिनी माता ही थी। भेरी की माँ रो नहीं रही थी; भय से उस के आँसू भी सूख चुके थे। वह धर्मभीरु थी; उसे सब से बड़ा भय यही मालूम हो रहा

था कि आज उस ने अपने अछूत शरीर से इस मन्दिर को भ्रष्ट कर दिया है, भगवान् न जाने उसे कौन सा दण्ड देंगे। वह इसी भय से पड़े पड़े काँप रही थी। इतने में एक जूरी बोल उठा—"जनाब! मेरी नाकिस राय में इस बुढ़िया के हाथ से गौ का गोश्त इस मूर्त्ति पर डाला जाए तो बहुत बेहतर होगा, क्यों-कि हिन्दू लोग मुसलमानों से उतनी नफ़रत नहीं करते जितनी कि इन लोगों से करते हैं।" इस नरपिशाच जूरी की राय सब लोगों को पसन्द आई। जज साहब की आज्ञा से गौ का ताज़ा गोश्त मँगवाया गया। बुढ़िया हतज्ञान होकर बेहोश सी पड़ी हुई थी; एक मुसलमान ने उसे लात मार कर कहा—"यह गौ का गोश्त है, इसे मूर्त्ति पर डाल दे; तेरी जान बख़्श दी जाएगी।" बुढ़िया काँप गयी। उसने मन्दिर के फर्श पर ही थूक कर कहा "राम, राम"! वह अपनी जगह से हिली नहीं। मुसलमान उसे बहुत देर तक तंग करते रहे; परन्तु धर्म भीरु बुढ़िया इस नृशंस कार्य के लिये तय्यार न हुई। उन लोगों ने लोहे की गरम गरम शलाकाएँ मार कर उसे डराया, परन्तु बुढ़िया नहीं मानी। अन्त में जूरियों ने बुढ़िया को जीते जी जलाने की आज्ञा दी, परन्तु बुढ़िया इस से भी न घबराई। बुढ़िया को बाँध दिया गया। उस पर बहुत सा मिट्टी का तेल डाल दिया गया। बुढ़िया अधमरी सी होकर चुप चाप पड़ी थी; अन्त में एक नृशंस मुसलमान ने उस के कपड़ों में आग लगा दी। अग्नि प्रज्वलित हो उठी। बुढ़िया ने तड़प तड़प कर मन्दिर के फ़र्श पर ही प्राण दे दिये, परन्तु वह भगवान् रामचन्द्र की मूर्त्ति को भ्रष्ट करने को तय्यार न हुई।

बुढ़िया की इस हिम्मत को देख कर हृदयशून्य मुसलमान लोग भी दंग रह गये! सारे मन्दिर में बिल्कुल सन्नाटा छा गया। कुछ देर के बाद एक जूरी ने कहा—"हिन्दू कौम इन लोगों को इतनी तकलीफ़ें देती है, फिर भी ये लोग हिन्दूधर्म से इतना प्यार क्यों करते हैं"? किसी ने उस की बात का उत्तर नहीं दिया। सब लोग विस्मय—पूर्ण नेत्रों से बुढ़िया के अध—जले शरीर से उठने वाले दुर्गन्धित नीले धूएँ की ओर देख रहे थे।

थोड़ी देर के बाद जज साहब ने कहा—"इस मन्दिर की मूर्त्ति को भ्रष्ट नहीं किया जायगा। इसे पाक ही रहने दो। इस के लिए इतनी बहादुराना कुर्बानी हुई है।" सब मुसलमान इस मन्दिर को खाली छोड़ कर चल दिये। भेरी की माता के बलिदान से भगवान् रामचन्द्र की मूर्त्ति अपवित्र होने से बच गई।

(५)

मालाबार का उपद्रव शान्त हो गया। सब ओर शान्ति छा गयी। पीसी ग्राम के मन्दिर को गंगा जल से धोया गया। श्रीराम की मूर्त्ति ज्यों की त्यों रक्खी हुई थी, उसे किसी ने बिगाड़ा नहीं था।

भेरी इस समय १५ बरस का बालक था। वह अपनी माता की राम कहानी सुन चुका था। वह चाहता

था कि प्रतिदिन उस स्थान पर आकर रोया करे जहाँ उस की अभागिनी माता ने भगवान् राम की मूर्त्ति की रक्षा के लिए अपने प्राण न्यौछावर कर दिये थे। परन्तु वह अभागा "अछूत" था!

मेरी आज कल बड़ी श्रद्धा और भक्ति से उस मन्दिर की प्रदक्षिणा किया करता है। जिस समय वह प्रदक्षिणा कर रहा होता है, उस समय उस की आँखों में आँसू होते हैं। परन्तु उदार हिन्दुओं ने अभी तक उसे मन्दिर में प्रवेश करने की आज्ञा नहीं दी! यही हिन्दू लोगों का संसार में सब से बढ़-कर उदार हिन्दू-धर्म है!

सृष्टि—चक्र के चक्कर

(श्री शान्त)

जीवन की उलझन सुलझा दे, उलझा ही हा! जाता हूँ।
चक्रपाणि! तव सृष्टि-चक्र में, चक्कर ही हा! खाता हूँ॥

कभी झूठ को सत्य जानकर,
फिर से मिथ्या उसे मान कर,
होता हूँ हैरान हार मैं—
हाय, अनोखी भूल-भुलैय्या में भटका ही जाता हूँ।
चक्रपाणि! तव सृष्टि चक्र में चक्कर ही हा! खाता हूँ॥

अपना कह मुझ को पुचकारा,
गाँठ कतर कर फिर दुतकारा,
अपने ही हा हन्त! हुए पर—
निर्मल अम्बर में जब बादल घने घुमड़ते पाता हूँ।
चक्रपाणि! तव सृष्टि-चक्र में चक्कर ही हा! खाता हूँ॥

स्वप्न कहूँ इसे या माया,
जादूगर क्या बाग़ बनाया,
ले लूँगा-हा पर क्या लूँ मैं—
कुसुमावचय हेतु पात्र यह छोटा सा जब पाता हूँ।
चक्रपाणि! तव सृष्टि-चक्र में चक्कर ही हा! खाता हूँ॥

हाथ उठाया तो ऊँची हैं,
अहो हटाते ही नीची हैं,
फूलों से फूली डालें लख—
कभी बिलखता कभी आश में बाग़ बाग़ हो जाता हूँ।
चक्रपाणि! तव सृष्टि-चक्र में चक्कर ही हा! खाता हूँ॥

अहिंसा का सिद्धान्त

(लेखक—श्री पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार गुरुकुल कांगड़ी)

(१)

अहिंसा के सिद्धान्त को संक्षेप में हम महाभारत के निम्नलिखित श्लोक द्वारा प्रगट कर सकते हैं:—

कर्मं चैतदसाधूनां असाधुं साधुना जयेत् ।
धर्मेण निधनं श्रेयो न जयःपाप कर्मणा ॥

'दुष्ट की असाधुता' अर्थात् दुष्ट कर्म को साधुता से निवारण करना चाहिये, क्योंकि पापकर्म से जीत होने की अपेक्षा धर्म से मर जाना भी अच्छा है। महात्मा बुद्ध ने इसी बात को अधिक स्पष्ट रूप से इस प्रकार कहा है:—'क्रोध को अक्रोध से जीतो, असाधु पर साधुता से विजय प्राप्त करो। कृपण को दान से जीतो और असत्य पर सत्य द्वारा विजय प्राप्त करो।' वैर का नाश वैर द्वारा नहीं हो सकता इस से वह और भी बढ़ता है। वैर का निवारण करने के लिये मित्रता का उपयोग करो। हिंसा द्वारा जो विजय होती है, वह विजय के प्रयोजन को पूरा नहीं करती। वह अगली पराजय की भूमिका मात्र होती है। इसलिये यदि शाश्वत विजय प्राप्त करनी हो तो अहिंसा के मार्ग का ही अनुसरण करना चाहिये। यदि हिंसा द्वारा विजय प्राप्त भी की जा सके, तब भी उस का अवलम्बन नहीं करना चाहिये। हिंसामय उपाय मनुष्य को शोभा नहीं देते। 'जैसे को तैसा' यह सिद्धान्त मानवी नहीं है। बदला लेने का भाव एक नीच प्रवृत्ति है, जो मुख्यतः पशुओं में पाई जाती है। मनुष्यों और पशुओं में भेद है। ईश्वर ने मनुष्य को पशुओं से ऊँचा प्राणी बनाया है। मनुष्य में पवित्र और उच्च भावनायें विद्यमान हैं, अतः उसे इन ही का प्रयोग अपनी विजयों के लिये करना चाहिये। 'न पापे प्रतिपापः स्यात्'—यही अहिंसा का सिद्धान्त मनुष्य के लिये अनुकरणीय है।

अहिंसा का यह सिद्धान्त अत्यन्त प्राचीन है। प्राचीन धर्मशास्त्रों में स्थान स्थान पर इस का उल्लेख पाया जाता है। पर मुख्यरूप से इस का सब से प्रथम प्रचार भगवान् बुद्ध ने किया है। बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार इतना अधिक होगया कि अशोक जैसे शक्तिशाली सम्राट् ने 'अहिंसा' को ही अपना मुख्य धर्म बनाया। अशोक ने सचमुच ही अहिंसा द्वारा विजय प्राप्त करने की कोशिश की। अशोक शस्त्रों द्वारा प्राप्त विजय को विजय नहीं समझता। इसीलिये कलिङ्ग-विजय के पश्चात् पश्चात्ताप करता हुआ सम्राट् अपने प्रसिद्ध शिला-लेख में लिखता है:—

"जहाँ लोगों का वध, मरण या देश निकाला हो उस देश को मैं जीतने पर भी नहीं जीता हुआ मानता हूँ। यह वध आदि, देवताओं के प्रिय को अत्यन्त दुःखद और भारी जान पड़ता है। इसीलिये मैंने यह धर्म लिपि लिखवाई कि जिस से मेरे पुत्र और प्र-

पौत्र शस्त्रों द्वारा प्राप्त विजय को 'प्राप्त करने योग्य' न समझें, शान्ति और लघुदण्डता में रुचि रक्खें और धर्म की विजय को ही विजय समझें"

निस्सन्देह सम्राट् अशोक के समय भगवान् बुद्ध के अहिंसा सिद्धान्त ने क्रिया का रूप पाया था और इस के द्वारा जनता को जो सुख हुआ, उस की कल्पना हम सम्राट् के शिलालेखों के पाठ द्वारा कुछ अंश तक कर सकते हैं।

वर्तमान युग में महात्मा गाँधी ने इसी प्राचीन अहिंसा के सिद्धान्त का संदेश संसार को सुनाया है। संसार अभी तक इस पवित्र और उच्च सिद्धांत का अनुसरण नहीं कर सका। यद्यपि सभी प्रसिद्ध धर्मों में इस के मूलतत्त्व विद्यमान हैं. और सब से अधिक हिंसामय ईसाई जनता की मान्य धर्मपुस्तक में अहिंसा के सिद्धान्त का स्पष्ट उपदेश है तथापि अबतक यह सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं बन सका। महात्मा गाँधी इसे क्रियारूप में परिणत कर दिखाना चाहते हैं। पराधीन भारत को उन्हों ने अपना कर्मक्षेत्र चुना है। निस्सन्देह यदि वे अहिंसामय उपायों से भारत को स्वराज्य दिला सके, तो संसार के इतिहास में बड़ी भारी क्रान्ति होगी। संसार एक नये युग में प्रवेश करेगा। पृथिवी स्वर्ग हो जायगी और मनुष्य देवता बन जावेंगे। हम उत्सुकता से इस अपूर्व परीक्षण को देख रहे हैं, पर इस की सफलता में कुछ सन्देह हो रहा है।

२

अहिंसा का सिद्धान्त बहुत ऊँचा है। सात्विकवृत्ति इस के व्यावहारिक होने की पहली शर्त है। इसीलिये शास्त्रों ने इस को आदर्श मान कर भी इस का अधिक उपदेश नहीं किया। वे मानवीय प्रकृति को ध्यान में रखते हुए 'अहिंसा के सिद्धान्त' के स्थान पर एक अन्य सिद्धान्त का उपदेश करते हैं। वह सिद्धान्त है 'निष्काम-कर्म' का। लोक में रहते हुए मनुष्यों के लिये 'अहिंसा' का पूर्णता से अनुसरण करना कठिन ही नहीं, परन्तु असम्भव है। इसीलिये शास्त्र पात्र-भेद से भिन्न धर्म का उपदेश करते हैं। शास्त्र कहता है।

यो यथा वर्तते यस्मिन् तस्मिन्नेवं प्रवर्तयन्।
नाधर्मं समवाप्नोति नचाश्रेयश्च विन्दति॥

'अपने साथ जो जैसा वर्ताव करता है उस के साथ वैसा ही वर्ताव करने से न तो अधर्म होता है और न अकल्याण'। ध्यान में रखिये, शास्त्र का यह कथन नहीं कि 'जैसे को तैसा की नीति का अनुकरण करना धर्म है, पर शास्त्र का अभिप्राय यही है, कि 'जैसे को तैसा की नीति' अधर्म नहीं है। क्योंकि सर्वसाधारण जन अहिंसा के उच्च सिद्धान्त का अनुसरण नहीं कर सकते, इसलिये उन्हें लोकव्यवहार के लिये 'मायाचारो मायया वर्तितव्यः साध्वाचारः साधुना प्रत्युपेयः, इसी मार्ग का अनुगामी होना चाहिये। शास्त्र इस की अनुमति देता है। पर जो पहुंचे हुए सन्त महात्मा हैं, सत्त्व के प्रधान हो जाने से जिनके मल, विकार विनष्ट हो गये हैं, जो अहिंसा के सिद्धान्त का अनुसरण कर सकते हैं, उन्हें क्या करना

चाहिये ? भगवान् कृष्ण उन के लिये यह उपदेश करते हैं कि वे भी लोक-संग्रह के लिये इसी मार्ग का अनुसरण करें। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं:—

सक्ताः कर्मण्यविद्वांसो यथा कुर्वन्ति भारत।
कुर्याद्विद्वांस्तथाऽसक्तश्चिकीर्षुर्लोकसंग्रहम्॥

'हे अर्जुन! मेरा संसार में न कोई कर्तव्य शेष रहा है और न कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करने को रह गई है। तो भी मैं कर्म करता ही हूँ। क्योंकि यदि मैं आलस्य छोड़ कर कर्मों को न करूँ, तो मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही पथ का अनुकरण करेंगे। जो मैं कर्म न करूँ, तो ये सारे लोक नष्ट हो जावेंगे, मैं नाश का कर्ता होऊँगा और इन प्रजाजनों का मेरे द्वारा नाश होगा। हे अर्जुन! लोकसंग्रह की इच्छा रखने वाले ज्ञानी पुरुष को आसक्ति छोड़ कर उसी प्रकार वर्तना चाहिये, जिस प्रकार कि कर्म में आसक्त अज्ञानी लोग बर्ताव करते हैं'। इस के बाद श्रीकृष्ण ने अपने 'निष्काम कर्म' के सिद्धान्त का उपदेश दिया है। गीता के इस उद्धरण पर विचार करने से हम इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि ज्ञानी व उच्चपुरुष को भी लोक-संग्रह के लिये वैसे ही कार्य करने चाहियें, उन्हीं उपायों को वर्तना चाहिये, जो कि साधारण मनुष्य वर्तते हैं, परन्तु यह करते हुवे उसे 'निष्काम' व 'आसक्ति रहित' रहना चाहिये। और यदि बड़े महात्माजन सर्व साधारण के पथ का अनुसरण न कर अपने उच्च उपायों का प्रयोग करेंगे तो अन्य साधारण जन भी उन ही का अनुकरण करने लगेंगे, पर सर्व-साधारण जन उन का अनुसरण न कर सकने के कारण पथ भ्रष्ट हो जावेंगे और उन का नाश हो जावेगा।

भगवान् कृष्ण के 'निष्काम कर्म' के सिद्धान्त का मूल आधार यही है। इस के द्वारा उच्च मनुष्य जहाँ लोक संग्रह के कार्य में सफल होते हैं, वहाँ स्वयं किसी धर्म व पाप में नहीं फंसते क्योंकि वे निष्काम भाव से ही सब कार्य करते हैं और गीता के अनुसार पाप पुण्य का निश्चायक 'कर्म' नहीं पर 'भाव' है। 'निष्काम कर्म' के सिद्धान्त पर अधिक विस्तार से विचार करने का यह स्थान नहीं है। अभिप्राय यही है कि अहिंसा का सिद्धान्त व्यावहारिक नहीं है, और इसी बात को ध्यान में रख कर 'निष्काम कर्म' के सिद्धान्त को गीता में मान्य समझा गया है और यह सिद्धान्त 'अहिंसा' के सिद्धान्त से किसी भी प्रकार से कम उच्च और कम गम्भीर नहीं है। सन्त महात्मा भी अपनी उच्चता को स्थिर रखते हुए अहिंसा के सिद्धान्त के स्थान पर इस सिद्धान्त का प्रयोग कर सकते हैं। हम अहिंसा के सिद्धान्त को उच्च और आदर्श समझते हैं, पर निष्कामकर्म का सिद्धान्त न केवल उच्च और आदर्श है, पर उपयोगी और व्यवहार्य भी है।

(३)

भगवान् बुद्ध ने अहिंसा के सिद्धान्त का उपदेश किया है, पर उन्होंने इस की अव्यवहारिकता का भी अनुभव किया है। सेनापति सिंह के साथ वार्तालाप में सिंह उन से पूछता है-

"हे भगवन् ! मैं एक सैनिक हूं। राजा ने मुझ को नियम पालन कराने और युद्ध लड़ने के लिये नियुक्त किया है। क्या तथागत निस्सीम दया का उपदेश करता हुवा अपराधियों को दण्ड देने की अनुमति नहीं देता ? तथागत सब प्रकार के युद्धों को यहां तक कि धर्मयुद्ध को भी निषिद्ध मानता है ?" इस प्रश्न का जो उत्तर भगवान् बुद्ध ने दिया है, वह पढ़ने योग्य है। भगवान् कहते हैं-'हे सेनापति ! साहस के साथ युद्ध करो, अपने युद्धों को वीरता के साथ लडो। परन्तु तुम्हारे युद्ध सत्य के लिये हों। सत्य के सैनिक बनो, तथागत तुम को आशीर्वाद दें'। इस प्रकार बुद्ध अहिंसा को सापवाद मानते हैं। इसी बातचीत में वे कहते हैं-'युद्ध होने चाहियें क्योंकि सारा जीवन ही किसी न किसी तरह के युद्ध हैं। वे सब युद्ध जिन में कि मनुष्य अपने भाइयों को मारने का यत्न करता है, शोचनीय हैं, यह तथागत की शिक्षा है। पर तथागत यह नहीं सिखाता कि जब अन्य सब उपाय व्यर्थ हो चुकें, तब शान्ति रक्षा के लिये युद्ध करना भी बुरा है'। भगवान् बुद्ध हिंसा की भी अनुमति देते हैं, पर तब जब अन्य सब उपाय व्यर्थ हो चुकें। पर निष्कामकर्म का सिद्धान्त इस से भी आगे गया हुवा है, वह अहिंसा को अव्यवहार्य समझ कर यही आदेश करता है कि लोक-संग्रह के लिये ज्ञानी महात्माओं को भी निष्काम भाव से 'जैसे को तैसा' के हिंसामय सिद्धान्त का अनुसरण करना चाहिये। कृष्ण 'जैसे को तैसा' को ही आदर्श समझते हैं, बुद्ध इसे आदर्श नहीं समझते, पर विशेष अवस्थाओं में इस के लिये अनुमति देते हैं। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि राजनीति में बुद्ध हिंसा तथा युद्धों का निषेध नहीं करते। राजा अजातशत्रु से 'शाक्यों पर आक्रमण करने का क्या परिणाम होगा' इस विषयक प्रश्न पूछे जाने पर वे उसे युद्ध न करने का उपदेश नहीं करते (इस समय अजातशत्रु उन का शिष्य भी हो चुका था)। वे केवल यही कहते हैं कि जब तक शाक्यों का संघ स्थिर है, वे पराजित नहीं हो सकते।

पर महात्मा गांधी अहिंसा के सिद्धान्त को व्यवहार्य मानते हैं। वे इसे सापवाद करने की आवश्यकता नहीं समझते। महात्मा जी कांग्रेस को अहिंसा की नीति का अनुसरण करने के लिये इसलिये नहीं कह रहे कि भारतीय हिंसा कर नहीं सकते, पर इस लिये कि वे अहिंसा द्वारा अपनी शक्ति का अधिक अच्छी तरह परिचय दे सकते हैं, और असल में बलवानों को इसी साधन का अवलम्बन करना चाहिये। न केवल धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में भी वे अहिंसा के सिद्धान्त को व्यवहार्य मानते हैं। इस प्रकार महात्मा गाँधी का यह अहिंसा का सिद्धान्त बुद्ध के सिद्धान्त से भिन्न नहीं, तो अधिक व्यापी अवश्य है। इस का विस्तार जीवन के प्रत्येक अङ्ग में है।

(४)

यद्यपि अहिंसा का सिद्धान्त सर्व-

साधारण जनता के लिये अव्यवहार्य है, पर इस को धार्मिक विषयों में अवश्य प्रयुक्त करना चाहिए। इस समय धर्म आवेश (Passion) का विषय बना हुआ है, उसने अपने वास्तविक रूप को नष्ट कर दिया है। जिस प्रकार स्वच्छ जल शुद्ध पात्र में शुद्ध, और अशुद्ध पात्र में अशुद्ध हो जाता है; उसी प्रकार पवित्र धर्म ने अपवित्र और अशुद्ध जनता में जाकर उसी तरह का रूप धारण कर लिया है। यही कारण है कि धर्म अपने अनुयायियों के काम क्रोध आदि आवेशों को दूर करने में तो समर्थ नहीं हो सका, पर स्वयं भी उन के इन्हीं आवेशों का विषय हो गया है। इसी लिये धर्म के प्रचार में भी अनुचित आवेश और अनेक प्रकार के हिंसामय साधनों का भी प्रयोग किया जाता है। यह अवस्था सचमुच शोचनीय है। धर्म एक उच्च वस्तु है, जो कि मनुष्य को उच्च बनाने के लिये ही प्रयुक्त होनी चाहिये। फिर इस के विस्तार के लिये हिंसा व धर्म-विरुद्ध साधनों का प्रयोग होना सचमुच हास्यास्पद है। अहिंसा का सिद्धान्त धार्मिक कार्यों में पूर्ण रूप से प्रयुक्त होना चाहिये। धर्म की उन्नति और प्रचार करना सर्वसाधारण का कार्य नहीं, यह केवल सत्व वृत्ति-प्रधान ब्राह्मणों और सन्यासियों का ही कार्य है। अतः इस में न केवल अहिंसा का सिद्धान्त सम्भव और व्यवहार्य है, पर केवल इसी का प्रयोग होना श्रेयस्कर है। लोकसंग्रह की युक्ति से निष्कामभाव द्वारा सर्वसाधारण की हैसियत के अनुसार कार्य करने का विचार धर्म प्रचार में नहीं आ सकता। धार्मिक विवादों और झगड़ों ने जो गर्हणीय और अनुचित रूप वर्तमान समय में धारण कर लिया है, उसका कारण यही है कि धर्म के प्रयोजन को ध्यान में न रख कर अहिंसा के उच्च सिद्धान्त का प्रयोग इस में नहीं किया गया। कई धर्मों ने तो हिंसामय साधनों से धर्मप्रचार को जायज़ भी समझा है।

परन्तु राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा का सिद्धान्त न केवल अव्यवहार्य ही है, पर अनावश्यक भी है। युद्ध करना, अपने देश की बाह्य और आन्तरिक शत्रुओं से रक्षा करना राष्ट्र का कर्म है। इस के लिये तो बिना हिंसा के काम चल ही नहीं सकता। कोई ऐसी प्रणाली अब तक आविष्कृत नहीं हुई जिस से कि चोर डाकू आदि आन्तरिक शत्रुओं और आक्रान्तों से अहिंसामय साधनों द्वारा रक्षा की जा सके। यह केवल दण्ड द्वारा ही सम्भव हो सकता है। समाज के संगठन के लिए—अर्थात् राष्ट्र के रूप में संगठित मनुष्य समाज के लिए केवल सतोगुण की आवश्यकता नहीं है। उस के लिए सभी प्रकार के मनुष्यों के सभी तरह के गुणों का उपयोग ज़रूरी है। इसी तत्व को आधार में रख कर शास्त्रकारों ने वर्णाश्रम व्यवस्था की स्थापना की है। वर्णों में केवल ब्राह्मण वर्ण ही नहीं है, पर क्षत्रिय वर्ण भी है। अभिप्राय यह है कि राष्ट्र में जिस प्रकार ब्राह्मण-तत्व की आवश्यकता है उसी प्रकार क्षत्रिय-तत्व

की भी। इस की उपेक्षा करना व्यवहारिकता के विरुद्ध जाना है इसीलिए राजनीतिक क्षेत्र में अहिंसा का सिद्धान्त व्यवहार्य नहीं समझा जा सकता। हम ने लिखा है कि राजनैतिक क्षेत्र में यह सिद्धान्त न केवल अव्यवहार्य है, पर अनावश्यक भी है। यह अनावश्यक व अनभीष्ट इस लिए है कि राष्ट्र की पूर्णता के लिए क्षात्र-तत्व भी अनिवार्य है। 'मिल' के शब्दों में वह शासन-प्रकार सर्वोत्तम है, जिस में जनता के सब विद्यमान गुणों का उपयोग किया जा सके। यह एक सचाई है। यदि हम राष्ट्र के केवल सात्त्विक या ब्राह्मण-तत्व का ही उपयोग करेंगे तो हमारा राष्ट्र पूर्ण व आदर्श नहीं हो सकेगा। इसी लिए राजनैतिक क्षेत्र में इस सिद्धान्त का प्रयोग अनावश्यक भी है।

(५)

महात्मा गाँन्धी भारत की स्वराज्य प्राप्ति के लिए अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग करना चाहते हैं। ऊपर जो मीमांसा की गई है, उसके बाद यह आवश्यक नहीं रहता है कि विस्तार से इस बात पर विचार किया जाय कि उन का अहिंसा के सिद्धान्त का प्रयोग करना कहाँ तक उचित है। अभी तक कांग्रेस ने अहिंसामय साधनों के प्रयोग को अपना सिद्धान्त नहीं बनाया पर केवल नीति के रूप में ही स्वीकृत किया है। इसलिये कोई भयावह बात नहीं है। यह तो सभी स्वीकृत करेंगे कि भारत आज स्वराज्य प्राप्ति के लिए शस्त्र नहीं उठा सकता। अतः उसे अहिंसा की नीति का अनुकरण करना ही चाहिये। पर हम ने अहिंसा को इतनी अधिक मुख्यता दे दी है कि ब्रिटिश माल के बहिष्कार का इसीलिए विरोध किया जाता है कि इस से हिंसा होती है। ब्रिटिश माल का बहिष्कार सम्भव है, उसे करना चाहिये। केवल इसी आधार पर उस का विरोध नहीं होना चाहिये कि उस से मानसिक हिंसा होती है। इसी तरह अपने सब कार्य्य क्रम का आधार इसी बात को बनाना कि अहिंसामय वातावरण बना रहे, उचित प्रतीत नहीं होता। कांग्रेस को अहिंसा का पालन केवल नीति की दृष्टि से ही करना चाहिए। सिद्धान्त की दृष्टि से नहीं, क्यों कि राजनैतिक क्षेत्र में अहिंसा का सिद्धान्त अव्यवहार्य और अनावश्यक है।

सम्पादकीय

महात्मा गांधी तथा आर्य—समाज

महात्मा जी ने आर्य समाज के सम्बन्ध में जो विचार प्रकट किये थे उन के साथ देश के किसी भी मान्य व्यक्ति ने सह-मति नहीं दिखाई। महात्मा जी के कथन को सब ने प्रकरण-विरुद्ध तथा भ्रम-मूलक ठहराया है। हम यहां पर कुछ ऐसे महानुभावों की सम्मतियें प्रकाशित करते हैं

जो आर्य समाजी नहीं, परन्तु उस के विषय में पर्याप्त परिचय पाने का अवसर प्राप्त कर चुके हैं।

जगद्गुरु श्री स्वामी शङ्कराचार्य ने बात-चीत में मद्रास के सुप्रसिद्ध 'हिन्दु' पत्र के प्रतिनिधि को कहाः—

"हमें साफ़ २ शब्दों में यह कहना पड़ता है कि महात्मा जी ने आर्य-समाज, स्वामी दयानन्द और सत्यार्थ-प्रकाश पर जो आक्षेप किये हैं वे हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये अनावश्यक हैं। हम महात्मा जी के कई विचारों से सहमत हैं परन्तु महात्मा जी ने आर्य समाज़ियों पर जो २ दोषारोपण किये हैं वे ऐसे हैं जिन्हें कोई सच्चा आर्य समाजी सहन नहीं कर सकता और जिन्हें कोई विचारवान् सज्जन न्यायानुकूल नहीं कह सकता।"

इण्डिपेण्डन्स के सम्पादक सी. एस. रङ्ग अय्यर लिखते हैंः—

"मुझे भी जेल में सत्यार्थप्रकाश के पाठ का अमूल्य अवसर प्राप्त हुआ था और एक वर्ष तक जेल की चार दीवारी में सत्यार्थ-प्रकाश मेरा जीवन, प्रकाश और सखा था। उस में वेदों का तत्व लिखा है। सत्यार्थ-प्रकाश को तुच्छ समझना वेदों को निकृष्ट समझना है। यह कहना कठिन है कि वेदों के विषय में महात्मा जी की सम्मति अधिक प्रामाणिक है या स्वामी दयानन्द जी की। महात्मा जी के समय २ पर प्रकाशित विचारों से तो यही प्रतीत होता है कि उन्हों ने वेदों को पढ़ा भी नहीं है, उन का समझना तो बड़ी बात है।...... कोई भी यह नहीं मान सकता कि वेदों का ज्ञान प्राप्त किये बिना ही महात्मा जी को सत्यार्थ- प्रकाश पर निर्णय देने का अधिकार है। एक ऐसी पुस्तक पर जो इन को लिखी सभी पुस्तकों से बड़ी है और एक ऐसे ऋषि की लिखी है जो इन से कम बड़े न थे, महात्मा जी की सम्मति, प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।"

स्वामी सत्यदेव जी लिखते हैंः—

"हिन्दू मुस्लिम अनैक्य के प्रश्न को सुलझाते हुए महात्मा जी ने आर्य-समाज, ऋषि दयानन्द और स्वामी श्रद्धानन्द जी पर जो कटाक्ष किये हैं वह वास्तव में अन्याय है।...... इस में सोलहों आना अपराधी पक्षपाती मुसल्मान मौलवियों की पीठ ठोकी गई है।...... समय आयगा कि महात्मा जी इस भूल और एक-पक्षी डिग्री पर खेद प्रकट करेंगे और उन को मालूम होगा कि इस्लाम के नाम पर मुतआसिब मौलवी कमीने से कमीने काम करने को उद्यत रहते हैं"।

सिन्ध के ओजस्वी नेता प्रो० वास्वानी ने इसी प्रश्न पर अपने विचार प्रकट करते हुए कहा हैः—

"......दयानन्द के प्रति मेरे हृदय में प्रेम और आदर है। दयानन्द ने हिन्दु-धर्म को संकुचित बना दिया, इस सम्मति को मैं स्वीकार नहीं करता। मेरा विश्वास है कि दयानन्द ने हिन्दु-धर्म को उदार बनाया। उस ने अछूतपन को ही दूर नहीं किया परन्तु जात-पात के भूत को भी भगाया। रचनात्मक-विधान की अनेक बातें दयानन्द ने पहले से ही सोच ली थीं। स्वदेशी, देशी भाषा तथा देशी शिक्षा को उस ने प्रथम से ही अपनाया।

उस ने कट्टरपन को तोड़ डाला। नाइयों तक को अपने संगठन में लिया। मेरी सम्मति में आर्य-सभ्यता तथा आर्य-संस्कृति का वर्तमान युग में साक्षात्कार करा देने वाला दयानन्द ही हुआ है। मैं दयानन्द को 'सुधारक' ही नहीं प्रत्युत् 'ऋषि' मानता हूं। लूथर सुधारक कहा जाता है—मेरी सम्मति में दयानन्द का जीवन तथा सन्देश, दोनों, लूथर से कहीं ऊँचे दर्जे के हैं! मैं दयानन्द की वर्तमान भारत के सब से बड़े महात्माओं, ऋषियों तथा देशसेवकों में गिनती करता हूं।"

चरखा और खद्दर

महात्मा गान्धी ने एक ही वर्ष के भीतर भारत सरीखे मुर्दे देश में एकदम प्राण फूँक कर संसार की आँखें खोल दी थीं। असम्भव, सम्भव हो गया था—निराशा की जगह आशा-लता के अंकुर फूटने लगे थे। देश की जागृति देख कर अपनी आँखों पर विश्वास नहीं होता था। यह सब कुछ संसार का स्वाभाविक घटना—चक्र नहीं पर नाटक का खेल था, जादूगर का जादू था, मायावी का माया-जाल था।

सूत्रधार के पकड़े जाते ही खेल खतम हो गया। चर्खा, सुदर्शन—चक्र बन चुका था पर अब फिर से चर्खा, लकड़ी का गोल २ घूमने वाला चर्खा बन गया। हथकते सूत का बना हुआ खद्दर भारत-माता के वसन—विहीन देह को ढांपने की ओढ़नी बन चुका था पर अब फिर से हथकता सूत मोटा, भद्दा सा, जल्दी टूट जाने वाला धागा बन गया; खद्दर खुरदरा कपड़ा बन गया। जादू टूट गया। माया छिन्न भिन्न हो गई। महात्मा गान्धी के दो वर्ष जेल में काट आने के बाद चर्खा चर्खा बन गया, खद्दर खद्दर बन गया।

महात्मा गान्धी ने जेल से छूटते ही इस बात को भली भान्ति समझ लिया। उन का विश्वास है कि भारत की स्वतन्त्रता के लिये शस्त्र का प्रयोग नहीं किया जा सकता। अहिंसा मूल-धर्म है। देश को आज़ाद करने के लिये मानसिक आज़ादी पहली शर्त है। दुनियां के मज़े भी लूटना और स्वतन्त्रता पर व्याख्यान भी देना—ये दोनों बातें इकट्ठी करना, किये कराये पर पानी फेरना है! स्वतन्त्रता का मधुर फल चखने के लिये तपस्या करनी पड़ेगी—जीवन को सादा बनाना पड़ेगा। किसानों और जुलाहों के भारत को उठाने के लिये किसान और जुलाहा बनना पड़ेगा।

महात्मा ने ठीक जान लिया था कि जादू से काम कराने से कुछ लाभ न होगा। अहमदाबाद में देश के प्रतिनिधियों के सन्मुख जितने भी भाषण किये प्रत्येक में महात्मा ने *इस बात को स्पष्ट करने का यत्न किया।* "मेरे नाम पर कुछ मत करो! यदि मैं कल मर जाऊँ तो क्या होगा? अपनो जिम्मेवारी को समझते हुए हरेक बात का फैसला करो"! महात्मा ने उपस्थित प्रतिनिधियों से पूछा कि क्या वे मकान को नींव से उठाने के लिये तय्यार थे, क्या किसानों तथा जुलाहों के देश को उठाने के लिये वे स्वयं किसा-

तथा जुलाहा बनने के लिये उद्यत थे ? जादू टूट चुका था ;— उत्तर मिला 'नहीं!'–महात्मा हताश हो गये। भयंकर आपत्तियों से भी न घबराने वाला हृदय मुरझा गया। कान्ति–मय मुख उदास हो गया। देह–धारी पाप को कंपा देने वाली उग्र आंखें आंसुओं से डबडबा गईं। अश्रु धारा बह निकली। देश–वासियों को स्वतन्त्रता के लिये तपस्या करने को कटिबद्ध न देख कर वर्तमान संसार का सब से महान् व्यक्ति बच्चों की तरह रोने लगा। सदमा इतना पहुंचा कि महात्मा को फिर से रोग—शय्या का आश्रय लेना पड़ा है।

इस घटना से और कुछ नहीं तो कम से कम आँखें सब की खुल गई हैं। महात्मा जी अपनी स्थिति को भली प्रकार समझने लगे हैं। वे मौलिक सिद्धान्तों पर किसी से समझौता नहीं कर सकते अतः उन्हों ने फिर से देश को अपना प्रोग्राम समझाने का प्रयत्न करना है। महात्मा जी के वैयक्तिक प्रभाव से निस्सन्देह फिर से चर्खा और खद्दर कविता के उमड़ते हुए समुद्र में तैर कर ज्वार–भाटे के दिनों में चाँद को भी चूमने लगेंगे परन्तु अच्छा हो, यदि इस बार महात्मा जी तथा उन के अनुयायी अपने सिद्धान्तों पर सर्व–साधारण की श्रद्धा मात्र से ही सन्तुष्ट न हो जाँय परन्तु सब लोगों का उन पर यथार्थ रूप में पूरा विश्वास करा दें। पिछली बार एक वर्ष के भीतर स्वराज्य की आशा से बहुतों ने अन्तरीय विश्वास को दबा कर महात्मा जी के मौलिक सिद्धान्तों को स्वीकार कर लिया था। वही लोग निराश हो कर महात्मा जी के प्रति विद्रोह कर रहे हैं। इस वार महात्मा जी के कार्य की सफलता के लिये उन के 'मौलिक सिद्धान्तों' पर पूर्ण रूप से विचार होना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि देश में उन के 'मौलिक सिद्धान्तों' से मत–भेद रखने वाली जनता पर्याप्त संख्या में विद्यमान है। सारे असन्तोष की जड़ यही है;—चर्खे, खद्दर तथा अहिंसा का प्रचार करने के लिये महात्मा जी के नाम के जादू का ही सहारा लिया जाय अथवा इन सिद्धान्तों की नींव कुछ गहरी डाली जाय !

वायकम का सत्याग्रह

कई महीने बीत गये हैं। वायकम के सत्याग्रह से नई नई उलझनें पैदा होती जा रही हैं। इस सत्याग्रह का शीघ्र समाप्त न होना ही मद्रास प्रान्त के लिये लाभ–जनक है। जितना यह झगड़ा लम्बा होता जायगा उतना ही समझदार लोग हिन्दु–धर्म की अनुदारता को भली प्रकार समझने लगेंगे। झगड़े ने जो नया रूप धारण कर लिया है वह और भी आँखें खोलने वाला है। कोचीन के वर्णाश्रमी–हिन्दुओं ने संगठित हो कर मनुष्यत्व के अधिकारों के लिये लड़ने वाले सत्याग्रहियों को दबाने का संकल्प कर लिया है। कितनी मक्कारी है ! वही मनुष्य जो स्वयं अधिकार पाने को उतावला रहता है, अपने भाई को तुच्छातितुच्छ अधिकार देने के लिये कितना कतराता है !

वायकम तो एक ही जगह है।

जो अत्याचार अछूतों पर वहां होते हैं वे दक्षिण-भारत के एक २ गाँव में होते हैं। मन्दिर के निकट से अछूतों को न गुज़रने देना मद्रासियों के जीवन में बहुत ही स्वाभाविक घटना है। इतनी स्वाभाविक है कि इस पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। अछूत लोग स्वयं यह समझते हैं कि उन के मन्दिरों के निकट जाने से मन्दिर अपवित्र हो जायेंगे। दक्षिण में एक २ ग्राम तथा शहर में वायकम के से सत्याग्रहों की आवश्यकता है। हमारी यह दृढ़ धारणा है कि वायकम का सत्याग्रह दक्षिणीय-भारत के व्रणावृत शरीर पर नश्तर का काम करेगा।

—:o:—

गुरुकुल—समाचार

१. असह्य गर्मी के पश्चात् आषाढ़ के द्वितीय सप्ताह के अन्त से यहां की ऋतु अनुकूल होगई है। वर्षा ऋतु की शीतल समीरण कुलवासियों को प्रसन्नता प्रदान कर रही है। यद्यपि यह नई ऋतु ब्रह्मचारियों के स्वास्थ्य के लिए लाभ-प्रद सिद्ध हुई, जहां पहले रोगियों की संख्या दिनों दिन बढ़ रही थी वहां घटते २ अब केवल तीन चार ब्रह्मचारी ही रोगी रह गए, और वे भी अब ज्वर—मुक्त हो कर अच्छे हो रहे हैं तथापि पिछले ऋतु—वैषम्य ने जाते २ अपना पिशाच—काण्ड कर ही दिया। कुल के एक पुत्र को हम से सदा के लिए वियुक्त कर दिया। तृतीय श्रेणी का ब्रह्मचारी दधीचि कुछ दिन ज्वर से पीड़ित रहा। ज्वर उतर गया। साधारण निर्बलता शेष रह गई थी। यह किसी को भी आशा न थी कि इस निर्बलता के कारण कुल पुत्र सदा के लिए बिछुड़ जावेगा। निर्बलता के कारण वह अभी औषधालय में ही था। १८ आषाढ़ रात्रि को शौचालय में शौच गया। वहीं बेसुध अवस्था में गिर पड़ा। शरीर ठंडा पड़ गया। गुरुकुल के वैद्य और डाक्टरों ने भरसक यत्न किया। हालत कुछ अच्छी हो गई। मकरध्वज के प्रयोग से आशा का संचार हो गया। कुल—पुत्र ने थोड़ी २ बात चीत करनी भी प्रारम्भ कर दी। परन्तु प्रातः ८ बजे के लगभग फिर दशा बिगड़ी और कुल—पुत्र इस दुनियाँ में नहीं रहा। काल के आगे किसी का वश नहीं चलता। काल—नट का यह दुःखान्त नाटक कुलवासियों को शोक संतप्त करके समाप्त हुआ।

कुल के ब्रह्मचारियों में नदी के तट पर जंगल में रहने के कारण निर्भयता अधिक है। बाल—विनोद में वे यह भी भूल जाते हैं कि निर्भयता की भी कोई मर्यादा होती है। द्वादश श्रेणी का ब्र० सुबन्धु सर्प—विद्या में प्रवीण है, वह कभी २ सर्पों के साथ खेलता रहता है। उसी के अनुकरण में २७ आषाढ़ की प्रातः दशम श्रेणी के ब्र० वि-

श्वजित् ने हाथ से सांप को पकड़ने का यत्न किया। वह चूक गया, और साँप ने हाथ पर डस लिया। तत्काल डाक्टरी चिकित्सा की गई और परमेश्वर की कृपा से ब्रह्मचारी सर्वथा अच्छा हो गया।

२. गंगा अच्छी बढ़ गई है। ब्रह्मचारी तथा अन्य कुलवासी विशेषतः सांय काल को तैरने का व्यायाम करते हुए प्रसन्न दृष्टिगोचर होते हैं। अब पार से गुरुकुल पहुंचने का एक मात्र साधन तमेड़ ही है। बिना सूचना पहले दिये यात्रियों को कभी २ एक दो दिन पार ही पड़े रहना पड़ता है और साथ ही गुरुकुल के प्रबन्धकर्ताओं को भी कष्ट होता है। अतः ब्रह्मचारियों के संरक्षक और अन्य यात्री यदि एक दो दिन पहले गुरुकुल-कार्यालय में अपने आने की तिथि से सूचित कर दिया करें तो बिना कठिनाई के सब प्रबन्ध हो सकता है। आशा है, गुरुकुल के यात्री लोग इस ओर विशेष ध्यान देंगे।

३. गुरुकुल के उपाचार्य श्री प्रो० रामदेव जी स्वास्थ्य—लाभ के लिए बाहर गए हुए थे, वे २५ आषाढ़ को गुरुकुल पहुंच गये हैं। उनका स्वास्थ्य अब अच्छा है। उन्हों ने आते ही अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया है।

दो मास का वार्षिक अवकाश १म भाद्रपद, तदनुसार १६ अगस्त से प्रारम्भ होगा। सत्रान्तावकाश से पूर्व विद्यालय की षाण्मासिक परीक्षा २४ श्रावण से, और महाविद्यालय की २१ श्रावण से प्रारम्भ होगी। अधिकारी तथा महाविद्यालय के जो विद्यार्थी विश्वविद्यालय की परीक्षा में अनुत्तीर्ण हो गये थे, या रुग्ण होने के कारण परीक्षा नहीं दे सके थे, उन में से जिन को पुनः परीक्षा देने का अधिकार प्राप्त था. उन की दुबारा परीक्षा हो चुकी है। परीक्षा—परिणाम अभी नहीं निकला। आशा है शीघ्र ही निकल आवेगा।

देहरादून एक कोठी किराये पर ले ली गई है। सत्रान्तावकाश में पहली ४ श्रेणियों के ब्रह्मचारी वहीं रहेंगे। नवम, दशम तथा महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों के लिये प्रबन्ध किया जा रहा है कि वे कहीं पर्वत—यात्रा के लिए जा सकें. जिस से जहां उन का स्वास्थ्य अच्छा होगा वहां पर्यटन के लाभों को भी प्राप्त कर सकेंगे।

४. इस मास में छात्रवृत्ति के लिए दो सहस्र की एक विशेष रकम प्राप्त हुई है। यह रकम देहली निवासी म० कृष्णचन्द्र जी सब जज ने अपने स्वर्गीय पिता रायबहादुर गौरीशंकर के स्मारक में प्रदान की है। इस दान के लिए दानी महाशय को धन्यवाद दिया जाता है। इस के अतिरिक्त पांच सौ की रकम स्नातक मण्डल के मंत्री जी ने गुरुकुल—कोष में जमा कराई है जो स्नातकों ने अपने पास से दी है। यह धन-राशि गुरुकुल की स्थिर निधि में जमा रहेगी।

नोट:—सम्पादकीय विचार के छप जाने पर समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात हुआ कि महात्मा जी के रोगी होने का समाचार निर्मूल है तथा वायकम सत्याग्रह में वर्णाश्रमी हिन्दुओं ने अपने आन्दोलन को स्थगित कर दिया है। दोनों समाचार शुभ हैं परन्तु उन के कारण टिप्पणियों के बदलने की आवश्यकता नहीं—**सम्पादक**

* ओ३म् *

दयानन्द-आर्यभाषा-चातुर्मास्य-यज्ञ में

प्रथम आहुति

स्नातकमण्डल का मासिक पत्र

अलंकार तथा गुरुकुल-समाचार

यदि आप धार्मिक, सामाजिक, तथा राजनैतिक समस्याओं को वैदिकधर्म के अनुसार हल करना चाहते हैं।

यदि आप गुरुकुल--शिक्षाप्रणाली के महत्त्व को जानना चाहते हैं।

यदि आप आर्यसमाज के शुद्धस्वरूप को देखना चाहते हैं।

यदि आप भारत के प्राचीन गौरव का दर्शन करना चाहते है।

यदि आप गुरुकुलों के समाचार जानने के अभिलाषी हैं।

तो आप इस प्रथमाहुति से अपने शरीर, मन और आत्मा को पवित्र करते हुए लाभ उठाइये। इस आहुति की सुगन्ध प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में आप तक पहुंचा करेगी। दक्षिणा केवल ३) वार्षिक है।

प्रबन्धकर्ता अलंकार

डा० गुरुकुल कांगड़ी

(जि० बिजनौर)

वर्ष १ * अङ्क ३ REGISTERED No. A 1340

ओ३म्

भाद्रपद १९८१] [अगस्त १९२४

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

[स्नातकमण्डल गुरुकुलकांगड़ी का मुखपत्र]

मुख्य संपादक—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

* विषय सूचि *

विदेश से ४) एक प्रति का मू० ।≈) वार्षिक मूल्य ३)

ओ३म्

लेखकों से प्रार्थना

१. लेख सामान्यतः अलंकार के ४ पृष्ठों से अधिक न हों।

२. लेख कागज़ के एक ओर, और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये।

३. पत्र में प्रकाशन के लिये लेख या कविता प्रत्येक देशी मास की १० तारीख तक, और गुरुकुल समाचार २५ तक अवश्यमेव संपादक के पास पहुंच जाने चाहियें।

४. किसी भी लेख को घटाने या बढ़ाने का अधिकार संपादक को होगा।

५. अलंकार के परिवर्तन में पत्र संपादक के नाम, और समालोचनार्थ पुस्तकें प्रबन्धकर्ता के पते पर भेजनी चाहियें।

ग्राहकों के लिये सूचना

१. अलंकार पत्र प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों के पास पहुंच जावेगा।

२. यदि कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुंचे तो पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक-घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिए। यह सूचना देशी मास के तृतीय सप्ताह तक अवश्यमेव पहुंच जानी चाहिए। अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य न दी जावेगी।

३. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य देनी चाहिए। अन्यथा उत्तर न दिये जाने के हम दोषी न होंगे।

४. पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट साथ भेजना चाहिए।

५. पत्र—व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता पूरा और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिए।

६. भावी ग्राहकों को चाहिए कि वे रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने से ग्राहकों को और हमें, दोनों को कष्ट होता है। पैसे लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है।

७. नमूने का अंक बिना मूल्य किसी को न भेजा जावेगा।

८. प्रबन्ध सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार प्रबन्धकर्ता "अलङ्कार" गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) के पते से करना चाहिए।

विज्ञापन का दर

	एक पृ०	आधा पृ०	चौथाई पृ०
१ वर्ष के लिये	६) मास	३॥) मास	२) मास
६ मास के लिये	७) मास	४) मास	२।) मास
३ मास के लिये	८) मास	४॥) मास	२॥।) मास
१ मास के लिये	६) मास	५॥) मास	३॥) मास

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जावेगा।

ॐ

वर्ष १ | अङ्क ३

अलङ्कार
तथा
गुरुकुल-समाचार

भाद्रपद १९८१ | अगस्त १९२४

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः
हविष्मन्तो अलंकृतः। ऋग्वेद।१।१४।५।

"लीला"

(श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

प्रभु ! लीला है तेरी अपार-सुनाऊँ कैसे भला ?
बैठे हैं चुप चाप सब जीभ वाले, गूँगे रहे हैं पुकार ॥ सुनाऊँ० ॥
आँखें जिन्हें हैं न वे देख पाते, अन्धे रहे हैं निहार ॥ सुनाऊँ० ॥
पाते न तेरा पता कान वाले, बहरे सुनें बार बार ॥ सुनाऊँ० ॥
भूले न 'अपने' को वे राह भूले, भटके फिरें, द्वार द्वार ॥ सुनाऊँ० ॥
भोले-जिन्हों ने 'स्वयं' को भुलाया, पाया तुझे घेर घार ॥ सुनाऊँ० ॥
न्हाये न जो नेह-नदिया में जाकर, वे हैं पड़े बीच धार ॥ सुनाऊँ० ॥
देखा अजब खेल-जो बीच डूबे, वे हो गये पार पार ॥ सुनाऊँ० ॥

आर्यसमाज का इतिहास

दूसरे भाग का पहिला परिच्छेद

[३० अक्तूबर १८८३ ई० से ३१ दिसम्बर १८८३ ई० तक]

भविष्य के अंकुर

(लेखक श्रीयुत प्रो० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति)

१. मृत्यु का प्रभाव

ऋषि दयानन्द की मृत्यु आकस्मिक वज्र की भांति आर्यसमाज के सिर पर गिरी। ब्रह्मचारी और योगी के सम्बन्ध में आर्य पुरुषों की भावना थी कि वह कम से कम एक सौ साल तक जियेंगे। वे उस बालक की भांति निश्चिन्त थे, जो समझता है कि अभी पिता की छत्र छाया सिर पर विद्यमान रहेगी। उन्हें यह ध्यान भी नहीं था कि एक दम उन के सिर पर से ऋषि का रक्षक हाथ उठ जायगा। मृत्यु का धक्का पहले क्षण में असह्य प्रतीत हुआ। आर्यसमाज के सभासदों के हाथ में जो समाचार पत्र थे, उन के उस समय के लेखों से विदित होता है कि ऋषि की मृत्यु के समाचार ने एक बार तो उन के हाथ पांव फुला दिये। मेरठ के आर्यसमाचार ने दुःख समाचार सुनाते हुए एक लेख प्रकाशित किया था। उस के निम्न लिखित वाक्य उस निराशा के भाव को सूचित करते हैं जिस को आर्य पुरुष अनुभव कर रहे थे

'रो, रो, ऐ बदबख्त आर्यावर्त! खूब दिल खोल कर रो ले। आज तेरा फ़ज़ीलियत का सूरज ग़रूब हो गया। जिस ज़ुल्माते जहालत ने तुझ को इस नौबत पर पहुंचाया था उस से ज़्यादा ज़माना स्याह इस वक़्त तेरी नज़र के रोबरू मौजूद है। जिस फ़ख्रे मुल्क पर तुझ को नाज़ था, वही आज तुझ में से उठ चला। लखूखा तमन्नाओं का खून हो गया' —इत्यादि।

लाहौर के देशोपकारक ने निम्नलिखित पंक्तियों में अपनी असह्य वेदना को प्रकट किया थाः—

'ऐ आर्यावर्त! तेरी बदकिस्मती पर मुझे रोना आता है। ऐ आर्यावर्त! तेरी यतीमी पर मेरा दिल खून होता है। ऐ आर्यावर्त! तेरी बेकसी पर मुझे ग़ैरत आती है। ऐ आर्यावर्त! तेरी बेपरोवाली पर मेरा दिल कुम्हलाया जाता है। कैसी जल्दी तेरे प्यार के सर चश्मे को बन्द कर दिया गया'

ये दो उदाहरण इस बात को साफ़ कर देने के लिये पर्याप्त हैं कि ऋषि की मृत्यु का आर्य-जनता पर पहला असर बहुत ही निराशा जनक हुआ। वे अपने आप को बेपर के पक्षी की तरह असमर्थ समझने लगे। आर्यसमाज के आकाश में घोर अँधियारी सी छा गई। अब तक हरेक कठिनाई का हल 'स्वामी जी' थे, अब कठिनाइयों का पहाड़ आँखों के सामने आने लगा। काम अधूरा रह गया,

रास्ता बीच ही में कट गया, आर्यपुरुषों को भान होने लगा कि आर्यसमाज की नौका मंजधार में फंस गई, अब इस का निकलना दुष्कर है।

२. उत्तरदायित्व का अनुभव

परन्तु शीघ्र ही आर्यसमाज के सभासद् संभल गये। ऋषि की स्मृति से ऋषि का उपदेश ज़बर्दस्त निकला। ऋषि की स्मृति भी उपदेश के प्रभाव को बढ़ाने का कारण बन गई। पहले धक्के का मोहक असर दूर होते ही आर्य-पुरुषों के हृदयों में एक नया भाव उत्पन्न होने लगा। वह नया भाव था, उत्तरदायित्व का भाव। अब तक आर्य पुरुष अपने आप को नाबालिग़ समझते थे। वे करते सब कुछ थे, परन्तु इसी विचार से प्रेरित होकर करते थे कि इस दुनियां और दूसरी दुनियां के स्वामियों के सामने उत्तरदाता 'स्वामी जी' होंगे। ऋषि की मृत्यु का पहला प्रभाव दूर होते ही उत्तर-दायित्व के अनुभव ने आर्य-पुरुषों के हृदय में धीरे २ प्रवेश किया। वह समय आर्य-पुरुषों की परीक्षा का था, आर्यसमाज के भाग्य-निर्माण का था। यदि ऋषि की मृत्यु का यह प्रभाव होता कि आर्य-पुरुष साल दो साल के लिये भी अकर्मण्य होकर बैठ जाते तो सिद्ध हो जाता कि स्वामी दयानन्द ने आर्यपुरुषों को जो कुछ सिखाया था, वह असत्य था, या अपूर्ण था। यदि आर्य-पुरुष ऋषि के कार्य क्षेत्र से प्रयाण करते ही उन के स्थान पर किसी आचार्य की तलाश करने लगते तो वे अपने आप को नाबालिग़ सिद्ध कर देते, और दुनियां को यह दिखाते कि दयानन्द के उपदेश उन की जिह्वा पर ही हैं, उन के हृदयों पर नहीं। ऋषि के मरने पर हम हर्ष-पूर्ण-आश्चर्य के साथ देखते हैं कि एक भी आर्य-पुरुष यह शब्द नहीं उठाता कि ऋषि की स्थान-पूर्ति के लिये किसी व्यक्ति की तलाश करनी चाहिये। ऋषि दयानन्द आर्यसमाज का एक-प्रजा-सत्तात्मक संगठन बनाना चाहते थे, समाज की नींव में आचार्य ने समष्टि के भाव को भरा था। यदि ऋषि के अलग होते ही आर्य-पुरुष उस सिद्धान्त को भूल जाते, तो आर्यसमाज का इतिहास किसी दूसरी ही तरह लिखा जाता। उस दशा में आर्यसमाज का इतिहास इस्लाम या ब्रह्मोसमाज के समान व्यक्तियों का इतिहास होता, जनता का इतिहास नहीं। आर्यसमाज परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। उसने ऋषि की स्मृति को स्थिर करने का यही उपाय समझा कि ऋषिके उपदेशको सर्वोपरि रखाजाय

स्वामी जी की अकालमृत्यु से जो मूर्छा उत्पन्न हुई थी, वह शीघ्र ही जाती रही, और आर्य-जनता ने अपने आप को बालिग़ मान कर उत्तर-दायित्व का अनुभव किया। ईश्वर को आचार्य और पथ-दर्शक बना कर शीघ्र ही आर्य-पुरुष ऋषि के उद्देश्य की पूर्ति के लिये कटि-बद्ध हो गये।

३. ऋषि का स्मारक

ऋषि की मृत्यु के पीछे चेतना पैदा होने पर जो पहला विचार आर्य जगत् में पैदा हुआ, वह यह था कि आचार्य की स्मृति को कैसे ताज़ा किया जाय। इस विषय में आर्य-जगत् की परीक्षा थी। स्वभाव से मनुष्य अपने प्रिय

की स्मृति को स्थूल रूप में चिरंजीवी बनाना चाहता है। वह ऐसा स्मारक चाहता है जो शान्दार भी हो, और सरल भी हो। किसी की याद में किताब लिख देना सरल हो सकता है पर स्थूल दृष्टि से शान्दार नहीं है; अपने प्रिय की याद में चीन की दीवार खड़ा कर देना शान्दार हो सकता है परन्तु सरल नहीं है। साधारण मनुष्य दोनों गुणों को देखता है और किसी स्तूप, किसी मकबरे या किसी महल के रूप में स्मृति को अमर करने का यत्न करता है। ऋषि दयानन्द ने उदयपुर में कविराज श्यामलदास जी से कहा था कि–"मेरे मरने के पश्चात् मेरी अस्थियों को किसी खेत में डाल देना, कोई समाधि या कोई चिन्ह कदापि न बनाना'। कविराज ने कहा कि–"महाराज! मैंने तो यह सोच रखा था कि अपनी एक पत्थर की मूर्ति बनवाऊं और उसे किसी जगह रखवा दूं, ताकि मेरे पश्चात् वह मेरा स्मारक समझा जाय।" स्वामी जी ने कहा कि–"देखना कविराज जी! ऐसा भूलकर भी मत करना, बस यही तो मूर्ति–पूजा की जड़ हुआ करती है।" ऋषि का यह उपदेश था। वह शान्दार से शान्दार और सरल से सरल भी ऐसे स्मारक को पसन्द नहीं करते थे, जिस में मूर्ति–पूजा की प्रथा पायी जा-सके। यदि आर्य जनता ऋषि की याद गार में कोई स्तूप या मकबरा बनवा देती तो आज हिन्दू स्त्रियां उस पर फूल और बताशे चढ़ाकर अपने जीवनों को सफल मान रही होतीं।

आर्यसमाज ने ऋषि दयानन्द के आशय को खूब समझ लिया, और स्मारक की ऊपर बताई हुई दो शर्तों के साथ एक तीसरी और शर्त जोड़ दी। वह शर्त यह थी कि स्मारक शा-न्दार और सरल होने के साथ ही साथ उपयोगी भी हो। अजमेर से लौटकर आर्य–पुरुषों ने अपने स्थानों पर स्मारक की चर्चा प्रारम्भ की। अजमेर, प्रयाग, मेरठ, फ़ीरोज़पुर मुलतान और लाहौर में वह चर्चा अधिक वेग के साथ होने लगी। प्रायः सभी स्थानों में उस का रूप एक सा था। यह आश्चर्य की बात है। चर्चा यही थी कि ऋषि की यादगार शिक्षणालय के रूप में स्थापित की जाय। इस से सूचित होता है कि आर्यसमाज की शिक्षा ही दिखावे के स्मारक के विरुद्ध थी। यह ठीक है कि परोपकारिणी में एक बार दिखावे के स्मारक की चर्चा आरम्भ हुई थी, परन्तु याद रखना चाहिये कि परोप-कारिणी सभा में सौ फ़ी सदी आर्यसा-माजिक विचारों का राज्य नहीं था। आर्यजनता का दिमाग़ ही ऐसे ढंग से बना हुआ था कि वह स्मारक रूप में वैदिक शिक्षणालय से उत्तम स्मारक नहीं सोच सकती थी।

स्मारक की चर्चा कहीं पाठशाला के रूप में फलीभूत हुई तो कहीं स्कूल के रूप में परिणत हुई। मेरठ में हम सुशिक्षाप्रचारिणी नाम की सभा, और आर्यपाठशाला नाम की पाठशाला का वृत्तान्त पढ़ते हैं। प्रयाग में किसी न किसी रूप में पाठशाला का कार्य जारी

रहा। अजमेर में परोपकारिणी सभा में जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उन की चर्चा हम आगे करेंगे। पंजाब में स्मारक की चर्चा तीन स्थानों पर आरम्भ हुई थी, परन्तु लाहौर के सिवा अन्य किसी स्थान पर वह घनीभूत नहीं हो सकी। लाहौर में वह शीघ्र ही घनीभूत हो गई, और साहस के साथ कहा जा सकता है कि कल्पनातीत शीघ्रता से लाहौर निवासियों ने अपने आप को स्वामी जी के सच्चे भक्त सिद्ध कर दिया।

४. वैदिक शिक्षणालय

ऋषि दयानन्द के जीवन काल में ही वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा का प्रचार करने के लिये एक शिक्षणालय की आवश्यकता का अनुभव हो रहा था। ऋषि दयानन्द ब्रह्मचर्य और सत्यशिक्षा के अभाव को ही भारत वर्ष की गिरावट का कारण समझते थे। काशी में, फ़र्रुखाबाद में ऋषि ने पाठशालाएँ स्थापित की थीं, परन्तु प्रतीत होता है कि उस समय तक अभी आर्यजनता में इतनी जागृति पैदा नहीं हुई थी कि वह उस बोझ को संभालने के लिये उद्यत होती। अभी शिक्षणालयों का समय नहीं आया था। लोग अनुभव करते थे कि जब तक स्वामी जी जीवित हैं तब तक आर्यसमाज में वेदज्ञ की न्यूनता नहीं कही जा सकती। स्वामी जी के जीवन का अन्त हो सकता है—आर्य-पुरुषों के दिमाग़ में यह बात नहीं समाई थी। वे जानते थे कि आदित्य ब्रह्मचारी सौ साल से पहले नहीं मर सकता। उन्हें क्या मालूम था कि संसार में ऐसे पुरुष भी वास करते हैं जो मनुष्य जाति के उपकारकों का प्राण संहरण करने में सुख का अनुभव करते हैं।

ऐसी दशा में भी आर्यपुरुष यह अवश्य समझ रहे थे कि वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा का प्रबन्ध करना पड़ेगा। १८८२ और १८८३ ई० के पूर्वभाग में पंजाब और पश्चिमोत्तर प्रदेश के आर्य समाचार पत्रों में वैदिक शिक्षणालय की आवश्यकता पर लेख निकलते रहते थे। लाहौर के 'आर्य' नाम के अख़बार में १८८२ ई० के मई मास में हम ऐंग्लो वैदिक स्कूल की आवश्यकता पर एक लेख पढ़ते हैं। १८८२ ई० के मई मास में ऐंग्लो वैदिक स्कूल की चर्चा सिद्ध करती है कि दो बातें पहले से मानी जा चुकी हैं। एक ऐसे शिक्षणालय की आवश्यकता है जो वैदिक ग्रन्थों की शिक्षा दे सके, और वह शिक्षणालय ऐसा होना चाहिये कि जिस में अंग्रेज़ी भाषा और पश्चिम की अर्वाचीन विद्याओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो।

ऋषि की मृत्यु ने इन दो बातों के साथ एक तीसरी यह बात शामिल कर दी कि वह शिक्षणालय ऋषि का स्मारक भी हो।

५. डी ए वी स्कूल का प्रस्ताव

३० अक्तूबर (१८८३ ई०) की रात्री को अजमेर में वैदिक-सूर्य अस्त हुआ। उस समय अजमेर में पंजाब के बहुत से महानुभाव भी विद्यमान थे। पं० गुरुदत्त एम. ए. और ला० जीवन दास जी ने ऋषि के जीवन नाटक पर पटाक्षेप होते देखा, और लाहौर

पहुंच कर १ नवम्बर को सार्वजनिक सभा में उन की आंखों ने जो अद्भुत मृत्युमय जीवन देखा था उस का वृत्तान्त जनता को कह सुनाया। सुनने और कहने वालों की यह दशा थी कि आंखें डबडबा रही थीं, गले भरे हुए थे, सभा में एक सन्नाटे का राज्य था, जिसे देख यह अनुभव करना कठिन नहीं था कि आर्यसमाज पर जो आपत्ति आई है, वह अनाशंकित थी। सात दिन पीछे ८ नवम्बर को फिर लाहौर के आर्य पुरुषों की एक सभा हुई। उस दिन दृश्य ही बदला हुआ था। शोक के स्थान पर उत्साह और जीवन का राज्य हो रहा था। पं० गुरुदत्त एम. ए. और उन के साथियों ने भावपूर्ण शब्दों में प्रस्ताव किया कि ऋषि की यादगार को ऐंग्लो वैदिक स्कूल तथा कालिज द्वारा स्थिर किया जाय। सारी उपस्थित जनता ने प्रस्ताव को स्वीकार किया। उसी समय चन्दे के लिये अभ्यर्थना की गई। उस समय तक उत्तम कार्यों के लिये दान देने की प्रथा नहीं चली थी। अभी तक दान के लिये पण्डों के पेट और तीर्थों के मठ ही श्रेष्ठ पात्र समझे जाते थे। उस समय सार्वजनिक कार्यों के लिये ५) दान भी विशेष महत्व रखता था। इस की चर्चा साधुवाद के साथ समाचार पत्रों में की जाती थी। उस सभा में ८०००) का दान सुनाया गया, जिसे हम आज कल की दृष्टि से परखें तो ८००००) से कम नहीं समझना चाहिये। दानदाताओं की सूचि में कई स्त्रियों और बच्चों के भी नाम मिलते हैं, जिस से उत्साह का अनुमान लगाया जा सकता है। लाहौर के आर्य समाज की अन्तरंग सभा ने दो दिन पूर्व डी. ए. वी. स्कूल के लिये धन एकत्र करने के निमित्त एक सब-कमेटी बनाई थी, जिसके निम्न लिखित सभासद् थेः—

लाला लालचन्द एम. ए., लाला मदन सिंह जी बी. ए, लाला जीवनदास, पं० गुरुदत्त एम. ए.।

यह सब-कमेटी धन संग्रह के लिये बनी थी, परन्तु यह कहना कुछ अत्युक्ति-पूर्ण न होगा कि डी. ए. वी. स्कूल की स्थापना के लिये जितना उत्साह उत्पन्न हो गया था, उस का दशांश भी न होता यदि लाहौर के महानुभावों को यह मालूम न होता कि एक योग्य आर्य-नव-युवक उस श्रेष्ठ-कार्य के लिये अपना जीवन अर्पण करने को तय्यार है। उस आर्य-नव-युवक का नाम 'हंसराज' था। ला० हंसराज ने अभी हाल ही में बड़ी प्रतिष्ठा के साथ पंजाब यूनिवर्सिटी से बी. ए. पास किया था। उस के सामने नौकरी या व्यापार का मैदान खुला था। परन्तु सांसारिक इच्छाओं को लात मार कर उस त्यागी नव-युवक ने धर्म-यज्ञ में अपने जीवन की आहुति डालने का संकल्प किया। बताने की आवश्यकता नहीं कि उस संकल्पने आर्यपुरुषोंके उत्साहको कितना बढ़ाया होगा। उस दृष्टान्तने पंजाब में आर्यसमाजके जीवनपर कैसा उत्तम प्रभाव डाला, आर्यसमाजके इतिहास को जानने वाले इसे खूब जानते हैं।

हो, तदनन्तर अलंकार आदि के लिए उपयुक्त सोना, चांदी का प्रचार हुआ हो। अयस् का अर्थ 'लोहा' ही है—'कच्ची धातु' नहीं। लोहे का 'कच्ची-धातु' अर्थ करना अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिए शब्द-शास्त्र पर अत्याचार करना है।

किसी भी अंग्रेज़ी शब्द-कोष को देखने से पता चल जायगा कि आंग्ल-भाषा का Iron (लोहा) तथा संस्कृत का अयस्, दोनों शब्द एक ही शाखा के हैं। यदि अयस् का अर्थ कच्ची-धातु ही है तो यह कैसे सम्भव हुआ कि आर्यों के परस्पर जुदा हो जाने के सदियों बाद Iron का अर्थ भी लोहा हो गया और अयस् का अर्थ भी लोहा हो गया! जब तक Iron तथा अयस् दोनों शब्दों का प्रारम्भ से ही लोहा अर्थ न हो तब तक इन दोनों शब्दों के इस समय लोह-वाचक हो जाने की समस्या का हल करना कठिन है। निष्पक्ष दृष्टि से विचार करने वालों को मानना पड़ेगा कि अयस् का अर्थ लोहा ही है। प्राचीन आर्य सोने तथा चांदी के साथ २ लोहे को भी जानते थे।

प्राचीन आर्य जिन शस्त्रों को काम में लाते थे उन से भी उन की सभ्यता पर पर्याप्त प्रकाश डल सकता है। विकास-वादियों का कथन है कि आर्य लोग हड्डियों से शस्त्र बनाया करते थे। परशुराम जी का परशु हड्डी का था। पासे की हड्डी के लिए अमर-कोष में लिखा है 'पार्श्वास्थनि तु पर्शुका'। पर्शुका का अर्थ पासे की हड्डी है, परशु का अर्थ कुठार है। अतः परशु, पर्शुका से अथवा कुठार, पासे की हड्डी से बनता था। ज़िन्द भाषा में भी परशु शब्द ही कुठार के लिए पाया जाता है।

संस्कृत में 'असि' तथा 'अस्त्र' शब्द पाये जाते हैं। ज़िन्द में 'असि' का अर्थ बाण है। लैटिन में Ensis शब्द मिलता है। 'असि' का अर्थ है तलवार, 'अस्त्र' का अर्थ है शस्त्र। विकास-वादियों का कथन है कि असि तथा अस्त्र, दोनों शब्द, 'अस्थि' से मिलते जुलते हैं, जिस से स्पष्ट है कि प्राचीन आर्य लोग तलवार तथा शस्त्रों को अस्थि, अर्थात्, हड्डी से बनाया करते थे।

संस्कृत में उस्तरे के लिए 'क्षुरस्' शब्द का प्रयोग होता है। ग्रीक में Shuros (शुरस्) शब्द पाया जाता है जिसका अर्थ उस्तरा है। यदि प्राचीन आर्य उस्तरे का प्रयोग करते सिद्ध हो जांय तब तो विकास-वादियों की थ्योरी टुकड़े २ हो जाय। उस्तरे से दाढ़ी मूंछ साफ़ करने का रिवाज़ तो आज कल की सभ्यता के उन्नत-युग में शुरु हुआ है! प्राचीन आर्य और उस्तरे से सफ़ाई!—असम्भव है! ख़ैर, इस पर तो बस चलता ही नहीं—इसे मान लो। पर हां, उस्तरा ज़रूर हड्डी का होता होगा—लोहे से तो वे परिचित थे ही नहीं! प्रो० मैक्समूलर अपनी पुस्तक Biographies of Words के १४५ पृ० पर लिखते हैं:—

"The Aryan razor may have been a mere scraper of the most

primitive kind, possibly made of stone, like the obsidian razors found at Mycenae."

लोग कहते हैं कि आर्यों का उस्तरा पत्थर का होगा और प्रो० मैक्समूलर इस बात को मानने के लिये तय्यार हो जाते हैं! इस कल्पना से हेलबीग महाशय सहमत नहीं। टेलर महोदय का कथन है कि पत्थर का उस्तरा कितना भी तेज़ हो, उस से दाढ़ी साफ़ करना कठिन है, इसलिये क्षुरस् का अर्थ दाढ़ी साफ़ करने वाला उस्तरा नहीं परन्तु जानवरों की खाल के बाल उतारने के लिये तेज़ पत्थर के टुकड़े को उस्तरा कहते होंगे। टेलर महोदय अपनी पुस्तक के १७३ पृ० पर इसी भाव को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं:

"But since it would be difficult to shave with a stone, however sharp, and as the Swiss pile buildings show that the early Aryans were still in the stone age, and since no razors were found in the very early cemetery at Alba Longa, Helbig argues that this word may have originally denoted the flint flakes which were used for scraping the hair off hides, found in great numbers in the earliest settlements, the name being afterwards transferred, after the invention of metals, to razors for shaving the chin."

कैसा अच्छा हल पेश किया है! क्षुरस् का अर्थ उस्तरा करने से तो मानना पड़ता है कि प्राचीन आर्य फ़ैशनेबल थे। इस के अतिरिक्त यह भी मानना पड़ता है कि वे लोहे या ताम्बे का उपयोग भी जानते थे क्योंकि पत्थर के उस्तरे से तो काम चल ही नहीं सकता। हेलबीग ने इन सब शंकाओं का एकदम समाधान कर दिया। क्षुरस् का अर्थ ही उस्तरा नहीं, बताओ अब क्या कर लोगे?

परशु, असि, अस्त्र तथा क्षुरस्—इन सब शब्दों से यही सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि प्राचीन आर्य लोहे से अनभिज्ञ थे, हड्डी से ही सब तरह के उपकरण बनाया करते थे। विकासवादियों का यह प्रयास सर्वथा पक्षपात-पूर्ण है। उन के इस प्रकार के प्रयत्न से विद्वत्ता का मुँह कलङ्कित होता है, पाण्डित्य शरमाने लगता है! उन के कथनों पर थोड़े से भी विचार से उनकी निस्सारता प्रकट होने लगती है।

'परशु' तथा 'पार्श्व' इन दोनों शब्दों का उच्चारण एक सा है अतः पासे की हड्डी से ही परशु बनता होगा—यह भी अजीब युक्ति है। टेलर महोदय के नाम की हिज्जें Taylor हैं। अंग्रेज़ी में Tailor शब्द का अर्थ दर्ज़ी होता है। क्या इस से दोनों में कोई सम्बन्ध ढूँढा जा सकता है? परशु तथा पार्श्व दोनों शब्दों की भिन्न २ व्युत्पत्तियें हैं। 'परं शृणाति'—इस व्युत्पत्ति से परशु बनता है, इस का अर्थ है 'दूसरे को जिस से मारा जाय'। 'स्पृश् संस्पर्शने' धातु से पार्श्व शब्द सिद्ध होता है, इस का अर्थ है 'छूने

वाली'—अर्थात् ,पासे की हड्डी। परशु-राम के हड्डी के परशु पर वे कहानियें नहीं घड़ी जा सकतीं जो उन के नाम पर पुराणों में मढ़ी गई हैं। वह परशु किसी पुष्ट धातु का होना चाहिये।

'असि' तथा 'अस्त्र' की 'अस्थि' शब्द से समानता दर्शा कर प्राचीन शस्त्रों को हड्डी का सिद्ध करने का उद्योग करना भी हास्यास्पद है। 'असि' तथा 'अस्त्र' दोनों शब्द 'असु क्षेपणे' धातु से व्युत्पन्न होते हैं—जिन शस्त्रों को फेंककर शत्रु को मारा जा सके उन्हें अस्त्र तथा असि कहते हैं, अस्थि या 'हड्डी' से उन का कोई सम्बन्ध नहीं।

'क्षुरस्' के सम्बन्ध में की गई कल्पना भी अत्यन्त विचित्र है। मेक्समूलर के कथनानुसार उस्तरा हड्डी का बना हुआ था; टेलर की सम्मति में उस्तरा था ही नहीं, जानवरों की खालों के बाल उचेलने के लिये तेज़ पत्थर या हड्डी के टुकड़ें को ही उस्तरा कहते थे। परन्तु प्रमाण? कैसे मान लिया जाय कि उस्तरे हड्डी के थे अथवा उस्तरे का अर्थ ही दूसरा था। कात्यायन के श्रौत सूत्र में (५ अध्याय २, १७) लोह-क्षुर शब्द पाया जाता है। शतपथ ब्राह्मण में भी 'लोह-क्षुर' शब्द आता है। कात्यायन के टीकाकार तथा सायण के समय तो अन्य धातुओं के भी उस्तरे बनने लग गए थे, ऐसा भी सिद्ध होता है। कात्यायन का टीकाकार लिखता है:—'लोहेन ताम्रेण परिष्कृतं अयोमयं एव क्षुरं हस्तेन गृहीत्वा। लोहमत्र ताम्रमुच्यते।' शतपथ के उद्धरण में सायणाचार्य ने भी लोहे का अर्थ ताम्र कर दिया है। इस से यही परिणाम निकलता है कि उक्त टीकाकारों के समय लोहे की जगह ताम्र के उस्तरे बनने लगे थे। मैक्समूलर ने लोहे का अर्थ ताम्र था, ऐसी कल्पना की है। यह कल्पना अशुद्ध है। यदि लोहे का अर्थ ताम्र होता तो टीकाकारों को यह लिखने की आवश्यकता न पड़ती कि 'यहां लोहे का अर्थ ताम्र लेना चाहिये'। 'यहां' शब्द का प्रयोग सिद्ध करता है कि लोहे का वास्तविक अर्थ 'लोहा' ही था। हां, उस समय सभ्यता इतनी बढ़ चुकी थी कि यज्ञ में लोहे की जगह ताम्र के क्षुर का प्रयोग किया जाता था।

प्राचीन आर्य उस्तरे से परिचित थे, उस्तरे का अर्थ दाढ़ी के बाल मूंडने का ही उस्तरा था, यह बात दूसरी तरह से भी सिद्ध होती है। आर्यों की भाषाओं में से ग्रीक तथा संस्कृत में क्षुरस् शब्द समान पाया जाता है। आर्यों की जुदाई के पश्चात् वर्तमान काल में भी ग्रीक तथा संस्कृत में क्षुरस् का अर्थ उस्तरा ही है। यह क्यों? यदि क्षुरस् का अर्थ आर्यों की जुदाई से पूर्व उस्तरा नहीं था तो कैसे सम्भव हो सकता है कि इतनी सदियें पृथक् रहने के बाद उस शब्द का आज भी दोनों भाषाओं में समान ही अर्थ पाया जाता है। निदान, परिणाम यही निकालना पड़ेगा कि आर्यों की जुदाई से पूर्व 'क्षुरस्' शब्द का आर्यों में उस्तरा अर्थ ही था। क्योंकि पत्थर और हड्डी के उस्तरे से बाल साफ़ नहीं किये जा सकते इस-लिये लोहे के उस्तरे को ही वे लोग

काम में लाते थे।

परिणामतः, विकासवादियों को मानना चाहिये कि 'प्राचीन आर्य' दो धातुओं से अतिरिक्त अन्य धातुओं के प्रयोग से भी भली भाँति परिचित थे। उन का ज्ञान पत्थर तथा हड्डियों तक ही परिमित न था। उन्हीं के अस्त्र शस्त्र बना कर वे अपनी रक्षा नहीं किया करते थे। उन के शस्त्र लोहे आदि पक्की धातुओं के होते थे।

—::o::—

वेद और कुरान

सूरे फ़ातिहा—गायत्री मंत्र

(अथ कुराण-शाखाया गुरुमंत्र व्याख्या)

(लेखक श्री पं जयदेव जी विद्यालंकार—कलकत्ता)

यह सूरत कुरान में प्रार्थना-सूक्त है। मुसलमान लोग इसे बड़ी श्रद्धा और भक्ति के साथ पढ़ते हैं। इसे वे प्रार्थना सूक्त, स्तुति सूक्त, जप सूक्त या गुप्त सूक्त आदि बहुत से नामों से याद करते हैं। कहते हैं कि यह कुरान का मूल सार है। जैसे भागवत का सार जिन चार श्लोकों में आ जाता है उन्हें चतुःश्लोकी भागवत कहते हैं वैसे ही सूरे फ़ातिहा एक प्रकार से सप्तायती कुरान है। इस को मुहम्मद साहब का 'गुरु-वचन-सार' कहें या गुरुमन्त्र कहें तो अत्युक्ति न होगी। हज़रत मुहम्मद प्रायः इस का पाठ बड़े प्रेम से किया करते थे। इस का प्रथम वाक्य इस प्रकार हैः—"ईश्वर के नाम से, जो निहायत रहम वाला (दयावान्) मिहर्बान है"। मुसलमानों का यह वाक्य प्रायः प्रत्येक सूक्त के पूर्व 'श्री गणेशाय'-'ओं खं ब्रह्म'-'ओं तत्सत्' अथवा 'ओं नमः परमेश्वराय' के सदृश पाया जाता है।

रहम वाले और मिहर्बान खुदा को सर्वत्र स्मरण करने का भाव यवन संसार में कहां से उठा? अरबी में अर्रहमान-ए-र्रहीम दो विशेषण आते हैं जिन का अर्थ है- 'दयालुओं में दयालु तथा न्यायकारियों में न्यायकारी'। वेद में अर्यमन् शब्द का अर्थ यही है-'न्यायकारी और दयालु'। पाठ भी एक सा ही है, 'अर्रहमान = अर्यमन्'। अतः, 'रहम वाला' नाम से परमात्मा को स्मरण करने का भाव वेद के 'अर्यमन्' शब्द से चला, क्योंकि दोनों में भाव तथा शब्द की अत्यधिक समानता है।

'बिस्मिल्-ला-हि र्रहमान-इ-र्रहीम'—यह अरबी का वाक्य यहूदी और सेबियन लोगों का गुरुमन्त्र था। यह 'अर्यमा' की उपासना का ही रूपान्तर समझना चाहिए। 'बनामे यज़दां बख़शंदा परवर दगार अस्त' अर्थात् 'उस दयालु और न्यायकारी के नाम से'। यह भी 'अर्यमा' के भाव की पूजा है। इसी गुरुमंत्र का उपदेश

मुहम्मद के ज़माने में तैफ़ के एक विद्वान् कवि ओमपाह ने कुरैशियों को सिखाया था।

कुरान के एक उत्तम टीकाकार व्हेरी (Wherry) ने लिखा है कि सुलेमान एक अच्छे घराने का पुरुष था। बालकपन में अपना देश छोड़ ईसा का अनुयायी बन कर सीरिया में आ गया। वहां वह एक पुरोहित से यह बात सुन कर कि अरब में एक प्रोफ़ेट (नबी) होने वाला है और उस की छाती पर दाग़ है सीधा अरब में आया। उस ने कूफ़ा में श्री मुहम्मद से भेंट की। मदीना में उस को फिर मिला और वहां अब्राहीम का धर्म फैलाने का यत्न किया।

सुलेमान अरब का रहने वाला न था इतिहास लेखकों ने उसे 'अजामि' लिखा है। अजामि का अर्थ, विदेशी-जंगली है। अरब लोग परशिया वालों को 'अजामि' कहा करते थे।

सुलेमान का पुरोहित के मुख से अरब में नबी होने का समाचार सुनना और उस की खोज में अरब आना और उस से भेंट करना यह सब बातें बड़े विस्मय की हैं। हमें यह प्रतीत होता है कि वह पुरोहित हजरत मुहम्मद को जानता था। कदाचित् मुहम्मद सीरिया के उस पुरोहित से मिल कर ही अरब गया हो या उसका यश सीरिया तक पहुंच गया हो।

पुरोहित ने छाती पर दाग़ होने का जो निशान बतलाया है उसको सुन कर तो हमें, सीरिया के धर्म (क्रिश्चियेनिटी) की कलई भी खुलती मालूम होती है।

छाती पर दाग़ कैसा ? क्या वैष्णवों का चक्रांक तो नहीं था। वैष्णव धर्म से दीक्षित होकर ह० मुहम्मद अरबस्तान में भागवत धर्म या गीता-धर्म फैलाने का तो प्रयत्न नहीं कर रहे थे ? अब्राहम का धर्म या ब्रह्म का धर्म तो नहीं प्रचारित करना चाहते थे ?

पुरोहित स्वयं भी चक्राङ्कित नबी को बड़ी श्रद्धा से देखना प्रतीत होता है। क्या क्रिश्चियेनिटी या कृष्ट धर्म भी कृष्ण-धर्म तो नहीं है ? अब यही खोज करना है कि वैष्णव धर्म का यवन और इसाई मतों से क्या सम्बन्ध है।

आदम के स्वर्ग से निकाले जाने का वर्णन हम ने पहले लेख में किया था जिस में आदम को पूर्वीय स्वर्ग-भूमियों से निकाल कर पश्चिम के रेगिस्तानों में बसने का निर्णय हुआ था। इतिहास से प्रतीत होता है कि पूर्वीय देशों के प्रचारकों का पश्चिमीय देशों में बराबर आना जाना होता रहा है। परन्तु अभी और भी बहुत खोज करने की आवश्यकता है। आदम की घटना को पूर्वीय देशों के धर्म प्रचारकों के अन्य देशों में जाने की घटना का रूपान्तर ही समझना चाहिए। हज़रत मुहम्मद भी इन्हीं प्रचारकों के असर में आ चुके थे।

अपने अन्तिम परिणाम पर पहुंचने के लिए अब हम हज़रत मुहम्मद के श्री मुख से निकले वाक्यों और भावों की आलोचना करेंगे और बतलाएंगे कि वेद भगवान् के मन्त्रों को किस क्रम से हज़रत मुहम्मद ने लोगों

के सामने रक्खा और भारत से पहुंचे हुए विचारों का ही दूसरी भाषा में प्रचार किया।

प्रथम-सूक्त 'सूरे फ़ातिहा' या 'प्रार्थना-सूक्त' इस प्रकार है:—

विस्मिल्ला हि रहमानि इर्रहीम। अलहम दु ल्लिल्लाह रब् बिला लुमीन, अर्रहमाने रहीम। मालिकी यो मिद्दीन, इपाक ना बुदु वाइ पाक नस्ताइन। इह दिन स्सुरात अलमुस्त कीन। सिरात अल-ज़ीना अ न अमता-अलाइहीम। ग़ैर इल मागदुब अलेहीम वदुद् आलीन॥

अर्थ— ईश्वर के नाम से जो सब से अधिक दयावान् है॥ १॥ उस ईश्वर की स्तुति है जो सब प्राणियों का स्वामी है॥ २॥ वह बड़ा ही दयावान् कृपालु है॥ ३॥ न्याय के दिन (कयामत = प्रलय) का राजा है॥ ४॥ हम तेरी ही वन्दना करते हैं और तुझ से ही सहायता मांगते हैं॥ ५॥ हमें सीधे मार्ग में ले जा॥ ६॥ जिन पर तू अनुग्रह करता है उन के मार्ग में (हम को ले जा) न कि उन के, जिन पर तू रुष्ट है, और न उन के, जो मार्ग से भटके हैं॥ ७॥

पाठक कुछ ध्यान दें। पहली दो आयतों में ईश्वर के तीन विशेषण हैं। 'रब्बिलालमीन'-'रहमाने रहीम'-'मालिकी यो मिद्दीन'—'सब प्राणियों का रब' 'अतिदयाशील रहीम' 'प्रलय के दिन का मालिक'। 'प्राणियों का रब' अर्थात् प्राणियों का या लोकों का आरम्भ कर्त्ता-उत्पादक-ब्रह्मा। 'दयाशील रहीम' अर्थात् प्राणियों या लोकों पर दया करने वाला ज्येष्ठब्रह्म, पुराण पुरुष, पालक-विष्णु। 'प्रलयकाल का मालिक' अर्थात् 'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत्' नाम वाला महेश्वर-रुद्र।

कुरान कहती है-ब्रह्मा विष्णु और रुद्रस्वरूप परमात्मा को नमस्कार हो। वेदान्त का प्रथम सूत्र है 'जन्माद्यस्य यतः'-वह पर-ब्रह्म है जिस से यह संसार उत्पन्न होता है, जिस की दया से पालित है और जिस की शक्ति से प्रलय काल में नष्ट हो जाता है।

ऋग्वेद कहता है:—१०। १२६। ७

इयं विसृष्टि र्यत आबभूव,
यदि वा दधे यदि वा न।
यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्,
सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद॥

परम व्योम में जो इसका अध्यक्ष है वही इस सृष्टि विषयक उत्पत्ति स्थिति तथा लय को जानता है।

श्वेताश्वतर में कहा है:—

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः। ३। ४।

तैत्तिरीय कहती है: (भृगुवल्ली १)
यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते,
येन जातानि जीवन्ति,
यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति
तद्विजिज्ञासस्व, तद्ब्रह्म॥

गायत्री मन्त्र में कहा है-"ओ३म्, भूर्भुवः स्वः"-वह परमात्मा सब से बड़ा है। वह प्राणों का प्राण, सब लोकों का रक्षक, सब को अपने में लीन कर लेने वाला-आनन्द स्वरूप है।

(१) भूः-प्राणों का प्राण, सब का उत्पत्ति स्थान, ब्रह्मा।

(२) भुवः-लोकों का धारण करने वाला—विष्णु।

(३) स्वः—प्रकाश स्वरूप (सूर्य) दिन का मालिक, बड़े दिन का मालिक, ज्ञान स्वरूप, प्रकाश स्वरूप होने से अन्धकारमय प्रलय काल तक का मालिक—महेश।

अब पाठक समझ गये होंगे कि हज़रत मुहम्मद ने गुरुमन्त्र की प्रथम तीन व्याहृतियों को कितनी उत्तमता से समझ रखा था।

गायत्री मन्त्र में आता है–धीमहि। 'धीमहि' का अर्थ है 'नुमः'। हम तेरी वन्दना करते हैं। ऊपर उद्धृत की हुई कुरान की पांचवी आयत में भी तीन गुणों से युक्त परमात्मा को नमस्कार किया गया है। गायत्री मन्त्र में सवितुः, वरेण्यं, भर्गः, ये तीन शब्द हैं जिन से सविता–उत्पादक; वरेण्य–वरण–करने योग्य, रक्षक; भर्गः भूनने वाला, संहारक; ये तीन भाव प्रकट होते हैं। वे ही हज़रत मुहम्मद की प्रार्थना में पहले आए हैं। आगे है 'हम तेरी वन्दना करते हैं"। 'देवस्य धीमहि'। और तुझ से प्रार्थना करते हैं। क्या प्रार्थना? हमें सीधे मार्ग पर ले जा–प्रचोदयात्–प्र–सीधे (Proper) चोदयात्–मार्ग में लेजा। प्रचोदयात् की ही व्याख्या में सूरे फ़ातिहा की अन्तिम आयतें हैं।

सीधा मार्ग कौनसा है और सीधा मार्ग कौन सा नहीं है, उसीकी आगे व्याख्या की है। हे देव! तू जिन पर अनुग्रह करता है उनका मार्ग सीधा है, उनके मार्ग में हमें ले जा। तू दुष्टों को दण्ड देता है, तू अपने तेज से उनको भून देता है। 'भर्गः'–प्रलय काल की आग में डाल देता है। अपराधियों का मार्ग सीधा नहीं है–उन के मार्ग में न ले जा। तू वरेण्य है, सब पर दया करने के कारण सब का प्रेम पात्र है, सब के दिल तुझे अपनाते (वरण करते) हैं, तू सब की रक्षा करता है। इस कारण जो लोग सब के प्रेम पात्र तुझ को छोड़ कर भटक गए हैं, जिन पर तेरा दयामय आवरण नहीं रहा, जो गुमराह हो गए हैं, उन के मार्ग पर भी हमें मत ले जा। हमें तो प्रचोदयात्–प्रकृष्ट मार्ग में ले जा। वेद में आता है–'अग्ने नय सुपथा'।

मैं जब २ भी कुरान के प्रथम सूक्त (सूरेफ़ातिहा) पर दृष्टि डालता हूं और यह विचार करता हूं कि मुहम्मद इस का पाठ किया करते थे, तब २ प्रतीत होता है कि वे सच्चे वेद–मार्ग के भक्त थे। वे अर्यमा या ज्येष्ठ–ब्रह्म के उपासक थे और नित्य गायत्री पढ़ा करते थे। सूरे फ़ातिहा–'प्रातः सूक्त'–का पाठ किया करते थे। भेद इतना ही था कि वे अरबी भाषा में कहते थे और उन के प्राचीन गुरु ऋषि जिन की गुहा में वह कुरान (गुरु वाणी) का उपदेश सुन कर आते थे वैदिक भाषा में पढ़ाते थे।

दूसरी सूरत सूरे 'बकर' है। (बकर = गाय)। यह अगली सूरत 'गौ–सूक्त' है, या कहिए 'पृथिवी सूक्त' है। इसकी व्याख्या हम अगले लेख में करेंगे।

—::o::—

आशा और निराशा

(श्री ब्र० सत्यकाम जी, उपस्नातक, गुरुकुल कांगड़ी)

कहीं न बुझ जाए ये प्यास

प्रेमी आस न पूरी करता, नाही करत निरास ॥

तृषित पपीहे को घन निष्ठुर, कितना ही है तरसाता ।
एक बूँद भर वारि दान कर, नव आशा है भर जाता ॥
दे जाता है क्षणिकाश्वास । कहीं न० ॥

ना तो ओझल ही होता है, ना मिलाप ही है करता ।
इसी प्रेम की तनातनी में, दिल मेरा है तन जाता ॥
भर जाता है नूतन आस । कहीं न० ॥

प्रभु अपने प्यारों से छिप कर, रह रह कर है तड़पाता ।
कभी एक झाँकी दिखला कर, प्रेम दिवाना कर जाता ॥
हो जाता स्वर्गीय हुलास । कहीं न० ॥

"हिन्दू महिला"

(लेखक श्री चन्द्रगुप्त जी उपस्नातक)

(१)

बनारस.
६ श्रावण १९६१

भाई शिवचरण,

जीतेरहो. तुम्हारा पत्र पाकर मुझे बड़ा शोक हुआ । जब तुमने बी. ए. पास किया था तभी मुझे इस बात का सन्देह होगया था कि तुम हमारे कुल की मर्यादा में बट्टा लगाने का यत्न करोगे । सावित्री को जब तुमने पढ़ाना आरम्भ किया था उस समय मुझे शक होगया था कि तुम में समाजीपना घुस रहा है । भला याद तो करो हमारे अठारह लकड़दादाओं तक में से किसी ने भी अपनी लड़कियों को पढ़ाया था । उस समय मैंने कुछ नहीं कहा था, मैंने इस बात की उपेक्षा कर दी थी । अब देखता हूं कि तुम हमारे कुल का नाम डुबोने

का निश्चय कर चुके हो। सावित्री की उमर १४ बरस की होगई अभी तक तुमने उस के विवाह की कोई चिन्ता नहीं की। याद है, हमारा और तुम्हारा विवाह किस उमर में हुआ था। खुद पिता जी अपने विवाह की जो कहानी सुनाया करते थे क्या वह तुम्हें याद नहीं रही ? उनके विवाह में एक आदमी ने उन्हें गोद में बिठला कर विवाह की सारी क्रियाएँ की थीं।

भाई, पिता जी तुम्हें बड़ा प्यार करते थे। वे मरते दम तक राम का नाम न लेकर तुम्हारा नाम ही जपते रहे थे। तुम्हारे इस काम से उनकी स्वर्गीय आत्मा को कितना कष्ट होगा। ऐसा काम करो जिस से कि उनके नाम पर कलंक न लगे।

मैंने सुना है कि तुम आर्यसमाजियों से बहुत मिलते रहते हो; तुम्हें घर से इतनी दूर इसलिये नहीं भेजा गया था। इन लोगों से बच कर रहो, नहीं तो ये लोग तुम्हें कहीं का न छोड़ेंगे।

तुम्हारा शुभचिन्तक—
रामदीन

(२)

बनारस
२७ श्रावण १९९१

शिवचरण,

छिः, पत्र लिखते लाज न आई! शर्म हो तो चुल्लू भर पानी में डूब मरो! लिखते हो, सावित्री की इच्छा नहीं है। अपने विवाह के समय का निर्णय करने वाली वह कौन होती है! भला कभी लड़कियों की मर्ज़ी का भी ख्याल किया जाता है ? तुम पढ़ लिख कर भी इतने बेवकूफ़ बने रहे।

तुम्हारे इस पत्र ने मेरे घाव पर नमक का काम किया। तुम मेरे सगे भाई हो, इसी से कुछ नहीं कहा। मैं तुम्हारा भला चाहता हूं। कोई और होता तो उसे बिरादरी से निकलवा कर ही छोड़ता ?

ख्याल तो करो, मर खप कर मैंने तुम्हें बी. ए. पास करवाया। अब भी घर से इतनी दूर अमृतसर में ७०) रु० महीना पर क्लार्की का काम कर रहे हो। किस हिम्मत पर तुम बिरादरी रूपी काले नाग से छेड़छाड़ करने लगे हो। याद रक्खो, हम सब रिश्तेदार मिल कर सारी शेखी निकाल देंगे।

भाई, मेरा कहा मानो; कुल की लाज रक्खो। मैंने बड़े यत्न से सावित्री के लिए एक वर भी चुन लिया था। वह बड़े धनी का लड़का है। खूबसूरत है। तन्दुरुस्त है। उस के बाप से ब्याह की बात चीत पक्की कर भी लेता; परन्तु तुम्हारा यह पत्र आ पहुंचा।

भाई, तुम्हारे भले की कहता हूं। बड़ा अच्छा मौका है; इसे छोड़ो मत।

तुम्हारा—
रामदीन

(३)

अमृतसर
२ भाद्रपद १९६१

मान्यवर भाई जी !

प्रणाम। आपका कृपापत्र प्राप्त हुआ। मैं आपका वही प्यारा शिवचरण हूं, आप मुझ पर इतने नाराज़ क्यों होगये। बचपन में अनिच्छा से किये गये विवाहों की बुराइयां देख कर मैं चाहता था कि अपनी प्यारी इकलौती बेटी सावित्री को इस गढ़े से बचाऊं। आप विश्वास कीजिए, मैं आर्य समाजी नहीं हुआ।

आप का पत्र पढ़ कर मुझे बहुत दुःख हुआ। मैं रात भर रोता रहा। दो दिन से एक दाना भी मुंह में नहीं डाला। सावित्री की माता भी प्रायः मुझे उस के विवाह के लिए तंग किया करती थी; मुझे समझ नहीं आता कि वह अपनी एक मात्र सन्तान को, इतना प्यार करते हुए भी अपने से अलग क्यों करना चाहती है। आप का पत्र सुनकर वह शेरनी बन उठी। उसने मेरे घावों पर नमक छिड़का। मेरे पूज्य भाई जी, मुझे क्षमा कीजिए। मैं आप का छोटा भाई हूं। आप की आज्ञा नहीं टाल सकता। सावित्री को आप अपनी पुत्री समझिए।

मेरी उद्धतता को क्षमा कीजिए। पत्र का उत्तर शीघ्र दीजिएगा, तभी मुझे शान्ति प्राप्त होगी।

आपका छोटा भाई
शिवचरण

(४)

चुनारगढ़
१३-भाद्रपद १९६१

लाला रामदीन जी,

सीताराम। आपका भेजा हुआ नाई कल रात से यहां पहुंचा हुआ है। उसने सावित्री की जन्मपत्री हमारे पुरोहित को दिखाई थी। सावित्री और महेश दोनों की जन्म पत्रियां खूब अनुकूल हैं, यह खुशी की बात है, दोनों के लक्षण अच्छे हैं। परन्तु पुरोहित जी ने बताया है कि महेश के भाग्य विशेष कर बहुत अच्छे हैं।

मेरा महेश बड़ा ज़हीन है, तन्दुरुस्त है, खूबसूरत है। वह इस वर्ष एन्ट्रैन्स की परीक्षा देगा। उस की उमर २० बरस की है। वह मेरा सब से छोटा लड़का है। आप की सावित्री भी १४ बरस की हो चुकी है। मुझे आश्चर्य है कि अब तक आपने उसका विवाह क्यों नहीं किया था; खैर, हम आप के कुल से नाता जोड़ने को तैयार हैं। केवल एक बात है, ऐसे उत्तम वर का दाम कम नहीं होता। केवल इसी बात पर ही आप के नाई में और हम में मत भेद है।

आपका
भार्गवलाल

(५)

बनारस
२० भाद्रपद १९९१

प्यारे भाई शिवचरण,

जीते रहो। तुम्हें यह जान कर बड़ी खुशी होगी कि सावित्री के लिये, मैंने एक बड़े उत्तम वर को तैयार कर लिया है। वह चुनारगढ़ में रहने वाले महाजन भार्गवलाल का सब से छोटा लड़का है। उस की उमर २० बरस की है। उस का नाम महेश है। महेश देखने में खूब अच्छा है। वह स्कूल की दसवीं जमात मे पढ़ रहा है। भार्गवलाल अपनी जात है, खूब धनी है।

भार्गवलाल दहेज़ के लिये ३ हज़ार रुपया मांगता था। बहुत कह सुन कर मैंने उसे १ हज़ार के अन्दर ही तैयार कर लिया है। इस के लिये मुझे बहुत कोशिश करनी पड़ी।

यह विवाह जितनी जल्दी हो सके हो जाना चाहिये। फिर न जाने क्या हो जाय। मेरी सम्मति में १५ कार्तिक तक यह शुभ कार्य अवश्य हो जाना चाहिये। सारे रिश्तेदारों को निमन्त्रण मैं स्वयं दूंगा। बरात बनारस से ही चलेगी। पत्र का उत्तर बहुत जल्दी दो।

तुम्हारा भाई—रामदीन

(६)

चुनारगढ़
१० आश्विन १९९१,

लाला शिवचरण,

मेरा आप से कोई नाता नहीं है। आप आज से पहले मेरा नाम भी न जानते होंगे। फिर भी मैं आज आप को यह घनिष्टता का पत्र लिखने लगा हूं। मैं चाहता हूं कि आप को एक बात से सावधान करदूं।

मेरा नाम सुखलाल है। मैं चुनारगढ़ में रहता हूं मेरा घर लाला भार्गवलाल के पड़ोस में है। मैं उस लाला को बचपन से जानता हूं। भार्गवलाल शहर भर में मशहूर कंजूस है। उसने आज तक किसी को किसी काम के लिये एक पाई तक भी दान नहीं दी। महेश उसका सब से छोटा लड़का है। मुझे मालूम हुआ है कि आप महेश से अपनी कन्या का विवाह करने लगे हैं। मैंने सुना है कि एक मास बाद-आगामी १५ कार्तिक को-यह विवाह हो भी जायगा। दहेज़ के लिये भार्गवलाल ने आपसे ३ हज़ार रुपया मांगा था; फिर वह इतनी जल्दी सात आठ सौ रुपयों पर ही सन्तुष्ट क्यों हो गया। क्या आप इसका रहस्य जानते हैं?

महेश बचपन से बीमार है। इस का स्वभाव बहुत चिड़चिड़ा है। बचपन से उसे सूखी खांसी है। अक्सर उसकी छाती में दर्द हो जाया करती है। मुझे यकीन है कि कुछ दिन में उसे तपेदिक हो जायगा। भार्गवलाल स्वयं शराबी है, बद्चलन है। अगर विश्वास न हो तो इस बात की स्वयं खोज कर लीजिएगा।

आपका शुभचिन्तक—
सुखलाल

(७)

बनारस

शिवचरण, १२ आश्विन १९६१

मेरी इतनी हतक आजतक कभी न हुई थी जितनी कि इस समय तुम करवाने लगे हो। कोई दूसरा होता तो उस की जान लेकर छोड़ता।

तुम निरे बेवकूफ़ हो। एक अनजान बच्चा भी तुम्हें बहका सकता है। सुखलाल भार्गवलाल का दुश्मन है, फिर भी तुम उस की बहक में आगये। क्या मेरी अपेक्षा सुखलाल पर तुम्हें अधिक यक़ीन है? क्या मैं तुम्हारी बुराई करना चाहता था? महेश अच्छा भला है, अगर उसे खांसी रही है तो क्या हुआ। भार्गवलाल थोड़ी बहुत शराब अवश्य पीता है, परन्तु हमारे समाज में बिल्कुल शराब न पीने वाले कितने हैं? सिर्फ़ इतनी बात पर ही केवल २५ दिन पूर्व, तुम इस विवाह को तोड़ने पर तैयार हो गये! देखूं अब तुम्हारी सावित्री को कौन लेता है।

आस पास के सब पड़ौसी और रिश्तेदार विवाह की प्रतीक्षा कर रहे हैं, उन सब के सामने इस बुढ़ापे में मेरी नाक कटाओगे?

अब भी मौका है। तुम्हारा वह पत्र अभी तक मैंने किसी को नहीं दिखाया। तार द्वारा जवाब दो। नहीं तो इस अपमान का बदला अवश्य लूंगा। शर्म चाहिए!

रामदीन

(८)

टैलीग्राम

सेवा में— अमृतसर

लालारामदीन २० आश्विन १९६१

७. बनारस

सावित्री का विवाह स्थगित नहीं हुवा। वह १५ कार्तिक को ही होगा।

शिवचरण

× × × ×

(९)

टैलीग्राम

सेवा में:— चुनारगढ़

लाला शिवचरण १ वैशाख १९६२,

११. अमृतसर

आज प्रातः काल अचानक आग लग जाने से सावित्री का देहान्त हो गया है। जल्दी आइये।

भार्गवलाल

(१०)

पूज्य भ्राता जी,

अमृतसर
५ वैशाख १९९२,

प्रणाम

दिल टूट गया है। वह फिर कभी जुड़ नहीं सकेगा। अपनी प्यारी कन्या को खोया है; आप को भी खोने लगा हूं। हम सब राक्षस हैं। हम लोग अपने से अधिक अनुभवशील प्राणियों को पैसों पर बेचा करते हैं। आप हमारे इस राक्षसी व्यापार के दलाल हैं।

मेरी एक मात्र सन्तान सावित्री का देहावसान हो गया है। उस ने जान बूझ कर मृत्यु का आलिङ्गन किया है। उसे मैं संसार में सब से अधिक प्यार किया करता था। वह चली गई, इस का मुझे इतना शोक नहीं है; शोक यह है कि मेरे अपराध से वह इस कार्य के लिये विवश हुई। उफ़! मैंने अपने हाथों से अपनी प्यारी कन्या का खून किया है। आप सुन कर कह देंगे 'भाग्य का खेल है'। परन्तु नहीं, यह खेल हमारा है। हम नृशंस इस नाटक के सूत्रधार हैं। हमारा हत्यारा समाज इस भयंकर नाटक का लेखक है। अपने हृदय में झांक कर देखिये, उस में आप को सावित्री के खून का दाग़ अवश्य दिखाई देगा। अब भी बिरादरी से निकालने की धमकियां दीजिए; अब भी अपनी नाक बचाने की फ़िकर कीजिए; अब भी आर्यसमाजियों को गालियां देकर अपने हृदय को सन्तुष्ट कीजिये। आप की बिरादरी आप को ही मुबारिक हो!

भाई जी, ज़रा अधिक उत्तेजित हो गया हूं, इस के लिये क्षमा कीजिए। परन्तु ख्याल कीजिए, मैंने अपनी आंखों से अपनी प्यारी सावित्री का अधजला शरीर देखा है! मैंने अपनी आंखों से हिन्दू समाज की नृशंसता का जीवित स्वरूप देखा है!

एक वैशाख की सायंकाल को तार पाकर उसी समय मैं चुनारगढ़ की ओर रवाना हुवा। दो वैशाख की प्रातः काल को मैं चुनारगढ़ पहुंच गया। मेरी सावित्री ऊपर की मंजिल में पड़ी हुई थी। पास ही एक लैम्प पड़ा था। मैंने देखा, सावित्री की आंखें ऊपर की ओर थीं। मैं देखते ही बेहोश होकर गिर पड़ा। केवल छः मास पूर्व ही टूटे हृदय से मैंने उसे अपने घर से विदा किया था!

पुलिस को लिखा दिया है कि अचानक लैम्प फट जाने से सावित्री का देहान्त हुआ है। परन्तु उसके हाथ का लिखा हुआ एक पत्र मुझे प्राप्त हुआ है, उसके द्वारा मुझे सच्चे समाचार का पता लगा है। यह पत्र मुझे भार्गवलाल ने हो दिया है, क्योंकि इस पत्र में सावित्री ने सब से बड़ी यही अभिलाषा प्रकट की थी कि जिस किसी प्रकार भी महेश को बचा लिया जावे।

भाई जी, वह पत्र आज भी मेरे पास है। हम लोग कितने नृशंस हैं यह बताने के लिए उस पत्र का कुछ अंश यहां उद्धृत करता हूं—

"श्री पूज्य पिता जी,

आप से सदा के लिए विदा होने लगी हूं। इस समय मुझे सब से बड़ा शोक

यही है कि अन्तिम समय आप का दर्शन नहीं कर सकी।.........आप सोचेंगे कि ऐसी कौन सी बात थी जिस से कि छः मास के अन्दर ही मुझे आत्मघात करने के लिये बाधित होना पड़ा।.........पिता जी, अगर आपने मुझे यहां भेजना ही था तो १४ बरस तक इतने लाड़ प्यार से पाला ही क्यों था! अगर मुझे आप बचपन से ही कोड़े मारा करते, गालियां दिया करते तो शायद यह दिन न देखना पड़ता।.........आपने मुझे सिखाया था कि पति ही स्त्रियों का देवता होता है; मैं इसी बात की धारणा किये हुवे थी। परन्तु व्यावहारिक जीवन में आकर बहुत यत्न करने पर भी मैं इस बात को समझ नहीं सकी।.........मैंने प्यार किया, पति देवता आग बबूला हो गए। अपने घर में मैंने कभी अपने हाथ से कोई चीज़ नहीं बनाई थी, यहां भोजन ठीक नहीं पक सका, मार पड़ी। अगर जन्म भर के लिये मुझे दासी बनाना था तो शुरु से ही दासियों का सा व्यवहार करना चाहिए था।...........आज वैशाखी का पवित्र दिन है; सब लोग मजे कर रहे होंगे। इस घर में भी लोग आनन्द मना रहे हैं। प्रातःकाल से मैं अभागिन अपने अतीत जीवन को ही याद कर रही हूं। ....पिता जी, अपने जीवन में मैंने आप को बहुत दुःख दिया है, बहुत वार रुष्ट किया है। आशा है कि आप मुझ अभागिनी को क्षमा करेंगे। ....माता जी को सान्त्वना दीजिएगा।

आपकी अभागिनी कन्या—

सावित्री"

बस भाई जी, इस पत्र के साथ ही मैं आप से सदा के लिए विदाई लेता हूं।

आपका अभागा भाई—

शिवचरण

—o::o—

दक्षिण भारत में दलितोद्धार की विकट समस्या

(लेखक पं० धर्मदेव जी सिद्धान्तालङ्कार, मंगलौर, मद्रासप्रान्त)

अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने का कार्य धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक सब दृष्टियों से अत्यावश्यक है। देश के मान्य राजनैतिक नेता महात्मा गान्धी ने स्पष्ट शब्दों में घोषणा की है कि अस्पृश्यता दूर किये बिना हम स्वराज्य प्राप्त करने के योग्य नहीं हो सकते। उत्तरीय भारत में गत ३०,३५ वर्षों से अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के उद्धार के लिये यत्न हो रहा है और उस में बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त हुई है। पर जब उत्तर भारत के अस्पृश्य भाइयों की अवस्था का मद्रास प्रान्त के दलित भाइयों की हालत से मुकाबला किया जाता है तब यही कहना पड़ता है कि उत्तर भारत में दलितोद्धार की समस्या कुछ भी विकट नहीं है। उधर के 'अस्पृश्य' दक्षिण के अस्पृश्यों से सैंकड़ों गुणा उन्नत स्थिति में हैं। सामाजिक अत्याचारों का उन्हें

इधर से दसवां हिस्सा भी शिकार नहीं होना पड़ता। उत्तर भारत के अशिक्षित अथवा मामूली पढ़े, लिखे, थोड़ी बहुत समझ रखने वाले हिन्दू लोगों में भी दलित भाइयों के प्रति इतना घृणा का भाव नहीं पाया जाता जितना इधर के सुशिक्षित अंग्रेज़ी के धुरन्धर विद्वान् वकीलों और जजों तक के अन्दर देखा जाता है।

अस्पृश्यता के रोग की उत्पत्ति जन्म सिद्ध जातिभेद के गर्भ से होती है। जातिभेद का भूत दक्षिण के लोगों के दिमाग पर बुरी तरह से सवार है। ब्राह्मणों के घरों में अब्राह्मणों के लिये अतिथि बनना अपनी जान बूझ कर हतक कराना है। अब्राह्मण कितना भी विद्वान् और सदाचारी क्यों न हो उसे ब्राह्मणम्मन्य के घर में भोजन करने के लिये एक तो चौके से बाहर अलग बैठना होगा और भोजन के पश्चात् स्वयं अपने हाथ से पत्ते को दूर फेंक कर उस सारे स्थान को साफ़ करना होगा। जिस के यहां अतिथि हो उस से भिन्न जाति उपजाति के ब्राह्मणों को भी ऐसे ही करना होगा। ब्राह्मण प्रत्येक व्यवहार में उस के प्रति कुछ न्यूनता सूचक भाव दिखाएंगे। इस जातिभेद के भूत ने ऊंची जातियों के दिमागों पर तो सवारी देर से कर ही रखी थी, उन नीच जातियों के अन्दर भी जिन्हें ब्राह्मणादि अस्पृश्य या अनुपगन्तव्य के नाम से पुकारते और जिनके स्पर्श और दर्शन से भी वे अपने को भ्रष्ट मानते हैं यह भूत घर किये हुए हैं। स्वयं इन अस्पृश्यों के अन्दर इस एक ही दक्षिण कर्णाटक प्रान्त में लगभग २० जातियां हैं जिन के परस्पर मिश्रभोजन विवाहादि सम्बन्ध नहीं हो सकते। यहां तक कि उच्च जाति के अछूत, नीच जाति के अछूतों को वस्त्र धारण किये हुए देख कर उन्हें पीटते हैं। नीच जाति की अछूत स्त्रियों को अपनी छाती तक को वस्त्र से ढांकने की आज्ञा नहीं होती। अस्पृश्य भाइयों के लिये ऐसी पाठशाला भी नहीं खोली जा सकती जिस में सब अस्पृश्य कहलाने वाली जातियों के बालक निःसंकोच इकट्ठे शिक्षा पा सकें क्योंकि प्रायः देखा गया है कि उच्च जाति के अस्पृश्य बालकों की पाठशाला में दो चार भी नीच अस्पृश्य जातियों के बालक प्रविष्ट करा दिये जाएं तो अगले दिन ही हड़ताल सी हो जाती है। दक्षिण में दलितोद्धार के कार्य में यह एक बड़ी कठिनाई है जिसे शनैः २ लोगों को प्रेमपूर्वक शिक्षित करते हुए दूर करने की आवश्यकता है।

सफ़ाई का नितान्त अभाव, मद्यपान और मुर्दे जानवरों, यहां तक कि बैलों और गौओं तक का मांस खाने का बहुत सी अस्पृश्य कहलाने वाली जातियों में अत्यन्त प्रचार है। १०,१५ दिन तक स्नान न करना तो इन लोगों के अन्दर मामूली बात समझी जाती है। मद्यपान के दुर्व्यसन ने हज़ारों परिवारों को उजाड़ दिया है तो भी ये लोग उस को छोड़ना असम्भव सा मान बैठे हैं क्योंकि हज़ारों वर्षों से इनके अन्दर यह व्यसन विरासत में चलता आया है। बैल और गाय के मांस का कम से कम ऊंची अछूत जातियों के लोग सेवन नहीं करते पर

उन्हों ने भी और किसी जानवर के मांस को नहीं छोड़ा। इन व्यसनों के कारण उनकी आकृति कुछ ऐसी बन गई है कि उसे देखते हुए (कुछ अपवादों के अतिरिक्त) पहचाना जा सकता है। उन के शरीर से ही प्रायः कुछ ऐसा गन्ध आती है जिस के कारण सभ्य समाज में उन्हें बैठने की आज्ञा देना कठिन है। इस कारण उच्च जातिया के हिन्दुओं ने इन भाइयों के साथ जो घृणापूर्ण व्यवहार कर रक्खा है उस को सर्वथा निमू ल नहीं कह सकते। उस व्यवहार को कराने के लिये इन के दुर्व्यसन भी जिम्मेवार हैं। दलितोद्धार की यह समस्या इन भाइयों के अज्ञान तथा दुर्व्यसनों के कारण इधर जहां इतनी विकट बनी हुई है वहां गरीबी के कारण यह और भी विकट रूप धारण किये हुए है। इन लोगों के पास अपनी ज़मीन बिल्कुल ही नहीं। जब मालिक के मन में आया इन्हें खेत और ज़मीन से अलग कर दिया। इसी गरीबी से ईसाई लोग फ़ायदा उठाते हैं। पाठकों को यह जान कर आश्चर्य और खेद होगा कि गत १० वर्षों में दक्षिण कर्णाटक, बल्लारी और कैनानूर इन तीन ज़िलों में हिन्दू अस्पृश्य लोगों की संख्या ३२ प्रतिशतक घट गई है। कारण सहज में अनुमान किया जा सकता है। ईसाई उन्हें हड़प कर गये हैं। इस दक्षिण कर्णाटक ज़िले के ही कुछ भागों में गत १४ वर्षों के अन्दर १६ हज़ार के लगभग अस्पृश्य भाइयों को जिन्होंने ईसा मूसा का कभी नाम तक नहीं सुना, नाम मात्र ईसाई बना कर ईसाइयों की संख्या में वृद्धि करने का यत्न किया गया। पादरी गांवों में गए। बेचारे गरीब लोगों को-जिन्हें अच्छे वस्त्र क्या होते हैं इस बात का पता तक नहीं होता-उन्होंने एक २ कुड़ता या टोपी दे दी, शराब पीने के लिए दो चार आने हर एक को दे दिए, उन के साथ ही पंक्ति में बैठ कर शराब पी ली। बस, इस व्यवहार से प्रभावित होकर १०, १२, १६, २० हज़ार तक ईसाई हो गए। उन्हें यह प्रलोभन भी दिया जाता है कि अब तुम बादशाह की जाति के हो गए इसलिए जो रोक टोक करे उसे बादशाह जेल में डाल देंगे। हमारे हिन्दू भाइयों की मूर्खता भी कमाल की है कि चोटी कटा कर गोमांस भक्षक बन कर जब हनिया और तनिया के स्थान में यही लोग आदम, सोज़ा, मुलील, जोन नाम रख कर आते हैं तो सब किसी के घर जाने, हाथ मिलाने और कुंओं से पानी भरने की उन्हें खुली छुट्टी मिल जाती है। ऐसो अवस्था में यदि सामाजिक स्थिति को उन्नत करने के लिए ये लोग गरीबी को दूर करने में थोड़ी बहुत सहायता देने वाले ईसाई मत की शरण में जाकर अपनी अस्पृश्यता दूर कर लें तो इस में इन का क्या दोष हो सकता है। इस पाप का टीका उच्च जाति के लोगों के माथे पर ही लगना चाहिये।

दक्षिण भारत में ऊपर दिये हुए कारणों से दलितोद्धार की समस्या यद्यपि उत्तर भारत की अपेक्षा अत्यधिक विकट है तथापि यह अस्पृश्यता की

बीमारी सर्वथा असाध्य नहीं । सच्ची बात तो यह है कि इन में से अधिकतर लोग नाम मात्र ही मनुष्य हैं, गुणों और बुद्धि की दृष्टि से वे अभी तक सर्वथा पशु समान हैं। उन्हें हम धर्म की बिल्कुल ही मामूली बातों को छोड़ कर अभी कुछ नहीं सिखा सकते। निरन्तर प्रचार से और अपनी ही आधीनता से उन्हें उपनिवेशों के अन्दर रख कर मद्यपानादि व्यसनों को दूर किया जा सकता है। बालकों को साहित्य सम्बन्धी शिक्षा देने से बहुत कम लाभ है। उन की शिक्षा में कृषि, तखानी, कातने, बुनने, रंगने इत्यादि के व्यवसायों को मुख्यता देनी चाहिये। जब तक उन्हें इस योग्य नहीं कर दिया जाए कि वे अपने तथा परिवार के गुज़ारे के लिए पर्याप्त कमा सकें तब तक उन का उद्धार असम्भव है । पाठशालाओं के साथ आश्रमों का होना अत्यावश्यक है। उन के बिना शुद्ध आहार, व्यवहार का अभ्यास उन्हें नहीं कराया जा सकता। स्कूल मे पढ़ा कर यदि बालकों को भोजनादि के लिये घर भेजा जाए तो मद्यपान अभक्ष्यभक्षण के व्यसन उन से छुड़ाने असम्भव हैं। एक ओर जहां इस तरह उन कारणों को दूर करने का निरन्तर यत्न करना पड़ेगा जिन के सबब ये लोग अस्पृश्य समझे जाते हैं वहां दूसरी ओर उच्च जाति के लोगों को उदारता और प्रीतिपूर्वक इन के साथ वर्ताव करने तथा अस्पृश्यता के कलंक को दूर करने की मौखिक तथा लिखित प्रचार द्वारा प्रेरणा करनी होगी। ऐसा करने पर यह दलितोद्धार का पवित्र कार्य योग्य रीति से हो सकेगा। मैंने इसलिए यह लेख लिखा है कि हमारे स्नातक भाई अधिक संख्या में इस पवित्र कार्य में सहयोग दें। यह काम दो चार वर्षों में होने वाला नहीं है। यह काम सच कहा जाय तो पशुओं को मनुष्य बनाने का काम है जिस के लिये निरन्तर परिश्रम, दृढ संगठन और बहुत अधिक आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। पर इतना निश्चय है कि इस प्रकार गरीब लोगों की सेवा के द्वारा ही हम भगवान् की सेवा कर के अपने जीवन को धन्य तथा सफल बना सकते हैं।

---

* अलङ्कार *

(श्री हरि)

अलङ्कार ! हृत्तन्त्री का तव, तार मधुर झङ्कार करे ,
अहङ्कार को छोड़ विश्व में, विश्व प्रेम सञ्चार करे ;
कुल–कानन के कोकिल ! तेरी, कोमल कूक अनोखी हो ,
देश प्रेम की नीति रीति तव, भव्य भावना चोखी हो ॥ १ ॥

अलङ्कार भारत-भू के तुम, अलंकार बन सदा रहो ,
अपने नीति-रीति-रक्षण में, सुख से सकल प्रहार सहो ;
पुण्य हिमाचल के आंचल से, सत्य-स्रोत सरसाना है ,
प्राणि मात्र पर परम प्रेम से, प्रेमामृत बरसाना है ॥ २ ॥

बुध-जन-मानस-हंस ! धैर्य से, नीर क्षीर विलगाना है ,
पक्षपात को छोड़ प्रेम से, सत्य-मार्ग अपनाना है;
स्वार्थ-पंक में फंस कर नेक न, प्रिय परमार्थ भुलाना है ,
भारत के दासत्व पंक को, सभी प्रकार धुलाना है ॥ ३ ॥

समता क्षमता भव्य भाव की, पूजा नित करनी होगी ,
भक्ति-भाव से मातृ भूमि की, दु:ख दशा हरनी होगी ;
निज कर्तव्य कर्म में अनु-दिन, सभी व्यथा सहनी होगी ,
फिर भी निज गम्भीर भाव से,सत्य कथा कहनी होगी ॥ ४ ॥

कुल माता निज कर कमलों में आरति लेकर खड़ी हुई ,
तेरे प्रेम-प्रतीक्षा-पथ में, दुखियां अंखियां गड़ी हुई ;
स्वागत है शतवार, प्यार से, पुण्य-दर्श अब देना है ,
माता के मङ्गल-वचनों की, पुष्पाञ्जलि यह लेना है ॥ ५ ॥

सम्पादकीय

लेबर पार्टी

जब तक इंग्लैंड में लेबर पार्टी का ज़ोर न चलता था तब तक उस पार्टी के नेता संसार भर से धनियों के एकाधिपत्यजनित मद को चूर करने के लिए दांत पीसते रहे, शक्ति की आराधना करते हुए अपनी सत्व-हीनता पर बेबसी के कारण दिल में कुढ़ते रहे। उनका ध्येय था-धनियों की ऐंठको तोड़ना। उन का गुरुमन्त्र था-एकता तथा समानता। उन की उच्च आकांक्षा थी-मज़दूरों तथा ग़रीबों को अधिक से अधिक अधिकार देना। अभी तक दिल की दिल ही में रहती थी-काम करने का मौका हाथ न लगता था। बहुत देर निरन्तर लड़ने झगड़ने तथा प्रतीक्षा करने के बाद अन्त में राज्य की बागडोर लेबर पार्टी के हाथ में दी गई। बहुमत ने मज़दूर-नेता रैम्ज़े मैग्डौनल्ड के हाथ में पतवार देकर देश की नौका को विकट समस्याओं के विक्षुब्ध समुद्र से

बचा निकालने के लिये मांझी निर्धारित किया। धनियों से पीड़ित इंग्लैंड में मज़दूर दल प्रबल हो गया।

मज़दूर दल के कार्यभार को सं-भालते ही चारों तरफ़ आशाएं उमड़ पड़ीं। मज़दूरों के संसार में सब्ज़ बाग़ लहलहा उठे। भारत में स्वराज्य के भिखारियों ने भी सपने लेने शुरु किये। लेबर पार्टी से बड़ी २ आशाएं थीं-इस का मज़दूर दल के नेताओं को पूरा २ ज्ञान था। तदनुसार गत फ़र्वरी में भारत-मन्त्री लार्ड ओलिवर ने घोषणा निकाली जिस का अभिप्राय यह था कि भारत के भाग्य-विधाता भारत के अ-सन्तोष को दूर करने के लिये शीघ्र ही 'परस्पर-संवाद' का कोई उपाय निकालेंगे जिस के द्वारा भारत की शिकायतें दूर की जा सकेंगी। भारत में इस घोषणा को सुन कर कई परा-मर्श दिये गए। उदार दल ने प्रस्ताव किया कि इस कार्य के लिये एक क-मिशन बैठाया जाय, व्यवस्थापिका सभा में कहा गया कि 'गोल-मेज़-परिषद्' बैठाई जाय, कुछ एक ने कहा कि भारत के विचारों को सुनने के लिये हिन्दु-स्तान से डेप्यूटेशन बुलाए जांय। बहुत कुछ कहा गया, पर किया कुछ न गया। अभी तक वर्तमान शासन ने तीनों प-रामर्शों में से एक को भी नहीं अप-नाया। कमीशन तथा गोल-मेज़-परिषद् के प्रस्ताव तो रद्द हो ही चुके हैं; तीसरे प्रस्ताव के लिये भी मज़दूर सरकार की तरफ़ से कोई निमन्त्रण नहीं दिया गया। निजू तौर से इस समय देश के अनेक गण्य-मान्य नेता विलायत पहुंचे हुए हैं-दास बाबू भी जल्दी ही जहाज़ पर चढ़ जाएंगे-परन्तु लेबर पार्टी के लिये यह अत्यन्त लज्जा जनक है कि 'परस्पर संवाद तथा विचार परिवर्तन' के इस साधारण से समारम्भ के लिये भी वह खुले तौर से प्रेरणा नहीं कर सकी। मज़दूर दल का शासन अभी तक भारत के लिये अन्य शासनों की अपेक्षा अधिक हितकर नहीं सिद्ध हुआ। लेबर पार्टी के मैदान में आने से पूर्व भारत जहां था आज भी वहीं है। नये शासन पर जो आ-शाएं बांधी गईं थीं उन की दृष्टि से तो मज़दूर दल सर्वथा असफल सिद्ध हुआ है। यदि अपने शासन-काल में मज़दूर दल भारत का सन्तोष न कर सका तो इसे हम मानव-प्रकृति के स्वभाव सिद्ध स्वार्थ पर बालबोधिनी टीका का नाम देंगे। उस समय स्वराज्य की भीख मांगने वालों की आंखें स्वयं खुल जाएंगी।

गान्धी-नेहरू-संग्राम

मौ० मुहम्मद अली लखनऊ में जनता के सन्मुख घोषणा देते हुए कह बैठे-'गान्धी तथा नेहरू में से किसी एक को नेता चुन लो'। पं० मोतीलाल नेहरू ने उक्त कथन को दृष्टि में रखते हुए पूना में महात्मा जी के नाम खुला चैलेञ्ज उद्घोषित कर दिया। दो साल पहले जो बात सोची भी न जा सकती थी, वह हो गई। आज हम गान्धी-नेहरू-संग्राम का तमाशा देख रहे हैं। यह क्यों?

हमारी सम्मति में इस फूट का कारण

सिद्धान्तों का छूट जाना तथा व्यक्तियों का सम्मुख आ जाना है। अहमदाबाद में स्वराज्यवादियों को कांग्रेस से अलग करने का भरसक यत्न किया गया। जिन सिद्धान्तों पर कांग्रेस को चलाया जाना है उन की परख न कर व्यक्तियों को सामने रखा गया। महात्मा जी ने देश की पर्याप्त संख्या को अपने साथ न देख कर अपने प्रोग्राम की पूरी पूरी परीक्षा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया। अभी तक अहिंसा, चर्खे और खद्दर पर कोई खुला विवाद नहीं हुआ। महात्मा जी ने भी इन पर अपने पक्के विश्वास को प्रकट करने के अतिरिक्त अन्य क्या किया है? इसी कारण जिन्हें महात्मा जी की व्यक्ति पर अटल श्रद्धा है उन के लिये उन का प्रोग्राम भी वेद-वाक्य है, जिन के लिये महात्मा जी निर्भ्रान्त नहीं हैं वे पं० मोतीलाल की तरह चैलेञ्ज देने के लिये भी तैयार हैं।

यह संग्राम चलना चाहिये। अपरिवर्तनवादी तथा स्वराज्यवादियों के मत भेद को गान्धी-नेहरू-संग्राम का रूप न देकर सिद्धान्त भेद का रूप देना चाहिये। मौ० मुहम्मद अली तथा महात्मा जी के अन्य भक्त इस विवाद में महात्मा जी के वैय्यक्तिक प्रभाव से लाभ न उठा कर देश को ठीक रास्ता दिखाने के उद्देश्य से यदि बहस करेंगे तो देश को बड़ा लाभ होगा। नेहरू तथा दास जैसे विचारशील राजनीतिज्ञों का महात्मा जी से मत-भेद हो जाना भी तो साधारण जनता को अखरता है। इस के समाधान के लिये महात्मा जी के नाम लेने मात्र से काम न चलेगा; इस के लिये तो महात्मा जी के मौलिक सिद्धान्तों पर खुला विवाद होना ही आवश्यक है।

हिंदू-मुस्लिम-समस्या

प्रज्वलित वस्तु को शान्त करने के दो उपाय हैं: या तो उस पर पानी डाल कर सर्वथा बुझा दिया जाय, या उसे जल कर राख होने दिया जाय। जलती आग को किसी साधन से दबा देने से वह सदा के लिये शान्त नहीं होती। समय मिलने पर वह चारों तरफ़ से फूट निकलती है। लपटें पहले से भी भयंकर स्वरूप धारण कर लेती हैं। दबाव के हटते ही प्रचण्ड अग्नि प्रदीप्त हो उठती है।

हिन्दू-मुस्लिम-समस्या भी एक प्रकार की आग है। अभी तक इस आग को बुझाने के लिये दबाने के सिद्धान्तों का ही आश्रय लिया गया है। सरकार की तरफ़ से गोली का डर दिखा कर, हिन्दू तथा मुसलमान, दोनों को शान्त रहने को कहा जाता है। यह दबाव है। जब तक बन्दूक तनी हुई है तब तक सब ठीक है। बन्दूक के हटते ही, हिन्दु तथा मुसलमान, दोनों के हाथ एक दूसरों की गर्दनों पर जा पहुंचने स्वाभाविक हैं। हम लोगों ने भी अभी तक इस समस्या का जो हल ढूंढा है वह दबाव का है। नीति की दृष्टि से पारस्परिक झगड़े छोड़ देना शान्ति के लिये प्रलोभन हो सकता है परन्तु यह प्रलोभन हिन्दु तथा मुसलमानों के वैमनस्य को दूर करने के लिए काफ़ी सिद्ध नहीं हुआ। पिछले दि-

नों के दिल्ली तथा नागपुर के उपद्रव हमारे कथन को पुष्ट करते हैं। जब तक हिन्दु तथा मुसल्मानों में से एक के दूसरे पर अत्याचार करने की थोड़ी से थोड़ी सम्भावना भी उपस्थित है तब तक इन दोनों के परस्पर प्रेम की नीति, दवाब के रूप में बनी रहेगी, उन के कलह को कभी दूर न कर सकेगी। इस नीति को चलाने के लिये अत्यन्त आवश्यक है कि एक समाज के दूसरे समाज पर अत्याचार कर सकने की सम्भावना को भी सर्वथा नष्ट कर दिया जाय। यह सम्भावना अभी तक नष्ट नहीं हुई। कहीं पर हिन्दुओं की प्रबलता के कारण मुसल्मानों पर अत्याचार किये जा सकते हैं, कहीं पर मुसल्मानों की प्रबलता के कारण हिन्दुओं पर अत्याचार किये जा सकते हैं। ये दोनों अवस्थाएं शान्ति के मार्ग में रुकावट डालती हैं।

सरकारी अथवा देशी दबाव, दोनों से शान्ति की स्थापना नहीं हो सकती। हमारी सम्मति में हिन्दु तथा मुसल्मानों में शान्ति स्थापित करने के लिये दो ही उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है; या तो अग्नि पर पानी डाल कर उसे बुझा दिया जाय, या उसे जल कर राख होने दिया जाय। अग्नि पर पानी डाल कर उसे बुझाने का अभिप्राय यही है कि दोनों समाजों के नेता अपने २ समाज में गुण्डपन के प्रति घृणा उत्पन्न कर दें। हिन्दुओं तथा मुसल्मानों में एक भाव उत्पन्न हो जाए। उनके दिल बदल जांए। वे समझ जांय कि स्त्रियों पर बलात्कार करना पाप है। निस्सहायों पर हाथ उठाना धर्म विरुद्ध है। हिन्दु या मुसल्मान होने से कोई अच्छा या बुरा नहीं हो सकता।

इस उपाय का अवलम्बन करने की सर्वत्र चर्चा हो रही है। महात्मा गान्धी इसी उपाय को कार्य में लाना चाहते हैं। मौ० महम्मद अली ने दिल्ली में रह कर इसी उपाय का प्रयोग करना है। यह उपाय सर्वोत्तम है, आदर्श है। यदि इस उपाय को सफलता पूर्वक व्यवहार में लाया जा सके तो देश का भला इस से बढ़ कर अन्य किसी उपाय द्वारा नहीं हो सकता। परन्तु यह उपाय कट्टरपन के प्रतिकूल है। कट्टर हिन्दू तथा मुसल्मानों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे धर्मान्धता को राजनैतिक नेताओं के कहने से छोड़ देंगे। जिन का धर्म ही जैसे वैसे मुसल्मान को भी महात्मा गान्धी से उच्च ठहराता हो वे मौलाना के कहने से भला कैसे मान सकते हैं कि हिन्दू रहते भी कोई अच्छा हो सकता है?

वर्तमान अवस्था में इस आग को शान्त करने का एक ही उपाय समझ पड़ता है और वह है आग के जल कर राख हो जाने का। यदि हिन्दू और मुसल्मान दोनों इतने संगठित हो जांय कि किसी एक के दूसरे पर अत्याचार करने की कोई भी सम्भावना न रहे तब दोनों समाज परस्पर मैत्री—भाव से रह सकते हैं। जीवन रहते हुए संग्राम को रोकने का तरीका तो बली होना ही है। निस्सन्देह ऐसे रुके हुए संग्राम में भी संग्राम की सम्भावना

सदा बनी रहेगी परन्तु यह सम्भावना अन्य सब अवस्थाओं से अच्छी होगी। इस अवस्था को लाने के लिए दोनों समाजों के संगठन की ज़रूरत है और इसी लिये 'हिन्दु-संगठन' तथा 'मुस्लिम-संगठन' दोनों देश के लिये अवश्यम्भावी तथा आवश्यक बुराइयां हैं, इन से घबराना नहीं चाहिये।

—०::०—

गुरुकुल-समाचार

(१) आजकल गुरुकुलमें ऋतु बहुत उत्तम है। न बहुत गर्मी है, न बहुत सर्दी। आकाश मेघों से घिरा रहता है। प्राकृतिक दृश्य बहुत सुन्दर हैं। चारों ओर हरियावल ही हरियावल दिखाई देती है। गङ्गा खूब चल रही है। एक दो वार बाढ़ भी आ चुकी है। गङ्गा के कारण प्राकृतिक सौन्दर्य बहुत बढ़ गया है।

(२) इस सत्र गुरुकुल में सभायें बहुत सफलता से चलीं। दो नवीन सभाओं का भी जन्म हुवा। सभी सभाओं ने अपने विशेष अधिवेशन किये। सम्मेलनों का बहुत समारोह रहा। विशेष अधिवेशनों में से कुछ उल्लेखनीय हैं। वाग्वर्द्धिनी सभा ने 'राउण्ड टेबल कान्फ्रेंस' 'अदालत' और 'आर्य-धर्म-सम्मेलन' किये। 'राउण्डटेबल-कान्फ्रेंस' और 'अदालत' बिलकुल नवीन कल्पनायें थीं। 'अदालत' में श्री मुख्याधिष्ठाता जी और श्री उपाचार्य जी ने भी भाग लिया। अधिकारियों का विद्यार्थियों की सभाओं में इस प्रकार भाग लेना कुल के लिये शुभ-चिन्ह है। आर्यसिद्धान्त सभा ने 'सर्वधर्म सम्मेलन' किया। साहित्यसञ्जीविनी सभा ने 'हिन्दी साहित्यसम्मेलन' 'कविता सम्मेलन' आदि किये। इसी प्रकार अन्य भी अनेक शिक्षाप्रद और मनोरञ्जक अधिवेशन होते रहे।

गुरुकुलीय पत्र पत्रिकाओं ने भी इस सत्र अच्छी उन्नति की है। प्रायः सभी पत्रिकायें नियम पूर्वक निकलती रहीं। महाविद्यालय की पत्रिकाओं की उन्नति को देख कर सभी पाठकों का चित्त प्रसन्न होता है।

(३) पुल के न रहने के कारण वर्षा ऋतु में प्रायः दर्शक बहुत नहीं आते। पर पिछले दिनों दर्शक निरन्तर आते रहे। दर्शकों में श्री घनश्यामदास बिडला का नाम उल्लेखनीय है। सेठ बिडला इस मास पधारे थे। आपने गुरुकुल का अच्छी प्रकार निरीक्षण किया। पढ़ाई आदि देख कर आप बहुत प्रसन्न हुवे और गुरुकुल से बहुत सन्तोष प्रगट किया।

(४) गर्मियों का सत्र समाप्ति पर है। दो मास के दीर्घावकाश प्रारम्भ होने वाले हैं। जब तक 'अलंकार' का यह अंक पाठकों के हाथ में पहुंचेगा, गुरुकुल खाली हो चुका होगा। सब उपाध्याय और अध्यापक छुट्टी पर चले जावेंगे। विद्यार्थी भी यात्रा की तैयारी कर रहे हैं। छोटे विद्यार्थियों को छुट्टियां बिताने के लिये देहरादून भेजा जायगा।

वहां एक बड़ी कोठी किराये पर ली हुई है। उस में पहिले गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ के विद्यार्थी अपनी छुट्टियां बिता भी चुके हैं। देहरादून के स्वास्थ्य-प्रद जलवायु से विद्यार्थियों को अवश्य ही लाभ होगा। बड़े विद्यार्थी यात्रा पर जायेंगे। वे काश्मीर आदि के लिये दल बना रहे हैं।

(५) दीर्घावकाश के समय गुरुकुल के लिये धन एकत्रित करने के लिये दो डेपुटेशन जायेंगे। प्रो० रामदेव जी और प्रो० सत्यव्रत जी का एक डेपुटेशन ईस्ट आफ्रीका में जायगा। प्रो० देवशर्मा जी और मास्टर गोपाल जी पञ्जाब और सिन्ध में चन्दे के लिये भ्रमण करेंगे। हमें पूर्ण आशा है कि आर्यजनता गुरुकुल के डेपुटेशनों का स्वागत करेगी, और चन्दा एकत्रित करने में पूर्णतया मदद देगी। इन के सिवाय अन्य उपाध्याय आदि भी चन्दा एकत्रित करेंगे।

इस वर्ष श्री दयानन्द जन्म शताब्दि का समारोह है, यदि शताब्दि के अन्य कार्यों के साथ साथ गुरुकुल को भी धन की दृष्टि से निश्चिन्त कर दिया जाय, तो बहुत उत्तम हो।

(६) गुरुकुल के शिक्षक वर्ग में इस मास भी वृद्धि हुई है। श्री पं० विद्यारत्न जी आयुर्वेदाचार्य आयुर्वेद के द्वितीय उपाध्याय निश्चित हुवे हैं। डा० पातीराम जी एल. ए. एस. चिकित्सक के पद पर नियुक्त हुवे हैं।

आयुर्वैदिक विभाग में इस समय दो वैद्य तथा दो डाक्टर हैं। इन के अतिरिक्त एक डाक्टर केवल चिकित्सा के काम पर हैं। सहायक चिकित्सक तथा कम्पौन्डर इन के अलावा हैं। इतने सज्जनों से आयुर्वेद के शिक्षा विभाग में पर्याप्त उन्नति होने की पूरी उम्मेद है और साथ ही आशा है कि अब कुल में इतने डाक्टरों, वैद्यों तथा सहायकों के रहते हुए किसी को चिकित्सा-सम्बन्धी सहायता के विषय में कोई शिकायत नहीं रहेगी।

(७) जब कभी देश को किसी प्रकार धन की आवश्यकता होती है, गुरुकुल कभी पीछे नहीं रहता। मलाबार और दक्षिण में बाढ़ आ जाने के कारण जो आकस्मिक और भयानक विपत्ति आई है, उस के लिये भी गुरुकुल ने सहायता पहुंचाई है। गुरुकुल के शिक्षकवर्ग तथा अन्य कर्मचारियों ने करीब ४००) चन्दा इकट्ठा किया है। ब्रह्मचारियों ने भी अपना घी दूध छोड़ कर तथा अन्य प्रकार से रुपया एकत्रित किया है। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि पहले भी अनेक बार गुरुकुल से इसी प्रकार धन एकत्रित कर भेजा जाता रहा है। इस आपत्ति के समय भी गुरुकुल से ६००) के करीब धन भेजा गया है। ब्रह्मचारियों का घी दूध छोड़ कर चन्दा देना सचमुच प्रशंसनीय और अनुकरणीय कार्य है। हम आशा करते हैं कि अन्य शिक्षणालय भी गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के इस आदर्श कार्य का अनुसरण करेंगे। हम ब्रह्मचारियों को इस त्याग के लिये हार्दिक बधाई देते हैं।

(८) विद्यार्थियों की षाण्मासिक परीक्षायें हो चुकी हैं। परिणाम पिछले वर्ष की अपेक्षा अच्छा निकला है। प-

रीक्षा में सर्वोत्तम अङ्क प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों के लिए अनेक पारितोषक रखे गए थे। सभा की समाप्ति एक सहभोज के साथ हुई। सहभोज में उपाध्याय और विद्यार्थी सम्मिलित थे।

(९) पढ़ाई की परीक्षा के साथ ही खेलों में भी परीक्षा हुई। तीन दिन तक निरन्तर खेलें होती रहीं। इन खेलों की यह विशेषता थी कि सभी खेलें स्वदेशी थीं। प्रतीत होता है कि विद्यार्थियों ने देसी खेलों में बहुत उत्साह से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया है। ऊंची कूद, लम्बी कूद, बांस के साथ कूद, कुश्ती, सिंह तैरी, लम्बी तैरी तकिया युद्ध, डुबकी, गतका, रस्सा, दौड़ आदि अनेक खेलें हुईं। सभी कुल निवासियों ने इन में उत्साह से भाग लिया। अनेक विद्यार्थियों ने इन खेलों में अपूर्व कुशलता प्रकट की। तैरी में ब्र० देवदत्त और कूद में ब्र० हरिवंश की निपुणता आश्चर्यजनक थी। खेलों में करीब १०० रुपये के पारितोषक भी रखे गए थे।

गुरुकुल की शाखायें

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ में दीर्घावकाश समाप्त हो गये हैं। पढ़ाइयां नियमपूर्वक प्रारम्भ हो गई हैं। सब विद्यार्थी और अध्यापक लौट आये हैं। आजकल इन्द्रप्रस्थ में ऋतु बहुत उत्तम है। विद्यार्थियों का स्वास्थ्य बहुत अच्छा है। पं० दीनदयालु जी शास्त्री सिद्धान्तालंकार त्यागपत्र दे कर चले गए हैं। उन का स्थान अभी रिक्त है। शास्त्री जी के चले जाने से गुरुकुल की जो हानि हुई है, वह शीघ्र दूर नहीं हो सकती।

अन्य गुरुकुलों में दीर्घावकाश प्रारम्भ हो गए हैं। विद्यार्थियों की षाण्मासिक परीक्षायें हो चुकी हैं। परिणाम सर्वत्र ही अच्छा निकला है। विद्यार्थियों को यात्राओं पर भेजा जायगा या नहीं, यह अभी निश्चित नहीं हुआ है।

गुरुकुल सूपा (गुजरात प्रान्त) का कार्य भी बड़े उत्साह से चल रहा है। बड़े हर्ष की बात यह है कि अभी तक जितने भी कार्य-कर्ता वहां काम कर रहे हैं, सब अवैतनिक हैं। यद्यपि अभी ब्रह्मचारियों की संख्या में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई तथापि इस का कारण प्रारम्भ में पूरे प्रबन्ध का न कर सकना ही है। उत्साही भाइयों के उद्योग से सारा सामान धीरे २ जुटता चला जा रहा है और आशा की जाती है कि शीघ्र ही यह गुरुकुल गुजरात प्रान्त के लिए आदर्श शिक्षणालय बन जायगा। हम इस गुरुकुल की हृदय से वृद्धि चाहते हैं तथा पं० ईश्वरदत्त जी विद्यालंकार को उन के सराहनीय उद्योग के कारण प्राप्त हुई कृतकार्यता के लिये बधाई देते हैं।

लुध्याना प्रान्त में रायकोट गुरुकुल को खुले कई साल हो चुके हैं। पहले यह गुरुकुल पाठशाला के रूप में था परन्तु अब उत्साही कार्य कर्ताओं के उद्योग से कांगड़ी गुरुकुल की शाखा बन चुका है। रायकोट गुरुकुल के प्राण श्री स्वामी गंगागिरि जी हैं। आप की आर्य समाज तथा शिक्षा प्रचार के साथ अपार लगन है।

सहयोगियों की सम्मतियां

'अलंकार' का सहयोगी पत्रों ने जो स्वागत किया है उस के लिए हम उन का धन्यवाद करते हैं। उन में से कुछ एक पत्रों की सम्मतियें इस प्रकार हैं:—

वैदिक-धर्म—'गुरुकुल कांगड़ी के स्नातकों ने इस मासिक का आरम्भ किया है, इतना कहने से ही इस की उच्चता का पता लग सकता है। मासिक का प्रथम अंक हमारे सामने है जिसे देखने से हम कह सकते हैं कि यह सचमुच आर्यों के लिये अलंकार ही है।'

प्रणवीर—'...आर्य-समाजियों और प्राच्य तथा प्राचीन विचारों के प्रेमियों को यह पत्र अवश्य अपनाना चाहिए...श्रावण के अंक में 'अहिंसा का सिद्धान्त' लेख मनन करने के योग्य है। 'अछूत' गल्प लेखक के होनहारपन को प्रकट करने वाली है। 'भौंरा' और 'सृष्टि चक्र के चक्कर' कवितायें कवित्व के उत्तम उदाहरण हैं।'

आर्य प्रतिनिधि सभा यू०पी० का मुख-पत्र 'आर्यमित्र':—

'लेख अन्वेषणापूर्ण और गम्भीर होते हैं। कविता भी खासी रहती हैं। आर्य समाज में ऐसे मासिक पत्र की बड़ी आवश्यकता थी। लक्षणों से जान पड़ता है कि पत्र चिरंजीवी हो कर अच्छी उन्नति करेगा।

इन के अतिरिक्त आर्य प्रतिनिधि सभा राजस्थान के मुख-पत्र **'आर्य-मार्तण्ड'** दिल्ली से प्रकाशित होने वाले दैनिक **'अर्जुन'** तथा मासिक **'ज्योति'** आदि पत्रों ने भी अलंकार की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। 'अलंकार' में हिन्दी-भाषा के स्थायी साहित्य में स्थिर स्थान पा सकने वाले लेखों तथा कविताओं का संग्रह रहता है, यह बात पाठक स्वयं जान चुके होंगे। कलेवर-वृद्धि का प्रश्न हमारे सन्मुख है परन्तु वह ग्राहकों के सहयोग के बिना हल होना कठिन है। यदि प्रत्येक ग्राहक कम से कम पांच नए ग्राहक बना कर भेज दे तो शीघ्र ही पृष्ठ-संख्या में वृद्धि की जा सकती है। आर्यभाषा चातुर्मास्य को मनाते हुए आज कल आर्य-भाषा के नये उत्साहियों के हाथ में 'अलंकार' वास्तविक अलंकार का काम कर सकता है।

इस प्रकरण में हम अपने स्नातक भाइयों का ध्यान विशेष रूप से इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं। यह पत्र आप ही का है। आप इसे अपना समझ कर क्या अगले अंक के प्रकाशित होने से पूर्व दस नए ग्राहक बना कर नहीं भेजेंगे?

प्रबन्धकर्ता

अलंकार

डा० गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर)

पं० सत्यव्रत प्रिन्टर और पब्लिशर के लिये गुरुकुल कांगड़ी-यन्त्रालय में छपा

वर्ष १ * अङ्क ६ Registered No. A 1340

पौष १९८१] [दिसम्बर १९२४

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

[स्नातक-मंडल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र]

मुख्य संपादक—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

* विषय-सूचि *

विदेश से ४) एक प्रति का मू० ।-) वार्षिक मूल्य ३)

॥ ओ३म् ॥

विज्ञापन दाताओं के नाम चिट्ठी

प्रिय महोदय,

आप को समाचार पत्रों द्वारा अथवा अपने किन्हीं इष्ट मित्रों द्वारा अवश्य ज्ञात हो चका होगा कि आर्यसामाजिक जगत् में 'अलंकार' मासिक पत्र ने बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त कर लिया है। यह पत्र प्रायः प्रत्येक आर्य भाई के घर में तो जाता ही है परन्तु आर्यसमाज के बाहर भी यह पत्र बहुत पसन्द किया जाता है क्योंकि इस के लेख हिन्दी में स्थिर-साहित्य को उत्पन्न कर रहे हैं। ऐसे पत्र में विज्ञापन देने से आप को जो लाभ पहुँच सकता है उसे आप स्वयं सोच सकते हैं। 'अलंकार' का साइज २०×२६ है और उस में विज्ञापन की दर निम्न लिखित हैं:—

	एक पृष्ठ	आधा पृष्ठ	चौथाई पृष्ठ
१ वर्ष के लिये	६) मास	३॥) मास	२) मास
६ मास के लिये	७) मास	४) मास	२।) मास
३ मास के लिते	८) मास	४॥) मास	२॥) मास
१ मास के लिये	६) मास	५॥) मास	३।) मास

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जाता है

इस के अतिरिक्त अब जन्म शताब्दी के अवसर पर 'अलंकार' का शताब्दी अंक बहुत भारी संख्या में प्रकाशित होगा। इस लिये आप को विज्ञापन के लिये इस से अच्छा अवसर नहीं मिल सकता। इस अवसर का लाभ उठाइये और लौटती डाक से अपना विज्ञापन भेज दीजिये। समय बहुत थोड़ा रह गया है। अब कुछ भी देर करने से आप को निराश होना पड़ेगा। निराशा से बचने का एक मात्र उपाय यही है कि आप अभी मनी आर्डर द्वारा शताब्दी अंक में अपना विज्ञापन छपवाने के लिये पेशगी रुपया रवाना कर दीजिये। शताब्दी अंक में विज्ञापनों के निम्न दाम लिये जायंगे:—

शताब्दी अंक में विज्ञापन

एक पृष्ठ—१२)

आधा पृष्ठ—७)

चौथाई पृष्ठ—४॥)

मौका है! इसे मत चूकिये!!

आर्य्यसमाज का इतिहास

[लेखक-श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति]

राजपूताने में स्वामी जी का कार्य

आज हम आर्य्यसमाज के क्षेत्र में राजपूताने की क्यारी को ऊसर ही समझे बैठे हैं। हमारे विचार को कोई अनुचित भी नहीं कह सकता, परन्तु जब ऋषि दयानन्द के जीवन के अन्तिम भाग को ध्यान से पढ़ा जाय तब प्रतीत होता है कि वह राजपूताने को ही आर्य्यसमाज का चित्तौड़ गढ़ बनाना चाहते थे। थोड़े से समय में ऋषि को कामयाबी भी अद्भुत हुई थी, परन्तु दुःख है कि राजपूताने के अभेद्य दुर्ग में जो रास्ता ऋषि ने निकाला था, उस में घुसने वाला कोई न निकला। इस का यह अभिप्राय नहीं है कि पीछे से आर्य्य समाज के कोई योग्य विद्वान् रजवाड़े में गये ही नहीं, अवश्य गये, परन्तु दुःख है कि प्रायः अर्थी हो कर गये, गुरु बन कर नहीं। राजपूताने के कुलीन वीर एक अर्थी और एक गुरु में भेद कर सकते हैं। वे जानते हैं कि गुरु के भेस में खुशामदी कैसे हुआ करते हैं। वे असली और नकली उपदेशक में भेद कर सकते हैं। याद रहे कि राजपूताने में केवल वही आचार्य्य सफलता प्राप्त कर सकता है जो उदयपुर और जोधपुर के मानी मस्तकों पर लात मार सकता है। ऋषि ने राजपूताने के शेरों की नाक में नकेल डालदी थी; ऋषि के अनुयायियों में से जो लोग राजपूताने में गुरु बनने के लिए गये, उनके दिलों में या तो आतंक था, और या मतलब था। ऐसे गुरुओं को राजपूताने में मान नहीं मिल सकता।

ऋषि दयानन्द ने राजपूताने में अनेक शिष्य बनाये थे, परन्तु वे सब से ऊँचा स्थान महाराणा प्रताप के वंशज महाराणा सज्जनसिंह को देते थे। राजपूताने में उनके पट्ट शिष्य वही थे। ऋषि की मृत्यु के लग भग १ वर्ष पीछे महाराणा सज्जनसिंह की मृत्यु हो गई। इस मृत्यु से परोपकारिणी सभा का सब से मजबूत स्तम्भ गिर गया, और राजपूताने की आर्य्यसमाजों के पाँव उखड़ गये। शाहपुरनरेश महाराजा नाहरसिंह ने महाराणा के वियोग दुःख को भुलाने का यत्न किया, और आर्य्यसमाज के कार्य्य में बहुत उत्साह दिखाया। आपके ही उद्योग से २६ मार्च १८८५ के दिन शाहपुरा में आर्य्यसमाज की स्थापना हुई।

जोधपुर राजपूताने की एक प्रसिद्ध रियासत है। राठौर राजपूतों का किसी समय गढ़ था। यह वही क्रूर भूमि है जहाँ आर्य्य समाज के प्रवर्त्तक को विष दिया गया था और जहाँ व्यभिचार और साम्प्रदायिक पक्षपात ने एका कर के अपनी जड़ उखाड़ने वाले का प्राण हरण करने का बीड़ा

उठाया था। ज्येष्ठ सम्वत् १६४० में दयानन्द का सिंहनाद जोधपुर में होने लगा। उस निर्भय प्रचार का प्रभाव जब जोधपुराधीश महाराजा श्री यशवन्तसिंह जी पर पड़ने लगा तभी घातकों को कुमन्त्रणा का साधन ब्राह्मण कुलोत्पन्न जगन्नाथ बना। जगदुद्धारक ऋषि ने तो पता लगते ही घातक को कुछ धन दे कर भगा दिया, परन्तु आर्य जनता को उठती हुई आशाओं पर वज्रपात ही हो गया। यद्यपि राज्य के बहुत से महानुभावों को ऋषि के सत्सङ्ग का सौभाग्य प्राप्त हुआ तथापि उन सब में से ऋषि के उद्देश्य को समझ कर उसका आदर केवल महाराजा श्री प्रतापसिंह जी ने ही किया। उस समय न वह ब्रिटिश नाइट थे और न ही उन्होंने G.C.S.I. की उच्च उपाधि धारण की थी। मेजर जनरल तो क्या, उस समय क्या कोई यह भी सोच सकता था कि इन्हें ब्रिटिश सेना में कोई कप्तान भी बनायगा। परन्तु बाल ब्रह्मचारी का उपदेश बिजली का सा असर कर गया और रोगी प्रतापसिंह ने वेदाज्ञानुसार अपने आत्मिक गुरु से मानसिक प्रार्थना की— नोऽश्माभवतुनस्तनूः। "हमारा शरीर पत्थर के तुल्य दृढ़ हो" और वह शरीर कैसा वज्र के समान हो गया, उसे काबुल की सरहद और फ्रान्स के मैदान ही जानते हैं।

इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द के भावों का परिचय उन के महाराजा प्रतापसिंह जी को लिखे एक पत्र से बहुत अच्छी तरह मिलता है। ऋषि लिखते हैं:—

"श्री········प्रतापसिंह जी आनन्दित रहो। यह पत्र बाबा साहेब को भी दृष्टिगोचर करा दीजिएगा। मुझ को इस बात का बहुत शोक होता है कि श्रीमान् जोधपुराधीश आलस्यादि में वर्तमान हैं, आप और बाबा साहेब दोनों रोगयुक्त शरीर वाले हैं।

अब कहिये! इस राज्य का, कि जिस में सोलह लाख से कुछ ऊपर मनुष्य बसते हैं, रक्षा और कल्याण का बड़ा भार आप लोग उठा रहे हैं। सुधार और बिगाड़ भी आप ही तीनों महाशयों पर निर्भर है। तथापि आप लोग अपने शरीर के आरोग्य, संरक्षण और आयु बढ़ाने के काम पर बहुत कम ध्यान देते हैं—यह कितनी बड़ी शोचनीय बात है। मैं चाहता हूँ कि आप लोग अपनी दिनचर्या मुझ से सुन कर सुधार लेवें जिस से मारवाड़ को क्या अपने आर्य्यावर्त देश भर का कल्याण करने में आप लोग प्रसिद्ध होवें। आप जैसे योग्य पुरुष जगत् में बहुत कम जन्मते हैं·········उत्तम पुरुष जितना अधिक जीवे उतनी ही देश की उन्नति होती है······

द० दयानन्द सरस्वती।

आश्विन ३, शनिवार सं० १९४० वि०॥"

महाराजा प्रतापसिंह के निजू शरीर सेवक महाशय लक्ष्मण के हृदय में वैदिक धर्म का अङ्कुर पहिले पहिल उगा। ऋषि दयानन्द के देहान्त के पश्चात् विक्रमी संवत् १६४२ में उन्होंने आर्य्य समाज स्थापन किया, परन्तु पर्य्याप्त उपस्थिति न होने के कारण ६ मास में ही उसकी समाप्ति हो गई। संवत् १६४५ में फिर स्वामी भास्करानन्द जी के उद्योग से आर्य्य समाज स्थापित

हुआ। श्री महाराजा प्रतापसिंह जी उक्त स्वामी का बड़ा आदर करते थे,इस लिये वह उक्त आर्य्य समाज के प्रधान बने, जोधपुर राज के महामन्त्री श्री पण्डित सुखदेव प्रसाद बी. ए., सी. आई. ई. मन्त्री बने और अन्य बहुत श्रीमानों ने शेष अधिकार लिए। उस समय जोधपुर की सारी प्रजा ही सभासदों की सूची में सम्मिलित समझी जाती थी और साप्ताहिक अधिवेशनों में दो सहस्र से अधिक जनों की उपस्थिति होती थी। व्याकरणाचार्य्य पण्डित ठाकुरदास, पण्डित गणेश रामचन्द, पण्डित अन्नलेश्वर आदि इसी समय उपदेशक नियत किए गए थे।

महाकवि कालिदास और विक्रमादित्य

[लेखक-श्री भवानी प्रसाद जी गुप्त]

भारतीयों में आबालवृद्धवनिता चिरकाल से परम्परापोषित यह किंवदन्ती चली आती है कि कविकुलगुरु कालिदास उज्जयिनी के शकारि वीरविक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से एक थे। भारतवर्ष के प्रत्येक कोने में विक्रमाब्द वा विक्रम संवत् प्रचलित है जो आजकल १९८१ है। यह संवत् उनके सांसारिक व्यापार व्यवसाय और बहीखातों आदि में ही व्यवहृत नहीं है प्रत्युत वह उनके प्रतिदिन के धार्मिक कृत्यों में भी स्थान पाए हुए है। प्रत्येक वैदिकधर्मी न केवल नित्यप्रति के संकल्प में ही विक्रम संवत् का उच्चारण करता है किन्तु प्रत्येक हिन्दू बालक की जन्मपत्री में भी उसका उल्लेख होता है और इस लिए सर्वसाधारण में यह विश्वास बद्धमूल है कि कविकुलगुरु कालिदास और शकारि विक्रमादित्य १९८१ वर्ष पूर्व भारतवसुन्धरा की क्रोड में क्रीड़ा करते थे। परन्तु जब से योरपीय इतिहासशोधकों और उनके भारतीय अनुयायियों का भारत के ऐतिहासिक क्षेत्र में पदार्पण हुआ है उन्हों ने इस चिररूढ़ विश्वास में एक नवीन ही संशय खड़ा कर दिया है। उनकी नवनवोन्मेषशालिनी ऐतिहासिक प्रतिभा ने विक्रम और कालिदास के विषय में एक नवीन ही तत्त्व की उद्भावना की है कि वस्तुतः प्रभुयीशु से पूर्व प्रथम शताब्दी में भारतभूमि पर कोई कालिदास वा विक्रम विद्यमान थे और उस समय भारतवर्ष में संस्कृतसाहित्य की ऐसी उन्नति ही न थी कि कालिदास से महाकवि जन्म लेकर संस्कृत के ऐसे उत्तम काव्य लिख सकते। उनके नवाविष्कार के अनुसार महाकवि कालिदास अब से लगभग चौदहसौ वर्ष पूर्व ईसा की छठी शताब्दी में हुए थे और वे गुप्तवंशीय द्वितीय चन्द्रगुप्त के आश्रय में रहते थे। अपने इस पक्ष की पुष्टि में वे कालिदास के रघुवंश में अनेक स्थानों पर आए हुए गुप्त शब्द (यथा "स्ववीर्यगुप्ता हि मनोः प्रसूतिः" "स गुप्तमूलप्रत्यन्तः शुद्धपार्ष्णिरयान्वितः" इत्यादि) को प्रस्तुत करते हैं। कई योरपीय इतिहासशोधकों की सम्मति में कालिदास चन्द्रगुप्त के आश्रय में न रह कर कुमारगुप्त के आश्रय में रहते थे और उनकी सम्मति के पोषक प्रमाण भी रघुवंश में ही "आकुमारकथोद्घातं शालिगोप्यो जगुर्यशः" "कुमारभृत्याकुशलैरनुष्ठिते भिषग्भिराप्तैरथ गर्भभर्मणि" उपलब्ध हैं। कई योरपीय बुद्धिविशारदों का निश्चय है कि कालिदास कहरूर के युद्ध में हूणों को पराजित करने वाले उज्जयिनीराज यशोवर्मन् की सभा की शोभा बढ़ाते थे। विक्रम संवत् के विषय में इन विचक्षण विद्वानों का यह विचार है कि वस्तुतः उज्जयिनीनरेश विक्रम ने कोई संवत् कभी चलाया ही न था किन्तु मालवगणों का एक

संवत् पूर्व से चला आता था उस को ही छठी शताब्दी के गुप्तवंशीय विक्रमोपाधिधारी चन्द्रगुप्त ने विक्रम संवत् का नाम देकर अपने संवत् के नाम से प्रचलित कर दिया। चाहे भारतीय साधारण बुद्धि इस बात को स्वीकार न कर सके कि जब साधारणनरेश भी अपना नवीन संवत् चलाने का उद्योग करते रहे हैं और किसी भी संवत् प्रवर्तक ने कभी किसी पुराने संवत् को अपना नाम नहीं दिया तो चन्द्रगुप्त सा प्रबल प्रतापी सम्राट् यह जालसाज़ी कैसे कर सकता था कि प्राचीन मालव संवत् को अपने नाम से प्रचलित कर देता परन्तु योरोपियन दीर्घदृष्टि और विपुलबुद्धि की नवनिष्पत्ति यही है कि चन्द्रगुप्त परसंवत् की चोरी का अपराधी अवश्य है। उनकी यह व्यवस्था हेतुशून्य या प्रमाण रहित हो ऐसा नहीं है किन्तु उसकी पुष्टि में उन्होंने तथा उनके भारतीय मतपोषकों ने बड़े बड़े खण्ड लिख डाले हैं और तब से भारतीय इतिहास में कालिदास और विक्रम का समय बड़ा विवादास्पद विषय बना हुआ है।

उनके उत्तर में कालिदास और विक्रम को पहिली शताब्दी में मानने वाले भारतीय इतिहासज्ञों ने भी कई लंबे लेख लिखे थे और उनके निराकरण में दूसरे पक्ष के विद्वानों के भी कई निबन्ध निकलते रहे हैं। इस विषय में दीर्घकाल से इतनी 'भवति न भवति' होती रही है कि यदि उभय पक्ष के निबन्ध एकत्र किए जायँ तो एक बड़ा पोथा बन जाय। कई मासों से प्रथमशताब्दी के पक्ष के परिष्कार में प्रयाग की विश्वविश्रुता लब्धकीर्ति सरस्वती पत्रिका में इतिहासविद्याविशारद विद्वच्छिरोमणि श्री पं० काशीनाथ कृष्ण लेले तथा शिवराम काशीनाथ ओक की निबन्धावली प्रकाशित होती रही है जिस को इन पंक्तियों का लेखक भी तत्त्वान्वेषणबुद्धि से मनोनिवेशपूर्वक पढ़ता रहा है और उनकी विवेचना से जो विचार उसके मन में उठे हैं उनको तत्त्वजिज्ञासार्थ नीचे निवेदन किया जाता है। श्री लेले तथा ओक महोदय के एक एक तर्क को लिख कर क्रमशः उसी की समालोचना लिखी जाती है।

(१) अपने निबन्ध के आदि में ही श्री लेले तथा ओक महाशयों ने ईसा की आठवीं शताब्दी तक विक्रम संवत् के साथ विक्रम शब्द न आकर मालव संवत् के नाम से उनके उल्लेख होने पर यह आपत्ति उठाई है कि उसके साथ विक्रम का नाम न आने से वह विक्रमसंवत् नहीं माना जा सकता और इस लिए ईसा की प्रथम शताब्दी में किसी विक्रम का अस्तित्व सिद्ध नहीं होता। यदि उनके इस तर्क को स्वीकार किया जाय तो उससे स्वयं उनका सिद्धान्त अर्थात् यशोधर्मन् देव हर्ष शिलादित्य उपनाम विक्रमादित्य के इस संवत् को सन् ५४४ ई० में अपना और विक्रम नाम देने का स्थापन भी उड़ जाता है क्योंकि जब आठवीं शताब्दी तक कहीं भी उसके साथ विक्रम शब्द का पता नहीं है तो यह कैसे मान लिया जाय कि छठी शताब्दी में इस संवत् को विक्रम की उपाधि दी गई और तब से यह विक्रम संवत् के नाम से व्यवहृत होने लगा, क्योंकि आपके मतानुसार विक्रम शब्द तो इस संवत् के साथ आठवीं शताब्दी से ही पाया जाता है उससे पूर्व छठी शताब्दी में उस का विक्रमीकरण कैसे माना जाय। वास्तविक बात तो यह प्रतीत होती है कि यह संवत् मालवगणाधिपति विक्रम का संवत् होने के कारण और विशेषतः मालव देश में व्यवहृत रहने के हेतु से संक्षेपार्थ प्रायः मालव संवत् वा मालवगण संवत् लिखा जाता था। इस का एक और उदाहरण भी विद्यमान है। नेपाल की प्रशस्तियों में व्यवहृत हर्षसंवत् उसके नेपाल में प्रचलित रहने के कारण नेपाल संवत् लिखा जाता था, जैसा कि नेपालनरेश प्रतापमल्ल की प्रशस्ति के निम्नलिखित पद्य से प्रकट है।

> नेपाले संवतेऽस्मिन् हयगिरिमुनिभिः संयुते माघमासे,
> सप्तम्यां शुक्लपक्षे रविदिनसहिते रेवतीऋक्षराजे।
> योगे श्रीसिद्धिसंज्ञे रजतपणिलस-

स्स्वर्णमुक्ताप्रवालै—
रेकीकृत्य प्रदत्तं हयशतसहितं येन
दानं तुलाख्यम् ॥

दूसरे स्थानों में कहीं "हर्षाब्देनेपालवर्षे" शब्द आते हैं। जैसे केवल "नेपाले संवते" लिखे जाने से उसके हर्ष के संवत् होने का खण्डन नहीं हो सकता वैसे ही किन्हीं स्थानों में "मालवसंवत्" वा "मालवगणस्थित्या" के उल्लेख से उस संवत् के ईसा की प्रथम शताब्दी में विक्रम के द्वारा प्रचलित होने का खण्डन नहीं हो सकता और न ही केवल "मालव संवत्" वा "मालवगणस्थित्या" के लिखे जाने से यह अनुमान दृढ़ हो सकता है कि उसका संस्थापक मालवेश ईसा के पूर्व प्रथम शताब्दी का विक्रम न था। वैसे ही रोमनसंवत् रोमनिवासियों के नाम से प्रसिद्ध है, परन्तु वह रोम नगर की नींव डालने की घटना विशेष को यादगार में चलाया गया था। इसी प्रकार मालव संवत् का भी विक्रम के द्वारा ईसा से पूर्व प्रथम शताब्दी में शकविजय के उपलक्ष्य में चलाया जाना सर्वथा संभव है। इस का भी कोई प्रबल प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया गया कि प्राचीन काल के लोग मालव संवत् को प्रथम शताब्दी के विक्रम का चलाया न मानते थे। कम से कम दसवीं शताब्दी में तो यह लोगों का दृढ़ विश्वास था कि उस समय से लगभग एक सहस्र वर्ष पूर्व अर्थात् अब से प्रायः दो सहस्र वर्ष पूर्व प्रथम शताब्दी में विक्रम संवत् प्रवर्तक शकारि विक्रमादित्य विद्यमान था जैसा कि धार के परमारवंशी राजा मुञ्जदेव के समकालीन जैनपण्डित अमितगति के रत्नसन्दोह नामक ग्रंथ के अन्त के निम्नलिखित पद्य से प्रमाणित होता है।

समारूढे पूतत्रिदिववसतिं विक्रमनृपे
सहस्रेवर्षाणां प्रभवति च पञ्चाशदधिके।
समाप्तं पञ्चम्यामवति धरणीं मुञ्जनृपतौ
सिते पक्षे पौषे बुधहितमिदं शास्त्रमनघम्

भावार्थः—राजा विक्रम के स्वर्गारोहण से १०५० वर्ष बीतने पर मुञ्जनृपति के शासनकाल में पौष के शुक्लपक्ष में यह विद्वानों के लिए हितकर अमूल्य शास्त्र बनाया गया।

(२) प्रथम शताब्दी में विक्रम का अभाव सिद्ध करने के लिए योग्य लेखक-युग्म ने दूसरी दलील यह दी है कि उस समय उज्जयिनी में शकारि शकप्रवर्तक विद्वदाश्रयदाता किसी विक्रम की विद्यमानता के साधक प्रमाणों का अभाव है। किन्तु विन्सेंट स्मिथ साहब ने अपने प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास में लिखा है कि शक जाति के म्लेच्छों ने ईसा के कोई १५० वर्ष पहिले उत्तरपश्चिमाञ्चल से इस देश में प्रवेश किया। उनकी दो शाखाएँ हो गईं। एक शाखा के शकों ने तक्षशिला और मथुरा में अपना अधिकार जमाया और क्षत्रप नाम से प्रसिद्ध हुए। इनके सिक्कों से इन का पता ईसा के १०० वर्ष पहिले तक चलता है, उस के पीछे उनके अस्तित्व का कहीं पता नहीं लगता। दूसरी शाखा ने ईसा की पहली शताब्दी में काठियावाड़ पर अपना अधिकार किया, इन्हें गुप्तवंशी राजाओं ने हरा कर उत्तर की ओर भगा दिया। इस प्रकार इस दूसरी शाखा के पराभव कर्ता गुप्त हुए, किन्तु पहिली शाखा का किस ने विनाश किया, क्या बिना किसी के निकाले ही वे इस देश से चले गए? उनका पता पीछे कहीं भी क्यों नहीं चलता? इस का क्या इस के सिवा और कोई उत्तर हो सकता है कि ईसा से ५७ वर्ष पहिले विक्रमादित्य ने ही उन्हें नष्ट भ्रष्ट कर के इस देश से निकाल दिया? इसी विजय के कारण उस को शकारि उपाधि मिली और संवत् भी इसी घटना की याद में उसने चलाया। इस के अतिरिक्त आप के विशेषणत्रय से विशिष्ट विक्रम की ईसा की प्रथम शताब्दी में विद्यमानता के प्रमाण आप के ही उद्धृत और अभिमत ज्योतिर्विदाभरण के निम्नलिखित पद्यों से बढ़कर और क्या हो सकते हैं।

येनास्मिन् वसुधातले शकगणान्
सर्वा दिशः संगरे।

हत्वा पञ्च नवप्रमान् कलियुगे शाकप्रवृत्तिः कृता ॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय २२ श्लोक १३ ॥

भावार्थः-जिसने इस पृथ्वीतल पर युद्ध में शकों को मार कर कलियुग में अपना संवत् चलाया।

त्रिखेन्दुभिविक्रमभूपतेर्मिते, शाके ऽन्वितीह क्षयमासको भवेत्।
अन्यः स्वकालाब्दगणेन हायने ऽधिमासयुग्मं क्षयमासवत्यतः ॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय ४ श्लोक ५ ॥

भावार्थः—विक्रम के संवत् १०३ में क्षयमास होगा और उस वर्ष २ अधिमास होंगे।

धन्वन्तरिक्षपणकामरसिंहशङ्कु,
वेतालभट्टघटकर्परकालिदासाः।
ख्यातो वराहमिहिरो नृपतेः सभायां
रत्नानि वै वररुचिर्नव विक्रमस्य॥

ज्योतिर्विदाभरण, अध्याय २२ श्लोक १०

भावार्थः—विक्रम की सभा में धन्वन्तरि, क्षपणक, अमरसिंह, शङ्कु, वेतालभट्ट, घटकर्पर, कालिदास, प्रसिद्ध वराहमिहिर, और वररुचि ये नौ रत्न हैं।

सत्याचार्य, वराहमिहिर, श्रुतसेन, बादरायण, मणित्थ, कुमारसिंह, आदि मुक्त जैसे उसकी सभा में कालतन्त्र कवि अर्थात् ज्योतिषी हैं। श्लोक८

विक्रमादित्य के दरबार में ८०० उमराव हैं और उसकी सेना में एक करोड़ वीर हैं। उसकी सभा में १६ पण्डित, १६ ज्योतिषी, १६ वैद्य, १६ भट्ट, १६ ढाढ़ी, (गायनवादनपुर) और १६ वैदिक रहा करते थे। श्लोक ११

उसकी राजधानी उज्जयिनी है और वह श्री महाकालेश्वर के सान्निध्य के कारण समूचे नगरवासियों के लिए मोक्ष प्राप्त करा देने वाली है। श्लोक १६ ॥

वर्षे सिन्धुरदर्शनांबरगुणैर्याते कलौ सम्मिते,
मासे माधवसंज्ञकेऽत्र विहितो, ग्रन्थक्रियोपक्रमः।

अध्याय २२ श्लोक २१

सिन्धुर (८), दर्शन (६), अम्बर (०) गुण (३) अर्थात् वामक्रम से ३०६८ कलिवर्ष में वैशाख मास में मैंने यह ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया।

इस कलिसंवत् के अनुसार विक्रम संवत् २४ आता है। आगे चल कर प्रशंसित विद्वान् लेखकद्वय ने इस कलिसंवत् को ज्योतिर्विदाभरण तथा ज्योतिषाचार्य वराहमिहिर की बृहत्संहिता और पञ्चसिद्धान्तिका में दिए हुए अपने अपने शकसंवत् से मिलाने के प्रयत्न में कलिकालारम्भ को सैकड़ों वर्ष पीछे ला डाला है, और खेद है, कि उनको शकसंवत् के समझने में भी भारी भ्रान्ति हुई है। वस्तुतः कलिकालारम्भ और शक संवत् की पूर्ण पर्यालोचना ही इस विवाद की निर्णायिका होगी और इस लिए इस निबंध में भी आगे चल कर कलिकालारम्भ और शक संवत् की पूरी विवेचना की जायगी।

(३)आगे चल कर आप ने चौथी से छठी शताब्दी तक गुप्तों के अभ्युदय और उस समय संस्कृत साहित्य की उन्नति का उल्लेख करके गुप्तों की शकारिता तथा विक्रमउपाधिधारिता तो मानी है किन्तु उनसे आप कविकुलगुरु ज्योतिर्विदाभरणकार कालिदास का संबन्ध नहीं पाते और छठी शताब्दी के उज्जयिनीनरेश यशोधर्मन् शिलादित्य को ही उक्त कालिदास का आश्रयदाता तथा विक्रमसंवत् का प्रवर्तक हर्षविक्रमादित्य सिद्ध करते हैं। यहाँ इस प्रसंग में विक्रम और कालिदास पर कुछ साधारण विचार अप्रासंगिक न होगा। भारतवर्ष में विक्रम और कालिदास अपने गुणों की उत्कृष्टता के कारण कुछ ऐसे नाम बन गए थे कि समय पर अनेक राजाओं और कवियों ने उनको धारण कर के अपने पूर्ववर्ती उन उन नामधारियों का अपने नाम राशियों के गौरव, महत्व और कीर्ति को प्राप्त करने का प्रयत्न किया था। यदि आप गूढ़ गवेषणा करेंगे तो भारतीय इतिहास में आप को दर्जनों विक्रम

और कालिदास मिलेंगे। खेद है कि पाश्चात्य-इतिहाससंशोधक और उनके कई भारतीय अनुवादी उन विक्रमों और कालिदासों के भिन्न भिन्न समयों और चरित्रों को परस्पर मिला कर गड़बड़ कर देते हैं। अब प्रथम आप विक्रमों तथा कालिदासों पर ही विचार कीजिए।

१ म विक्रमादित्य—ईसा से ५७ वर्ष पूर्व के संवत् प्रवर्तक विक्रम के अतिरिक्त हमको उससे ४०० वर्ष पूर्व एक और हर्ष विक्रमादित्य का पता मिलता है। इसने अपने नाम से हर्ष संवत् चलाया था जो नेपाल में प्रचलित था। प्रसिद्ध मुसलमान यात्री अलबेरूनी नैपाल तथा भारत के उत्तरीय प्रान्तों में प्रचलित विक्रम संवत् से ठीक चार-सौ वर्ष पहिले एक हर्षसंवत् का निर्देश करता है। वह अपनी प्रसिद्ध पर्यटनपुस्तक "अलबेरूनी का भारत" के ४९ वें अध्याय में लिखता है—

अब यज़्दगर्द का ४०० वाँ वर्ष निम्न-लिखित भारतीय संवतों के बराबर है—

(१) श्री हर्ष का १४८८ वाँ वर्ष

(२) संवत् या विक्रमसंवत् का १०८८ वाँ वर्ष

(३) शालिवाहन संवत का ९५३ वाँ वर्ष

यज़्दगर्द के संवत् से ४१३२ वर्ष पहिले कलियुग आरम्भ हुआ था। पारसी वर्ष ४०० का नवरोज़ ९ मार्च सन् १०३१ ई० को पड़ता है। इस प्रकार अलबेरूनी के निर्देशानुसार विक्रम संवत् ५७ ई० पू०, हर्ष संवत् ४५७ ई० पू० तथा कलियुग ३१०१ ई० पू० आरम्भ हुआ था। नेपाल के कुछ ताम्रपत्रों में इसी हर्ष संवत् का निर्देश किया गया है। किन्तु डा० फ्लीट आदि कुछ पाश्चात्य ऐतिहासिकों ने प्रमादवश इस हर्ष को कन्नौज का हर्षवर्धन शिलादित्य समझ कर इस संवत् का आरम्भ ईसवी सन् ६०६-७ से मान लिया है और नेपाल के राजाओं की तिथियों को बिलकुल गड़बड़ा दिया है। इस प्रकार नेपाल के ५ वें सूर्यवंशी राजकुल के २७ वें राजा महाराजाधिराज शिवदेववर्मा के ताम्रपत्र में जो हर्षसंवत् ११९ दिया हुआ है उसको पाश्चात्य पंडित हर्षवर्धन का प्रचलित किया हुआ मानकर शिवदेववर्मा को ११९+६०६=७२५ ई० का मान लेते हैं। किन्तु रायल एशियाटिक सोसाइटी के आनरेरी सदस्य पं० भगवान लाल इन्द्र जी पी एच. डी. ने नेपाल से लाकर एक प्राचीन वंशावली—पार्वतदर्वशावावली—प्रकाशित की है (देखो इंडियन ऐंटिक्वेरी जिल्द ८ पृष्ठ ४११—४२८) उस में नेपाल के राजाओं की वंशावली उनके शासनकाल सहित दी है। इस वंशावली के वर्णनानुसार नेपाल के ५ वें वंश अर्थात् सूर्यवंश का २७ वाँ राजा शिवदेववर्मन् ३३८ ई० पू० विद्यमान था। क्योंकि वहाँ यह स्पष्ट उल्लेख है कि ६ ठे अर्थात् ठाकुरी वंश के पहिले राजा अंशुवर्मन् का राज्याभिषेक ३०८० वें कलिवर्ष अर्थात् १०१ ई० पू० हुआ था, उसने ६८ वर्ष (१०१-३३ ई० पू०) राज्य किया था। यह भी लिखा है कि उस के समय में विक्रमादित्य नेपाल में आया और उसने अपना ५७ ई० पू० का संवत् चलाया। आगे यह निर्देश है कि अंशुवर्मन् ५ वें वंश (सूर्यवंश) के ३१ वें (अन्तिम) राजा विश्वदेववर्मन् का जामाता तथा उत्तराधिकारी था, विश्वदेववर्मन् ने ५१ वर्ष (१५२—१०१ ई० पूर्व) राज्य किया था। इसी प्रकार उक्त वंश के ३० वें राजा विष्णुदेववर्मन् ने ४७ वर्ष (१९९—१५२), २९ वें राजा भीमदेववर्मन् ने ३६ वर्ष (२३५—१९९ ई० पू०), २८ वें राजा नरेन्द्रवर्मन् ने ४२ वर्ष (२७७—२३५ ई० पू०), तथा २७ वें राजा शिवदेववर्मा ने ६१ वर्ष (३३८—२७७ ई० पू०) राज्य किया था। इस प्रकार नेपालवंशावली में उल्लिखित शिवदेववर्मा का राज्याभिषेककाल ३३८ ई० पूर्व ठीक वही है जो अलबेरूनी के उल्लेखानुसार ४५७ ई० पू० आरम्भ होनेवाले हर्ष संवत् के ताम्रपत्र में निर्दिष्ट ११९ वें वर्ष से मिलता है। इसी हर्षविक्रम का वर्णन काश्मीर के संस्कृत इतिहास राजतरङ्गिणी के निम्नलिखित श्लोकों में है—

तस्मिन् क्षणे हिरण्योऽपि
शान्तिं निःसन्ततिर्ययौ ॥ १२४ ॥

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां,
श्रीमान् हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती,
विक्रमादित्य इत्यभूत् ॥ १२५ ॥

* * * *

म्लेच्छोच्छेदाय वसुधां,
हरेरवतरिष्यतः ।
शकान् विनाश्य येनादौ,
कार्यभारो लघूकृतः ॥ १२६ ॥

भावार्थः— उस समय काश्मीर का हिरण्य राजा भी सन्तान हीन हो कर मर गया, उसी समय उज्जयिनी में हर्षापरनामधेय श्रीमान् विक्रमादित्य एकच्छत्र सम्राट् था। १२५-५।

म्लेच्छों का उच्छेद करने के लिए श्री महाविष्णु पृथ्वी पर अवतार ग्रहण करना चाहते थे, पर इससे पहिले ही विक्रमादित्य ने शकों को नष्ट कर दिया। उस कारण महाविष्णु के सिर का बोझ हलका हो गया। १२६।

इस अवतरण में महाराज हर्ष विक्रमादित्य को शकारि स्पष्ट लिखा है। अब यह विवेचनीय है कि उस समय (४५७ ई० पू०) हर्ष विक्रम ने किन शकों का दमन किया था। प्रसिद्ध यूनानी ऐतिहासिक हिरोडोटस, ज़ेनोफन तथा अन्य प्राचीन पाश्चात्य ऐतिहासिकों के वर्णनानुसार प्रसिद्ध पारसीक सम्राट् प्रथम दारा ने ईसा से लगभग ५०० वर्ष पूर्व भारत के पश्चिम में सिंध के उस पार के प्रदेशों पर अधिकार करके वहाँ पर एक सत्रपी (फ़ारसी क्षत्रपावन, संस्कृत क्षत्रप) स्थापित की थी। यह सत्रपी उसके पीछे क्षयार्ष (ज़रक्सीज़) (४८६–४६४ ई० पू०) और आर्तक्षत्र (आर्तज़र्क्सीज़ ४६४ से ४२४ ई० पू० तक) के समय तक रही। आर्तक्षत्र बहुत विषयी और निर्बल राजा था, उसी के समय में पारसीक राज्य से भारतीय प्रदेश निकल गए। अब इन प्रदेशों से पारसी अधिकार का विनाशक यही ४५७ ई० पू० का हर्षविक्रम हो सकता है। यह ध्यान रहे कि भारतीय लोग पारसदेश को शकस्थान कहते थे और पारसियों को शकनाम से व्यवहार करते थे। इस लिए यह प्रमाण पुष्ट और प्रबल अनुमान है कि ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व हर्षविक्रम ने सिंधुपार के प्रदेशों से शकों को निकाल कर शकारि की उपाधि धारण की थी और इसी का उल्लेख राजतरङ्गिणी के उपर्युक्त पद्य में हुआ है। इसी हर्षविक्रमादित्य ने राजतरङ्गिणी के उपर्युक्त अवतरण में वर्णित काश्मीर नरेश हिरण्य के निःसन्तान मरने पर अपने मित्र महाकवि कालिदासपरनामक मातृगुप्त को काश्मीर के राजसिंहासन पर बैठाया था और मातृगुप्त कालिदास ने वहाँ कुछ वर्ष राज्य कर के मृत हिरण्य के भतीजे प्रवरसेन के आ जाने पर वह राज्य उसको सौंप दिया था। यही मातृगुप्त कालिदास प्रथम महाकवि कालिदास है और संस्कृतसाहित्य के गौरवधन प्रसिद्ध अभिज्ञानशाकुन्तल, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशीय नामक तीन नाटक उसी की कृति हैं। इस का प्रमाण यह है कि अभिज्ञानशाकुन्तल का प्रसिद्ध पद्यार्ध "सतां हि संदेहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः" श्रीकुमारिलभट्ट ने जैमिनि मुनिकृत पूर्वमीमांसा के शबरभाष्य पर अपने प्रसिद्ध श्लोकवार्तिक में उद्धृत किया है।

कुमारिलभट्ट का जन्म समय जिनविजयकाव्य में इस प्रकार वर्णित है—

"ऋषिर्वारस्तथा पूर्णं,
मर्त्याक्षौ वाममेलनात् ।
एकीकृत्य लभेतांकः,
क्रोधी स्यात् तत्र वत्सरः ॥
भट्टाचार्यकुमारस्य,
कर्मकाण्डैकवादिनः ।
ज्ञेयः प्रादुर्भवस्तस्मिन्,
वर्षे यौधिष्ठिरे शके ॥"

अर्थात् यदि हम ऋषि (७), वार (७), पूर्ण (०) और मर्त्याक्षि (२) को वामगति से क्रमपूर्वक मिलाएँ तो २०७७ क्रोधीनामक संवत्सर निकलता है, इस २०७७ युधिष्ठिरशक में

कर्मकाण्डवादी भट्टाचार्यकुमार का जन्म हुआ था।

जैन लोग भूल से युधिष्ठिरशक कलियुग से ४६८ वर्ष पीछे मानते हैं (इस का विवेचन आगे किया जायगा), किन्तु वस्तुतः, जैसा पहिले लिखा जा चुका है, महाभारतानुसार युधिष्ठिरशक कलियुगारम्भ से ३७ वर्ष पूर्व युधिष्ठिर के राज्याभिषेक से प्रारम्भ होता है। इस लिए २०७७ में ४६८ जोड़ देने से २५४५ कलिसंवत्सर निकलता है। अर्थात् कुमारिलभट्ट का जन्म २५४५ कलिसंवत्सर तदनुसार ५५७ वर्ष ईसा से पूर्व हुआ था। कुमारिलभट्ट के अपने श्लोकवार्तिक में अभिज्ञानशाकुन्तल के श्लोक का उद्धरण करने से अभिज्ञानशाकुन्तलकार महाकवि कालिदास का कुमारिल का समकालीन वा पूर्ववर्ती होना सिद्ध होता है। कवि कालिदास के श्रीहर्ष विक्रमादित्य का मित्र तथा आश्रित होने का वर्णन ऊपर हो चुका है, यह भी बतलाया जा चुका है कि श्रीहर्ष विक्रमादित्य ने ईसा से ४५७ वर्ष पूर्व अपना हर्ष संवत् चलाया था। यह संवत् उन्हों ने शकों पर विजय प्राप्ति के उपलक्ष्य में अपनी शक्ति और समृद्धि के यौवन काल में ही चलाया होगा और उनका सिंहासनारोहणकाल इस समय से लगभग ५० वर्ष पूर्व (५०७ ई० पू०) रहा होगा, यह प्रबल अनुमान है। जिनविजय से कुमारिलभट्ट का आयुमान ६३ वर्ष प्रमाणित होता है। जिनविजय के निम्न लिखित पद्यों में भगवान् आदि शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव २१५७ जैनयुधिष्ठिरशक = ४७७ ई० पू० में तथा उनकी कुमारिल से भेंट १५ वर्ष की आयु में वर्णित है।

"ऋषिर्बाणस्तथा भूमि,
र्मर्त्याक्षौ वाममेलनात्।
एकत्वेन लभेताङ्क-
स्ताम्राक्षस्तत्र वत्सरः॥"
"पश्चात् पञ्चदशे वर्षे,
शंकरस्य गते सति।
भट्टाचार्यकुमारस्य
दर्शनं कृतवाञ्छिवः॥"

अर्थात् "ऋषि [७], बाण [५], भूमि [१], मर्त्याक्ष [२], को क्रम पूर्वक मिलाने से २१५७ ताम्राक्ष नामक संवत्सर निकलता है"

"शङ्कर [शङ्कराचार्य] ने [आयु का] पन्द्रहवाँ वर्ष बीतने पर भट्टाचार्य कुमारिल का दर्शन किया।"

यह परम प्रसिद्ध बात है कि भगवान् आदि शङ्कराचार्य का प्रादुर्भाव ३२ वर्ष की आयु में हुआ था इस लिए उससे १७ वर्ष पूर्व वे कुमारिलभट्ट से उस समय मिले थे जब कि वे तुषानल में प्रविष्ट होकर अपने शरीरपात से जैनों से वञ्चनापूर्वक अपने विद्याध्ययन का प्रायश्चित कर रहे थे, और उनके प्रादुर्भाव के उपर्युक्त ४७७ ई० पू० से १७ वर्ष घटाने से कुमारिलभट्ट का देहावसानकाल ४९४ ई० पू० निकलता है और इस से कुमारिलभट्ट की आयु ६३ वर्ष प्रमाणित होती है। यदि उक्त श्लोकवार्तिक को कुमारिलभट्ट ने अपने स्वर्गवास से चार वर्ष पूर्व रचा हो तो ४९८ वर्ष ईसा से पूर्व उनकी मृत्यु के समय से पूर्व ही अभिज्ञानशाकुन्तलकार और हर्ष विक्रमादित्य के आश्रित महाकवि कालिदास का होना प्रमाणित होता है। इस लिए सिद्ध हुआ कि नाटककारकालिदास कुमारिलभट्ट के समकालीन थे और ईसा से ५०० वर्ष पहिले विद्यमान थे। यह भी प्रमाणित होता है कि वे हर्ष विक्रमादित्य के मित्र तथा आश्रित थे, क्योंकि उन्होंने अपने विक्रमोर्वशीय नाटक में उसके नायक पुरुरवा का विक्रमोपाधि से उल्लेख करके अपने आश्रयदाता और मित्र हर्षविक्रमादित्य का सांकेतिक निर्देश किया है। हमारे मत से नाटककार कालिदास से रघुवंशादि श्रव्यकाव्यकार कालिदास भिन्न हैं, जैसा कि आगे चल कर दिखलाया जायगा।

नव स्नातकों के प्रति

विदाई का गीत।

(लेखक—ब्र० भद्रजित, गुरुकुल वृन्दावन)

(१)

विदाई दे रहे भाई हमें पर भूल मत जाना।
बुराई जो हुई हम से उसे मत चित्त में लाना ॥ टेक ॥

(२)

चले तुम छोड़ सूना आज इन यमुना निकुंजों को।
हमारे पर हृदय-मन्दिर न सूने कर कहीं जाना ॥ विदाई० ॥

(३)

हमारे प्रेम बन्धन से हृदय कैसे छुड़ा लोगे।
सभी तुम भूल बचपन का हमारे साथ अठिलाना ॥ विदाई० ॥

(४)

सदा फूलो फलो परमेश से यह हम मनाते हैं।
जगत में वेद की वीणा बजाते तुम सदा जाना ॥ विदाई० ॥

(५)

हमें चातक बनाकर तुम यहां पर छोड़ जाते हो।
कभी तो स्वाति दर्शन-जल हमें आकर पिला जाना ॥ विदाई० ॥

(६)

हमें तो तुम चले जाओ दिलाकर धैर्य पर भाई।
दुखी माता की आंखों का नयन जल पोंछते जाना ॥ विदाई० ॥

(७)

बढ़ो कर्तव्य पथ में तुम दयामय भी सहायक हों।
सदा दुख द्वन्द के फन्दे हमारे काटते जाना ॥ विदाई० ॥

(८)

हमें अब छोड़ कर कुल भूमि से तुम दूर जाते हो।
विदाई की सजल आंखें हमारी भूल मत जाना ॥ विदाई० ॥

---

* गुरुकुल वृन्दावन को छोड़ते हुए इस वर्ष के स्नातकों के प्रति यह कविता पढ़ी गई थी।

आर्य और दास

(ले० श्री पं० भीमसेन जी विद्यालङ्कार)

पिछले लेख में हम यह दिखा चुके हैं कि आर्य्य सभ्यता में दास प्रथा का कोई स्थान नहीं है। इस दृष्टि से हमारी आर्य्य सभ्यता किसी दूसरी सभ्यता से कम नहीं है। इस लेख में संस्कृत-साहित्य के प्रमाणों द्वारा यह दिखाने का यत्न किया जायगा कि भारतवर्ष में दास शब्द किन अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। दास शब्द प्रयोग की मीमांसा से यह भी पता लगेगा कि भारतवर्ष के दास युरोपियन दासों की तरह किसी श्रेणी या निबिड़-संगठन में संगठित नहीं थे।

रोम तथा ग्रीस में दासों ने संगठित हो कर, कई वार उच्च श्रेणियों के साथ लड़ाई लड़ी थी। स्पार्टा के हैलट तथा रोम के ग्लैडिएटर्स, इस बात के ऐतिहासिक प्रमाण हैं। परन्तु भारतवर्ष के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता जहाँ दासों ने अपने स्वामियों का संगठितरूप से विरोध किया हो।

इस का एक मात्र कारण यह था कि यहाँ की दास श्रेणी को सदा इस बात की छुट्टी थी कि वह जब चाहे योग्यतानुसार, उच्च श्रेणी में प्रविष्ट हो सके।

अंग्रेज़ी भाषा में दास शब्द के लिए (स्लेव) शब्द का प्रयोग किया जाता है। (स्लेव) का मूल अर्थ (कैपटिव) या कैदी है। विजेता लोग युद्धों में जिन को जीतते थे उन्हें वे अपनी सम्पत्ति समझते थे। भारतवर्ष में भी इस अर्थ में दास शब्द का प्रयोग होता था। मनुस्मृति में भी इसी प्रकार पराजित शत्रु के लोगों को दास, दासी बनाने का उल्लेख है। दास प्रथा का प्रारम्भ कैसे हुआ? क्या युद्धों के कारण ही यह प्रथा प्रचलित हुई? इन प्रश्नों पर विचार करने से पूर्व हम संस्कृत साहित्य द्वारा यह दिखाएंगे कि भारतवर्ष में दास शब्द किन २ अर्थों में प्रयुक्त होता रहा है। इस विषय में दास शब्द की मूल धातु या व्युत्पत्तियों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। संस्कृत साहित्य के भिन्न २ प्रामाणिक कोषों में इस प्रकार व्युत्पत्तियाँ तथा मूल धातु बताए गए हैं:—

दास दाने, भ्वादि, सकर्मक। 'भृतिरस्मै दीयते इति'। दास हनने (यो नः कदाचिदपि दासति द्रुहः। दास दशने। दद्दात्यङ्गं स्वामिने उपचाराय)।

दास वह है जिसे भृति या वेतन दिया जाय। जो आदमी अपने स्वामी के हाथ अपने शरीर को बेच दे वह भी दास है। शूद्रों के नाम के अन्त में जो दास शब्द आता है वह इस बात को द्योतित करता है कि दास शारीरिक परिश्रम का कार्य्य कर भृति द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। दास शब्द का प्रयोग (दास उपक्षेपे) निन्दा तथा नाश अर्थ में भी होता है। कई स्थानों पर दास और दस्यु को भी पर्यायवाची तथा समानार्थक

माना गया है । 'पृक्षये च दासवेशाय चावह !' ऋ० २ । १३ । ८ ।

इसका अर्थ किया गया है 'दासानां, दस्यूनां वेशाय नाशाय' । दस्युओं के नाश के लिए । दत्तक पुत्रों को भी दास शब्द से कहा जाता है क्योंकि इन का पालन पोषण भी कृत्रिम दासों की तरह किया जाता है । भृगु आचार्य की सम्मति में वह आदमी दास है जो अपनी व्यक्तिगत स्वतन्त्रता को छोड़ कर, एकान्त भाव से दूसरे का सेवक बन जाता है । वे लिखते हैं:—

"स्वतन्त्रस्यात्मनो दानाद्दासत्वं दारवद् भृगुः । यथा भर्तुः सम्भोगार्थं स्व शरीर दाना द्दारत्वम् तथा स्वतन्त्र स्यात्मनः परार्थत्वेनदानाद् दासत्वमिति भृगुराचार्योमन्यते । अनेनात्यन्तपारार्थ्य मासाद्य शुश्रूषका दासाः । परार्थ्य मात्रमासाद्य शुश्रूषकास्तुकर्मकरा इति।"

भृगु आचार्य लिखते हैं कि जिस प्रकार स्त्री पति के लिए अपने आपको भोग्य रूप में समर्पित करती है उसी प्रकार जो व्यक्ति अपने आपको स्वामी के लिए समर्पित करता है वह दास है। जो रुपया या धन लेने में पराश्रित हो वह कर्मकर कहलाता है । भृगु आचार्य की सम्मति में स्त्रिएँ भोग्य पदार्थ हैं । भारतीय इतिहास से परिचय रखने वाले जानते हैं कि भारत में स्त्रियों को भोग्य वस्तु नहीं समझा जाता था।

मध्यकाल में ही स्त्रियों को भोग्य समझा जाता था; उसी समय मनुष्य को भोग्य सम्पत्ति का रूप दिया गया और दास को भी भोग्य वस्तु समझा जाने लगा । तथापि इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि यहाँ भी दासों को मनुष्य की सम्पत्ति समझा जाता था । परन्तु इस अवस्था के कई रूप थे। इन भिन्न २ रूपों का खुलासा मनुस्मृति में तथा याज्ञवल्क्यस्मृति में इस प्रकार दिया है:—

मनुस्मृतिः—

ध्वजा हृत = युद्ध में जीता हुआ दास
भक्तदास = केवल भोजन पर निर्वाह करते रहने वाला दास
गृहज = घर की दासी से उत्पन्न हुआ
क्रीत = मोल लिया हुआ दास
दत्रिम = जिसे किसी ने दूसरे को दास रूप में दिया हो ।
पैतृक = जो बाप दादों से दाय में मिला हो
दण्डदास = जिसे राजा ने दास होने का दण्ड दिया हो ।

याज्ञवल्क्य स्मृति में दासों के ये भेद दिए हैं ।:—

गृहजात, क्रीत, दाय—प्राप्त ।
अन्त्य काल भृत् = अकाल या दुर्भिक्ष में जो पाला गया हो ।
आहित = जो स्वामी से इकट्ठा धन लेकर उसे सेवा द्वारा चुकाता हो।
ऋण दास = जो ऋण लेकर दासत्व में पड़ा हो ।
युद्ध दास = युद्ध में दास ।
स्वयमुपात्त = स्वयं दास बनने आया हो।
प्रव्रज्या वसित = जो सन्यास से पतित हो गया हो ।
कृतदास = जिसने कुछ कमाने के लिये सेवा करनी स्वीकार की हो ।

भक्त दास आत्म विक्रेता।
वडवाहृत = जो किसी बड़वा या दासी से विवाह करने से दास हुआ हो।
लब्ध दास = जो किसी से मिला हो।

इस शब्दार्थ विवेचन से स्पष्ट है कि संस्कृत साहित्य में दास शब्द कई अर्थों में प्रयुक्त होता था। दास का मतलब नौकर, दत्तक, गुलाम, कर्ज़ आदि था।

भारत में दास प्रथा का प्रारम्भ युद्धों, यज्ञों तथा महाजनों के लेन देन से हुआ है।

युद्ध-दास का कोई प्रामाणिक उदाहरण नहीं मिलता। यज्ञों में शुनःशेप के क्रीत दास होने की कथा आती है परन्तु वहाँ भी अन्त में विश्वामित्र की सहायता से शुनःशेप दासता से मुक्त हो जाता है। यह कथा शतपथ ब्राह्मण तथा वाल्मीकि रामायण के बालकाण्ड में आती है। वाल्मीकि रामायण में दास शब्द का प्रयोग प्रेष्य अर्थ में किया गया है। वाल्मीकि रामायण में जाति-दासी का भी उल्लेख है।

मन्थरा कैकेयी को कहती है:—

'प्राप्त वसुमतीं प्रीतिं पुनीतां हत विद्विषाम् उपस्थास्यति कौशल्यां दासी वत्त्वं कृताञ्जलिः'। 'एवं च त्वं सहास्माभिस्तस्याः प्रेष्या भविष्यति पुत्रश्च तव रामस्य प्रेष्यत्वं हि गमिष्यति'। मन्थरा कहती है कि राम के राजा बनने पर, हम सब कौसल्या तथा राम के दास, प्रेष्य, हुकम बजाने वाले नौकर हो जाएँगे।

वाल्मीकि रामायण से पता लगता है कि आर्य्य गृहों में, आर्य सभ्यता में, पुत्रों को बेचना, या किसी दूसरे मनुष्य को जड़ वस्तु की तरह समझना, अनार्यत्व है, म्लेच्छ लोग ही इस प्रथा को पसन्द कर सकते हैं। रामचन्द्र के गुणों का कीर्तन करते हुए कवि लिखते हैं:—

'आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रियदर्शनः'। रामचन्द्र आर्य था, क्योंकि वह मनुष्य मात्र को मनुष्य समझता था। उस ने गुह तथा निषाद को दास व अस्पृश्य नहीं समझा। वह स्त्री जाति को भोग्य नहीं समझता था अपितु, मातृ शक्ति के रूप में उस की पूजा करता था।

राजा दशरथ लाचार हो कर कैकेयी को कहते हैं:—

'अनार्य इति मामार्याः पुत्रविक्रायकं ध्रुवम्, विकरिष्यन्ति रथ्यासु सुरापं ब्राह्मसंभवम्'। मुझ पुत्र विक्रेता को लोग अनार्य कह कर, गलियों और बाज़ारों में बदनाम करेंगे। वाल्मीकि रामायण ने भी दास प्रथा को आर्य सभ्यता के विरुद्ध बताया है।

संस्कृत साहित्य में दास प्रथा के सम्बन्ध में विशेष रूप से प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ मृच्छकटिक है। जो लोग भारतीय दास प्रथा का अनुशीलन करना चाहते हों उन के लिए यह पुस्तक बड़े काम की है। हम यह लिख चुके हैं कि भारत वर्ष में दास तथा आर्य्य शब्द अंग्रेज़ी के (स्लेव) की तरह रूढ़ि नहीं थे। इस का प्रमाण इस ग्रन्थ में मिलता है।

वसन्तसेना को एक स्थान पर (२६पृष्ठ) जन्म दासी, गर्भ दासी कहा है। दूसरे स्थान पर (५१ पृष्ठ पर) उसी को आर्या नाम से सम्बोधित किया है। इसी नाटक के ८२ पृष्ठ पर 'दास्याः पुत्रः' शब्द, सेवक तथा नौकर अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। "एष इदानीं दास्या पुत्रो भूत्वा पन्नीयं गृह्णाति"। शर्विलक मदनिका के साथ विवाह करना चाहता है परन्तु मदनिका वसन्तसेना की दासी है। इस हालत में जब तक वसन्तसेना मदनिका को दासी पन से मुक्त न करे विवाह नहीं हो सकता। इसी सिलसिले में वसन्तसेना की ओर से मदनिका कहती है:—

"शर्विलक! भणिता मयार्या। तदा भणति यदि ममछन्दस्तदा विनार्थं सर्वं परिजन (भृत्यादि को) मभुजिष्यं करिष्याभि"। वसन्तसेना कहती है कि यदि मेरा बस चले तो मैं सब को भुजिष्यता, दासता से बिना किसी आर्थिक अदला बदली के मुक्त कर दूँ।

आखिर चतुर्थ अंक में वसन्तसेना मदनिका को दासीपन से मुक्त कर देती है और शर्विलक का मदनिका से विवाह हो जाता है।

दासीपन से मुक्त मदनिका जाती हुई वसन्त सेना से कहती है:—

मदनिका—परित्यकास्म्यार्यया—आर्या ने मुझे त्याग दिया।

वसन्त सेना—साम्प्रतं त्वमेव वन्दनीया सम्वृत्ता। अब तू भी वन्दनीय आर्या हो गई है।

शर्विलक—स्वस्ति भवत्यै, मदनिके!—सुदृष्टः क्रियतामेष शिरसा वन्द्यतां जनः। यत्र ते दुर्लभं प्राप्तं वधूशब्दावगुण्ठितम्॥

अर्थात्, अब तुझे जिसकी कृपा से वधू-शब्द मिला है उसे नमस्कार कर।

इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि भारतीय रीति रिवाज़ों में दासों को स्वतन्त्र मनुष्य बनाने का विधान था। जिन लोगों ने पश्चिमीय तथा अमेरिकन दास प्रथा का अनुशीलन किया है उन्हें मालूम है कि वह कितनी जटिल थी। दास लोग कई कारणों से बिक जाते थे और वे जिन के हाथ बिक जाते थे वे स्वामी दासों के तन मन सब के मालिक थे। परन्तु भारत में यह हालत नहीं थी। इसी नाटक के अष्टम अङ्क में यह उल्लेख है कि शकार वसन्तसेना को अपने दासों द्वारा मरवाना चाहता है। दास स्त्री हत्या में पाप समझता है और कहता है कि:—

'प्रभवति भट्टकः शरीरस्य। न चारित्र्यस्य'। स्वामी मेरे शरीर के मालिक हैं चारित्र्य या सदाचार के नहीं। इसी प्रकार इस नाटक की गम्भीर आलोचना करने से यह भी पता लगता है कि मध्यकाल में दास प्रथा को दूर करने, निचली जातियों को उच्च जाति में प्रविष्ट कराने का काम बुद्ध भगवान के शिष्यों ने पर्याप्त मात्रा तक किया था।

नाटक का भिक्षुपात्र बुद्धोपासिका वसन्तसेना की प्रशंसा तथा रक्षा करता है क्योंकि वसन्तसेना दासों को दासता से छुड़ाने वाली थी। आर्य चारुदत्त भी इसी विशेषता के कारण सर्व प्रिय है। उस ने लोकापवाद की परवाह न करते हुए जन्म-

दासी वसन्तसेना को आर्य्य जाति में मिलाने में संकोच नहीं किया।

इस सारे विवरण का सार यही है कि भारतीय साहित्य में अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जहाँ दासों को (किसी भी प्रकार के दास क्यों न हों) दासत्व के बन्धन से मुक्त कराने का यत्न होता रहा है।

कौटिल्य-अर्थ-शास्त्र के दास-कल्प प्रकरण में कई उपाय बताये गए हैं जिन के द्वारा भिन्न २ तरह के दासों को दासत्व से मुक्त किया जा सकता है।

इन सब उपायों का विस्तृत विवरण यहाँ अप्रासंगिक है।

यह ग्रन्थ मुसलमान शासन काल से पूर्व-काल का है। इस का मतलब यह है कि भारत वर्ष में चिरकाल से, यूरोपियन सभ्यता की उत्पत्ति से भी पूर्व, दास-प्रथा को दूर करने की कोशिश की जा रही थी।

युरोप में १८ वीं तथा १६ वीं सदी में ही दास प्रथा को नष्ट करने का आन्दोलन जारी किया गया है। यूरोप में एक ऐसा भी समय था जब कि वहाँ के विद्वान् दास-प्रथा को समाज का आवश्यक अंग समझते थे। परन्तु भारत वर्ष के इतिहास में कोई ऐसा विद्वान् नहीं दिखाई देता जो दास प्रथा को आवश्यक तथा अनिवार्य समझता हो। दोनों सभ्यताओं तथा दोनों साहित्यों का यह मौलिक भेद भारतीय सभ्यता की विशेषता को प्रकट कर रहा है। बड़ी २ संख्या में दासों की बिक्री तथा दासों का व्यापार मुसलमानी शासन के बाद ही प्रचलित हुआ था। शूद्रों को दास समझना ठीक नहीं है। कौटिल्य अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति में आर्य तथा शूद्र के गुणों का वर्णन पृथक् किया गया है। ईसाइयों तथा मुसलमानों के क्रान्तिकारी धार्मिक आक्रमण तथा हिन्दुओं की कट्टरता के कारण दलित भाइयों और अब्राह्मणों की एक श्रेणी मध्यकाल से बन गई है जो इस समय भारतीय स्वराज्य के रास्ते में बाधक हो रही है। वर्तमान विदेशी सरकार ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने के लिए जान-बूझ कर इन दलित भाईयों को श्रेणी का रूप देना शुरू किया है।

यदि भारतीय शूद्रों को स्वकीय युद्धों, ऊँची जातियों तथा दलित जातियों के कलह से बचाना है तो प्रत्येक भारत-हितैषी को चाहिए कि वह भारतीय सभ्यता के उच्च आदर्श को सामने रखते हुए दलित जाति को अपना कर, भारतीय सभ्यता को दासता के कलंक से मुक्त करे। तभी हमारा देश सच्चे अर्थ में आर्य्यावर्त (मनुष्य को मनुष्य समझने वाले लोगों का निवास स्थान) बन सकेगा।

हमारा देश आर्यावर्त इसी लिए कहलाता था क्योंकि यहाँ की साधारण जनता आर्य्य थी, वह मनुष्यमात्र को अपना सा समझती थी। उस समय की आर्य्य जनता ने—"आर्य्यः स्वमिव परं पश्यति" के आदर्श को अपने जीवन में चरितार्थ किया था। जब भारत में यह दृश्य फिर उपस्थित होगा तभी हम गौरव के साथ आर्य्य-सभ्यता के नाम पर अभिमान कर सकेंगे।

मैं और तू

(पं० शान्तिस्वरूप विद्यालङ्कार अमरीका)

जाऊँगा मैं भी उधर ही तू जिधर ले जायगा ।
सब खुशी से देख लूंगा जो मुझे दिखलायगा ॥
यदि विपद कुछ आपड़ेगी तो भी तू ही साथ है ।
शोक दुख सब मैं सहूँगा सामने जो आयगा ॥ १ ॥

* * * *

छोड़ ही बैठा हूँ घर तो पास क्या या दूर क्या ।
बांधली मैंने कमर, है कौन जो खुलवायगा ॥
यदि पार हूं मैं सिन्धु के तो तू भी तो उस पार है ।
चिन्ता करूं किस बात की फिर, मैं कि तू भटकायगा ॥ २ ॥

* * * *

जिस नाव में मैं चढ़ रहा हूँ तू वहां पहिले से है ।
फिर क्यों डरूँ ? है कौन जो अब भी मुझे बहकायगा ॥
मँजिल भले ही है कड़ी पर मैं अकेला हूँ नहीं ।
पूरा भरोसा है मुझे-तू ही मुझे पहुँचायगा ॥ ३ ॥

* * * *

तूफ़ान में मेरी कभी यदि नाव यह चकरायगी ।
तो हाथ तेरा डांड बन कर पार खुद करवायगा ॥
मैं तो कहूँगा सर्वदा मैं सब भयों से दूर हूँ ।
तू सूर्य है मेरे निकट, फिर भय-तिमिर क्या छायगा ॥ ४ ॥

* * * *

जब बादलों की गड़गड़ाहट भी डरावेगी मुझे ।
तू ही चमक कर बादलों में मार्ग तब बतलायगा ॥
पीछे कदम रक्खूँ न मैं प्रभु शक्ति वह तू दे मुझे ।
तेरे बिना है कौन जो मुझ से मुझे मिलवायगा ॥ ५ ॥

भगवती मदिरा

(आचार्य गड़बड़ानन्द)

महात्मा गान्धी का कहना कि 'शराब के दूर होने से भारत स्वराज्य के नज़दीक पहुँच जायेगा' मुझे कभी सच नहीं मालूम हुआ। पिछली लड़ाई में अंग्रेज़ी सरकार रोज़ हज़ारों बोतलें सिपाहियों को पिलाती थी। यही कारण है कि 'देवी' ने सिद्ध हो कर बृटिश सरकार को फ़तह दी। स्वराज्य की लडाई में काँग्रेस के योद्धा बग़ैर ब्राण्डी के क्या ऊँघा करेंगे ?

* * *

कल देखा कि एक महात्मा बाज़ार की गन्दी गली में समाधि लगाये भगवती ब्राण्डी का आराधन कर रहे हैं। पता लगा कि यह महात्मा 'देवी' के प्रताप से द्वन्दातीत हो चुके हैं। 'विषय' और 'विषयी' का भेद टूट चुका है। सुख, दुःख का पर्दा उठ चुका है। महात्मा बोले—"मैं सूरज में विचर रहा हूँ, चाँद में घूम रहा हूँ"। मैं समझ गया कि भगवती देवी के प्रताप से महत्मा को सब अणिमादि सिद्धियाँ मिल चुकी हैं। सूरज चाँद को जब चाहें हाथ लगा सकते हैं। थोड़ी देर में महात्मा उठे और गालियों का 'सहस्रनाम' जपते हुए एक राही पर टूट पड़े। खूब गुत्थमगुत्था हुई। महात्मा को देवी के अनुग्रह से 'हस्तिबल' मिल चुका था; उन्हों ने राही को पटक दिया, घूंसे और मुक्के से अधमरा कर दिया। लोग चारों ओर से आ इकट्ठे हुए। देवदूत (पुलिस) भी हाज़िर हो गये। महात्मा जी को सदेह स्वर्ग (जेल) पहुँचाया गया। तब से मुझे पता लगा कि देवी का कितना प्रताप है। इस का रस समाधि सिद्ध कराने का एक 'मिक्श्चर' है। जैसे पहिले लोग महीनों पैदल सफ़र कर गंगा आदि तीर्थों पर पहुँचते थे पर आजकल रेलगाड़ी से महीनों का रास्ता दिनों में तय हो जाता है उसी तरह पहिले लोग सालों तप और योग से जिस पद को नहीं पाते थे उसे अब लोग देवी की कृपा से सहज में ही पा लेते हैं। मैं मदिरा को स्वर्ग पहुँचाने की रेलगाड़ी समझता हूँ। इसी लिये सरकार स्वर्ग पहुँचाने का किराया (शराब टैक्स) वसूल किया करती है।

* * *

देवीसिंह नामक "सिद्ध" से मेरा परिचय है। आप किसी समय बम्बई में सुप्रसिद्ध ठेकेदार थे। आपने एक ही साल में ५० हज़ार रुपये कमाये परन्तु "पत्रं पुष्पं फलं तोयं" के अनुसार 'अर्थ' की ममता त्याग सब कुछ 'देवी' के अर्पण कर दिया। संसारी पुरुषों की तरह विषयों में ले जाने वाले अर्थ का सञ्चय नहीं किया। पूजापाठ से देवी प्रसन्न हो गई। आप को 'स्थिर-निर्विकल्प-समाधि' सिद्ध हो गई। दीन दुनियां का तांता टूट गया। अधमी डाक्टरों ने बहुत विघ्न डाले पर साधक की समाधि न टूटी। सांसारिक बन्धन टूट चुके हैं। जीव और ब्रह्म का

भेद भी मिटने वाला है। आशा है कि आप शीघ्र ही 'ब्रह्म-पद' पहुँच जायँगे।

* * *

यह देख कर मेरी देवी में भक्ति पहिले से सौगुना होगई है। मेरी समझ में हरेक कांग्रेसमैन को, अपितु हरेक भारतवासी को, रोज़ एक पेग चढ़ा लेना चाहिये, इससे हमारी लुप्त होती हुई अध्यात्मविद्या बच जायेगी। पहिले हरेक को संध्या, यम, नियम, योग सिखाये जाते थे। अब कलियुग के प्रताप से लोगों को फुरसत नहीं है। न कोई सिखाने वाला है और न कोई सीखने वाला है। पेट बढ़ जाने से आसन और प्राणायाम ही सिद्ध नहीं होते, समाधि का तो किस्सा ही न छेड़िये। अब कलियुग में यह 'समाधि-सिद्धकारी-मिकश्चर' ही अवलम्ब रह गया है।

* * *

इस लिये मेरा प्रस्ताव है कि एक 'अखिल-भारतीय-समाधि-सिद्ध-कारिणी-सभा' खोली जाय। इस की शाखायें गाँव गाँव में हों। लोगों को प्राचीन लुप्त अध्यात्म विद्या के रहस्य इस के द्वारा समझाये जाँय। यह बात ठीक है कि इस महान् कार्य के लिये बहुत कम लोग अग्रसर होंगे पर इतना निश्चय है कि देवी के सच्चे भक्तों की संख्या बहुत हो जायगी। प्रचारक कम होंगे पर प्रचार ज़्यादह होगा। कांग्रेस के प्रचारकों की तरह नकली प्रचारक न होंगे। वे सच्चे देवी के उपासक होंगे। इसके अलावा स्वराज्य की समस्या भी खुद हल हो जायेगी। जब सब लोग सदेह स्वर्ग (जेल) पहुँच जायेंगे तो स्वराज्य भी हुआ ही हुआ है। मेरी समझ में जेल जाने का यह सत्याग्रह से अच्छा तरीका है। सरकार देवी को रोक भी नहीं सकती क्योंकि दोनों की पुरानी दोस्ती है। इस लिये हमें चाहिये कि देवी-भक्ति करते हुए जेल जांय। इस में अध्यात्म और राजनीति का समन्वय है। जहाँ एक तरफ़ प्राचीन विद्या का उद्धार होता है वहाँ स्वराज्य भी मिलता है। एक पन्थ दो काज। "किं बहुना विदुषामग्रे"।

दुराचार की चिकित्सा

(लेखक—श्री डा० राधाकृष्ण जी बी. एस सी., एम. बी. बी. एस.)

यह दो प्रकार की है:—

(१) अवरोधात्मक (प्रिवेन्टिव)

(२) अनवरोधात्मक (ऐक्चुअल)

अवरोधात्मक-चिकित्सा

(१) भोजन चिकित्सा

भोजन ऐसा होना चाहिये जो उत्तेजक न हो परन्तु सुपच और पुष्टिकारक हो। मांस, मदिरा, चाय, काफ़ी इत्यादि का सेवन करना सर्वथा वर्जित है। दूध सब से उत्तम भोजन है क्योंकि जहाँ यह एक पूर्ण भोजन है वहाँ यह सुपच और सात्त्विक भी है। अर्थात्, यह रक्त के दबाव को बढ़ाता नहीं है। भोजन चिकित्सा अत्यन्त आवश्यक है।

संक्षेपतः निम्न बातों का ध्यान रखना चाहियेः—

(१) वे भोजन करने चाहियें जिन में हमारी रुचि हो।

(२) एक समय कई प्रकार के भोजन न करने चाहियें। एक समय एक ही प्रकार का भोजन करना बहुत उत्तम है।

(३) सर्वदा भोजन तभी करे जब कि पर्याप्त भूख लगी हो क्योंकि बिना भूख के खाने से अमृत भी विष हो जाता है।

(४) मिर्च और मसाले उत्तेजक होने के कारण वर्जित हैं। नमक भी कम खाना चाहिए।

(५) जहाँ तक हो सके भोजन अपने प्राकृतिक रूप में खाने चाहियें। जैसे गन्ने का रस पीने की अपेक्षा उस का चूसना बहुत लाभदायक है।

(६) जहां तक संभव हो भोजन पकाना न चाहिए क्योंकि इस से पोषक पदार्थ (वेटमेन्स) नष्ट हो जाते हैं। यदि पकाना पड़े तो घी या तेल में तल कर कभी न खाना चाहिए।

(७) फल, हरी सब्ज़ी और दूध का अधिकतर सेवन करना चाहिये।

(८) मांस सर्वदा वर्जित है क्योंकि इस से जीवन अस्थिर और छोटा हो जाता है तथा सहन शक्ति और साहस बहुत घट जाते हैं।

(९) पक्ष में एक वार उपवास अवश्य करना चाहिये।

थोड़े में कहें तो भोजन कठोर और सादा होना चाहिये। कठोर इस लिए क्योंकि स्वभावतः चबा कर खाना पड़ता है जिस से लार (सेलाइवा) अपना कार्य कर सकता है।

भोजन करने की रीति का जानना भी आवश्यक है। भोजन सर्वदा शान्ति पूर्वक स्वच्छ स्थान पर धीरे २ चबा २ कर करना चाहिये। झट उसी समय भोजन करना छोड़ देना चाहिये जब कि आमाशय भरने का प्रथम अनुभव हो जिस का कि अभ्यास से पता लग जाता है।

(२) शारीरिक अवस्था

भोजन से उतर कर, उत्तम शरीर, दुराचार से बचाता है। दुराचार एक गिरावट का मार्ग है अतः बड़ा सुगम है। सदाचार उच्च मानसिक अवस्था का चिन्ह है और स्मरण रहे कि उत्तम मस्तिष्क सदा उत्तम शरीर में ही रह सकता है। उत्तम शरीर का मतलब केवल बल ही नहीं प्रत्युत् यह भी है कि किसी काम को मनुष्य एकग्रता से कितनी देर तक कर सकता है। अर्थात्, उस में सहन शक्ति, धैर्य और बल कितना है। अमेरिका के येल विश्वविद्यालय में परीक्षणों द्वारा यह पता लगाया गया है कि सदाचारी यद्यपि दुराचारियों से बहुत बलवान् न भी हों परन्तु उन से ज्यादह निरन्तर कार्य कर सकते हैं। इस से स्पष्ट है कि शक्ति का योग (समय × कार्य) सदाचारियों में दुराचारियों की अपेक्षा अधिक होता है। उत्तम शारीरिक अवस्था प्राप्त करने के लिए व्यायाम, पूरी नींद, हलके सछिद्र रंगरहित क-

पड़े और ब्रह्मचर्य का सेवन करना चाहिए।

व्यायाम इस प्रकार का करना चाहिये जिस से हृदय धीरे २ बलवान् होता रहे, अर्थात्, उस पर बहुत और सहसा भार न पड़ जावे तथा जब तक शरीर काम करता रहे तब तक हृदय साथ देता रहे। परीक्षणों से पता लगा है कि ये गुण हमारे आसनों में अधिकतर पाये जाते हैं। व्यायाम ऐसा करना चाहिए कि जिस से पेशियें सख़्त न हो जावें परन्तु विश्राम की अवस्था में बड़ी कोमल और कार्य करने पर लोहे जैसी कठोर हो जावें। अर्थात्, उन में संकोच और विकास की शक्ति पर्याप्त मात्रा में हो। आसनों में यह गुण भी मिलता है। हृदय और पेशियों को बलवान् करने के साथ २ फुफ्फुस का भी शक्तिशाली बनाना अत्यन्त आवश्यक है। यह स्वच्छ खुले स्थान में प्राणायाम करने से हो सकता है। प्रत्येक व्यक्ति की कम से कम ३ इन्च छाती फूलनी चाहिये।

(३) मानसिक अवस्था

वैसे तो उत्तम शरीर भी आत्म-विश्वास उत्पन्न कर के मानसिक अवस्था की उन्नति में सहायक होता है परन्तु सदाचार के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि मन स्थिर और एकाग्र हो। यह गुण उत्तम विषयों पर मनन करने से आ सकता है। योगाभ्यास बहुत उपयोगी है यदि शारीरिक अवस्था को भुला न दिया जावे। मानसिक अवस्था की उन्नति के लिए सत्संग, उत्तम दृश्यों का देखना, कभी २ एकान्त सेवन, उपवास, स्वाध्याय, संध्या और सदुपदेश श्रवण भी बहुत लाभदायक हैं।

(४) सदाचार शिक्षण

सदाचार के भावों की वृद्धि के लिये शिक्षण अत्यन्त आवश्यक है। प्रारम्भिक अवस्था में बच्चों को ऐसे स्थानों से हटा लेना चाहिये जहाँ दुराचार सम्बन्धी बात-चीत, दृश्य इत्यादि की संभावना हो। अतः एकान्त सेवन और स्थिर निरीक्षण की अत्यन्त आवश्यकता है। सदाचार शिक्षण का तब तक कोई लाभ नहीं जब तक कि गुरु और अध्यापकों का अपना आचार शुद्ध न हो क्योंकि आचार सदा अनुकरण करने से उन्नत होता है। सदाचार शिक्षण में शारीरिक दण्ड का प्रयोग बहुत कम करना चाहिये क्योंकि जहाँ इस से अंग-भंग होने का भय है वहाँ मार खा खा कर कभी २ बच्चों में लिङ्ग-सम्बन्धी दोष भी उत्पन्न हो जाते हैं। विशेषतः जब कि दण्ड नितम्ब और गालों पर दिया जाता है। परन्तु सदाचार शिक्षण के लिये दण्ड देना सर्वथा वर्जित नहीं है क्योंकि दण्ड मिलने पर बच्चों को पता लग जाता है कि दुराचार से एक यह भी हानि है। सर्वदा भर्त्सना और ताड़ना हानिकारक है। जहाँ हमें बच्चों को दुराचार की हानि बताने के लिए कभी २ दण्ड देना चाहिये वहाँ सदाचार के लाभ बताने के लिये कभी २ प्रशंसा

और इनाम भी देना चाहिये। यह ध्यान रहे कि सर्वदा प्रेम और कोमलता बच्चों को दुराचारी बना देते हैं। अध्यापकों का व्यवहार कोमल और दृढ़ होना चाहिये। सदाचार की शिक्षा देते समय इस बात का निश्चय कर लेना चाहिये कि बालक पूरा बदमाश तो नहीं है। यदि हो तो उस के लिये उत्तम स्थान पागलख़ाना है।

(५) कार्य्यतत्परता

बच्चों को सर्वदा किसी न किसी काम में लगाये रखना चाहिये। इस में कोई सन्देह नहीं कि एक ही प्रकार का कार्य बहुत समय तक करते रहने से थकावट आ जाती है परन्तु कई प्रकार के कार्य बदल बदल कर करने से मन लगा रहता है। तथापि इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि बालक बुरी तरह थक न जावें। कार्यतत्पर रखने के लिये विद्यालय के अतिरिक्त समयों में आलेख्य, भजन, बढ़ईगिरी तथा अन्य शारीरिक श्रम के कार्य लाभदायक हैं।

(६) रोग-रक्षा

निम्न लिखित रोगों से उसे बचाना चाहिये।

(क) कब्ज या मलबन्धः— इस के लिये अच्छे भोजन के अतिरिक्त निम्न बातों का ध्यान रक्खें। प्रातः उठते ही एक गिलास जल घूंट घूंट कर के पीवें परन्तु जिन को हृदय के रोग हों उन को इस से सावधान रहना चाहिये। अनीमा तथा साधारण औषध-जैसे पैराफ़ीन का तेल, मधुयष्ट्यादि चूर्ण का सेवन करना चाहिये। पेट की मालिश करने से कब्ज़ी का निवारण होता है। यदि कब्ज़ी चिरस्थायी हो तो मैकफैडन की विधि उत्तम है। अर्थात्, व्यायाम के मध्य में कई वार गर्म नमकीन जल का सेवन करें।

(ख) भरे हुए मूत्राशय और आमाशयके साथ सोना हानिकारक है क्योंकि इससे प्रायः स्वप्न-दोष हो जाता है।

(ग) नेत्र रोग हो तो इन्हें अवश्य ठीक करवा लेना चाहिए।

(घ) मूत्रेन्द्रिय को स्वच्छ रखना चाहिये।

अवरोधात्मक चिकित्सा

यदि कोई दुराचारी हो जावे तो उपरोक्त चिकित्सा के अतिरिक्त निम्नलिखित चिकित्सा के करने की भी आवश्यकता होती है:—

(१) रोगी को बुरी संगत से तत्काल हटा लेना चाहिये। विदेश पर्यटन आवश्यक है तथा एकान्त सेवन सर्वथा वर्जित है। सत्संग, उत्तम पुस्तकों का पाठ और उत्तम दृश्यों का देखना लाभदायक है। परन्तु नाटक, सिनेमा हानिकारक हैं। रोगी को ऐसे स्थान पर रखना चाहिये जहाँ वह स्त्रियों को न देख सके।

(२) रोगी को किसी कार्य में तत्पर रखना बहुत आवश्यक है। उसे रोग की अवस्था के अनुसार कार्य देना चाहिये। काम लेने में चतुरता, को-

मलता और दृढ़ता का होना आवश्यक है।

(३) प्रारम्भ में पर्याप्त उपवास कराना चाहिये, तदनन्तर केवल दूध और फल देने चाहियें। ज्यों ज्यों उस की मानसिक अवस्था उन्नत होती जावे त्यों त्यों भोजन की मात्रा और गरिष्ठता भी बढ़ाते जावें परन्तु उत्तेजक भोजन सर्वथा वर्जित हैं।

(४) जब शारीरिक अवस्था अच्छी हो जावे तो व्यायाम, प्राणायाम और योगाभ्यास करवाने चाहियें परन्तु ऐसा न हो कि सब काम सहसा आरम्भ किये जावें।

(५) रोगी को पूरी नींद लेनी चाहिये। इसके लिये यदि सोने से पहले ठंडे जल से रोगी को स्नान कराया जाय और लघुशंका के लिये भी भेजा जाय तो उत्तम हो, ताकि सोने से पहले उस का मूत्राशय खाली रहे। रोगी को सीधा न सोने देना चाहिये, किसी करवट सुलाना लाभदायक है। प्रातः ज्यों ही रोगी की नींद खुले त्योंही रोगी को उठा देना चाहिये।

(६) स्नान रोगी की मानसिक अवस्था पर बहुत प्रभाव डालता है। यह ठण्डे जल से करवाना चाहिये तथा इस के पीछे शुष्क कपड़े से शरीर भली प्रकार पोंछना लाभदायक है। उष्णपाद स्नान (हौट-फ़ुट-बाथ) और शीत नितम्ब-स्नान (कोल्ड-हिप-बाथ) भी लाभदायक हैं।

(७) तीव्र और भयंकर अवस्थाओं में रोगी को नपुंसक करना उत्तम है जिस से रोगी अपने जैसी बुरी सन्तान उत्पन्न न कर सके। यदि विवाह ही न किया जाय तो अच्छा है अन्यथा पुरुषों में अण्डधारक रज्जु (स्परमैटिक कोर्ड) को बाँध देने से बड़ी सुगमता से नपुंसक किया जा सकता है।

(८) औषधि-चिकित्साः—

निम्नलिखित औषधियाँ लाभदायक हैं:—

(१) पौटासियम ब्रोमाइड
(२) सोडियम ब्रोमाइड
(३) अमोनियम ब्रोमाइड
(५) स्पृट क्लोरोफ़ार्म
(३) टिञ्चर बैलाडुना
(७) टिञ्चर हायोसियामस.

यदि रोगी का मूत्र बहुत अम्ल क्रिया वाला हो तो सोडा बाईकार्ब देना चाहिए।

तीव्र अवस्थाओं में टिञ्चर ओपिआई और मौरफ़ीन का इन्जेक्शन करना लाभदायक है।

निम्नलिखित आयुर्वैदिक औषधियें भी इस के लिये उपयोगी हैं:—

(१) सौंफ़
(२) तवाशीर
(३) इलायची
(४) इन्द्र जौ
(५) चाँदी का वर्क़
(६) धनियाँ
(७) कमर कस
(८) चने
(९) लस्सी

बहुत भयंकर और असाध्य रोगियों का सब से अच्छा इलाज पागलख़ाना ही है।

गङ्गा की बाढ़

(पं० वागीश्वर जी विद्यालङ्कार)

क्या व्योम में हैं पंख वाले शैल काले घूमते
या मत्त दिग्गज हैं दिगन्तों में निरंकुश झूमते।
क्या सत्व रज को जीत कर सर्वत्र तम है छा रहा
अथवा प्रलय की घोर रातों का प्रबल दल आ रहा ॥ १ ॥

* * * * *

क्या फूट निकला फोड़ कर पाताल को अंधेर है
या फैलता फुंकार कर यह फनियरों का ढेर है।
क्या काल की काली निराली झंडियाँ फहरा रहीं
या गोद से रवि की सुता है गिर रही लहरा रही ॥ २ ॥

* * * * *

क्या घिर रहा सब ओर दानव राज का परिवार है
या दिख रहा विकराल यह कलिकाल ही साकार है ।
क्या भूल कर ये पुष्करावर्त्तक अभी हैं आ रहे
अथवा हमारे पाप ही प्रत्यक्ष हैं मँडरा रहे ॥ ३ ॥

* * * * *

क्या प्रेतपति के हैं भयंकर भूरि भैंसे भागते
या फिर रहे हैं पड़ितों के शाप जीते जागते।
क्या आज शंबरराज ने निज जाल है फैला दिया
अथवा किसी मायावि ने दुर्जेय जादू है किया ॥ ४ ॥

* * * * *

क्या नीलकण्ठेश्वर अकुण्ठित चण्ड-ताण्डव कर रहे
उनकी जटाओं के विकट हैं जूट जाल बिखर रहे।
या विश्व कर्मा चित्र अम्बर में बनाने के लिये
यह पृष्ठ काला कर रहा है बत्तियों से देखिये ॥ ५ ॥

* * * * *

क्या विश्व की रंग स्थली में शीघ्र ही नाटक नया
दुःखान्त कोई खेलने को काल नट है आ गया।
आकाश में कैसी अलौकिक चाँदनी नीली तनी
नीली जवनिकायें पड़ीं शोभा अनोखी है बनी ॥ ६ ॥

प भाँति सब के लोचनों को चिर-चकित करते हुवे
ा ओर से घन घोर घन घुमड़े सलिल झरते हुवे।
ा मन्दराचल से मथित यह सिन्धु करता शोर है
गूँजता गिरिराज में मृगराज का रव घोर है ॥ ७ ॥

* * * * *

क्या चोट खाकर वज्र की गिरि रो रहे सब ओर से
या ये करोड़ों हो नगाड़े बज रहे हैं ज़ोर से।
इस छोर से उस छोर तक यूं दमकती है दामिनी
मानो उगलती जा रही है आग यह नट-भामिनी ॥ ८ ॥

* * * * *

क्या हो रहा फिर आज देवासुर महा-संग्राम है
बादल न ये पर अग्निबाणों का धुंआ उद्दाम है।
बूंदें नहीं ये किन्तु तीरों की प्रबल बौछार है
ये गरजते घन हैं न, छुटता वज्र बारंबार है ॥ ९ ॥

* * * * *

सब हो रहे हैं एक, जल-थल, लग गई ऐसी झड़ी
पथ भूल कर आकाश गङ्गा आज है क्या गिर पड़ी।
भरपूर भूतल पर बरसता वारि मूसल धार है
क्या पान लेकर कूदता यह वरुण का परिवार है ॥ १० ॥

* * * * *

क्या आज ऐसा बरस कर यह फिर न बरसेगा कभी
क्या चार भूतों की मिटा देगा जगत से बात भी।
क्या भूमि भर को क्रोध से सागर बना देगा अभी
क्या सोख कर सारा सलिल सागर सुखा देगा सभी ॥ ११ ॥

* * * * *

कितने दिनों से सूर्य भी शश-शृङ्ग सा है हो गया
इन बादलों से हार कर क्या मुंह छिपा कर सोगया।
क्या घोर घन-वन में भटक कर वह कहीं है खो गया
हर लेगया है तेज उसका भी ऋतु-ज्वर-रोग या ॥ १२ ॥

* * * * *

वह सामने भागीरथी है देखिये अठला रही
लहरा रही, छहरा रही, घहरा रही, भहरा रही।
कल थी वियोगिन सी मलिन मन, छीन तन दिखला रही
वह आज प्रिय उपकण्ठ से मिल कर परम सुख पा रही ॥ १३ ॥

उठतीं तरंगें तुंग हैं स्वाधीनता से खेलतीं
जो वस्तु आगे आगई, ले जारही हैं ढेलतीं।
कल-गान करतीं, पवन से पहचान करतीं, झूलतीं
चलतीं, मचलतीं हैं विचलतीं हर्ष से हैं फूलतीं ॥ १४ ॥

* * * * *

'हैं! किन्तु यह क्या बात'–चारों ओर पानी घिर गया
सब के प्रमोदामोद पर इक साथ पानी फिर गया।
क्षणमात्र में ही छोड़ कर वर रूप ये मायाविनी
'सूरप-नखा' सी हो गई उद्धत महा-भयदायिनी ॥ १५ ॥

* * * * *

'अति है बुरी सर्वत्र'-क्या यह ही सिखाने के लिये
अथवा भयंकर रूप ही अपना दिखाने के लिये,
तट तोड़ कर, झट छोड़ कर सीमा, निकट गृह फोड़कर
बढ़ने लगी है, देखती पीछे नहीं मुंह मोड़ कर ॥ १६ ॥

* * * * *

गिरने लगी दीवार गल-गल कर धड़ा-धड़ ज़ोर से
हैं शब्द भीषण आरहे, इस ओर से उस ओर से।
काली अमावस की छटा, उस पर घिरी है घन-घटा
आकाश है पड़ता फटा, आतंक है आकर डटा ॥ १७ ॥

* * * * *

भूले अशन, भीगे वसन, बजते दशन हैं शीत से
सब ढूंढते फिरते शरण हैं मरण से हैं भीत-से।
छुटती नहीं ममता किसी से देह की, निज गेह की
धन धान्य में है मन लगा, स्थिति वृक्ष में है देह की ॥ १८ ॥

* * * * *

गृह हीन दीन बिलख रहे नर और नारी हैं सभी
हे नाथ! दिखलाना हमें क्या और है तुमने अभी?
यह क्या हुवा! हैं! वृक्ष भी–जिस का सहारा था लिया
जड़ से उखड़ कर गिर पड़ा, चुप-चाप आगे चल दिया ॥ १९ ॥

* * * * *

क्या आज जीवित ही हमें यह नरक में ले जायगा
ऊपर कभी, नीचे कभी, गोते हमें लगवायगा।
बिच्छू विषैले बह रहे हैं, सांप हैं फुंकारते
बढ़ते हमारी ओर ही हैं आ रहे मुंह फाड़ते ॥ २० ॥

बैठे हुवे ही छप्परों पर लोग कोई बह गये
कोई बिचारे हाय ! तिनके को तरसते रह गये ।
दुख देखने को जन्म-भर बच्चा किसी घर बच रहा
रोना सुनाने के लिये बूढ़ा कहीं पर बच रहा ॥ २१ ॥

* * * * *

कितनी जननियों की भरी वे गोद खाली हो गईं
कितनी सुहागिन आज फूटे भाग्यवाली हो गईं ।
बिछुड़े सहोदर से सहोदर संग सारे छुट गये
है कौन कह सकता कि कितने लाल किन के लुट गये ॥२२॥

* * * * *

क्या हाल पशुओं का हुवा ? यह बात ही पूछो नहीं
जिस ओर जिन की मौत थी वे बह गये बेबस वहीं ।
रोते बिलखते ही हज़ारों दलदलों में गड़ गये
रक्षक न कोई भी बना—सब मर-मरा कर सड़ गये ॥ २३ ॥

* * * * *

हे भगवती भागीरथी ! यह खेल तूने क्या किया
अपने सुतों को नागिनी बन कर स्वयं ही खा लिया ।
तूने सहस्रों ही फनों से वह किया संहार है
जिस ओर देखो- आज करुणा पूर्ण हा-हा-कार है ॥ २४ ॥

* * * * *

निज गोद में सोते हुवों को मारना क्या धर्म है
अथवा छिपा इस कर्म में भी और ही कुछ मर्म है ।
तू हो गई परदेसियों की आज दासी दीन है
देखा न दुनियाँ में कहीं पर दीन का भी दीन है ॥ २५ ॥

सम्पादकीय

बेलगांव कांग्रेस

पिछले दिनों बम्बई में, देश भर के नेताओं ने मिल कर एकता सम्मेलन किया था। सम्मेलन की समाप्ति पर मौलाना मुहम्मद अली ने पिछले साल की महासभा के प्रधान की हैसीयत से देश के भिन्न २ दलों को बेलगांव में अपने २ अधिवेशन करने का निमन्त्रण दिया था। छोटे-मोटों से तो आशा थी ही कि वे बेलगांव में ही आकर जुटेंगे परन्तु लिबरल- फैडरेशन तथा मुस्लिम-लीग से भी पूरी उम्मीद थी कि वे क्रमिक एकता के लाने में अपना हाथ बटाएंगे । इन- दोनों दलों के ने-

ताओं ने अपने अधिवेशनों को बेलगांव में न कर के अपनी अनुदारता का खूब खुल कर परिचय दिया है।

बम्बई के एकता- सम्मेलन का प्रत्यक्ष-फल अपरिवर्तनवादी तथा स्वराज्य वादियों का समझौता है। समझौते का रूप मताधिकार में परिवर्तन है। पहले चार आना देकर सब कोई महासभा के सदस्य बन सकते थे, अब प्रतिमास दो हज़ार गज़ सूत देने पर ही किसी व्यक्ति को मेम्बरी के योग्य समझा जायगा। इस सूत को कातने के लिये प्रत्येक व्यक्ति का स्वयं चरखा चलाना आवश्यक नहीं है। खरीद कर भी इतना ही हथ-कता सूत देने पर मेम्बरी के लिये महासभा की शर्त पूरी हो जाती है।

इस समझौते का वास्तविक अभिप्राय क्या है? भाषा बड़ी छलिन है। वह भावों को प्रकट करने के स्थान पर छिपाने का कार्य अधिक करती है। इसी लिये जहां-तहां इस समझौते का अर्थ चरखे की विजय के रूप में उद्घोषित किया जा रहा है। कहा जाता है कि अब से चार आने की जगह दो हज़ार गज़ सूत महासभा की मेम्बरी के लिये आवश्यक शर्त हो गई है। यह ठीक भी है। परन्तु यह कहते हुए इस बात को न भुला देना चाहिये कि मताधिकार के लिये सूत को जो रूप दिया गया है वह स्पष्ट शब्दों में चरखे को विस्तृत माया को समेट लेता है। मोटे शब्दों में कहना चाहें तो कह सकते हैं कि अब सूत का कातना प्रत्येक सभासद् के लिये आवश्यक नहीं है। प्रस्ताव के शब्दों में यह नहीं है, परन्तु इन्हीं भावों के लिये प्रस्ताव का एक २ शब्द चुना गया है और इसी लिये समझौता सम्भव हो सका है।

हमारी सम्मति में बेलगांव की कांग्रेस में महात्मा गान्धी ने अपने आप को बिल्कुल स्वराज्यवादियों के हाथ में दे दिया है। यह कहने में कोई अत्युक्ति न होगी कि इस समय दबे हुए शब्दों मे महात्मा गान्धी ने महासभा से अपने कार्य-क्रम को स्थगित करा कर स्वराज्य-वादियों के कार्य-क्रम को मौका दिला दिया है। इस से महात्मा गान्धी के अनुयायी तो असन्तुष्ट हुए है परन्तु इसी से महात्मा गान्धी ने देखने वालों के सन्मुख सिद्ध कर दिया है कि वे निरे महात्मा नहीं हैं, अपितु, राजनीति के क्षेत्र में सधे हुए खिलाड़ी हैं।

महात्मा गान्धी ने स्वराज्य वादियों को मौका दिया है। अवस्थाओं को दृष्टि में रखते हुए उन्हें खुले तौर से शायद मन-मानी करने की छुट्टी नहीं दी जा सकती थी, इस लिये जिस प्रकार भी उन के कार्य-क्रम के चलने में स्वराज्य-वादियों को सहायता दी जा सकती थी, वह सब, महात्मा गान्धी ने बड़ी बुद्धि-मत्ता से बेलगांव में दे दी है। अब स्वराज्य-वादियों को अपनी ज़िम्मेवारी समझ कर कार्य करना होगा। जब हम यह सोचते है कि महात्मा जी तथा उनके अनुयायियों ने अनिच्छा तथा प्रतिकूल-विचार-धारा के होते हुए भी स्वराज्य-वादियों को काम करने का मौका दिया है तब

तो देशबन्धु दास और पण्डित मोतीलाल नेहरू की ज़िम्मेवारी और भी बढ़ जाती है। उन्हीं के लिये अब तक चलते हुए देश के कार्य-क्रम को गौण रूप दिया गया है। इस अवसर से लाभ उठा कर यदि उन्हों ने देश में अपनी उपयोगिता सिद्ध कर दी तो इस समझौते का लाभ होगा। परन्तु अपनी कृत्कार्यता को परखने से पूर्व, महात्मा गान्धी के कार्य-क्रम ने देश में जो जागृति उत्पन्न कर दी थी उस का उन्हें अवश्य ध्यान रखना होगा। हमें आशा रखनी चाहिये कि स्वराज्यवादी अपने उत्तर-दायित्व को भली प्रकार समझते हुए कार्य करेंगे।

शताब्दी पर साहित्य

मथुरा में धूम-धाम से शताब्दी महोत्सव मनाये जाने की तय्यारियाँ हो रहीं हैं। घर-घर में, प्रतिदिन, प्रातः काल, उत्सव के दिन गिने जा रहे है। आर्य-समाजियों का सब से बड़ा मेला होने वाला है। इस समय का लाभ उठा कर आर्य-समाज के माथे से कलङ्क का टीका सदा के लिये दूर किया जा सकता था, परन्तु उस तरफ़ जन्म-शताब्दी-कमेटी का बहुत कम ध्यान गया है। चारों तरफ़ से आवाज़ आ रही है कि आर्यसमाज में साहित्य बहुत थोड़ा है। ऋषि दयानन्द के ग्रन्थों के अतिरिक्त आर्य-समाज के साहित्य में जो भी ग्रन्थ लिखे गये हैं उन में से थोड़ों को छोड़ कर बाकी को तो साहित्य में गिनते हुए भी हमें शर्म आती है। ऐसी अवस्था में इस बहुमूल्य अवसर का लाभ न उठा कर स्वामी जी के ग्रन्थों को नये कागज़ों पर छापने और उनकी नई २ जिल्दें बान्धने की तरफ़ ही अधिक ध्यान दिखाई देता है। हमारे कहने का यह अभिप्राय कभी नहीं कि स्वामी जी के ग्रन्थों का पुनः प्रकाशन रोक दिया जाय। उन का तो जितना भी प्रचार हो उतना ही वैदिक-धर्म का नाम उज्ज्वल होगा। परन्तु उन्हीं की पुनरावृत्तियें छपवाने और सुनहरी जिल्दें बन्धवाने तक ही यदि हमारी दौड़ रही तब तो आर्य-समाज में साहित्य की कमी वैसी की वैसी बनी रहेगी। विद्वान् लोगों के आर्य-समाज की तरफ़ न झुकने का मुख्य कारण यह भी है कि हमारे यहां उच्च कोटि के साहित्य का अत्यन्त अभाव है। ट्रेक्टों की संख्या गिजाइयों की तरह बढ़ती चली जा रही है और सम्भवतः शताब्दी के अवसर के लिये भी सकड़ों तीसरे दर्जे के ट्रैक्ट तय्यार हो रहे हों। परन्तु याद रखनी चाहिये कि ऐसी घटिया किताबों की बढ़ती के साथ आर्य-समाज का गौरव घटता चला जा रहा है।

शताब्दी के अवसर पर आर्य-समाज के अगुओं को साहित्य-वृद्धि करने की तरफ़ जितना ध्यान देना चाहिये था उतना न देते देख कर हमें खेद होता है। क्या यह उचित नहीं कि जिस ऋषि की स्मृति मनाने के लिये हम हज़ारों रुपया ख़र्च कर डालेंगे, सात दिन का मेला कर के घरों को लौट आवेंगे, उस के लिये, साहित्य उत्पन्न करने के रूप में ऐसी

अमिट यादगारें बनाई जातीं जो आर्य-समाज के इतिहास में अपना स्थान स्थिर रूप से ग्रहण कर लेतीं ?

गुरुकुल-वृन्दावन

युक्त-प्रान्त की प्रतिनिधि सभा ने निश्चय कर लिया है कि वे अपने गुरुकुल में ऋषि दयानन्द की पाठविधि को अक्षरशः चलावेंगे । इसी हेतु से उन्होंने एक दम शिक्षा-क्रम में परिवर्तन कर दिया है । कार्यकर्ताओं में इसी दृष्टि को लक्ष्य में रखते हुए अपेक्षणीय परिवर्तन किया गया है। वृन्दावन-गुरुकुल की सञ्चालक सभा ने यह कार्य बड़े महत्व का किया है । परन्तु अपने इरादे को क्रियात्मक रूप देते हुए उन्हों ने बहुत जल्दी की है । हमारी सम्मति में इस प्रकार कार्य प्रारम्भ करने की अपेक्षा यदि पहले विद्वानों की सलाह से प्रचलित पाठविधि का निश्चय कर लिया जाता और फिर चलती हुई पाठविधि को स्थगित किया जाता तो अच्छा रहता।

ऋषि दयानन्द ने जो पाठविधि रखी है उसे भी वर्तमान अवस्थाओं के अनुसार निश्चित रूप देना अन्तरङ्ग या प्रतिनिधि सभा का कार्य नहीं है। इन सभाओं में चुनाव के अनुसार सभासदों का निश्चय होता है । उन सब का शिक्षा के सिद्धान्तों से परिचित होना आवश्यक नहीं है । यदि ऋषि दयानन्द की शिक्षा पद्धति को ही चलाना है तो भी उसे प्रारम्भ करने से पहले उस के सम्भवनीय क्रियात्मक रूप पर भली भांति विद्वानों का विचार हो जाना अत्यन्त आवश्यक है। हम युक्तप्रान्त की अन्तरङ्ग सभा के फैसले को सराहना करते हैं परन्तु सभा के कार्यकर्ताओं के सन्मुख यह परामर्श रखना चाहते हैं कि वे पाठविधि का स्वयं निर्धारण करने की अपेक्षा इस विषय पर भिन्न भिन्न प्रान्तों के योग्य विद्वानों की सलाहों से फ़ायदा उठावें तो अच्छा है ।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु उत्तम है। सर्दी अच्छी पड़ रही है। कभी कभी बादल घिर आते हैं, थोड़ी बहुत वर्षा भी हो जाती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य साधारणतः अच्छा है। चिकित्सालय में मामूली ज्वर के एक दो रोगियों के सिवाय कोई रोगी नहीं।

पढ़ाइयां नियम पूर्वक चल रही हैं। स्नातक परीक्षा ६ फ़रवरी को शुरू होगी। अन्य श्रेणियों की परखपरीक्षायें भी इन्हीं दिनों होंगी । अतएव ब्रह्मचारी परीक्षाओं की तैय्यारी में लगे हुवे हैं। स्नातक परीक्षा को छोड़ कर शेष परीक्षायें शताब्दी महोत्सव के बाद १५ मार्च से होंगी। अधिकारी परीक्षा भी १५ मार्च से ही होगी।

गुरुकुल मुलतान की दशम श्रेणी के ब्रह्मचारी भी पहिले ही यहां आगये हैं और यहीं पर अन्य ब्रह्मचारियों के साथ अपने पाठ ख़तम कर रहे हैं।

बाढ़ के कारण गुरकुलभूमि में रेत और मट्टी खूब भर गई है। क्रीड़ा क्षेत्रों में भी एक डेढ़ फ़ीट रेत भर गई थी। ब्रह्मचारियों ने परिश्रम कर के दो क्रीड़ा क्षेत्र बिलकुल साफ़ कर लिये हैं—उन में नित्य सायंकाल नियम पूर्वक खेल होते हैं। एक तीसरा क्रीड़ा क्षेत्र भी प्रायः साफ़ हो चुका है। ब्रह्मचारियों का यह परिश्रम अत्यन्त सराहनीय है। एक दो वर्षायें पड़ जाने से अब इन में घास भी पर्याप्त उग आयी है।

बाढ़ के कारण गिरे हुये मकानों की मरम्मत शुरु होगयी है। जो मकान बिलकुल रहने योग्य नहीं रहे उन्हें तो अब खड़ा करना व्यर्थ ही है—क्योंकि कांगड़ी की भूमि से गुरुकुल को उठा लेना अब प्रायः निश्चित ही हो गया है। जो मकान अभी रहने लायक हैं उन्हें काम लायक बनाया जा रहा है।

गुरुकुल को भविष्य में कहां रखा जावे, इस बात का अभी अन्तिम निर्णय नहीं हुवा। प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में कोई निर्णय न हो सका था। उसके बाद अन्तरंग सभा ने अपनी बैठक कर सर्वसम्मति से यही निश्चय किया है कि गुरकुल को कांगड़ी की भूमि से उठा लिया जावे, पर उसे हरिद्वार के आस पास कहीं रखा जावे। इस हरिद्वार के आस पास स्थान का निश्चय करने के लिये डाकृरों का कमीशन भी बनाया गया है। वह कमीशन भूमि को देख चुका है पर अभी उसने अपनी लिखित सम्मति नहीं दी।

भूमि के सम्बन्ध में अन्तिम निश्चय जनवरी के अन्त में प्रतिनिधि सभा के साधारण अधिवेशन में ही होगा। कमीशन की रिपोर्ट भी संभवतः उस में पेश होगी। पर अधिक सम्भावना यही है कि ज्वालापुर के पास गुरकुल को रखने का निश्चय किया जावेगा।

इस वार गुरकुल का महोत्सव शताब्दी के कारण होली के दिनों में न होकर ईस्टर की छुट्टियों में होगा। बाढ़के कारण उत्सव गुरकुल भूमि में होना कठिन है। अतएव मायापुर वाटिका में ही उत्सव करने का निश्चय किया गया है

पिछले दिनों सभाओं की खूब रौनक रही। प्रति वर्ष अखिल भारतीय राष्ट्र महासभा के दिनों में यहां भी कांग्रेस का अधिवेशन वाग्वर्धिनी सभा की ओर से किया जाता है। इस वार भी यह खब धूम-धाम से किया गया। कांग्रेस के प्रधान, उपाध्याय देवराज जी सेठी थे। कांग्रेस का अधिवेशन चार दिन तक हुवा। कई आवश्यक प्रस्ताव स्वीकृत हुवे। खद्दर के मताधिकार का प्रस्ताव भी पेश हुवा पर बहुत विवाद के बाद गिर गया। इसके साथ गुरुकुल में चर्खे और खद्दर को सर्व प्रिय बनाने का प्रस्ताव स्वीकृत हुवा। इन प्रस्तावों के अतिरिक्त बङ्गाल आर्डिनांस, प्रवासी भारतीयों तथा ऐसे ही अ-

न्यान्य विषयों पर प्रस्ताव स्वीकृत हुवे।

इसके अतिरिक्त वाग्वर्धिनी सभा का जन्मोत्सव भी पिछले सप्ताह बड़े समारोह के साथ मनाया गया। स्नातक सत्यकेतु जी विद्यालंकार इसके सभा पति थे। सभा के अन्त में एक सहभोज भी हुवा।

गुरुकुल जन्मोत्सव की तिथि इस वार जन्मशताब्दि के उत्सव के बीच में ही पड़ती है। परन्तु उस समय अन्यान्य कार्यों के कारण वहां पर 'जन्मोत्सव' मनाना कठिन है अतएव १३ फ़रवरी को (१ फाल्गुन शुक्रवार) कुल जन्मोत्सव गुरुकुल-भूमि में ही मनाने का निश्चय किया गया है। सम्भवतः कांगडी भूमि मे यह अन्तिम जन्मोत्सव ही होगा अतः यह आशा की जाती है कि कम से कम स्नातक भाई तो अवश्य ही इस वार अधिक संख्या में उपस्थित होंगे। जन्मोत्सव मनाने के बाद ही सब कुलवासी शताब्दि महोत्सव के लिये यहां से चल पड़ेंगे।

उपाचार्य रामदेव जी अफ्रीका से शीघ्र ही लौटने वाले है। वे सम्भवतः ७ फ़रवरी को बम्बई उतरेंगे।

शाखाएँ

सभी गुरुकुलों के उत्सव समीप आ रहे हैं। बची हुई पढ़ाइयाँ समाप्त हो रही हैं और परीक्षाओं के लिए तय्यारियाँ हो रही हैं। गुरुकुल कुरुक्षेत्र के उत्सव का अभी कुछ तय नहीं हो पाया। इन्द्रप्रस्थ का उत्सव सम्भवतः होलियों की छुट्टियों में मनाया जायगा। रायकोट गुरुकुल के वार्षिकोत्सव की तिथियां २७-२८-२९ जनवरी निश्चित की गई है। सूपा (गुजरात) गुरुकुल का उत्सव ५-६-७ फर्वरी को होगा। प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार गुरुकुल कांगड़ी से, इन्द्रप्रस्थ, सूपा तथा रायकोट, तीनों गुरुकुलों के उत्सवों पर सम्मिलित होंगे।

कुरुक्षेत्र गुरुकुल में महाशय धर्मदेव जी विद्यार्थी सहायक मुख्याधिष्ठाता तथा पं० सोमदत्त जी विद्यालंकार मुख्याध्यापक का कार्य बड़ी योग्यता से सम्पादन कर रहे हैं। इन्द्रप्रस्थ में पं० अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार के अधिष्ठातृत्व में गुरुकुल बहुत सन्तोष-जनक उन्नति कर रहा है। पं० ईश्वरदत्त जी विद्यालङ्कार बहुत देर तक रुग्ण होने के कारण सूपा गुरकुल से बाहर रहे परन्तु अब वे वहीं पहुँच गये हैं और उन्होंने अपने कार्य को सम्भाल लिया है। पं० ईश्वरदत्त जी (भिषक्) विद्यालङ्कार हरियाने के आस पास जन्म-शताब्दी के उपलक्ष्य में 'अष्टाध्ययी- विद्यापीठ' खोलने वाले हैं जिस में ऋषि-दयानन्द की पाठ-बिधि के अनुसार पठन पाठन होगा।

साहित्य-वाटिका

जन्म-शताब्दी के अवसर पर निम्न स्नातकों की निम्न पुस्तकों के प्रकाशित होने की सूचना हमारे कार्यालय में पहुँची है:—

पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति———— आर्य समाज का इतिहास
पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार———— निरुक्त का हिन्दी-भाष्य
पं० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार ——— ब्रह्मचर्य (अंग्रेज़ी में)
पं० भीमसेन जी विद्यालंकार ———— महाराष्ट्र का इतिहास
पं० महामुनि जी विद्यालंकार ———— ऋषि दयानन्द के जीवन का मनन

मनोविज्ञान—लेखक प्रो० सुधाकर जी एम० ए०। मूल्य, सजिल्द का २) १ मिलने का पता 'गुरुदत्त भवन' लाहौर।—पुस्तक परिश्रम से लिखी गई है। हिन्दी में ऐसी पुस्तकों की अत्यधिक आवश्यकता है। हिन्दी शिक्षणालयों में मनोविज्ञान के लिये इस पुस्तक को पाठविधि में रखा जा सकता है।

अमीर और ग़रीब—ले० प्रो० सुधाकर। उन्हीं से प्राप्तव्य। पुस्तक का प्रतिपाद्य विषय पुस्तक के नाम से स्पष्ट है। इस के भी लिखने में लेखक ने ख़ासी मेहनत की दीखती है। प्रो० सुधाकर जी का पञ्जाब में उत्तम साहित्य उत्पन्न करने का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

व्यभिचार—पुस्तक लिखने का उद्देश्य अच्छा परन्तु तरीका बुरा है। अंग्रेज़ी में इस विषय पर अनेक पुस्तकें हैं और अनेकों में इस विषय का बहुत अच्छे ढंग से प्रतिपादन किया गया है। ग्रन्थ कर्ता ने इस पुस्तक को लिखते हुए अंग्रेज़ी पुस्तकों की सहायता ली है परन्तु इस विषय की अंग्रेज़ी की पुस्तकों के तरीके का अनुकरण नहीं किया। ग्रन्थकर्ता का उद्देश्य व्यभिचार को दूर करना है। इस उद्देश्य से इस विषय पर जितनी भी पुस्तकें लिखी जाँय थाड़ी हैं। परन्तु उन के लिखने का तरीका वह कभी नहीं है जो इस ग्रन्थ के लेखक ने स्वीकार किया है।

चांद—कई पत्र शौक पूरा करने के लिये निकाले जाते हैं और कई काम करने के लिये। चाँद का जन्म स्त्री-संसार में महत्त्व-पूर्ण काम करने के लिये हुआ है और इसी लिये बहुत घाटा सहन करते हुए भी इस पत्र को चलाया जा रहा है। यह मासिक पत्र है। लेखों और कविताओं की दृष्टि से अपने ढंग के सभी पत्रों से बढ़ा हुआ है। यह पत्र प्रत्येक सद्गृहस्थ के घर में आना चाहिये। वार्षिक मूल्य ६॥) रुपये। मिलने का पता— चाँद कार्यालय, हैमिल्टन रोड, इलाहाबाद।

सत्यवादी—हमें यह सूचना देते हुए हर्ष होता है कि पण्डित भीमसेन जी विद्यालंकार जो बहुत देर तक बड़ी योग्यता से 'अर्जुन' का सम्पादन करते रहे हैं अब लाहौर से 'सत्यवादी' साप्ताहिक पत्र को निकालने वाले हैं। पञ्जाब में एक आर्यसामाजिक, साप्ताहिक हिन्दी पत्र के अभाव को देर से अनुभव किया जा रहा है। हमें पूर्ण आशा है कि यह पत्र इस अभाव को दूर कर सकेगा।

आर्य समाजें ध्यान से पढ़ें।

आप को यह सुन कर हर्ष होगा कि गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक-मण्डल की तरफ़ से 'अलंकार' नामक मासिक पत्र 'दयानन्द आर्य भाषा चातुर्मास्य' के प्रथम सप्ताह से [१ (आषाढ़) १९८१ से] प्रकाशित हो रहा है। पत्र ने हिन्दी साहित्य में उच्च कोटि का स्थान प्राप्त किया है। सभी पत्र पत्रिकाओं ने मुक्त-कण्ठ से इस की प्रशंसा की है। (लोकमान्य) लिखता है:—

"आज कल हिन्दी संसार रंग बिरंगी और स्थूल-काय मासिक पत्रिकाओं से परिपूर्ण हो रहा है। परन्तु हमारी राय में हिन्दी भाषा को अलंकृत करने का श्रेय 'अलंकार' को ही हो सकता है। आर्य-सामाजिक क्षेत्र म एक उच्च कोटि के मासिक पत्र की आवश्यकता थी। गुरुकुल कांगड़ी के स्नातक-मण्डल ने इस कमी को पूरा कर दिया है······"

इसी प्रकार अन्य पत्रों ने भी अलंकार का हृदय से स्वागत किया है। अलंकार का उद्देश्य आर्य्य समाज में गम्भीर तथा स्थिर साहित्य को फैलाना है। इस में आर्यसमाज के सभी विद्वानों तथा गुरुकुल के स्नातकों के लेख तथा कविता रहते हैं। प्रत्येक आर्य्य समाज़ तथा समाज के सभासद् के घर में इस उपयोगी पत्र का आना आवश्यक है। वार्षिक मूल्य केवल ३) है। नमूने की एक प्रति का दाम पाँच आना है। ऐसे उच्च कोटि के आर्य्य सामाजिक साहित्य के पत्र की फ़ाइल हरेक समाजी भाई के घर में रहनी चाहिये अतः जल्दी से जल्दी ग्राहक बनने का प्रयत्न कीजिये और लौटती डाक ३) प्रबन्धकर्त्ता अलंकार, गुरुकुल कांगड़ी के नाम भेज दीजिये।

अलंकार का शताब्दी अंक

श्री दयानन्द जन्म शताब्दी के समय 'अलंकार' का शताब्दी अंक बड़ी सजधज के साथ निकलेगा। उस में १०० पृष्ठ रहेंगे। गंगा की बाढ़ से गुरुकुल के जो मकान टूट गये हैं उन के चित्र दिये जायंगे। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के चार चित्र रहेंगे-एक बचपन का, एक वकालत के समय का, एक गुरुकुल के आचार्य्य होने की अवस्था का और एक अब का। विदेश में गये स्नातकों के भी चित्र दिये जायंगे। बड़े योग्यता पूर्ण लेखों का संग्रह रहेगा। गुरुकुल कांगड़ी के सायन्स के प्रोफ़ेसर महोदय ने हवन पर नये २ तजुर्बे किये हैं, वे सब भी एक लेख में दिये जायंगे। इस अंक के लिये ऐसे २ लेख लिखवाये गये हैं जो आर्य्य समाज के सिद्धान्तों के गौरव को बढ़ाने वाले हैं। इस अंक के लिये जिस प्रकार मांग आ रही है उस से पता चलता है कि आर्य्य भाइयों में कितनी श्रद्धा भक्ति तथा समाज से प्रेम है। यदि आपका आर्डर देर में आया तो सम्भवतः आपको निराश होना पड़े अतः इस पत्र के मिलते ही हमें सूचना दीजिये कि आपकी समाज के नाम कितने अंक वी. पी. द्वारा भेजे जाँय। यदि आप वी. पी. द्वारा न मंगवाना चाहें तो रुपया अभी से पेशगी भेज देने की कृपा करें। एक प्रति का दाम आठ आना रखा गया है। आशा है, आप देर न करेंगे।

पं० सत्यव्रत जी प्रिन्टर और पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

ईसाई लोग भी उसी प्रकार के साधनों का प्रयोग करते दिखाई देते हैं। कहीं डराडा दिखा कर, कहीं पैसा दिखा कर, कहीं स्त्री दिखा कर, कहीं धोखा दे कर, भोले भाले हिन्दुओं को धर्मच्युत किया जा रहा है। आश्चर्य यह कि यह सब कुछ धर्म की दुहाई दे कर हो रहा है। हमें यह देख कर असीम दुःख होता है कि हिन्दु इस प्रकार डर कर, लालच में आ कर अपने पूर्व पुरुखाओं को भुलाने तक के लिये तैयार हो जाते हैं। परन्तु इस में शायद उन का इतना दोष नहीं, जितना हिन्दु-धर्म के ठेकेदारों का—शास्त्र के तत्व को न समझ कर उसकी हत्या करने वाले, मोटी २ चोटी तथा जनेऊ रखने वाले, पोथे-पत्री तक दौड़ लगाने वाले पण्डित-पुरोहितों का। विशाल तथा उदार हिन्दु-धर्म को जिस में ग्रीक, रोमन, मंगोलेयन, सब समा गये थे, वर्तमान छुई-मुई का सा रूप देने का पाप इन्हीं लोगों के सिर पर है। हिन्दुओं की इस निर्बलता का फ़ायदा उठा कर ईसाई-मुसलमान अपने २ धर्मों में भर्ती का काम करने में दिन रात एक कर के लगे हुए हैं। इस अनर्थ को रोका जाता है तो झगड़े खड़े हो जाते हैं और हिन्दु-मुसल्मानों के सिर फूट जाते हैं।

ऐसी अवस्थाओं में यह समाचार बड़े हर्ष से सुना जायगा कि रीवाँ रियासत का अनुकरण करते हुए कोटा रियासत में भी महाराजा ने यह आज्ञा प्रचलित कर दी है कि १८ वर्ष से पहले कोई लड़का तथा २० वर्ष से पहले कोई लड़की न स्वयं धर्म-परिवर्तन करे और न किसी दूसरे द्वारा प्रभावित हो कर अपने धर्म को बदले। हाँ, इस आयु के बाद यदि किसी को धर्म परिवर्तन की इच्छा हो तो उसे अव्वल दर्जे के मैजिस्ट्रेट के सामने यह उद्घोषित करना होगा कि वह किसी प्रलोभन, बहक वा डरावे में आकर नहीं प्रत्युत् दूसरे धर्म की आत्मिक उच्चता को समझता हुआ ही उसे स्वीकार कर रहा है। इस प्रकार मैजिस्ट्रेट से प्रमाण-पत्र पाकर ही वह शुद्ध किया जा सकेगा। इन घटनाओं को पत्रों में प्रकाशित नहीं किया जायगा ताकि उन से पारस्परिक वैमनस्य उत्पन्न न हो। अनाथ बालकों की रक्षा उन के सहधर्मी ही करेंगे। जिस अनाथ को उस के सहधर्मी लेने से इन्कार कर देंगे वह राजकीय अनाथालय में भेज दिया जायगा। इस आज्ञा के भङ्ग करने पर ३ वर्ष की सख़्त सज़ा तथा १०००) तक का जुर्माना किया जा सकता है। ऐसे नियम सर्वत्र बनने चाहियें ताकि धर्म अन्त तक बदनाम होने वाली चीज़ ही न बनी रहे।

यम-यमी-सूक्त

वैदिक साहित्य के इस सूक्त पर बहुत विवाद उठ खड़ा हुआ है। हमारे पास इस विषय में कई लेख आये हैं। हम ने गुरुकुल काँगड़ी के योग्य उपाध्याय पं० चन्द्रमणि जी के लेख को 'अलंकार' में खुले तौर से स्थान दिया है। पं० जी निरुक्त के भारी विद्वान् हैं। इनके निरुक्तभाष्य पर हाल ही में आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब ने इन्हें १५०) पुरस्कार रूप से दिये हैं। आप की सम्मति इस विषय पर अच्छी

प्रामाणिक समझी जा सकती है। लेख बहुत बढ़ गया है और इसी लिए इस अंक में हमें पृष्ठों की संख्या भी बढ़ानी पड़ी है परन्तु हमें आशा है कि हमारे पाठक इस लेख को आद्योपान्त पढ़ कर इस से पूरा २ लाभ उठाएंगे क्योंकि इस में योग्य लेखक ने ऋषि दयानन्द तथा पुराणे भाष्यकारों की परस्पर संगति लगाने का बहुत अंश तक सफल-प्रयत्न किया है।

देशबन्धु दास !

(श्रीयुत् माधव शुक्ल)

हाय ! यह कैसा वज्र प्रहार !

क्या सचमुच ही भारत का प्यारा, बंग हृदय का हार,
देशबन्धु चितरँजन त्यागी, छोड़ चला संसार ?
हाय ! हिंद आँखों का तारा, मातृ-भूमि का एक सहारा,
बल, पौरुष, अभिमान हमारा, 'नेशन की' तलवार ।
जिसकी देख शक्ति उत्साही, कांप उठी थी नौकरशाही,
जिसने तोड़ दिया कौंसिल की कुटिल द्वि-दल सरकार ।
मँजुल मधुर-मूर्ति हा प्यारे ! बंग भूमि के हृदय दुलारे !
मम हतभाग्य हिंद नैय्या क्यों छोड़ चले मँझधार ॥

गुरुकुलीय समाचार

ऋतु—आज कल गुरुकुल काँगड़ी में ऋतु बहुत मनोहर है। जङ्गल पूर्ववत् हरे भरे होगये हैं। आकाश में बादल मंडलाते रहते हैं। वर्षा से धुली हुई हिमालय की पर्वतमाला बहुत सुहावनी मालूम पड़ती है। प्राकृतिक सौन्दर्य की छटा निराली है। गङ्गा खूब बढ़ रही है। आमों की बहार होने से प्राकृतिक आनन्द और भी अधिक बढ़ गया है।

स्वास्थ्य—इस मास मायापुर में ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहा। छोटे ब्रह्मचारियों में से ७ ब्रह्मचारियों को बहुत बुखार आया, अन्य भी अनेक ब्रह्मचारी बीमार रहे। ऋतु परिवर्तन इसका कारण है। परन्तु

परन्तु अब अवस्था अच्छी है। बीमार ब्रह्मचारी अच्छे होगये हैं। उनके स्वास्थ्य के लिए पूरा ख्याल किया जा रहा है।

दो कुलपुत्रों का वियोग—कुल भाइयों तथा अन्य गुरुकुल प्रेमियों को यह जानकर अत्यन्त शोक होगा कि इस मास दो ब्रह्मचारियों का स्वर्गवास होगया। गुजरात में आर्य समाज के प्रसिद्ध कार्यकर्ता महा० चुन्नीलाल जी का सुपुत्र ब्र० जयदेव अभी तृतीय श्रेणी में ही पढ़ता था। ऋतु परिवर्तन से उसको साधारण ज्वर होगया। धीरे धीरे रोग बढ़ता गया, सब तरह से प्रयत्न किया गया, उत्तम से उत्तम चिकित्सा की गई, परन्तु काल की गति को कौन रोक सकता है। अपने सैकड़ों कुल भाइयों को रुलाकर ब्र० जयदेव पिछले सप्ताह इस भौतिक देह को छोड़ गया। इसी तरह कुरुक्षेत्र गुरुकुल का ब्र० कृष्ण, जो अभी चौथी श्रेणी में ही पढ़ता था, इस मास अचानक रोगी हुआ और सब प्रयत्न करने पर भी बच न सका। इन दोनों बन्धुओं की मृत्यु पर कुल में बहुत शोक मनाया गया। जो फूल खिल कर मुरझाता है, उस पर इतना शोक नहीं होता जितना कि अधखिली कली के टूट जाने पर होता है। ईश्वर से सविनय प्रार्थना है कि दोनों बन्धुओं को दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

स्नातक भाई का वियोग—स्नातक देवदत्त जी लुधियाना-निवासी गत डेढ़ वर्ष से रोग ग्रस्त थे। उन के पैर में चोट लगने पर ऐसा विषैला घाव हो गया कि अनेक चिकित्सायें करने पर भी वह घाव अच्छा न हो सका और भाई २२ आषाढ़ आदित्यवार को हम सब से सदा के लिये बिछुड़ गया। इस अशुभ समाचार से सभी कुल बन्धुओं को निस्सीम दुःख है। परमात्मा इस वियोग के होने पर हम सब कुल भाईयों और स्नातक देवदत्त जी के अन्य निकटतम बन्धुओं को धैर्य प्रदान करें।

नेशनल मेडिकल कालिज लाहोर-गुरुकुल के आयुर्वैदिक महाविद्यालय में क्रियात्मक तथा शव-छेदन आदि का समुचित प्रबन्ध है। इस से उपयोग उठाने के लिये नैशनल मैडिकल कालिज लाहौर के विद्यार्थी आजकल गुरुकुल आये हुए हैं। ये ३ मास तक यहां पर रहेंगे और शव छेदन आदि का अभ्यास करेंगे।

अधिकारियों में परिवर्तन—गुरुकुल विश्वविद्यालय के आचार्य श्री स्वामी सत्यनन्द जी महाराज ने त्याग पत्र दे दिया है। आपके स्थान पर वर्तमान उपाचार्य श्री प्रो० रामदेव जी आचार्य नियत हुए हैं और वेद महाविद्यालय के वर्तमान अध्यक्ष श्री पं० देवशर्मा जी विद्यालङ्कार गुरुकुल विश्वविद्यालय के उपाचार्य नियुक्त किए गये हैं।

परीक्षायें—पिछली सत्र परीक्षा में जो विद्यार्थी अनुत्तीर्ण हुए थे, और जिन्हें एक वा दो विषयों में पुनः परीक्षा देने का अवसर दिया गया था, उनकी परीक्षा इस सप्ताह हो गई। अभी परिणाम प्रकाशित नहीं हुए हैं। विद्यार्थी पढ़ाई में दत्तचित्त हो कर लगे हुए हैं। सत्रान्तावकाश समीप हैं और [illegible]

अतः विद्यार्थी अच्छी तरह पढ़ाई में लगे हुवे हैं।

सभाएँ—इस मास भी सभाएँ नियम पूर्वक अधिवेशन करती रहीं। कुछ सभाओं के विशेष अधिवेशन भी हुए। महा० वाग्वर्द्धिनी सभा ने 'आर्य-धर्म सम्मेलन' किया। श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार पालिरत्न सभापति थे। आर्यधर्म के साथ सम्बन्ध रखने वाले अनेक विषयों पर विचार हुआ। समाज की भावी कार्यनीति के सम्बन्ध में अनेक उपयोगी प्रस्ताव स्वीकृत हुए। संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव श्री पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार के सभापतित्व में धूमधाम से मनाया गया। सब कुलवासी उपस्थित थे। अनेक वक्ताओं ने संस्कृत-साहित्य की उपयोगिता पर व्याख्यान दिये, कुछ साहित्यिक निबन्ध भी पढ़े गये। जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में एक सहभोज भी हुआ। इस मास साहित्य-परिषद् का जन्मोत्सव भी समारोह के साथ मनाया गया। श्री प्रो० चन्द्रमणि जी सभापति थे। प्रो० सत्यव्रत जी ने संसार के धर्मों मे सृष्ट्युत्पत्ति की समानता पर योग्यतापूर्ण निबन्ध पढ़ा। परिषद् की उन्नति के सम्बन्ध में अनेक विध उपाय निर्दिष्ट किये गये। आज कल विद्यार्थी 'पार्लिमेण्ट' और 'यूनिटी कान्फ्रेंन्स' की तैय्यारी में संलग्न हैं, अगले सप्ताहों में ये अधिवेशन नवीन उत्साह और जोश के साथ किए जावेंगे।

देशबन्धु की मृत्यु पर शोक सभा—

१८जून को देशबन्धु दास के स्वर्गवास का हृदय-विदारक समाचार कुल भूमि में पहुंचा। एकदम पढ़ाई बन्द कर दी गई। सब कुलवासी उद्वेग के साथ एकत्रित हुए। सब के मुखों पर शोक छाया हुआ था, आँखों से आंसू झलक रहे थे। वक्ताओं ने रोते रोते देशबन्धु की दिवङ्गत आत्मा के लिये ईश्वर से प्रार्थना की। उसी दिन सायंकाल देशबन्धु के जीवन पर विचार करने के लिये एक सार्वजनिक सभा की गई। बहुत सी वक्ताओं ने देशबन्धु के जीवन पर गम्भीर भाषण किये। उन के स्वर्गवास से देश को जो नुकसान पहुंचा है, उसका ज़िक्र किया। महात्मा गांधी की उद्घोषणा के अनुसार एक जुलाई को भी ठीक पांच बजे सायङ्काल कुलवासियों ने एकत्रित हो देशबन्धु के लिए प्रार्थना की।

पं० सत्यव्रत जी प्रिन्टर और पबलिशर के लिये गुरुकुल कांगड़ी-यन्त्रालय में छपा

वर्ष २, अङ्क ४ Registered No A 1340

ओ३म्

आश्विन १९८२] [सितम्बर १९२५

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल–समाचार

स्नातक–मण्डल गुरुकुल–कांगड़ी का मुख–पत्र

मुख्य संपादक—सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विषय सूची

विदेश से ४) एक प्रति का ।≤) वार्षिकमूल्य ३)

लेखकों से प्रार्थना

१. लेख सामान्यतः अलंकार के ४ पृष्ठों से अधिक न हों।

२. लेख कागज़ के एक ओर, और सुपाठ्य लिपि में लिखना चाहिये।

३. पत्र में प्रकाशन के लिये लेख या कविता प्रत्येक देशी मास की १० तारीख तक, और गुरुकुल-समाचार २५ तक अवश्यमेव संपादक के पास पहुंच जाने चाहियें।

४. किसी भी लेख को घटाने या बढ़ाने का अधिकार संपादक को होगा।

५. अलंकार के परिवर्तन में पत्र तथा समालोचनार्थ पुस्तकें सम्पादक के पते पर भेजनी चाहियें।

ग्राहकों के लिये सूचना

१. अलंकार पत्र प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों के पास पहुंच जावेगा।

२. यदि कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे तो पहिले अपने डाकघर से पूछना चाहिये। यदि पता न चले तो डाक-घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिए। यह सूचना देशी मास के तृतीय सप्ताह तक अवश्यमेव पहुंच जानी चाहिए। अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य न दी जावेगी।

३. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य देनी चाहिए। अन्यथा उत्तर न दिये जाने के हम दोषी न होंगे।

४. पत्रोत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट साथ भेजना चाहिए।

६. भावी ग्राहकों को चाहिए कि वे रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने से ग्राहकों को और हमें, दोनों को कष्ट होता है। पैसे लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है।

७. नमूने का अंक बिना मूल्य किसी को न भेजा जावेगा।

८. प्रबन्ध सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार प्रबन्ध कर्त्ता "अलङ्कार" गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) के पते से करना चाहिए।

विज्ञापन का दर

	एक पृ०	आधा पृ०	चौथाई पृ०
१ वर्ष के लिये	६) मास	३॥) मास	२) मास
६ मास के लिये	७) मास	४) मास	२।) मास
३ मास के लिये	८) मास	४॥) मास	२॥) मास
१ मास के लिये	६) मास	५।) मास	३।) मास

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जावेगा।

वर्ष २, अङ्क ४] मास, आश्विन [पूर्ण संख्या १६

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अलंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५

अनुसन्धान

(श्री हरीन्द्र चट्टोपाध्याय, मँगलौर)

मेरे हृदय के रंग में, सारे जहां के अङ्ग को ।
तूने समाया और मैं, फिर ढूंढता किस रंग को ॥
मेरे हृदय के साज में, है सकल धरणी सज रही ।
मेरे हृदय की बाँसरी सारे गगन में बज रही ॥
तेरे जहां का खुशनुमा मेरे हृदय का दास है ।
मेरे हृदय में रात दिन तेरी पुरानी रास है ॥
मेरे हृदय के प्रेम से तूने बनाया हेम को ।
फिर भी भिखारी की तरह मैं ढूँढता किस प्रेम को ॥

निर्मांस यज्ञविषयक गौतम बुद्ध के विचार

(ले० श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार, पालिरत्न, वेदोपाध्याय, गुरुकुल)

सुत्त निपात के ब्राह्मण धम्मिक सुत्त से समांस यज्ञ कैसे चला और उस का क्या परिणाम हुआ-इत्यादि विषयों पर बड़ा प्रकाश डलता है, अतः वह प्रकरण यहाँ उद्धृत किया जाता है।

जिस समय गौतम-बुद्ध श्रावस्ती नगरी के जेतवन विहार में रहते थे उस समय उनके पास कोसलदेशीय वृद्ध ब्राह्मण आये और वार्तालाप करते हुए उन्होंने पूछा कि क्या वर्तमान समय में प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म को पालने वाला कोई ब्राह्मण है? बुद्ध ने उत्तर दिया कि इस समय प्राचीन ब्राह्मण धर्मावलम्बी कोई नहीं दीखता। तब प्राचीन ब्राह्मणों के धर्म पूछने पर गौतम ने कहा—

१. प्राचीन ब्राह्मण ऋषि, संयतात्मा और तपस्वी होते थे। वे पांचो ज्ञानेन्द्रियों के सुखों को छोड़ कर आत्मोन्नति किया करते थे।

२. ब्राह्मणों के पास पशु, सुवर्ण और धान्य नहीं होते थे। स्वाध्याय ही उनका धनधान्य था और वेदरूपी कोष की रक्षा करते थे।

३. वे ब्राह्मण श्रद्धा से बनाया हुआ जो भोजन उन के द्वार पर गृहस्थी दे जाते थे उसी पर गुजारा करते थे।

४. नानाप्रकार के रंगो से रञ्जित वस्त्रों बिछौनों और मकानों से समृद्ध मनुष्य प्रान्तों और सारे राष्ट्र से आकर उन ब्राह्मणों को नमस्कार करते थे।

५. ब्राह्मण अवध्य, अजेय और धर्म से रक्षित होते थे। उन को सर्वत्र गृह-द्वारों पर खड़े हुओं को कोई नहीं रोकता था।

६. वे ब्राह्मण अड़तालीस वर्ष का ब्रह्मचर्य रखते थे, और विद्या तथा आचार के अन्वेषण में लगे रहते थे।

७. वे ब्राह्मण अन्य स्त्री से सम्बन्ध नहीं करते थे। न भार्या को खरीदते थे। विवाह करके परस्पर प्रेमी की भाँति मिलकर रहना पसन्द करते थे।

८. उस समय के अतिरिक्त, जो रजोदर्शन-समाप्ति के पश्चात् होता है, ब्राह्मण अन्य समय में मैथुन-धर्म नहीं करते थे।

९. वे ब्रह्मचर्य, शील, सरलता, मृदुता, तप, सहानुभूति, दयाभाव और सहनशीलता की प्रशंसा करते थे।

१०. जो इनका श्रेष्ठ, दृढ़ और पराक्रमी ब्रह्मा था, उसने स्वप्न में भी मैथुन-धर्म नहीं किया।

११. उसके जीवन के अनुकूल चलते हुए इस संसार में बुद्धिमान् मनुष्य ब्रह्मचर्य, शील और क्षमा (सहनशीलता) की प्रशंसा किया करते थे फिर निर्मांस यज्ञ के बारे में लिखते हैं—

१२. तण्डुलं सयनं वत्थं,
सप्पि तेलञ्च याचिय।
धम्मेन समुदानेत्वा ततो,
यञ्ञमकप्पयुं।
उपट्ठितस्मिं यञ्ञस्मिं
नास्सु गावो हनिंसु ते॥

वे ब्राह्मण चावल, बिछौना, वस्त्र, घृत और तेल मांगकर तथा धर्म पूर्वक संग्रह करके उनसे यज्ञ करते थे। उपस्थित यज्ञ में गौओं को नहीं मारते थे।

१३. यथा माता पिता, भाता
अञ्ञेवपि च जातका।
गावो नो परमा मित्ता यासु
जायन्ति ओसधा॥

माता, पिता, भाई और अन्य जातियों की तरह गौएं हमारी परम मित्र हैं, जिन में ओषधिएं पैदा होती हैं।

१४. अन्नदा, बलदा चेता
वण्णदा सुखदा तथा।
एतमत्थ वसं ञत्वा
नास्सु गावोहनिंसु ते॥

ये गौएं अन्नदा, बलदा, सौन्दर्यप्रदा और सुखदा हैं-इस सच्ची बात को जानकर वे ब्राह्मण गौओं को नहीं मारते थे।

१५. सुखुमाला महाकाया
वण्णवन्तो यसस्सिनो।
ब्राह्मणा सेहि धम्मे हि
किच्चाकिच्चेसु उस्सुका।
याव लोके अवत्तिंसु
सुख मेधित्थ यम्पजा॥

सुकुमार (युवा) विशालकाय, सुन्दर, यशस्वी और सब प्रकार के छोटे-बड़े कृत्यों में उत्सुक ब्राह्मण जब तक दुनिया में रहे तब तक यह प्रजा सुख की वृद्धि करती रही।

१६. तेसं आसी विपल्लासो
दिस्वान अणुतो अणुं।
राजिनो च वियाकारं
नारियो समलङ्कता॥

१७. रथे चाजञ्ञ संयुत्ते
सुकते चित्तसिब्बने।
निवेसने निवेसे च
विभत्ते भागसोभिते॥

१८. गोमण्डलपरिब्बूळ्हं
नारीवरगणायुतं।
उळारं मानुसं भागं,

अभिज्झायिंसु ब्राह्मणा ॥

उन ब्राह्मणों का विपर्यय होगया । क्रमशः धीरे २ राजकीय ठाठ समलंकृत स्त्रियों, उत्कृष्ट जाति के घोड़ों से संयुक्त सुनिर्मित रथों, अनेक रंगों से युक्त चित्रों अनेक छोटे बड़े कमरों में विभक्त महलों और गृहों और अनेक गौओं तथा सुन्दरी नारियों से संयुक्त महान् मानुषीय भोग को देख कर ब्राह्मण लोभी हो गये ।

१६. ने तत्थ मन्ते गन्थेत्वा
ओक्काकं तदुपागमुं ।
पभूतधनधञ्ञोसि यजस्सु बहु ते धनं॥

तब वे उस समय मंत्रों का संग्रह कर के (एक विधि तैय्यार कर के) इक्ष्वाकु के पास गये और कहा तेरे पास बड़ा धन धान्य है, यज्ञ कर तेरा धन बहुत है ।

२०. ततो च राजा सञ्ञत्तो
ब्राह्मणेहि रथेसभो ।
अस्समेधं पुरिसमेधं सम्मापासं
वाजपेय्यं निरग्गलं ।
एते यागे यजित्वान ब्राह्मणानं
अदा धनम् ॥

तब ब्राह्मणों से आज्ञप्त रथपति राजा ने अश्वमेध, पुरुषमेध, शम्या-प्रास (शम्याक्षेप जिसे सत्रयाग भी कहते हैं) वाजपेय और निरर्गल (सर्वमेध)—इन यागों को कर के ब्राह्मणों को धन दिया ।

२१ गावो सयनञ्च वत्थञ्च
नारियो समलंकता ।
रथे चाजञ्ञसंयुत्ते सुकते
चित्तसिब्बने ॥
२२. निवेसनानि रम्मानि
सुविभत्तानि भागसो ।
नानाधञ्ञस्स पूरेत्वा ब्राह्मणानं
अदा धनं ॥

गौएं, बिछौने, वस्त्र, समलंकृत स्त्रियें, उत्कृष्ट घोड़ों से संयुक्त सुनिर्मित रथ, अनेक रंगों से युक्त चित्र, अनेक भागों में विभक्त सुन्दर भवन और नाना प्रकार के धान्यों से पूरित धन ब्राह्मणों को दिया ।

२३. ते च तत्थ धनं लद्धा स-
न्निधिं समरोचयुं ।
तेसं इच्छावतिण्णानं भीय्यो
तण्हा पवड्ढथ ।
ते तत्थ मन्ते गन्थेत्वा ओक्काकं
पुनुपागयुं ॥

उन ब्राह्मणों ने राजा से धन को प्राप्त कर के संचित करना चाहा । पूरित इच्छा वाले उन ब्राह्मणों की तृष्णा और अधिक बढ़ी । तब उस समय वे मंत्रों का संग्रह करके पुनः इक्ष्वाकु राजा के पास गये और कहा ।

२४. यथा आपा च पठवी
हिरञ्ञं धन धानियं ।

एवं गावो मनुस्सानं परिक्खारो
सोहि पाणिनं।
यजस्सु बहु ते वित्तं यजस्सु
बहु ते धनं॥

जैसे जल, पृथिवी, सुवर्ण और धन धान्य है उसी प्रकार मनुष्यों के लिये गौएँ हैं। ये मनुष्यों की आवश्यक सामग्री है। यज्ञ कर, तेरे पास बहुत सम्पत्ति है। यज्ञ कर, तेरे पास बहुत धन हैं।

२५. ततो च राजा सञ्ञत्तो
ब्राह्मणेहि रथेसभो।
नेकसतसहस्सियो गावो यञ्ञे
अघातयि॥

तब ब्राह्मणों से प्रेरित रथर्षभ राजा ने अनेक लाख गौओं का यज्ञ में घात किया।

२६. न पादा न विसाणेन
नास्सु हिंसन्ति केनचि।
गाव एळकसमाना सोरता
कुम्भदूहना।
ता विसाणे गहेत्वान राजा
सत्थेन घातयि॥

भेड़ के सामान सीधीसादी गौएँ न पैर से न सींग से न किसी अन्य अङ्ग से किसी को दुःख देती हैं, दूध के घड़े दोहती हैं, उनको सींगों से पकड़ कर राजा ने बध किया।

२७. ततो च देवता पितरो
इन्दो असुर रक्खसा।
अधम्मो इति पक्कन्दुं यं सत्थं
निपती गवे॥

तब देव (सन्यासी) पितर (वनस्थ) इन्द्र (स्वयं राजा) असुर (गृहस्थी) और राक्षस (आश्रमधर्म से च्युत मनुष्य) चिल्लाये कि यह अधर्म है जो कि गौ पर शस्त्र चलाया गया है।

२८. तयो रोगा पुरे आसुं
इच्छा अनसनं जरा।
पसूनञ्च समारम्भा अट्ठानवु-
तिमागमुं॥

इसके पूर्व तीन रोग होते थे—इच्छा, बुभुक्षा और वृद्धावस्था। परन्तु यज्ञों में पशुवध से ९८ रोग आगये।

२९. एसो अधम्मो ओक्कन्तो
पुराणो अहु।
अदूसिकायो हञ्ञन्ति धम्मा
धंसेन्ति याजका॥

यह पशुवध करने का अधर्म इक्ष्वाकु राजा से प्रारम्भ हुआ २ पुराना है। इस पापकर्म में निरपराधिनी गौएँ मारी जाती हैं और याजक धर्म से च्युत हो गये हैं।

३०. एवमेसो अनुधम्मो पोरा-
णो विञ्ञुगरहितो।

यस्थ एदिसकं पस्सति याजकं
गरहति जनो ॥

इस प्रकार यह पौराणिक तथा तुच्छ धर्म बुद्धिमानों से गर्हित है। जहाँ मनुष्य इस प्रकार के याजक को देखता है उसकी निन्दा करता है।

३१. एवं धम्मे वियापन्ने
विभिन्ना सुद्दवेस्सिका।
पुथु विभिन्ना खत्तिया पतिं
भरिया अवमञ्ञथ ॥

इस प्रकार धर्म के नाश होने पर शूद्र और वैश्य छिन्न भिन्न हो गये, क्षत्रिय अधिक धर्मच्युत हो गये और भार्या पति का अपमान करने लगी।

३२. खत्तिया ब्रह्मबन्धू च ये
चञ्जे गोत्तरक्खिता।
जातिवादं निरंकत्वा कामानं
वसमन्वगू ॥

क्षत्रिय, ब्राह्मण तथा अन्य वर्ण जो अपने गोत्र से रक्षित थे अर्थात् अपनी जाति के अनुसार कर्म करने वाले थे, वे जाति-धर्म को छोड़कर विषय भोगों के वश हो गये।

उपर्युक्त वर्णन से पाठकों को भली भाँति विदित होगया होगा कि किस प्रकार लोभ के वश में होकर ब्राह्मण लोग पातित होगये। कहाँ तो वे एक मात्र वेद-निधि की रक्षा किया करते थे और कहाँ वेदों का अनर्थ करते हुए मनघड़न्त विधियें तैय्यार कर के यज्ञों में पशुवध करने लगे। यह पापकर्म इक्ष्वाकु राजा से प्रारम्भ हुआ है, उस से पूर्व यज्ञों में पशुवध नहीं होता था प्रत्युत अन्न, घी और तैल आदि पदार्थों से ही यज्ञ किया जाता था। इस समांस यज्ञ की निन्दा प्रत्येक मनुष्य ने यहां तक कि राक्षस लोगों तक ने की। ऐसे याजक से मनुष्य घृणा ही करते थे। इस समांस यज्ञ से पूर्व भारत में इच्छा, बुभुक्षा और जरा-ये ही तीन रोग थे। 'काम्यो हि वेदाधिगमः कर्मयोगश्च वैदिकः' इस मनुवचन के अनुसार कामना से कोई मनुष्य नहीं छूटता था। प्रत्येक मनुष्य को भूख अच्छी लगती थी। और कोई मनुष्य विना जरावस्था प्राप्त किये मृत्यु का ग्रास नहीं होता था—ये तीन रोग पहले हुआ करते थे। परन्तु इस समांस यज्ञ के पश्चात् ९८ प्रकार के रोग फैल गये। वाचक वृन्द! देखिए समांस यज्ञ करने से कितनी रोग वृद्धि हो गई।

इस पशुयज्ञ से और भी बड़े भयंकर परिणाम दृष्टिगोचर होने लगे। क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र—सब अपने २ धर्म से च्युत हो कर विषय भोगों में फँस गये और पति पत्नि का संबन्ध प्रेममय न रहा प्रत्युत पति

पत्नी से अपमानित होने लगे।

इस प्रकरण से स्पष्ट होगया कि गौतम बुद्ध भी समांस यज्ञ को वेद-विरुद्ध ही समझते थे।

गौतम बुद्ध की सम्मति में अश्व-मेध, पुरुषमेध, शम्याप्रास (सत्र याग) वाजपेय और निर्गल (सर्वमेध) इन यज्ञों का क्या उच्च अभिप्राय था, वह भी बड़ा रोचक है। लीजिए उसे भी देखिए।

सारसंग्रह और संयुत्तनिकाय की कोसल संयुत्तवण्णा में लिखा है कि ये पाँचो यज्ञ मेध अर्थात् संग्राहक थे। इनके द्वारा राजा प्रजा का संग्रह करता था और इस लोकसंग्रह के द्वारा राष्ट्र परम समृद्धि को पाता था।

१. अश्वमेध—अश्व का अर्थ है सस्य। राजा कृषकों को भूमि दे देता था और उत्पन्न सस्य में से केवल १० वाँ भाग राज्य का होता था, शेष ९ भाग कृषक अपने पास रखता था। इस से राष्ट्र में प्रभूत धान्य पैदा होता था और राजा प्रजा को अपनी ओर आकर्षित कर लेता था 'सस्स संपादने मेधाविता'।

२. पुरुषमेध—राजकर्मचारिओं को ६, ६ मास के पश्चात् वेतन और भत्ता नियम पूर्वक अवश्य दे दिया जाता था। इस से कर्मचारियों को किसी तरह की चिन्ता या अविश्वास नहीं होता था, वे दिल लगा कर कार्य करते थे। इस यज्ञ के द्वारा राजा राज-कर्मचारियों को अपने प्रिय बना लेता था। 'पुरिससंगहणे मेधाविता'।

३. शम्याप्रास (सत्रयाग)—राजा दरिद्र मनुष्यों को तीन वर्ष तक के सत्र के लिये सहस्र दो सहस्र रुपये बिना व्याज के दे देता था। (शम्यायै) शान्ति स्थापन के लिये (प्रासः) रुपये के निक्षेप से इस यज्ञ का नाम 'शम्याप्रास' है। इस विधि से दरिद्र मनुष्यों का बड़ा उद्धार होता था और वे राजा के प्रेमी बने रहते थे। 'तं हि सम्मा मनुस्से पालेति हृदये बन्धित्वा विय ठपेति तस्मा सम्मापासं'।

४. वाजपेय—वाज का अर्थ है वाच् अर्थात् वाणी। राजा, राजपुरुष और प्रजा पुरुष—सब परस्पर में तात मातुल! भ्रातः! मित्र इत्यादि प्रियवचनों और सुमधुर शब्दों का ही प्रयोग करते थे, कभी किसी के लिये कटु या अप्रिय वचन का व्यवहार नहीं किया जाता था। एवं, प्रियवचनामृत से छोटे बड़े सब पेय होने के कारण इस यज्ञ का नाम 'वाजपेय' था।

५. निरर्गल (सर्वमेध)—उपर्युक्त

चार यज्ञों के कारण राष्ट्र में सब प्रकार से शान्ति और सुख रहता था। करोड़पति मनुष्य भी गृहद्वार बंद किये बिना किसी भय के प्रसन्न वदन होकर गोद में नन्हें २ बच्चों को नचाते हुए इतस्ततः स्वेच्छा विहार करते थे। उन्हें घरों में अर्गल या ताला आदि डालने की कोई आवश्यकता न थी। अतः इस यज्ञ का नाम 'निरर्गल' था।

आहा! जब भारत में इस प्रकार के पांचो यज्ञ प्रचलित थे तब राष्ट्र की क्या समृद्धि, शोभा और शांति होगी वह वर्णनातीत है। सचमुच स्वर्गधाम ही होगा।

"बेख़बर"

(श्री पं० धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

गैरों के साथ बात में मैं तो लगा रहा
प्रीतम तो मेरा घर के ही बाहर खड़ा रहा।
उसको हटा हटा के सब अन्दर हैं आरहे
औरों में उसका ध्यान हो मुझको नहीं रहा।
कितने ही प्रेम से मुझे वो भेंट दे गया
पर धन्यवाद भी उसे मैंने नहीं कहा।
घर में तो नाचरंग हैं दिनरात हो रहे
उसको मगर मैंने नहीं आने को है कहा
वो बारबार द्वार पर आकर चला गया
मैं बेख़बर सा नींद में सोया पड़ा रहा
आख़िर वो हार करके जब वापिस चलागया
देखा तो हाय! द्वार पर कोई नहीं रहा।

प्राचीन भारतीय भवन निर्माण विद्या

(ले०- प्रो० विधुभूषण दत्त जी एम० ए०)

भारत के प्राचीन काल की निर्माण कृतियों के खण्डरात अब तक नहीं मिले । प्राचीन अवशेष जो अब तक प्राप्त हुये हैं, उनमें सब से प्राचीन ग्रीवज नगर की पत्थर से बनी हुई प्राचीर का अंश है । ग्रीवज शिशुनाग वंश के समय मगध राज्य की राजधानी थी। राजा बिम्बसार के समय वह राजधानी यहाँ से उठाकर राजगृह में परिवर्तित करदी गई। विम्बिसार तथा उनके पुत्र अजातशत्रु और गौतमबुद्ध के समकालीन उत्तर भारत में राजगृह तथा ग्रीवज में बनी हुई कृतियों के खण्डरात अब भी मिलते हैं । उत्तर कालीन बौद्ध साहित्यिक युग में लिखे गये 'विमानवथु' नामक ग्रन्थ में लिखा है कि नवीन राजधानी राजगृह की रचना विख्यात निर्म्माणकलावेत्ता (Engineer) महागोविन्द ने की थी। और उसने अन्य भी बहुत से नगरों के नक्शे (Design) तथा निर्माण कार्य बनाये थे । विम्बिसार ने शासन काल के समय तथा उस से पहले उत्तर भारत में कोशल, काशी, अवन्ती, वंश प्रभृति अनेक राज्य तथा उनकी राजधानियां विद्यमान थीं। इन में से बहुत से राज्य मिल कर 'षोडश जन पद' नाम से प्रसिद्ध थे। इस में सन्देह नहीं कि इन भिन्न २ राज्यों की राजधानियाँ भी महागोविन्द के समान दक्ष निर्माण कलावेत्ताओं ने बनवाई थीं। 'बौद्ध जातक माला' एक प्रकार की प्राचीन बौद्ध कहानियें हैं, जिन में तत्कालिक समाज का चित्र खींचा गया है। 'मिलिन्द पंहों' नामक एक और प्रामाणिक ग्रन्थ है, इस में प्राचीन बौद्ध काल के भिन्न २ व्यवसायों का उल्लेख किया गया है। नौका निर्माण, शकटनिर्माण तथा भवन निर्माण विद्या का भी उल्लेख उस में मिलता है।

[यथिति 'मिलिन्दपंहो' १.५६३९० और पाषाणकसक] जातक ४'१४७९ यह दोनों शब्द निर्माण विद्या के संकेत हैं:—

बौद्ध काल (ईसा से ६ठी शताब्दी पूर्व) से अधिक प्राचीन महाकाव्यों में वर्णित उत्तर भारत की आर्यबस्तियों के चिन्ह नहीं मिलते । यह पहिले ही कहा जा चुका है कि आर्य बस्तियों से पहिले द्रविड़ इत्यादि असभ्य जातियां नदियों के तट पर दुर्ग इत्यादि बना कर रहती थी। रोम के ऐतिहासिक प्लीनी ने अपने प्राकृतिक इतिहास (Natural History) में सम्भवतः मेगस्थनीज़ से लेकर लिखा है कि मौर्य साम्राज्य के अभ्युत्थान काल में (३२० ईसा से पूर्व) आन्ध्र देश के निवासी द्रविड़ अपने पञ्च दक्षिणापथ में ३० से अधिक प्राचीर वेष्टित नगर बना कर रहते थे। उनके खण्डरात शेष हैं या नहीं, यदि हैं भी तो अब तक आविष्कृत नहीं हुये । खण्डरातों के न मिलने का यह भी कारण है कि इस देश के जलवायु के प्रभाव से कई चीजें नष्ट हो जाती हैं और अग्नि, भूकम्प, बाढ़ इत्यादि प्राकृ-

तिक उपद्रव प्राचीन काल से मानवीय कृतियों का नाश करते आरहे हैं। मध्ययुग में विजातीय लोगों द्वारा भी बहुत सी प्राचीन कृतियाँ नष्ट की गई थीं।

बौद्ध कालीन भारतीय कृतियों में से राजा अशोक की कृतियाँ प्रधान हैं। स्तूप, स्तम्भ विहार नानाविधमूर्त्तियाँ, गुहायें, विशेषतः शिलालेख, स्तम्भलेख प्रभृति, जो प्रायः सभी स्थानों पर पाये जाते हैं, भारतीय इतिहास की रचना के आधार माने जाते हैं। अशोक के शिलालेखों की तरह पुरातत्व का प्रत्यक्ष निदर्शन किसी देश में विद्यमान नहीं। इन सब लेखों को ऐतिहासिक बड़े मान की दृष्टि से देखते हैं। इनके द्वारा पुरातत्व के अनुसन्धान में बड़ी सहायता मिल सकती है। इन लेखों को प्राचीन पुस्तकों से मिलाने पर मौर्य साम्राज्य की सीमा, शासन सुधार तथा भारतीय शिल्पकला का सुन्दर परिचय मिलता है।

अशोक द्वारा बनवाई हुई कृतियाँ

इन कृतियों में सब से ज्यादह उल्लेख योग्य स्तम्भ हैं। प्रत्येक एक बड़े पत्थर में बड़ी सुन्दरता से घड़ा गया है और शिखर पर उसी पत्थर से बड़ी निपुणता से सिंह की द्विमुखी या चतुर्मुखी मूर्त्तियां घड़ी गई हैं। इन स्तम्भों पर बड़ी सुन्दर नक्काशी की हुई है। इन पर राजा अशोक की धर्मलिपियाँ खुदी हुई हैं।

१. दिल्ली नगर के समीप फीरोज़ाबाद स्थान में एक स्तम्भ है जो पहले पंजाब प्रान्त के अम्बाला जिले में टुपरा नामक स्थान में प्रतिष्ठित था। तुगलकवंशीय बादशाह फीरोजशाह वहां से अपनी राजधानी में उठा लाया। तुगलक सुलतान की विद्वत्ता इतिहास में प्रसिद्ध ही है यहां पर उसका पुरातत्वानुराग भी स्मरणीय है।

२. दूसरा स्तम्भ दिल्ली के पास ही छोटी-पहाड़ी नामक स्थान में है। यह पहले मेरठ में था। इसे भी सुलतान फीरोजशाह ने वहां से लाकर अपने मृगयागार (Hunting musium) में रक्खा था। कालान्तर में वह धराशायी हो गया था परन्तु १८६३ में ब्रिटिश गवर्मेण्ट ने फिर वहीं स्थापित किया।

३. तीसरा स्तम्भ प्रयाग में त्रिवेणी संगम के दुर्ग में प्रतिष्ठित है। यह स्तम्भ पहले कौशाम्बी में था। कहते हैं कि इसे भी फीरोज शाह ने ही यहां पर गाड़ा था। प्रसिद्ध सम्राट् समुद्रगुप्त (३४० ई०) के अभिलेख भी इस पर खुदे हुए हैं। यह स्तम्भ अनेक बार भूमिशायी हुवा है। बहुत से लोगों ने इस पर अपने २ नाम तथा चिन्ह अङ्कित किये हैं। सम्राट् अकबर के मन्त्री राजा बीरबल का एक लेख भी खुदा हुवा है।

४. रधिया स्तम्भ—यह विहार के चम्पारन जिलान्तर्गत लोरिया गांव के पास रधिया नामक स्थान में स्थित है।

५. मथिया स्तम्भ—पूर्वोक्त लोरिया ग्राम के पास मथिया नामक स्थान से ३ मील उत्तर में स्थित है।

६. सारनाथ स्तम्भ—यह बनारस शहर से ३ मील उत्तर की ओर सारनाथ में स्थित है। सब से पहिले बुद्ध ने यहीं पर अपना धर्मचक्र प्रवर्तन किया था।

७. कौशाम्बी स्तम्भ—पूर्वोक्त प्रयाग के स्तम्भ के समान एक स्तम्भ इस स्थान पर है।

८. सांचीस्तम्भ—भूपाल राज्यान्तर्गत साँची नामक स्थान में है।

९. रूमिणी देई—यह स्तम्भ नैपाल की तराई में भगवानपुर नामक स्थान से २ मील उत्तर की ओर संयुक्त प्रदेश के बस्ती जिले के दुलहा नामक ग्राम से ६ मील उत्तर पूर्व में है। भगवान् बुद्ध का जन्म इसी स्थान पर हुआ था।

११. निगलिया—यह बस्ती भी नैपाल की तराई में बस्ती ज़िले के उत्तर में निगलिया नामक सरोवर के उत्तर में अवस्थित है।

इनके अतिरिक्त राजा अशोक ने और भी बहुत से स्तूप बनवाये थे कहते हैं कि उसने ३ वर्ष में ८४००० स्तूप बनवाये थे। यद्यपि संख्या के विषय में मतभेद है तथापि इसमें सन्देह नहीं कि उन्होंने बहुत बनाये थे। प्रत्येक बौद्ध कालीन किसी महत्वपूर्ण घटना की स्मृति के लिये बनाया गया था। इन सबस्तूपों में से सांची का स्तूप सबसे अच्छी हालत में है। सांची का प्राचीन नाम चौतेयगिरी था और प्राचीन विदिशा तथा उज्जयिनी नगरी के समीप था। सिंहल की प्रसिद्ध महावंश नामक पुस्तक में लिखा है कि बाल्यकाल में जब अशोक वायसराय बन कर उज्जयिनी में रहते थे तो उन्होंने विदिशा के एक धनाढ्य बनिये की कन्या का पाणिग्रहण किया। जिस के कोख से पुत्र महेन्द्र तथा कन्या सुगमित्रा का जन्म हुआ। किन्तु राज्य प्राप्ति के लिये पाटलि पुत्र में जाते समय उसे बनिये की बेटी कहकर छोड़दिया। चाहे इस प्रेम के कारण या किसी अन्यकारण से उन्हें विदिशा से अनुराग था। इसलिये ही उत्तरकाल में उन्होंने विदिशा को स्तूप निर्माण कार्य के लिये चुना था। इस स्थान के पास उच्च उपत्यका पर ११ स्तूप पाये गये हैं। १८२२ ई. से १८५१ ई. तक के अन्तर में आविष्कृत हुये थे। अन्त में खनन कार्य द्वारा एक छोटे स्तूप में गौतम बुद्ध के प्रिय शिष्य सारीपुत्र मुद्गलायन के देह की भस्म पा गई।

इन स्तूपों में सब से प्रधान स्तूप सांची का स्तूप है। इस स्तूप के चारों ओर की दीवार में, पत्थरों में, अशोक कालीन अक्षरों में लिखे हुये अभिलेख दृष्टिगोचर होते हैं। प्रवेशद्वार बड़ा तथा तत्कालीन कारीगरी का नमूना। है Cunninghum की सम्मति है कि ये द्वार तथा प्राचीर के कई अंश अशोक के परवर्ती काल में बने थे। निःसन्देह यह सारी निर्माण प्रणाली Architecturalstile अशोक के समय में प्रचलित इस देश की निर्माण प्रणाली का परिचय देती है स्तूपों के अतिरिक्त अशोक ने बहुत से चैत्य, विहार, संघाराम प्रभृति बौद्ध सन्यासियों के निवास के लिये बनाये थे। इसी प्रकार का एक विहार गया के समीप बराबर पहाड़ी पर विद्यमान है। इन स्तूप विहार आदि के साथ २ गृह, मन्दिर, मार्ग और पाठशाला प्रभृति भी बनवाये थे। परन्तु अब इन में से कोई भी अच्छी हालत में नहीं हैं। इनके खण्डरात ही प्राप्त होते हैं। कइयों का कहना है कि वर्तमान बुद्ध गया का मन्दिर पहिले अशोक ने ही बनवाया था, परन्तु वह नष्ट हो चुका है। कइयों की धारणा है कि वर्तमान गया के बौद्ध मन्दिर के पास दीवार के कुछ अंश तथा प्रसिद्ध सिंहासन राजा अशोक की कृतियाँ

के अवशेष हैं। राजा अशोक ने अपनी राजधानी पाटलीपुत्र नगर को अट्टालिकाओं से सुशोभित किया था। उन द्वारा बनाए गये 'अशोकआराम' तथा 'कुक्कुटाराम' नामक राजप्रसादों के ध्वंसावशेष पुरातत्वानुसंधान के दृष्टिगोचर हुवे (Waddt tlle report on the excaratios at Patali Putr 1903 cālcutter) हैं। प्रायः ६०० वर्ष बाद चीनी यात्री फाहियान ने पाटलीपुत्र को देखा था। अशोक के राजप्रासादों के बड़े विस्तार तथा रचना प्रणाली को देख कर उसने सोचा था कि यह राजप्रासाद अलौकिक शक्तिसम्पन्न व्यक्तियों द्वारा बनवाये गये थे। राजा अशोक ने पाटलीपुत्र के अतिरिक्त दो अन्य नये नगर बनवाये थे। राजतरंगिणी में लिखा है कि काश्मीर की राजधानी प्राचीन श्रीनगर को भी अशोक ने ही बनवाया था। राजा अशोक जब अपनी कन्या चारुमति के साथ नैपाल राज्य में गये थे तो उन्होंने नैपाल का देवपाटन या देवपत्तन नामक नगर बसाया था।

वास्तव में इतने नगर, प्रासाद, मन्दिर स्तूप और बिहार प्रभृति एक राजा की निर्माण कला का परिचय देने के लिये बहुत अधिक हैं। उसे देख कर अंग्रेज ऐतिहासिक विन्सेन्ट स्मिथ ने कहा था कि अशोक बड़ा भारी निर्माता था (Ashok was a great builder) यह राजा अशोक के बौद्ध धर्म के प्रति असाधारण अनुराग का ही फल था। धार्मिक इतिहास में और कोई ऐसा उदाहरण नहीं मिलता। इसी अनुराग के कारण उसने बौद्ध धर्म सम्बन्धी विहार, स्तूप, मन्दिर आदि के बनवाने में दिल खोल कर सहायता दी, जिससे इस देश की निर्माणविद्या की विशेष उन्नति उत्तर काल में भी होती गई। परन्तु राजा अशोक निर्माण विद्या के जन्मदाता नहीं थे क्यों कि उन्होंने निगलीवाह के कोनागमन स्तूप के विषय में लिखा है कि यह स्तूप पहिले से ही विद्यमान था उन्हों ने नया नहीं बनवाया था परन्तु उसी स्तुप को दुगुना करवा दिया था। बौद्ध महापरिनिब्बाणसूत्र ग्रन्थ में लिखा है कि गौतम बुद्ध के देहान्त के बाद उनकी भस्म राशी भिन्न २ स्थान के लोगों ने सुरक्षित रक्खी हुई है। सम्भवतः लोगों ने उनकी तथा उनके शिष्यों की भस्म की रक्षा के, लिये ही स्तूप इत्यादि बनवाये थे। ऐसा भी उल्लेख मिलता है, कि गया के समीपवर्ती बराबरपहाड़ियों में आजीवक भिक्षुकों के लिये जो गुफ़ा बनवाई गई थी उसका निर्माण भी अशोक के समय में ही हुवा था इस का स्पष्टतः उल्लेख नहीं है। अशोक के पूर्वकालीन एक और रचना का उदाहरण मिलता है, कि जूनागढ़ के समीप सुदर्शन नामक सरोवर है उसका निर्माणकार्य अशोक के पितामह चन्द्रगुप्त की अधीनता में यवन राजा तुषापा ने सम्पादित किया था मौर्य राजधानी पाटलीपुत्र नगर का निर्माण भी मौर्यकाल से बहुत पहले–ईसा से ५ शताब्दी पूर्व–शिशुनाग वंशीय राजाओं ने किया था इस के बाद नन्दवंशीय और मौर्यवंशीय राजाओं ने इस की उन्नति की थी। चन्द्रगुप्त के सहायक तथा मन्त्री कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र नामक ग्रन्थ में नगर रचना तथा निर्माण विद्या के विषय में जो सूक्ष्म तथा विस्तृत विचार प्रकट किये हैं वह

पाटलीपुत्र का ही चित्र हैं। वस्तुतः अशोक के समय की बौद्ध निर्माण कृतियें तथा अन्यान्य शिल्प कलाएँ इस काल में उद्भावित नहीं हुई थी परन्तु वे पूर्वकाल में शिल्प इत्यादि कलाओं की अविछिन्न धारा में परिणति (Development) मात्र है इस देश की निर्माण विद्या में राजा अशोक की विशाल साम्राज्य शक्ति की सहायता और बौद्ध जनता के असाधारण धर्मोत्साह से आशातीत उन्नति हुई

अशोक के परिवर्तित काल की कृतियाँ

अशोक के उत्तरकाल की निर्माण विद्या के भी बहुत उदाहरण विद्यमान हैं। ईसा के ३ शताब्दी पूर्व से दशम शताब्दो पर्य्यन्त का सुदीर्घकाल भारतोय साहित्यिक कला तथा शिल्प आदि कलाओं की उन्नति के लिए स्वर्णयुग था। उस समय मौर्य, आन्ध्र, गुप्त वंशीय पराक्रमशाली राजाओं ने मध्य तथा उत्तर भारत में अपना २ विशाल साम्राज्य स्थापन कर उसे उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुंचा दिया। उत्तर पश्चिम प्रान्तों में ग्रीक, शक, कुशान, प्रभृति विदेशीय वीर जातियों ने आधिपत्य स्थापित किया और भारतीय धर्म तथा सभ्यता से प्रभावित होकर अपना भेदभाव खो दिया। उन्होंने अपने प्राचीन ईरानी, ग्रीक प्रभृति उच्च जातियों की निर्माण प्रणाली को भारत वर्ष की रचना प्रणाली से मिला कर नई प्रणाली का आविष्कार किया। दक्षिण भारत में आन्ध्र, चालुक्य, बल्लभी, राष्ट्रकूट और चौहान वंशीय राजाओं ने अपना २ पृथक २ साम्राज्य स्थापित करके उस स्थान को शिल्प कला तथा निर्माण विद्या को उन्नति के शिखर पर पहुँचाया। इस समय भारत में बौद्ध जैन तथा नये हिन्दु-सम्प्रदायों के बीच में परस्पर प्रतिस्पर्धा जन्य (Rivalary) जागृति हुई। इन सब सम्प्रदायों के नेताओं ने अपने २ राजाओं तथा बनियों की सहायता से इस देश की निर्माण कृतियों को भिन्न २ दिशाओं से उन्नति की। फलतः अनेक स्थानों में भिन्न २ प्रणाली से स्तूप मन्दिर स्तम्भ प्रभृति बनाए गये जिन में से अब भी बहुत से विद्यमान हैं। उल्लेख योग्य स्थानों का नीचे नाम दिया जाता है।

अशोक के परवर्तित काल के स्तम्भों में से वेदसा, किन्हारी और दिल्ली के प्रसिद्ध लोह स्तम्भ हैं। इन के अतिरिक्त बालगांव, धारबाल, अलोरा, जयपुर, पुरी और सम्पाली प्रभृति स्थानों के स्तम्भ भी उल्लेख योग्य हैं। दक्षिण देश के स्तम्भ अधिकांश में जैनियों द्वारा बनाए गए हैं। उस समय के विजय तोरण और कीर्तिस्तम्भों में से गोरखनाथ, जयरामपुर, मुधेरा पथरी, राज समुद्र, रेवा, सिद्धपुर, बादनगर और औरंगाल के स्तम्भ प्रसिद्ध हैं। स्तूपों की संख्या बहुत है उन में से अधिकांश उत्तरपश्चिम सीमान्त प्रदेश में स्थित हैं। जलालाबाद के समीप अहिन कोश, वहारबाग, द्वारन्त, हिड्डा और सुलतान पुर के स्तूप स्वाट प्रदेश का चोअड़ारा, चौकपट और पोपड़ारा के स्तूप खादवार के अन्तर्गत इसपुला और आलिमर्जिति पञ्जाबके माणिकल और पेशावर के कुशाण राजा कनिष्क द्वारा प्रतिस्थापित स्तूप ये सब उस प्रदेश के ईसा पूर्व तथा पश्चात् शताब्दियों में बौद्ध प्रभाव का परिचय देते हैं।

अन्यान्य स्थानों के स्तूपों में से अमरावती, भारहुत, भट्टीप्रल, भीलीश्रा, बुद्धगया, घाबट आल, ग्रीपक जगाय पेता, पिप्रा पोबा, सारानाथ, और शलरूखहन प्रसिद्ध हैं। ये सब भी बौद्ध काल में ही बने थे।

बौद्धों द्वारा पर्वतों में खोह की गहरी गुहाओं में बौद्ध, जैन, आजिवक प्रभृति भिन्न २ सम्प्रदायों के साधु निवास करते थे बम्बई प्रदेश के पहाड़ों में ही अधिकतर दृष्टि गोचर होती है। इन पहाड़ों की प्रकृति खोद कर मकान बनाने के लिए उपयोगी है। भाज, कोण्डन, वैदसा, नासिक कादल, अजन, जूनार, केनारी, अलोरा प्रभृति गुफाएं इसी स्थान में हैं। यह निश्चित है कि ये गुफाएं ईसा की द्वितीय शताब्दी पूर्व से ईसा की सातवीं शताब्दि के मध्य भाग तक अन्तर में बनाई गई थी,। अन्य स्थानों की गुफाओं में से बाग, वेशनगर, और धामपुर की गुफाएं ईसा की छठी शताब्दि में खोदी गई। राजपुताना के अन्तर्गत खाल्पी और मदसन्न गुवट पक्षी गुहा अपेक्षाकृत प्राचीन हैं। इसके सिवाय अफगानिस्तान के पर्वतों और पञ्जाब में स्थान २ पर कितनी ही गुफाएं हैं। बौद्ध स्तूप तथा गुहाओं के साथ अनेक विहार वा मठ बनाए गए थे। इन का बौद्ध नाम संघाराम अर्थात् बौद्ध संघ या दल का निवासस्थान है। साधारणतः विहार में विस्तृत चतुष्कोण पर सन्यासियों के निवास के लिए गृह-पंक्तियां बनवाई हुई थी। पश्चिम भारत में गुहाओं के साथ २ अनेक स्थानों पर पर्वतों में खोद कर इस प्रकार के विहार बनाए गए थे। जैसे अजन्ता, अलोरा, किन्हारी, कार्हली, नासिक प्रभृति औरङ्गाबाद, काढ़ाट कूड़ा और महार नामक स्थानों में इस प्रकार के विहार खुदे हुए हैं, ये सभी प्राचीन हैं। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने ईसा की ७वीं शताब्दि में दक्षिण कोशल (वर्तमान मध्यभारत के अन्तर्गत) का वर्णन करते हुए पहाड़ में खोदे हुए एक ऐसे ही बड़े विहार का विवरण दिया है वह विहार राजा साह ने बनवाया था। एक पर्वत के बीच में दो मील लम्बी सुरंग खोद कर एक संघाराम बनवाया था, जिस के चारों ओर ५ मंजिल वाले मकान बनवाए थे। जिनकी दीवारें तथा पुल, पहाड़ में बड़ी सुन्दरता से खोद कर बनवाई गई थीं। उसके बीच में बहुत सी गुहाएं तथा लम्बे २ कमरे, दरवाजे, बरामदा, स्तम्भ, मार्ग प्रभृति विद्यमान हैं।

यह सारी रचना सुप्रसिद्ध बौद्ध पण्डित नागार्जुन century A. D. के वास के लिये बनाई गई थी। इन के द्वारा बहुत कुछ बौद्ध शास्त्रों की उन्नति हुई। सम्भवतः नागार्जुन अपने बहुत से शिष्यों के साथ वहां निवास करते थे। यह कहा जाता है कि उत्तरकाल में बौद्ध भिक्षुओं ने लड़ाई कर के यह स्थान छोड़ दिया और लोभी ब्राह्मण प्रतिद्वन्द्वियों ने इस से फायदा उठा कर 'संघाराम' को नष्ट करके भर दिया।

कुछ काल बाद जब बौद्ध-सन्यासी-सम्प्रदाय बढ़ने लगा और एक स्थान पर बहुत २ सन्यासी रहने लगे तो विहार तथा मठ इत्यादिकों के परिमाण में वृद्धि करना आवश्यक जान पड़ा तथा परवर्ती काल के बड़े २ बौद्ध

विहार ईंट तथा लकड़ी से बनाए गये थे। उत्तर-पश्चिम प्रदेश तथा पूर्व प्रदेश के अनेक मठ इस प्रकार के थे। इसका नालिन्दा उज्वल उदाहरण है। इस में एक ही समय १0000 मनुष्य वास कर सकते थे।

जैनों द्वारा निर्मित कृतियों में मन्दिर प्रधान हैं। बौद्ध—काल के साथ २ और उसके बाद जैनियों ने भारत के नाना स्थानों में, विशेषतः महापुरुषों के जीवन से सम्बन्धित तीर्थ स्थानों में बड़े २ मन्दिर बहुत व्यय कर के बनवाए थे। भारत में जैन-सम्प्रदाय अब भी विद्यमान है। कई धनिक वणिक् इस सम्प्रदाय को अब तक मानते हैं तथा धर्म मन्दिर बनवाते हैं। जैनमन्दिरों में से निम्नलिखित मन्दिर उल्लेख योग्य हैं।

उत्तर भारत में- १. आबू पर्वत में आदिनाथ निमिनाथ के मन्दिर (२) निकटवर्ती चन्द्रावती के मन्दिर, (३) जबलपुर निकटवर्ती भावनगर तथा भोरघाट, गिरिनार में निमिनाथ के मन्दिर-गैारसपुर, खजुरा, कुन्दलपुर, लाखुन्दी, मुकुन्दद्वार, मुक्तागिरी (ग्वालियर के पास) नागोदर पालिताना परेशनाथ (बंगाल छोटा नागपुर) रानीपुर, झड़ियाल (झम्बलपुर के निकट) रामपुर (जोधपुर में) और बुन्देलखण्ड के अन्तर्गत सोनागढ़ के मन्दिर दक्षिण भारत में—सावुनबिलगुंला, ग्रोहिहोलपतदकल के मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

हिन्दुओं की भी निर्माण—कृतियों में मन्दिर प्रधान हैं। इनकी संख्या और भी अधिक है। भारत में प्रायः सर्वत्र प्राचीन हिन्दु मन्दिरों के अवशेष दिखाई देते हैं। इन में से बहुत कुछ सुरक्षित हैं। बौद्ध और जैनियों के प्रभाव के समय हिन्दुओं का प्रभाव इस देश में कम न हुआ था। उन्होंने बौद्ध तथा जैनियों के मन्दिर निर्माण की प्रतिस्पर्धा में और भी अधिक मन्दिर बनवाये, इसी काल में हिन्दुओं में विभिन्न सम्प्रदायों के प्रादुर्भाव के कारण अनेक देवी देवताओं के पूजन के लिये मन्दिरनिर्माण का कार्य बढ़ता ही रहा। हिन्दुमन्दिरों में निम्न उल्लेख योग्य हैं।

काश्मीर के अन्तर्गत मार्तण्डवनियात, अवन्तीपुर, बद्रीनाथ, शङ्करपुर और पादर के मन्दिर नैपाल के पशुपति मन्दिर-भवानी मन्दिर और पठन के महादेव तथा कृष्ण के मन्दिर।

उत्तरभारत में आहिहोल-अमरकण्टक (अजमेर के निकट) वरोली, भीतरगांव (कानपुर जिला) के मन्दिर।

मद्रासप्रेसीडेंसी में श्रीरङ्गम, वैलोर, मदुरा, रामेश्वर, तंजोर, काञ्जीवरम, चिदम्बरम, कुम्बोकुनाम, कुरुगदो, मामल्लिपुर पिररतदपाली, श्रीठसल, तारामङ्गल, तिनामिलि, तिरुवालूर, विरोञ्जुर प्रभृति॥

आंध्र और महाराष्ट्र में बादामी, अबुदापर, कार्विल प्रभृति।

दाक्षिणात्य के-वेलग्राम, आनुमाकुण्ड, दम्बल, गाडक गोलकनाथ, हयशालेश्वर, कुकानद, त्यावुदी, लक्ष्मीश्वर, नामागेहली प्रभृति।

महिपुर के सोमनाथपुर, वेलोर, इत्यादि मन्दिर प्रसिद्ध हैं।

मेवाड़, के वागदा, ग्वालियर के तिलिका मन्दिर। पुरी और भुवनेश्वर मन्दिर।

बनारस, वृन्दावन तथा अन्यान्य तीर्थस्थानों के असंख्य हिन्दूमन्दिर।

इसके अतिरिक्त अमृतसर का सिक्खमन्दिर

उल्लेख योग्य है। यह मन्दिर ईसा की आठवीं या नवमी (A.D) के बाद निर्मित हुआ था। इसका निर्माण बहुत कुछ मुसल्मानों के राजत्वकाल में हुआ। इससे प्राचीनकाल के मन्दिर ध्वस्त हो चुके हैं

भारतवर्ष में मुसलमानों द्वारा बनाई हुई कृतियाँ अपेक्षया कम प्राचीन हैं तथापि उन में से बहुत कुछ नष्ट हो चुकी है। और अन्य भी प्राचीन भारतीय कृतियों की तुलना में अल्प दिनों में ही नष्ट हो गईं। मुसलमानों ने इस देश की बहुत सी कृतियों का विध्वंस किया परन्तु साथ ही साथ बहुत सी नवीन बनाईं भी। इस का विशेष कारण है- प्रथम इस देश में आकर मुसलमानों ने कन्नौज, अजमेर, मथुरा प्रभृति नगरों की सुबृहत् और सुसज्जित अट्टालिकायें तथा सोमनाथ प्रभृति मन्दिरों को देख कर इस देश की निर्माण विद्या का जो परिचय पाया—इस देश के राजा होकर स्वभावतः उस के पृष्टपोषक और सहायक बने थे; इस के अतिरिक्त किन्हीं विजेताओं ने विजित देश में अपने आधिपत्य को स्थापन करने के लिये जिस प्रकार नीति परवश होकर बड़े २ नगर तथा अट्टालिका निर्माण कर अपनी क्षमता का परिचय दिया है, मुसलमानों ने भी ऐसा ही किया था। इस लिये उन में शिक्षा-आदर्श का अभाव नहीं था क्यों कि जातीय तथा ऐतिहासिक क्रम के अनुसार मुसलमानों ने प्राचीन असीरिया और ईरानी जातियों की घनिष्ठता सम्पादन की और यह सब जातियें भी राज नीति में सिद्धहस्त थीं। सुविख्यात कुतुब मीनार और तत्संलग्न तोरण अट्टालिका इत्यादि मुसलमानों के इस देश में आने के कुछ समय बाद बने थे (कहा जाता है कि कुतुब के पीछे होने वाले शासक अल्तमुश ने इसे समाप्त किया था।) गौड़ (बंगं बिहार की सीमा में) और मेवड़ू (मध्य भारत में) खण्डरात के प्राथमिक मुसल्मानों की कृतियों का अवशेष मात्र हैं। जौनपुर (युक्तप्रदेश) और अजमेर (राजपूताना) की बड़ी मसजिदें तथा सैसरेन (बिहार) में शेरशाह का समाधिमन्दिर इस देश के पठान शासन काल की निर्माण कृति का परिचय देते हैं। अहमदाबाद, गुलबर्गा और बीजापुर की असंख्य बृहद् अट्टालिकायें और ठट्टा (सिन्ध) की मनोहर मसजिद और समाधि मन्दिर मुसलमान काल के अन्तर्वर्त्ती परिवर्त्तन काल के भारतीय—शिल्प या निर्माणविद्या का नमूना है। इस के बाद ही मुगल शासन प्रारम्भ हुआ, इस काल में इस देश की शिल्पकला और निर्माणादि कार्य में जो उन्नति हुई वह इतिहास में प्रसिद्ध हैं। तत्कालीन भारतीय-निर्माण कृतियों के बहुत दृष्टान्त विद्यमान हैं। आगरे के ताजमहल, सिकन्दरा में अकबर की समाधि और लाहौर में जहांगीर की समाधि प्रसिद्ध है। इस के अतिरिक्त आगरा, दिल्ली, लाहौर, दौलताबाद, अजमेर और फतहपुरसीकरी में मुगलों की कृतियों के असंख्य दृष्टान्त मौजूद हैं। फैज़ाबाद, लखनऊ, मुर्शिदाबाद, ढाका (जहांगीर नगर) प्रभृति स्थानों के प्राचीनमहल आदि में अन्तिम मुसलमान बादशाह की भारतीय-शिल्प की.

दक्षता दर्शनीय है। मुसलमानों के निर्माण कार्य के साथ साथ इस देश में हिन्दू निर्माण कार्य स्थगित नहीं हुआ किन्तु अनेक स्थानों में हिन्दू स्वाधीन थे, बिना किसी रुकावट के अपने २ नगर तथा अट्टालिकायें बनाते थे।

मुसल्मानों के मध्य-युग में हिन्दूराज्य विजयनगर का (१३३६-१५६५ ए० डी०) का जो विवरण दिया है, उसका(Sewell A for gotten Empire) से इसका आभास मिलता है कि वर्तमान तंजोर, मदुरा, ग्वालियर, उदयपुर, अलवर, अम्बर, डीग प्रभृतिहिन्दूराज्यों में जो प्राचीन राजप्रासाद देखे जाते हैं वे भी तत्कालीन ही हैं।

भारतीय ऐतिहासिक काल के भिन्न २ युगों की निर्माण कृतियों के कुछ उदाहरण दिये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त भारत में अन्य कई स्थानों पर असंख्य भवन मठ, मन्दिर, घाट प्रभृति के खण्डरात विद्यमान हैं। वे जंगल में या उजाड़ जगह में वर्षा पड़ने या घास फूस के उगने से स्वभावतः नष्ट हो चुके हैं या होते जा रहे हैं। अति प्राचीन काल के कितने ही दुर्ग तथा पर्वतीय नगर अब भी इस देश में भिन्न २ स्थानों पर दिखाई देते हैं। दिल्ली का लाल कोट, पुराना किला, किल्लाराय पिथौरा, मनलर (काश्मीर के पास नमक की पहाड़ियाँ), गुरदास पुर, (पञ्जाब) रानीगर (पेशावर) और युक्तप्रान्त के अजयगढ़, चुनार तथा रामगढ़ के किले अति प्राचीन हैं। ये ईसा की ८ वीं शताब्दि या उससे भी पहले के हैं। हैदराबाद दक्षिण के अन्तर्गत नलदुर्ग और मद्रास के निकटवर्ती चन्द्रगिरी अति प्राचीन काल के हैं। मध्य तथा अन्त युग में राजपूत, मराठे, मुसलमान और सिक्खों द्वारा बनाए गए अनेक दुर्ग भिन्न २ स्थानों में विद्यमान है।

ब्रिटिश शासन-काल की शिल्पकला का परिचय देना फिज़ूल है। भारत के सब प्रदेशों में अंग्रेजों द्वारा बनवाए हुए प्रशस्ति स्तम्भ, स्मृतिस्तम्भ, प्रासाद, दफ़्तर प्रभृति सब ने देखे हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास और वर्तमान दिल्ली इसी रचना प्रणाली का परिचय देते हैं। विशेष कार्यों में से भारतीय पुराकृतियों के अनुरागी वायसराय कर्ज़न द्वारा कल्पित विक्टोरिया-मेमोरियल-बिल्डिङ्ग कलकत्ता (Victoria Memorial Building Calcutta) उल्लेखनीय है जो उत्तरकाल में भारत में ब्रिटिश-काल की रचना प्रणाली का स्मारक रहेगा।

शीतल छाया

(ले० श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

मन मूरख औरन को दुख दे,
तुम चाहत हो जग में सुख पाया।
चढ़ि पाथर नाव अपार पयो—
निधी पार विचारत हो पुनी जाया।
बलिहारी अहो गहि व्याल कराल,
चहो गल में तिही हार बनाया।
द्रुम आपहि काटि के वे अबलों,
अवलोकत हो कत शीतल छाया।

भारतवर्ष में स्त्री शिक्षा

(ले० पं० भीमसेन जी विद्यालङ्कार, सम्पादक सत्यवादी)

भारतीयसभ्यता के विकास में बालकों की शिक्षाप्रणाली का क्या स्थान था इस विषय पर पिछले लेख में विचार किया जा चुका है। प्राचीन भारत में स्त्रियों की शिक्षा का क्या प्रबन्ध था इस के विषय में अभी तक निश्चित वृत्तान्त हमें प्राचीन साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। बालकों की शिक्षा के लिए गुरुकुल बने हुए थे। वैदिक साहित्य में कई जगह वर्णन मिलते हैं जहां कुलपतियों के बड़े बड़े कुलों का वर्णन मिलता है। उपनिषदों में भी स्थान २ पर ऐसे आचार्यों के अर्थवाद मिलते हैं जहां बालक गुरुओं के पास जाते हैं और विरोचन, सत्यकाम, और श्वेतकेतु की तरह गुरुकुलों में अध्ययन करते हैं। मध्यकालीन साहित्य में भी ऐसे वर्णन स्थान २ पर मिलते हैं जहां गुरुकुलों का वर्णन मिलता है। संस्कृतसाहित्य का प्रसिद्ध कवि मुरारि अपनी प्रशंसा में अभिमान के साथ लिखता है (गुरुकुल क्लिष्टो मुरारि कविः) कि मैंने गुरुकुल के तपोमय जीवन में विद्या तथा प्रतिभा शक्ति पायी है। कौरव पांडव तथा चन्द्रापीड़ आदि राजकुमार भी गुरुकुलों में पढ़ते थे। इतना ही नहीं मध्य एशिया में राजा सीरियस * के शासन काल में ईरान की जो शिक्षाप्रणाली प्रचलित थी वह गुरुकुल शिक्षाप्रणाली थी। उस शिक्षाप्रणाली में केवल मात्र क्षत्रिय तय्यार किए जाते थे। रहन सहन का ढंग मनुस्मृति में वर्णित नियमों के अनुसार था। अभिप्राय यह है कि प्राचीनभारत में प्रचलित शिक्षाप्रणाली में विद्यार्थी या बालक किस तरह शिक्षा पाते थे इस का वर्णन हमें अनेक स्थानों पर मिलता है। परन्तु कन्याओं और बालिकाओं की शिक्षा का क्या प्रबन्ध था इस विषय में हम सर्वथा अंधकार में हैं। जहां तक हमने संस्कृतसाहित्य का अनुशीलन किया है हमने कहीं कन्याओं के लिए बनाए गए गुरुकुलों का वर्णन नहीं पाया। परन्तु इसका यह अभिप्राय नहीं कि प्राचीन काल में स्त्रियां शिक्षिता नहीं होती थीं। महाभारत तथा रामायण में, सरस्वती आदि विदुषी इस बात की ज्वलन्त उदाहरण हैं, कि प्राचीन काल की

* इसका विस्तृत वर्णन The Age of Sonkar के तीसरे वाल्यूम मे किया गया है।

स्त्रियां शिक्षिता होती थीं। कुन्ती, सुभद्रा, उत्तरा, शिक्षिता थीं। श्रीकृष्ण की धर्मपत्नी सत्यभामा और द्रौपदी का संवाद बताता है कि वह विदुषी थीं। रामायण में सुमित्रा और सीता के विषय में जो वर्णन है उन से पता लगता है कि वह सब भी पढ़ी लिखी थीं।

पुरुषों और स्त्रियों की शिक्षा के उद्देश्य के विषय में भी विचार कर लेना चाहिए। पुरुषों की शिक्षा का उद्देश्य जीवन को चौमुखी दृष्टि से उन्नत करना है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिस से जीविका निर्वाह भी हो सके। प्राचीन समय में देश की आर्थिक स्थिति ऐसी थी कि आज कल की तरह शिक्षाप्रणाली रोटी के प्रश्न पर उलझी नहीं हुई थी। इस लिए इस सम्बन्ध में स्त्रियों की शिक्षा का उद्देश्य भी वैसा ही था।

निम्नलिखित उद्धरण हमारे इस पक्ष को समर्थित करते हैं। इन में स्त्रियों को सन्यासाश्रम तक में प्रवेश करने का अधिकार था।

स्त्रीणां प्रव्रजितानां तु करशुल्कं विवर्जयेद् (आग्नेय पुराण)

ऋषि हारीत लिखते हैं—

द्विविधाः स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयन मग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहेभिक्षाचर्येति। सद्योवधूनामुपस्थिते विवाहे कथञ्चिदुपनयन मात्रं कृत्वा विवाहकार्यः।

"जो स्त्रियां सन्यास धारण कर चुकी है उन पर से राजा कर और चुंगी हटादे।"

"स्त्रियां दो प्रकार की होती हैं, एक ब्रह्मवादिनी दूसरी सद्योवधू। ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उपनयन अग्निहोत्र वेदाध्ययन और भिक्षा आदि कार्य गृह में करने चाहिएँ। दूसरी स्त्रियों के विवाह के अवसर पर किसी प्रकार से भी उपनयन कर के, विवाह कर देना चाहिए। उपनिषदों का यह उद्धरण भी मनन करने योग्य है:—

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पंडिता जायेत सर्वमायुरियादितितिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयाताभीश्वरौजनयितवै।

जो चाहे कि उसकी कन्या पंडिता हो उसे विशेष भोजन तथा संस्कार करने चाहिए। इन से स्पष्ट हो गया है, कि स्त्रियों को आत्मिक तथा मानसिक उन्नति करने का पूरा मौका मिलता था।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में "शिल्पवत्यः स्त्रियः" शिल्प कला जानने वाली स्त्रियों का भी वर्णन है। अर्थात्

प्राचीन भारत में कन्याओं को ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या और शूद्रा बनने की छुट्टी थी। ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में स्त्रियों को राजकार्य्य न्यायाधीशत्वादि तथा शिल्प विद्या सिखाने की आज्ञा दी है। (तृतीय समुल्लास) दशम समुल्लास की यह पंक्तियां उन लोगों की आंखें खोल देगीं जो उदार विचारक होते हुए भी स्त्रियों द्वारा रसोई बनाना आवश्यक समझते है:—

"जो आर्यों में शुद्ध रीति से बनावे तो बराबर, सब आर्यों के साथ खाने में कुछ भी हानि नहीं क्योंकि जो ब्राह्मणादि वर्णस्थ स्त्री पुरुष रसोई बनाने, चौका देने, बर्तन भांडे मांजने आदि बखेड़े में रहें तो विद्यादि शुभगुणों की वृद्धि कभी नहीं हो सके।" इस प्रकार स्पष्ट हो गया कि स्त्री शिक्षा का उद्देश्य चौमुखे जीवन को उन्नत करना है।

परन्तु प्रश्न यह है कि क्या उस समय आज कल की तरह सार्वजनिक कन्यापाठशालायें व कन्यागुरुकुल होते थे, यदि होते थे तो उन का वर्णन प्राचीन साहित्य में क्यों नहीं मिलता। हमारी तुच्छ सम्मति में प्राचीन समय में कन्यागुरुकुल नहीं होते थे। नांही सार्वजनिक कन्यापाठशाला होती थीं। प्रश्न यह होता है कि ... कन्यायें पंडिता किन संस्थाओं में बनती थीं। प्राचीनसाहित्य से प... लगता है कि कन्यायें घरों में ही शिक्षा पाती थीं। कुलों के, घरों के, पुरोहित या पिता ही उन को शिक्षा देते थे द्रौपदी ने युधिष्ठिर से यही कहा था कि मैंने यह बातें घर में पिता के यहां सीखीं थी। लीलावती के पिता ने अपनी लड़की को पढ़ाने के लिए ही गणित की पुस्तक लीलावती लिखी थी। उत्तरा तथा अन्य कन्याओं ने भी घर में ही शिक्षा पायी थी। ऐसा मालूम होता है कि प्राचीन काल में शिक्षित पिता माता कन्याओं को घर में ही शिक्षा देते थे। ऊपर ऋषिहारीत का जो उद्धरण लिखा है उस से भी हमारा पक्षपुष्ट होता है। इसी विशेषता के कारण हम देखते है कि भारतीय महिलायें शिक्षित होने पर भी यूरोपियन महिलाओं की तरह स्वच्छन्द नहीं बनी थीं।

परन्तु इस समय भारतवर्ष के घरों की, कुलपुरोहितों की अवस्था बिगड़ी हुई थी और है अतः बालिकाओं की शिक्षा को पिताओं को ही नहीं सौंपी जासकता। इसी परिवर्तित अवस्था के का-

मजाल ? अरे तुझे मरने को कहीं और जगह न थी कि हमारे हाथ रंगवाने यहां आगया है ।

वे अपने क्रोध को अधिक न रोक सके । उनका ब्राह्मण्यदावानल बुरी तरह भड़क उठा । वे अनेक प्रिय-सम्बन्ध-सूचक शब्दों से सम्बोधन करते हुवे अपना तैलतृप्त पादुकास्त्र सम्हाल भूखे बाघ की तरह उस जीवन्मृत बालक पर टूट पड़े । उनकी प्रचण्ड कण्ठध्वनि गगनभेदन करने लगी । धर्मशाला में टिके हुवे कुछेक यात्री तमाशा देखने के लिये बाहर निकल आये । उन्होंने बचबचाव करने का भी भरसक यत्न किया, पर पुजारी जी हिन्दु धर्म की रक्षा के लिये कमर कस चुके थे, उन्हों ने शाप का भय दिखा कर सब को स्तम्भित कर दिया ।

पर्याप्त पुण्योपार्जन कर चुकने पर पुजारी जी कुछ ठंडे हुवे तो देखा कि लड़का अधमरा हो गया है । उस की आंखें पथरा गई हैं । तब तो ब्राह्मण-देवता घबराये और लगे लोगों को सहायता के लिये पुकारने । लोगों ने आते ही लड़के को उठा कर पास के पेड़ की छाया में लिटा दिया । पुजारी जी उस के मुंह में पानी टपकाने लगे । उनकी छाती धौंकनी की तरह धुक धुक कर रही थी । हाथ कांप तथा पांव लड़खड़ा रहे थे । थोड़ी देर में लड़के ने आंखें खोलदीं—तब पुजारी जी की जान में जान आई । उनका भय कुछ २ दूर हुवा । लोग तितर बितर होने लगे । पुजारी जी दुबारा सवस्त्र-स्नान कर के मन्दिर की तरफ़ चल दिये । रास्ते में सोचते जाते थे कि सत्ययुग में नृसिंह भगवान ने हिरण्यकशिपु का नाश कर जिस धर्म की रक्षा की थी, त्रेता में आनन्द कन्द श्री रामचन्द्र जी ने रावण का संहार कर जिस धर्म को नष्ट होने से बचाया था, तथा द्वापर में द्वारकापति श्रीकृष्ण-जी ने कंस आदि का ध्वंस कर जिसका उद्धार किया था—आज इस करालकलिकाल में उस ही पवित्र वैदिक धर्म की सुध लेने वाला कोई नहीं है । आज धर्म का राज्य होता तो इस चण्डाल की खाल जीते जी खिचवा लेता । फिर सोचने लगे कि यह भी अच्छा ही हुवा कि कमबख़्त ने फिर आंखें खोल लीं नहीं तो भई ! बड़ी मुश्किल होती । लेने के देने पड़ जाते । वे इस बात से बड़े लज्जित थे कि उन्हें झखमार कर आखिर पानी पिलाना ही पड़ा था ।

थोड़ी देर बाद लड़का उठ खड़ा हुवा और लड़खड़ाता हुवा एक ओर को चल दिया ।

(२)

चारों ओर प्लेग का प्रकोप है । लोग धड़ाधड़ मर रहे हैं । कोई बात पूछने वाला नहीं है । घरों में दीये नहीं बलते । किसी परिवार में सिर्फ बूढ़े बाबा ही बहार देखने के लिए बच गये हैं तो किसी में सिर्फ़ एक दुधमुंहे बच्चे पर मौत ने अपने दांत नहीं गड़ाये हैं । कहीं बिलकुल ही सफ़ाया है ।

इन दिनों ईसाई मुसलमानों की ख़ूब बन आई । मुसलमान अनाथ बच्चों और औरतों को अपने यहां ले जाते हैं और

उनका इलाज करते हैं। उधर ईसाई मिशनरी गांव २ में मुफ्त दवाइयां बांटते फिरते हैं। भूखों को अन्न, नंगों को वस्त्र तथा निराश्रयों को आश्रय देते हैं। लोगों का विश्वास राम और कृष्ण पर से उठ कर मसीह पर जम गया है।

* * * * *

आज शनिवार है। दिन ढल चुका है। पेड़ों की छाया पूर्व की ओर को लौट पड़ी है। मुगल सराय के खेतों के बीचों बीच बड़ का एक बहुत बड़ा वृक्ष है। उसके नीचे दूर २ के डोम जमा हो रहे हैं। क्या बच्चे क्या बूढ़े सभी प्रसन्न मुख हैं। सब ही दयावतार भगवान मसीह की चरण शरण में जाने के लिये उत्सुक हो रहे हैं। इतने में एक बूढ़ा डोम कहने लगा— भाइयो! अब तक हिन्दु रह कर हमने बड़े २ कष्ट भोगे हैं। पर आज हमारे सारे संकट कट जाने को हैं। अब हम पर कोई उंगली न उठा सकेगा। तथा न कोई हमें लाल २ आंखें ही दिखला सकेगा। हम पढ़ेंगे, हमारे बच्चे पढ़ेंगे, सब को मिठाई मिलेगी, कपड़े मिलेंगे। इस से अच्छा धर्म भला और क्या हो सकता है? सब ने उत्तर दिया "ठीक है चौधरी! बिलकुलठीक है"

इतने में ही चार पांच बाइसिकल वहां आ पहुंचे। प्रधान पादरी मिस्टर डेविड, मिसेज़ डेविड तथा अन्य दो तीन हिन्दुस्तानी पादरी डोमों की ओर बढ़े। डोमों ने खड़े हो सिर झुका कर साहब को सलाम किया। मिसेज़ डेविड ने आते ही एक छोटे से मैले कुचैले बच्चे को गोद में उठा लिया। वे उस से प्यार करने लगीं। पादरी साहब ने भगवान मसीह की सूली पर चढ़ने की एक सुन्दर रंगीन तसवीर तथा एक एक चवन्नी सब को बांट दी और कहने लगे कि—'ऐ मेरे प्यारे भाइयो! आज तुम्हें खुश होना चाहिये कि तुम्हें भगवान मसीह ने अपनी शरण में स्वीकार किया। जिस तरह सब नदियां समुद्र में पड़ कर एक हो जाती हैं उसी तरह भगवान मसीह की छत्रछाया में सब इन्सान बराबर हो जाते हैं। न कोई छोटा है न कोई बड़ा। हिन्दुओं ने तुम पर कैसे २ जुलम किये हैं यह बताने की जरूरत नहीं। अभी उस दिन मन्दिर के पुजारी ने तुम्हारे एक छोटे से छोकरे को किस बेरहमी से पीटा और पानी नहीं पिलाया यह तुम से छिपा नहीं है। क्या तुम चाहते हो कि अब भी तुम इस तरह ही मार खाते रहो और पैरों तले रौंदे जाते रहो।

'नहीं हुज़ूर कभी नहीं' की ध्वनि से दिशायें गूंज उठीं। पादरी साहब ने पूछा कि इसके लिये तुमने क्या उपाय सोचा है? सबने कहा "हम ईसा पर ईमान लावेंगे"। पादरी साहब बड़ी गम्भीर तथा मधुर वाणी से कहने लगे—

"मुझे बड़ी खुशी है कि मेरे भाई अंधेरे से निकल कर रोशनी में, दलदल से उबर कर सूखे में, और कांटों से बच कर फूलों में आ रहे हैं। सच जानो तुम्हारे लिये स्वर्ग का दरवाज़ा खुल गया है। तुम बड़े भाग्यवान हो।

पापी संसार के पापों की गठरी अपने सिर पर रख कर परमेश्वर का जो इकलौता बेटा तुम्हारे लिये सूली पर चढ़ गया था आज वह अपने दोनों हाथ उठा कर तुम्हें अपनी तरफ़ बुला रहा है। क्या तुम उसके प्रेम भरे निमन्त्रण को स्वीकार करोगे" ?

"ज़रूर, ज़रूर"

"तुम उसकी ओर बढ़ोगे- वह तुम्हारे सामने आ खड़ा होगा, तुम उसके चरणों में झुकोगेर वह तुम्हें गले लगा लेगा,तुम उसका सहारा लोगे— वह तुम्हें गोद में बिठा लेगा, क्या ऐसे उदार प्रभु की सेवा तुम्हें स्वीकार है"।

"स्वीकार है, स्वीकार है."

"अच्छा तो आज से तुम ईसा की शरण में आये, ईसाई हुवे। गुलामी की निशानी यह चुटिया अपने सिर से हटादो। हम तुम्हारे वास्ते मदर्से बनायेंगे, तुम्हें पढ़ायेंगे, तुम्हारे बच्चों को आदमी बनायेंगे। बिना पढ़े आदमी आदमी नहीं कहला सकता। वह तो जानवरों से भी बद्तर है। हम तुम को नौकरी देंगे, इनाम देंगे, मिठाई देंगे। तुम्हें बेगार में कोई न पकड़ सकेगा। यदि तुम हिन्दू रहोगे तो यह सब कुछ न हो सकेगा। फिर सोचलो"—

"हमने खूब सोच लिया। हम हिन्दू नहीं रहना चाहते"

देखते २ गांव का गांव राम, कृष्ण से नाता तोड़ कर मसीह का उपासक बन गया।

(३)

दिन ढल रहा है। धूप में वह तेज़ी नहीं रही। बनारस को जाने वाली गाड़ी मुगलसराय जंकशन पर खड़ी है। मुसाफ़िर गाड़ी में जगह पानेके लिये उतावले हो कर भाग रहे हैं।

इसी गाड़ी के दूसरे दर्जे के एक डब्बे में एक हिन्दुस्तानी यात्री जो कि चालढाल से ईसाई मालूम होता है— खिड़की से मुंह निकाल कर भावपूर्ण-दृष्टि से चारों ओर देख रहा है। उस के चेहरे पर प्रसन्नता तथा दुःख की झलक एक साथ ऐसी मालूम होती है जैसी संध्या के आकाश मे दिन और रात की शोभा मिल जुल रही हो। यात्री की आंखों में न मालूम क्यों एकाएक आंसू भर आये। वह ज़्यादह देर तक बाहर न देख सका। उसने मुंह फेर लिया। इतने ही में एंजिन ने सीटी दी और गाड़ी खुल गई। यात्री ने दिलबहलाव के लिये अपने बैग में से एक डायरी निकाली और उसके पन्ने उलटने लगा। अचानक उसकी दृष्टि एक जगह पड़ी। वह वहीं से पढ़ने लगा—

"परीक्षा परिणाम प्रकाशित हो गया। मैं युनिवर्सिटी की सर्वोच्च परीक्षा में प्रथम उत्तीर्ण हुवा। पादरी डेविड के सिवाय मेरा अपना कोई नहीं। उन्हीं की सहायता से मैं यहां तक पहुंचा हूँ। और आगे भी उन्नति की आशा रखता हूं। यह उन्हीं की कृपा है कि मैं आज विलायत जा रहा हूं। वहां उत्तीर्ण हो कर मैं भारतीय सिविल-सर्विस में प्रविष्ट हो जाऊं यह मेरी चिरकाल की इच्छा है। प्रभु की कृपा

से यह भी अवश्य पूर्ण होगी……"

यात्री ने उंगली पर कुछ गिना और अपनी नई डायरी निकाल कर उस में लिखना शुरु किया—

"आज ठीक चार वर्ष बाद मैं विलायत से लौट कर अपनी मातृभूमि 'मु—य' को देखता हुआ फिर बनारस आ रहा हूँ। यहां यह लिखने की आवश्यकता नहीं कि मैं आवश्यक सभी परीक्षाओं में सन्मान पूर्वक उत्तीर्ण हो चुका हूँ। श्रद्धेय पिता मिस्टर डेविड ने अपने पत्र में लिखा है कि मेरी वर्त्तमान नियुक्ति बनारस में ही सिटीमजिस्ट्रेट के पद पर निश्चत हो चुकी है। मेरा हृदय कृतज्ञता से भर रहा है मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि उसका दयामय हाथ जिस प्रकार अब तक मेरे सिर पर रहा है भविष्य में भी वैसा ही रहे। मुझे प्रसन्नता होगी यदि मैं अपने देश का कुछ भी हित–साधन कर सकूं। यद्यपि, मैंने हिन्दुधर्म त्याग दिया है तथापि अपने और इसाई भाइयों की तरह, मैं अपने आप को भारतीयता के अधिकार से वंचित नहीं करना चाहता। भारत देश मेरी मातृभूमि है। क्या हिन्दू, क्या मुसलमान, क्या इसाई–माता को अपने सब बच्चे बराबर प्यारे हैं। मुझे दुख है कि मेरे देश भाई अज्ञान के कारण मुझे पराया समझेंगे, म्लेच्छ समझेंगे, न मालूम क्या समझेंगे? पर मुझे तो उनके साथ भलाई ही करनी होगी।

ऐच, विलसन

इतना लिखकर मिस्टर विलसन ने अपनी डायरी बन्द की।

(४)

आज पादरी डेविड के बंगले पर बड़ी चहल पहल है। उनका पोष्यपुत्र मि॰ ऐच. विलसन चार वर्ष बाद विलायत से वापिस आया है। विलसन के कितने ही पुराने क्लास फ़ैलो तथा नगर के बहुत से प्रतिष्ठित व्यक्ति विलसन को बधाई देने तथा उसका स्वागत करने के लिये आरहे हैं। आज उस की प्रसन्नता का क्या ठीकाना है। किन्तु इस प्रसन्नता के साथ ही उसे यह देख कर घृणा होती है कि पवित्रता के ठेकेदार जो हिन्दूदेवता नीची जातियों के अपने भाइयों से छू जाने में महापाप समझते हैं वे ही आंख के अंधे इसाई या मुसलमान बने हुवे उन्हीं चमार भंगियों के साथ हाथ मिलाने के लिये लालायित होते हैं। उनके साथ दो बात कर लेने में अपना अहो भाग्य समझते हैं। कृपा दृष्टि प्राप्त करने के लिये उनकी ड्योढ़ी पर घण्टों एड़ियां रगड़ते हैं। ऐसा करने में हिन्दूपन की लम्बी नाक नहीं कट जाती। विलसनने देखा कि हिन्दूधर्म कोई धर्म नहीं। उस में से आत्मा निकल चुकी है। ढांचा शेष रह गया है मूर्ख लोग लकीर पीटते जा रहे हैं। वास्तविकता को कोई नहीं देखता। इस ढोंग के सहारे हिन्दूजाति भला कब तक जी सकेगी।

विलसन को अपने पुराने साथियों से मिल कर अत्यन्त आनन्द हुवा। अभिनन्दन पत्रों तथा अन्य आमोद—प्रमोदों के साथ यह उत्सव समाप्त हुवा। उसने नगर के रईसों की भेजी

हुई डालियों को देखा तो उसे अपने भविष्य के कार्यक्रम की गंभीरता का ध्यान आया।

मिस्टर विलसन का पूर्वइतिहास किसी को ज्ञात नहीं। सब इतना ही जानते हैं कि वे पादरी डेविड के धर्म-पुत्र हैं। उन्हीं की कृपा से उनका पालन पोषण हुआ तथा वे इतने योग्य होगये हैं। इससे अधिक जानने की आवश्यकता भी नहीं है। क्यों कि उन्होंने किसी हिन्दू कन्या के तो हल्दी लगवानी ही नहीं। न ऐसा करने की उन्हें जरूरत ही है। उनके गुणों पर मुग्ध होकर सिविलसर्जन कर्नल कुक की कन्या ने अपना हृदय उन्हें समर्पित कर दिया। दोनों ही पक्ष वालों को यह सम्बन्ध बहुत पसन्द आया और अन्त में यह शुभ विवाह बड़े आनन्द और धूम धाम के साथ सम्पन्न हो गया।

(५)

सारे शहर में सनसनी फैली हुई है। रात के भयंकर डाके की चर्चा सब की ज़बान पर है। सुना जाता है कि पास पड़ौसियों की सहायता तथा पुलिस की निपुणता के कारण प्रायः सारे ही आततायी पकड़ लिये गये हैं। बयान लिये जा रहे हैं। डाकू लोग आधीरात को शहर के एक महाजन के घर में घुस गये। वहां उन्होंने धन के लिये सारे परिवार को एक एक कर के निर्दयता पूर्वक मार डाला। अन्त में लगभग २०, २५ हज़ार का माल लेकर नौ दो ग्यारह हुवा ही चाहते थे कि पुलिस घटनास्थल पर आ पहुंची। ख़ासी मुठ भेड़ हुई। दोनों ओर चोट आई। अन्त को पुलिस का विजय हुवा। छुटकारे का कोई उपाय न देख कर तथा छिपाना व्यर्थ समझ कर कितने ही अपराधियोंने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। मामला मिस्टर विलसन के सामने पेश हुआ।

डाकुओं के सरदार को देख कर तथा उसका नाम सुन कर मिस्टर विलसन के दिल में कुछ सन्देह उत्पन्न हुवा। लगभग बीस वर्ष पुरानी एक घटना उनकी आंखों के सामने घूम गई। उन्होंने उससे पूछा—'क्या तुम वही मुगलसराय वाले गोविन्दा मिस्सर हो जो कि कभी मन्दिर के पुजारी थे। सारी जनता तथा स्वयं गोविन्दा को बड़ा आश्चर्य हुवा कि कि यह कैसा रहस्य है। साहब उसे कैसे जानते हैं।

गोविन्दा हाथ जोड़ कर और गिड़-गिड़ा कर कहने लगा 'हज़ूर मैंने ख़ता की है। मैं अब भी उसी मन्दिर का पुजारी हूं। किन्तु गुप्तरूप से बदमाशों का गिरोह गांठ कर कभी कभी डाका भी डाला करता हूं। कितने ही सफ़ेद-पोश और तिलकधारी भी हमारे साथी हैं। दुनिया उन्हें नहीं पहचानती। हमें हीकोसती हैं पर असल में "राजा भोज भरम के भूले, घर घर हैं मटियाले चूल्हे" वाली कहावत सर्वत्र चरितार्थ हो रही है। ग़रीब परवर! हम सबने बड़े पाप किये हैं। न मालूम कितने निपराध लोगों के ख़ूनों से अपने हाथ रंगे हैं, कितनी बिल-बिलाती हुई माताओं के देखते देखते

उन के दिल के टुकड़ों–आंखों के तारों को उनकी गोद से खींच खींच कर बोटी बोटी कर मार डाला है। कितनी सरसब्ज़ फुलवारियों को उजाड़ दिया है। मेरे लिये प्राणदण्ड के सिवाय क्या व्यवस्था हो सकती है? पर सरकार! मैं अभी जीना चहता हूं! मेरी उमर पचास पार कर गई, पर मैंने अभी तक कुछ भी पुण्य नहीं कमाया। पापों में ही सारा जीवन बिगाड़ दिया। मेरे अन्नदाता! मेरे प्राणदाता! मुझे इस वार माफ़ करो। मैं अपका बच्चा हूँ, आप की गाय हूं, आपके पैरों की धूल हूं।

मिस्टर विलसन ने कहा–गोबिन्दा! काल बड़ा बली है। २० वर्ष पहिले का ज़िकर है। मुग़लसराय धर्मशाला के कूवे पर एक ग़रीब डोम-बालक ने तुम से पानी पीने को मांगा था। तुमने उसे किस बुरी तरह से पीटा था। क्यातुम्हें उसकी शकल कुछ याद है? देखो! वह तुम्हारे सामने मौजूद है। उस की कमर तथा बाहों पर उन चोटों के निशान अब भी बने हुवे हैं। तुमने हिन्दूधर्म की रक्षा के लिये वह अत्यचार किया था। तुम्हें धर्म का स्वरूप पता नहीं। न मालूम तुम जैसे और भी कितने धर्म के ठेकेदार इसी तरह धर्म की जड़ पर कुठारा ऽऽघात कर रहे हैं। कितने स्वार्थी टट्टी की ओट शिकार खेल रहे हैं। कितने भेड़िये भेड़ की खाल पहन कर घूम रहे हैं। मुझे तुम्हारे उस व्यवहार के प्रति रोष नहीं किन्तु दया है। तुम अज्ञान में भटक रहे हो यह देख कर मुझे तुम्हारे प्रति सहानुभूति है। परन्तु इस समय मैं न्याय तथा नियमों से बंधा हुवा हूं। हम तुम दोनों ही किसी बड़ी शक्ति के हाथ में कठपुतले के समान हैं। मैं तुम पर अपनी इच्छा के अनुसार कृपा नहीं करसकता। भाई! आज कलियुग नहीं, कर्मयुग है। ब्रह्मा जी के मुख से उत्पन्न ब्राह्मण-देवता डाकू के रूप में खड़ा हुवा एक अछूत डोम के चरण में प्राणों की भिक्षा मांग रहा है। किन्तु वह उसे धर्म के नाम पर क्षमा नहीं कर सकता। मुझे दुख है ————,।

गोबिन्दा ने बात काट कर कहा–"सरकार! आज डोम नहीं किन्तु ब्राह्मण अछूत है।

सम्पादकीय

स्त्रियों की अधिकता

इस समय फ्रांस में बीस लाख स्त्रियें ऐसी हैं जिन्हें गत विश्व व्यापी महासमर में, पुरुषों के भेड़ बकरियों की तरह कत्ल हो जाने के कारण, बाधित-रूप से अविवाहित रहना पड़ रहा है। सारे–युरुप में पुरुषों की अपेक्षा १ करोड़ ५० लाख अविवाहिता स्त्रियां अधिक हैं। इस भयंकर अवस्था को देख कर विद्वानों ने सिर खुजलाना शुरू किया है। कइयों का कथन है कि ऐसी विकट अवस्था में बहु विवाह का

आयज़ ठहरा देना अनुचित न होगा परन्तु जिस समय ग़रीबी के कारण एक स्त्री का पालना दूभर हो रहा हो उस समय अनेक स्त्रियों से विवाह कर उनके पालन का भार उठाना असम्भव है। इस समस्या को हल करने के लिए डा० पाल करनट की सम्मति है कि पति-पत्नि का सम्बन्ध ही कुछ देर के लिए हटा दिया जाय। माता और पुत्र का ही सम्बन्ध रह जाय, पिता और पति के सम्बन्ध को भुला दिया जाय। राज्य की तरफ़ से सब स्त्रियों और उनकी सन्तानों का भरण-पोषण किया जाय। ऐसी अवस्था में एक पुरुष का सम्बन्ध कई स्त्रियों से होते हुए भी उन की रक्षा का भार उस पर न होगा और नांही इसे बहु विवाह कहा जायगा। परन्तु यदि इस प्रकार की आयोजना के चल निकलने की सम्भावना को स्वीकृत कर लिया जाय तो क्यों न इन दोनों से उत्कृष्ट एक तीसरी ही अयोजना निकाली जाय। इस में सन्देह नहीं कि कई देशों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों की संख्या अधिक होगई है परन्तु साथ ही यह बात भी ठीक है कि कई देशों में अभी स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की संख्या अधिक है। क्यों न विवाहेच्छु उन स्त्रियों को जिन्हें अपने देश में पुरुष नहीं मिलते, उन देशों में पहुंचा दिया जाय जहां पुरुषों की संख्या वहां की स्त्रियों की अपेक्षा अधिक हो? ऐसा करने से कई लाभ होंगे। पहला लाभ यह होगा कि सभ्य संसार के माने हुए एक विवाह के सिद्धान्त को तिलाञ्जलि देने की नौबत न आयगी और संख्या-वैषम्य का प्रश्न हल हो जायगा। दूसरा भारी लाभ यह होगा कि परस्पर विवाह के इस उद्योग से अन्तर्जातीयता के भाव प्रबल वेग से उठ खड़े होंगे। इस समय प्रत्येक देश और जाती अपने को दूसरों से सन्निकट-सम्बन्ध से बन्धा हुआ न पाने के कारण, पृथक् २ खड़ी हुई है। अन्तर्राष्ट्रीय सभा के होने पर भी भिन्न २ राष्ट्र के मनकों को एकता के सूत्र में नही पिरोया जा सका। प्रत्येक राष्ट्र मौका पाकर दूसरे को निगल जाने पर तुला हुआ है। परस्पर विवाहों की संख्या बढने से भिन्न २ देशों के स्वार्थ एक होते चले जायंगे और अन्तर्राष्ट्रीयनीति स्वयं फूट निकलेगी। एशिया और युरुप के अबतक के पारस्पारिक भाव संसार की स्थायी शान्ति में बांधा पहुँचाते रहे हैं। युरुप एशिया पर सदा दाँत गड़ाए रखने की फ़िक्र में रहता है। परन्तु यदि एशिया की सुसराल योरुप में हो जाय तब तो योरुप का विकराल रूप देर तक नहीं बना रह सकता। पूर्व और पश्चिम को मिलाने का क्या ही उत्तम अवसर है? कइयों का विचार है कि अब तक के ऐसे सम्बन्ध सुखी नहीं देखे गये। हम भी इस कथन की सत्यता को कुछ अंश तक स्वीकार करते हैं परन्तु क्या उन सम्बन्धों के सुखी न होने का कारण यह तो नहीं कि अब तक ऐसे सम्बन्ध ही बहुत थोड़े हुए हैं? हमारा विश्वास है कि कि यदि ऐसे सम्बन्ध बढ़ते जायं तो संसार के दृष्टि-कोण में भारी परि-

वर्तन आजाय और विश्व-व्यापी शान्ति की आधार शिला की स्थापना होजाय।

मुसल्मान और मूर्तिपूजा

वैसे तो मूर्ति-पूजा के विरोधी अनेक सम्प्रदाय इतिहास में उठे और गिरे परन्तु मूर्तिपूजा को संसार से निर्वासित कर देने का खुल्लमखुल्ला दावा मुसल्मानों का ही रहा है। मुसल्मान जहां गये, मूर्तियों के टुकड़े २ करते गये। भारत में उनका वैभव देर तक रहा इस लिये आज दिन भी जहां तहां पुराने मन्दिर उन दिनों के भयंकर इस्लामी आक्रमणों की सूचना दे रहे हैं। मन्दिरों को तोड़ कर मस्जिदें खड़ी कर देना औरङ्गज़ेब का रोज़ का काम रह चुका है। इस समय भी कोई पुराना मन्दिर ऐसा नहीं दीख पड़ता जिस की मूर्ति के अङ्ग-विच्छेद के साथ किसी मुसल्मान आक्रान्ता की कथा न जुड़ी हुई हो। मुसल्मान अपने आप को 'बुतपरस्त' नहीं परन्तु 'बुतशिकन' कहते रहे हैं।

समय ने ऐसा पल्टा खाया कि वही मुसल्मान जो मूर्तियों को ढूंढ २ कर तोड़ते रहे आज खुद मूर्तिपूजक हो रहे हैं। समाचार आये हैं कि वाहबी सम्प्रदाय के मुखिया इब्न सौद के अनुयायियों ने मदीने पर आक्रमण कर हज़रत मुहम्मद की कब्र के गुम्बजों को बम्ब मार कर उड़ा दिया है। इस स-समाचार ने सारे मुस्लिम—जगत् में सनसनी फैला दी है। मौलाना मुहम्मद अली ने २६ अगस्त की भरी सभा में लाहौर व्याख्यान देते हुए कहा कि यदि यह समाचार सत्य है तो वे मदीने जाने वाले सब से पहले जहाज पर चढ़ कर इब्न सौद के साथ युद्ध की घोषणा कर देंगे। ख़िलाफ़त कमेटी के लोग इस समाचार को झूठा बतलाते हैं अतः बम्बई में ख़िलाफ़त कमेटी के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव पास किय गया है। उस दिन जुम्मा मस्जिद की भारी जमायत लग चुकने के बाद मौलाना शौक़त अली को सेठ छोटानी ने छड़ी दिखाई और बी अम्मा को गालियां दीं। कब्र पर बम्ब फेंके जाने का दुर्घटना सुनते ही पर्शिया की मजलिस बर्ख़ास्त कर दी गई और ५ सितम्बर का दिन मातम के लिये ठहराया गया। ५ सितम्बर को सारे मुसल्मानी संसार में मातम रहा।

इन घटनाओं को सुन कर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि 'बुतशिकन' मुसल्मानों को कब्र टूटते देख कर इतना रञ्ज क्यों? यदि मुसल्मान उसी धर्म पर दृढ़ है जिसे लेकर वे अब तक दुनियाँ भर की मूर्तियों को ठुकराते रहे, तो आज उन्हें आँसू बहाने का कोई कारण नहीं। दूसरों की मुसीबत देख कर घर में चिराग जलाना भले मानसों का काम नहीं परन्तु हमें तो यह ही समझ नहीं पड़ता कि इस घटना को क्यों कर मुसल्मानों की मुसीबत समझा जाय। इब्न सौद तो ख़ास वही काम कर रहा है जो अब तक सारे इस्लाम के इतिहास में होता रहा है और जिसे लेकर इस्लाम का जन्म हुआ। हिन्दुओं की मूर्तियों और मुसल्मानों की मूर्तियों में कोई भेद नहीं।

यदि मूर्तिपूजा एक ईश्वर की उपासना के विरुद्ध है तो वह चाहे हिन्दुओं की हो, चाहे मुसल्मानों की हो, एक ही कोटि की है हमारे कथन का यह अभिप्राय नहीं कि हम इब्न सौद की कार्रवाइयों का अनुमोदन करते हैं। अधिक सम्भव यही है कि उस के इन कृत्यों से मुसलमानों में मूर्तिपूजा के भाव अधिकाधिक बढ़ने ही जायं और एकेश्वरवाद के प्रचार करने वाले धर्म का अन्त मूर्तिपूजा में हो ! हमें तो दुःख उन मुसलमानों की शोचनीय दशा देख कर होता है जो संसार भर से मूर्तिपूजा दूर करते २ अपने घर में ही मूर्तियें बना कर उनकी पूजा करने लगे।

बलिवेदि पर स्नेह लता के कपड़ों की आग की प्रभा अभि शान्त न हो पाई थी, कि दहेज की कुप्रथा पर स्वर्णलता ने अपने आप को बलिदान कर पिता माता को चिन्ताओं से मुक्त कर दिया। दहेज की कुप्रथा कितने परिवारों का सत्यानाश कर रही है यह इस घटना ने बता दिया है। यह घटना इस कुप्रथा की भयंकर उग्रता को बतला रही है। यदि ऐसी अवस्था में लोग कन्या का पैदा होना अनिष्ट कर समझें तो आश्चर्य नहीं ! निर्धन आदमी को अपनी कन्या के लिये वर ढूंढने में कितनी कठिनाई होती है यह स्वर्णलता ने अपने आप को होम कर जता दिया है। जिस देश में कन्या का विवाह रुपये की थैली को देख कर होता है उस देश की और तद्देशीय महिला समाज की अवस्था कितनी भयंकर है, उस भयंकरता को स्वर्णलता सदृश देवियों का बलि हो जाना बताने के लिए पर्याप्त है। क्या युवक समाज इस प्रदीप्त अग्नि शिखा के आलोक में इस कुप्रथा के ध्वंस के लिए आगे बढ़ेगा ?

साहस का अभाव 'सहवास सम्मति बिल' पास हो गया। पर यह बिल प्राण शून्य हो कर पास हुआ है। इस के प्राणों की हत्या करने का श्रेय भी भारतीय नेताओं को है। विवाह-वय बढ़ाने के जितने प्रस्ताव और उप प्रस्ताव पेश हुए वे सब फेल हो गए। म० मालवीय जी ने यह घोषणा करते हुए कि हमारे शास्त्र २५ और १६ वर्ष की आयु का विधान करते हैं इन प्रस्तावों का पिछड़े विचार वालों के नाम विरोध किया और शास्त्र वचनों तक की अवहेलना की। बाल विवाह के कारण हमारी जाति में से उत्साह, साहस और उल्लास काफ़ूर हो गए हैं। हमारा जातीय शरीर खोखला हो गया है। पर हमारे नेता पिछड़े लोगों के नाम पर आगे बढ़ने वालों की टांग पकड़ कर पीछे घसीटने में देश का कल्याण समझते हैं। युवक मण्डली को नेताओं के आदेशों की पर्वाह छोड़ कर आगे बढ़ना चाहिए। नेता अपने आप साथ चलेंगे।

गौरवरक्षा शंघाई के अखबार 'न्यू यूनियन' ने एक विचित्र समाचार दिया है। यदि वह सत्य है तो भारतीयों को

अपना मस्तक गौरव से ऊँचा करने का अवसर है। घटना इस प्रकार है, कि अभी हाल में शंघाई में उपद्रव होने के अवसर पर तीन सौ भारतीय सैनिकों को निःशस्त्र चीनी जनता पर गोली चलाने की आज्ञा दी गई जिसे उन्होंने मानने से इन्कार कर दिया। सब सैनिक कोर्ट मार्शल के सुपुर्द किए गए और सब एक साथ शूट कर दिए गए। भारत वासी दूसरी जातियों को परतन्त्र बनाने, दूसरों की जमीन में बृटिश झंडा गाड़ने के लिए बदनाम हैं। पर यह घटना बता रही है कि हम लोगों में से अभी आत्मसम्मान का भाव सर्वथा नहीं गया। देश की गौरव रक्षा के लिए १०) ११) का नौकर सिपाही भी अपने प्राणों को उत्सर्ग करने के लिए तय्यार रहता है।

एक और ठोकर

बृटिश जाति भारत सन्तान का और भारत का अपमान करने का कोई अवसर नहीं चूकती। प्रत्येक क्षेत्र में भारत वासियों को नीचा दिखाना उस का उद्देश्य हो गया है। विद्या के क्षेत्र में रवीन्द्र और वसु को पैदा कर भारत संसार के समक्ष खड़ा होना चाहता है पर बृटिश जाति को यह पसन्द नहीं है। The eventful years नाम से अभी हाल में साइक्लोपीडिया में दो भागों में महत्व पूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसके २८ लेखक हैं। प्रत्येक देश का वृत्त उस देश के ही किसी प्रसिद्ध महानुभाव ने लिखा है। जर्मनी का वृत्त प्रसिद्ध राजतन्त्र वादी कैसर भक्त लूडन डार्फ ने लिखा है जिस में बृटेन द्वारा की गई नाके बन्दी अन्य घृणित और क्रूर कार्यों का वर्णन है। पर भारत का वृत्त एक सिविलियन भूत पूर्व अण्डर सेक्रेटरी ने लिखा है। जिस में संसार प्रसिद्ध जलयान वाला बाग की हत्या काण्ड का नाम तक नहीं और दिल्ली के उपद्रव का विस्तार से वर्णन है। असहयोग आन्दोलन की भरपेट निन्दा की गई है। जिस घटना की प्रतिवर्ष भारत सन्तान बर्षी मनाती ह, जो स्वतन्त्रता आन्दोलन का आधार बन रही है, उस का नाम तक नहीं इस से बढ़ कर हमारा अपमान और क्या हो सकता है? क्या भारत में भारतीय घटनाओं का ज्ञाता ऐसा कोई न था जो उन २८ महोदयों की पंक्ति में बैठ सकता जिस के लिए एक सिविलयन अंग्रेज से प्रार्थना करनी पड़ी? हम लोग गुलाम हैं हमारा इतिहास जैसा हमारे शासक चाहें वैसा बनाने का उनको पूरा अधिकार है। इसके अलावा भारत के बहिष्कार का कारण और क्या हो सकता है?

गुरुकुल समाचार

ऋतु

आजकल दिन में सूर्य की प्रखर किरणें तपाती हैं रात में कुछ ठण्ड हो जाती है। आकाश में बादल दर्शन देते रहते हैं। दो तीन दिन के अन्तर से वर्षा हो जाती है। वर्षा की समाप्ति की सूचना देने वाले

कास के फूल निकल आये हैं। गर्मी प्रति दिन घटती जाती है।

स्वास्थ्य मौसमी बुखार के कारण दो तीन ब्रह्मचारी रोगी हो गये थे, अब सब स्वस्थ हैं। मायापुर में भी अब सब स्वस्थ हैं।

अवकाश १३ अगस्त से सत्रान्तावकाश प्रारम्भ हो गया है। १३ अक्टोबर को महाविद्यालय खुलेगा सब उपाध्याय और ब्रह्मचारी अपने अपने घर चले गये हैं। छः सात ब्रह्मचारी शेष रह गये हैं। प्रो० सत्यव्रत जी मन्सूरी गये हैं और प्रो० सत्यकेतु जी पूना गये हैं। आचार्य रामदेव जी भी मन्सूरी हैं। एक मास तक चिकित्सालय का कार्य डा० अमरनाथ जी, और अध्यक्ष का कार्य श्री पं० वागीश्वर जी करते रहे हैं। द्वितीय मास में चिकित्सालय का कार्य श्री पं० धर्मदत्त जी, और अध्यक्ष का कार्य श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना करेंगे।

अतिथि गुरुकुल में प्रो० सांभीराम जी आये हुए हैं। आप के विस्तृत अनुभवों से सब कुलवासी लाभ उठा रहे हैं।

प्रस्ताव मन्सूरी आर्यसमाज का नगर कीर्तन डिप्टीकमिश्नरद्वारा बन्द किये जाने के कारण आर्य समाजों में असन्तोष फैल रहा है। स्थानीय समाज ने अपना असन्तोष निम्न शब्दों में व्यक्त किया है—"मन्सूरी आर्यसमाज के नगर कीर्तन को वहां के सरकारी अधिकारियों ने रोक कर आर्यसमाज के धार्मिक अधिकारों पर अनुचित हस्ताक्षेप किया है, इस का यह समाज घोर विरोध करता है और कमिश्नर तथा गवर्नर संयुक्त प्रान्त का ध्यान इधर खींचता हुआ उन से सविनय प्रार्थना कर आशा करता है कि डिस्ट्रिक्ट मजिस्ट्रेट की इस कठोर आज्ञा को मनसूख करके अपनी न्याय प्रियता का परिचय देंगे"।

शाखाएँ गुरुकुलइन्द्रप्रस्थ में षाण—मासिक परीक्षा होने वाली है, अतः सब ब्रह्मचारी और अध्यापक पढ़ाई में दत्त चित्त हैं। गुरुकुल कुरुक्षेत्र में आज कल अवकाश है। पांचवी श्रेणी तक के ब्रह्मचारी रोपड़ गये हुए हैं। बड़े ब्रह्मचारी नाहन यात्रा गये हैं।

उत्सव कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ (देहली) का वार्षिकोत्सव १४, १५, १६, नवम्बर १९२५ तदनुसार मास मार्गशीर्ष चतुर्दशी अमावस्या प्रतिपदा को होना निश्चि हुआ है।

जिनको अपनी कन्यायें प्रवेश करानी हैं वे अपने प्राथना पत्र १५ अक्टोवर से पूर्व भेज दें।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

वर्ष ९, अङ्क १० Registered No A ;1340

[चैत्र १९८२] [मार्च १९२६

ओ३म्

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र]

मुख्य संपादक

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विषय सूची

विदेश से ६ शि० एक प्रति का ।-) वार्षिक मूल्य ३)

ग्राहकों से क्षमा--याचना

गुरुकुल के अत्यावश्यक कार्याधिक्य से प्रेस के घिरे रहने से इस वार 'अलङ्कार' कुछ विलम्ब से निकल रहा है। आशा है ग्राहक सज्जन उस के लिये हमें क्षमा करेंगे ।

प्रबन्धकर्ता 'अलङ्कार'

अलङ्कार में विज्ञापन का दर

	एक पृ०	आधा पृ०	चौथाई पृ०
१ वर्ष के लिये	६) मास	३॥) मास	२) मास
६ मास के लिये	७) मास	४) मास	२।) मास
३ मास के लिये	८) मास	४॥) मास	२॥) मास
१ मास के लिये	९) मास	५।) मास	३।) मास

विज्ञापन का मूल्य पहले लिया जावेगा।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

वर्ष २, अङ्क १०] मास, चैत्र [पूर्ण संख्या २२

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अरंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५ ।

* विश्वप्रेम *

[श्री पं० श्रीहरि जी आचार्य हिन्दीविद्यापीठ प्रयाग]

शेष महेश रमेश सुरेश विरश्चि सभी इक प्रेम के चित्र हैं ।
योग वियोग सुभोग अनेक सभी प्रिय प्रेम के चारु चरित्र हैं ॥
राग विराग सुभाग सुयाग सभी इक प्रेमस्वरूप पवित्र हैं ।
"श्री हरि" पुत्र कलत्र सुमित्र अमित्र हू प्रेम के खेल विचित्र हैं ॥१॥

* * *

प्रेम ही जीवन, प्रेम ही मृत्यु है, प्रेम ही है विष घूंट अमी को ।
प्रेम ही ब्रह्म है, प्रेम ही जीव है, प्रेम ही वासर रूप तमी को ॥
प्रेम ही भुक्ति है, प्रेम ही मुक्ति है, प्रेम ही योग की युक्ति शमी को ।
"श्रीहरि" प्रेम ही चन्द्र की चन्द्रिका, प्रेम ही है मम जीवन जी को ॥२॥

बौद्ध धर्म का विदेशों में विस्तार

(ले० प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालंकार)

[२]

४. लङ्का में महेन्द्र का प्रचार

'मोग्गलि पुत्त तिस्स' की अध्यक्षता में बौद्ध धर्म की जो तीसरी महासभा हुई, उस में विविध देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये अनेक 'मिशन' तैयार किये गये। लंका को जो प्रचारक-मण्डल भेजा गया, उस का नेता सम्राट् अशोक का पुत्र महेन्द्र था। महेन्द्र के साथ कम से कम चार और भिक्षु थे। इन प्रचारकों ने किस प्रकार लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार किया, यह वृत्तान्त महावंश, दीपवंश, दिव्यावदान, अशोकावदान और ह्यूनसांग के यात्रा-विवरण में उल्लिखित है। इन्हीं प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर महेन्द्र के प्रचार का संक्षिप्त वर्णन हम यहां उल्लिखित करेंगे। महावंश और दीपवंश के अनुसार यह वृत्तान्त इसप्रकार है-

जब कि सम्राट् बिन्दुसार अभी जीवित थे, तब राजकुमार अशोक अवन्तिदेश के 'कुमार'[1] थे। उन की राजधानी उज्जैन थी। उस समय उन का सेट्ठी जाति की एक कन्या के साथ सम्बन्ध होगया। इस कन्या का नाम देवी था और यह 'वेदिस गिरि'[2] की रहने वाली थी। इस का राजकुमार के साथ विवाह हो गया। और बुद्ध की मृत्यु के २०४ वर्ष बाद[3] उन से एक पुत्र उत्पन्न हुवा, जिस का नाम महेन्द्र रखा गया। दो वर्ष बाद सङ्घमित्रा नाम की एक लड़की भी उत्पन्न हुई। जिस समय अशोक ने अपने भाइयों का घात कर[4] साम्राज्य को हस्तगत कर लिया, उस समय 'देवी' वेदिस गिरि में

---

१. मौर्यकाल में 'कुमार' शब्द का व्यवहार प्रान्तों के शासकों के लिये भी होता था। सम्पूर्ण मौर्य साम्राज्य पांच बड़े प्रान्तों में विभक्त था। इन पर शासन करने के लिये प्रायः राजघराने के व्यक्ति नियत किये जाते थे। ये शासक 'कुमार' या 'आर्यपुत्र' कहलाते थे। अशोक के शिलालेखों में इन्हें इन शब्दों से ही कहा गया है। यथा—
"देवानं पियस्स वचनेन तोसलियं कुमाले महामाता च वतविय अँ किं छि" इत्यादि (धौली का शिला लेख)। और भी देखिये—Bhandarkhar-Asoka अ० २

२. भीलसा के समीप बेस नगर। इस के वर्णन के लिये देखियेCunningham-Bhilratopes

३. द्वे वस्ससतानि होन्ति चतुवस्सं पन उत्तरि
सम्मन्तरम्हि सो जातो महेन्दो असोकत्तजो। (Oldenburg-Dipvanso अ०६. श्लो.२०

४. वेनतिके भातरो सो हन्त्वा एकूनकं सतं, सकले जम्बुदीपस्मिं एकरज्जमपापुणि
(महावंश-पञ्चम परिच्छेद श्लोक २०)
दीपवंश के अनुसार—हन्त्वा एकसते भाते वंसं कत्वान एकतो
महिन्द बुद्धसने वस्से असोकं अभिसिञ्चुयुं। (अ० ६. श्लो. २२)

ही रही, परन्तु दोनों सन्तान अपने पिता के साथ राजधानी में चले गये। सङ्घमित्रा का विवाह 'अग्नि ब्रह्मा' नाम के एक ब्राह्मण से किया गया। इन के एक पुत्र हुआ जिस का नाम सुमन रखा गया।

अशोक के राज्याभिषेक के चार वर्ष बाद युवराज तिष्य, जो कि उस का भाई था, अग्निब्रह्मा और सुमन ने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। इस समय सम्राट् अशोक 'धर्म्म' के प्रचार में पूर्ण रूप से तत्पर था। उस द्वारा अभिवाञ्छित ८४ हजार स्तूप बन कर तैय्यार हो चुके थे[५]। इस ही समय बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणिओं की एक बड़ी भारी सभा की गई, इस में लाखों भिक्षु सम्मिलित हुवे। अशोक पूर्ण समारोह के साथ सभा के मध्य में अपने उच्च मञ्च पर विराजमान हुवा। इस समय अशोक के सब अपराध और दोष धुल कर दूर हो चुके थे और वह अब चण्डाशोक के स्थान पर 'धम्मासोक' बन चुका था। क्यों कि इस समय युवराज तिष्य पूर्ण रूप से अपने नवीन धर्म की सेवा में तत्पर था, अतः अशोक ने विचार किया कि युवराज के पद पर तिष्य के स्थान पर कुमार महेन्द्र को नियुक्त कर दिया जाय। परन्तु महेन्द्र का धर्मगुरु 'मोद्गलिपुत्त तिस्स' इस से सहमत न हुवा[६]। उस ने महेन्द्र और संघमित्रा-दोनों को भिक्षुव्रत देना निश्चय किया हुआ था। अतः सम्राट् से उस ने महेन्द्र को युवराज न बनाने के लिये निवेदन किया। सम्राट् तैय्यार हो गया और महेन्द्र तथा संघमित्रा को भिक्षु धर्मकी दीक्षा दीगई। कुमार महेन्द्र की आयु २० वर्ष की हो चुकी थी, अतः उसे एक दम संघ में लेलिया गया। संघमित्रा की आयु अभी दो वर्ष कम थी, इस लिये उसे दो वर्ष और प्रतीक्षा करनी पड़ी। महेन्द्र ने सम्राट् अशोक के राज्याभिषेक के ६ वर्ष बाद भिक्षुव्रत ग्रहण किया। सम्राट् के राज्याभिषेक के आठ वर्ष बाद बौद्ध-संघ से अव्यवस्था को दूर करने के लिये बौद्धधर्म की तीसरी महासभा हुई। इस का सभापति सम्राट अशोक का धर्मगुरु 'मोद्गलि पुत्र तिष्य' बना। इस महासभा में 'कथा वत्थु' नामक प्रबन्ध की रचना की गई और संघ के अन्दर व्यवस्था स्थापित करने

५. पुरेसु चतुरासीति सहस्सेसु महीतले।
तत्थ तत्थेव राजूहि विहारे आरभापयि॥　　(महावंश ५, ८१–८२)
इसीतरह दिव्यावदान–"चतुरशीतिधर्मराजिका सहस्रं प्रतिष्ठापितं सर्वत्र च शतसहस्राणि दत्तानि जातौ बोधौ धर्मचक्रे परिनिर्वाणे च॥
(Cowel and Neil–Divyavadan. P. 429)
इसी तरह ह्यूनसांग के यात्रा–विवरण में वर्णित है।

६. 'उपज्झायो कुमारस्स अहु मोग्गलिपुत्तव्हयो।' (महावंश ५, २०७)
संघमित्रा की उपाध्याया का नाम धर्मपाला दिया गया है। यथा—
'संघमित्तायुपज्झाया धम्मपाला' ति विस्सुता, आचरिया आयुपाली काले सासी अनासवा।
(महावंश– ५, २०९–२१०)

के लिये महान् उद्योग किया गया। साथ ही बौद्ध धर्म का देश देशान्तरों में प्रचार करने के लिये अनेक 'प्रचारक-मण्डल' तैयार किये गये। इसी समय लङ्का के राजा 'देवानाम्प्रिय तिस्स' (देवानां प्रियतिष्य) ने भारत वर्ष को एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा। 'तिस्स' इसी वर्ष लङ्का की राजगद्दी पर आरूढ़ हुवा था। यह अशोक का बहुत ही घनिष्ठ मित्र और सहायक था। अपने शक्तिशाली मित्र के प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करने के लिये ही यह 'मण्डल' भेजा गया था। इस का प्रधान था, तिस्स का भतीजा 'महा-अरिट्ठ'। उस समय में लङ्का पर भी सम्राट् अशोक का वड़ा प्रभाव था। यद्यपि भारत के दक्षिण में स्थित यह द्वीप मौर्य साम्राज्य के अन्तर्गत नहीं था, तथापि यहां पर भी अशोक ने अपनी धर्म विजय प्राप्त की थी। इसी लिये अशोक उचित अभिमान के साथ लिखता है कि "और उन्होंने (देव-ताओं के प्रिय अशोक ने) अपने राज्य के नीचे (दक्षिण में) चोल, पांड्य तथा ताम्रपर्णी में भी अपनी धर्मविजय प्राप्त की है[७]।" ताम्रपर्णी लंका का ही दूसरा नाम है। इस धर्मविजय के कारण लंका पर अशोक का बहुत अधिक प्रभाव था। वहां का राजा और प्रजा, दोनों उस को अपना उपकर्त्ता मानते थे। इसीलिये इस 'धर्म विजय' से प्रभावित हुए हुए 'देवानाम्प्रिय तिस्स' ने अपनी श्रद्धा और सम्मान का उपहार दूत-मण्डल द्वारा अशोक के पास भेजा। दीपवंश के अनुसार, तिस्स ने अपने राज्य में उत्पन्न होने वाले अमूल्य और आश्चर्यकर रत्नों को देख कर कहा कि 'निस्सन्देह इन उपहारों के लिये मेरे मित्र धम्मासोक के सिवाय अन्य कोई योग्य नहीं है।' इन अमूल्य उपहारों को लेकर 'महा अरिट्ठ' का प्रतिनिधि-मण्डल लंका से चल कर सात दिन में ताम्रलिप्ति[८] के बन्दर-गाह पर पहुँचा। वहां से राजधानी पाटलीपुत्र तक पहुंचने में और सात दिन लगे। सम्राट् अशोक ने इस दूत-मण्डल का राजकीय रीति से वड़े समारोह के साथ स्वागत किया। लङ्काधिपति के अमूल्य उपहारों के बदले में अशोक ने भी समान मूल्य के अन्य उपहार 'देवानाम्प्रिय तिस्स' के पास भेजे। ५ मास तक लंका का प्रतिनिधि-मण्डल पाटलीपुत्र में रहा। इसके बाद वह जिस मार्ग से आया था, उसी मार्ग से वापिस चला गया। प्रतिनिधियों को विदा करते हुवे अशोक ने यह सन्देश तिस्स के लिये दिया—

"मैं बुद्ध की शरण में चला गया हूँ। मैं धर्म की शरण में चला गया हूं। मैं संघ की शरण में चला गया हूँ। मैंने शाक्य पुत्र के धर्म का सामान्य शिष्य होने की प्रतिज्ञा कर ली है। तुम भी इसी बुद्ध, धर्म और संघ के त्रिवाद का आश्रय लेने के लिये अपने मन को तैयार करो। जिन के उच्चतम धर्म का आश्रय लो, गुरु बुद्ध की शरण में आने का निश्चय करो।"

७. अशोक के चतुर्दश शिलालेख।

८. वर्तमान 'तामलूक' नगर।

इधर तो अशोक का यह सन्देश लेकर 'महाअरिट्ठ' लङ्का वापिस जा रहा था, उधर बौद्ध धर्म की तृतीय महासभा की परिसमाप्ति पर 'मोग्गलिपुत्त तिस्स[९]' अन्य विविध देशों की तरह लङ्का में भी बौद्ध धर्म का प्रचार करने की योजना तैयार कर रहा था। लङ्का में जो मिशन भेजा गया, उसका प्रधान, सम्राट अशोक का पुत्र महेन्द्र था। उसके साथ में अन्य पांच प्रसिद्ध भिक्षु भी थे।[१०] इन भिक्षुओं में अशोक का दौहित्र व संघमित्रा का पुत्र सुमन भी एक था। महेन्द्र ने सम्राट की अनुमति से लङ्का जाने से पूर्व अपनी माता तथा अन्य सम्बन्धियों से मिलने का विचार किया। इस कार्य में उसे छः मास लगे। महेन्द्र की माता 'देवी' वेदिसगिरि में ही रहती थी। वह अपने पुत्र से मिल कर बहुत प्रसन्न हुई। यहां महेन्द्र को 'देवी' ने स्वनिर्मित एक अत्युत्तम विहार में ठहराया। श्री वी. ए. स्मिथ के अनुसार सम्भवतः यहां बेस नगर से दक्षिण पश्चिम में ५ मील के लग भग दूर स्थित सांची की भव्य इमारतों की ओर निर्देश है[११]। यहां पर भी महेन्द्र निरन्तर बौद्ध धर्म का प्रचार करता रहा और उसने अपनी माता के भतीजे के पुत्र (भन्दु) को बौद्ध धर्म में दीक्षित किया। 'भन्दु' भी भिक्षु बन कर महेन्द्र के साथ हो लिया और लंका में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये साथ चल पड़ा।

अब यह प्रचारक-मण्डल सीधा लंका की ओर चल पड़ता है। दक्षिण भारत के विविध देशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये अन्य अनेक प्रचारक भेजे गये थे। यथा महीश-मण्डल (माइसूर) में महादेव, और महारट्ठ (महाराष्ट्र) में महाधर्मरक्खित। इस लिये महेन्द्र का प्रचारक-मण्डल सीधा लङ्का के लिये प्रस्थान करता है और लङ्का के 'मिस्स' पर्वत पर आ पहुंचता है। अशोक के संदेश के कारण "देवानांपिय तिस्स" पहले ही इस मिशन का स्वागत करने के लिये तय्यार था। वह ४० हजार मनुष्यों के साथ एक हिरण का शिकार कर रहा था। कथा आती है कि हिरण का रूप धारण कर के एक देवता आया हुआ था और वह मिस्स पर्वत की ओर 'तिस्स' को लेजा रहा था[१२]। यह कथा ठीक हो या न हो, यह निश्चत है कि जब तिस्स ने इन पीतवस्त्रधारी भिक्षुओं को देखा, तो उस के हर्ष की कोई सीमा न रही। एकत्रित हुवे तिस्स के साथियों और तिस्स को महेन्द्र ने उपदेश दिया।

---

९. दिव्यादान में इस आचार्य का नाम 'उपगुप्त' लिखा है।

१०. लङ्कादीपवरं गन्त्वा महिन्दो अत्तपञ्चमो।
वासनं थावरं कत्वा मोचेसि बन्धना बहु॥ Oldenburg–दीपवंसो ८। १३

11. V.A. Smith–Asoka (2 nd edition) Page 213

12. Coplerton–Buddhism, Past and Present in India and Ceylon Page 317

पहले ही उपदेश का यह असर हुवा कि तिस्स ने बौद्धधर्म को स्वीकार कर लिया। उस के ४० हजार साथिओं ने भी इसी समय में बौद्धधर्म को स्वीकृत किया। राजकुमारी अनुला ने भी अपनी पांच सौ अनुयायी स्त्रियों के साथ बौद्धधर्म में दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। परन्तु उसे निराश होना पड़ा। उसे बताया गया कि पुरुष-प्रचारकों को स्त्रियों को दीक्षा देने का अधिकार नहीं है। स्त्रियों को स्त्रियां ही दीक्षा दे सकती हैं। कुमारी संघमित्रा, निसन्देह, अनुला को बौद्धधर्म में दीक्षित कर सकती है। इसी के अनुसार विचार के अनन्तर, राजा तिस्स ने 'महा अरिट्ठ' के नेतृत्व में फिर एक प्रतिनिधि-मण्डल सम्राट अशोक के पास भेजा। यह मण्डल सङ्घमित्रा को भी बौद्धधर्म के प्रचार के लिये आमन्त्रित करने तथा बोधि वृक्ष की एक शाखा को लेने के लिये भेजा गया था। यद्यपि अशोक अपनी प्रिय पुत्री से विदा नहीं होना चाहता था, परन्तु बौद्धधर्म के प्रचार के लिये उस ने अपनी पुत्री को खुशी के साथ लङ्का जाने की अनुमति दे दी। इसी तरह बोधिवृक्ष की शाखा को भेजने का भी उपक्रम किया गया। बड़े समारम्भ के साथ सुवर्ण के कुठार से बोधिवृक्ष की शाखा काटी गई। उसे बड़े प्रयत्न से लङ्का तक सुरक्षित पहुंचाने का आयोजन किया गया। इस शाखा के लङ्का तक पहुंचने का वर्णन बड़ी सुन्दरता के साथ बौद्ध ग्रन्थों में किया गया है। वहां इस का स्वागत करने के लिये पहले से ही तैय्यारियां हुई थीं। बड़े सम्मान के साथ बोधिवृक्ष की शाखा का आरोपण किया गया। सङ्घमित्रा के लङ्का पहुंचने पर अनुला ने अपनी सहेलियों के साथ बौद्धधर्म की दीक्षा ली।

राजा तिस्स ने सङ्घमित्रा के निवास के लिये एक स्त्री-विहार बनवा दिया, वहां भिक्षुणी बनने के ५९ वर्ष बाद, अर्थात् ७९ वर्ष की आयु में उसकी मृत्यु हुई। इस समय लङ्का के राजा तिस्स की भी मृत्यु हो चुकी थी। और उस के उत्तराधिकारी राजा 'उत्तिय' को राज्य करते हुवे ९ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। महेन्द्र की भी इस से एक वर्ष पहले मृत्यु हो गई थी। मृत्यु के समय उस की आयु ८० वर्ष की थी।

महेन्द्र के निवास के लिये भी लङ्काधिपति तिस्स ने एक विहार का निर्माण कराया था। इस का नाम 'महाविहार' रखा गया था। लङ्का में यह पहला विहार था। इस के बाद 'चैत्यगिरि' आदि बहुत से विहार बने। इस प्रकार लङ्का में निरन्तर बौद्धधर्म का विस्तार होने लगा और धीरे धीरे सम्पूर्ण लङ्कानिवासियों ने बौद्धधर्म को अपना लिया। महावंश में इस समय बुद्ध के दन्त आदि अनेक अवशेषों और बौद्ध भिक्षुओं के विविध चमत्कारों का वर्णन है, जिन्हें देख कर लोग धड़ाधड़ बौद्ध धर्म को अपनाने लगे। इन चमत्कारों की बात चाहे सत्य हो, चाहे मिथ्या, इतना निश्चित है कि महेन्द्र के 'प्रचारक मण्डल' के प्रयत्नों का यह परिमाण हुवा कि धीरे धीरे सारा लङ्का द्वीप बौद्ध धर्म की शरण में आगया।

अब तक लङ्का द्वीप में बौद्धधर्म के विस्तार का जो वर्णन किया गया है, वह महावंश और दीपवंश के आधार पर है। दिव्यावदान और ह्यूनसांग का वर्णन कुछ भिन्न है। दिव्यावदान में महेन्द्र को अशोक का भाई कहा गया है। ह्यूनसांग भी महेन्द्र को अशोक का छोटा ही भाई ही लिखता है।[13] इन ग्रन्थों का लंका के इतिवृत्त से दूसरा भेद यह है कि इस के अनुसार महेन्द्र, दक्षिण भारत में प्रचार करता हुवा लंका गया था। दिव्यवादान के अनुसार महेन्द्र कावेरी नदी के तटवती प्रदेश में भी पहुँचा था, और वहां उसने एक विहार का भी निर्माण कराया था। सातवीं सदी ई. प. (ईस्वी सन् के पश्चात्) जब ह्यूनसांग ने भरत की यात्रा की थी, तब उस ने इस विहार को भग्नावस्था में देखा भी था। वह लिखता है-"इस शहर (मालकूट) के पूर्व में कुछ दूरी पर एक प्राचीन संघाराम है, इस का मुख्य भवन और आंगन जंगली घास से ढका हुवा है, केवल आधार की दीवारें ही बची हुई हैं। इस को अशोक राजा के छोटे भाई महेन्द्र ने बनवाया था।[14]

प्रो० ऑल्डनबर्ग के अनुसार भी लङ्का में बौद्ध धर्म के प्रचार के लिये भिक्षुगण पाटलीपुत्र से सीधे ही नहीं गये थे। पहले बौद्ध धर्म का प्रचार दक्षिणीय भारत में किया गया और वहां से धीरे धीरे यह धर्म लङ्का में गया।[15]

इस थोड़े से भेदों के सिवाय सब प्राचीन ग्रन्थ लङ्का में बौद्ध धर्म के विस्तार के सम्बन्ध में एकमत हैं। पहले लेख में इन इतिवृत्तों की प्रामाणिकता कुछ उत्कीर्ण लेखों के आधार पर सिद्ध की जा चुकी है, अतः इस सम्बन्ध में यहां किसी विचार की आवश्यकता नहीं।　　　　(क्रमशः)

13. Beal-Buddhist Records of the Western world. II P. 249
14. Beal-Buddhist Records of the western world II. H. 231
15. Oldenburg-Preface to the Viney Texts

पुनर्जन्म के सिद्धान्त की प्राचीनता

(ले० श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना एम. ए.)

पुनर्जन्म एक बहुत पुराना सिद्धान्त है। प्राचीन संसार में सर्वत्र माना जाता था। वेदों में इस की शिक्षा पायी जाती है। मनु आदि स्मृतियों में इस का वर्णन है। छहों आस्तिक दर्शन इसका समर्थन करते हैं या इसे मान कर चलते हैं। बौद्ध और जैन विचारकों के नास्तिकवाद में भी इस सिद्धान्त को स्वीकार किया गया है। भारत में प्रारम्भ से अब तक सब प्रकार के लोग इसे हार्दिक तौर से मानते रहे हैं। यह न केवल एक दार्शनिक विचार है परन्तु

प्रत्येक मनुष्य के जीवन का भाग है। आत्मा मरती नहीं, जिस्म को चाहे मारो—इस पर न केवल हकीकत राय को, परन्तु प्रत्येक हिन्दु को पूरा विश्वास है। दार्शनिक पैरी फ़री, जो ईसा से भी पूर्व हुआ और मिस्र विचारों से सम्बन्ध रखता था, अपने समय के भारत के ब्राह्मणों के विषय में लिखता है कि ये लोग कपड़े, दौलत और स्त्रियों के बिना रहते हैं, लोग इन का बड़ा सन्मान करते हैं, राजा भी प्रायः इन से सलाह लेते हैं। मृत्यु के विषय में ये समझते हैं कि जीवन तो प्रकृति की दासता है और आत्मा को शीघ्र ही इस से मुक्त करना चाहते हैं। स्वास्थ्य अच्छा होने पर भी अपने हाथों शरीर का अन्त कर डालते हैं और इस बात की पहले से ही घोषणा कर छोड़ते हैं। कोई इन्हें रोकता नहीं। सब इन्हें भाग्य-शाली समझते हैं। आत्मा के भविष्य-जीवन में इन्हें इतना पक्का विश्वास है कि वे लोग आग में कूद पड़ते हैं ताकि आत्मा शुद्ध रूप में शरीर से पृथक् हो जाय और मन्त्र गाते हुए शान्त हो जाते हैं। जब सिकन्दर बादशाह भारत में आया तब उस ने इन लोगों को आग में कूदते देखा। सतीप्रथा चाहे कितनी ही हानिकारक हो, इस की तह में यह विश्वास काम कर रहा था कि मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है, परन्तु एक जीवन छोड़ कर दूसरा जीवन प्राप्त किया जा सकता है। प्राचीन मिस्री लोग भी इस सिद्धान्त को मानते थे। यूनानी ऐतिहासिक हैरोडोटस लिखता है कि सब से पूर्व मिस्री लोगों ने इस सिद्धान्त का प्रचार किया कि मनुष्य का आत्मा अमर है। जब किसी का शरीर मर जाता है तो आत्मा किसी दूसरे शरीर में चला जाता है जो इस के लिये तैयार हो। और जब आत्मा सब प्राणिओं की योनियों में से गुज़र चुकता है तो फिर मनुष्य के शरीर में आता है। यह चक्कर तीन हज़ार वर्ष में पूरा होता है। उन का यह भी विश्वास था कि जब तक मनुष्य-शरीर नष्ट न हो जाय, आत्मा उस से सम्बन्ध रखता है और इस लिये आत्मा को पशु-योनि में जाने से रोकने के लिये वे मृत-शरीर को मसाला लगाकर ऐसी तरह रख छोड़ते थे कि हज़ारों वर्षों में भी ख़राब न हो। हैरोडोटस का यह विचार अशुद्ध है कि पुनर्जन्म के सिद्धान्त का प्रचार पहले पहल मिस्र लोगों ने किया। इस का आरम्भ निस्सन्देह भारत से ही हुआ। परन्तु इतनी बात अवश्य ठीक है कि मिस्र लोग इस सिद्धान्त को मानते थे। प्राचीन कैल्डियन भी इसे मानते थे। पारसी और कैल्डियन रहस्य-वेत्ता जो मैजाई के नाम से विख्यात थे मानते थे कि आत्मा के कई हिस्से होते हैं। मृत्यु के बाद कुछ हिस्से नष्ट हो जाते हैं और कुछ बच जाते हैं जो कई जीवनों में से गुज़रते हैं। अन्त में आत्मा शुद्ध और पवित्र हो जाता है। इसे कोई जीवन धारण करने की आवश्यकता नहीं रहती, सदा अवर्णनीय आनन्द की अवस्था में रहता है। इस अवस्था में जाने से पहले आत्मा अपने सारे जन्मों को देख सकता है, जिस से इसे बुद्धि तथा अनुभव का भण्डार प्राप्त

होता है और आगामी वंशों को लाभ पहुंचाता है। पुराने चीन में भी पुनर्जन्म माना जाता था। यद्यपि यह रहस्य प्रत्येक को नहीं बताया जाता था किन्तु उन थोड़े लोगों के लिये था जिन्हों ने विशेष सीमा तक आध्यात्मिक उन्नति कर ली हो। लुटज़े इस की शिक्षा देता था और चुआंग्ज़े कहा करता था कि मृत्यु एक नये जीवन का आरम्भ है। टौइज़्म् के अनुयायी मानते थे कि इस जन्म के अच्छे और बुरे काम अगले जन्म में फल देते हैं। कई चीनी दार्शनिक मानते थे कि आत्मा के तीन हिस्से होते हैं। पहला, Kuei (कुई) जो पेट में रहता है और शरीर के साथ ही मर जाता है; दूसरा Ling (लिङ्ग) जिस का स्थान हृदय है जो मृत्यु के बाद कुछ काल तक रहता है; तीसरा Huen (हयून) जो दिमाग़ में रहता है और मृत्यु के पीछे अन्य जीवनों में से गुज़रता है। प्राचीन ब्रिटन में जिसे आज कल इंग्लैण्ड कहते हैं और प्राचीन काल में जो आज कल फ्रांस और जर्मनी का इलाका है, पुरोहितों को ड्रूइड कहते थे जो पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे। जूलियस सीज़र जिसे करीबन दो हज़ार साल हो गये हैं, लिखता है कि गॉल के लोगों का विश्वास है कि मृत्यु पर आत्मा नहीं मरता परन्तु किसी अन्य शरीर में चला जाता है। इसी लिये ये लोग मौत की परवाह नहीं करते और वीर हैं। डा० पास्कल अपनी पुस्तक Reincarnation में लिखता है कि कुछ साल पहले तक ब्रिटिनी के कुछ हिस्सों में जो वर्तमान सभ्यता के प्रभाव से बचे हुये थे पुनर्जन्म पर विश्वास किया जाता था और इंग्लैण्ड और फ्रांस दोनों में ड्रूइड लोग मौजूद थे, यद्यपि वे बहुत हीनावस्था में थे। आगे चल कर यही डा. पास्कल लिखता है कि प्राचीन काल में भारत के लोग धर्म प्रचार के लिये सब तरफ़ जाया करते थे। जो ब्रिटेन और गाल में बस गये उन का नाम ड्रूइड पड़ गया। ये अपने को सांप कहा करते थे और भारत में भी सांप देवता का चिन्ह माना जाता था। सीज़र कहता है कि एक ड्रूइड बनने के लिये ३० वर्ष तक पढ़ने की आवश्यकता समझी जाती थी। एटकिन्सन लिखता है कि इन में कथाएँ प्रचलित थीं जिन से इन का सम्बन्ध आर्य-धर्म के साथ स्पष्ट प्रतीत होता है। कहानियाँ मशहूर हैं कि पिथागुरस इन का गुरू था और उस का भारत से बहुत सा सम्बन्ध था। यह सब कुछ ठीक हो या न हो इस में सन्देह नहीं कि ये लोग पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानते थे। यहां तक कि हर अपराधी को जिसे मृत्यु-दण्ड दिया जाता था, मारने से पहले ५ साल का अवकाश दिया जाता था ताकि वह शान्त, ध्यान द्वारा भविष्य जीवन की तय्यारी करले और एक दूषित आत्मा नये जन्म में न चला जाय। इंग्लैण्ड और आयर्लैण्ड में कुछ कहानियाँ प्रचलित हैं कि कुछ बच्चे ऐसे पैदा होते हैं जिन्हें पूर्व-जन्म की स्मृति होती है। ख़याल किया जाता है कि ये कहानियां प्राचीन काल से चली आती हैं। पुराने यूनान में भी यह सिद्धान्त माना जाता था। इन लोगों का एक धार्मिक मन्त्र (orphic hymn) इस प्रकार था "जब तुम

जीवन की यात्रा करो तो उस का अन्त याद रखो। आत्मा जब पृथिवी पर रह कर प्रकाश में वापिस आते हैं तो उन पर पाप के चिन्ह होते हैं जिन्हें धोने के लिये वे फिर पृथ्वी पर जाते हैं परन्तु पवित्र आत्मा सीधे सूर्य की ओर चले जाते हैं।" पाइथोगोरस एक प्रसिद्ध यूनानी दार्शनिक था। वह और उस के अनुयायी पुनर्जन्म को मानते थे। कहते हैं कि पाइथोगोरस भारत में भी आया था। यह अपने अनुयायियों को कठिन तपस्या की शिक्षा देता था जो बिल्कुल भारत के तपस्वियों के ढंग की थी। इसे अपने पहले कई जन्मों की स्मृति थी। उसने बताया कि मैं पहले और गोनौस्स के समय में ऐथेलाइटिस था। उस के बाद यूफ़ोरबस था जो ट्राय के घेरे में मैंनिलास के हाथ से मारा गया। फिर मैं क्रुज़ोमिनी का रहने वाला हारमोटिमस बना जिसने आरगस में जूनों के मन्दिर में उस ढाल को पहचान लिया था जो उस के हाथ में थी जब वह यूफोर्बस के रूप में मैनिलस से मारा गया और जो मैनीलस ने देवी के मन्दिर पर चढ़ा दी थी। फिर मैं डोलास में तिरहस नामी एक मछुआ बना और फिर पाइथोगोरस बना। यूनान के एक प्रसिद्ध दार्शनिक एम्पीडोक्लीज़ को अपना पहला जन्म याद था जिस में वह एक स्त्री था। प्लेटो भी पुनर्जन्म मानता था। वह लिखता है कि मुर्दों की आत्माएँ लौट कर ज़मीन पर आती है जहां उन्हें अपने कर्मों का फल मिलता है और इस तरह आत्मा अनुभव से उपयोग लेकर क्रमशः परमात्मा के निकट पहुंचता जाता है। बहुत सा ज्ञान वास्तव में स्मृति है जो पूर्वजन्म के अनुभव से प्राप्त हुआ है। प्रायः पहले जन्म की स्मृति नहीं होती, परन्तु कभी २ अचानक कुछ बातें याद आ भी सकती हैं। प्लेटो आत्मा के तीन भाग मानता था। एक वह जिसका स्थान जिगर है और जिस का गुण भोगों की इच्छा है। दूसरा वह जिसका स्थान हृदय है और जिसका गुण उद्वेग (passion) है। तीसरा वह जिस का स्थान दिमाग़ है और जिस का गुण बुद्धि है। तीसरा भाग वास्तव में आत्मा है और यही अमर हैं। प्लेटो के अनुयायी न्युओ-प्लेटोनिष्ट लोग भी पुनर्जन्म को मानते थे। यहूदी विचारक भी बहुत कुछ प्लेटो के अनुयायी थे और उनका वह सम्प्रदाय जिसे एसेनीज़ कहते थे, पुनर्जन्म को मानता था। आरम्भ में ईसाईयत पर इन लोगों का बहुत प्रभाव पड़ा। पुराने रोम में सिसरो और ओविड जैसे विद्वान् मौजूद थे जो आत्मा को अमर मानते थे परन्तु सर्वसाधारण में इस सिद्धान्त का प्रचार नहीं था। पुराने यहूदी लोगों के गुप्त सिद्धान्तों में से पुनर्जन्म का सिद्धान्त भी एक था। कैबाला के जानने वाले कहते हैं कि इस में इस का ज़िक्र है। आरम्भ में ईसायत में भी एक गुप्त शिक्षा दी जाती थी जिस में पुनर्जन्म भी शामिल था। पाल और क्रिश्चियन फ़ादर्स की पुस्तकों में इस की ओर इशारा है। ओरिज़न ने स्पष्ट रूप से इस का वर्णन किया है। जॉन दी बैप्टिस्ट के विषय में आम

ख्याल था कि वह पहले जन्म में ईलियास था। नौस्टि़सिस्म जो ईसायत का एक फिर्का था, खुले रूप में इस सिद्धान्त को मानता था। इस लिये अन्य ईसाई सम्प्रदाय इन्हें बुरा भला कहते थे। जस्टिनमार्टर लिखता है कि आत्मा एक दूसरे के पीछे कई शरीरों में रहता है और पहले जन्मों की स्मृति नहीं रहती। तीसरी शताब्दी के अन्त में लैक्टीनस कहा करता था कि आत्मा के अमर होने का यह परिणाम होगा कि इस जन्म से पहिले भी इस की सत्ता अवश्यमेव होगी। सन् ४१५ में सेन्ट आगस्टाइन ने लिखा कि मैं अपनी माता के गर्भ में आने से पहले एक और शरीर में रहता था। कहते हैं कि एक दिन ईसा मसीह और उस के शागिर्द जा रहे थे। इतने में उन्हें एक जन्म का अन्धा मिला। शागिर्दों ने पूछा कि, गुरो! क्या इस ने पाप किया है या इस के माँ बाप ने, जिस के कारण यह अंधा है? अब जन्म के अन्धेपन का कारण इस जन्म के पाप नहीं हो सकते, इसलिये स्पष्ट है कि शागिर्द किसी और जन्म के पापों की ओर इशारा कर रहे थे। छटी शताब्दी में चर्च की कौंसिल में कई-एक सिद्धान्तों को मानना, जिन में पुनर्जन्म भी एक था, पाप माना गया था, और बादशाह जूलियन ने इन का मानना आज्ञा देकर बन्द कर दिया था। परन्तु विद्वानों ने पुनर्जन्म को मानना छोड़ा नहीं। वीरता इन असूलों को फैलाने का साधन बनी और उन के मानने वालों ने एक दूसरे को पहचानने के लिये सांकेतिक शब्द बनाये हुए थे। कवि लोग जिन्हें ट्राउबेडौर कहते थे, उन के संदेशहर होते थे, जो इन असूलों को कविता में छिपा कर जगह २ बताते फिरते थे। मध्य काल में जान स्काटस, अरोजिना और थोड़े से और आदमी इस असूल के समर्थक थे। इन्क्वीज़िशन ने ट्राउबेडर्स का भी अन्त कर दिया। कहते हैं, पहले अरबी लोग भी इस सिद्धान्त के आनुयायी थे। लेकिन पीछे हज़रत मुहम्मद साहब ने इस का मानना मना कर दिया कईयों का विचार है कि मुसल्मानों के कुछ गुप्त असूल भी है जिन में से एक यह भी है। कहा जाता है कि भारत के बौरे मुसल्मान भी इस मसले को मानते हैं और मांस भी नहीं खाते। इस से पता लगता है कि प्राचीन काल में यह सिद्धान्त सर्वत्र प्रचलित था।

अवश्य पढ़ें।

अफ्रीका के निम्न ग्राहकों ने अभी तक 'अलङ्कार' का चन्दा नहीं भेजा। कृपया इसे पढ़ते ही ६ शि० शीघ्र भेज दें— २६६ माधव जा विश्राम, २६८ आर्यसमाज दरेसलाम, २६६ कृष्णदेव जी कपिल, ३०१ लाहौरीरामजी, ३०२ डी. एस. पटेल, ३१४ डाह्यापञ्जा जी, ३१६ कल्याण जी प्रभुभाई, ३३२ गुरुदासराम जी, ३७० आर्यसमाज जन्कोवार, ३७१ तिलक लायब्रेरी, ३६२ रामसुभग जी।

उस कर्ता से डरते रहियो

उस कर्ता से डरते रहियो, करता लावे घड़ी न पल
पल में सूखी नदियां दीखें, पल में करदे जल औ थल
पल में सखियां सीस गुधावें, पल में केस पड़ गये गल
पल में पत्ती चुगदे देखे, पल में आन कटाये गल
पल में देखीं हरी२ खेतियां, पल में ऊपर चल गये हल
पल में दरिया मौजे मारें, पल में बन गये रेत के थल
थल में नगर चैन से बसते, पल में होगये जल औ थल
उस कर्ता से०

* * *

पल में देखे कूद फांदते, पल में गिर गये घुटनों बल
पल में नीले अम्बर देखे, पल में मेंह आंधी के दल
पल में धूप औ सूखी धरती, पल में कीच हुआ दल दल
पल में खेलें बाल बचों में, पल में मौत ने घूटा गल
पल में राजा राजगद्दी पर, पल में झोली पड़ गई गल
उस कर्ता से०

* * *

पल में योधे जंग मारते, पल में गिर गये सिर के बल
पल में चेहरे भरे जवानी, पल में पड़ गये सौ २ बल
पल में देखे मुल्क के हाकिम, पल में संगल पड़ गये गल
पल में हाथी घोड़े पालकी, पल में चले हैं घुटनों बल
पल में सो रहे फूल-सेज पर, पल में सोये चिता में चल
उस कर्ता से०

* * *

पल में राज की थी तैयारी, पल में राम चले जंगल
पल में सीता थी महारानी, पल में रोई हाथ दे गल
पल में लछमन फिरे नाचते, पल में हो गया चल भाई चल
पल को गोविन्ददास न खोतू, पल में छोड़ दुनियां के चल
उस कर्ता से०

हम क्या खायें ?

(ले० पंडित देवशर्मा जी विद्यालंकार)

यदि एक विदेशी कपड़े के व्यापारी को समझाया जाता है कि उस का यह पेशा पापमय है तो वह सच पूछता है '**फिर हम क्या खायें ?**'। विदेशी सरकार के कर्मचारियों को असहयोग का धर्म समझाया जाता है तो वे पूछते हैं 'हम सरकारी नौकरी छोड़दें तो **क्या खायें?**'। यहां तक कि भारत के नवयुवकों को देश के लिये जीवन बिताने को कहा जाता है तो वे भी घबरा कर पूंछते हैं कि यदि हम देशसेवा में ही लग जायें तो **हम खायेंगे कहां से**। यह खाने का सवाल ही हमें खाये जारहा है।

यह बात नहीं कि इस सवाल का कुछ हल नहीं। असल में इसका हल बड़ा ही आसान है। 'हम क्या खायें' इस प्रश्न का उत्तर है '**यज्ञशेष**'! यज्ञ से जो कुछ बचे उसे खाओ और तृप्त होवो। लो, खाने का सवाल हल हो गया।

पर यज्ञ का शेष क्या होता है ? । अपनी यज्ञीय (यज्ञ-प्राप्त) कमाई में से यज्ञ को उसका हिस्सा दे लेने पर जो कुछ बचे वह यज्ञशेष है। यज्ञ (जैसे राष्ट्रयज्ञ) हमारे वैयक्तिक जीवनों का भी जीवन होता है। अतः यज्ञ के लिये उस का भाग न छोड़ कर यज्ञ को भूखा मारना तो स्वयं पहिले मरना है। और इसके विपरीत यज्ञशेष खाने द्वारा यज्ञ को जीवित रखना, स्वयं सदा जीना है-अमर होना है। इसी लिये यज्ञशेष को अमृत कहा जाता है। जैसे 'यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्' यहां यज्ञशिष्टको अमृत कहा है।

यह यज्ञशेष खाना पुण्य है। और इस के विपरीत यज्ञ का भाग भी न देना और उसे अपने लिये जोड़ कर भोगना बड़ा पाप है। इस सत्य को सदा स्मरण रखने के लिये भगवद् गीता के निम्न दो सुवर्णीय वाक्यों का एक श्लोक तो हमें कण्ठस्थ कर लेना चाहिये।

(१) यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो
मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः।

अर्थात् 'यज्ञशेष' खाने वाले होते हुवे (मनुष्य) सब पापों से छूट जाते हैं'।

(२) भुंजते ते त्वघं पापा
ये पचन्त्यात्मकारणात्।

'वे पापी तो पाप (अघ) ही खाते हैं जो कि अपने लिये पकाते हैं (अपना ही पेट भरते हैं)'।

जहां यज्ञ के शेष में सब पापों से मुक्त कराने की शक्ति है वहां यज्ञ का ध्यान न करके अपना ही पेट भरने वाला पाप खाने वाला ही होता है। ऋग्वेद में और भी स्पष्ट कहा है—

'केवलाघो भवति केवलादी'

अकेला खाने वाला केवल पाप खाता है। यह वाक्य ऋ० १०--११७-७ का अन्तिम पाद है। परन्तु यज्ञभाग को भी भोगने वाले सेठ साहेब या बाबू साहेब को भोजन खाते देख कर आज यह कौन मानेगा कि यह भोजन नहीं खा रहा है, पाप खा रहा है। हम लोगों को तो यही दिखलायी देता है कि वह पूरी पकवान और मेवे खा रहा है। इस बात पर हमारी श्रद्धा जमे या न जमे पर इतना तो सत्य है ही कि किसी भी चीज़ को निगल जाने का नाम 'भोजन खाना' नहीं है। यदि कोई कंकर मिट्टी और राख को भोजन की तरह निगल जाये, तो निश्चय है कि इस से उसका शरीर-पोषण नहीं होगा, और ये वस्तुयें भोजन नहीं कहलायेंगी। इसीतरह पाप की कमाई से प्राप्त भोजनाकार वस्तुयें भी भोजन नहीं है, क्योंकि उनसे भी पोषण नहीं प्राप्त होता। यह मान भी लिया जाय कि इस से शरीरपुष्टि हो जाती है, तो भी क्योंकि आत्मा कमज़ोर और निस्तेज होती जाती है, अतः यह शरीर (स्थूलभाग) बढ़ने की बीमारी है, पुष्टि नहीं है। जैसे शरीर में केवल पेट बढ़ जाना बीमारी है, उसी तरह

मनुष्य में केवल स्थूल शरीर का अन्दर के शरीरों की अपेक्षा से बढ़ा हुआ होना बीमारी है। अतः ऐसा भोजन यद्यपि खाया जाता है तो भी यह भोजन नहीं है, यह पाप है। और इस से बना शरीर भी 'पाप का ढेर' है। क्योंकि इसका असर शरीर पर हुवे बिना नहीं रह सकता।

हमारे देश में एक राष्ट्रयज्ञ चल रहा है (इसे स्वराज्य आन्दोलन रूप में देखें या राष्ट्र-निर्माण कहें या कुछ और) जो कि हमारे ज़िन्दा रहने के लिये आवश्यक है। इस कार्य में सहायक जो जो संगठन हैं वे भी यज्ञ हैं। सच्चे धर्म को जीवनों में लाने वाली और प्रचार करने वाली सब संस्थाएं यज्ञ हैं। इन यज्ञों को खिला कर खाना—इनके लिये सब कुछ देकर फिर जो अपने हिस्से में बचे उसे खाना, यज्ञशेष खाने का धर्म है जो कि प्रत्येक भारतबासी को पालना चाहिये। हमें पाप खाने वाले 'चोर' नहीं बनना चाहिये। जो लोग यज्ञ को भुलाकर, अन्य लोगों का विचार छोड़ कर अपने को ही देखते हैं और इस लिये अन्यों का हिस्सा भी खाजाते हैं, उन्हें गीता में 'चोर' भी कहा है।

तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो
यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः।

अर्थात् उन (यज्ञदेवों) से दिये हुवे (पदार्थों को) उन्हें बिना दिये जो भोगता है वह चोर ही है। चोर ही नहीं, किन्तु यदि और गहराई में जाकर देखें तो भगवान् हमें ऋग्वेद द्वारा कहते हैं।

'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य'
(ऋ० १०. ११७.६)

'सत्य कहता हूं कि वह (धन) उस (त्याग न करने वाले) का मृत्यु है'। परन्तु सब बात तो वही है कि हम लोग यज्ञभाग के न त्यागने को अपनी मृत्यु कहां समझते हैं, हम तो इसे चोरी भी कहां समझते हैं। मनुष्य को ऊपर से देखने पर यह बात सच नहीं प्रतीत होती है कि मेरा पाप-धन मेरा वध (मृत्यु) है, इसी लिये तो वेद को भी कहना पड़ा है 'सत्यं ब्रवीमि'। मैं सच कहता हूं, इसे सच मान। यद्यपि यह तुम्हारी भोग-सामग्री ही दिखायी देती है, पर सच यह है कि यह तुम्हारी मौत है।

तो क्या अब समझ में आया कि हम भारतवासियों को क्या खाना चाहिये? यज्ञ की चोरी करके खाना चाहिए? क्या हमें पाप खाना चाहिये? क्या हमें मृत्यु बुलानी चाहिये अथवा 'अमृत' खाना चाहिये? पर वे कहते हैं '**इस से खाने का सवाल तो हल नहीं हुवा। इन Idealistic वालों से तो पेट नहीं भरेगा। पेट भरने के लिये तो कहीं से खाना होगा। भूख की चिन्ता जब लगी होती है तब पाप और पुण्य की सुध कुछ नहीं रह सकती।**' यों कहना चाहिये कि खाने का सवाल तो हल हुवा हुआ ही है, परन्तु आवश्यकता से अधिक खाने का सवाल बेशक हल नहीं हुआ है, और न हो सकता है और न होना चाहिये। हमारी बहुत सी अस्वाभाविक भूखें बढ़ी हुई हैं। हमें भूख प्रतीत होने का रोग होगया है। यज्ञशेष के थोड़े से भोजन से हमारी ये अस्वाभाविक भूखें पूरी नहीं होंगी। यही असल में डर है जो कि हमें सता रहा है, सच्ची भूख हमें ऐसी नहीं सता रही है। और ये आदर्शवाद की (Idealistic) बातें हमारे हृदय तक नहीं पहुंची है इसी लिये हमें ये वास्तविक (Realistic) नहीं जंचती हैं। परन्तु जब ये बातें हमें समझ में आवेंगी, हमारे हृदय में अनुभूत होंगी, तब हमारे मन इतने स्वस्थ होजायंगे कि हम से ये हमारी झूठी भूखें स्वयमेव हट जायंगी और असली स्वाभाविक भूख चमकेगी। हम अपने को भारतवासी समझ कर **स्वेच्छा से गरीबी का जीवन व्यतीत करते हुवे** बादशाह की तरह रहने को उद्यत होंगे। यही स्वाभाविक भूख का लक्षण है।

परन्तु सब बात तो यहां अटकती है कि ये Idealistic बातें समझ में कैसे आवें! इन्हें मैं और किस तरह समझाऊं? वेद और गीता के क्रान्तदर्शी वचनों को सुनाने से बढ़ कर मुझ पामर के पास और क्या शक्ति है जिस से कि इसे समझा सकूं? मैं तो बोल सकता हूं, चिल्लाता हूं, और चिल्ला २ कर कहता हूं कि यज्ञशेष से अतिरिक्त खाना पाप है, चोरी है, अपना नाश है।

कहते हैं कि गुरु नानकदेव के पास एक वार दो मनुष्य भोजन लेकर आये। उन में से एक बड़ा साहूकार धनाढ्य था जो कि बड़ा बढ़िया हलवा पूरी का भोजन लाया था, और दूसरा एक ग़रीब था जो कि अपनी रूखी सूखी मोटी रोटियां लाया था। परन्तु नानकदेव ने इस ग़रीब का भोजन ही स्वीकार किया। विनती करने पर उस अमीर को उत्तर दिया कि तेरा भोजन खून से भरा हुआ है। आगे कहानी है कि अन्त में गुरु साहिब ने दोनों का भोजन मुट्ठी में ले कर निचोड़ा तो उस अमीर के भोजन में से खून चुआ और उस ग़रीब के भोजन में से दूध निकला।

हे भारतवासियो! क्या वर्त्तमान काल के सन्तों ने तुम्हें निचोड़ कर नहीं दिखला दिया है कि खूनभरी कमाई कौनसी है और अमृतभरी कमाई कौन सी है और कितनी है? अब क्या प्रतीक्षा है?। यदि मैं अशक्त निचोड़ कर नहीं दिखला सकता हूं तो क्या यह समझ लोगे कि हमारी पापकमाइयां 'खूनसनी' नहीं हैं। ज़रा देखो सन्तों ने एक वार नहीं कई वार निचोड़ निचोड़ कर साक्षात् करा दिया है कि विदेशी वस्त्र बेच कर कीगई कमाई, शराब बेच कर की गई कमाई, गरीबों से धन चूस कर की गई कमाई, अर्थात् राष्ट्रयज्ञ का घात कर के की गई प्रत्येक कमाई लहुसनी है, पाप है, मृत्यु का द्वार है?।

क्या ये बातें अब भी वास्तविक (Realistic) नहीं हुई हैं? क्या दादाभाई, दत्त, गोखले, तिलक और महात्मा गांधी आदि सन्तों ने तरह २ से यह स्पष्ट नहीं दिखा दिया है कि भारतवर्ष का देह बहुत से वर्षों से एक यन्त्रकला (Machinery) द्वारा चूसा जा रहा है। यह तो इतना स्पष्ट दिखलाया गया है कि बहुत से निष्पक्ष विदेशी भी (अंग्रेज़ भी) खून निचुड़ता हुआ देख रहे हैं। तो क्या उस यन्त्रकला के कारण होने वाली कमाई 'खूनसनी' कमाई नहीं है। एक देश के खून को इस से अधिक प्रत्यक्ष रूप में और क्या दिखलाया जासकता है।

यदि यज्ञभाग चुराने की दृष्टि से देखें तो हर कोई जानता है कि हमारे देश में अपने धन को यज्ञ से बचाने वाले 'स्तेन' कितने अधिक हैं और यज्ञशिष्टामृतभोगी कितने विरले हैं। इस प्रकार जो हम (यज्ञ के) सब की सामुदायिक संपत्ति को न बढ़ाकर एक दूसरे की संपत्ति चुराने में लगे हुवे हैं क्या यही कारण नहीं है कि हमारे देश का सब जीवनरस चुपके २ चुराये जाने का बड़ा पाप बड़ी आसानी से हो रहा है। पाप को इस से अधिक आंखों के सामने प्रत्यक्ष क्या दिखलाया जासकता है।

और इस मरते जाते हुवे (यहां के लोगों के शरीर नष्ट हो रहे हैं, मन की शक्तियां बिगड़ गयी हैं और आत्मिक शक्ति का भी दिनों दिन ह्रास होता गया है) देश को देख कर क्या यह समझने के लिये कि यह यज्ञभाग को भी खा खा कर बुलायी गयी मृत्यु का लक्षण है, किसी ऋषि के उतरने की ज़रूरत है? और क्या अब भी अपने देश की निस्तेज निश्चेष्ट और मुर्दों की सी अवस्था देखकर स्वयमेव ही कानों में गूंजने लग पड़ने वाला यह वेदवचन 'सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य' अपने अर्थ को वास्तव में वास्तविक (Realistict) करने में असमर्थ रहता है?।

इस लिये इन बातों को तो आदर्शवाद (Idealism) कह कर टालना उचित नहीं है, अपनी अस्वाभाविक झूठी भूखों को हटा देना ही उचित है।

यह भी समझ लेना चाहिये कि इन झूठी भूखों की पूर्ति हम इस समय यदि करना चाहें तो भी नहीं कर सकते हैं। क्या तुम्हें मालूम है कि हमारे देश की औसत आमदनी क्या है। उदारता से हिसाब करें तो भी ४) माहवार पड़ती है। यह भारतवासियों की आमदनी की औसत है। ४) से कम कमाने वाले भी करोड़ों आदमी है। तो जब तक यह औसत आमदनी नहीं बढ़ती तब तक (सिवाय इसके कि हम आपस में ही एक दूसरे की चोरी करें ४) से अधिक कहां से खा सकते हैं। ४) में हम क्या क्या करेंगे। तो भूख बढ़ाने से क्या लाभ। सच पूछो तो इस दृष्टि से प्रत्येक भारतवासी का यज्ञशेष ४) से अधिक नहीं है। एक अस्तेयव्रत का पालने वाला यदि आज ईमानदारी से कमाकर ४) माहवार से अधिक प्राप्त करता है तो वह सब अधिक धन उसे देश के कार्य में ही लगा देना चाहिए और ४) में अपना गुज़ारा करना चाहिये। फिर जो बेईमानी से खूनसनी कमाई करते हैं उन का क्या कहना है। अपनी दशा जानने वाला कितना दुःखी होता है जब कि भारत के नवयुवक (कुछ लोगों को ज्यादा भोगते देख कर) स्वयं अपने लिये २०) २५) ४०) तक व्यय करते हुवे भी अपने को ग़रीब समझते हैं। भाई! इस हतभाग्य देश में तो ग़रीब वह है जो कि ४) माहवार से भी कम आमदनी कर पाता है। इसलिये भारतपुत्रों को चाहिये कि वे अधिक भोगने वालों का विचार न करें, उन की रक्तरंजित पापकमाई पर दृष्टिपात न करें, किन्तु अपने सीधे सादे आवश्यकीय भोजन को अमृत समझ कर खायें, तभी यह देश वध से बच सकता है। इसी लिये देशभक्त तो अपने आप (अपने तन मन धन से) देश के लिये ही बिक जाते हैं और फिर जो कुछ शरीरधारण के लिये माता से मिलता है उसे खाकर काम करने के लिये जीते हैं। इसके सिवाय इस समय इस देश में धर्मपूर्वक जीने का और कुछ उपाय नहीं है, और कुछ उपाय नहीं हैं।

भारतदेश के जीवनरस को चूसने वाली 'विदेशी राज्य' के रूप में जो एक बड़ी मैशीनरी चल रही है, उस में साधारणतया थोड़े बहुत सहायक तो शायद सभी भारतवासी कहे जासकते हैं, परन्तु विशेषतया विदेशी कपड़ों के व्यापारी और पहिनने वाले, मुक़दमेबाज़ और वकील, सरकारी नौकर और वकील, सरकारी नौकर और बड़े २ तालुकेदार आदि जाने अनजाने इस रक्तशोषक यन्त्र के अङ्ग बने हुवे हैं। यन्त्र के अङ्गभूत ये हमारे भाई अपने खाने का सवाल हल करने के लिये ही नीचे के लोगों का खून चूसते हैं, और उस में से कुछ अपना भाग पाकर इस चूस को ऊपर पहुंचा देते हैं। इस प्रकार दिनरात यह यन्त्र चल रहा है और इस देश-देह के कोने कोने से रुधिर खिंच २ कर बहिर्गत हो रहा है। इस शोषण से यहां के लोगों का केवल धन नहीं छिन रहा है किन्तु इस के साथ २ भारतपुत्रों के वैयक्तिक शरीर दुबले होरहे हैं, मन निर्वीर्य और दास होते जा रहे हैं तथा आत्मिक धन भी दिनों दिन लुप्त होता गया है। इस शोषणप्रक्रिया को देख कर हृदय स्तब्ध हो जाता है और जी चाहता है कि इससे तो इस देश का एकदम मर जाना अच्छा है। पर न तो यह शोषणचक्र बन्द होता है और न इस शरीर की समाप्ति होती है। इस चक्र को चलता देख कर भी क्या कोई इस वास्तविकता से इनकार कर सकता है कि इस देश के हज़ारों लाखों आदमी पाप ही खा रहे हैं भोजन नहीं खा रहे हैं। यह पापभोजन ही तो कारण है कि जिससे यह पापचक्र अभी तक शान के साथ सिर ऊंचा किये चलता जा रहा है।

परन्तु आख़िर संसार पर 'दीनों की आह सुनने वाले' का राज्य है। इस लिये इस देश में कुछ ऐसे धीर पुरुष भी हैं जो कि इस जटिल और अदम्य प्रतीत होने वाले पापचक्र के मुकाबिले में अपना पक्ष संगठित कर रहे हैं, और इसे अपना सर्वस्व अर्पण कर

चला रहे हैं। यह दृश्य एक बार प्रत्येक भारत-वासी को दीख जाना चाहिये कि किस तरह एक तरफ़ अमृत-भोगी थोड़े से लोग अपने जीवनप्रद यज्ञ से भारत को जीवित करने पर तुले हुवे हैं, जब कि शेष सब लोग यज्ञ को छोड़ उस पापचक्र के आधीन 'अघायु' और 'इन्द्रियाराम' जीवन वाले इस देश-शरीर का मृतभाग बन कर पड़े हुवे हैं और आकाश में कोई गीता की वाणी में बोल रहा है—

एवं प्रवर्त्तितं चक्रं नानुवर्त्तयतीह यः। अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति॥ गी. ३—१६

इस प्रकार चलाये हुवे इस यज्ञ-चक्र को जो (यज्ञभाग देने द्वारा) नहीं चलाता रखता है, वह अघायु अर्थात् जिसका कि जीना ही पाप है और इन्द्रियों में रमने वाला मनुष्य, हे अर्जुन! व्यर्थ ही जीता है"।

जिनका कि जीना व्यर्थ है ऐसे हम अर्ध-मृत लोगों की प्रकृति अधिक देर तक भूमि का भार नहीं रहने देगी। इसलिये इस श्लोक का मतलब वही है जो कि 'वध इत् म तस्य' यह वेदवचन बतलाता है। हम मृत्यु की तरफ क्यों न जायें जब कि हमारा जीना ही पाप हो गया है, हम अघायु हो गये हों। निश्चय से हम गुलामों का जीना ही पाप है। जितनी देर जी रहे हैं संसार में पाप बढ़ा रहे हैं। हम गुलाम हैं और जी रहे हैं, इसीलिये हिन्दुस्तानी सिपाहियों ने चीन के विद्यार्थियों पर गोली चलायी है या चलानी पड़ी है। अन्य कई देशों को पराधीन रखने या हक छिनाने में हमारी गुलामी साधन होती रही है। हमारा इस गुलामी में जिन्दा रहना संसार में इतना पाप का कारण हो रहा है कि बहुत से पीड़ित लोग कह उठते होंगे 'यह व्यर्थ ही जी रहा है' और हमारी मृत्यु मनाते होंगे।

परन्तु हम अघायु इस लिये हो गये हैं क्योंकि हम 'इन्द्रियाराम' है। इन्द्रियों की भूखें हमें सता रही हैं अतः यज्ञशेष के शुद्ध सात्विक भोजन पर हमारा गुज़ारा नहीं होता और हम यज्ञभाग खाने के पाप में प्रवृत्त हो जाते हैं। इस लिये खाने के सवाल का हल यह है कि इन्द्रियों में रमना छोड़दो, अस्वाभाविक भूखों को मिटादो। फिर शेष स्वाभाविक भूख की निवृत्ति तो बड़ी आसान है। यह सर्वथा सत्य है कि जो पशु पक्षियों को रोज खाने को देता है (जो भारत के ही लाखों नरकङ्कालों को जीवित रखता है) वह तुम्हारा पेट भी भरेगा। इसी लिये मैं कहता हूं कि खाने के सवाल का हल बड़ा आसान है। केवल पेचीदगी यह है कि हमें इन्द्रियों की भूखें लगी होती हैं। ये ही भूखें हैं, जो कि इस इतने आसान सवाल को कठिन बना देती हैं।

और इन अस्वाभाविक भूखों को तो एक संकल्प से, एक हार्दिक अनुभव से हटाया जा सकता है। यही समझ में आना कठिन है कि हम भारतवासियों को इस समय अस्वाभाविक भूखें लग कहां से सकती हैं। जिस देश में कि अपने लाखों भाइयों को एक वक्त ही खाना नसीब होता हो, जहां कि लाखों भाई चार पैसे रोज़ पर गुज़र करते हों और एक दुष्काल आने पर मृत्यु के ग्रास हो जाते हों, उस देश के लोगों को क्या अतिरिक्त भोजन की सूझेगी? तुम कहते हो कि इन Idealistic बातों से पेट नहीं भर सकता, पर मैं पूछता हूं कि दौर्भाग्य से तुम्हारे किसी प्रिय का कभी अचानक देहान्त हो जाता है, तब तुम्हारी भूख कहां चली जाती है? तब तुम्हारा पेट किस तरह से भर जाता है। रिवाज तो यह है कि जब तक मोहल्ले में लाश पड़ी रहती है तब तक किसी के घर चूल्हा नहीं चढ़ता। तो आज इस श्मशान बने हुवे अपने भारत देश में हमारे लिये भूख लगाने वाली चीज़ कौनसी है? क्या अपनी वर्तमान दशा का स्मरण हमारी भूख रोकने को पर्याप्त नहीं है? ज़रा अपनी स्वदेशमाता का सच्चा स्वरूप देखो। गुलामी की हालत, सदा पैरों तले रौंदे जाने की हालत, इस समय क्या भोगों की इच्छा पैदा होगी? क्या इस समय तुम इन्द्रियाराम बन सकोगे?

यह भी एक बड़ा भ्रम है कि जीने के लिये खाना सदा आवश्यक है। कई बार तो भोजन विष होता है। महात्मा गांधी ने २१ दिन वाला उपवास करके बतला दिया कि ज़िन्दा रहने के लिये भी खाना छोड़ा जाता है। उन्होंने उपवास के बाद कहा 'यदि मैं यह उपवास न कर लेता तो मैं ज़िन्दा न रह सकता'। यह कुछ विचित्र बात नहीं है। ऐसे बहुत लोग मिल जायेंगे जिन्हें कि उपवास ने मरने से बचाया है। इस लिये इस समय भारत का जीवन भी भोग-त्याग में ही है, यह जान कर एक झटके में ही सब झूठी भूखों का बहिष्कार कर दो।

हे भारत के नवयुवको! (विशेषतया राष्ट्रीय विद्यालयों के स्नातक भारतपुत्रो!) अब देर लगाने का समय नहीं है। अपनी आवश्यकतायें कम करके यज्ञ में लग जाओ। इस प्रवर्तित यज्ञचक्र को चलाते चलोगे तभी यह भारी पापचक्र बन्द हो सकेगा। यह तुह्मारा काम है। इस लिये लहुसने देश को मृत्यु की तरफ़ ले जाने वाले पापभोगों की तरफ़ कभी दृष्टि न उठाओ। यदि कभी उधर दृष्टि चली जाय तो देश की दशा का चिन्तन करलो। अपनी दुखिया माता के रक्तशोषण का ध्यान आते ही सब झूठी भूखें मिट जाया करेंगी। यह याद रक्खो कि विदेशी शासन के इस पापचक्र का उद्घोषित उद्देश्य है कि एक एक भारतवासी को ग़रीब बनाते बनाते हमें 'लकड़हारे और पानी भरने वालों की कौम' बना कर नाश कर दिया जाय। इसका स्पष्ट एक ही इलाज़ है कि हम स्वेच्छा से बने हुवे ग़रीब बन कर इस देश को ज़िन्दा कर दें। स्वेच्छा से करने में ही सब भेद है। संसार से ज़बरदस्ती छुड़ाया जाना मृत्यु है, किन्तु संसार को स्वेच्छा से छोड़ना 'सन्यासी' पद प्राप्त करना है। जब ज़बरदस्ती ग़रीब बनाये जाकर मरना है तो स्वेच्छा से ग़रीब बन कर जिन्दा क्यों नहीं बन जाते। पापचक्र द्वारा ग़रीब तो सब बनाये ही जारहे हैं (जो आज नहीं है कल हो जायेंगे) तो पापविरोधी पुण्य यज्ञचक्र को चलाने के लिये अवश्य ग़रीबी को ही क्यों न स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया जाय।

इस लिये अब यह मत पूछो कि हम क्या खायेंगे। इस से निश्चिन्त होकर पापनाशक यज्ञ में लग जाओ। शेष के रूप में जो कुछ रूखा सूखा मिले, चनाचबेना मिले उसे अमृत समझ कर खाओ। यह पवित्र भोजन तुम में बल वीर्य और ओज पैदा करेगा। और यदि कभी यज्ञशेष कुछ भी न मिल सके ऐसा हो, तो भी कुछ परवाह नहीं है। उस अवस्था में बेशक भूखे मर जाना, पर इस पवित्र यज्ञ को न मरने देना और लहुसनी कमाई का ख्याल तक न करना। परन्तु अब तो तुम्हें भूखे मरने का सौभाग्य कहां मिल सकेगा। अब वह अशुभ ज़माना तो बीत चुका। नींव की खाई में अपने आप को भरने वाले भर कर माता की गोद प्राप्त कर चुके। वह प्रारम्भ करने का ज़माना था, वीरों का ज़माना था, बिना जाने हुवे चुपचाप बलिदान होने का ज़माना था। वह प्रायः बीत चुका। अब तो यज्ञ इतना बढ़ चुका है—इतना वितत हो चुका है कि लोग तुम्हें ज़रा भी देश का सेवक देखेंगे तो तुह्मारी प्रतिष्ठा करेंगे, तुम अपनी आवश्यकतायें नहीं बतलाओगे तो वे उन्हें जानकर पूरा करेंगे। तो भी ऐसे क्षेत्र अब भी हैं जहां कि नींवें भरने की आवश्यकता है। यदि बहादुर हो तो उन क्षेत्रों में जाकर अपने 'अमृतभोजन' का बल दिखलाओ और अपना भारतजन्म सफल करो। इस देश के उद्धार के सभी कार्यों के चलाने के लिये आवश्यक है कि यहां के नवयुवकों की एक भारी फौज इतनी कम आवश्यकताओं वाली बन सके कि उसके सामने खाने का सवाल कभी न ठहर सके। यह देश की एक भारी आवश्ययकता है जिसको कि बिना पूरा किये आगे बढ़ना असंभव है और यह एक सत्य है जिसके कि सामने तुम्हें अवश्य अवश्य झुकना पड़ेगा।

महाकवि कालिदास

(ले०—प्रो० वागीश्वर जी विद्यालंकार)

पुराकवीनां गणनाप्रसङ्गे कनिष्ठिकाऽधिष्ठितकालिदासा।
अद्यापि तत्तुल्यकवेरभावादनामिका सार्थवती बभूव॥

यह सूक्ति-मुक्ता न मालूम कितने वर्ष पूर्व किसी सहृदय की हृदय-शुक्ति से प्रकट हुई थी, परन्तु इस की नवीनता तथा सत्यता आज भी वैसी ही बनी हुई है। अनामिका अभी तक अनामिका ही है। 'न जाने भोक्तारं कमिह समुपस्थास्यति विधिः' के अनुसार कालिदास के समकक्ष कवि होने की ख्याति का भोक्ता बना कर विधाता कब किस महानुभाव को उपस्थित करेगा, यह कौन कहसकता है? अस्तु, इस में सन्देह नहीं कि जो स्थान पर्वतों में हिमाचल को, ज्योतियों में सूर्य को, वृक्षों में कल्पवृक्ष को, तथा कुसुमों में कमल को प्राप्त है, वही संसार के कवियों में कालिदास को उपलब्ध है। प्रसन्नराघव के प्रणेता जयदेव कवि के लिखे 'भासो हासः कविकुलगुरुः कालिदासो विलासः' को देखकर उनकी कलम चूम लेने को जी चाहता है। कालिदास की कीर्त्ति-रूपी अँगूठी में 'कविकुलगुरु' रूपी नग जड़ कर जयदेव कवि सचमुच जौहरी कहलाने योग्य हैं। धन्य हो कालिदास! तुम्हारे गुण गाकर भी लोग गुणी कहलाने के अधिकारी बनते हैं। दिल्ली के पुराने खण्डरों में कुतुब मीनार की तरह भारत के पुराने साहित्य में तुम्हारी ख्याति आज भी अटल खड़ी है।

किन्तु काल के कौतुक भी निराले हैं। महाराज पृथिवीराज ने जिस यमुनास्तम्भ को अपनी किसी विशेष विजय की स्मृति के लिये निर्माण किया था, आज वह स्मृति उस से पृथक् होगई है। अब वह चौहान वीर की पराजय तथा कुतुबुद्दीन की विजय का चिन्ह माना जा रहा है। ऐतिहासिकों में मतभेद उपस्थित है। कुछ निर्णय नहीं होता। स्मृति-चिन्ह उपस्थित है, परन्तु किसका स्मृतिचिन्ह, यह नहीं कहा जा सकता। यह भी आश्चर्य है।

ठीक यही घटना आज हमारे कविकुलगुरु के साथ भी घटित होरही है। प्रतिदिन खोज पर खोज होती है, परन्तु यही फैसला नहीं होने पाता कि कालिदास कितने हुवे, कब २ हुवे, और कहां २ हुवे। उनके माता पिता कौन थे, तथा उन्हों ने कौन २ से ग्रन्थ निर्माण किये। 'ज्यों ज्यों ही सुरझन चहत त्यों त्यों उरझो जात' के अनुसार मामला उलझता ही जाता है। कोई उन्हें प्रसिद्ध संवत्-प्रवर्त्तक उज्जयिनीश्वर विक्रमादित्य के समसामयिक स्वीकार करता है, तो दूसरा उन्हें ईसा की छठी शताब्दी में वर्तमान मानता है। मतलब यह कि 'जितने मुंह उतनी बात' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है।

हमने कितनी ही बार यह संकल्प किया कि इस विषय पर हम भी अपने विचार प्रकट करें। परन्तु अभीतक ऐसा सुयोग प्राप्त न हो सका। यह भी अच्छा ही हुवा 'धीमे पके सो मीठा होय' के अनुसार विचार के लिये अधिकाधिक समय मिलता रहा। कितनी ही नई कल्पनायें देखने में आईं, तथा कितनी ही पुरानी शंकाओं का समाधान होगया। हम नहीं कह सकते कि हमारे विचार कहां तक यथार्थ हैं, इसका निर्णय बुद्धिमान पाठक स्वयं करेंगे। प्रारम्भ में हम श्री पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, मिश्रबन्धु तथा श्री सेठ कन्हैय्यालाल पोद्दार के प्रति कृतज्ञता प्रकाश किये बिना नहीं रह सकते। कालनिर्णय के विषय में हम उक्त महानुभावों के अत्यन्त ऋणी हैं। कालिदास के जन्मस्थान के विषय में हमारी कल्पना स्वतन्त्र है। यह लेख चार भागों में विभक्त होगा, जिन में हम क्रमशः निम्ननिर्दिष्ट विषयों पर विचार करेंगेः—

(१) कालिदासकब हुवे ?

(२) कालिदास कहां हुवे ?

(३) कालिदास का वैयक्तिक जीवन।

(४) कालिदास की कविता।

कालिदास कब हुवे?

भारतवर्ष में यह किंवदन्ती अत्यन्त प्रसिद्ध है कि आज से १९८२ वर्ष पूर्व परमप्रतापी सम्राट् विक्रमादित्य उज्जयिनी में राज्य करते थे। उन्होंने शक नामक विदेशी आक्रमणकारियों को परास्त कर यहां से निकाल दिया था। उनकी सभा के नवरत्नों में अन्यतम कालिदास भी थे जिन्होंने अभिज्ञानशाकुन्तल, विक्रमोर्वशीय तथा मालविकाग्निमित्र, ये तीन नाटक, रघुवंश, कुमारसंभव तथा मेघदूत, ये तीन काव्य, और संभवतः ऋतुसंहार तथा श्रुतबोध नामक पुस्तक भी बनाये हैं। परन्तु ऐतिहासिक खोज करने वाले कतिपय पाश्चात्य तथा भारतीय विद्वानों ने इन दोनों ही बातों को झमेले में डाल दिया है। उनका कहना है कि आज से १९८२ वर्ष पूर्व विक्रमादित्य नाम का कोई राजा हुआ ही नहीं और इसी लिये उसके आश्रित कालिदास भी उस समय नहीं हो सकते। उनकी यह धारणा कहां तक साधार है यह विचार कर हम अपना विचार पश्चात् स्थिर करेंगे।

कुछ एक मत।

कितने ही विचारशील सज्जनों का कथन है कि कालिदास गुप्तवंशीय राजा (विक्रमादित्य) द्वितीय चन्द्रगुप्त के समय अर्थात् ३७५-४१३ ई० में वर्त्तमान थे, क्योंकि उन्होंने अपने काव्य रघुवंश में स्थान स्थान पर गुप्तवंशीय राजाओं का गुप्तरूप से नामोल्लेख किया है। उदाहरणार्थ देखिये—'आसमुद्रक्षितीशानाम्' 'इन्दुः क्षीरनिधाविव' 'हरेः कुमारोऽपि कुमारविक्रमः' 'स्कन्देन साक्षादिव देवसेनाम्' इत्यादि। इसके अतिरिक्त रघुवंश के चतुर्थसर्ग में रघु की दिग्विजय-यात्रा का जो वर्णन किया गया है, वह उनकी सम्मति में समुद्रगुप्त की दिग्विजय-यात्रा का पूर्ण प्रतिबिम्ब है। संम्भवतः कवि ने अपने आश्रयदाता द्वितीय चन्द्रगुप्त के पिता समुद्रगुप्त की विजय को दृष्टि

में रखकर ही वह लिखा है। इसलिये कालिदास का समय पाँचवी शताब्दी होना चाहिये।

(ख) कालिदास के काव्यों में यत्र तत्र राशिचक्र आदि का उल्लेख है। कहते हैं कि ज्योतिषशास्त्र में 'जामित्र' गुण तथा राशि (मीन, मेष आदि) का सिद्धान्त आर्यों ने ग्रीक लोगों से ग्रहण किया था। ज्योतिष ग्रन्थ सूर्यसिद्धान्त ३०० इस्वी के लगभग का है। उस में राशिचक्र का वर्णन उपलब्ध नहीं होता। किन्तु ४९८ इस्वी में वर्त्तमान आर्यभट्ट ने अपने ग्रन्थ में राशिचक्र का वर्णन किया है। अतः कालिदास ३०० ईस्वी के पश्चात् ही उत्पन्न हुवे माने जाने चाहियें।

(ग) इसी से मिलता जुलता मत संस्कृतसाहित्य के सुप्रसिद्ध पण्डित मैकडानल महोदय का है। वे कहते है कि 'वत्सभट्ट' की बनाई हुई एक कविता एक शिलालेख पर खुदी हुई है। उस पर मालव संवत् ५२९ अर्थात् ४७३ ईस्वी खुदा हुवा है। इस कविता की शैली कालिदास की कविता-शैली से बहुत मेल खाती है। इस लिये कालिदास का उपस्थितिकाल ४७३ ईस्वी के लगभग अर्थात् आर्यभट्ट के आस पास ही होना चाहिये।

(घ) चौथा मत यह है कि उक्त प्रसिद्ध किवदन्ती के अनुसार विक्रमीय सम्वत् आज से १६८२ वर्ष पूर्व प्रचलित नहीं हुवा। प्रत्युत ५४४ ईस्वी के लगभग सम्राट हर्षवर्धन ने हून नरेश मिहिरकुल को युद्ध में परास्त कर अपना नाम 'शकारि विक्रमादित्य' रक्खा तथा पुराने 'मालवगण स्थित्यब्द' या मालव संवत् को बदल कर विक्रमीय संवत् बना दिया। डा० कीलहार्न पुराने शिलालेखों के आधार पर यह सिद्ध करते हैं कि सातवें शतक से पूर्व यही विक्रमीय संवत् 'मालवगण स्थित्यब्द' या मालव संवत् के नाम से प्रयुक्त होता था। हर्षवर्धन ने अपने संवत् का गौरव बढ़ाने के लिये उसे पुराना बनाना चाहा, अतः अपनी विजय से ६०० वर्ष पूर्व का बना कर विक्रम संवत् के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। डाक्टर भाऊदाजी कहते हैं कि इसी सम्राट हर्ष विक्रमादित्य ने काश्मीर का शासक बनाकर जिस ब्राह्मण मातृगुप्त को भेजा था, वही संभवतः कालिदास है।

(ङ) एक और भी पक्ष है। वह यह है कि लगभग २२०० वर्ष पूर्व शंकराचार्य का जन्म हुवा था। शंकराचार्य जब काशी आये, तब उनकी भेंट कुमारिल भट्ट से हुई थी। उस समय कुमारिल भट्ट तुषानल में बैठ कर अपने गुरुद्रोह रूप पाप का कठिन प्रायश्चित कर रहे थे। कुमारिल ने अपने बनाये श्लोकवार्त्तिक में 'कवीन्द्र' कहकर कालिदास को स्मरण करते हुवे उनके नाटक शाकुन्तल के 'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणस्य वृत्तयः' इस पद्यार्थ को उद्धृत किया है। इस लिये कालिदास का समय कुमारिल भट्ट से पूर्व अर्थात् २२०० वर्ष से भी पूर्व होना चाहिये। किन्तु साथ ही रघुवंश में गुप्तवंशीय रा-

आर्यों का संकेत मिलता है। अतः रघुवंश का निर्माणकाल पांचवी शताब्दी से पहिले नहीं जा सकता। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक प्रतीत होता है कि नाटकों के बनाने वाले कालिदास तथा काव्यों के बनाने वाले कालिदास जुदा २ माने जावें। यह कल्पना इस बात से भी पुष्ट होती है कि राशिचक्र तथा जामित्र गुण का वर्णन केवल काव्यों में ही पाया जाता है तथा (ख) मत के अनुसार राशिचक्र का वर्णन ३०० ईस्वी के पश्चात् का ही होना चाहिये। इसलिये रघुवंश, कुमारसम्भव आदि काव्यों के प्रणेता पांचवी सदी में ही ठहरे। कालिदास अनेक हुवे इस में राजशेखर का निम्न पद्य भी प्रमाण है—

"एकोऽपि जीयते हन्त
कालिदासो न केनचित् ।
शृङ्गारे ललितोद्गारे
कालिदासत्रयी किमु ॥"

अर्थात्, सुन्दर शृङ्गारमयी कविता के प्रवाह करने में एक ही कालिदास को कोई जीत नहीं सकता, फिर तीन का तो कहना ही क्या है।

अभिनन्द कवि ने रामचरित में लिखा है—

'हालेनोत्तम पूजया कवि-
वृषश्रीपालितो लालितः ।
ख्यातिं कामपि कालिदास-
कवयो नीताः शकारातिना ॥
श्रीहर्षो वितनार गद्य-
कवये बाणाय वाणीफलं ।
सद्यः सत्क्रिययाऽभिनन्द-
मपि च श्रीहारवर्षोऽग्रहीत् ॥

इस पद्य में 'कालिदासकवयः' ऐसा बहुवचनान्त प्रयोग है। अतः अभिनन्द कवि से पहिले कम से कम तीन कालिदास अवश्य हो चुके थे, यह सिद्ध होता है। उक्त बहुवचन का प्रयोग आदरार्थक नहीं हो सकता, क्यों कि फिर तो शेष सब नामों के साथ बहुवचन ही होना चाहिये था, क्यों कि वे कवि भी कोई साधारण कोटि के नहीं हैं। यह बहुवचन श्लोक बनाने के लिये विवश होकर भी नहीं रक्खा गया, क्यों कि अभिनन्द बड़ा योग्य कवि है। यह संभव नहीं कि उसे अपनी इच्छा के विरुद्ध यह लिखना पड़ा हो, क्यों कि एकवचन का रूप रख कर भी "ख्यातिं कामपि कालिदास सुकविर्नीतः शकारातिना" इस प्रकार सुगमता से ही श्लोक बन सकता था। अतः कालिदास अवश्य ही अनेक हुए, यह पक्ष सिद्ध होगया।

आंसू

(ले० श्रीयुत गुप्त)

[१]

स्वर्ग लोक भर में बुद्ध देवता हंसी और मखौल के पात्र बने हुए थे। उनके छोटे कद और चौड़ी डील डौल के कारण जो देवता उन्हें देखता था वह उन पर कोई न कोई आलोचना करने के लोभ का संवरण न कर सकता था। खास कर देवराज इन्द्र की सभा में उनके प्रवेश करते ही सदस्यों के हास्य का

फव्वारा छूट पड़ता था। जब वह सभा में प्रवेश करते थे तब सारी सभा खिलखिला कर हंस उठती थी। प्रतिदिन देवराज इन्द्र स्वयं बुद्ध से विचित्र विचित्र प्रश्न कर के उन्हें खूब परेशान किया करते थे। इस प्रश्नोत्तरी में जब बुद्ध तंग आकर खिज उठते थे तब उन का चेहरा और उन के हाथ भाव देखने लायक हो जाते थे। देवताओं को बुद्ध का खिजना बहुत पसन्द था, इन्द्र प्रायः उन की इस इच्छा को पूरा किया करते थे।

बुद्ध शान्त स्वभाव चन्द्रमा के पुत्र थे। चन्द्रदेव को अपने एक मात्र पुत्र की यह दशा बहुत अखरती थी, परन्तु वह लाचार थे; देवराज इन्द्र के सामने भला वह क्या कर सकते थे। इस लिये वह मन मार कर चुप चाप अपने पुत्र के इस भयंकर अपमान को सहन किया करते थे। अस्तु;

एक दिन देवराज इन्द्र मात्रा से अधिक सुरा-पान कर गए। प्याले पर प्याला चढ़ाते चढ़ाते वह बिल्कुल ज्ञानशून्य हो गए। इस अवस्था में उन्हों ने सुरापात्र को उछाल कर दूर फेंक दिया। बुद्ध उन के सामने ही बैठा था; देव राज ने बड़ी कर्कश स्वर में उस से कहा—"ओ बुद्धू! जा, सुरापात्र उठा ला।" एक देवता को इस प्रकार की आज्ञा देना उस का घोर अपमान करना था, अतः बुद्ध अपने स्थान से हिले नहीं।

बुद्ध के पिता चन्द्र भी पास ही बैठे थे, वह अपने पुत्र का यह भयंकर अपमान न सह सके। उन्हों ने बिगड़ कर कहा—"इन्द्र! होश संभाल कर बात करो।" चन्द्रदेव जोश में आकर यह बात कह तो बैठे परन्तु दूसरे ही क्षण दुस्साहस के परिणाम को सोच कर उन का हृदय कांप गया। इतने में ही कुपित देवराज ने गरज कर कहा—"क्या बकता है छोकरे! अभी पतित हो कर मर्त्य लोक में जन्म ले।" चन्द्र देव के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। इतनी छोटी सी अवज्ञा का इतना भयङ्कर दण्ड!

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। सब देवता यह दण्ड सुन कर कांप गए, परन्तु देवराज से कुछ कहने की हिम्मत किसी को न हुई। केवल गुरु बृहस्पति ही इस अवस्था में भी ज़रा न घबराए। उन्हों ने खूब गम्भीर होकर देवराज इन्द्र को उपदेश देना प्रारम्भ किया। बृहस्पति की बादल की गरज के समान गम्भीर वाणी के प्रभाव से शीघ्र ही देवराज का नशा उतर गया। चेतनावस्था में आकर उन्हें अपने कार्य का अनौचित्य स्पष्ट दीख पड़ने लगा। थोड़ी देर में खूब शान्त होकर उन्होंने कहा—"जाओ चन्द्रदेव! मेरा शाप टल नहीं सकेगा। मर्त्यलोक में जाओ और वहां की सर्वोत्कृष्ट वस्तु लाकर मुझे दो; उस वस्तु में स्वर्ग लोक की मधुरता हो, पापियों को वह कंपा देने की शक्ति रखती हो; वह सब से अधिक करुणापूर्ण और पवित्र हो, वह आदर्श प्रेम का उज्वल और मधुरतम स्वरूप हो। जाओ चन्द्र, मर्त्यलोक में जाकर मेरे लिये शीघ्र ही ऐसा उपहार ढूंढ लाओ!" चन्द्र देव अभी तक थर थर कांप रहे थे।

[२]

खूब तपी हुई बालुका पर वह गौरवर्ण देवदूत बिल्कुल नंगा हो कर बैठा था। गरम लू चल रही थी; कहीं हरियावल का नाम भी न था। दूर पर श्यामल वर्ण के कुछ वृक्ष अस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ रहे थे। देवदूत-निर्वासित देवदूत—इस दशा में अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा था। जिस मर्त्यलोक को वह अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से प्रतिदिन शीतल किया करता था, वह लोक इतना गरम, नीरस और शून्य होगा इस की उसे कल्पना भी न थी। देव दूत का शरीर जल रहा था, उस के कच्चे दूध के समान श्वेत पंख झुलसने लगे थे; परन्तु वह देव लोक का था, उस में मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक सहनशक्ति थी अतः वह ऊपर, अनन्त नील आकाश की ओर आंखे किये हुए पड़ा रहा। शायद वह तृषणार्त नेत्रों से स्वर्ग की ओर ताक रहा था।

सहसा देवदूत को अपना कर्तव्य याद आया; वह एक दम उठ खड़ा हुवा। वह सोचने लगा कि इस नीरस निर्जन मर्त्यलोक में से मैं देवराज का वांछित उपहार कहां प्राप्त कर सकूंगा। परन्तु उसे प्राप्त किये बिना भी तो काम नहीं चल सकता, अतः वह दूर पर दीखने वाले वृक्षों के झुरमुट की ओर चला।

वहां पहुँच कर उस ने देखा कि वृक्षों के पास ही मटियाले रंग के विविध प्रकार के सैकड़ों स्तूप से बने हुए हैं। देवदूत पहले पहल तो यह निर्धारित न कर सका कि ये क्या हैं; परन्तु थोड़ी देर बाद जब वह अपना कौतूहल शान्त करने के लिये एक स्तूप के पास गया तब उसे मालूम हुवा कि इस अभागे लोक के निवासी इन्हीं हीन घरों में रहते हैं। चन्द्रदेव बिना किसी प्रकार की झिझक के एक मकान में प्रविष्ट हो गए।

मकान के दलान की बांयी ओर एक बरामदा था। इस बरामदे में तीन चारपाइयां बिछी हुई थीं। एक चारपाई पर बिछे हुए मैले कुचैले कपड़ों पर एक छः बरस का बालक लेटा हुवा था; शेष दो पर एक वृद्ध स्त्री और एक वृद्ध पुरुष लेटे हुए थे। ये सब प्राणी सर्वथा क्षीण, दीन और दुर्बल थे। बालक की शैया बीच में थी और वृद्धा तथा वृद्ध उसके दोनों ओर लेटे हुए थे। बालक बड़ी करुणा पूर्ण स्वर में "हाय, हाय" कर रहा था। दोनों वृद्ध व्यक्तियां बड़ी व्यथा से उस की ओर देख रही थीं; विचित्र दृश्य था। चन्द्रदेव बहुत ही दुःख और आश्चर्य में पड़ गए, ओह! इस लोक के निवासी इतने हीन, क्षीण और शक्ति रहित होते हैं। थोड़ी देर में बालक रोती हुई आवाज में चिल्ला कर कह उठा—"पानी, पानी।" दोनों वृद्ध व्यक्तियों ने मानो बालक की आवाज़ को प्रतिध्वनित करते हुए क्षीण स्वर में धीरे से कहा-"पानी, पानी।"

देवदूत को अब पूरी बात समझने में देर न लगी। वह स्वर्गलोक में कई बार मर्त्यलोक के भयङ्कर अकालों का वर्णन सुन चुका था। परन्तु इन कष्टों की

इतनी भीषणता की उसे कल्पना भी न थी। बात यह थी कि इस वर्ष फारस देश में भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था। अन्न तो क्या कहीं पानी का भी नामो-निशां नहीं था। ये तीनों अभागे प्राणी इस दुर्भिक्ष के ही शिकार थे; तीनों प्यासे थे, तथापि दोनों वृद्ध व्यक्तियों को अपनी अपेक्षा पुत्र की प्यास बुझाने की अधिक चिन्ता थी; परन्तु वे लाचार थे, कुछ हो ही नहीं सकता था। चन्द्रदेव हृदय थाम कर इस करुण-दृश्य को देखते रहे, उन्हें मर्त्यलोक में किसी जीव की सहायता करने का अधिकार नहीं था।

थोड़ी देर बाद बालक फिर चिल्लाया—"पानी, पानी।" परन्तु इस बार उस का स्वर पहले की अपेक्षा बहुत क्षीण था। शायद बालक की निष्पाप आंखों ने उस की मांग पूरी करने का यत्न किया; उस की आंखों के दोनों गढ़े आंसुओं से भर गए। थोड़ी ही देर में बालक को एक हिचकी आई, और इस के बाद उस की देह प्राणशून्य होगई। दोनों वृद्ध पति-पत्नि अनिमेष नेत्रों से अपने प्राणाधिक पुत्र की ओर देखते रह गए!

देवदूत एक दम प्रफुल्लित हो उठा; मालूम नहीं इस प्रसन्नता का क्या कारण था; उस ने शीघ्रता से बालक की आंसुओं का संग्रह कर लिया और इस के बाद वह अपने शुभ पंखों की सहायता से स्वर्गलोक को चला गया।

*　　　*　　　*

देवराज इन्द्र स्नान ध्यान समाप्त करने के अनन्तर सभाभवन की ओर जा ही रहे थे कि चन्द्रदेव ने आकर उन्हें प्रणाम किया; चन्द्र के हाथ में क्या चीज़ है-यह देखते ही देवराज उस की सारी कथा जान गये। उन्होंने धीरे से कहा "यह मर्त्यलोक का सर्वोत्कृष्ट उपहार नहीं है। जाओ!" चन्द्रदेव मन मार कर रह गये।

[२]

ऊंची अट्टालिका की छत पर से ही चन्द्रदेव उन प्रेमी और प्रेमिका की बातें सुनने लगे। प्रेमिका ने अपनी आवाज़ को स्थिर कर के धीरे से कहा—"प्रियतम, मातृ-भूमि शत्रुओं से घिरी हुई है।" "सो मैं जानता हूँ" कह कर वह अपनी प्रेमिका के मुंह की ओर देखने लगा।

युवती कुछ कहना चाहती थी परन्तु लज्जावश वह उसे कहते २ रुक जाती थी। उस का अन्तरात्मा बार बार जिस बात को उस के गले तक लाता था, उस का हृदय उसे मुंह से बाहर निकलने का अवकाश न देता था। दोनों थोड़ी देर तक चुप चाप बैठे रहे। इस के बाद प्रेमिका ने बड़े यत्न से कहा—प्रियतम हेरिस, कल शायद हमारी मातृभूमि की स्वतन्त्रता का अन्तिम दिन है; इस के बाद पराधीनता का घना अन्धकार हमारी मातृभूमि फ्रान्स को सदा के लिये आच्छादित कर लेगा।"

नव युवक हेरिस इस पर भी कुछ न बोला । उस ने एक बार अपनी प्रेमिका की ओर देख कर ठण्डा श्वास लिया। मानो वह कह रहा था—प्रिये, अभी तो हमें परस्पर मिले थोड़े ही दिन हुए हैं। क्या इतनी शीघ्र इस स्नेह-बन्धन में विच्छेद कर देना पड़ेगा।

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद प्रेमिका ने फिर कहा—"प्रिय हेरिस, मैं चाहती हूं कि मैं भी तुम्हारे साथ मातृ-भूमि के शत्रुओं का मुकाबला करने चलूं।" यह वाक्य कहते हुए उस का स्वर कांप रहा था। नवयुवक हेरिस डरपोक नहीं था। अपनी प्रेमिका की अन्तिम बात सुन कर उस की अस्थिरता दूर हो गई। उसने शीघ्रता से अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। इस के बाद दोनों प्रेमी एक दूसरे के गले में हाथ डाल कर प्रेमभरी बातें करते रहे। चन्द्र देव उन सब बातों को सुन रहे थे।

सारी रात दोनों प्रेमी बिल्कुल नहीं सोये। उन की बातों का कभी समाप्त न होने वाला अक्षय कोश प्रातः काल के नवीन सूर्य की नरम किरणों ने बीच में ही बन्द कर दिया। नवयुवक हेरिस की बिदाई का समय आगया।

अन्त में वीर-स्वभाव हेरिस ने एक ठण्डी आह भर कर अनिश्चित काल के लिये बिदाई लेली। जब तक वह गली में दीखता रहा, प्रेमिका दरवाज़े पर खड़ी होकर अनिमेष नेत्रों से उसे निहारती रही। इस के बाद युवती ऊपर की छत पर जाकर नगर के राजमार्ग पर जाते हुए हेरिस के साथ रूमाल हिला २ कर प्रेमालाप करती रही।

जब नवयुवक हेरिस बहुत दूर जाकर, प्रातः काल की स्वाभाविक धुंध में लीन होकर प्रेमिका की आंखों से ओझल होगया; तब उस देवी ने दूर पर धुंधले परन्तु शून्य आकाश की ओर देखते रह कर एक ठण्डी आह भरी, इस के साथ ही उस की बड़ी बड़ी आंखों से दो बूंद आंसू टपक कर उस के गुलाबी चेहरे पर से लुड़कते हुए नीचे की ओर खिसक गये। चन्द्र देव अभी तक शान्त होकर इस दृश्य को देख रहे थे, उन्होंने अदृश्य रूप से पास आकर पवित्र प्रेम की पुण्यस्मृति स्वरूप उन आंसुओं को चुरा लिया। इस के बाद वह अपने पंखों की सहायता से स्वर्ग की ओर उड़ गये।

देवराज इन्द्र बड़ी गम्भीरता से गुरु बृहस्पति का प्रातःकालीन उपदेश सुन रहे थे इतने में चन्द्रदेव वहां आ पहुँचे। उन्हों ने बड़ी नम्रता से देवराज को नमस्कार किया। परन्तु देवराज ने एक बार चन्द्र की ओर देख कर बड़ी शान्ति से केवल इतना ही कहा—"चन्द्र! तुम्हारा यह उपहार बहुत उत्कृष्ट है, तथापि यह मर्त्यलोक की सर्वोत्कृष्ट वस्तु नहीं है।" चन्द्र देव का दिल टूट गया। वह मर्त्यलोक के भयंकर चित्र की कल्पना कर के कांप उठे।

(४)

एक सुन्दर बाग़ में सोने का एक पिंजरा टँगा हुवा था। चारों ओर विविध रंगों के बड़े बड़े फूल खिले हुए थे। ठण्डी हवा चल रही थी; हरे हरे वृक्षों के पत्तों से मधुर शब्द उत्पन्न हो रहा था। पिञ्जरे के अन्दर किशमिश, अंगूर, अनार आदि कई प्रकार के फल पड़े हुए थे; इस पिंजरे में एक काबुली तोता, जिस के गले पर लाल रंग की कुण्डली बनी हुई थी, सिर नीचा किये बैठा था।

मगध के साम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी कन्या अपराजिता के लिये खास काबुल से इस तोते को मंगवाया था। अपराजिता इस तोते को बहुत प्यार करती थी; उसे सब प्रकार से सुखी करने का यत्न करती थी परन्तु वह कभी प्रसन्न न होता था। अपराजिता के प्रेम के प्रभाव से वह उस के रटाए हुए वाक्य तो अवश्य सुना देता था परन्तु उस का मन सदैव उदास रहता था। इस बात को राजकुमारी अपराजिता भी जानती थी कि यह काबुली तोता इस रमणीक उद्यान को कन्धार की सूखी पहाड़ियों के सामने कुछ भी मूल्य वाला नहीं समझता।

सायंकाल का समय था; लता कुञ्जों में लटके हुए पिंजरे में वह काबुली तोता सिर नीचा किये बैठा था। इसी समय चन्द्रदेवता उस के पास आकर खड़े होगये। आज सम्राट् समुद्र गुप्त के इस सुन्दर उद्यान को देख कर उन की यह धारणा कि मर्त्यलोक सर्वथा नीरस है,—नष्ट होगई थी। सहसा कुञ्जों की घनी छाया के नीचे पिंजरे में बैठे हुए तोते पर उनकी नज़र पड़ी। पहली नज़र में उस की शोकमग्नता उन से छिपी न रही। वे चुपचाप खड़े होकर उस की ओर देखने लगे।

ठीक इसी समय पश्चिम दिशा से एक और तोता आकर पिंजरे के पास वाले मौलस्री के पेड़ पर बैठ गया। इस तोते के गले पर भी लाल रंग का कुण्डल बना हुआ था। वृक्ष पर बैठते ही वह तोता चिल्ला उठा-"टीं टीं" पिंजरे में बैठे हुए तोते को मानो सहसा नींद टूट गई। वह झुकी हुई गर्दन को उठा कर बैठ गया और सामने मौलस्री के पेड़ पर बैठे हुए अपने देशबन्धु की ओर ओर देख कर कातर स्वर से वह भी पुकार उठा—"टीं, टीं" इस के साथ ही साथ उस की आंखों से दो बून्द आंसू टपक पड़े। चन्द्रदेव शेष दृश्य को देखने की प्रतीक्षा न करके शीघ्रता से उन आंसूओं के जल से भीगी हुई मिट्टी को उठा कर स्वर्गलोक की ओर कूच कर गये।

देवराज इन्द्र उस समय स्वर्ग की अप्सराओं का नाच देख रहे थे; इतने में चन्द्र ने आकर, मरकत मणि से बनी हुई हलके नीले रंग की थाली में रक्खी हुई वह अश्रु-जलसिंचित मिट्टी उन्हें भेंट की। देवराज ने प्रसन्न होकर कहा—"चन्द्र देव, तुम शापमुक्त हुए। यह मर्त्यलोक का सचमुच सर्वोत्कृष्ट उपहार है।"

आगे आगे

(श्री पं० वंशीधर जी विद्यालंकार)

तुझे पथिक ! बनना होगा,
आगे आगे चलना होगा ॥

(१)

अपना कौन—कौन बेगाना ?
कहां ठहरना—कहां ठिकाना ।
परिचय—हीन विश्व में तुझ को आगे आगे चलना होगा ॥

(२)

साथी सङ्गी इस दुनिया के,
वहीं छूटते जहां बनाए ।
तोड जाल माया ममता के आगे आगे चलना होगा ॥

(३)

अपनी गठरी आप उठा कर,
कहीं नहीं टिकते हो पल भर ।
उन की तरह तुझे भी प्यारे ! आगे आगे चलना होगा ॥

(४)

भय क्या तव इकला जाने में,
जब न किया इकला आने में ।
अब भी इकले-सदा अकेले आगे आगे चलना होगा ॥

सम्पादकीय

प्राचीन भारत में शिल्प

पाश्चात्य शिक्षा में अन्धाधुन्ध बहे हुए भारतीय नवयुवक स्वदेशाभिमान की अवहेलना करते हुए प्रायः कहा करते हैं कि प्राचीन भारत मे उत्तम कोटि के शिल्प का अभाव था। उन के लिये एक यंत्रहस्ती का वर्णन ही, उनकी आंखें खोलने के लिये पर्याप्त होगा।

'धम्मपदट्ठकथा' के वासुलदत्ता वत्थु में ९८पृष्ठ पर लिखा है कि गोतम बुद्ध के समय उज्जयिनी का राजा चण्ड प्रद्योत था और उसी का समकालिक कौशाम्बी का राजा उदयन था। उदयनबड़ा संपत्तिशाली और समृद्ध था। प्रद्योत उस के ऐश्वर्य को देख कर बड़ी ईर्ष्या करता था, और उसे जीतना चाहता था। परन्तु उदयन हस्तिकान्त शिल्प जानता था जिस के द्वारा वह वीणा-वादन से भयङ्कर से भयङ्कर हाथी को भगा भी सकता था और वश में भी कर सकता था। इस लिये उसे युद्ध में जीतना सुगम कार्य न था। हस्तिविद्या जानने के कारण वह दुर्दम हाथियों को पकड़ने का बड़ा प्यारा था। प्रद्योत ने एक चाल चली। उसने एक बृहत्काय काष्ठ का श्वेत हाथी बनवाया, जो कि कलायन्त्र से चलता फिरता था (दारुमयं यंत्रहत्थिं) उस के ऊपर हाथी की न्याईं ऐसी चित्रकारी की गई कि वह कृत्रिम हस्ती वास्तविक जीवनधारी हस्ती प्रतीत होता था। उस कृत्रिम हस्ती के अन्दर ६० योद्धा बैठलाये गये। तदन्तर उस कृत्रिम हाथी को अपने राष्ट्र के समीपवर्ती उदयन सम्बन्धी निर्जन राष्ट्र के सघन वन में घूमने छोड़ दिया। उदयन को पता लगा कि उनके राज्य में बड़ा सुन्दर, विशालकाय हाथी आया हुआ है। वह सेना-पुरुषों को साथ लेकर हाथी पकड़ने के लिये चल पड़ा। जिस ओर हाथी घूम रहा था उस ओर लेण्ड भी गिरा दिये जिस से उदयन को पूर्ण निश्चय होसके। जब उदयन उस निर्जन कानन में पहुंच गया, तब प्रद्योत ने दोनों ओर से अपनी सेना का घेरा डाल कर उसे घेरे में ले लिया। उदयन हाथी को पकड़ने के लिये वीणा बजाने लगा। अन्तःस्थित मनुष्यों ने यंत्र द्वारा हाथी की गति और भी अधिक तेज करदी। तब उदयन अपने हाथी से उतर कर शीघ्रगामी घोड़े पर सवार हुआ, और उसका पीछा करने लगा। शीघ्र भागने से उदयन के सेना-पुरुष पीछे रहगये। इस समय प्रद्योत की सेना ने उदयन को पकड़ लिया, और वह कारागार में डाल दिया गया।

उपर्युक्त कथा महाकवि भास निर्मित प्रतिज्ञायौगन्धरायण नाटक में भी पाई जाती है। इस से यन्त्र द्वारा चलाये जाने वाले कृत्रिम हस्ती का निर्माण स्पष्टतया ज्ञात होता है, और उस की रचना में यहां तक कौशल्य था कि वास्तविक हाथी ही प्रतीत देता था। साथ ही इस बात पर भी प्रकाश पड़ता है कि

उस समय हस्तकान्त शिल्प द्वारा उन्मत्त हाथी को सुगमतया वश में किया जा सकता था। आज कल के सभ्य राष्ट्रों को इस क्रिया का परिज्ञान अभी तक नहीं। उन्हें हाथी पकड़ने के लिये बड़े कष्ट झेलने पड़ने हैं और अनेक प्रपञ्च रचने पड़ते हैं।

जापान और भारत

फ़र्वरी मास के मॉडर्न रिव्यू में 'यङ्ग ईस्ट' पत्र से निम्न उद्धरण दिया गया है जिस से सिद्ध होता है कि जापान में पहले-पहल रूई भारत से पहुँची। घटना का वर्णन एक जापानी लेखक जे० टकाकुसु ने 'निरोनको-की' नामक जापानी सरकारी पुस्तक के आठवें खण्ड में से दिया है। घटना इस प्रकार है:—

"जापान के प्रामाणिक इतिहास से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में भारत तथा जापान के सम्बन्ध से एक विचित्र घटना द्वारा रूई का जापान में प्रवेश हुआ। जुलाई ७९९ में एक अजनबी जापान के मिकावा प्रान्त के दक्षिणी किनारे पर कहीं से अपनी छोटी सी किश्ती पर आ लगा। उस के शरीर पर कुछ न था। साधारण से घास के बने टुकड़ों से शरीर को ढका हुआ था। बांयें कन्धे पर नीले रंग के कपड़े का एक टुकड़ा पड़ा हुआ था जो बौद्धों के चोले से मिलता-जुलता था। वह बीस बरस का युवक प्रतीत होता था। ५ फ़ीट ५ इञ्च लम्बा था, कान छिदे हुए थे। उस की भाषा को कोई समझ नहीं सकता था इस लिये पहले किसी को पता ही न चला कि वह किस जाति का पुरुष था। एक चीनी ने, जिसने उसे देखा, कहा कि वह मलय-प्रान्त के कौन-लून का रहने वाला प्रतीत होता है। पीछे जब वह जापानी सीख गया तो उसने स्वीकार किया कि वह 'टैन-जिकू' का रहने वाला है। उस समय भारत वर्ष को जापानी लोग 'टैन-जिकू' कहा करते थे। वह अपनी एक तार की वीणा पर गाया करता था और उस के गीत बड़े करुणा-जनक होते थे। उस के सामान में अनेक वस्तुएँ पायी गईं जिन में से कुछ बीज थे जो रूई के पौधे के थे। उस भारतवासी ने जापानी लोगों से प्रार्थना की कि उसे वहां के 'कवारा-देरा' नामक मन्दिर में रहने दिया जाय और उस की प्रार्थना को स्वीकार कर लिया गया। वहां उस ने अपने सामान को बेच दिया और 'नारा' नामक विशाल नगर के पश्चिम की तरफ़ घर बना कर रहने लगा। वह व्यक्ति परदेसियों और यात्रियों को अपने यहां ठहराता था और उन्हें पूरा आराम देता था। पीछे से वह 'ओमी' प्रान्त के 'कोकुबुन-जी' नामक मन्दिर के पास चला गया और वहीं रहने लगा।"

ज्यों २ प्राचीन इतिहास की खोज होती जा रही है त्यों २ यह सिद्ध होता चला जा रहा है कि भारत न केवल धर्म में ही अपि तु व्यापार, कला, कौशल आदि सभी में संसार का गुरु रह चुका है। जिन लोगों का भूत इतना उज्वल था उन के वर्तमान को कालिमा-पूर्ण देख कर आँखों में आँसू भर आते हैं परन्तु उन्हीं आँसुओं के आवरण में से भविष्य की किरणों का प्रकाश भी कभी २ चमक उठता है। संसार अपनी सभ्यता के लिये भारत का ऋणी है,—क्या वे दिन न फिरेंगे जब इन्हीं वाक्यों को गौरव के साथ फिर दोहराया जा सकेगा!

स्नातक-मण्डल का वार्षिक अधिवेशन

गुरुकुल कांगड़ी के उत्सव पर मायापुर में ३ और ४ एप्रिल को स्नातक-मण्डल का वार्षिक अधिवेशन होगा। उसमें निम्नलिखित विषय पेश होंगे:—

(१) गतवर्ष की कार्यवाही तथा नये वर्ष के लिये अधिकारियों का चुनाव।

(२) अलङ्कार-हाकीदल के बारे में मंत्री सार्वदेशिक सभा से किये गये पत्र-व्यवहार पर विचार।

(३) गुरुकुलपच्चीसी मनाने पर विचार।

(४) आर्यसमाज विषयक स्ना० गुरुदत्त जी का प्रस्ताव।

(५) स्नातकमण्डल के संगठन पर विचार।

आशा है इन प्रस्तावों के महत्त्व को समझते हुए स्नातक भाई अधिक संख्या में आवेंगे।

चन्द्रमणि
मंत्री स्नातकमण्डल

गुरुकुल--समाचार

ऋतुराज वसन्त का सुमनोहर रूप सदा ही यहां बड़ा सुहावना हुआ करता है। परन्तु इस वर्ष विशेष रमणीय है। एक ओर टेसू और शाल्मलि बहुत अधिक खिल खिल कर कुल-भूमि को सजा रहे हैं तो दूसरी ओर आमों के मौर और शहतूतों के हरे भरे पत्ते और फल भूमि की शोभा को सहस्र-गुणित कर रहे हैं। जिधर देखिए उधर हरियाली ही दृष्टिगोचर होती है। कुलपति जी की कुटिया के चरणों में बहती हुई गङ्गा अपने नीलवर्ण सुप्रसन्न और स्वच्छ जल से कुलवासिओं के हृदय को शान्ति दे रही है। ऐसी सर्वोत्तम ऋतु में कुल में किसी रोग-पिशाच का आना कठिन ही है। द्वादश श्रेणी के एक ब्रह्मचारी को साधारण सी चेचक निकली थी, वह भी अब दूर भाग गयी है।

(२) महाविद्यालय की वार्षिक परीक्षा समाप्त हो चुकी है, अधिकारि-परीक्षा अभी होरही है, वह भी पांच दिनों में समाप्त हो जावेगी। इस वर्ष विशेष यत्न किया जारहा है कि सब परीक्षा-परिणाम शीघ्र प्रकाशित हो सकें। स्नातक-परीक्षा का परिणाम अभी प्रकाशित नहीं हुआ, संभवतः इस उत्सव पर १३ स्नातक कुल से दीक्षा प्राप्त करेंगे। इन में से एक स्नातक आयुर्वेद-विभाग का होगा।

(३) कुछ दिन हुए वर्तमान काश्मीर नरेश ने दो घोड़िएं गुरुकुल को दान में दी थीं। कुछ एक ब्रह्मचारी अब नियम पूर्वक घुड़सवारी का अभ्यास करते हैं। इसके अतिरिक्त एक बैण्ड भी ले लिया गया है, महाविद्यालय के ब्रह्मचारी उसकी शिक्षा भी प्राप्त कर रहे हैं। अभी २० ही दिन बैण्ड का अभ्यास किया है, परन्तु आशातीत उन्नति करली है। गुरुकुलोत्सव पर यही ब्रह्मचारी बैण्डदल का कार्य करेंगे।

(४) गुरुकुलोत्सव २, ३, ४, ५, एप्रिल को बड़ी धूम धाम से मनाया जावेगा। उसकी तय्यारियें बड़े समारोह के साथ मायापुर में हो रही हैं। गतवर्ष टीन की झोपड़ियों में यात्रियों को गर्मी के कारण कुछ कष्ट हुआ था। इस वर्ष उन के स्थान पर यथापूर्व फूंस की ही झोंपड़ियें बनवायी गयी हैं। कुछ तम्बोटियों का भी प्रबन्ध किया गया है। गुरुकुल के प्रायः सब उपाध्याय धन-संचय के लिये बाहर गये हुए हैं। १ एप्रिल को महात्मा गांधी जी ने मन्सूरी जाना है। वहां वे कुछ काल स्वास्थ्यलाभ के लिए निवास करेंगे। विशेष यत्न किया जा रहा है और बहुत अधिक आशा भी है कि वे गुरुकुलोत्सव में भी पधारेंगे।

इन के अतिरिक्त श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी, श्री स्वामी सत्यानन्द जी, श्री स्वामी नारायण जी आदि प्रसिद्ध सन्यासी और अन्य अनेक विद्वान् अपने चित्ताकर्षक उपदेशों और व्याख्यानों से धर्मपिपासुओं की पिपासा को शान्त करेंगे। गुरुकुल-शिक्षा के प्रेमी सब नर नारी इस पुण्य अवसर पर पहुंच कर लाभ उठावेंगें, ऐसी पूर्ण आशा है।

(५) दो मार्च १६०२ को आर्य-जनता के एक मात्र प्रिय कुल की मङ्गलमयी स्थापना हुई थी। तदनुसार २ मार्च को ही कुल-जन्मोत्सव के मनाने से कई स्नातक भाई उस में सम्मिलित होकर अपने को सौभाग्यशाली बनाने से वंचित रह जाते थे, क्योंकि इस जन्मोत्सव और गुरुकुलोत्सव पर दो बार आने में बड़ी असुविधा रहती थी। इसलिये अब यह निश्चय किया गया है कि गुरुकुलोत्सव से दो चार दिन पूर्व ही जन्मोत्सव मनाया जावे। तदनुसार इस वर्ष २७ मार्च को प्यारे कुल का जन्मोत्सव बड़ी धूम धाम से मनाया जावेगा और बैण्ड-वादन से यह मङ्गलोत्सव प्रारम्भ किया जावेगा। कुलपति श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज २६ मार्च को ही अपने कुलपुत्रों की प्रार्थनानुसार पहुंच जावेगें।

(६) कुलप्रेमियों को यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि गंगा के पार ज्वालापुर स्टेशन से परे पर्वत-माला की उपत्यका में कुछ भूमि मिल गयी है, तथा और भूमि भी शीघ्र ही मिलने वाली है। गुरुकुलोत्सव के पश्चात् उस भूमि पर कुल की इमारतें बनाने का कार्य प्रारम्भ हो जावेगा।

(७) गुरुकुल के वेदोपाध्याय श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालङ्कार, पालीरत्न ने गतवर्ष वेदार्थ करने के मुख्य आधार यास्कमुनि के प्रसिद्ध निरुक्त का 'वेदार्थ-दीपक' नामी अत्युत्तम हिन्दीभाष्य का पूर्वार्ध प्रकाशित किया था। उस ग्रन्थरत्न की आर्यसमाज तथा भारत के अन्य प्रसिद्ध विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उस का उत्तरार्द्ध भी अब प्रकाशित हो गया है, जो कि गुरुकुलोत्सव पर वेदप्रेमियों को मिल सकेगा।

Registered No A ;1340

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र]

आषाढ़ १९८३ जून १९२६
वर्ष ३] [अङ्क १

मुख्य संपादक
प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विदेश से ६ शि० एक प्रति का ।=) वार्षिक मूल्य ३)

विषय सूची

लेखकों से प्रार्थना

१. लेख सामान्यतः अलंकार के ४ पृष्ठों से अधिक न हों।

२. लेख कागज़ के एक ओर, और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये।

३ पत्र में प्रकाशन के लिये लेख या कविता प्रत्येक देशी मास की १० तारीख तक, और गुरुकुल समाचार २५ तक अवश्यमेव संपादक के पास पहुंच जाने चाहियें।

४. किसी भी लेख को घटाने या बढ़ाने का अधिकार संपादक को होगा।

५. अलंकार के परिवर्तन में पत्र, पत्रिकाएं, और समालोचनार्थ पुस्तकें "सम्पादक" के पते पर भेजनी चाहियें, प्रबन्धकर्ता के नाम से नहीं।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

वर्ष ३, अङ्क १] मास, आषाढ़ [पूर्ण संख्या २५

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अलंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५ ।

* तू मेरा मैं तेरा *

(श्री पं० श्रीहरि)

नटनागर हठ बहुत हो चुका, अब तो हठ को छोड़ो ।
निपट हठीले निठुर हुए क्यों, नाता अपना जोड़ो ॥
भटक रहा हूँ बड़ी देर से, प्रियतम ! तव गलियों में ।
तुम्हें न पाया अटक रहा पर जग के इन छलियों में ॥ १ ॥

* * *

कैसी है प्रभु प्रकृति तुम्हारी, जो जन तुम्हरा होता ।
दीनबन्धु ! हा, वही दीन हो, गलियों गलियों रोता ॥
मैं भी हठी न हटने का हूँ, डाल द्वार पर डेरा ।
एक बार हँस कर कह दो बस, तू मेरा मैं तेरा ॥ २ ॥

ईक्षण

वैदिक-आस्तिकवाद

(प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्कशिरोमणि)

"'ईक्षण' शब्द उपनिषदों में पारिभाषिक है। सारे वैदिक आस्तिकवाद की बुनियाद 'ईक्षण' पर है। आज हम यह दिखाने का यत्न करेंगे कि उपनिषदों में ईक्षण का क्या अर्थ है?

यह सृष्टि कैसे बनी? इसे किसी चेतन मन ने इच्छा पूर्वक बनाया या नहीं? इसी प्रश्न पर आस्तिक और नास्तिकवाद के दो तर्क खड़े हुये हैं। एक ओर आस्तिकों ने 'ईश्वर' का आश्रय लिया है दूसरी ओर नास्तिक यह कहता है कि:—

१—सृष्टि स्वभाव से ही ऐसी बन गई। इसके लिये किसी कर्त्ता की आवश्यकता नहीं।

२—सृष्टि 'काल' या समय से ही ऐसी बन गयी है।

३—सृष्टि अकस्मात् ऐसी बन गयी। किसी ने इसे इस प्रकार का सोच कर नहीं बनाया है।

४—एक सम्प्रदाय यह भी कहता है कि सृष्टि यों ही बनी चली आरही है। यह अनादि है।

इन में से चौथा पक्ष विज्ञानविरुद्ध होने से सर्वथा उपेक्षा के योग्य है। क्योंकि हम प्रत्येक क्षण में इस जगत् में परिवर्तन देख रहे हैं। इतना तो अवश्य मानना पड़ेगा कि सृष्टि 'परिवर्तन' के चक्कर में पड़ी हुई ही इस अवस्था तक पहुंची है। इस लिये पहिले नास्तिकों के जो तीन सिद्धान्त हैं उनके आधार पर सृष्टि उत्पत्ति सम्बन्धी वैज्ञानिक नास्तिक सिद्धान्त निम्न प्रकार बन गया है जिस के अन्दर वे तीनों वाद समा जाते हैं:—

"अनादि काल से प्रकृति में परिवर्त्तन होता रहा। परिवर्त्तन होते २ अकस्मात् परिवर्तन इस ढङ्ग पर नियमित हो गया कि कुछ समय में (जो कि करोड़ों और अरबों वर्ष से कम नहीं हो सकता) यह सृष्टि इस रूप में बन गयी जैसी हम इसे देखते हैं। और यह परिवर्त्तन इसी प्रकार होता चला जायगा। इस के लिये किसी चेतन आत्मा की आवश्यकता नहीं है। अब इस में तीन प्रश्न उपस्थित होते हैं:-

१—क्या यह सम्भव हो सकता है कि परिवर्त्तन अनादि काल से हो रहा हो? या किसी विशेष समय में परिवर्त्तन प्रारम्भ हुआ?

२—क्या परिवर्त्तन में कोई नियम या क्रम नहीं हैं? और उस के लिये चेतन मन की आवश्यकता न होगी?

३—क्या यह परिवर्त्तन कभी बन्द न होगा?

(क) इन तीनों प्रश्नों का उत्तर उपनिषद् यों देती है:-

यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंविशन्ति तद्ब्रह्म.........।

१-जिससे यह जगत् (सृष्ट्यु-त्पत्ति के लिये परिवर्तन) पैदा होता है।

२-जिस से यह जगत् (सृष्टि का परिवर्तन) जीवित है अर्थात् कायम है या नियमित है।

३-जिस में यह जगत् समा जाता है अर्थात् जो इस परिवर्तन को बन्द कर देता है—वह ब्रह्म है।

(ख) वेदान्त प्रणेता व्यास मुनि ने "जन्माद्यस्य यतः" इस सूत्र से यहां बतलाया है कि ब्रह्म वह है जिस से सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय होता है। इन तीन कार्यों के लिए चेतन ब्रह्म को आवश्यकता है।

(ग) पौराणिकों ने ब्रह्म की तीन प्रसिद्ध शक्तियों से तीन देवताओं की कल्पना की है वह भी इसी सिद्धान्त पर है अर्थात्—

१-ब्रह्मा जगत् को बनाता है। परिवर्तन को प्रारम्भ करता है।

२-विष्णु जगत् का पालन करता है। अर्थात् परिवर्तन को नियमित (Regulate) करता है।

३-महादेव जगत् का प्रलय करता है। अर्थात् परिवर्त्तन को बन्द करता है।

(घ) हमने देखा है कि लगातार परिवर्तन के आधार पर नास्तिकवाद सृष्टि का समाधान करता है उस पर तीन प्रश्न उठे थे। इन तीनों के समाधान करने में आस्तिकवाद ईश्वर की स्थापना करता है परन्तु हमें देखना चाहिये कि नास्तिकवाद के अपने कैम्प में इन प्रश्नों का क्या उत्तर दिया गया? बहुत दिनों तक नास्तिक लोग वैज्ञानिक रीति पर यह विश्वास रखते आये कि परिवर्तन सदा से चला आया है, सदा होता रहेगा और स्वयं हो रहा है। यह विश्वास कहाँ तक युक्तियुक्त है इस पर कुछ शब्द हम पीछे लिखेंगे, यहां हम यह बतलाना चाहते हैं कि एक साथ वैज्ञानिक सम्प्रदाय में यह प्रश्न उठ खड़ा हुआ कि क्या जगत् में परिवर्तन से जो विकास हो रहा है उस में किसी चेतन शक्ति की आवश्यकता नहीं? आल्फ्रेड रसेल वैलेस (Alfred Russel Wallace) ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक World of Life में कहा है कि विकास के लिये—

१-एक ऐसी शक्ति की अपेक्षा है जिस ने विकाश का प्रारम्भ किया हो अर्थात् विकास में पहिला प्रयत्न (Impulse) किया हो।

२-जो विकास को उस के प्रत्येक पग पर नियमित रक्खे।

३-जो विकास को उसके अन्तिम उद्देश्य पर पहुंचाये *।

यह स्पष्ट पता चलता है कि ये तीनों वे ही बातें हैं जिन के लिये ब्रह्म की सत्ता को हमारे ऋषियों ने माना था। इस प्रकार ब्रह्म की सत्ता में तीन युक्तियें है—

* विकास के अन्तिम उद्देश्य तक पहुंचने का मतलब यह हो सकता है कि जहां जाकर विकास समाप्त हो जावे अर्थात् परिवर्त्तन बन्द हो जावे।

जगत् को बनाने वाले की आवश्यकता है।

२-जगत् को संभालने वाले की आवश्यकता है

३-जगत् को बिगाड़ने वाले की आवश्यकता है।

नोट—बिगाड़ने का अर्थ समाप्त करने वाला।

'ईक्षण' के विवेचन में हमें केवल इन में से पहिली युक्ति पर विचार करना है। हम यह दिखायेंगे कि 'परिवर्तन' अनादि नहीं हो सकता, और परिवर्त्तन के प्रारम्भ करने वाला आवश्यक है।

हम ने देखा है कि इस विश्व के सम्बन्ध में तीन प्रश्न उठते हैं और तीनों के उत्तर में हम उस अदृश्य शक्ति (ईश्वर) तक पहुंचते हैं। उनमें से पहिले प्रश्न का विवेचन हमें करना है।

पहिला प्रश्न यह था कि क्या प्रकृति में सदा से परिवर्त्तन होता चला आया है और उस परिवर्त्तन के कारण बिना किसी चेतन शक्ति के यह जगत् बन गया। इसका उत्तर आस्तिकवाद ने यह दिया है कि परिवर्त्तन अनादि नहीं हो सकता किन्तु एक समय प्रकृति शान्त अर्थात् गति-रहित थी और समय विशेष में परिवर्त्तन या गति का प्रारम्भ हुआ, उस गति को प्रारम्भ करने वाली किसी शक्ति की आवश्यकता है।

सब से बड़ी समस्या यह है कि क्या प्रकृति में जाति अनादि हो सकती है या नहीं? यदि इसका सन्तोष-जनक उत्तर मिल जाय तो आगे बहुत बड़ा विवाद नहीं रहता—

(१) विज्ञान की दृष्टि से यह बात असम्भव है कि प्रकृति के परमाणु सदा से सदा तक अर्थात् अनादि और अनंत गति युक्त बने रहें। धातुओं के अणु भी कुछ देर काम कर के थक जाते हैं- मैशीनरी के इञ्जनों को भी गति के पश्चात् विश्राम करना पड़ता है। प्रो० जे. सी. बोस ने सिद्ध किया है कि लोहे की बनी चीजें चाकू आदि काम करते २ थक जाते हैं और उन्होंने अपने यन्त्र से यह दिखलाया है कि थकने पर फिर वे काम करना नहीं चाहते। इन चीजों में जीवन हो या न हो प्रो० बोस के परीक्षणों से स्पष्ट है कि काम करते २ थकावट जड़ पदार्थों में भी आती है। विश्राम की आवश्यकता चेतन को नहीं किन्तु जड़ को भी होती है †। इस प्रकार यह नहीं माना जा सकता कि प्रकृति में अनादि काल से गति चली आई है अर्थात् एक समय में गति का प्रारम्भ हुआ होगा।

(२) अब यदि इसी को तार्किक दृष्टि से देखें तो प्रश्न अत्यन्त गंभीर हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि आज से अरब वर्ष पहिले प्रकृति की अनादि गति इस प्रकार नियमित हो गयी कि यह सृष्टि आज इस रूप में बन गयी, तब प्रश्न यह होगा कि दो अरब वर्ष पूर्व ही अनादि गति क्यों सृष्टि रचना

† इस बात को सामने रख कर यह वैदिक सिद्धान्त कितना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है कि प्रकृति जितने समय तक सृष्टि अर्थात् गति में रहती है उतने ही समय तक प्रलय अर्थात् गति रहित अवस्था में विश्राम करती है।

के योग्य नियमित रूप में हुई ? उससे पहिले ही वह नियमित क्यों न हो और गयी थी जो सृष्टि आज तक बन पायी है वह आज से दो अरब वर्ष पूर्व ही क्यों न बन गयी क्योंकि अनादि गति के विषय में यह तो कहा ही नहीं जा सकता है कि वह आज तक ही इस अवस्था को पहुंची इस से पहिले नहीं पहुंच सकती थी क्योंकि आज भी कहा जा सकता है कि प्रकृति की गति अनादि है और दो अरब वर्ष पूर्व भी कहा जा सकता था कि प्रकृति की गति अनादि है, अनादि और अनादि बराबर ही हो सकते हैं। ऐसी दशा में सृष्टि का जो विकाश आज पर्यन्त हुआ है वह आज से दो अरब वर्ष पूर्व ही क्यों न हो गया ? इस प्रकार एक बड़ा चक्कर हमारे सामने आ जाता है और तार्किक दृष्टि से मानना पड़ेगा कि गति अनादि नहीं हो सकती है।

अब हमारा रास्ता साफ़ है और हमें राज-पथ पर चलना है। प्रकृति में अनादि गति नहीं हो सकती वह एक समय में प्रारम्भ हुई उसका प्रारम्भ कैसे हुआ ? इसका इतना उत्तर पर्याप्त नहीं है कि चेतन ईश्वर ने परमाणुओं में गति उत्पन्न कर दी। ईश्वर ने गति कैसे उत्पन्न की ? क्योंकि गति शून्य पदार्थ को गति में लाना गतिमान् पदार्थ का ही काम है, जैसे दवात को गति युक्त करने के लिये गति युक्त मेरे हाथ की आवश्यकता है, बस इसी प्रश्न के उत्तर में कि शान्त प्रकृति में गति कैसे उत्पन्न हुई उपनिषद् कहती कि परमात्मा ने ईक्षण किया (स ईक्षांचक्रे) परमात्मा के ईक्षण करने की बात उपनिषदों में कई स्थानों पर आयी है। दूसरी जगह आया है (स तपोऽतप्यत) अर्थात् परमात्मा ने सृष्टि बनाने के लिये तप किया। परन्तु फिर बतलाया है कि परमात्मा का तप ज्ञान ही है 'यस्य ज्ञान मयं तपः' और वह ज्ञान ही ईक्षण है क्योंकि 'ईक्ष दर्शने' से ईक्षण का अर्थ भी ज्ञान या आलोचन है। इसी को ईश्वर का संकल्प कहते हैं।

प्रारम्भ में प्रकृति के परमाणुओं को गति देने के लिये जो क्रिया हुई उसका नाम—

ईश्वर का—

ईक्षण
तप
ज्ञान
या संकल्प

है। अब ईक्षण का अर्थ ईश्वर-संकल्प हुआ इस ईश्वर संकल्प से गति कैसे पैदा होती है ? इस के लिये एक उदाहरण हम मैसमैरिज्म का देंगे।

मैसमैरिज्म में बिना बाह्य गति के सङ्कल्प-शक्ति या (Will Power) से एक बाहरी चीज़ में गति पैदा हो जाती है। दूर रक्खी हुई पुस्तक बिना बाह्य चेष्टा के केवल संकल्प-शक्ति के प्रभाव से हिलने लगती है, वहाँ पुस्तक को हिलाने के लिये बाह्य गतिमान् साधन की जरूरत नहीं होती ठीक इसी प्रकार प्रकृति परमाणुओं में गति, बिना किसी बाह्य गति-चेतन परमात्मा के ईक्षण या संकल्प (Divine Will Power) के,उत्पन्न हो

आती है। बस, परमाणुओं में एक वार गति हुई और सृष्टि को खेल बनना प्रारम्भ हो गया। प्रारम्भिक गति के लिये एक चेतन शक्ति की आवश्यकता है। गति प्रारम्भ होने पर और सृष्टि बनने पर परमात्मा उस का द्रष्टा होता है परन्तु एक वार उत्पन्न हुई गति स्वयं बन्द नहीं हो सकती यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है। एक ढेला आसमान में फेंका गया है। विज्ञानशास्त्र कहता है कि यदि वायु उस गति का प्रतिरोध न करे और पृथ्वी का आकर्षण उसे अपनी ओर न खींचे तो उस ढेले में अनन्त काल तक गति बनी रहे उस सीध में जिस में कि वह फेंका गया है लगातर आगे ही बढ़ता जायगा। इसी प्रकार प्रकृति के परमाणुओं की गति स्वयं बन्द नहीं हो सकती उस के लिये भी गति रोकने वाले किसी चेतन की आवश्यकता है और वह चेतन अदृश्य शक्ति परमात्मा है जो कि गतियुक्त प्रकृति के परमाणुओं को गतिरहित कर देता है और यह भी उसी प्रकार प्रभु के ईक्षण या संकल्प से होता है इस प्रकार सृष्टि और प्रलय दोनों परमात्मा की स्वाभाविक संकल्प-शक्ति या ईक्षण होते हैं।

—:०:—

जातियों का पुनर्जन्म

(सामूहिक आत्मा की नित्यता या निरन्तरता)

(ले० पं० भीमसेन जी, विद्यालंकार, सत्यवादी-सम्पादक)

वैदिक सिद्धान्तों की विशेषता यह है कि वह पिण्ड, ब्रह्माण्ड, व्यक्ति और समाज सब रूपों में समानरूप से त्रिकाल में लागू होते हैं। पुनर्जन्म के सिद्धान्तों पर भी इसी दृष्टि से विचार करना चाहिए। भारतीय दर्शन शास्त्रों में तथा प्राचीन संस्कृत साहित्य में स्थान २ पर आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सचाई को सिद्ध करने के लिये बड़े २ विद्वानों ने अपनी विद्वत्ता को चरम सीमा तक पहुंचा दिया है। परन्तु उन्होंने समाज की सामूहिक आत्मा के उत्थान तथा पतन, उसके तिरोभाव तथा आविर्भाव पर विशेष रूप से विचार नहीं किया। जिस प्रकार मनुष्य आत्मा को अमर समझ कर, निर्भय होकर, आशामय जीवन बिताकर, निरन्तर आपत्तियों के आने पर भी आत्मिक उन्नति से विमुख नहीं होते उसी प्रकार जो जातियाँ व समाज सामूहिक आत्मा की नित्यता तथा उसके पुनर्जन्म के सिद्धान्त को समझ लेते हैं वह निराश नहीं होते। आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्त की सत्यता दो प्रकार से सिद्ध की जाती है, या तो विद्वान् योगी लोग अनुभव शक्ति द्वारा अमरता अनुभव करते हैं अथवा विद्वान् दार्शनिक बुद्धि तथा तर्क-शक्ति द्वारा ऊहापोह कर के आत्मा की अमरता को सिद्ध करते है। इसी प्रकार जातियां भी दो प्रकार

से सामूहिक आत्मा की अमरता का अनुभव कर सकती हैं। हम देखते हैं कि आयरिश जैसी छोटी २ जातियां अनुभव द्वारा आत्मा की अमरता को अनुभव करके ७०० साल तक निरन्तर स्वाधीनता के लिए आशामयी भावनाओं से प्रेरित होकर लड़ाई लड़ती रही हैं। परिणाम यह है कि आज उन की आत्मा स्वाधीन हो गई है। इसी प्रकार यदि हम १९१४ के युरोपियन महासमर के विवरण का अनुशीलन करें तो हम देखते हैं कि जैकोस्लोविक तथा ग्रीक जैसी छोटी २ जातियाँ सामूहिक आत्मा की अमरता पर विश्वास लाकर किस निर्भरता से युद्ध में लड़ती रहीं, उन्होंने इस बात की परवाह नहीं की कि आज हम तुच्छ है, आज हमारी पूछ नहीं है। उनके दिल में, जाति के नेताओं के हृदयों में, राष्ट्रीय आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म का भाव संचारित था। वह समझते थे और समझते हैं कि जातियों को सर्वकाल के लिये कोई नाश नहीं कर सकता। गोरी जातियों ने आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और अमरीका की नीग्रो आदि जातियों का सर्वनाश करने के लिये क्या कुछ नहीं किया, परन्तु आज हम उनमें भी दीर्घकाल की मृत्युरूप निद्रा के बाद जागृति के चिह्न देख रहे हैं। वे लोग भी अनुभव कर रहे हैं कि उन की अपनी सामूहिक आत्मा का इस संसार में विशेष महत्व है। यहूदी लोगों को युरोप की जातियों ने सदियों से कुचलने का, उनका नाम मिटाने का यत्न किया परन्तु आज हम देखते है कि यहूदी लोग अपनी सामूहिक आत्मा को फिर से आमन्त्रित कर के जाग रहे हैं। जेरूसेलम में हिब्रू विश्वविद्यालय स्थापित कर, सोई हुई आत्मा को जगा रहे है।

जिस सामूहिक आत्मा का हम ज़िकर कर रहे है, इस का वर्तमान युग के नैशनलिस्म कौमियत या राष्ट्रीयता का पर्याय वाची समझना ठीक नहीं है; दोनों में सम्बन्ध या किन्हीं अंशों में समानता ज़रूर है परन्तु समय भेद तथा अवस्था भेद के कारण कई अंशों में भिन्नता भी है जिस सामूहिक आत्मा के पुनर्जन्म का हमने वर्णन किया है वह आत्मा आजकल कई बंधनों में जकड़ी हुई है। अंगरेजी कौमियत का मुख्य आधार इंगलैण्ड देश है। फ्रैञ्च नैशनलिस्म का मुख्य आधार फ्रांस देश है। फ्रांस देश तथा इंगलैण्ड देश की भौगोलिक सीमाओं के नष्ट होने पर फ्रेञ्च नैशनलिस्म की सामूहिक आत्मा हमारी आँखों से ओझल हो जायगी। उसका दुनियाँ से नाम मिट जायगा। परन्तु यहूदियों की सामूहिक आत्मा भौगोलिक सीमाओं के विना भी आज तक जीवित रही हैं। कारण यह है कि यहूदी सामूहिक आत्मा का जीवनस्रोत उसके ऐसे सिद्धान्तों में था, जो स्थान देश तथा काल की सीमा में संकुचित नहीं थे।

आज कल की परिभाषा में भारतवर्ष में कौमियत या राष्ट्रीयता नहीं थी। भारत की सामूहिक आत्मा कुछ एक विशेष सिद्धान्तों द्वारा प्रकट होती थी, वही सिद्धान्त आज भी विद्यमान हैं। उस कारण आज भी हम लोग अपने

आप को प्राचीन-काल से राष्ट्रवादी समझते हैं।

परन्तु इस समय दुनियाँ की घुड़-दौड़ में हमारा जिन से मुकाबला है उन्होंने सामूहिक आत्मा को भौगोलिक शरीर और पुराने शरीर धारण कराकर, एक अवरोधक तथा बलशाली शक्ति बना लिया है। युरोप का शरीर और पुराने सिद्धान्त सामूहिक आत्मा को लक्ष्य में रख कर उन्नति पथ पर आगे बढ़ रहे है। वे जातियाँ युद्धों में जूझती हैं, शान्ति प्राप्त करने के लिये सामाजिक-आत्मा, निरन्तरता तथा नित्यता में विश्वास करती हुई इस बात से नहीं घबरावती कि उन की कितनी सेनाएं तथा कितना धन नाश हुआ है। युरोपियन महासमर में युरोपियन जातियों ने अपने सिपाहियों के खून तथा राजकोष को पानी की तरह बहाया, यह नहीं समझा कि इतनों के मर जाने से राष्ट्र नष्ट हो जायगा क्योंकि वे अनुभव द्वारा जान चुके हैं कि यह सिपाही तथा राजकोष रूपी शरीर अस्थिर है, सामूहिक आत्मा इन शरीरों को बदलती रहती है और समय के अनुसार नए शरीर धारण करती है, पुरानी जनरेशन को दूर कर नयी जनरेशन आगे बढ़ती है।

परन्तु हमारे भारत में, जहाँ का बच्चा भी आत्मा की अमरता तथा पुनर्जन्म को मानता है, लोग इस सामूहिक आत्मा का समाज के जनबल तथा धनबल के साथ जो सम्बन्ध है उसको नहीं समझते। वे समझते हैं कि चौराचौरी की खूनखराबी से जो जन नाश और धननाश होगा वह फिर पूरा नहीं होगा। लोग भारत की सामूहिक आत्मा या भावना की अपेक्षा जनबल तथा धनबल रूपी शरीर को अधिक चिरस्थायी तथा उपयोगी समझते हैं। इसी लिये हम लोग आन्दोलन के एकबार मन्द पड़ने पर निराश हो जाते हैं। एकबार राष्ट्रीय आन्दोलन के भंग होने पर हम समझते है कि बस अब सदा के लिये निराशा ही निराशा है। ऐसी निराशा ही इस समय हमारे देश में छाई हुई है। इस समय इस बात की आवश्यकता है कि हम जनता के अन्दर यह भाव जागृत करें कि जिस प्रकार हमारी आत्मा भिन्न २ शरीर बदलती है और मरती नहीं है उसी प्रकार समाज की सामूहिक आत्मा भी समय २ पर जननाश, जन वृद्धि, धननाश तथा धनागम के रूप में शरीर बदलती है। पुनर्जन्म लेती है और दिन दिन सालों नए अनुभवों के साथ आगे कदम रख रही है। ऐसा समझने पर हमें कभी निराशा नहीं होगी, हरेक आन्दोलन में हम उत्साह तथा आशा के साथ आगे बढ़ेंगे। देश के या जाति के किसी एक नेता के उठ जाने पर यह नहीं समझेंगे कि बस अब सब समाप्त है। अपितु आत्मा की नित्यता तथा निरन्तरता में विश्वास रखते हुए हमें अपनी जाति के पुनर्जन्म के लिये नए जीवन के लिये अग्रेसर होना चाहिए।

"कुछ भी नहीं"

(कविराज धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

यह तमाशा एक धोखे के सिवा कुछ भी नहीं ।
इन सुनहरे बादलों के बीच में कुछ भी नहीं ॥

* * *

बुलबुलों से जिस चमन के गीत सुनता था सदा ।
जब उसे देखा वो कांटों के सिवा कुछ भी नहीं ॥

* * *

मैं तो समझा था यहां संगीत होंगे रात दिन ।
पर यहां देखा कि रोने के सिवा कुछ भी नहीं ॥

* * *

जिस की सुर पर ताल दे कर गा रहे हैं आप सब ।
खोल कर देखो ज़रा उस ढोल में कुछ भी नहीं ॥

* * *

क्या अजब जादू है दिन भर तो कमाया था बहुत ।
शाम को देखा तो मेरे हाथ में कुछ भी नहीं ॥

* * *

राज महलों में अभी मैं घूमता था शौक से ।
पर सवेरे जो उठा देखा वहां कुछ भी नहीं ॥

* * *

पूछा लुकमां से किसी ने तूने क्या देखा यहां ।
दस्ते-हसरत मल के बोले है यहां कुछ भी नहीं ॥

अग्निहोत्र और उसका वैज्ञानिक स्वरूप

संख्या (२)

(ले० श्रीयुत प्रो० मोतीलाल जी गोयल एम. एस. सी, एफ. सी. एस., एफ. आर. एस. ए)

गत वर्ष श्री दयानन्द-जन्मशताब्दी के अवसर पर गुरुकुल के मुखपत्र अलंकार में हम ने अपने परीक्षणों के आधार पर इस विषय पर एक लेख प्रकाशित किया था। उस के बाद अब एक छोटा सा लेख पाठकों के सामने उपस्थित करने लगे हैं, आशा है इस का भी पूर्ववत् स्वागत किया जावेगा जिस से हमारा उत्साह बढ़ेगा।

अग्निहोत्र से कर्बनिकाम्ल (CO_2) गैस उत्पन्न होने के विषय में उस समय लिखा गया था, कि प्रथम तो (CO_2) गैस इतनी अधिक मात्रा में उत्पन्न नहीं होती जो कि स्वास्थ्य के लिये हानिकारक सिद्ध हो, दूसरे उत्पन्न होने पर भी कमरे की वायु में गैस की मात्रा इतनी अधिक नहीं बढ़ सकती, क्योंकि कमरे के खुले रहने से वायु आकाश मंडल में फैलती रहती है। हवन सम्बन्धी कुछ परीक्षण जो पलाश की लकड़ी तथा अन्य पदार्थों के साथ किये गये थे; उन का सार यहां दिया जाता है। परन्तु उस के पूर्व यह बता देना आवश्यक है, कि यह परीक्षण एक बन्द कमरे में किये गये थे जिससे बाहर का वायु अन्दर तथा अन्दर का बाहर न आ-जा सके। प्रथम परीक्षण में केवल पलाश की लकड़ियाँ भिन्न २ मात्रा में कई बार जलाई गईं। और प्रत्येक बार प्राप्त कर्बनिकाम्ल (CO_2) गैस की मात्रा की जांच की गई। फिर दूसरी series में पूर्ववत् लकड़ी की भिन्न २ मात्राओं के साथ घी की आहुतियों से हवन किया गया और उत्पन्न कर्बनिकाम्ल की मात्रा देखी गई। पुनः तृतीय series में लकड़ी और घी की मात्रा द्वितीय series के परीक्षणों से देख कर इन के अतिरिक्त केवल खांड, निशास्ता, (Starch) शहद, चावल, गेहूं तथा अन्य इसी प्रकार के अन्य पदार्थों को साथ लेकर घी और पलाश की लकड़ियों से परीक्षण किये गये। तत्पश्चात् सुगन्धित पदार्थ तथा तृतीय series (खांड, नशास्ता इत्यादि) के पदार्थों को मिला कर परीक्षण किये गये। इस के अतिरिक्त घी के बिना केवल खांड तथा सुगन्धित पदार्थों से भी परीक्षण किये गये थे।

इन परीक्षणों के परिणाम निम्न हैं- घी की आहुति देने से उस का बहुत बड़ा भाग वाष्प बन कर उड़ जाता है, और शेष भाग लकड़ी के साथ मिल कर जलता है, यही जला घी वायु-मंडल में कर्बनिकाम्ल गैस की वृद्धि का कारण होता है। यदि घी निश्चित मात्रा में थोड़ी २ देर के पश्चात् डाला जावे तो सारा घी जलाया जा सकता है। घी जितनी अधिक मात्रा में वाष्प रूप बन कर उड़ता है, उतना ही हवन उपयोगिता की दृष्टि से लाभदायक है। घी का जला भाग अग्नि

को प्रचंड रखने में सहायक होता है। इसी प्रकार खांड निशास्ता आदि पदार्थ भी ज्वाला को प्रज्वलित रखने में सहायक सिद्ध हुये हैं, तथापि उन के साथ हवन करने से कर्बनिकाम्ल गैस की मात्रा घी के जलने की अपेक्षा बहुत कम पैदा होती थी-अर्थात् खांड आदि का जलना जहाँ गैस की मात्रा को कम करता था वहाँ साथ ही अग्नि को भी प्रचंड करता था। सुगन्धित पदार्थों को खांड आदि के स्थान पर प्रयुक्त करने पर गैस की मात्रा खांड आदि की अपेक्षा कुछ अधिक पैदा होती थी, तथापि केवल घी तथा लकड़ी की अपेक्षा कम ही थी जिस का मुख्य कारण पदार्थ का Carbon भाग समझा गया है। इस प्रकार अग्निहोत्र में भिन्न २ पदार्थों का कर्बन द्विओषिद् (CO_2) दृष्टि से ज्ञान होता है। सुगन्धित पदार्थों से हवन में सुगन्धित तैलों (Oils) के वाष्प उठने के विषय में हम ने अपने प्रथम लेख में लिखा है। उस के आधार पर ही परीक्षण करने पर बहुत सी नई नई बातों का पता लगा है, उन वैज्ञानिक सिद्धान्तों को साधारण भाषा में यहां पर लिखना आवश्यक है।

यह तो पूर्व ही कहा जा चुका है कि यह सुगन्धित वाष्प उन कीटाणुओं को मार देते हैं जो कीटाणु भिन्न २ रोगों के कारण माने जाते हैं। इन कीटाणुनाशक (Germicide) पदार्थों के सम्बन्ध में यह जानना उचित है कि ये पदार्थ कीटाणुओं को किस तरह मारते हैं।

१—कीटाणु इन्हें खा लेवें। (Stomach Poisons)

२—कीटाणु के शरीर से यह छू जावें। (Contact Poisons)

३—कीटाणु सांस द्वारा इन्हें अन्दर ले जावें। (Fumigation)

इन में से प्रथम श्रेणी के पदार्थों का उपयोग चूहे और मक्खी आदि के मारने में प्रतिदिन देखा जाता है। इन पदार्थों में संखिया, पारा, सीसा आदि के समास सम्मिलित होते हैं।

दूसरी श्रेणी के विष कीटाणुओं के शरीर से छूकर वहां चिपट जाते हैं, और फिर छूटते नहीं; और शरीर के रोम छिद्रों द्वारा अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं और कीटाणुओं को मार डालते हैं। इस श्रेणी में फिनाइल सदृश पदार्थ गृहीत होते हैं, जो कमरों को शुद्ध करने के काम आते हैं।

तृतीय श्रेणी में (Fumigation) द्वारा प्राप्त गन्धक का धूआँ, हरिण गैस तथा फोर्मैल डिहाइड आदि सम्मिलित हैं।

आज कल के वैज्ञानिक सुगन्धित तैलों का बहुत कम प्रयोग करते हैं। और वह भी दूसरी श्रेणी के सदृश घोल बन कर ही प्रयोग में आते हैं। हम ने अपने पिछले लेख में (दो चार को छोड़ कर) इन की उपयोगिता और प्रयोग करने में बड़ी सुगमता पर बहुत कुछ लिखा था। अब यह दिखा कर कि यह विष किस प्रकार कीटाणुओं को मारते हैं, तत् पश्चात् उक्त पदार्थों की उपयोगिता के सम्बन्ध में विचार करेंगे।

इस के समझाने के लिये यदि यह मानलें कि पाठकों ने बहुत से Emulsion (घोल) देखे होंगे और उन का व्यवहार भी किया होगा—कम से कम

घरों की सफाई में Phenyl (फिनाइल) को पानी में मिला कर सफेद दूध सा बना कर तो अवश्य देखा होगा—तो विषय बड़ी सुगमता से स्पष्ट हो जायगा। घोल में तेल को पानी में मिलाने से जल सफेद सा हो जाता है, परन्तु कुछ देर रख देने पर दोनों अलग २ हो जाते हैं और यदि दूसरी बार पानी में गोंद या साबुन मिला कर फिर तेल डाल कर हिलावें तो यह सफेद रंग बहुत देर तक रहता है और थोड़ा सा तेल तथा पानी के अलग होने में कुछ देर लगती है। कुछ वैज्ञानिक सिद्धान्तों के अनुसार बनाया हुआ यह घोल फिर नहीं फटता। उस घोल (क) में तेल छोटे २ कणों के रूप में जल में विभिक्त हो जाता है, परन्तु कभी २ घोल (ख) जल कणों के रूप में तेल में फैल जाता है।

गोंद, साबुन आदि घोल बनाने में सहायक होते हैं, और इन की प्रत्येक कण पर अपनी परत चढ़ी रहती है। इन पदार्थों की प्रकृति पर ही घोल क या ख रूप का होता है। इन घोलों में लवण डालने पर भी कुछ भिन्नता आ जाती है। जैसे घोल क में चूने का पानी डालने से वह घोल ख के रूप में परिवर्तित हो जाता है। और ख रूप वाले घोल में साधारण नमक क रूप में बदल जाता है। इन गोंद और साबुन आदि की परत इस प्रकार की नहीं होती कि कोई चीज़ अन्दर न जा सके; अर्थात् एक प्रकार की छिद्र वाली तह सी होती है जिस पर किसी बाहर के पदार्थ का अन्दर जाना निर्भर होता है। इस में से वह पदार्थ ही अन्दर जा सकते हैं जो घुल कर इन छिद्रों से छोटे कणों वाले हो जावें। या जो इस परत में घुल सकें अथवा उस से मिल कर उस के छिद्र को बड़ा (Coagulate) कर सकें। अन्य अवस्थाओं में कोई पदार्थ अन्दर नहीं जा सकते। अन्दर जाकर यह पदार्थ घोल की बून्दों के द्रव्य पर अपना प्रभाव करते हैं। इस परत पर वैद्युतिक प्रभाव भी हो जाता है; जो बदला जा सकता है, और तभी क और ख घोल ख तथा क में बदल जाते हैं। मनुष्य जाति के रक्त में बहुत से कोष्ठ (Cell) होते हैं: जो इस परत वाले बिन्दु के रूप में रक्त में पले होते हैं; अथवा यहाँ भी एक प्रकार का घोल ही होता है। कीटाणु भी एक कोष्ठ वाले अथवा एक से अधिक कोष्ठ वाले होते हैं। और काष्ठ की ऊपरी परत भी झिल्ली जैसी होती हैं। क्रिमियों के शरीर से की त्वचा में भी छिद्र होते हैं। दूसरी श्रेणी के विष क्रिमी के शरीर से छू कर, अर्थात् झिल्ली से मिल कर उस में चिपटे रहते हैं, जिन का कुछ भाग अन्दर प्रविष्ट हो जाता है, जिस से कीटाणु मर जाते हैं।

उल्लिखित सिद्धान्त से हम यह स्पष्ट करना चाहते हैं कि ऐसे कोष्ठ की झिल्ली जड़ब हो जाने या इस में प्रविष्ट हो जाने पर ही पदार्थ अपना कार्य पूरा कर पाते हैं। यह कार्य हानिकारक या लाभदायक किसी प्रकार का हो सकता है, परन्तु एक प्रकार का वैद्युतिक परिवर्तन धन या ऋण विद्युत के रूप में होता है। यह कोष्ठ की परत इस प्रकार के

पदार्थों की बनी होती है, जिन में तैल आदि अत्यन्त शीघ्र ही घुल जाते हैं, अर्थात् उस में (Lipoid) विलेय पदार्थ होते हैं, इस कारण तैल इस में सरलता से प्रविष्ट हो जाता है। इसी प्रकार तैल में विलेय पदार्थ भी सुगमता से प्रविष्ट हो जाते हैं। द्रव रूप में यह पदार्थ कीटाणुओं के शरीर से छू जाने से ही अन्दर प्रविष्ट हो जाते हैं, और गैस रूप में श्वास द्वारा अन्दर जाकर कोष्ठ झिल्ली को पार करते हैं। इस प्रकार प्रथम श्रेणी के पदार्थों का कुछ भाग आमाशय से रस द्वारा प्रविष्ट हो कर उन के लिये हानिकारक होता है। तात्पर्य यह है कि तीनों अवस्थाओं में विष की क्रिया वास्तव में एक ही रूप में होती है, अर्थात् कोष्ठ झिल्ली द्वारा कोष्ठ के अन्दर प्रविष्ट होना, ठोस या द्रव पदार्थों के खाने या छूने से अथवा वाष्प के सूंघने से विष की क्रिया होती है।

पिछले लेख में लिखा जा चुका है कि बहुत से सुगन्धित पदार्थों के वाष्प परीक्षण द्वारा देखने पर कृमिहर सिद्ध हुए हैं, और यह कार्य हवन की उड्डन शील गैस के गुण पर निर्भर है। अर्थात् उड्डन शील पदार्थ ही यह कार्य करते हैं। उपरिलिखित सिद्धान्त से हम यह सुगमता से समझ सकते हैं कि उड्डन शील सुगन्धित पदार्थ तैल या तैल में घुल जाने वाले Lipiods विलेय होने के कारण झिल्ली से मिल कर Cell में प्रवेश करते हैं। अग्निहोत्र से उत्पन्न गैस का जो भाग मनुष्य के श्वास से अन्दर प्रविष्ट होता है वह अन्दर रक्त के कोष्ठों से मिल जाता है और अपना कार्य करता है; शेष भाग कमरे आदि में गैस रूप को छोड़ कर तैल बिन्दु के या ठोस कण पर परत के रूप में कमरे की दीवारों तथा अन्य वस्तुओं पर बैठ जाता है, और यदि वहां कीटाणु हों तो उनका नाश कर देता है। इस प्रकार कमरे की वायु शुद्ध होकर रोग के कीटाणुओं को मार देती है। चूहे इत्यादि से छोड़े हुए प्लेग के कीटाणु और मक्खी आदि द्वारा लाये हुये विसूचिका और प्रवाहिका आदि के कृमि इस प्रकार नष्ट किये जा सकते हैं, और चूहे तथा मक्खी की मृत्यु भी नहीं होती।

रोग के बहुत से कीटाणुओं पर सुगन्धित पदार्थों का प्रभाव देखने से ज्ञात हुआ है कि जहां बहुत से तैल के वाष्प कीटाणुओं को सीधा मारते हैं वहां खास उड्डन शील तैलों में कुछ ऐसा भी भाग होता है जो ऐसे कीटाणुओं को अपनी सुगन्ध द्वारा अपनी ओर आकर्षित करता है, और जब वह आकर्षित हो जाता है तो फिर दूसरे पदार्थ अपना कार्य कर डालते हैं। जैसे लैम्प की चमक पतंगों को अपनी ओर आकर्षित करती है परन्तु उसी लैम्प की आग उन को जला सकती है।

इस के अतिरिक्त कोष्ठ झिल्ली पर वैद्युतिक प्रभाव भी होता है। हवन आदि से उत्पन्न वाष्प कुछ देर बाद गैस, तैल और ठोस भाग में विभक्त हो जाते हैं, और जैसा पहिले लिखा गया है, कि इन पर भी वैद्युतिक प्रभाव देखा गया है, इस लिये झिल्ली

पर वैद्युनिक प्रभाव के कारण भी ऐसे वाष्प अपना काम प्रविष्ट होकर कर जाते हैं। इस के अतिरिक्त वाष्प के कणों के परिमाण का भी प्रभाव होता है। इस सम्बन्ध में भी यह पहिले लिखा जा चुका है कि वाष्प जितने छोटे कण वाला होगा उसकी उतनी ही प्रतिक्रिया होगी, परन्तु यह प्रतिक्रिया कई कारणों से कम प्रतीत होती है।

वायु की नमी की परत जम जाती है, और फिर यह काम नहीं करने देती है। हवन की गर्मी इस परत को जमने नहीं देती। इसलिये ही इन तैलों के वाष्प अपना पूरा काम नहीं कर पाते, जब तक कि कमरे की वायु गर्म न हो, साथ ही गर्मी से वाष्परूप में अधिक भाग बदल जाता है।

उल्लिखित गुणों पर नमी की परत जमने से बादल बनने के विषय में अन्यत्र बहुत कुछ लिख चुके हैं; अब इतना और लिखना उचित प्रतीत होता है कि ये सुगन्धित तैल ऐसे बादलों से वर्षा में भी आते हैं, और ऐसी वर्षा से Partial Ferlization द्वारा पृथिवी की उपजाऊ शक्ति बढ़ जाती है और अन्नादि अधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। पिछले लेख में यह भी दिखलाया था कि हवन से उत्पन्न वाष्प में कुछ भाग कार्बन के कणों का होता है जिस पर तैल की परत होती है, जो ऊपर पहुंच कर बादल बनाने में लाभदायक होते हैं। जब ये कण भारी होते हैं, और ऊपर नहीं जा सकते तो नीचे कमरे में रक्खे हुए पदार्थों पर बैठ जाते हैं, परन्तु प्रायः ये कम बैठते हैं, क्योंकि गर्म वायु द्वारा कमरे से बाहर ही धकेल दिये जाते हैं; या कोहरे के साथ घास खेती आदि पर जम जाते हैं। वर्तमान समय में कृषि नाशक कीटाणु बहुत होने लग हैं, जो खेती के लिये बहुत हानिकारक हैं, जैसे गेहूं, आलू आदि का कीड़ा। ऐसी अवस्था में इन कणों के उन पर बैठने से ये इन कीटाणुओं का भी नाश करते हैं, और इस प्रकार कृषि को हानि से बचाते हैं। इस हानि से बचाने के लिये आज कल Spray से काम लेते हैं। इस Spray में संखिया आदि होता है, जिस से बहुत हानि होने की सम्भावना रहती है। यही काम हवन से वैसे ही होता है। रोग उत्पन्न करने वाले कृमि भी इसी प्रकार भविष्य में उत्पन्न होने बन्द हो सकते हैं। इस प्रकार से हवन एक रूप में होने से भी भिन्न २ रूपों में अपने लाभ मनुष्यजाति को पहुंचाता है।

—:o:—

आफ्रीका के ग्राहकों से निवेदन

"अलंकार" के आफ्रीका के कृपालु ग्राहकों से कई बार निवेदन किया गया है कि उनका चन्दा समाप्त हुए बहुत देर हो गई है परन्तु अभी तक कई भाइयों ने हमारे निवेदन पर ध्यान तक नहीं दिया। जिन ने चन्दा भेज दिया है हम उन का धन्यवाद करते हैं परन्तु जिन ने नहीं भेजा उन से निवेदन करते हैं कि अब वापिसी डाक ही ६ शिलिङ्ग वार्षिक चन्दा भेज दें—प्रबन्धकर्ता अलंकार

निराले आदमी

(ले० पं० देवशर्मा जी विद्यालंकार)

यह कौन है जो कि दिन दोपहरे सोया पड़ा है? अब जब कि 'सभ्यता' का दोपहर चढ़ा हुआ है, सब अपने २ कार्य में ज़ोर शोर से लगे हुवे हैं, तब यह कौन एक तरफ़ चुपचाप पड़ा है? संसार में तो सब तरफ चहल पहल है, बाज़ार भरे हुवे हैं, लोग अपने २ दफ़्तरों और कारखानों में कार्यव्यग्र हैं, एंजिन शोर कर रहे हैं, मोटर दौड़ रहे हैं, तार खटक रहे हैं, टेलीफ़ोन बोल रहे हैं एवं अन्य सैकड़ों प्रकार की अचेतन मैशीनें भी चल रही हैं (बल्कि लोगों को चला रही हैं), तब यह कौन है जो कि एक तरफ़ निश्चेष्ट हो आँख मीच कर बैठा है?

कोई कहता है कि ये 'योगी' हैं और इनके पास इनके जागने की प्रतीक्षा में श्रद्धा से बैठ जाता है।

कोई कहता है कि ये 'महात्मा' हैं और इनके चरणों में श्रद्धापूर्वक प्रणाम कर चला जाता है।

कोई कह जाता है कि इन अकर्मण्य लोगों ने ही भारतवर्ष का नाश किया है।

कोई कहता है कि यह दुनियाँ में व्यर्थ ही जीता है।

और कोई कहता है—'ये निराले आदमी हुआ करते हैं। चलो, आगे चलें!'

कोई इसे पागल समझ कर छोड़ जाता है।

इस प्रकार भिन्न २ लोग अपनी दृष्टि के अनुसार ऐसे लोगों को भिन्न भिन्न भाव से देखते हैं और इनके भिन्न २ नाम रखते हैं। पर आओ आज हम भगवद्गीता के शब्दों में सुनें कि ये लोग 'संयमी' और 'पश्यन् मुनि' हैं। ये लोग संयमी होकर वहां जागते हैं जहां कि अन्य सब लोग पड़े सो रहे हैं और पश्यन्मुनि (अर्थात् देखते हुवे चुप, चेतन होते हुवे-पूर्ण चेतन होते हुवे भी-जड़वत् बने हुवे) हो कर ये लोग वहां सोते हैं जहां कि सब दुनियाँ जागती है।

(१) या निशा सर्वभूतानां,
तस्यां जागर्ति संयमी।
(२) यस्यां जाग्रति भूतानि,
सा निशा पश्यतो मुनेः।

परन्तु आश्चर्य यह है कि हम लोगों को यह दूसरी (पिछली) बात ही दिखायी देती है कि ये सो रहे हैं जब कि हम जाग रहे हैं, किन्तु पहिली (मुख्य) बात नहीं दिखलायी देती कि जहां ये जाग रहे हैं, वहां हम प्रगाढ़ सोये पड़े हैं। इस लिये व्यर्थ ही हम इनके सोने पर विस्मित या दुःखी होते हैं और उस लोक को जानने का सौभाग्य नहीं पा सकते कि जिस उच्च लोक में जागने के लिये ये लोग इस लोक से आंखें मीचे हुवे हैं। हे संसारी पुरुषो! उस दिव्य को जानने की इच्छा यदि तुम्हें कभी पैदा होगी तो याद रखो कि उसे पाने के लिये तुम्हें भी

ठीक तरह सोना सीखना होगा और इन्हीं की तरह सोना होगा।

* * * *

यह तो हुई पहिले दर्जे के निराले आदमियों की बात। इन की लीला गहन है। हमारे लिये तो दूसरे, तीसरे दर्जे के मामूली 'निराले आदमी' ही निरालेपन में काफी हैं। लक्षण सदा यही है कि जब सब सोते हैं तो ये जागते हैं और जब सब जागते हैं तब ये सोते हैं। देखिये, जब संसारी लोग रात के बारह बजे और दो, तीन बजे तक नाटक खेल तमाशे में जागते रहते हैं, तब ये लोग 'पूर्वरात्र' में अधिक से अधिक नींद ले लेने के लिये सोये पड़े होते हैं और जब संयमी लोग ब्राह्ममुहूर्त्त में ईश्वराराधन के लिये जागे होते हैं तब ये विषयी लोग सूर्योदय के पश्चात् तक भी पड़े सो रहे हैं। यह निद्रा जागरण का एक अ.त स्थूल रूप हुआ। इसी तरह संसारी लोग बालकपन और जवानी के समय खेल और विषयभोग में मस्त सोये रहते हैं, जब कि संयमी पुरुष ज्ञानोपलब्धि और शक्ति-संचय करता हुवा इस समय संयमपूर्वक जागता है। इस प्रकार से ज़रा सूक्ष्मता में भी हर कोई देख सकता है कि क्षेत्र में ही विषयी और संयमी का निद्राजागरण उलटा है। किन्तु सब जगह ही ढूंढने से इस उलटे निद्राजागण का रहस्य यही मिलेगा कि संसारी पुरुष विश्राम के समय में (असली रात्रि में) विषयों द्वारा सताया हुवा होने के कारण अपने इन्द्रियों के घोड़ों को मार पीट कर चलाता जाता है, (इसके बिना उसे चैन नहीं आती) जिससे कि ये घोड़े कार्य का समय आने पर (असली दिन में) इतने निर्जीव और बेदम हो चुके होते हैं कि बेबस सो जाते हैं और कार्य नहीं दे सकते। एवं सदैव ही ये संसारी लोग विश्राम के समय में तो अपने आप को थकाते हैं और आगे बढ़ने के समय पड़ कर सोते हैं, जब कि इसके विपरीत संयमी लोग विश्राम के समय (रात्रि) विश्राम कर पुष्टि और शक्ति प्राप्त करते हैं और दिन आने पर उस शक्ति द्वारा कार्य करते हुवे आगे बढ़ते जाते हैं। इसी क्रम से संयमी तो दिनों दिन ऊंचे चढ़ते जाते हैं, और विषयी लोग इन्द्रियादिकों को सता कर भी उसी जगह चक्कर लगाते हुवे वहीं के वहीं रहते हैं। इस प्रकार दोनों का लोक दिनों दिन बदलता जाता है, यहाँ तक कि उसी धरती पर फिरता हुवा संयमी धीरे २ जिस उन्नत दुनियाँ में रहने लगता है, उस दुनियाँ का विषयी पुरुष स्वप्न भी नहीं ले सकता। अतः इस लोक में जागने वाला विषयी तो उस लोक के लिये सुषुप्त सो रहा होता है और बिलकुल न जानता हुवा सो रहा होता है। किन्तु उस लोक में जागने वाला संयमी जो इस लोक के लिये सो रहा होता है वह देखता हुवा-जागता हुवा (पश्यन्)-सो रहा होता है, क्योंकि वह लोक को भी जानता है। यह संयमी और विषयी के सोने

में अन्तर है। इसी लिये उस उच्च दुनियाँ के लिये अज्ञानपूर्वक सोने वाले विषयी का वह दुनियाँ नाश कर देती है, पर इस दुनियाँ के लिये ज्ञान पूर्वक सोने वाले संयमी का यह दुनियाँ कुछ नहीं बिगाड़ सकती। तो फिर 'पश्यन्' हो कर विश्राम के समय सोना और कार्य के समय संयमपूर्वक जागना यही निराले आदमी का सूक्ष्म लक्षण है। जो कि इतना संयम कर सकता है कि कार्यकाल में चाहे कितने ज़ोर का मस्त और मूर्छित कर सुला देने वाला निद्रा वेग आवे पर वह सोवे नहीं (उस वेग को रोक सके) और जो विश्राम काल में ऐसा देखता हुआ सो सके कि निद्रा में भी अपने आपको न भूल जाय (अपने से नीचे उतर कर सोवे, निद्रा का राज्य 'आत्मा' पर न होने देवे) वही निराला आदमी कहाने योग्य है। वही 'संयमी' और 'पश्यन्मुनि' है। अन्य लोग तो जो कि विषयी हो कर जागते हैं और जड़मुनि या मुग्धमुनि होकर बेहोश सोते हैं वे मामूली आदमी हैं। इन विषयी और जड़मुनि लोगों से दुनियाँ भरी पड़ी है। क्या तुम इन से निराला आदमी नहीं बनना चाहते ?

* * * *

तुम कहते हो कि आँखें खोलो और देखो, वे कहते हैं कि आँखे बन्द करो और देखो। तुम कहते हो 'आगे बढ़ो, आगे बढ़ो' वे कहते हैं 'पीछे हटो और अपने असली केन्द्र पर पहुँचो'। तुम कहते हो 'अधिकार चाहिये, अधिकार।' वे कहते हैं कि 'अर्वसिद्धाधिकार होवो।' तुम कहते हो 'गुणी बनो, गुणों का संग्रह करो।' वे गुणों के बन्धनों को छोड़ कर गुणातीत होते हैं। तुम कहते हो 'मिलो, मिलो, जितने अधिक आदमी मिलें उतना ही अच्छा है'—वे कहते हैं 'अकेले—बिलकुल अकेले—होवो, केवलता (कैवल्य) पाना ही मनुष्य का परमोद्देश्य है।'

तुम वीर्य की अधोगति (नीचे गिराने) में आनन्द समझते हो, वे वीर्य की ऊर्ध्वगति कर ऊर्ध्वरेता हो कर ब्रह्मानन्द को प्राप्त करते हैं। तुम सदा अपना ही स्वार्थ देखते हो, वे सदा दूसरों का हित देखते हैं, अथवा वे सदा आत्मा (अपने आप) को ही देखते हैं, और तुम अपने को भूल सदा दूसरों को ही देखते हो। तुम अनगिनत इच्छायें रखते हो, वे अपनी सब इच्छायें त्यागना चाहते हैं। तुम्हारी आवश्यकतायें पूरी नहीं होने में आतीं पर उनकी सब आवश्यकतायें ईश्वर पूर्ण करता है।

तुम जिधर जा रहे हो वे उधर से लौटे आ रहे हैं। तुम भोग को मीठा समझ कर उसके पीछे पड़े हो, वे इसे फीका समझ कर छोड़े बैठे हैं। तुम सुख की तरफ दौड़ते हो पर तुम्हें सुख मिलता नहीं है, वे सुख को दुतकारते हैं और सुख उन के पीछे पूंछ हिलाता हुवा दौड़ा आता है। यही हाल लक्ष्मी, यश तथा सब ऐश्वर्य का है कि ये वस्तुएं उन के पास तो बिना बुलाये आती हैं, परन्तु तुम्हारी जिघृक्षा (पकड़ने की इच्छा) से डर कर दौड़ती हैं।

तुम पश्चिम की तरफ जाते हो, वे

पूर्व की तरफ जाते हैं। तुम कहते हो कि संसार का विकास हुवा है, वे कहते हैं कि संसार का बड़ा ह्रास हुवा है। तुम कहते हो कि ये जो कुछ दिखायी देता है यही सब कुछ है, पर वे कहते है जो नहीं दिखायी देता वही सब कुछ है। तुम कहते हो कि संसार में बिना झूठ के काम नहीं चलता, वे कहते हैं कि संसार की एक २ वस्तु सत्य पर ही आश्रित है। तुम कहते हो कि खाने से आयु बढ़ती है इस लिये खूब खाओ, वे कहते हैं अति भोजन से आयु घटती है।

इस प्रकार यह निरालेपन की कहानी बड़ी लंबी है। जितना कहता जाता हूँ उतनी बढ़ती जाती है। इसे और कहां तक कहूं? बस, इतना कह देना ही काफी है कि उन की और तुम्हारी दुनियाँ ही बिलकुल भिन्न है। इस लिये स्वभावतः उनकी एक एक बात तुम से निराली है।

* * * *

ये निराले आदमी प्रायः सभी कालों में और सभी देशों में पाये जाते हैं। पर ये विशेषतया तब प्रकट होते हैं जब कि कोई क्रान्ति आने वाली होती है। क्योंकि आने वाली क्रान्ति के सत्य को ये लोग सब से पहिले अपने जीवन में लाते हैं और अतएव अन्य लोगों की दृष्टि में निराले आदमी नज़र आते हैं। अपने देश में देखें तो राम के अति प्राचीन काल में शायद ये निराले लोग 'वानर' बन कर पैदा हुवे थे और कृष्ण के काल में 'गोप' बने थे। बुद्ध के ज़माने में ये 'भिक्षुक' बन कर जन्मे थे और शंकर के साथ 'परिव्राजकाचार्य' बने थे। अभी दयानन्द के साथ ये 'आर्य' बनकर हुवे और आज गाँधी के साथ खद्दर पहिनने वाले 'सत्याग्रही' बन कर पैदा हुवे हैं।

पहिले दर्जे के निराले आदमी वे होते हैं जो कि अपनी अतुल मनःशक्ति से सूक्ष्म संसार में क्रान्ति पैदा कर देते हैं। दूसरे दर्जे के निराले आदमी इस क्रान्ति के पकड़ने वाले (ग्रहण करने वाले) होते हैं और इसे चलाते हैं तथा तीसरे दर्जे के लोग इस में नाना प्रकार से सहायता देते हैं।

निराले आदमी की पहिचान क्रान्ति के प्रारंभ में होती है। क्रान्ति जब हो चुकती है तब तो कुछ भी निरालापन नहीं रहता—नये प्रवाह में सभी बहने लगते हैं। तब तो सभी अपने को बौद्ध कहलाने में अभिमान मानते हैं या 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने लगते हैं। अब तो सब कहीं 'नमस्ते' सुनायी देती है और कुछ देर में सभी दुनियाँ गाँधी के अनुयायिओं से भर जायगी। परन्तु संसार जिन्हें 'निराला आदमी' देखता है और यह उपाधि देता है वे तो धन्य पुरुष होते हैं, वे शक्तिशाली ज़िन्दा पुरुष होते हैं जो कि क्रान्ति के प्रारंभ के कठिन कार्य को करते हैं।

हे नारायण! मुझे पैदा करना तो निराला आदमी बनाकर पैदा करना। यदि मैं पहिले दर्जे या दूसरे दर्जे का भी निराला आदमी बनने को योग्य न ठहरूँ, तो मुझे तीसरे दर्जे का ही निराला बनाना; परन्तु मुझ द्वारा 'लकीर पीटने वालों' की संख्या न बढ़ाना। नहीं

तो न पैदा करना, मेरी तो यही इच्छा है। हे निराले ! मुझे तो निरालापन प्यारा है। दुनियाँ मुझे निराला कह कर चिढ़ावे यही प्यारा है। तेरी अखण्ड एक-रसता में जो अखण्ड निरालापन है, मैं उसका उपासक हूं। मुझे अपनी इस निरालेपन की लीला में ही खर्च करना —०—

मैं कौन हूँ ?

(कविवर श्रीमाल)

मैं कैसे जानूं, यहाँ कहाँ से, क्यूं कर आया ।
मैं कौन, किस लिये, उतर यहाँ पर कैसे आया।

ये उषा-काल की किरणें हैं जो आतीं—
हिल मिल कर नभ में नाच नाच कर गातीं—
फिर धरणी तल पर मिल कर साथ उतरतीं—
फैला कर अपने पंख निबिड़ तम हरतीं—
मैं पकड़ इन्हीं का हाथ वहीं से उतरा आया
मैं कैसे जानूं, यहाँ कहाँ से, क्यूं कर आया ॥

[२]

यह जहाँ चाँदनी लोट पोट हो कर के—
हँसती फिरती है नव उमंग में भरके;
यह लहर लहर पर नाच नाच कर गाती
जग भर में अनुपम धवल सुधा बरसाती—
मैं इसी के आँचल में छिप कर हूं आया—
मैं कैसे जानूं यहाँ कहाँ से क्यूं कर आया ॥

[३]

ये फूल फबीले जहाँ फूल कर गाते—
काटों से भरी डाल पर नृत्य दिखाते—
पर भर उमंग में भूल सभी दुख जाते—
गाते गाते उपदेश सुना इक जाते ।
मैं भर कर इन की इस उमंग में उमड़ा आया
मैं कैसे जानूं यहाँ कहाँ से क्यूं कर आया ॥

[४]

यह साँझ जहाँ पर ओढ़ सुनहरी आँचल–
है जाती लेने विदा सूर्य से अन्तिम -
यह विरह व्यथा से अश्रुधार बरसाती–
जो बन कर ओस धरातल को सरसाती।
मैं बन कर इक बूंद इसी में मिल कर आया
मैं कैसे जानूं यहां कहां से क्यूं कर आया॥

[५]

ये जहां गरजते मेघ उमड़ कर आते–
चँचल बिजली की क्रीड़ायें सिखलाते–
धाराओं में भर धरणी-तल पर आते
ये इन्द्र धनुष की शोभा हैं दिखलाते–
मैं बिजली में से चमक निकल कर ही हूं आया॥
या इन्द्र-धनुष पर बैठ यहाँ पर उतरा आया।

[६]

यह उमड़ उमड़ कर नदी जहाँ से आती
लहरों पर आकर नाच नाच है गाती–
अपनी अद्भुत क्रीड़ायें है दिखलाती–
जीवन भर हँसते रहना है सिखलाती।
मैं इसकी इसी हँसी में भरा उछलता आया।
मैं कैसे जानूं यहां कहां से क्यूं कर आया॥

[७]

यह जहाँ निशा का काला परदा है गिरता–
उसके पीछे ही चाँद उछलता फिरता,–
"है मृत्यु निशा के पीछे जीवन", यह बतलाता
यह दृश्य दिखा कर थके दिलों को है सरसाता॥
यह जीवन मृत्यु विभेद समझ में मेरे आया
मैं कैसे जानूं यहां कहां से क्यूं कर आया॥

बौद्ध धर्म का विदेशों में विस्तार

[४]

६. मोद्गलिपुत्र तिष्य के प्रचारक मण्डलों की सफलता

(प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालंकार)

बौद्ध धर्म की तृतीय महासभा की समाप्ति पर आचार्य मोद्गलिपुत्र तिष्य ने जो विविध प्रचारक-मण्डल विदेशों में बौद्ध धर्म का विस्तार करने के लिये भेजे, उन में से कुमार महेन्द्र ने लंका में किस प्रकार बौद्ध धर्म का प्रचार किया, यह हम पहले देख चुके हैं। अन्य मण्डलों के सम्बन्ध में विशेष रूप से कुछ भी विवरण बौद्ध साहित्य में उपलब्ध नहीं होता। केवल महावंश में संक्षेप के साथ इन के कार्य की तरफ निर्देश किया गया है। यह वर्णन अस्पष्ट और विचित्र बातों से भरा हुवा है। ऐसा मालूम पड़ता है कि जिस समय महावंश लिखा गया, उस समय इन मण्डलों के कार्य का कोई सम्बद्ध विवरण विद्यमान न था, केवल उनकी अपूर्व व गौरव मय सफलता की अतीत स्मृति ही अवशिष्ट थी। यह होते हुवे भी महावंश का विवरण मनोरंजक और पढ़ने योग्य है।[1]

काश्मीर और गान्धार में प्रचार करने के लिये थेर मज्झन्तिक गये। उस समय इन देशों पर 'आरवाल' नामक एक नाग राजा राज्य कर रहा था। इस को अलौकिक शक्तियां प्राप्त थीं। अपने प्रभाव से यह एक महान् जल प्रवाह द्वारा सम्पूर्ण काश्मीर और गान्धार की फसलों को नष्ट कर रहा था। "थेर मज्झन्तिक आकाश मार्ग से उड़ कर आरवाल के प्रभाव से जलप्लावित हुवे स्थान पर जा पहुंचा। वहां पहुंच कर वह जल के ऊपर बड़े गम्भीर ध्यान में मग्न हो कर इधर उधर फिरने लगा। जब नागों ने उसे देखा, तब उन्हें बड़ा क्रोध आया। उन्होंने सब समाचार नाग राजा तक पहुंचा दिया। क्रोध से अभिभूत नाग राजा ने विविध उपायों से थेर मज्झन्तिक को भयभीत करने का प्रयत्न किया। बड़ी जोर से हवा चलने लगी, बादल मूसलाधार वर्षा करने लगे।

१. यह विवरण महावंश के द्वितीय परिच्छेद में विद्यमान है। महावंश के अंग्रेजी अनुवाद के लिये George Turnour और L. C. Wijesinha Mudaliyar द्वारा अनूदित महावंश देखिए। यह अनुवाद—विशेषतः Geerge Turnour द्वारा अनूदित पूर्वार्ध, मूल महावंश का भावानुवाद प्रतीत होता है। अतः असली अभिप्राय के लिये मूल का अवलोकन करना आवश्यक है। हमने मूल पाली महावंश को सम्मुख रख कर यह हिन्दी अनुवाद किया है। यद्यपि यह भी मूल का अक्षरानुवादन न हो कर भाषानुवाद है, तथापि अंग्रेजी अनुवाद से इस में अनेक भिन्नतायें हैं।

बिजली कड़कने लगी। मेघ गरजने लगे। वृक्ष और पर्वत टुकड़े टुकड़े होकर गिरने लगे।

"नागों ने विविध भयङ्कर रूपों को धारण कर थेर मज्झन्तिक को घेर लिया। उन्होंने उसे डिगाने का अनेक भांति प्रयत्न किया। स्वयं नाग राजा ने विविध प्रकार से उसे कष्ट दिये। परन्तु थेर ने अपनी अलौकिक शक्तियों से इन सब का मुकाबला किया और नागों के सब प्रयत्न को व्यर्थ कर दिया। अन्त में थेर मज्झन्तिक ने अपने उत्कृष्ट सामर्थ्य का प्रदर्शन कर नाग राजा को सम्बोधन कर इस प्रकार कहा 'हे नाग राज! यदि सम्पूर्ण (मनुष्य) लोक देवों को भी अपने साथ लेकर मुझे नष्ट करना चाहे, तब भी वह मेरा कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हे महानाग! यदि तू ससमुद्र और सपर्वत इस सारी पृथिवी को मेरे ऊपर फेंक दे, तब भी तू मुझ में किसी प्रकार के भय का सञ्चार नहीं कर सकता। हे उरगाधिप! अपनी इस विनाश की प्रक्रिया को बन्द कर दो।'[२]

"यह सुन कर नागों का राजा बहुत प्रभावित हुआ। उस में थेर मज्झन्तिक के प्रति प्रगाढ़ निष्ठा उत्पन्न हुई। तब थेर ने उसे धर्मोपदेश किया। धर्म का उपदेश सुन कर नाग-राजा ने बौद्ध धर्म को स्वीकृत कर लिया। इसी प्रकार अन्य ८४ हज़ार नागों ने थेर मज्झन्तिक के धर्म की दीक्षा ग्रहण की।

"हिमवन्त देश में भी बहुत से गन्धर्व, यक्ष और कुम्भण्डकों ने बौद्ध धर्म को स्वीकृत किया। एक यक्ष ने जिस का नाम पञ्चक था, अपनी पत्नी हारीत के साथ धर्म के प्रथम फल की प्राप्ति की और अपने ५८० पुत्रों को इस प्रकार उपदेश किया 'जैसे अब तक तुम क्रोध करते आये हो, वैसे अब भविष्य में क्रोध मत करो। क्योंकि सब प्राणी सुख की कामना करने वाले हैं, अतः अब कभी किसी का घात न करो। जीव मात्र का कल्याण करो। सब मनुष्य सुख के साथ रहें।'[३]

---

२. "सदेव कोपि चे लोको आगन्त्वा तासयेय्य मं
न मे पटिबलो अस्स जनेतुं भयभेरवं।
सचे पित्वं महिं सब्बं ससमुद्दं सपब्बतं
उक्खिपित्वा महानाग! खिपेय्यासि ममोपरि।
नेव मे सक्कुणेय्यासि जनेतुं भयभेरवं
अञ्ञदत्थु तवेवस्स विघातो उरगाधिप!"
महावंश १२, १९-१८

३. "मा' दानि कोधं जनयित्थ इतो उद्धं यथा पुरे
सस्स घातञ्च मा कत्थ सुख कामानि पाणिनो।
करोथ मेत्तं सत्तेसु वसन्तु मनुजा सुखं।" महावंश १२, २४-२३

पञ्चक से यह उपदेश पाकर उन्होंने इसी के अनुसार आचरण किया।

"तदनन्तर, नाग-राजा ने थेर मज्झन्तिक को रत्न जड़ित आसन पर बिठलाया और स्वयं समीप खड़ा हो कर उस पर पंखा झलने लगा। उस दिन काश्मीर और गन्धार के निवासी नाग-राजा को नानाविध उपहार भेंट करने के लिये आये हुवे थे। जब उन्होंने थेर की अलौकिक शक्ति और महान् प्रभाव को सुना, तब वे उसके समीप आये और अभिवादन करके खड़े हो गये।

"थेर ने उन्हें 'आसविसोपम धर्म' का उपदेश किया। इस पर ८० हज़ार मनुष्यों ने बौद्धधर्म को स्वीकार किया। और एक लाख मनुष्यों ने थेर द्वारा 'प्रव्रज्या' ग्रहण की। उस दिन से लेकर आज तक काश्मीर और गान्धार के मनुष्य बौद्धधर्म की तीनों वस्तुओं (बुद्ध, संघ और धम्म) में परिपूर्ण भक्ति रखते हैं और (भिक्षुओं के) पीतवस्त्रों का धारण करते हैं। ४

थेर महादेव बौद्धधर्म का प्रचार करने के लिये 'महिस मण्डल' प्रदेश में गया। ऐतिहासिक स्मिथ के अनुसार महिसमण्डल माइसूर प्रदेश का नाम है।[५] माइसूर में जा कर महादेव ने जनता के बीच में 'देवदूत सुत्तन्त' का उपदेश किया। इस का परिणाम यह हुवा कि ४० हज़ार मनुष्यों ने बौद्ध धर्म को स्वीकृत किया और ४० हजार मनुष्यों ने 'प्रव्रज्या' लेकर भिक्षुओं के पीतवस्त्र धारण किये।

"इसी प्रकार आचार्य रक्खित वनवासी[६] देश को आकाशमार्ग से उड़ कर गया। वहां उसने जनता के मध्य में 'अनमतग्ग' का प्रचार किया। ६० हजार मनुष्य बौद्ध धर्म के अनुयायी हो गये। ३७ हज़ार मनुष्यों ने भिक्षु बनना भी स्वीकृत किया। इस आचार्य ने वनवासी देश में ५०० विहारों का भी निर्माण किया और उस प्रदेश में बौद्धधर्म की अच्छी प्रकार से स्थापना कर दी।

"थेर योनक धम्म रक्खित अपरान्तक[७] देश में गया। वहां जाकर उस ने 'अग्गिक्खन्धोपम सुत्त' का उपदेश किया। यह आचार्य धर्म और अधर्म को खूब अच्छी तरह समझता था। इसका उपदेश सुनने के लिये ३७ सहस्र मनुष्य एकत्रित हुवे। इन में से एक

---

४. असीतिया सहस्सानं धम्माभिसमयो अहु
सतसहस्सपुरिसा पब्बजुं थेरसन्तिके।
ततोऽप्पभुतिकस्मीरगन्धारा ते इदानिपि
आसुं कासावपज्जोता वत्थुत्तय परायणा ॥ महावंश १२, २७-२८ ॥

5. V. A. Smith-Asoka P. 44

६. वनवासी देश = उत्तरीय कनारा

७. अपरान्तक देश = बौम्बे का उत्तरीय तट

हजार पुरुष और इस से भी अधिक स्त्रियां, जो कि विशुद्ध क्षत्रिय जाति की थीं, भिक्षुसंघ में प्रविष्ट होने के लिये तैयार हो गई।

"थेर महाधम्मरक्खित महाराष्ट्र देश में प्रचार के लिये गया। वहां उस ने 'महानारदकस्सपक्ष जातक' का उपदेश किया। ८४ हजार मनुष्यों ने सत्य बौद्ध मार्ग का अनुसरण किया। और १३ हजार मनुष्य प्रव्रजित हुवे।

"आचार्य महारक्खित 'योन'[८] देश में गया। वहां उसने 'कालकाराम सुत्त' का उपदेश किया। एक लाख सत्तर हजार प्राणियों ने बुद्ध मार्ग के फल को प्राप्त किया और दस हजार मनुष्य भिक्षु बने।

"आचार्य मज्झिम अन्य चार थेरों के साथ[९] हिमवन्त देश में गया। वहां जाकर इन प्रचारकों ने धर्मचक्र का प्रवर्तन किया। इस प्रदेश में ८० करोड़ प्राणियों ने बौद्ध मार्ग के फल को प्राप्त किया। इन पाँच थेरों ने पृथक् २ हिमवन्त देश के पांच राष्ट्रों में प्रचार किया। परिणाम यह हुवा कि प्रत्येक राष्ट्र में एक २ लाख मनुष्यों ने भिक्षु बन कर बौद्धसंघ में प्रविष्ट होना स्वीकृत किया।

"आचार्य उत्तर के साथ थेर सोण सुवर्णभूमि[१०] में गया। उस समय सुवर्णभूमि के राजगृह में यह अवस्था थी कि ज्यों ही कोई कुमार उत्पन्न होता था, उसी क्षण एक राक्षसी आ कर उसे खा जाती थी। जिस समय ये थेर सुवर्णभूमि में पहुंचे, उसी समय राजगृह में एक बालक उत्पन्न हुवा। लोगों ने समझा कि ये थेर राक्षसों के सहायक हैं, अतः वे उन्हें घेर कर मारने के लिये तैयार हो गये। थेरों ने उन के अभिप्राय को समझ लिया और इस प्रकार से कहा—'हम तो शील से युक्त श्रवण हैं, राक्षसी के सहायक नहीं हैं।'[११] उसी समय राक्षसी अपने सम्पूर्ण साथियों के साथ समुद्र से निकली। इस पर सब आदमी भयभीत होकर हाहाकार करने लगे। परन्तु थेरों ने अपने अलौकिक प्रभाव द्वारा बहुत से राक्षसों को प्रकट कर राजकुमार का भक्षण करने वाले राक्षसों को घेर लिया। नये अगणित राक्षसों को देख कर ये राक्षस भाग खड़े हुवे। इस

---

८. योनदेश– भारत की पश्चिमोत्तर सीमा के अनन्तर के देशों को योनदेश समझा जाता था, परन्तु ध्यान रखना चाहिये कि सम्राट् अशोक के समय भारत की पश्चिमोत्तर सीमा वर्तमान ब्रिटिश भारत की पश्चिमोत्तर सीमा से बहुत अधिक परवर्ती थी।

९. हिमवन्त में प्रचार करने वाले आचार्य मज्झिम के इन साथियों का नाम महावंश में नहीं लिखा। परन्तु दीपवंश में इन का नाम इस श्लोक में लिखा है—

कस्सपगोत्तो च यो थेरो मज्झिमो दुरभिसरो
सहदेवो मूलकदेवो हिमवन्ते यक्खगणं पसादयुं।

दीपवंश ८, १०

१०. सुवर्णभूमि = पेगू और मौलमीन

११. 'किमेतन्ति' च पुच्छित्वा थेरा ते एवमाहु ते
"समणा वयं सीलवन्ता न रक्खसी सहायका।" महावंश १२. ४७–४८

प्रकार सर्वत्र अभय की स्थापना कर इन थेरों ने एकत्रित लोगों को 'ब्रह्म-जाल सुत्त' का उपदेश किया। बहुत से लोगों ने बौद्धधर्म को स्वीकृत कर लिया। विशेषतः ६० सहस्र मनुष्य तो धर्म से अच्छी प्रकार परिचित व आविष्ट हो गये। १ हजार ५ सौ पुरुषों और इतनी ही स्त्रियों ने भिक्षु बन कर सङ्घ में प्रवेश किया।

"इस समय के बाद सुवर्ण भूमि के राजवंश में जो भी कुमार उत्पन्न हुवे. वे (थेर सोण और उत्तर के नाम से) सोणुत्तर कहलाये।"

इस तरह विविध प्रचारक मण्डलों के विदेशों में बौद्ध धर्म के विस्तार का उल्लेख कर महावंश लिखता है कि—

महाद्‌यस्सापि जिनस्स कड्ढनं
विहायपत्तं अमतं सुखम्पि ते
करिंसु लोकस्स हितं तहिं तहिं
भवेय्य को लोकहिते पमादवा॥[१२]

निस्सन्देह, इन सिद्ध थेरों ने अपने अमृत से भी बढ़ कर आनन्द सुख का परित्याग कर सुदूरवर्त्ती देशों में भटक कर, सब कष्टों को सह कर संसार का हित साधन किया था। निस्सन्देह ये धन्य हैं।

महावंश का यह विवरण कहां तक मान्य है, यह निश्चय कर सकना बहुत कठिन है। आकाश मार्ग से उड़ कर सुदूरवर्त्ती प्रदेशों में जाना, अपने प्रभाव से जलाशयों को सुका देना आदि चामत्कारिक बातें पूर्णांश में तथ्य नहीं समझी जा सकतीं। एक एक प्रदेश में थोड़े से प्रयत्न से लाखों व्यक्तियों का बौद्ध हो जाना भी सरल नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि जिस समय महावंश और दीपवंश लिखे गये, उस समय बौद्धधर्म के विस्तार का निश्चत इतिहास विद्यमान न था, केवल अतीत स्मृति के रूप में कुछ बातें लोगों को मालूम थीं। उन्हीं को इन लंका के इतिहासों में उल्लिखित कर दिया गया है। यदि ये पूर्णतः सत्य न भी हों, तब भी ये उस लहर को अच्छी प्रकार प्रदर्शित कर देते हैं, जो कि सम्राट् अशोक के शासन काल में देश विदेश को बौद्ध धर्म से आप्लावित कर रही थी।

महावंश और दीपवंश के सिवाय अन्यत्र बौद्ध साहित्य में इन प्रचारक मण्डलों के निर्माण और उन के कार्यों का उल्लेख उपलब्ध नहीं होता। परन्तु काश्मीर में आचार्य माज्झन्तिक के प्रचार का वृत्तान्त तिब्बती तथा चीनी बौद्ध ग्रन्थों में भी विद्यमान है। तिब्बती और चीनी साहित्य में उत्तरीय बौद्धधर्म के ही इतिवृत उल्लिखित हैं। अतः मोद्गलिपुत्र तिष्य के प्रचारक मण्डलों में से काश्मीर के प्रचारकों का वर्णन करना उन के लिये स्वाभाविक और उचित है। तिब्बती ग्रन्थ दुल्व के अनुसार महात्मा बुद्ध के

१२. महावंश १२, ५५

निर्वाण के १०० वर्ष पश्चात्[13] आचार्य मध्यान्तिक (मज्झन्तिक) काश्मीर में बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिये गया। वहां पर नागों का अधिकार था .... आगे लगभग वही कथा है, जो महावंश में उल्लिखित है। [14]

इसी प्रकार प्रसिद्ध चीनी पर्य्यटक ह्यूनसांग ने अपने यात्रा—वृत्तान्त में काश्मीर का वर्णन करते हुए वहां पर बौद्ध धर्म के विस्तार का भी इतिहास लिखा है। वह लिखता है—"एक बार पुराणे समय में जब महात्मा बुद्ध उद्यान देश में एक दानव को पराभूत कर वापिस आ रहे थे, तब आकाश मार्ग में आते हुए जब वे ठीक काश्मीर के ऊपर पहुंचे तब उन्हों ने आनन्द को सम्बोधन कर के कहा—'मेरे निर्वाण के बाद अर्हत मध्यान्तिक इस देश में एक राज्य स्थापित करेगा, यहां के लोगों को सभ्य बनायगा और अपने प्रयत्न से बुद्ध के शासन का विस्तार करेगा।' [15] इस के आगे ह्यूनसाँग ने अर्हत मध्यान्तिक द्वारा काश्मीर में बौद्ध धर्म के विस्तार का वृत्तान्त लिखा है। यह वृत्तान्त भी महावंश के वर्णन से बहुत कुछ मिलता है।

इस तरह काश्मीर में बौद्ध धर्म के विस्तार के सम्बन्ध में सम्पूर्ण बौद्ध साहित्य एक मत है। लङ्का, तिब्बत और चीन में एक ही इतिवृत्त का उपलब्ध होना इसकी सत्यता को सूचित करता है। हम इस से यह भी सुगमता के साथ समझ सकते हैं, कि महावंश के अन्य प्रचारक मण्डलों के सम्बन्ध में प्राप्त विवरण भी सत्य घटनाओं पर आश्रित हैं। [15]

१३. उत्तरीय बौद्ध साहित्य में प्रायः अशोक के समय को भी बुद्ध के निर्वाण से १०० साल बाद लिखा जाता है। यद्यपि ऐसा लिखना उन की भूल है, तथापि मज्झन्तिक को भी निर्वाण के १०० साल बाद लिखना यह सूचित करता है कि उन के अनुसार मज्झान्तिक अशोक के समकालीन है।

14. Rockhill-Life of the Buddha 167-170

15. Beal-Buddhist Records of the Western world. I. 144-150

सम्पादकीय

हिन्दू-मुस्लिम समस्या

हिन्दू मुस्लिम फसादों की नाशकारी ज्वालाएं, जो अब तक उत्तर भारत में ही सियमित समझी जाती थीं, आज सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो चुकी हैं। इतना ही नहीं, अब तक यह समझा जाता था कि इन सम्प्रदायिक झगड़ों का वास्तविक कारण दोनों सम्प्रदायों के शरारतपसन्द गुन्डों के कालिमा पूर्ण कारनामे ही हैं; परन्तु आज यह सिद्ध हो गया है ये सम्प्रदायिक प्रतिस्पर्धा तथा घृणा के भाव दोनों जातियों के अग्रगण्य विचार-

शील नेताओं के मस्तिष्कों में भी बड़ी गहरी जड़ पकड़े हुए हैं। हिन्दू मुस्लिम समस्या आज इस अभागे देश की सब से बड़ी समस्या है; इस गुलाम देश की आर्थिक, सामाजिक या राजनीतिक उन्नति की समस्याएं इस भयंकर समस्या की ओट में और भी अधिक उलझती जाती हैं।

मुसलमान लोग विजेता बन कर भारत में आए थे। उनकी छत्र छाया में सम्पूर्ण भारतवर्ष लगातार कई सदियों तक शासित रह चुका है। परन्तु क्या यह मुसलमानी हुकूमत भारतवर्ष पर एक दूसरे देश की हकूमत थी? हमारा दृढ़ विश्वास है कि मुगल शासकों के पूर्वजों के विदेशी होते हुए भी उन का शासन भारतवर्ष में विदेशी शासन नहीं था। यह एकात्मक मुगल राज सत्ता अवश्य थी, परन्तु यह टर्की या अफगानिस्तान का शासन नहीं था। इस एकात्मक मुगल राज सत्ता ने भी कभी २ हिन्दुओं पर अत्याचार किए अवश्य, परन्तु ये अत्याचार राजनीतिक न होकर धार्मिक ही थे। इस का सब से बड़ा प्रमाण यह है कि जो हिन्दू स्वधर्म छोड़ कर मुसलमान बन गए, उन्हें शासकों के समान ही अधिकार प्राप्त हो गए। ये धार्मिक अत्याचार भी क्रमशः उस समय आकर असम्भव बन गए जब कि दक्षिण के वीर मराठे मुसलमान शासकों की प्रतिस्पर्धा में आकर क्रमशः उन से भी अधिक प्रबल बन गए। इस प्रकार क्रमशः अंग्रेज़ी राज्य के पूर्व तक स्वयं ही स्वभाविक रीति से यह हिन्दू मुस्लिम समस्या हल हो गई थी। पूर्वजों के विदेशी होते हुए भी भारत में रहने वाले मुसलमानों का विदेशों से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। हिन्दू मुसलमान दोनों ही भिन्न भिन्न प्रान्तों में शासक थे इस लिये उन दिनों धार्मिक अत्याचार भी स्वयं ही बन्द होगए।

हिन्दू मुस्लिम समस्या की इस संक्षिप्त ऐतिहासिक विवेचना द्वारा हम इतना ही सिद्ध करना चाहते हैं कि वर्त्तमान हिन्दू मुस्लिम समस्या का मुगल काल के इतिहास से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। इस समस्या का जन्म हाल ही में, इन नयी परिस्थितियों में, हुआ है।

मुसलमानों के आगमन से पूर्व भी भारतवर्ष में अनेकों अन्य जातियों के लोग बलपूर्वक आकर भारत में बस गए, परन्तु उन के द्वारा इस देश में कोई विकट समस्या नहीं उठ खड़ी हुई। वे जातियाँ शीघ्र ही भारतीय सभ्यता से इतनी प्रभावित होगईं कि वे अपना प्राचीन अस्तित्व मिटाने के लिये स्वयं तैयार होगईं, उदार हिन्दू धर्म में वे सब एक अलग श्रेणी के रूप में घुल मिल गईं।

परन्तु मुसलमान लोग, जिन्हें कि सभ्य बने हुए बहुत समय नहीं हुआ था, एक नई बिजली के वेग से कांपती हुई सभ्यता लेकर भारत में प्रविष्ट हुए। उन्होंने भारत के प्रचलित रीति रिवाज़ों के प्रति उग्र घृणा प्रदर्शित कर के यहां नये धर्म की स्थापना करनी चाही। केवल राज्य शक्ति के आधार पर ही इस प्राचीन-

तम सभ्य देश में वे अपनी प्रारम्भिक (primitive) सभ्यता फैलाने में कुछ अंश तक सफल भी हो गये। परन्तु पीछे से हिन्दुओं में राजनीतिक जीवन उत्पन्न हो जाने पर मुस्लिम सभ्यता का यह प्रचार सहसा रुक गया। दोनों सम्प्रदाय एक दूसरे से कन्धा मिला कर खड़े होने के लिए यत्न करने लगे।

यह प्रक्रिया अभी सम्पूर्ण नहीं हुई थी कि साढ़े तीन हज़ार मील की दूरी से आकर एक अन्य जाति ने हिन्दू मुसल्मान दोनों को अपने आधीन कर लिया। दोनों सम्प्रदाय एक समता पर आकर एक तीसरी जाति के नीचे शासित होने लगे।

आज इस नवीन युग में भारतवर्ष में भी जातीय जागृति तथा आत्मज्ञान के शुभ लक्षण दिखाई देने लगे हैं। इस का सब से पहला प्रभाव यह हुवा है कि देश में रहने वाले छोटे से छोटे अल्पमत भी आज संगठित होकर अपनी एकान्त उन्नति के लिए यत्न कर रहे हैं। परिणाम यह हुवा है कि हिन्दू मुस्लिम समस्या की वह प्रक्रिया जो कि अंग्रेजी राज्य के प्रारम्भ होने पर बीच में ही रुक गई थी आज नई परिस्थितियों में पुनः प्रारम्भ हो गई है। आज दोनों जातियाँ पराधीन होने के कारण एक समता पर हैं, परन्तु स्वतन्त्र होने पर बहुसंख्याक जाति अधिक प्रबल हो उठेगी इस आशंका से अल्प मत इस विदेशी शासन का साथ देने में ही अपनी भलाई समझ रहा है।

परन्तु यह समस्या इतनी व्यापक और भयंकर होते हुए भी बहुत गहरी नहीं है। मुसलमानों में भी ७० प्रतिशत के लगभग लोग ऐसे हैं जिन के पूर्वज टर्की या अफगानिस्तान से नहीं आए, ये लोग पिछली तीन सदियों में ही मुसलमान बने हैं। और जिन थोड़े से मुसलमानों के पूर्वज विदेशों से भारत में आए थे, उन के लिए भी अब अपने प्राचीन पितृ-देशों में कोई गुञ्जाइश नहीं रही है, वे लोग इच्छा करने से भी अब अरब या टर्की से किसी प्रकार की जातीय सहायता प्राप्त नहीं कर सकते। वे चाहे समझें या न समझें, मानें चाहे न मानें, परन्तु अब यही पुण्य भूमि भारत देश ही उनकी मातृभूमि है। इन अल्प संख्याक मुसलमानों के लिए भारत और भारतीय सभ्यता को अपनाने के सिवाय और कोई चारा ही नहीं है। इसी प्रकार हिन्दू लोगों के पास भी अब मुसल्मानों से असहयोग और घृणा करने का कोई कारण नहीं बचा है, मुसल्मान अब उन से अधिक शक्तिशाली नहीं रहे, रात दिन के सुख दुख में वे उनके हिस्सेदार बन चुके हैं।

एक बात और भी है जिस विशाल हिन्दु धर्म ने संसार की अनेक अन्य विदेशी सभ्यताओं को अपना लिया है; जिस धर्म में जैन और वेदान्त सम्प्रदायों के एक दूसरे से सर्वथा प्रतिकूल मतानुयायी भी समान भाव से रह सकते हैं,-उस में क्या भारतीय मुसल्मानों तथा उन के धर्म के लिये स्थान नहीं है?

हम चाहते हैं कि धर्म के वास्तविक विशाल अभिप्राय को समझ कर विचार-

शील हिन्दू और मुसलमान दोनों शीघ्र ही संकुचित साम्प्रदायिक असहिष्णुता के विरोध में जिहाद शुरु कर दें। ये तुच्छ साम्प्रदायिक फिसाद हमारी निर्बलता तथा अविवेक शीलता के सब से बड़े उदाहरण हैं।

अब्दुल करीम का आत्म-समर्पण

बरसों तक संसार की दो बड़ी बड़ी शक्तियों को, बिना किसी प्रकार के सैन्य बल की सहायता के, सिर्फ़ अपने प्रबल स्वातन्त्र्य प्रेम के आधार पर ही खूब हैरान कर के अन्त में वीर-वर अब्दुल करीम ने शत्रुओं के हाथ में आत्म समर्पण कर दिया है। संसार के इतिहास में पशुबल के मुकाबले में सत्य के पराजय का यह दृष्टान्त प्रथम नहीं है। परन्तु यह सत्य की पराजय क्षणिक है, स्थायी नहीं। केवल मात्र निस्सहाय रिफ़ लोगों की सहायता से ही वीर शिरोमणि अब्दुल करीम ने जो असाधारण कार्य कर दिखलाया है वह आगामी रिफ़ सन्तति के स्वतन्त्रता आन्दोलन में एक बड़े प्रकाश-स्तम्भ का काम देगा। रिफ़ लोग अपने देश के अदम्य साहसी राणा प्रताप-अब्दुल करीम-की वीरता के गीत गा २ कर स्वतन्त्रता के लिये पागल हो उठेंगे, तब पशु बल नम्रता पूर्वक सत्य के चरणों की शरण लेगा। अब्दुल करीम के आत्म समर्पण का समाचार जान कर हमारे सन्मुख सहसा राणा प्रताप की उस दिन की वह शोकावनत मूर्ति घूम गई जिस दिन कि उन्हों ने अकबर को आत्म समर्पण कर देने का अशुभ निश्चय किया था। वीर अब्दुल करीम! तुम असफल रहे हो; परन्तु निश्चय रक्खो कि तुम्हारी असफलता से ही एक दिन सफलता का जन्म होगा।

अलंकार का नवीन वर्ष

इस मास अलंकार अपने जीवन के तृतीय वर्ष में प्रवेश कर रहा है। इन दो वर्षों में अलंकार जिस प्रकार मातृभाषा हिन्दी की साहित्यिक सेवा करता रहा है वह पाठकों से अविदित नहीं है। अलंकार के ३२ पृष्ठों में जितना विचार पूर्ण, मौलिक और पाठ्य मसाला भरा रहता है उस की सभी प्रतिष्ठित पत्रों तथा विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है।

आज नए वर्ष में प्रवेश करते हुए हमें अपने उन सहृदय पाठकों तथा सहायकों का धन्यवाद करना है जिन का सहयोग पाकर ही हम अलंकार को इस प्रकार सफल बना सके हैं। अलंकार एक अनुपम जातीय विश्वविद्यालय से निकलने वाला पत्र है, हम चाहते हैं, कि इस के द्वारा हम और भी अधिक वेग से ठोस साहित्यिक सेवा में भाग ले सकें। इस वर्ष हम अलंकार में कुछ नए सुधार कर के इस की कलेवर वृद्धि भी करना चाहते हैं। परन्तु हमारी यह सब आकांक्षायें अपने सुहृदय पाठकों के सहयोग पर ही निर्भर हैं। इस प्रसंग में हमें यह बताते हुए हर्ष है होता है कि इस वर्ष पं० सुधन्वा जी विद्यालंकार, राजवैद्य अलवर, ने अलंकार को एक बड़ी राशि सहायता स्वरूप भेंट की है। इस के लिये हम उन के आभारी हैं। क्या हम अपने अन्य कृपालुओं से भी और अधिक सहयोग की आशा रक्खें?

गुरुकुल-समाचार

ऋतु-ग्रीष्म ऋतु अपने पूर्ण यौवन पर है। दोपहर को दिन काटना मुश्किल हो जाता है। उस पर गर्म २ लू क्रुद्ध नागिन के फुंकारों की तरह सांय २ करती हुई चलती है। १ बजे के बाद कोई बाहर निकलने का नाम नहीं लेता। सफ़ेद २ फ़र्श पर दो घड़े पानी उंडेल कर कपड़े उतार कर लोट-पोट होने में बड़ा मज़ा आता है। ऐसी गर्मी में भी रात्री के पिछले पहर में कुछ २ सर्दी पड़ती है और कभी २ तो कम्बल या रज़ाई तक लेनी पड़ती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य सर्वथा उत्तम है। रोगी गृह खाली पड़ा है।

गंगा-कनखल से गुरुकुल आने के रास्ते में गंगा की दो बड़ी २ धाराएँ पड़ती हैं। पहला पुल तो अभी बचा हुआ है परन्तु दूसरा टूट चुका है, उस की जगह किश्ती चलती है। गंगा दिनों दिन बढ़ रही है। जिस दिन गर्मी अधिक पड़ती है उस से अगले दिन बर्फ़ का ढला हुआ पानी अच्छी मात्रा में आता है। सायंकाल ब्रह्मचारी तैरते हैं। अभी गंगा इतनी नहीं बढ़ी कि तमेड़ों को चलाना पड़े।

रजत-जयन्ती-रजत-जयन्ती पर विचार करने के लिए कालिज-कौन्सिल की एक बैठक हुई, जिस में इस कार्य को करने के लिए 'गुरुकुल-रजत-जयन्ती-समिति' का निर्माण किया गया। इस समिति के प्रधान गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पं० विश्वम्भरनाथ जी और जेनरल सेक्रेटरी प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार निश्चित हुए। इस समिति के अधीन अन्य पाँच उपसमितियें बनाई गईं—१. प्रकाशन विभाग समिति, २. धन संग्रह समिति, ३. प्रबन्ध समिति, ४. स्वास्थ्य-विभाग समिति, ५. उत्सव समिति। प्रकाशन विभाग समिति का काम गुरुकुल-सम्बन्धी लेख लिखना तथा जयन्ती के उपलक्ष्य में अन्य पुस्तकादि प्रकाशन का कार्य करना होगा। इस समिति के सदस्य प्रो० रामदेव जी, प्रो० नन्दलाल जी, प्रो० सत्यकेतु जी, प्रो० विधुभूषण जी तथा मंत्री प्रो० सत्यव्रत जी निश्चित हुए। धन-संग्रह समिति का काम डेप्यूटेशन आदि का निश्चित करना तथा धन-संग्रह की अन्य बातों पर विचार करना होगा। इस समिति के सदस्य प्रो० रामदेव जी, प्रो० सत्यव्रत जी, प्रो० विश्वनाथ जी, प्रो० धर्मदत्त जी, डा० राधाकृष्ण जी, प्रो० नन्दलाल जी खन्ना और मन्त्री प्रो. देवराज जी सेठी निश्चित हुए। प्रबन्ध समिति का काम पण्डाल, अतिथि-सेवा, स्वयं सेवकों का संगठन तथा इसी प्रकार के अन्य प्रबन्ध सम्बन्धी कार्य करना होगा। इस समिति के सदस्य मुख्याधिष्ठाता जी, पं० महानन्द जी, पं० अमरनाथ जी सप्रू, प्रो० लालचन्द जी, प्रो० वागीश्वर जी, प्रो० सत्यकेतु जी और मन्त्री प्रो० चन्द्रमणि जी निश्चित हुए। स्वास्थ्य-विभाग समिति के सदस्य गुरुकुल के सब डाक्टर तथा वैद्यों के अतिरिक्त प्रो० देवमित्र जी, पं० महानन्द जी और मन्त्री डा० राम-

दयाल जी निश्चित हुए। उत्सवसमिति का कार्य बाहर के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को निमन्त्रित करना, उत्सव के समय-विभाग की तय्यारी करना, खेलों और सम्मेलनों की आयोजना करना आदि होगा। मुख्याधिष्ठाता जी, आचार्य जी, प्रो० सत्यव्रत जी, और प्रो० विश्वनाथ जी इस समिति के सदस्य तथा मन्त्री प्रो० सत्यकेतु जी निश्चित हुए। आशा है, ये सब समितियें अपना २ कार्य शीघ्रता से सम्पादन करने में लग जावेंगी और गुरुकुल-रजत-जयन्ती को सफलता प्राप्त होगी।

सभाएं पिछले दिनों संस्कृतोत्साहिनी सभा की तरफ़ से पं० जयदेव जी के सभापतित्व में राज कविसम्मेलन हुवा। इसी मास वाग्वर्धनी सभा की ओर से सप्तम गुरुकुलीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन बड़े समारोह से हुवा, जिस के सभापति पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार थे। इन्हीं के सभापतित्व में हिन्दी साहित्य मण्डल का प्रथम जन्मोत्सव भी मनाया गया जिस में सहभोज भी हुआ। आयुर्वेद परिषद् का जन्मोत्सव पं० शिवदत्त जी आयुर्वेदालंकार के सभापतित्व में हुआ। साहित्यपरिषद् ने बुद्ध जयन्ती और शङ्कर जयन्ती धूमधाम से मनायी। सारा मास सभाओं से भरा रहा। इस सब पार्लियामेन्ट १७-१८ श्रावण (१-२ अगस्त) को होगी जिस में प्रधान सचिव ब्र० ओम्प्रकाश जी 'शिक्षा सुधार-बिल' पेश करेंगे और विरोधी दल के नेता ब्र० गुरुदेव जी बिलका विरोध करेंगे। इस अवसर को दिलचस्प बनाने के लिये पं० मोतीलाल जी नेहरू, आदि नेताओं को भी निमन्त्रित किया गया है। आशा है पार्लियामेन्ट की यह बैठक सफल हो, सकेगी।

शिक्षापटल—१३ जून को मायापुर में शिक्षा-पटल की बैठक होगी। १५ जून को उन ब्रह्मचारियों की परीक्षाएँ होंगी, जो किसी कारण वार्षिक परीक्षा में या तो बैठ नहीं सके थे अथवा किसी एक आध विषय में अनुत्तीर्ण हुए थे।

पं० देशबन्धु अमेरिका को—गुरुकुल के सुयोग्य स्नातक पं० देशबन्धु जी विद्यालंकार हाल ही में अपने अद्भुत शारीरिक बल के कर्तव्यों को दिखाने के लिये अमेरिका को प्रस्थान कर गए हैं। आप की अचूक तीरन्दाज़ी सचमुच सब दर्शकों को आश्चर्य में डाल देती है, आप कुछ मिन्टों के लिये अपने हृदय की धड़कन तथा खून की गति को भी सर्वथा बन्द कर सकते हैं। हमें निश्चय है कि आप अमेरिका में केवल कुल का ही नहीं अपितु अपने देश का भी नाम उज्वल कर सकेंगे।

अतिथि—कलकत्ता यूनिवर्सिटी के चीनी तथा बौद्ध-धर्म के जापानी अध्यापक प्रो० कीमुरु आजकल गुरुकुल पधारे हुए हैं। आप बौद्ध धर्म पर प्रमाणिक विद्वान् समझे जाते हैं। आप के बौद्ध धर्म पर व्याख्यान हो रहे हैं। आप एक सप्ताह तक 'कुल' भूमि में विराजेंगे।

साहित्य-वाटिका

४. सुकवि संकीर्तनः—ले० आचार्य्य महावीर प्रसाद द्विवेदी। इस ग्रन्थ में कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर, माईकेल मधुसूदनदत्त, पं० प्रतापनारायण मिश्र आदि विख्यात कवियों तथा विद्वानों के लघु चरित्र लिखे गये हैं। कई कवियों की रचनाओं के नमूने भी प्रस्तुत किये गये हैं। पुस्तक अच्छी है। मूल्य कुछ अधिक है। मू० १)

५. दुर्गावती (नाटक) - ले० श्रीयुत पं० बदरीनाथ भट्ट। हिन्दी-संसार भट्ट जी के लिखे हुए चन्द्रगुप्त, वेन-चरित्र, कुरुवन दहन आदि नाटकों से सुपरिचित है। इस नये नाटक का भी आपने ही प्रणयन किया है। नाटक में दुर्गावती के वीर-चरित्र को अच्छी तरह अंकित किया है। देशभक्ति का भाव भरा हुआ है अतः यह समयोपयोगी भी है। नाटक का काव्य भाग एवं गति अच्छे हैं। भाषा ज़ोरदार तथा मुहावरे वाली है। पुस्तक में कई रंगीन चित्र भी हैं। आशा है हिन्दी-जगत् इस सुंदर नाटक को अपनायेगा। मूल्य एक रुपया।

३. रावबहादुर (प्रहसन)-अनुवाद-कर्त्ता- श्रीयुक्त लल्लीप्रसाद पाण्डेय। सुविख्यात फ्रेश्च लेखक मोलियर को कौन नहीं जानता, यह प्रहसन उन्हीं के एक प्रसहन का अनुवाद है। देश की परिस्थिति के अनुसार इस में बहुत परिवर्तन एवं काँटछाँट कर दी गई है। इस में हास्य का अच्छा मसाला भरा हुआ है। पात्रों की भाषा उन्‌ के अनुरूप रखी गई है। प्रहसन पठनीय है। मूल्य ॥।)

तीनों उपरोक्त पुस्तकें गंगा पुस्तक माला लखनऊ से मिल सकती है।

जयश्री—लेखक श्री ज्ञानचन्द्र जी शास्त्री, गुरुकुल कांगड़ी यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। इस में सिन्ध देश की तीन राजकुमारियों का करुणा-पूर्ण वृत्तान्त है। मुसल्मानों के अत्याचारों का वर्णन अच्छी तरह किया है जयश्री की देशभक्ति तथा वीरता पठनीय हैं। भाषा अच्छी है। मूल्य १।

चाँद—चाँद हिन्दी जगत् में अपना विशेष स्थान रखता है। इसके लेखों ने हिन्दी संसार में क्रान्ति उत्पन्न करदी है। हिन्दू-समाज की कुरीतियों को सुधारना इसका मुख्य उद्देश्य है। चाँद ने इस विषय में बहुत सफलता प्राप्त करली है। प्रस्तुत अंक से "सती प्रथा का रक्त रंजित इतिहास" नामक उत्तम लेखमाला प्रारम्भ हुई है। इस अंक से चाँद और अधिक सुन्दर और उपयोगी होगया है। हिन्दू मात्र को चाँद मँगा कर पढ़ना चाहिए।

मनोरमा—तृतीय वर्ष का पहला अङ्क हमारे सन्मुख उपस्थित है। इस में कई विद्वत्तापूर्ण लेखों एवं कविताओं का समावेश है। स्त्रियों के लिए भी कई उपयोगी लेख लिखे गये हैं। पत्रिका का संपादन अच्छा होता है। हम इस का सहर्ष स्वागत करते हैं। आशा है है हिन्दी प्रेमी मनोरमा को अपनाएँगे। वार्षिक मूल्य ५) । पता- मनोरमा, इलाहाबाद।

वर्ष ३, अङ्क २] मास, श्रावण [पूर्ण संख्या २६

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अलंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५ ।

"बाल-भावना"

(श्रीयुत 'शङ्कर')

पंख होते तो उड़ा जाता वहाँ,
दीखते हैं चाँद और तारे जहाँ ।
आसमां में कूदता आनन्द से,
पंखियों से मित्रता करता वहाँ ।
बादलों पर बैठ कर मैं मोद से,
सैर करता छन्द से स्वर्लोक की ।
बैठता जा पर्वतों के शृंग पर,
जा हिलाता शाखियों को औ' कभी ।
चाहता हूँ उड़ चलूं मैं व्योम में,
और ये तारे इकट्ठे मैं करूं ।
एक सुन्दर हार इन का गूंथ कर,
मातृ-चरणों में समर्पित मैं करूं ॥

"प्रकृति-वाद" और "विचार धारा"

(श्री प्रो० नन्दलाल जी खन्ना एम. ए.-एल. एल. बी.)

आज से तीस वर्ष पूर्व वैज्ञानिक अत्यन्त विश्वास पूर्वक मानते थे, और बहुत से अब भी मानते हैं, कि विचार और चेतनता का आधार दिमाग़ या Brain है। फ्रांस के विचारक Taine के शब्दों में दिमाग़ से विचार उसी प्रकार निकलता है, जैसे जिगर से पित्त निकलता है। (The brain secretes Thought as the liver secretes bile)-हर एक अंग की कुछ क्रिया (Function) होती है जैसे-आंख की दृष्टि, जिह्वा की वाणी। इसी प्रकार दिमाग़ (Brain) की क्रिया विचार है।

अध्यात्मवादी आरम्भ से ही इस विचार का विरोध करते चले आए हैं। उनका कहना है कि-विचार एक चेतन और वैय्यक्तिक चीज़ है। प्रकृति और दिमाग जड़ और अवैय्यक्तिक हैं। इसलिये दिमाग में से विचार कदाचित् नहीं निकल सकता। परमाणुओं की गति से विचार जैसी चीज़ उत्पन्न हो जाय, यह सर्वथा अचिन्तनीय है, क्योंकि इन दोनों में स्वभाव भेद है, यह इतना ही अयुक्तियुक्त है जैसे कोई कहे कि-पत्थर से जीता हुआ घोड़ा उत्पन्न हो सकता है।

परन्तु वैज्ञानिक लोग अध्यात्मवादियों की युक्तियों की उपेक्षा किया करते हैं। आजकल कई वैज्ञानिक लोगों के निरीक्षण में कुछ बातें आई हैं, जो इस परिणाम के प्रतिकूल हैं कि विचार का आधार दिमाग है। परीक्षण तो वैज्ञानिक के अपने शस्त्र हैं, इन की उपेक्षा वह किस प्रकार कर सकता है।

वैज्ञानिक कह सकता है कि विचार दिमाग़ के Grey matter से उत्पन्न होता है। जहां कहीं Grey matter नहीं होता विचार भी नहीं होता। जितनी मात्रा Grey matter की होती है, उतनी ही मात्रा विचार की भी होती है। बच्चे के दिमाग़ में Grey matter आपेक्षिक तौर पर कम होता है, और विचार भी अपरिपक्क होता है। जब वह बड़ा होकर लड़का बन जाता है, तो विचार में भी कुछ बल आ जाता है। जब वह युवावस्था को प्राप्त होता है, तो विचार और भी अधिक सूक्ष्म और बलयुक्त होता जाता है, और आयु के और आगे बढ़ने के साथ २ विचार भी प्रौढ़ होता जाता है। यदि किसी अवस्था में दिमाग़ को कोई चोट लग जावे तो विचार शक्ति में भी परिवर्तन आ जाता है। यदि किसी कारण से दिमाग में रक्त कम या अधिक मात्रा में पहुंचने लगे तो दिमाग में भी वैसा ही परिवर्तन आ जाता है। उदाहरण के लिये नशे की हालत लें तो विचार में गड़बड़ हो जाती है। यदि ज्वर आदि के कारण रक्त में विकार आ जाए तो दिमाग़ पर अशुद्ध रक्त का प्रभाव पड़ता है, और मनुष्य असङ्गत बातें करने लगता है, जिसे

अङ्गरेज़ी में Delirium कहते हैं। यदि खोपड़ी टूट जाए, और उसका एक भाग दिमाग़ पर दबाव डालने लगे, तो विचार बन्द हो जाता है, या उस में विकार आ जाता है। यदि उस टुकड़े को ऊपर उठा दिया जाए तो विचार फिर लौट आता है। यदि खोपड़ी पर ऐसी चोट लगे, जिसका प्रभाव नीचे दिमाग तक पहुंच जाए, तो बेहोशी हो जाती है, अर्थात् कुछ समय के लिये विचार बन्द हो जाता है। वृद्धावस्था में जब सब अङ्ग शिथिल होने लगते हैं, दिमाग़ भी कमज़ोर हो जाता है, स्मृति भी शिथिल पड़ जाती है। यदि दिमाग़ का कोई हिस्सा नष्ट हो जाए तो वाणी, दृष्टि या कोई अन्य शक्ति, जिसका इस भाग के साथ सम्बन्ध होता है, नष्ट हो जाती है। अतः दिमाग़ की वृद्धि और पुष्टि में विचार की उन्नति होती है और उसके क्षय में विचार की हानि होती है।

यह बात प्रसिद्ध है कि-ईथर (Ether) क्लोरोफार्म (Chloroform) आदि सूंघने से बेहोशी हो जाती है। डाक्टर लोग प्रायः क्लोरोफार्म सुंघा कर फोड़े आदि चीरा करते हैं-क्लोरोफार्म के सूंघने से शरीर बेहोश हो जाता है। बड़े २ घाव कर दिये जाते हैं मगर मरीज को कुछ खबर नहीं लगती-हृदय की गति अत्यन्त मन्द पड़ जाती है, शरीर में रक्त का संचार बहुत आहिस्ता होने लगता है। रक्त न पहुंचने से दिमाग भी निर्बल हो जाता है, दिमाग़ को शरीर की अवस्था या व्यथा की कोई ख़बर नहीं होती। परन्तु कई बार विचार धारा जारी रहती है, और उसका शरीर की अवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं होता। स्पेन के प्रसिद्ध विद्वान् Raman de ler Sagar की स्त्री को क्लोरोफार्म सुंघाया गया, तो सारे समय उस के विचार और बुद्धि में कोई विकार नहीं आया। वह बड़ी ही शान्ति से डाक्टर से बातें करती रही और वह चाकू से उस की मांस नाड़ियाँ चीरता रहा। ओपरेशन (Operation) के पीछे इसने अपने पति को बताया कि उस के विचार में (Operation) के समय विशेष आनन्द और प्रसन्नता थी। वैज्ञानिक लोगों के अनुसार तो कोई विचार होना ही नहीं चाहिये, क्योंकि रक्त का दिमाग़ में संचार बहुत ढीला पड़ गया था। यदि कोई विचार हो तो शरीर के अनुसार होना चाहिये। परन्तु शरीर को तो काटा गया था, इस लिये विचार अत्यन्त पीड़ा युक्त होना चाहिये था। विचार का आनन्दमय होना-क्या इस बात को सिद्ध नहीं करता कि—विचार, शरीर और दिमाग से स्वतंत्र रूप से कार्य कर रहा था।

वैज्ञानिक लोगों ने परीक्षणों से स्थापित किया है कि हिप्नाटिज्म (Hypnotism) की अवस्था में हृदय की गति में विकार आ जाता है, और अन्त में इतनी धीमी हो जाती है कि अति सूक्ष्म यंत्रों से भी मुश्किल से प्रतीत हो सकती है। फेंफड़ों की गति इतनी धीमी हो जाती है कि होंठों में से श्वास आता प्रतीत होता है। पट्ठों का

भी ऐसा ही हाल होता है-दिमाग में रक्त थोड़ा पहुंचने लगता है। श्वास मन्द होने के कारण रक्त में बहुत औक्सीजन (Oxygen) मिल कर इस को शुद्ध भी नहीं करती, इसलिये रक्त में मल इकट्ठा होजाता है। कार्वोनिक ऐसिड गैस भी बहुत सी होजाती है, दिमाग पर एक बेहोशी की अवस्था आ जाती है, जिस में विचार असम्भव होना चाहिये। भौतिक दृष्टि से शरीर मृतवत् होता है। परन्तु मानसिक क्षेत्र में उस में अद्भुत शक्तियाँ आ जाती हैं। उस की स्मृति अत्यन्त तेज हो जाती है और वह प्रश्न करने पर साधारण अवस्था में भूली हुई अपने बचपन की घटनायें बता सकता है। बचपन में यदि उसने कोई भाषा एक या दो वार सुनी हो, और फिर उसे सर्वथा भूल चुका हो तो इस अवस्था में इसे बोल सकता है और समझ सकता है। यदि उसको सुना कर, किसी भाषा का एक पृष्ट पढ़ दिया जाय जिसे वह समझ नहीं सकता, तो वह इसे अक्षरशः दोहरा सकता है। उस अवस्था से जागने पर उसे एक अक्षर भी याद नहीं रहता, और Hypnotism की अवस्था आने पर याद आ जाता है। एक मूर्ख मनुष्य इस अवस्था में बुद्धिमान् हो जाता है। Operator या इस अवस्था में लाने वाला मनुष्य सर्वथा Subject की इन्द्रियों को धोखा दे सकता है, सरदी में गरमी का अनुभव करा सकता है। यदि कोई दृश्य पदार्थ न हो तो उस के होने का भ्रम पैदा कर सकता है, और पदार्थ के होने पर उस के न होने का भ्रम पैदा कर सकता है। इसी प्रकार अन्य इन्द्रियों को भी धोखा दे सकता है, जैसे किसी दुर्गंध वाली वस्तु में सुगंध को अनुभव करा सकता है। यदि पागलखाने के किसी पागल को हिप्नाटिक अवस्था में लाया जाय तो वह बुद्धिमान हो जाता है, परन्तु इस अवस्था के जाने के साथ ही [पागलपन लौट आता है।

इन परीक्षणों से क्या सिद्ध होता है ? यही कि जब दिमाग़ पूरे जोर में होता है, और उस में रक्त खूब चल रहा होता है, तो विचार और स्मृति निर्बल होते हैं, और बहुत कुछ इन्द्रियों के वश में होता है। परन्तु जब दिमाग़ निर्बल हो जाता है, तो विचार और स्मृति तेज़ हो जाते हैं और इन्द्रियों की दासता से मुक्त हो जाते हैं। इस का स्पष्ट अर्थ क्या यह नहीं है कि विचार-दिमाग़ से कुछ स्वतंत्र चीज़ है और साधारण अवस्था में दिमाग द्वारा इस का केवल एक भाग प्रकट होता है। इस लिये केवल दिमाग़ पर विचार आश्रित नहीं है परन्तु दिमाग विचार के लिये बाधा का काम करता है। कुछ और घटनाओं से यह और भी स्पष्ट हो जाता है कि-विचार दिमाग़ से स्वतन्त्र है।

डाक्टर राबिन्सन (Dr. Robinson) ने एक मनुष्य को देखा जिसका दिमाग़ किसी रोग के कारण बिलकुल फोड़ा बन गया था, परन्तु वह एक साल तक इसके पीछे जीता रहा, और उसकी विचार शक्ति में ज़रा भी विकार नहीं आया। जुलाई १९१४ में Dr. Holla

Plan ने फ्रांस की Society of surgery के सामने बयान किया कि "एक लड़की जेल से गिर पड़ी और उस के दिमाग पर चोट लगी। (operation) औपरेशन किया गया तो मालूम हुआ कि बहुत सा दिमाग पिस कर गूंधे हुए आटे जैसा होगया था, परन्तु उसे बन्द कर दिया गया। कुछ समय में लड़की अच्छी होगई। डाक्टर ग्यूपिन (Guepin) ने सिद्ध किया है कि-दिमाग का एक भाग फट जाने से भी विचार जारी रहता है।"

उद्देश्य के लिये कष्ट सहने में, शारीरिक व्यथा और थकान के होते हुए किसी मार्ग पर दृढ़ रहने में, आत्मत्याग में और बीमारी का मुकाबला करने में विचार, दिमाग और शरीर से अपनी स्वतंत्रता को प्रकट करता है। वैज्ञानिक लोगों को भी आजकल अपने सिद्धान्त पर कुछ थोड़ा बहुत संदेह तो अवश्य होने लगा है। आधुनिक काल का सब से बड़ा शरीर क्रिया-विज्ञान वेत्ता Physiologist, Clauder Bernard जिस ने सारी आयु दिमाग की क्रियाओं के अन्वेषण में लगायी, लिखता है कि "विचार की उत्पत्ति के विषय में विज्ञान अभी तक कुछ नहीं कह सकता है।"

"ऋत"

(प्रो० धर्मेन्द्रनाथ जी तर्कशिरोमणि)

एक ओर हम वेदों को रखते हैं, दूसरी ओर हमारे सामने युरोप के प्रसिद्ध वैज्ञानिक डार्विन, स्पेन्सर तथा हेकल की विकास पोषक तथा उन पर निर्भर अन्य वैज्ञानिकों की प्रकृतिवाद (Materialism) की व्यापक पुस्तकें हैं। समझा जाता है कि इन पुस्तकों ने पश्चिम में न केवल वैज्ञानिकों के अपितु सामान्य जनता के भी विश्वास को ईसाईयत से सर्वथा हटा दिया है। हमारा कर्त्तव्य है कि परीक्षात्मक दृष्टि से देखें कि यह क्या रहस्य है कि 'मत' और 'विज्ञान' एक दूसरे में तीन और छः का सम्बन्ध सदा से ही चला आया है? क्या वह विरोध 'वैदिक धर्म' के सिद्धान्तों पर भी लागू है या नहीं? केवल इतना कहने से 'हमारा विश्वास है' काम नहीं चलता। हमारी परीक्षात्मक दृष्टि होनी चाहिये-प्रत्येक धर्म के, दर्शन-शास्त्र के, किंच, प्रत्येक व्यक्ति के भी जीवन में तीन पद (Stages) होने आवश्यक हैं १-Dogmatic विश्वासात्मक, २-Sceptic सन्देहात्मक, ३-Critical परीक्षात्मक-अतः आवश्यक है कि केवल विश्वास पर निर्भर न रह कर परीक्षा की जाय।

मैं आपको बतलाना चाहता हूँ कि इस परीक्षा में ईसाइयत (Christianity) फेल हो चुकी है। कितना ही यत्न किया गया कि 'मत' और 'साइन्स' परस्पर विरुद्ध न रहें किन्तु ईसाइयत

के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए। १८०० में हेकल ने 'Riddle of the Universe' लिख कर इस बात की घोषणा की कि संसार की रचना, स्थिति आदि सब कुछ प्रकृति अपने नियमों से स्वयम् करती है। इसके लिये किसी अन्य शक्ति की आवश्यकता नहीं, 'संसार का द्रव्य (Matter) नित्य है' तथा 'संसार की शक्ति नित्य है।' (Conservation of matter & conservation of Energy) इन दोनों विज्ञान के सिद्धान्तों को मिला कर हमें एक (Law) नियम Conservation of substance मिल जाता है- इसे वह जगत् का नियम बताता है। इसके द्वारा Materialistic monism की उसने स्थापना की है। (It has become the pole-star that guides our monistic Philosophy through the mighty labyrinth ....) प्रयोजन यह है कि इस नियम से प्रकृति सब कुछ स्वयं करती है। इसी प्रकार नक्षत्र जगत् में देखें तो भी Law of Gravitation-- जिस का प्रादुर्भाव न्यूटन के द्वारा हुआ-सब ग्रहगण, तारागण अपना काम कर रहे हैं, इनको नियामिका किसी शक्ति की आवश्यकता नहीं। न्यूटन के १०० वर्ष बाद लाप्लासने जिसने Nebular theory को स्थापित किया, यही कहा कि नक्षत्र जगत् की क्रियायें सम्पूर्णतया (Automatic) स्वयं सिद्ध तथा (Mechanical) यन्त्रवत् हैं इन के लिये किसी चाहने वाले ईश्वर की आवश्यकता नहीं।

जड़ जगत् को छोड़ कर यदि प्राणि-जगत् को देखें तो यह भी सब विकास का परिणाम है। मनुष्य का Evolution जिस में जीवन क्रिया बहुत ही मिश्रित (Most Complex) है छोटे से अ-मिश्रित जीवाणुओं से (Simple monera, form of life) हुआ है और यह सब वैज्ञानिक नियमों (Laws of evolution) से है उन में भी किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं।

प्रारम्भिक चेतनता का और जड़ का क्या सम्बन्ध है? यह एक महान् प्रश्न रह जाता है। युरोप के विद्वानों ने साक्ष्य दिया है कि जड़ से ही चेतन का विकास हो सकता है। अनैन्द्रियिक (Inorganic) पदार्थों से (Organic) या ऐन्द्रियिक पदार्थ को सम्मिश्रण (Synthesis) के द्वारा युरोप के रसायनज्ञ बहुत दिन तक न बना सके थे। परन्तु जब वुल्हर (Wohler) ने रसायन-शाला में स्वयं मूत्र (Artficial Urea) तैयार किया तब समझा जाने लगा कि अब चेतन का जड़ से बनना सम्भव हो सकेगा। चेतन का जड़ से बनना सर्वथा और बात है यह आगे दिखाया जायगा। इसी प्रकार बर्क (Burk) ने भी चाँदी के टुकड़े पर जिस में पहिले कीटाणु निकाल दिए गये थे (Sterilised bullion) रेडियम ब्रोमाइड् के प्रयोग के द्वारा कुछ चलते फिरते अणु प्रकट होते हुए दिखलाये थे परन्तु वे भी बढ़ते हुए न पाये गये इस लिए जीवाणु सिद्ध न हुए।

टेण्डल ने अपने Belfast के प्रसिद्ध व्याख्यान में यही बतलाया था कि चेतनता जड़ से उत्पन्न हो सकती है।

Huxley हक्सले के व्याख्यान का विषय ही 'जीवन का भौतिक मूल' (Physical basis of Life) था। इसी प्रकार शेफर रोलर आदि अनेक वैज्ञानिक इनके साथ हैं जिनका विश्वास है कि जड़ से ही चेतन का विकास हुआ है। इस प्रकार केवल जड़ प्रकृति में ही सारा जगत् सीमित है अन्य कोई चेतन शक्ति नहीं। यह जड़ प्रकृति वैज्ञानिक नियमों के अनुसार सर्वत्र अपना काम कर रही है। जगत् अपने में परिपूर्ण है (Self-explained, self-maintained है) इसे किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं। यह है हेकेल की Materialistic monism अर्थात् प्राकृतिक ऐक्यवाद। दूसरी ओर Christianity या ईसामत ऐसे परमात्मा की शिक्षा देती है जो इन प्राकृतिक नियमों में गड़बड़ डालता है। ऐसी ईश्वर की सत्ता विज्ञान कदापि स्वीकार नहीं कर सकता। आलिवर लाज को भी (Sir Oliver Lodge) जो धर्म और विज्ञान को मिलाने के बड़े पक्षपाती हैं ईसाई मत के और विज्ञान के इस मौलिक विरोध को स्पष्ट स्वीकार करना पड़ा है।

"Orthodox Science suggests to us that the cosmos is self-explained, self contained and self maintaing. It is no longer a question whether Sceince can allow us to believe that God created a lot of frogs in Egypt or loaves in Judea long ago"

सारांशतः बाइबिल ऐसे परमात्मा को सिखाती है जो कि साइन्स के प्राकृतिक नियमों को तोड़ने वाला है इसलिये विज्ञान और ईसाई मत का विरोध आवश्यक है—

यहाँ अवसर है कि मैं आप को 'ऋत' का रहस्य बतलाऊँ—

वैदिक धर्म ऐसे परमात्मा की शिक्षा देता है जो इन वैज्ञानिक प्राकृतिक नियमों (Scientific Laws of Nature) का अनुसारी है—इन्हें चलाने वाला है न कि तोड़ने वाला—वेद में इन वैज्ञानिक नियमों को ही 'ऋत' कहते हैं और परमात्मा 'ऋतम्भर' है अर्थात् इन नियमों का नियामक (Upholder of the Eternal cosmic Laws) है-वेद में स्थान स्थान पर ईश्वर को 'ऋतस्य' गोपा, कहा गया है-आश्चर्य आप को इस बात से होगा कि इस विचार में युरोप के बड़े २ विद्वान् सहमत हैं-Wāllace ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Cosmology of the Rigveda' में इसी बात को दिखाया है-उस के शब्दों में—

"The word used to denote the conception of the order of the universe is Rita (ऋत). Every thing in the universe which is conceived as showing regularity of action, may be said to have (ऋत) for its principle"

मैक्डोनेल ने भी Vedic Mythogy में अपना यही विचार प्रकट किया है "The cosmic Law or order prevailing in Nature is recognised under the name of ऋत"

ग्रीफिथ भी अपने वेदों के अनुवाद में ऋत का अर्थ Laws eternal स्थान

स्थान पर करना है—ऋषि दयानन्द ने भी ऋत का अर्थ 'सत्य नियम' या 'सत्य विज्ञान' किये हैं-यह एक बड़े आश्चर्य का विषय है कि वेदों में प्राकृतिक नियमों का जिनका रहस्य अधुना विज्ञान के प्रकाश में पता लगा है, इतना उच्च विचार विद्यमान है-परमात्मा भी अप । काम इन नियमों के द्वारा करता है न कि इन नियमों को तोड़ने वाला हैः—

'ऋत ज्येन क्षिप्रेण ब्रह्मणस्पतिर्यत्र वष्टि प्रतदश्नोति धन्वना' परमात्मा जहाँ चाहता है वहाँ अपने धनुष से पहुंचता है। 'ऋत' या Eternal Laws जिस धनुष की 'ज्या' है—वेदों के सब से बड़े आचार्य दयानन्द ने इस रहस्य को समझा था- स्थान २ पर उन्होंने बतलाया है कि सृष्टि के नियमों के विरुद्ध कुछ नहीं होता। 'सर्व शक्तिमान्' के अर्थ में बतलाया है कि ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता का यह मतलब नहीं है कि वह अपने सृष्टि के नियमों को तोड़ दे। इतना ही नहीं, स्तुति प्रार्थना आदि पर विचार करते हुये भी दयानन्द ने कहा है कि उनका फल अन्य ही है। यह नहीं हो सकता कि परमात्मा अपने नियमों को तोड़ कर पाप क्षमा कर दे।

टेण्डल (Tyndall) का प्रार्थना के विरुद्ध यही आक्षेप था कि वर्षा के लिये प्रार्थना करने से परमात्मा बिना समय प्राकृतिक नियमों को तोड़ कर वर्षा कैसे कर सकता है— 'Can any spiritual power interfere with the sequence of natural processes, by which the molecules of water find their destination ?' परन्तु वेद में प्राकृतिक नियमों को तोड़ कर प्रार्थना नहीं किन्तु वह भी उनके अनुसार है-कल्याण की प्रार्थना है—

'ऋतस्य रश्मिमनुयच्छमाना भद्रं भद्रं क्रतुमस्यासु धेहि'

इसके अर्थ में ग्रीफिथ ने भी कहा है—'Obedient to the Law eternal' किञ्च वेद कहता है-प्राकृतिक नियमों में सारा विश्व बैठा हुआ है—

'ऋतस्य देवा अनूव्रता गुः'

सारी दिव्य शक्तियाँ 'ऋत' के अनुकूल चलती हैं—

यहाँ तक यह दिखाया कि वेद में परमात्मा का विचार वैज्ञानिक नियमों के विरुद्ध नहीं प्रत्युत उन के साथ है-परन्तु अभी यह बात दिखानी है कि यदि प्राकृतिक नियमों से ही सृष्टि का सब काम चल सकता है तो ईश्वर की क्या आवश्यकता है ?

सज्जनो, यहाँ मैं आपको यह बतऊँगा कि युरोप के वैज्ञानिक भी ऐसे ही परमात्मा के जो कि प्राकृतिक नियमों को तोड़ने वाली शक्ति है जैसा कि बाइबिल सिखाती है, विरुद्ध है, न कि वे सर्वथा ईश्वर की सत्ता के विरुद्ध हैं। स्वयं टेण्डल जैसे वैज्ञानिक जो कि प्रारम्भ में प्रकृतिवादी Materialist या नास्तिक था और अन्त तक भ्रम से वैसा ही समझा गया वस्तुतः वह ईसाइयत के बताये ईश्वर का ही विरोधी था—वह कहता है 'It were better to have no opinion of God at all, than such an opinon as unworthy of Him, for the one

is unbelief, the other is contumely'

इसी प्रकार यदि Lodge लाजकी पुस्तक Life & Matter उठाइये तो उसमें वह कहते हैं कि जगत् को प्राकृतिक नियमों के अनुसार मानना और उसकी नियामक शक्ति (Controlling & Directiv Power) में विश्वास यह दोनों परस्पर अनुकूल हैं । परन्तु मैं Lodge की बात छोड़ता हूं क्योंकि वह बहुतों की सम्मति में 'वैज्ञानिक'कुल का विरोधी और 'मत' (Religion) का अनुचित पक्षपाती है- जो कुछ हो— परन्तु डाक्टर रसेल वेलेस जिन की मृत्यु हो चुकी है युरोप के सर्वोच्च वैज्ञानिक थे— वे प्रसिद्ध Evolution theory के डार्विन के सह आविष्कर्त्ता (Twin discoveror) समझे जाते हैं— उन्होंने १६१२ में पूरी आधी शताब्दी मनन करने के पश्चात् एक पुस्तक प्रकाशित की है जिसका नाम है 'World of Life'— वे भी हमारी उपर्युक्त बात से ही सहमत हैं।

वर्णव्यवस्था का तुलनात्मक अनुशीलन

(ले० पं० धर्मदेव जी, सिद्धान्तालङ्कार विद्यावाचस्पति, आचार्य गुरुकुल मुलतान)

हम संक्षेप से इस बात को दिखाना चाहते हैं कि न केवल प्राचीन भारत में बल्कि मिश्र, फ़ारस और यूनान इत्यादि में भी बहुत से अंशों में वर्ण-व्यवस्था प्रचलित थी। यद्यपि उतने शुद्ध और आदर्श रूप में नहीं जितनी भारतवर्ष में।

डा० हाग ने फारसी मत विषयक अपने निबन्धों में स्पष्ट कहा है कि ईरानवासियों के धार्मिक ग्रन्थों में ४ वर्णों या जातियों का स्पष्ट तौर से वर्णन पाया जाता है यद्यपि उन के नाम बदल दिये गये हैं। डा० हाग के अपने शब्द यह हैं:—

"In the religious records of the Iranians of the Zend-Avesta the four castes are quite plainly to be found, only under other names"

इन चार विभागों के नाम ज़िन्द-अवस्था के यस्न में अथर्वा, रथेस्त, दवास्त्रिवशिया और हुईतिस ये दिये हैं जो क्रमशः ब्राह्मण, योद्धा, कृषक और श्रमी के द्योतक हैं। पहले दो शब्द तो साफ़ तौर पर संस्कृत अथर्वा और रथेष्ठा शब्दों से लिये गये हैं जिनका वेद में अनेक स्थानों पर प्रयोग हुआ है।

ज़िन्द अवस्था के अनुवाद में प्रो० डार्मस्टेटर लिखते हैं कि अध्याय ६२ में चार वर्णों का (classes) स्पष्ट वर्णन पाया जाता है जोकि हमें ब्राह्मणीय वर्णव्यवस्था का स्मरण कराता है और इस में सन्देह नहीं कि यह जातियों या वर्णों का विभाग भारत से

लिया गया था। देखो, हॉग के जिन्दावस्था के अनुवाद की भूमिका का ३३ पृष्ठ।

प्राचीन मिश्रधर्म का अनुशीलन करने से पता चलता है कि उनके अंदर भी समाज का विभाग कुछ विशेष श्रेणियों के अन्दर किया हुआ था और धीरे २ वह विभाग भारतीय जातिभेद के रूप में आनुवंशिक वा Hereditary हो गया था जिसमें परिवर्तन करने की किसी को स्वतन्त्रता न दी जाती थी। इतना तो अवश्य मालूम होता है कि इन भिन्न २ विभागों के अंदर परस्पर प्रीति का भाव विद्यमान था और एक दूसरे से घृणा न की जाती थी। इस विषय में International Library of the Famous Literature Vol I P. 65-68 तक में उद्धृत Manners and Customs of the Egyptians इस शीर्षक के Charles Rollen नामक प्रसिद्ध फ्रेञ्च ऐतिहासिक के लेख से कुछ आवश्यक भाग उद्धृत किये जाते हैं। वह ऐतिहासिक लिखता है कि—

"The body politic reqires a Superiority and Sub- ordination of its several members; for as in the natural body, the eye may be said to hold the first rank, yet its lustre does not dart- contempt upon the feet-, the hands and even on those parts which are less honourabe; in like manner, among the Egyptians the priests, soldiers and scholars were distinguished by particular honours, but all professions to the meanset, had their share in the public esteem, because the despising of any man whose labours, however mean, were useful to the state was thought to be a crime".

सारांश यह कि जिस प्रकार शरीर के सब अवयव मिल कर कार्य करते हैं और उन में से कोई दूसरे से घृणा नहीं करता उसी प्रकार मिश्र देश में किसी भी व्यवसाय वा वृत्ति को घृणा की दृष्टि से न देखा जाता था क्योंकि मनुष्य से नफरत करना जिस की वृत्ति किसी भी रूप में राष्ट्र के लिये उपयोगी हो यह मिश्र में एक बड़ा अपराध समझा जाता था।

वही लेखक आगे हमें बतलाता है कि प्रत्येक मनुष्य की आजीविकादि वहां के कानूनों से निश्चित की जाती थी और वह आनुवंशिक होती थी। एक ही समय में दो वृत्तियां अथवा उस वृत्ति में परिवर्तन जिसमें कोई मनुष्य उत्पन्न हुआ हो—इस बात की आज्ञा न होती थी। इस का परिणाम क्या होता था-इसके बारे में चार्ल्स रौलन लिखता है कि:—

"By this means, men became more able and expert in employments which they had always exercised from their infancy and every man adding his own experience to that of his ancestors was more capable of atta-

ining perfection in his particular art."

तात्पर्य्य यह है कि ऐसा करने से मनुष्य अपने २ व्यवसायों में विशेष निपुणता प्राप्त कर लेते थे और भिन्न २ कलाओं में पूर्णता प्राप्त करने के अधिक अधिक योग्य होते जाते थे।

यहां यह बताने की पुनः आवश्यकता नहीं कि प्राचीन काल में भारत का मिश्र देश के साथ बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध था। कण्व, काश्यपादि मुनियों के मिश्र में जा कर काम करने का पुराणों में वर्णन आ ही चुका है।

यूनान देश की प्राचीन सामाजिक पद्धति के अनुशीलन से पता लगता है कि वह भी वर्णव्यवस्था से ही मिलती जुलती थी। प्रसिद्ध दार्शनिक प्लेटो (अफ़लातून) ने तो एक प्रकार से स्पष्ट शब्दों में ही वर्णव्यवस्था का अपने Republic नामक ग्रन्थ में उल्लेख किया है। उस ने सम्पूर्ण समाज को सुवर्ण के मनुष्य, चांदी के मनुष्य और लोहे के मनुष्य इस प्रकार के तीन भागों में विभक्त किया है और उन्हें क्रमशः परिपालक, योद्धा, और कृषक का नाम दिया है। लोहा, चांदी, सोना यहां पर तम, रज और सत्व के प्रतिनिधि समझे जा सकते हैं। परिपालकों का (अंग्रेज़ी अनुवाद के शब्दों में Guardians के) जो कर्तव्य बताये गये हैं वे ब्राह्मणों के धर्मों का अनुकरण मात्र प्रतीत होते हैं। उन के लिये सादगी और तपस्या के जीवन को अत्यावश्यक माना गया है। मद्यपान का उन के लिये सर्वथा निषेध किया गया है। अपने पास आवश्यकता से अधिक कुछ भी द्रव्य रखने की उन के लिये सख्त मनाई की गई है जिसके विषय में अनुवादक के शब्द ये हैं:—

"None of the guardians should possess any property of his own, except what is absolutely necessary. Then none of them to have any house or store-chamber into which all can-not enter when they please.'

Plato's Republic P. 136.

परिपालकों के लिये पारिवारिक चिन्ताओं से भी यथा सम्भव मुक्त रहने का इस ग्रन्थ में आदेश किया है। योद्धाओं और कृषकों के कार्य्य क्षत्रियों और वैश्यों से मिलते हैं।

मध्य यूरोप में भी Clergy, Baronage, People और Serfs मुख्यतः इन चार वर्गों में समाज का विभाग था। इस प्रकार तुलनात्मक दृष्टि से विचार करने पर हमें प्राचीन वर्णव्यवस्था की सार्वभौमिता बहुत अंश तक प्रतीत होती है यद्यपि उस के रूप में परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन अवश्य आता रहा है और आता रहेगा।

अभिलाष

[श्री माल]

दिल की यह अभिलाष पुरानी कैसे तुम्हें सुनाऊँ ?
जहाँ चाँदनी लुठक लुठक कर, करती फिरती अपना कलरव-
उसी गगन का हृदय चीर कर समा उसी में जाऊँ।

कभी सोचता हूँ घन बन कर एक साथ उड़ जाऊँ-
धाराओं में बरस बरस कर सागर में मिल जाऊँ।

या गोधूलि-काल की रज बन साँझ समय चढ़ जाऊँ-
घोर निशा में छिपे २ ही ओस विन्दु बन जाऊँ।

भर उमङ्ग में झिलमिल करते तारों में मिल जाऊँ
उषाकाल के रंग बिरंगे आँचल में छिप जाऊँ।
झरनों की फुआर में मिल कर मैं शीकर बन जाऊँ।
उमड़ उमड़ कर मैं तरङ्ग संग लहर लहर में गाऊँ।

कभी सोचता हूँ कलियों में झूम झूम कर गाऊँ
कोकिल के कलरव में मिल कर एक कूक बन जाऊँ।

या बिरही की अश्रु धार की एक बूंद बन जाऊँ-
उस की ठण्डी आहों का निश्वास कभी बन पाऊँ।

बजती किसी हृदय-तन्त्री का एक तार बन जाऊँ
अथवा करुण-व्यथा की मैं भी एक कण बन जाऊँ।

डाली पर पत्ता बन नाचूं, पंछी हो कर गाऊँ-
षड्ज, ऋषभ, गान्धार आदि बन ऊँची तान चढ़ाऊँ।

जैसे कैसे इस अनन्त में मैं भी अब मिल जाऊँ-
मिल कर इस असीम में मैं भी फिर असीम हो जाऊँ॥

"सृष्ट्युत्पत्ति"

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

(१)

बाइबल तथा कुरान में सृष्टि की उत्पत्ति की विचित्र कथा पाई जाती है। उस कथा का संक्षेप यह है कि परमात्मा ने अपना एक फ़ोटो तैयार किया, जिस का नाम 'आदम' रक्खा। आदम को स्वर्ग के बग़ीचे में रख कर वहाँ की देख-रेख का काम भी उस के सिपुर्द कर दिया। उस समय आदम खेती नहीं करता था, बाग़ में जो कुछ लगा हुआ था उसी से पेट भर लेता था। वह बड़े मज़े में था, हल चला कर उसे परेशान नहीं होना पड़ता था। उसी बाग़ में एक 'ज्ञान-वृक्ष' लगा हुआ था, जिस के फल खा कर भलाई-बुराई का भेद मालूम होने लगता था। इसके अतिरिक्त एक दूसरा 'अमरता' का वृक्ष भी था, जिस के फल खाने वाला अमर हो सकता था। परमात्मा ने आदम के लिये एक स्त्री को उत्पन्न किया, और इस जोड़े को उपर्युक्त दोनों फल खाने से मना कर दिया। परमात्मा इन फलों को स्वयं तो खाता था, परन्तु इस भय से कि कहीं आदम और हव्वा इन्हें खा कर स्वयं उसी के जैसे ज्ञानी (चित्) तथा अमर (आनन्द) न हो जायँ, उन्हें रोकता था। हव्वा की उत्पत्ति के सम्बन्ध में, इन ग्रन्थों में, दो क़िस्से पाये जाते हैं—पहले तो यह लिखा है कि स्त्री आदम की पसली से बनाई गई। और, आगे चल कर यह लिखा है कि आदमी और औरत इकट्ठे ही जुड़े हुये पैदा हुए थे; परमात्मा ने उन्हें बीच से काट कर दो भागों में विभक्त कर दिया, और उन का स्त्री पुरुष का व्यवहार प्रारम्भ हो गया।

उसी बग़ीचे में साँप—शैतान—भी रहता था। परमात्मा की और शैतान की लड़ाई थी। उस समय शैतान (साँप) भी हम लोगों की तरह खड़ा हो कर पैरों से चलता था। उसके हाथ-पैर थे। शैतान ने परमात्मा को ठगने की सोची, और इस काम के लिये उसने आदम की हड्डी से बनी स्त्री को अपना उपकरण बनाया। साँप स्त्री को जाकर बहकाने लगा—उस से कहा, इन फलों को बेखटके खाओ, बड़े मज़ेदार हैं, परमात्मा झूठ बोलता है, इनके खाने से कोई मर जाता होता, तो वह स्वयं अब तक कैसे जीता रहता। नहीं, तू नहीं मरेगी। स्वयं खा, और आदम को खिला। हव्वा उस की बातों में आ गई। अभी तक तो दोनों ही मिट्टी के ढेले से बने थे, नंगे फिरते थे, असभ्य थे, जंगली थे। अभी वे 'सत्'—अस्तित्व—की अवस्था तक ही पहुंचे थे। अब साँप के द्वारा बहकाए जाने पर, ज्ञान-फल को खा कर 'चित्' (Knowledge) को भी पा गए। बस, अमरता का फल चखने से पहले ही परमात्मा को षडयंत्र का पता चल गया, और

उस ने इस बढ़ते हुए अनर्थ को रोक दिया। वह स्वयं तो 'सच्चिदानन्द' बना रहा, पर आदम तथा हव्वा का का स्वरूप 'सच्चित्' बनने तक ही पहुंच सका। 'अमरता' का फल भी खा लेते, तो उन में तथा परमात्मा में भेद ही क्या रह जाता? अपनी ही शकल को सामने रख कर परमात्मा ने आदम को बनाया था। लेकिन इस फल के खाने पर तो शकल इतनी मिल जाती कि असल और नकल में फ़र्क ही न रहता—मनुष्य परमात्मा ही हो जाता, और सृष्टि आदम के साथ शुरू हो कर उसी के साथ ख़तम हो जाती। जो कुछ हुआ, अच्छा ही हुआ। ख़ैर, परमात्मा ने आदम को बुलाकर पूछा—"ज्ञान फल क्यों खाया?" वह गिड़गिड़ाता हुआ बोला—"मुझे तो ईव ने खाने को दिया था?" ईव से पूछा गया। वह बोली—"मुझे छली, मायावी साँप ने बहका दिया।" फिर क्या था, साँप पर क्रोध उमड़ पड़ा। उसे पृथ्वी पर गिर कर धूल चाटने का शाप दिया गया, और यह भी कहा गया कि तुम्हारे हाथ-पैर कट जांय, और तुम पेट के बल चला करो। तभी से साँप रेंगने लगा, नहीं तो वह भी ऐंठ-ऐंठ कर चला करता था। मनुष्य तथा स्त्री को भी इस अपराध में स्वर्ग छोड़ कर भूमि पर आना पड़ा। उन्हें यह शाप दिया गया कि अब से तुम्हें बैठे बैठे मुफ़्त रोटी नहीं मिलेगी। पसीना बहाओ, और खेती कर के जीवन-निर्वाह करो। उस समय स्वर्ग से निकालते हुए परमात्मा ने उन्हें कपड़े भी सीं कर पहना दिए। इस प्रकार परमात्मा और साँप की लड़ाई में ज्ञान-फल खाने के कारण, आदम की हड्डी से बनी स्त्री के द्वारा साँप का पतन हुआ, जिस में उसे हाथ-पैर भी खो देने पड़े।

प्रायः इसी वर्णन को मनुष्य के पतन का नाम दिया जाता है। परन्तु सारा वर्णन पढ़ लेने पर इसे मनुष्य के पतन की अपेक्षा शैतान का पतन कहना अधिक उचित प्रतीत होता है। शैतान के पतन के साथ-साथ मनुष्य को खेती करने तथा नंगे न रहने का शाप अवश्य दिया गया, परन्तु दोनों के शापों की तुलना में शैतान को अधिक कठोर दण्ड दिया गया है।

बाइबल तथा कुरान के इसी वर्णन की तरह पारसी पुस्तकों में भी यह कथा पाई जाती है। बिशप कोलैंसो * लिखते हैं—पारसियों के परमात्मा अहुर्मज़्द ने पहले जोड़े को पवित्र तथा पाप-रहित उत्पन्न किया था। परन्तु अहिर्मान के भेजे हुए सांप ने उन्हें अमरता का एक फल खिला दिया, जिस से उन की पवित्रता नष्ट हो गई। पारसियों के यहां यह भी माना जाता है कि हेडेन (Heden) नामक स्वर्ग स्थान में 'होम' नामक वृक्ष था जिस का फल शैतान ने आदि-युगल को खिलाया था। शैतान के

* The Pentateuch Examined. Vol. IV, p. 153.

लिये पारसी–साहित्य में अज़ि-शब्द पाया जाता है।

ईसाई, मुसलमान तथा पारसी-धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में भी यही कथा पाई जाती है। बैबिलोनिया की एक प्राचीन प्रशस्ति ब्रिटिश म्यूज़ियम में मौजूद है, जिस के आधार पर, जार्ज स्मिथ महोदय की सम्मति में, कहा जा सकता है कि यहूदियों के १,५०० वर्ष पूर्व बैबिलोनिया में यही गाथा प्रचलित थी। इस पर एक चित्र भी है, जिस में एक तरफ़ स्त्री तथा दूसरी तरफ़ पुरुष बैठा हुआ है। साँप भी नज़दीक ही पूंछ के बल खड़ा हुआ है। स्त्री तथा पुरुष, दोनों वृक्ष के फल की तरफ़ हाथ बढ़ाए हुए हैं।

यूनानी स्वर्ग को Elysium या Garden of Hesperides के नाम से पुकारते थे। उनके स्वर्ग या बगीचे में अमरता का वृक्ष था, जिस में सोने के फल होते थे। उसकी रक्षा के लिए तीन देवियां तथा एक साँप हर वक़्त तैनात रहते थे। हरक्यूलीज़ के जीवन की घटनाओं में इस वृक्ष के फल तोड़ कर लाना एक मुख्य घटना है। हरक्यूलीज़ जब इन फलों को लेने गया, तो उसने साँप को अपनी डयूटी पर मुस्तैद पाया और उसने साँप के सिर को अपने पैर के नीचे कुचल कर फल इकट्ठे किये।

मिसर में भी, इसी प्रकार स्वर्ग में, एक जीवन वृक्ष की कल्पना स्वीकार की जाती थी। उनके मुख्य देवता ओसिरिस ने इस वृक्ष के तने पर कुछ आत्माओं के नाम लिखे जाने की आज्ञा प्रचारित की थी। इस वृक्ष के फल चखने का परिणाम यह होता था कि खाने वाला ईश्वर के सदृश ही बन जाता था।

अधिक न बढ़ाकर इतना कह देना पर्याप्त होगा कि ईश्वर तथा साँप की जीवन-वृक्ष के फल के लिए लड़ाई, उस में साँप का मारा जाना, पुरुष तथा स्त्री का फल खाना—यह सब एक ऐसी कथा है जो संसार के एक या दो धर्मों में नहीं, प्रायः प्रत्येक धर्म में पाई जाती है। थोड़ा बहुत भेद अवश्य है। कहीं साँप ही मनुष्य को फल खाने के लिये बहकाता है, और कहीं साँप ही मनुष्य से उस फल की रक्षा करा रहा है। परन्तु इस प्रकार का भेद कथानक की परंपरागत समानता को देखते हुए वास्तव में नहीं के बराबर रह जाता है। हमारा मत यह है कि संसार में सर्वत्र प्रचलित इस कथा का आधार वैदिक साहित्य ही है। हम अपने मत के पुष्ट करने के लिये यहां प्रमाण तथा लोकोक्ति, दोनों का आश्रय लेंगे। परन्तु लोकोक्ति का आधार भी प्रमाण ही होगा।

ऋग्वेद के प्रथम मंडल, अनुवाक ७, सूक्त ३२ में यही कथा पाई जाती है। इस सूक्त का ३ रा मंत्र इस प्रकार है:—

"वृषायमाणोऽवृणीत सोमं
त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य।
आ सायकं मघवा अदत्त
वज्रं अहदेनं प्रथमजामहीनाम्।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि 'इन्द्र' ने 'सोम' का पान किया और फिर उसने 'वज्र' लेकर 'प्रथम अहि' को मार डाला। इस मन्त्र से यह स्पष्ट है कि इन्द्र स्वयं सोम-रस का पान करता है। मन्त्र में लिखा है कि वह सोम रस स्वयं पीकर 'प्रथम अहि' को मार डालता है। यदि 'प्रथम अहि' इन्द्र के सोमरस पान में कोई विघ्न न डालता, तो उसे मारने की क्या आवश्यकता पड़ जाती? इसका अभिप्राय यही मालूम होता है कि 'इन्द्र' तथा 'प्रथम अहि' में 'सोम-रस' के लिये लड़ाई हुई, जिस में इन्द्र ने अपने 'वज्र' से प्रथम अहि को मार डाला।

इन्द्र को सोम की रक्षा की चिन्ता है, यह उसी सूक्त के १२ वें मन्त्र से भी स्पष्ट है। उसमें लिखा है—'अजयः गा, अजयः शूरसोमं, अवासृजः सप्त-सिंधून्'—अर्थात् शूर इन्द्र ने गउओं को जीता, फिर सोम को भी। क्या इससे हमारा भाव और अधिक स्पष्ट नहीं हो जाता? चाहे कुछ भी हो, यह मानना ही पड़ता है कि इन्द्र की तथा प्रथम अहि की लड़ाई सोम-रस के लिये ही थी।

यह 'सोम' क्या चीज़ है, जिसे 'इन्द्र' 'अहि' को नहीं लेने देता? प्रचलित कथानक के अनुसार 'सोम' एक वृक्ष का नाम है, जो ज्ञान देता है। पारसी लोगों के 'होम' का भी यही गुण माना जाता है। सामवेद। उ० प्र० ३। अर्ध० १। मं० १९ में लिखा है—'सोमः पवते जनिता मतीनाम्' मतीनां जनिता का अर्थ बुद्धि देने वाला—ज्ञान शक्ति बढ़ाने वाला। अतः लोक यथा वेद, दोनों के अनुसार सोम 'ज्ञानप्रद वृक्ष' का नाम है। बाइबिल में यह 'ज्ञानप्रद-वृक्ष' (सोम) 'Tree of the Knowledge of Good and Evil' के नाम से पाया जाता है। जिस प्रकार बाइबिल का इष्टदेव इस वृक्ष को अपने लिये रखना चाहता है, इसी प्रकार वेद का 'इंद्र' भी 'सोम-रस' को अपने लिये रखना चाहता है। बाइबिल के कथानक के अनुसार इस वृक्ष के फल के कारण परमात्मा तथा शैतान में, जिस का सांप का स्वरूप दिखाया गया है, लड़ाई छिड़ गई। वेद की कथानुसार भी इन्द्र तथा प्रथम अहि में 'सोम' के कारण लड़ाई छिड़ती है।

सोम-रस ही बाइबिल का ज्ञान-वृक्ष है, यह हमने देख लिया। अब प्रश्न होता है कि यह 'प्रथम अहि' कौन है? इस का उत्तर यह है—बाइबिल का शैतान सांप। कैसी मज़ेदार बात है! वेदों के 'प्रथम अहि' बाइबिल के हज़रत साँप ही हैं। अहि का अर्थ लौकिक संस्कृत में 'सांप' होता है। वेदों में 'प्रथम अहि' आया है, जिसका अर्थ है सब से पहला साँप—शैतान। साँपों के सरदार—सब से पहले साँप जो ठहरे!! यह अहि सोम-रस को उड़ाना चाहता है, इन्द्र से छीनना चाहता है और, बाइबिल का शैतान साँप भी ज्ञान-वृक्ष को जिहोवा के बगीचे से उड़ा लेना चाहता है। पुराणों की समुद्र-मंथन की कथा में 'अमृत' निकालने के

लिये, सर्पराज को ही मंदराचल के लिये मंथन रज्जु बनाया गया था। इस कथा में भी साँप तथा अमरता के फल का कुछ संबन्ध निर्दिष्ट है। हमने देख लिया कि इन्द्र और अहि की सोम रस के लिये तथा बाइबिल, कुरान एवं अन्य धर्मों में वर्तमान परमात्मा एवं साँप की ज्ञान-वृक्ष के लिये लड़ाई, सब एक ही कथा के भिन्न भिन्न रूप हैं।

ज्यों-ज्यों हम ऋग्वेद के उक्त सूक्त का आगे आगे अध्ययन करते जाते हैं, त्यों-त्यों हमारी कल्पना अधिकाधिक पुष्ट होती जाती है। बाइबिल में साँप के विषय में स्त्री कहती है—"इसने मुझे छल लिया—मुझ पर माया कर दी।" ऋग्वेद के इसी सूक्त के चौथे मंत्र में लिखा है'यदिंद्र अहन् प्रथमजां अहीनां आत् मायिनां अमिनाः प्रोत-मायाः।" यहां पर 'मायिनां अहीनाम्' कह कर वेद में भी साँप के ऊपर मायावी, छली होने का दोष आरोपित किया है।

बाइबिल के अनुसार परमात्मा ने साँप को पृथ्वी पर गिराकर मिट्टी खाने का शाप दिया। ऋग्वेद के इसी सूक्त के चौथे मंत्र में लिखा है—'अहिः शयत उपपृक् पृथिव्याः'—अर्थात्, साँप पृथ्वी के ऊपर आ सोया। इसके आगे बाइबिल में शाप देते हुए कहा गया है कि तू पेट के बल रेंगेगा, तेरे हाथ-पैर कट जायँगे। यही अभिप्राय ऋग्वेद के इसी सूक्त के छठे मंत्र में दिया है—"अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रं" इस मंत्र में 'अहि' के लिये 'अपादहस्त'-विशेषण प्रयुक्त किया गया है, जो विशेष ध्यान देने योग्य है। अहि अहस्तपाद अर्थात् हाथ पैर से रहित है। बाइबिल के सांप का भी यही हाल हुआ है. यह पहले ही लिखा जा चुका है। पहले तो वेद में सोम के लिए लड़ाई में अहि अर्थात् सांप, इस शब्द का प्रयोग होना, और फिर उसके लिए लगभग उन सभी विशेषणों का प्रयोग होना, जो बाइबिल में सांप के किस्से में पाए जाते हैं, क्या आश्चर्य में डाल देने वाली समानता नहीं?

भूल

(ले० श्रीयुत गुप्त विद्यालंकार)

(१)

क्रोपेट ने कमरे में प्रवेश कर के देखा कि सामने मञ्च पर रक्खी हुई एक ऊँची कुर्सी पर सरपञ्च बैठा है; उस के पैरों के पास, मञ्च के नीचे, पांच व्यक्ति तलवार लिये खड़े हैं। क्रोपेट ने जान लिया कि ये लोग संघ के मुखिया सरदार हैं। जो व्यक्ति क्रोपेट के साथ आया था वह उसे कमरे तक ला कर स्वयं बाहर ही रह गया था; क्रोपेट ने प्रवेश कर के बड़े भक्तिभाव से सरपञ्च को प्रणाम किया। सरपञ्च का विकृत, खुरदरा परन्तु गम्भीर चेहरा विचित्र प्रकार के भाव पूर्ण हो उठा। उस की दृष्टि से ऐसा प्रतीत होता था कि वह क्रोपेट को बहुत ही आश्चर्य और चिन्ता के साथ देख रहा है। सरपञ्च ने क्रोपेट के प्रणाम का कोई उत्तर नहीं दिया। क्रोपेट के कमरे में प्रवेश करने पर भी वहां पूर्ण सन्नाटा ही छाया रहा। क्रोपेट सामने

खड़ा होकर सरपञ्च की ओर बड़ी श्रद्धा तथा सम्मान के साथ देखने लगा। सरपञ्च के चेहरे की बनावट देख कर उस ने पहचान लिया कि किसी समय वह एक सुन्दर मनुष्य रहा होगा- परन्तु संघ में सम्मिलित होकर संघ के नियमानुसार उस ने तेज़ाब डाल कर अपने चेहरे को विकृत कर लिया है।

कुछ देर तक इसी प्रकार सन्नाटा रहा। इसके बाद सरपञ्च ने बड़ी गम्भीरता से धीरे धीरे कहा— "क्रोपेट, क्या तुम सचमुच पूर्ण निस्वार्थ भाव से इस संघ में शामिल होना चाहते हो ?"

क्रोपेट ने स्थिरता से उत्तर दिया— "जी, हाँ।"

सरपञ्च ने क्रोपेट के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए कहा— "क्रोपेट ! तुम एक बहुत बड़े जमीदार के पुत्र हो। तुम अपनी प्रखर प्रतिभा और सुप्रसिद्ध कुलीनता के आधार पर शीघ्र ही, थोड़ा यत्न करने से रूस की ज़ारशाही के भाग्य विधाताओं में शामिल हो सकते हो। तुम्हारी सुन्दरता पीटर्सबर्ग भर में प्रसिद्ध है। यह सब जानते हुए भी क्या तुम इस संघ में शामिल होना चाहते हो ?"

क्रोपेट ने शीघ्रता से उत्तर दिया— "श्रीमन्, आप मुझे गाली दे रहे हैं।"

सरपञ्च क्रोपेट का यह उत्तर सुन कर विचलित हो उठा, परन्तु उसने अपनी आवाज़ में किसी प्रकार का परिवर्तन लाये बिना ही कहा— "क्रोपेट, जानते हो— हमारा काम कितना नृशंसतापूर्ण है, हम लोग सन्देह मात्र पर हो हत्या कर डालते हैं। डाका डालते हैं। कहीं बालक चीख न उठे इसी भय से उसका गला घोंट देते हैं। अवसर पड़ने पर हमें निरपराध स्त्रियों का भी वध करना होता है। इस पर हमारा जीवन भी सुरक्षित नहीं है, प्रतिक्षण हमें जान जाने का भय बना रहता है। इतना ही नहीं, हमारे देश के बहुत से लब्ध-प्रतिष्ठ नेता भी हमें खूनी और लुटेरा कहते हैं। यह सब जानते हुए भी क्या तुम संघ में शामिल होने को तैयार हो ?"

क्रोपेट ने सिर झुका कर कहा— "आज तक मैं अपनी कल्पना द्वारा इसी प्रकार के पवित्र और निष्काम देश-सेवकों के लिये सिर झुकाता रहा हूं।"

यह सुन कर सरपञ्च ने अपनी जेब से एक कागज़ निकाल कर क्रोपेट को दिया। क्रोपेट ने बड़े आदर से उस कागज को लेकर ऊंची आवाज़ में पढ़ा—"मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि आज से इस संघ की प्रत्येक आज्ञा का बिना विरोध पालन किया करूंगा। संघ की प्रत्येक बात को गुप्त रख कर उस के सदस्यत्व की सब शर्तें पूरी करूंगा।" क्रोपेट ने इस कागज़ पर पर हस्ताक्षर भी कर दिये।

इस के बाद सरपञ्च ने कहा— "क्रोपेट, अब तुम्हारे धैर्य और साहस की परीक्षा ली जायगी। तुम्हें हम कुछ कष्ट देंगे। परन्तु तुम अपने मुँह से उफ़ तक भी न करना।" यह कह कर उसने नीचे खड़े हुए दो सरदारों की ओर इशारा किया।

दोनों सरदार तत्क्षण क्रोपेट के पास पहुंचे। उन्होंने क्रोपेट को दोनों हाथ आगे बढ़ाने केलिये इशारा किया। क्रोपेट ने उसी क्षण इस आज्ञा का पालन किया। दोनों सरदार एक एक करके क्रोपेट के नाखूनों में बड़े २ पिन चुभोने लगे। सरपञ्च इस समय बड़े ध्यान से क्रोपेट के चेहरे की ओर देख रहा था। शीघ्र ही क्रोपेट की कोमल उंगलियाँ नीली हो उठीं— उन से खून टपकने लगा। परन्तु वह उसी प्रकार निश्चल और अटल होकर खड़ा रहा।

सरपञ्च का मुख प्रफुल्लित हो उठा। उसे क्रोपेट से-जो कि अब तक राजकुमारों की तरह पला था- इस धैर्य की ज़रा भी आशा न थी। उसने दोनों सरदारों को एक ओर इशारा किया; सरपञ्च का इशारा पाते ही वे क्रोपेट को कमरे के एक कोने में ले गये; वहां एक लोहे की चौकी पर उसे खड़ा करने के अनन्तर वे दोनों बाहर चले गए। थोड़ी देर में लोहे की वह चौकी भी खूब गरम हो उठी। इस समय भी सरपञ्च बड़े ध्यान से क्रोपेट की ओर देख रहा

था, वह आंखें बन्द कर के इस नारकीय व्यथा को बड़े कष्ट से सह रहा था; उस के माथे से पसीने की धार छूटने लगी, परन्तु उसने अपने पैरों को हिलाया तक नहीं। थोड़ी देर में सरपञ्च ने स्वयं कुरसी से कूद कर उसे चौकी से उतार कर एक चादर पर लिटा दिया। क्रोपेट को यह जान कर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि वह इस कठिन परीक्षा में भी प्रथम विभाग में उत्तीर्ण हुवा है।

सरपञ्च ने अपनी कुरसी पर बैठ कर क्रोपेट को "नायक" की उपाधि दी। इसी समय एक सरदार ने बड़े अदब से कहा— "सरपञ्च! नायक बनने के लिये एक आवश्यक शर्त अभी तक पूरी नहीं कीगई; वह शर्त है तेज़ाब छिड़क कर उमेदवार की मुखाकृति को बिगाड़ देना।"

सरपञ्च यह सुनते ही कुछ अधीर और दुखित सा हो उठा। थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ सोचते रहने के बाद उसने घबराई हुई सी स्वर में कहा— "यह असम्भव है। क्रोपेट के के सुन्दर मुख पर तेज़ाब छिड़कने की आज्ञा मैं नहीं दे सकता।" पांचों सरदारों ने आश्चर्य के साथ सरपञ्च की ओर देखा। मालूम होता था कि वे सरपञ्च के इस कार्य से एक भयङ्कर भूल समझ रहे हैं; परन्तु नियमानुसार उन्होंने सरपञ्च की आज्ञा का विरोध नहीं किया। क्रोपेट को नायक मान कर सब सरदारों ने उससे हाथ मिलाया। सब से अन्त में सरपञ्च ने क्रोपेट को गले लगा कर उसे अपने दल में शामिल कर लिया।

(२)

क्रोपेट को संघ का सदस्य बने हुए दो वर्ष से अधिक समय नहीं हुवा, इस बीच में उस ने कई ऐसे कार्य कर दिखाए हैं जिनकी बदौलत उस की संघ में खूब प्रतिष्ठा है। इस समय दल की प्रत्येक बात उस से सलाह लेकर ही की जाती है। सरपञ्च का उस पर अत्यधिक विश्वास है। वह क्रोपेट को ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता है। क्रोपेट द्वारा संघ की संख्या, दल और संगठन तीनों में बहुत वृद्धि हुई है।

क्रोपेट एक कुलीन वंशज है। वह स्वभाव ही से दयापूर्ण और कोमल प्रकृति है; उस की बड़ी बड़ी और सुन्दर आँखों से एक अद्भुत एकाग्रता और पवित्र प्रेम का भाव टपकता है। उसने अनथक यत्न करके संघ के कार्यक्रम में एक और कार्य की वृद्धि करदी है—वह कार्य है रूस के दुखित और गरीब किसानों तथा श्रमियों की सहायता करना। क्रोपेट को स्वयं इस कार्य में आत्मिक आनन्द अनुभव होता है। इस कार्य का अध्यक्ष वह स्वयं ही है।

परन्तु उस समय संघ के सदस्यों के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहता जब लूट, डाका और सरकारी ओफिसरों की हत्या करते समय क्रोपेट अकस्मात् क्रूरता का अवतार बन जाता है। यह कार्य करते हुए वह दया, माया और ममता सब भूल जाता है। मौका पड़ने पर वह स्वयं निष्पाप और स्वर्ग राज्य के सब से प्रथम अधिकारी, मनोहर बालकों का गला अपने हाथ घोंट चुका है। कोमलाङ्गी, प्रेम और सम्मोह की वर्षा करने वाली रमणियों के खून से हाथ रंग चुका है। क्रोपेट यह सब कार्य दैत्य बन कर करता है— परन्तु उस के स्वभाव में दैत्यपना ज़रा भी प्रवेश नहीं कर पाया है। यह सब क्रूरताएं वह निष्काम भाव से कठिन कर्तव्य समझ कर ही करता है।

(३)

क्रान्तिकारी दल का मुखिया पकड़ लिया गया—उसके पकड़ने वाले मोशिये ड्रावर को १ लाख रुपया इनाम मिलेगा। इस खबर से रूस भर में एक तहलका मच गया। उत्सुकता से स्वतन्त्रता की प्रतीक्षा करने वाले दिलों पर, मनों पानी पड़ गया। क्रान्तिकारी दल पूर्णतया निराश हो गया। दल को अपना भविष्य सर्वथा अन्धकार मय जान पड़ने लगा।

सरपञ्च को गिरफ़्तार हुए तीन मास बीत चुके हैं। शीघ्र ही उन्हें प्राण दण्ड दिया जाने वाला है। क्रान्तिकारियों ने उन्हें बचा लाने का—छुड़ा लाने का— पूर्ण यत्न किया है, परन्तु इसमें उन्हें सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

आश्चर्य इस बात का है कि सरपञ्च के दायें हाथ सरदार क्रोपेट भी उनके कैद होने के

एक सप्ताह बाद ही से गायब हो गये हैं। किसी को मालूम नहीं कि वह कहां गये हैं। प्रारम्भ में दल के मुखिया समझते थे कि सम्भवतः वह सरपञ्च की सहायता करने के उद्देश्य से ही इस प्रकार अन्तर्धान हो गए हैं परन्तु इतने दिनों तक क्रोपेट का कोई भी समाचार न मिलने से उनका यह विश्वास मिट चुका है। अब क्रान्तिकारी दल में उनके सम्बन्ध में दो विचार हैं। कुछ लोगों का, दल के बहुमत का, यह कहना है कि क्रोपेट सरकारी खुफ़िया विभाग का एक उच्च अधिकारी था—उसी के द्वारा सरकार सरपञ्च को पकड़ने में सफल हो सकी है। इसके लिये वे दो प्रमाण देते हैं— सरपञ्च के पकड़ने वाला क्रोपेट का सगा भाई मोसिये ड्रावर है, जो सेंट पीटर्स बर्ग की पोलीस का मुख्य अध्यक्ष है। उन का दूसरा प्रमाण है— क्रोपेट का सहसा इस प्रकार गुम हो जाना। अन्य लोगों का मत है कि क्रोपेट सरकार से डर कर छिप गये हैं—क्यों-कि सरकार ने उनको पकड़ने के लिये भी प्रयत्न कर रही है। ये आपत्ति के दिन निकल जाने पर वह फिर क्रान्तिकारी दल की आयोजना करेंगे।

(४)

दोपहर का समय था। सरदियों के दिन थे। दोपहर होने पर भी सब ओर घना कुहर छाया हुआ था। ऐसे समय सरपञ्च एक लोहे के मज़बूत पिंजरे में सिर झुकाये बैठा था। वह चिंतित था परन्तु अपने लिये नहीं अपने देश के लिये। वह जानना चाहता था कि उसके दल का क्या हुआ है; उसके सहकारी क्रोपेट ने दल का संगठन टूटने तो नहीं दिया। उसे अपनी मृत्यु का पूर्ण निश्चय था, परन्तु उस आत्महुत वीर के लिये मृत्यु कोई डरावनी चीज़ थी ही नहीं थी, अगर वह एक बार जान पाता कि उसका दल यथापूर्व अपना कार्य कर रहा है तब वह हँसते २ प्राण दे सकता था।

पिंजरे के बाहर ८, १० सिपाही, नङ्गी तलवारें हाथ में लिये पहरा दे रहे थे। यह पिंजरा एक रौद्ररूप, भयंकर और पुराने किले में रक्खा हुवा था। किले के फाटक पर भी १०, १२ सिपाही पहरा दे रहे थे। पिंजरे के पिछवाड़े की ओर एक बैरक थी, जिसमें १०० से ऊपर मोटे, ताजे रूसी सिपाही रहते थे।

पिंजरे पर जो सिपाही पहरा दे रहे थे। उनमें से एक सिपाही खूब लम्बी दाढ़ी मूछों वाला था। यह बड़ा ही हंसोड़ और बातूनी था; अन्य सब सिपाही उसके साथ ड्यूटी पर जाने के लिए उत्सुक रहते थे। करीब ढाई मास से ही वह इस किले की पोलीस में शामिल हुआ था। उसका पूर्व परिचय लोग इतना ही जानते थे कि वह पहले एक कोयले की कान में कोयला खोदने का कार्य किया करता था; परन्तु पीछे से साधु बनने की प्रवृत्ति उसे इस महकमे में खींच लाई। वह अपनी दाढ़ी, मूछों से बहुत प्रेम करता था। वह सदैव दो कोट, दो कमीजें और दो पतलून पहना करता था, दूसरे सिपाही उसे इस पर चिढ़ाया करते थे परन्तु वह कहा करता था— "बाबा, क्या करूं ? उमर भर बंद और गरम कोयले की कान में काम किया है; अब यह सरदी, यह खुली और ठण्डी हवा कैसे बरदाश्त करूँ।"

दोपहर का समय था—सब लोग इस दढ़ियल सिपाही को घेर कर बातें कर रहे थे। सहसा बैरक के पीछे से "आग, आग" का शोर सुनाई दिया। इसी समय एक सिपाही बैरक की ओर से भागा हुवा इन लोगों को बुलाने के लिए आया। सब सिपाही यह शोर सुनते ही उस ओर भागे। दढ़ियल महाशय भारी कपड़े पहने हुए थे—वह ज़ोर से न भाग सकने के कारण जब सब से पिछड़ गए तब उन्हों ने शोर मचाना शुरू किया— "अरे बदमाशो, इस कैदी को अकेला छोड़ कर कहाँ भागे जारहे हो।" परन्तु किसी ने भी उसकी इस बात का उत्तर नहीं दिया। हाँ, वह सिपाही जो बैरक की ओर से भागा हुवा आया था उसके पास आकर बोला— "चलो, कैदी पर हम दोनों ही पहरा दें।" दढ़ियल बिना आना कानी किए वापिस चला आया।

सरपञ्ज भी कौतूहल से अग्नि की उन प्रचण्ड लपटों की ओर देख रहा था। इसी समय उसे आवाज़ आई— "सरपञ्ज !"

सरपञ्ज ने सहसा मुड़ कर देखा कि दड़ियल पिंजरे के दरवाज़े पर खड़ा होकर उसे बुला रहा है, दरवाज़ा खुला हुआ है। कुछ क्षण तक आश्चर्य से दड़ियल की ओर देखते रह कर सरपञ्ज सहसा बोल उठा— "क्रोपेट !" तत्क्षण दोनों साथी गले मिल गये।

समय अधिक नहीं था। दड़ियल ने अपनी दोहरी पोशाक उतार कर सरपञ्ज को पहनने को दी। सरपञ्ज के पुराने कपड़ों को इस प्रकार डाल दिया गया जिस से कि वे लेटे हुए आदमी के समान मालूम हों। इस के बाद बन्दूकें लेकर तीनों सिपाही किले के फाटक की ओर चले।

तीनों सिपाही एक साथ कदम मिलाते हुए किले के फाटक पर पहुंचे। सरपञ्ज की दांयी ओर क्रोपेट चल रहा था, और बाँयी ओर बैठक की ओर से भाग कर आया हुआ सिपाही। किले के फाटक पर भी इस समय केवल दो तीन सिपाही ही बचे थे। शेष सब अग्निकाण्ड का दृश्य देखने के लिये भाग गये थे। ये सब भी फाटक से १०, १२ गज़ दूर धूप में बैठ कर सम्भवतः आग ही के सम्बन्ध में बातचीत कर रहे थे। इस समय दड़ियल को दो अन्य सिपाहियों के साथ फाटक से बाहर जाता देख कर एक पहरेदार ने पूछा— "क्यों दड़ियल, कहाँ जारहे हो ?"

दड़ियल ने ठहरे बिना ही उत्तर दिया— "अरे यार, इतने दिनों बाद आज जाकर एक दिलचस्प तमाशा देखने को मिला परन्तु शोक, इस समय भी पर हमें चौकी पर इस मामले की इत्तला देने के लिये भेजा जा रहा है।"

पहरेदार एक बार धीरे से हँस कर फिर बातचीत में लग गए। किले से बाहर आकर तीनों व्यक्ति एक बार फिर गले मिले। क्रोपेट ने सरपञ्ज को बतलाया कि वह किस प्रकार नकली दाड़ी लगाकर अपने इस साथी के साथ किले के पहरेदारों में शामिल हुवा। और किस प्रकार ये दोनों व्यक्ति मौका पाकर स्वयं आग लगा कर उसे छुड़ाने में सफल हो सके।

तीनों व्यक्ति दो तीन घण्टों में बड़ी २ चट्टानों से पूर्ण एक जंगल में जाकर छिप गए।

(५)

क्रान्तिकारी दल के नेताओं की गुप्त बैठक होरही थी। सरपञ्ज अपनी ऊँची कुरसी पर विराजमान था; क्रोपेट को भी सरपञ्ज के बराबर ही ऊँचा आसन दिया गया था। शेष पांचों सरदार और "नायक" की उपाधी से विभूषित होकर बैठक वाला सिपाही मञ्च पर बैठे हुए थे। आज एक बड़े गम्भीर विषय पर विचार हो रहा था। सहसा सरपञ्ज ने एक फोटो निकाला। फोटो के नीचे लिखा था— (महाशय लीमैन.S. P. के नागराध्यक्ष)

सरपञ्ज ने धीरे से कहा— "आगामी १० मई की रात को इस व्यक्ति की हत्या की जायगी।" क्रोपेट फोटो देखते ही चौंक पड़ा— मानों उसे अतीत काल की कोई पुरानी स्मृति याद हो आई। परन्तु शीघ्र ही उसने अपने को सँभाल कर धीरे से कहा— "ओफ्, मोशियो लीमैन तो बहुत ही भला प्राणी है; उसका बध करने की क्या आवश्यकता आ पड़ी है ?"

सरपञ्ज ने तेज़ निगाह से क्रोपेट की ओर देख कर क्रोधपूर्ण स्वर में कहा— "चुप रहो।"

क्रोपेट समझ गया कि उससे अपराध हुआ है। लार्ड मेयर का बध कौन व्यक्ति करे इसके लिये पर्चियाँ डाली गईं; भाग्यवश इस के लिये क्रोपेट का नाम ही आया। क्रोपेट के चेहरे का रंग उतर गया। उसकी आंखे नीचे की ओर झुक गईं, इसी समय सरपञ्ज ने क्रोपेट की ओर फोटो बढ़ा कर कहा— "क्रोपेट, तैयार हो ?"

क्रोपेट ने काँपते हुए हाथों से फोटो ले लिया। सरपञ्ज के साथ सब सरदारों ने खड़े हो कर उसकी सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना की।

(६)

रात का समय था। चाँदनी रात थी। लार्ड मेयर के बँगले के अहाते की फूल पत्तियाँ चाँदनी में चमक रही थीं। इसी समय क्रोपेट ने काँपते हुए इस अहाते में प्रवेश किया। उसने देखा कि वह ओक का गरिमाशाली वृक्ष अब तक उसी प्रकार सिर ऊँचा किये खड़ा है—सहसा उसे आठ साल पुरानी घटनाएँ स्मरण हो आईं। ओफ़, वह कितनी बार घण्टों तक निरन्तर इस वृक्ष के नीचे बैठ कर 'उस' से बातें करता रहा है। उस समय क्रोपेट १८, २० बरस का लड़का था और वह १३, १४ बरस की बालिका थी। क्रोपेट क्षण भर तक खड़ा रह कर उस अतीत स्मृतियों से पूर्ण ओक वृक्ष की ओर देखता रहा। इसी समय सहसा मानों वह चौंक पड़ा—उसे अपना कठिन कर्तव्य याद आया। एक लम्बे श्वास के साथ इन सब कोमल और मधुर भावों को एक साथ परे ढकेल कर वह पिस्तौल पर हाथ रक्खे हुए बरामदे में जा पहुंचा।

लार्ड मेयर मोशिये लीमैन एक बहुत ही लब्धप्रतिष्ठ, धनी-मानी और सरल प्रकृति के मनुष्य थे। वर्षों से पेटर्सबर्ग की जनता एक बहुत बड़े बहुमत से उन्हें लार्ड मेयर चुनती आरही थी। लार्ड मेयर का बँगला शहर से बाहर था। वह बहुत ही उदार और दयावान थे। अतः उन्हें किसी शत्रु का भय नहीं था। उनकी धर्मपत्नी का बरसों हुए देहान्त हो चुका था। उन की आत्मीया, उन की एक मात्र सन्तान, एक कन्या थी। इस कन्या का नाम रोज़ेलिन था। वह कन्या अपूर्व सुन्दरी और दिव्य गुणों से युक्त थी। क्रोपेट के पिता से मोशिये लीमैन की घनिष्ट मित्रता थी। वह प्रायः बालक क्रोपेट को साथ लेकर उन से मिलने के लिये उन के बँगले पर आया करते थे। क्रोपेट साधु स्वभाव, सुन्दर बालक था, और रोज़ेलिन देवकन्या के समान सुन्दर और शान्त-स्वभाव बालिका थी। दोनों बालक सायंकाल के समय मोशिये लीमैन के बँगले के अहाते में खेला करते थे;- एक दूसरे को प्रेम के साथ अपना सुख दुख सुनाया करते थे। इसी प्रकार निरन्तर बरसों तक दोनों का यह निष्कलङ्क और पवित्र प्रेम वृद्धि पाता रहा था। परन्तु पीछे से क्रोपेट देश भक्ति के उन्नत भावों से भर कर मातृ-भूमि को ज़ारशाही के अत्याचार-पूर्ण बन्धनों से मुक्त करने के लिये क्रान्तिकारी दल में सम्मिलित हो गया था।

क्रान्तिकारी दल का सदस्य बन कर उस ने सभी सांसारिक अभिलाषाओं और महत्वाकांक्षाओं को भुला देने का यत्न किया था। अपने उच्च स्वभाव और प्रखर प्रतिभा के कारण इस "तप" में वह पर्याप्त अंश तक सफल भी हो गया था; परन्तु फिर भी कभी कभी उसे रोज़ेलिन की मधुर स्मृति हो ही आया करती थी। कभी २ वह स्वप्न लेता था कि वह अपनी मातृ-भूमि को स्वतन्त्र करने में सफल होकर रोज़ेलिन द्वारा वरमाला प्राप्त कर चुका है। इसे उसके हृदय की निर्बलता कहा जासकता है परन्तु उसकी यह निर्बलता स्वप्न में भी उसे मातृ-भूमि की सेवा से क्षण भर के लिये भी च्युत न कर सकती थी। जब उसे मोशिये लीमैन का बध करने की आज्ञा दी गई तब वह इसी कारण कांप उठा था। उस समय वह इस कार्य से इन्कार भी करने लगा था, परन्तु पीछे से कर्तव्य की प्रेरणा से उसने सिर झुका कर इस कठिन कर्तव्यको स्वीकार कर लिया था।

अस्तु-क्रोपेट बरामदे में चला गया। उसने दरवाज़ों के बीच से देखा कि बँगले के हॉल में एक गैस का बड़ा हण्डा जल रहा है, हॉल में बिल्कुल सन्नाटा है, वहाँ कोई भी व्यक्ति नहीं है। क्रोपेट मोशिये लीमैन की बैठक जानता था- बैठक इस हाल से काफी दूर, तीन कमरे छोड़ कर थी। क्रोपेट पिस्तौल हाथ में लेकर लड़खड़ाती हुई टाँगों के साथ हाल में प्रविष्ट हुआ। लकवे के बीमार की तरह उसका सारा शरीर काँप रहा था। क्रोपेट के माथे से पसीने की धाराएं छूट रही थीं, उसका मुख लाल हो रहा था- हृदय बड़े वेग से धड़क रहा था।

इस अवस्था में क्रोपेट का चेहरा और भी मनोहर हो उठा था।

क्रोपेट पिस्तौल हाथ में लिये हुए हौल में आकर खड़ा हो गया। दीवार के पास खड़ा हो कर वह चारों ओर घबराई हुई दृष्टि से देखने लगा; कई मिनट तक वह इसी प्रकार खड़ा रहा, तब उसकी घबराहट कुछ कम हो चली।

उफ, यह क्या? सामने के दरवाजे से स्वर्गीय देवी समान सुन्दरी रोज़ेलिन आकर गैस के हण्डे के नीचे खड़ी हो गई। उसके सिर पर कोई आवरण नहीं था। क्रोपेट के शरीर में मानो बिजली घूम गई। उस ने शीघ्रता से पिस्तौल जेब में डाल लिया। रोज़ेलिन क्रोपेट को अचानक देख कर चौंक उठी। कुछ क्षण तक स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखते रह कर वह उन्मत्त की तरह क्रोपेट की तरफ बढ़ी। उसके मुंह से निकला— "ओह, क्रोपेट! तुम इतने वर्षों बाद,— इस समय,— इस अवस्था में,— यहां!"

क्रोपेट का गला भर आया, उसके मुंह से इतना ही निकला— 'ओह! रोज़!" क्रोपेट के हृदय में भयङ्कर तूफान चल रहा था। वह रोज़ेलिन को इतना निकट आया देख कर एक कदम पीछे तो हटा, परन्तु इसके बाद ही उसने रोज़ का हाथ पकड़ लिया। रोज़ेलिन किङ्कर्तव्य विमूढ़ होरही थी-उसने लड़खड़ाती आवाज़में पूछा— "प्रियतम क्रोपेट, यह क्या!"

क्रोपेट मूर्च्छित हो रहा था। परन्तु वह बेहोश होकर गिरा नहीं- सम्भल गया। उसने रोज़ का हाथ चूम कर कहा— "प्रियतम रोज़! बिदाई!"

यह कह कर वह अपना हाथ छुड़ा कर बाहर की ओर भागा। रोज़ेलिन ने भी शीघ्रता से उसी ओर बढ़कर आवाज़ दी-- "क्रोपेट, प्रियतम क्रोपेट!"

परन्तु उसकी चीखती हुई पुकार का किसी ने उत्तर नहीं दिया। रोज़ेलिन ने बरामदे में आकर चाँदनी से ढके हुए बगीचे की ओर देखा। उसने देखा कि क्रोपेट एक बार ओक के उस पवित्र वृक्ष को चूम कर बाहर की ओर भाग गया।

इसी समय मो० लीमैन ने अपनी बैरक से आकर पूछा-"रोज़, क्या है?" बालिका हतज्ञान होकर बिना कोई उत्तर दिए अपने पिता का हाथ पकड़ कर अन्दर चली गई।

(७)

सरपञ्च के सामने क्रोपेट सिर झुका कर खड़ा हुआ था। इसी एक रात में क्रोपेट का सुन्दर और भरा हुआ शरीर एक दम निस्तेज और क्षीण होगया था। सरपञ्च की आंखों में आँसू भरे हुए थे। वहीं सरदार और नायक सिर झुका कर बैठे हुए थे। पूरा मातम छाया हुवा था।

बहुत देर तक यही हाल रहा, अन्त में क्रोपेट धीरे २ बोला— "मैं संघ की आज्ञानुकार्य नहीं कर सका हूं-कार्य करने में असमर्थ रहा हूं। अतः नियमानुसार मुझे प्राणदण्ड दीजिये।"

सरपञ्च ने आंखों पर रूमाल रख कर गम्भीरता से कहा— "अगर संघ में प्रविष्ट करते समय तुम्हारे साथ रियायत करने की वह भूल न की जाती तो शायद आज यह बुरा दिन न देखना पड़ता।"

क्रोपेट ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुका कर हाथ जोड़ कर ईश्वर से प्रार्थना कर रहा था।

इसी समय पिस्तौल की भयंकर आवाज़ हुई; देवोपम, कर्मवीर क्रोपेट का शरीर चेतनारहित होकर गिर पड़ा—

सरपञ्च ने नियमानुसार क्रोपेट को दण्ड तो दिया परन्तु वह अपने प्राणदाता के बध से उत्पन्न हुए २ दुख को सह नहीं सका। अगले ही क्षण सरपञ्च ने पिस्तौल का मुंह मोड़ कर स्वयं भी आत्मघात कर लिया।

सरपञ्च के कथनानुसार एक ज़रा सी भूल का इतना भयंकर परिणाम हुवा।

वेद और विकासवाद

(ले० प्रो० विश्वनाथ विद्यालङ्कार)

(१)

विकासवाद से प्रायः सभी पठित लोग परिचित हैं। इस की विशेष व्याख्या की इस लेख में आवश्यकता नहीं। इस लेख में विकासवाद के केवल एक सिद्धान्त को दर्शा कर उस को वैदिक कसौटी पर परख करनी है। विकाशवाद का वह सिद्धान्त यह है कि संसार में शनैः २ विज्ञान, धर्म, आचार और नीति की उन्नति होती जा रही है। अतः इस सिद्धान्त का एक परिणाम यह भी निकलता है कि वर्त्तमान समय से जो समय अति-प्राचीन है वह वर्त्तमान समय की अपेक्षा अति असभ्य भी है। अर्थात् वर्त्तमान समय के सदृश विज्ञान, धर्म, आचार और नीति के विचार इस से अति प्राचीन समय में न तो थे ही और न होने सम्भव ही थे।

(२)

इसी कल्पना के अनुसार पाश्चात्य विद्वान् तथा विकासवादी भारतीय विद्वान् भी वैदिक साहित्य के सम्बन्ध में कोई उच्च विचार नहीं रखते। यह ठीक ही है कि वेद संसार के समग्र साहित्य में अति प्राचीन ग्रन्थ हैं। और इसी कारण से विकासवादियों की दृष्टि में वेद का उतना महत्त्व नहीं। विकासवादी यदि वेद की प्रशंसा करते हैं तो इस दृष्टि से कि वेद आदि सभ्यता के विकाश के दृष्टान्तों का ख़ज़ाना है, न कि इस दृष्टि से कि वेद में विज्ञान, धर्म, आचार और नीति के उच्च सिद्धान्त हैं। इसी लिये पाश्चात्य विद्वानों ने वेदों के प्रचलित स्वरूप के पौर्वापर्य के सम्बन्ध में भी तरह २ के विचार पेश किये हैं, ताकि उन की कल्पना के फैलाव को उन्हें और क्षेत्र मिल सके। चाहिये तो यह था कि वेदों के स्वरूप के वर्त्तमान तथा चिरप्रचलित पौर्वापर्य को ठीक मान कर वे विकासवादी अपने विकास सिद्धान्त के स्वरूप में उचित परिवर्तन करते। परन्तु इस उचित परिवर्तन को न करते हुए उन विकासवादियों ने— विकाशवाद के प्रचलित सिद्धान्तों में अतिशय विश्वास और श्रद्धा से प्रेरित हो कर— वेदों के स्वरूप के प्राचीन काल से आए हुए पौर्वापर्य में, अपने सिद्धान्त के अनुसार उचित परिवर्तन कर लेना आवश्यक समझा है ताकि वेदों में से विकासवाद की जड़ की कुठारता नष्ट भ्रष्ट हो सके। इस लेख में मैं यह दर्शाने की कोशिश नहीं करूँगा कि वैदिक स्वरूप का प्रचलित पौर्वापर्य ठीक है या विकाशवादियों द्वारा दर्शाया गया उस का पौर्वापर्य। अपितु, अभ्युपगमवाद द्वारा यह मान कर कि चलो! विकासवादियों द्वारा निर्दिष्ट वेदों के स्वरूप का पौर्वापर्य ही ठीक सही, तो भी विकासवाद के प्रति वेदनिष्ठकुठारता दूर नहीं हुई— इतना ही कतिपय दृष्टान्तों से मैं इस लेख में दर्शाऊँगा।

३

इसी विकासवाद की कल्पना के अनुसार पाश्चात्य विद्वान् यह भी मानते हैं कि वैदिक समय में लेखन-कला का अभाव था। कई विकासवादी तो यह भी कहने का साहस करते हैं कि पाणिनी को भी लेखनकला का परिज्ञान नहीं था। मेरी यह निश्चित धारणा है कि पाणिनी का अथर्ववेद के साथ परिचय अवश्य था, और पाणिनी के समय में अथर्ववेद को अन्य वेदों की समकक्षता भी प्राप्त हो चुकी थी। (आर्ष दृष्टि में तो चारों वेद अनादि और अत एव एक ही काल के हैं)।

पाणिनी आचार्य से पूर्व काल के अथर्ववेद के १९ वें काण्ड में हमें तीन मंत्र मिलते हैं। जिन से लेखन-कला का प्रमाण मिलता है। वे मन्त्र निम्न लिखित हैं:—

(१) अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया। ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे।

अथर्व० १९। ६८॥

अर्थः— मैं बुद्धि द्वारा अव्यापक और व्यापक के भेद को खोलता हूं। उन के भेद को जानने के लिये, वेद को उठा कर, हम कर्मों को करते हैं।

(२) स्तुता मया वरदा वेदमाता प्र चोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्॥ अथर्व० १९। ७१॥

अर्थः— मैंने अभीष्ट फलदायिनी वेदमाता का अध्ययन कर लिया है, जो कि द्विजों को पवित्र करने वाली है। उस वेद माता के यश का विस्तार संसार में करो।

यस्मात्कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम्। कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह॥ अथर्व० १९। ७२॥

अर्थः— जिस पेटी में से वेद को हम ने उठाया था, उसी पेटी के भीतर इस वेद को हम रख देते हैं। क्योंकि वेद द्वारा जो हम ने इष्ट सम्पादन करना था वह कर लिया। हे देव लोगो! तुम वेद की शक्ति द्वारा मेरी इस संसार में रक्षा करो।

इन तीन मन्त्रों के अर्थों पर कुछ विचार करना चाहिये। पहले मन्त्र में "वेद को उठाने" का वर्णन है। दूसरे मन्त्र में यह कहा है कि मैं ने वेद का स्वाध्याय कर लिया है। तीसरे मन्त्र में यह कहा है वेद को, स्वाध्याय के लिये, जिस "कोश अर्थात् पेटी में से हमने निकाला था, उसी कोश अर्थात् पेटी में अब स्वाध्याय के पश्चात् हम इस वेद को रख देते हैं"। इस प्रकार "वेद को उठाना" "वेद को पेटी में से निकालना" तथा "उसे पुनः पेटी में डालना" —ये तीन भाव तभी उपपन्न हो सकते हैं जब कि हम यह मान लें कि अथर्ववेद के समय में वेद लिखित रूप में अवश्य थे। इस कल्पना के बिना इन तीन भावों का उत्पादन सर्वथा असम्भव है। अतः लेखन-कला की दृष्टि से वैदिक सभ्यता वर्त्तमान सभ्यता की अपेक्षा नीची प्रतीत नहीं होती। अतः लेखन कला का यह नवीन वैदिक प्रमाण विकास-

वाद की कल्पना के मूल पर कुठार-पात सदृश है। कई विद्वान् इन मन्त्रों में वर्णित वेद का अर्थ "झाड़ू" लेते हैं। यदि इन मन्त्रों में वेद का अर्थ झाड़ू ले लिया जाय तो ऊपर के तीन भाव झाड़ू में उपपन्न हो तो सकते हैं, परन्तु तीनों मन्त्रों के समुदित भाव, झाड़ू के सम्बन्ध में अतीव असम्बद्ध, निरर्गल, तथा व्यर्थ प्रतीत होते हैं। क्योंकि न तो झाड़ू द्वारा "अव्यापक और व्यापक के परस्पर भेद की समस्या ही हल हो सकती है, और न उसे वेदमाता शब्द से ही पुकार सकते हैं, तथा न वह झाड़ू द्विजों को पवित्र ही कर सकता है, और न झाड़ू से इष्ट वस्तुओं की सिद्धि ही हो सकती है, तथा न उस झाड़ू के द्वारा देव लोग वेद के स्तावक की रक्षा ही कर सकते हैं"। अतः इन मंत्रों में वेद का अर्थ ऋग्वेद आदि वेद ही हैं न कि झाड़ू।

(४)

विकासवादियों की द्वितीय स्थापना यह है कि असभ्य जातियों में गणना की अवधि कोई उच्च कोटि की नहीं होती। इन असभ्य जातियों में कई तो ५ तक गिन सकते हैं, कई १० तक, कई २० तक, और कई २५ तक। परन्तु वर्त्तमान समय की सभ्य जातियों में गणना की अवधि बहुत उच्च कोटि की है। इस लिये गणना की दृष्टि से भी संसार में अवश्य विकास हुआ है— ऐसा विकासवादी मानते हैं। अब मैं देखना चाहता हूं कि गणना के आधार पर विकासवाद की स्थिति वेदों के सम्बन्ध में किस प्रकार की है। यजुर्वेद के १७ वें अध्याय का दूसरा मन्त्र इस स्थिति के सम्बन्ध में पर्याप्त प्रकाश डालता है, जो कि निम्न लिखित है। यथा :—

इमा मे अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च, दश च शतं च, शतं च सहस्रं च, सहस्रं चायुतं च, अयुतं च नियुतं च, नियुतं च प्रयुतं च, अर्बुदं च, न्यर्बुदं च, समुद्रश्च, मध्यं च, अन्तश्च, परार्द्धश्चैता म अग्न इष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके

यजु० ॥ १७ । २ ॥

इस मन्त्र में एक से लेकर दस २ की वृद्धि के क्रम से संख्या की परिगणना है। इस गणना में कई प्रक्रम, वर्त्तमान संस्कृत साहित्य की गणना के अनुसार, छुटे हुए (Understood) प्रतीत होते हैं। यदि यह मान भी लिया जाय कि वैदिक साहित्य के अनुसार गणना की दशोत्तर वृद्धि का यह ही प्रक्रम है जो कि यजुर्वेद के ऊपर के मन्त्र में दर्शाया गया है, तो भी यह गणना अपने तईं इतनी उच्च अवधि तक गिनाई गई है कि यह विकासवादियों की "गणना सम्बन्धी कल्पना" का समुचित रूप में खण्डन कर सकती है। ऊपर के मंत्र में की दशोत्तरवृद्धि की गणना निम्नरूप से है। यथाः—

(१) एकम् (२) दश (३) शतम् (४) सहस्रम् (५) अयुतम् (६) नियुतम् (७) प्रयुतम् (८) अर्बुदम् (९) न्यर्बुदम् (१०) समुद्रः (११)

मध्यम् (१२) अन्तः (१३) परार्द्धः ।

इस प्रकार यह संख्या एक से शुरु होकर १२ बिन्दुओं में समाप्त की गई है । जो १०००००००००००० अर्थात् दस खर्ब तक है। विकास-वादियों की दृष्टि से, यजुर्वेद की इस गणना का, विकासवाद के सिद्धान्त के अनुकूल उपपादन असम्भव है। या तो उन्हें यह मन्त्र वर्त्तमान काल का मानना पड़ेगा और या उन्हें गणना के सम्बन्ध में अपनी विकास वाद की कल्पना छोड़नी पड़ेगी ।

(५)

इस सम्बन्ध में एक और बात भी विचारणीय है। वह यह कि हम देखते हैं कि इतनी ऊँची गणना का सम्बन्ध उच्चविज्ञान तथा ज्योतिः शास्त्र के साथ है । व्यवहारशास्त्र में इतनी बड़ी संख्या की प्रायः आवश्यकता नहीं होती । अतः गणना की इस उच्चतम अवधि की सत्ता में यह मान लेना कि वेदों में उच्चविज्ञान तथा ज्योतिः शास्त्र सम्बन्धी उच्चज्ञान भी अवश्य होगा— कोई अनुपपन्न प्रतीत नहीं होता ।

(६)

विकासवादियों की एक और भी कल्पना है वह यह कि "असभ्य या अविकसित जातियों की भाषा में एक मामूली से भाव (Idea) को दर्शाने के लिये भी बड़े २ शब्दों का प्रयोग किया जाता है। छोटे २ शब्दों द्वारा वे जातियां उस भाव को प्रकाशित नहीं कर सकती जिसे कि वर्त्तमान समय की सभ्य जातियां करती हैं । उदाहरण के रूप में उत्तर अमेरीका के "रिकारी,, और "पौनी" लोगों की भाषा में दिन को "शाकूरूई शाइरेट" तथा भूत को "शाहीवकाकुराइवाह" कहते हैं । इसी प्रकार उन असभ्य वन्य जातियों की भाषा के अन्य शब्द भी, मामूली से मामूली भाव के प्रकाशन के लिये, बड़े लम्बे २ प्रयुक्त होते हैं । परन्तु सभ्य जातियों की भाषाओं में बड़े तथा संकीर्ण भावों को भी छोटे २ शब्दों में प्रकाशित किया जा सकता है । अतः इस वर्णन से यह सिद्धान्त निकलता है कि "जिन जातियों की भाषा में भावप्रकाशक शब्द छोटे २ हैं वे उसी अनुपात से अधिकाधिक सभ्य भी हैं" । अब मैं इस कसौटी पर वैदिक शब्दों को परख करना चाहता हूं । वेदों के शब्द जितने संक्षिप्त हैं उतने ही भाव में विशाल तथा गम्भीर भी हैं। इस का अनुभव कि वैदिक शब्द भाव में गम्भीर तथा स्वरूप में संक्षिप्त हैं— प्रत्येक वैदिक स्वाध्यायशील को है। इस के सम्बन्ध में विशेष उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं ।

(क्रमशः)

वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य की आलोचना ।

(लेखक—ग्रन्थलेखक श्री पं० चन्द्रमणि जी विद्यालंकार)

गतवर्ष श्री चमूपति जी एम. ए. ने यमयमी सूक्त पर एक विशेष लेख आर्य में प्रकाशित किया । मैंने उस का विस्तृत समालोचना की,

जो कि 'अलङ्कार' और 'वैदिक धर्म' दोनों में प्रकाशित हुई। श्री चमूपति जी ने उस का प्रत्युत्तर दिया और मेरे बनाए हुए वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य की आलोचना प्रारम्भ की। इसके ५ लेख क्रमशः आर्य में प्रकाशित हुए। मैंने पहले यही उचित समझा था कि इस विशेष लेख माला का कुछ भी उत्तर न देना ठीक होगा। वेद के प्रेमी सज्जन उपर्युक्त वेदार्थ-दीपक को पढ़कर स्वयमेव सन्तुष्ट हो जावेंगे। परन्तु जब यह देखा गया कि आर्यपुरुषों में वेद के लिए अभी इतनी प्रगाढ़ रुचि उत्पन्न नहीं हुई कि वे स्वयं वैदिक साहित्य का स्वाध्याय करके सत्यासत्य का निर्णय करें, तो बढ़ती हुई भ्रान्ति को दूर करने के लिये मैंने श्री चमूपति जी की आलोचना की परीक्षा करना उचित समझा और तदनुसार पहला लेख आर्य में प्रकाशित करने के लिए श्री चमूपति जी सम्पादक आर्य के पास भेजा। उस आलोचन परीक्षा के आधार पर संपादक जी ने छठा लेख और लिखा और अपनी लेखमाला समाप्त की। और मेरा लेख पहुंचने के पश्चात् आर्य के तीन अंक प्रकाशित हो चुके हैं, परन्तु उक्त संपादक जी ने उसे अपने आर्य में स्थान नहीं दिया। आलोचक संपादकों को विशेष उदार होना चाहिए, यही न्याय्य मार्ग है। मैं नहीं उचित समझता कि आर्य में प्रकाशित हुई निरुक्त-भाष्य-समालोचना-माला की परीक्षा किसी अन्य पत्र में उपस्थित की जावे। अतः बाधित होकर मैं इस परीक्षण को अब प्रारम्भ नहीं करूंगा।

सम्पादकीय विचार

२६ जुलाई

आर्य समाज के भावी इतिहास में २६ जुलाई का दिन चिर स्मरणीय रहेगा। आर्य समाज ने एक जीती-जागती शक्ति बनना है या नहीं; इसका निर्णय इस दिन होगा। जो आन्दोलन राजकीय शक्ति के दमन का मुकाबला नहीं करते, वे नष्ट होजाते हैं। उनका नामो-निशान भी इतिहास में नहीं बचता। पर जो दमनकारियों का सामना करने को तत्पर होते हैं, वे बार २ असफल होकर भी अंत में विजयी होते हैं। ब्रिटिश सरकार आर्यसमाज के धार्मिक अधिकारों को कुचल रही है। नगर कीर्तन समाज के वार्षिकोत्सव का आवश्यक अंग है। उसे स्वतन्त्रता पूर्वक करना आर्यों का धार्मिक अधिकार है। पर अब सरकार इसमें अनेक बाधायें डाल रही है। देहरादून, रोहतक आदि बहुत से जिलों में नगर कीर्तन बन्द किये गये हैं। इस समय आर्य-समाज का यही कर्तव्य है कि हिम्मत के साथ सरकार का मुकाबला करे। जिस किसी भी तरह सम्भव हो, अपने

अधिकारों की रक्षा करे। इसी लिये सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा ने निश्चय किया है, कि २६ जुलाई के दिन सम्पूर्ण भारत में आर्य-समाज की ओर से सभायें की जावें, जिनमें कि सरकार की नीति के विरुद्ध प्रस्ताव स्वीकृत हों। विरोध में प्रस्तावों का स्वीकृत करना अपने असन्तोष को प्रगट करने का एक साधन है। इस लिये पहले उसका अवलम्बन करना अनुचित नहीं है। पर ख्याल रखना चाहिये कि प्रस्ताव स्वीकृत कर देने से कुछ नहीं बन सकता। ब्रिटिश सरकार शक्ति से डरती है, प्रस्तावों से नहीं। इस लिये २६ जुलाई के दिन प्रस्ताव स्वीकृत करने के साथ साथ यह भी निश्चय करना चाहिये कि अपने धार्मिक अधिकारों की रक्षा के लिये किन क्रियात्मक उपायों का प्रयोग किया जाय। सरकार को पराजित करने का सत्याग्रह से बढ़कर अन्य कोई साधन नहीं है। इसी को प्रयोग करने का निश्चय २६ जुलाई को करना चाहिये। स्थान २ पर उन स्वयं सेवकों का संगठन होना चाहिये, जो सत्याग्रह करने को तैयार हों। यदि यह हो सका, तो निस्सन्देह आर्य समाज का भविष्य बहुत उज्वल है। उन्नतिशालि समाज अत्याचार और दमन के सम्मुख सिर नहीं झुकाते। आर्य समाज अन्य सम्प्रदायों और विरोधी शक्तियों के साथ बहुत युद्ध कर चुका है, इसमें उसे सफलता भी हुई है। हमें विश्वास है कि यह अनुभवी योद्धा सरकार को भी पराजित कर सकेगा।

मुगल काल में हिन्दू मुसलिम समस्या

आधुनिक हिंदू-मुसलिम फ़िसादों को देख कर बहुत से लोगों को यह विश्वास हो गया है कि ये दोनों जातियां (या सम्प्रदाय) परस्पर कभी मिल नहीं सकती। परन्तु वर्तमान हिन्दू-मुसलिम झगड़े भारतीय सरकार की भेदनीति के परिणाम हैं। सरकार दोनों सम्प्रदायों को लड़ा भी सकती है और मिला भी सकती है। यह उस की नीति पर आश्रित है। अब से कई सदी पूर्व भारत के मुग़ल बादशाहों ने इस बात का अनुभव किया था कि अपने साम्राज्य की स्थिरता के लिये दोनों सम्प्रदायों को मिला कर रखना अनिवार्य है। मुगलों ने भारत का शासन अफ़गानों को जीत कर प्राप्त किया था। उस समय के अफ़गान और भारतीय मुसलमान स्वाभाविक रूप से मुगल साम्राज्य के विरोधी थे। अतः मुगल बादशाह उन के आश्रय पर शासन न कर सकते थे। इसी लिये अकबर ने अपने शासन का आधार मुसलमानों को न बना कर भारतीय जनता को बनाया था। अकबर को हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों पर अधिक ज्यादतियां करनी पड़ी थीं। अकबर की इस नीति का अनुसरण जहांगीर और शाहजहाँ ने भी किया। इसीलिये मुगल साम्राज्य एक शताब्दि तक किसी विरोध और बाधा के बिना निरन्तर उन्नति करता गया। सब से पूर्व औरङ्गजेब ने इस नीति का उल्लङ्घन किया। इसी लिये उस

के समय मुगल साम्राज्य का अधःपतन प्रारम्भ हो गया। औरङ्गजेब के मजबूत शासन के हटते ही साम्राज्य टुकड़े २ हो गया।

मुगलों ने शुरु से ही इस सहिष्णुता और मेल की नीति का अनुसरण किया था। मुगल साम्राज्य के संस्थापक बाबर ने भी इसका ही अवलंबन किया था। यह बात उसके एक पत्र द्वारा अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है। पत्र उसने अपने लड़के हुमायूं को लिखा था। इसे प्रकाशित करने का श्रेय गुरुकुल के भूतपूर्व इतिहासोपाध्याय डा० बालकृष्ण जी एम. ए; पी. एच. डी. को हैं। हम पत्र को यहाँ उद्धृत करते हैं—

"ज़हीर-उद्दीन महम्मद बादशाह गाज़ी का गुप्त मृत्युपत्र, राजपुत्र नसीर उद्दीन मुहम्मद हुमायूं के नाम-जिसे खुदा ज़िन्दगी बख्शे—सल्तनत की मजबूती के लिये लिखा हुआ।

ऐ बेटे! हिन्दुस्तान की सलतनत मुख्तलीफ़ मज़हबों से भरी हुई हैं। खुदा का शुक्र है कि उसने तुझे उस की बादशाही बख्शी है। तुझ पर फर्ज़ है कि अपने दिल के पर्दे से सब तरह का मजहबी तअस्सुब धो डाल। हर मज़हब के कानून से इन्साफ कर। खास कर गौ की कुरबानी से बाज आ जिससे तू लोगों के दिल पर काविज़ हो सकता है और इस मुल्क की रिआया तुझ से वफादारी से बँध जायगी।

किस फिर्के के मन्दर को मत तोड़ जो कि हुकुमत के कानून का पायबंद हो। इन्साफ इस तरह कर कि बादशाह से रियाया और रिआया से बादशाह खुश रहे। उपकार की तलवार से इस्लाम का काम ज्यादा फतेयाब होगा बनिस्बत जुल्म की तलवार के।

शिया और सुन्नियों के फर्क को नज़रन्दाज़ कर, वर्ना इस्लाम की कमज़ोरी जाहिर हो जायगी।

और मुख्तलिफ विश्वासों की रिआया को चार तत्वों के अनुसार (जिनसे यह इन्सानी जिस्म बना हुआ है) एक रस करदे, जिससे बादशाहत का जिस्म तमाम बीमारियों से महफ़ूज़ रहेगा। खुश किस्मत तैमूर का याददाश्त सदा तेरे आँखों के सामने रहे जिससे तू हुकूमत के काम में अनुभवी बन सके।" इस मृत्युपत्र पर तारीख १ जमादिल अव्वल सन् ३६५ हिज्री लिखा हुआ है।

गुरुकुल समाचार

ऋतु—ऋतु सुहावनी हैं। आकाश काली घटाओंसे घिरा रहता है। दिशायें गंगा के कल कल नाद और बादलों के गम्भीर घोष से गूंज रही हैं। भूमिने हरी मखमल की चादर ओढ़ ली है। वृक्ष स्नान कर लहलहा उठें हैं। सूखे वृक्षों में नई २ कोपलियां निकल आई हैं। गंगा तीव्र वेग से बढ़ रही हैं। चारों ओर के नालों में भी पूर आगया है। गुरुकुल इस समय

एक टापू बन गया है। तमेड़ें ही पार जाने का एक मात्र साधन हैं।

विगत सप्ताह ब्र० नारायण को Congestion of Brain हो गया था। अवस्था भयानक होगई थी पर ब्रह्मचारियों की अविश्रान्त सुश्रुषा और डाक्टरोंके अनवरत परिश्रम के कारण अब ब्रह्मचारी पूर्णस्वस्थ है। इस समय एकज़ीमाके बीमारोंके सिवाय और कोई बीमार नही है।

मान्य अतिथि महोदय— इस मास दर्शकों का आवागमन जारी रहा। विश्वविद्यालय-व्याख्यान माला के प्रसंग से कलकत्ता विश्व विद्यालय के महायान धर्मके प्रोफेसर श्री किमोरा आए थे। आपके एक सप्ताह भर तक महायान धर्म पर व्याख्यान होते रहे। इसी सप्ताह उपदेशक विद्यालय के आचार्य श्री स्वामी स्वतन्त्रानन्द जी पधारे थे। आप एक सप्ताह तक ठहरे और 'सिक्ख-धर्म' पर व्याख्यान दिया। अभी स्वामी जी की व्याख्यानमाला समाप्त नहीं हुई है। शेष व्याख्यान सम्भवतः शीतऋतु में देंगे।

इसी मास लाहौर के F. C. कालेज के फिलासफी के उपाध्याय वेण्डल एम टॉमस पधारे थे। आपने शिक्षा पर एक व्याख्यान भी देने की कृपा की थी।

कल से श्री स्वामी हरप्रसाद जी पधारे हुए हैं। आपके विश्व विद्यालय व्याख्यान माला में दर्शन और वेद पर व्याख्यान हो रहे हैं।

१२ जुलाई को युगाण्डा के प्रसिद्ध करोड़पति व्यापारी नानजी कालीदास पधारे थे। आप को युगाण्डा का प्रिंस कहा जाता है। आपने एक दिन तक रह कर गुरुकुल के प्रत्येक कार्य का निरीक्षण किया। ब्रह्मचारियों की वक्तृत्व शक्ति और कौशल का प्रदर्शन भी देखा। सतकों की खेलों से खुश होकर आपने इसके शिक्षक श्री बिशनदास जी को पदक देने की इच्छा प्रगट की। आपने अपना आत्म चरित भी कुल वासियों की सभा में सुनाया, जो मनोरञ्जक होते हुए अत्यन्त उपयोगी था।

कुल पिता कुलमें — विगत मास कुलपति श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज ने भी कुलमें पधारने की कृपा की थी। आपका प्रतिदिन प्रातःकाल ब्रह्मचर्य पर व्याख्यान होता रहा। ये व्याख्यान ब्रह्मचारियों के लिये विशेष उपयोगी सिद्ध हुए हैं। आपकी उपस्थिति से पूर्ण लाभ उठाने के लिए कुलवासी प्रत्येक मिनट का उपयोग करने से नहीं चूके।

जन्मोत्सव— १२ जुलाई को नव स्नातक पं० प्रियव्रत वि० अ० की अध्यक्षता में संस्कृतोत्साहिनी का जन्मोत्सव समारोह से मनाया गया। ब्रह्मचारियों ने स्वरचित कविताओं और वक्ताओं ने धारा प्रवाही वक्तृताओं द्वारा दिखाया कि ब्रह्मचारियों का संस्कृत के प्रति प्रेम दिनों दिन उत्तरोत्तर गहरा होता जा रहा है। सभा के अन्त में समस्याओं की पूर्ती की गई। प्रत्येक समस्या के लिये ५ मिनट समय था। कवियों ने अपनी प्रतिभा का चमत्कार भली प्रकार दिखाया। सांयकाल

सहभोज के अनन्तर कविसम्मेलन हुआ जिस में प्राचीन कवियों की कविताओं की चाशनी चखाने का यत्न किया गया था।

गुरुकुलीय राष्ट्र प्रतिनिधि सभा का अधिवेशन अत्यन्त निकट आगया है, ब्रह्मचारी गण इसकी सफलता के लिये प्रयत्न कर रहे हैं इस अवसर पर बाह्य विद्वानों को भी निमन्त्रित किया गया है।

गुरुकुल की सब से पुरानी सभा साहित्यपरिषद्–जिसकी ओर से प्रति वर्ष वार्षिकोत्सव में सरस्वती सम्मेलन की बैठकें होती हैं—का जन्मोत्सव १६ जुलाई को होगा।

रजत जयन्ती— रजत जयन्ती सम्बन्धी सब उपसमितियां अपना अपना कार्य तेजी से कर रही हैं। रजत जयन्ती की सफलता के लिये सब प्रकार से यत्न किया जा रहा है। सब उपाध्यायों ने अपना अवकाश का समय धन संग्रह को देने के लिये स्वीकार कर लिया है। उपाध्याय महानुभावों ने अपने एक मास की आय भी इस फण्ड में अर्पण करने का निश्चय किया है। हमें निश्चय है यह त्याग की पवित्र भावना आर्य समाज की त्याग की भावना को परिपुष्ट करने में सहायक होगा। अवकाश के समय ब्रह्मचारीगण भी भिक्षा की झोली ले कर निकलेंगे। हमें विश्वास है कि आर्य जनता इन की झोलियों को भरने के लिये कुछ उठा न रखेगी।

परीक्षायें— उपसत्र परीक्षा समाप्त हो गई हैं। षाण्मासिक परीक्षा समीप है। अतः उपाध्यायगण और ब्रह्मचारीगण पढ़ाई में रत हैं। परीक्षा की तिथियां निश्चित नहीं हुई। शीघ्र ही निश्चित होने वाली हैं।

ग्राहकों से निवेदन

(१) यहाँ से 'अलङ्कार' भली प्रकार पड़ताल करके डाकखाने में भेजे जाते हैं। डाक विभाग की अव्यवस्था के कारण प्रतिमास कुछ एक ग्राहकों की हमारे पास शिकायत आती है कि उन्हें 'अलङ्कार' नहीं मिला। ऐसे ग्राहक महोदय सदा हमारे प्रबन्ध को ही कोसते हैं। इसमें सब दोष डाक विभाग का है हमारा नहीं। आप अपने डाकखाने से लिखकर पूछिए और फिर वह उत्तर हमारे पास शीघ्र भेज दीजिए, हम मुख्य अफसर के पास इस अप्रबन्ध की रिपोर्ट कर देंगे।

(२) पत्र व्यवहार करते समय प्रत्येक ग्राहक को अपनी ग्राहक संख्या अवश्य लिखनी चाहिए। इसके बिना हमारा समय बहुत नष्ट होता है। अतः, हम आगे से ऐसे पत्रों का कुछ उत्तर न देंगे।

चन्द्रमणि–प्रबन्धकर्त्ता

बदाक़त खुद ब खुद कर देती है शोहरत ज़माने में।
मुनाफ़ा इस क़दर रखिये नमक जितना हो खाने में॥

(१) गंगाविष्णु नैनामृताञ्जनः—यह सफ़ेद सुरमा शिरीष की जड़ में ६ महीने रख कर तथा अन्य वैज्ञानिक तरीकों से शुद्ध करके १ साल की लगातार मेहनत के पश्चात् तय्यार किया गया है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि यह सुरमा आंखों की निम्न बीमारियों में अकसीर साबित हो चुका है—

नेत्रों में खारिश का उठना, रतौंधी, दूर अथवा समीप की वस्तु का साफ़ २ नज़र न आना, धूप में जाते ही आंखों का गरमी से चौंधिया जाना, देर तक किसी वस्तु अथवा पुस्तक की ओर नज़र का न टिकना, आंखों से पानी का गिरना, नज़ले की वजह से आंखों की कमज़ोरी और विशेष करके आजकल के नवयुवकों तथा वृद्धों के लिये यह सुरमा अकसीर साबित हो चुका है। कीमत २) तोला रखी गई है। ३ माशा ।।), ६ माशा १), १ तोला २)

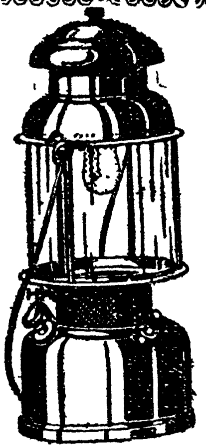
(२) कुक्करों का शर्तिया इलाजः—एक आश्चर्य जनक औषधि। यह कोई शास्त्रीय नुस्खा नहीं है। परन्तु किसी अनुभवी बृद्ध सन्यासी का जादू है। देखने में बिलकुल मामूली खाली बत्तियें नज़र आती हैं परन्तु इसके ४, ५ दिन के इस्तेमाल से ही आपको निहायत फ़ायदेमन्द साबित होंगी—

यह बत्तियाँ आंखों के पुराने से पुराने रोहें, सुर्खी तथा पड़वाल और पानी के झर २ गिरने के लिये अकसीर है। फ़ायदे इसके अन्य भी हैं परन्तु आप इसकी एक वार परीक्षा करके हमेशा के लिये इसको अपने पास रखना चाहेंगे। सेवन विधि दवाई के साथ भेजी जाती है।

(३) मस्तिष्क पौष्टिकः—विद्यार्थी, अध्यापक, वकील, क्लर्क और व्याख्याता आदि जिन्हें काम करके काफ़ी देर के लिये आराम की ज़रूरत पड़ती है, उनकी दिमाग़ी ताकत को स्थिर रखनेके लिये यह दवाई अद्वितीय है। कम से कम १५ दिन या १ महीना इसके सेवन करने से आश्चर्यजनक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे आपअपने काम को दिल से कर सकेंगे तथा दिमाग़ी ताकत को ज्यादा नहीं खर्च करना पड़ेगा। विद्यार्थियों के लिये अमृत हैं। केवल एक बार परीक्षा की ज़रूरत है। १ शीशी १५ दिन के लिये २)

(४) केशाञ्जन खिजावः—जहां अन्य खिजावों के लगाने से काली चमड़ी होने के सिवाय बालों की जड़ें कमज़ोर होकर झड़ने लग जाती हैं, वहां इस के सेवन से बाल काफ़ी अरसेके लिये काले तथा ख़ास चमकीले मालूम देते हैं। यह दो चीज़े हैं-एक खुश्क, दूसरी तर। दोनोंको उचित मात्रामें मिला कर ब्रशसे इस्तेमाल करने से बालोंमें ख़ास चमक आती है। १ शीशी १।)

पता—पं० विष्णुदत्त विद्यालंकार, अलंकार आयुर्वेदिक फार्मेसी, कूचा लालूमल, लुधियाना



रोशनी

का

भण्डार

हैसेग लैन्टर्न जर्मनी की बनी हुई

अपने समाज, सभा, सोसाँयटी, क्लब, व्यायामशाला तथा गृह को, अमरीका की बनी हुई निहायत उम्दा तथा मशहूर स्टोर्म किंग लैन्टर्न से सुशोभित कीजिये। यह लैन्टर्न अपनी चकाचौंध रोशनी के द्वारा रात को दिन कर देती है। उत्सवों की शोभा इस लैन्टर्न से दुगनी हो जाती है। विवाह तथा त्योहार आदि की खुशी के अवसर पर यह लालटैन घर की शोभा देने वाली उत्तम वस्तु है। इस लैन्टर्न से धुआँ नहीं होता। आँधी तूफ़ान तथा वर्षा में यह बुझ नहीं सकती। इसमें केरोसीन आयल या पैट्रौल इस्तेमाल किया जाता है।

(१) एक मैन्टल वाली २५० कैण्डल पावर की स्टोर्म किंग लैन्टर्न की कीमत ३०)

(२) दो मैन्टल वाली ४८० कैण्डल पावर की स्टोर्म किंग लैन्टर्न की कीमत ३५)

(३) एक मैन्टनल वाली ३०० कैण्डल पावर की हैसेग लैन्टर्न जर्मनी की बनी हुई की० २५)

इन लालटैनों का वजन लगभग दो सेर, ऊँचाई १३ इंच, तथा चिमनी अबरक की होती है। डाक द्वारा मंगाने से एक लालटैन पर पोस्टेज खर्च अलग।

मैन्टल:—

एक मैन्टल वाली लैन्टर्न के लिये मैन्टल कीमत ३॥) फ़ी दर्जन

दो मैन्टल वाली लैन्टर्न के लिये मैन्टल कीमत ३) फ़ी दर्जन

प्राइमस स्टोव नं० १०० कीमत ६) डाक व्यय पृथक्

मिलने का पताः—

रविवर्मा स्टील वर्कस अम्बाला छावनी

Registered No A ;1340

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र]

भाद्रपद १९८३ अगस्त १९२६

वर्ष ३] [अङ्क ३

मुख्य संपादक

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विदेश से ६ शि० एक प्रति का ।✓) वार्षिक मूल्य ३)

विषय सूची

ग्राहकों से निवेदन

१. अलंकार पत्र प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों के पास पहुंच जावेगा।

२. यदि कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे तो पहले डाकघर से पूछना चाहिये यदि पता न चले तो डाक-घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिये। यह सूचना देशी मास के तृतीय सप्ताह तक अवश्यमेव पहुंच जानी चाहिये। अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य न दी जावेगी।

३. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य देनी चाहिये। अन्यथा उत्तर न दिये जाने के हम दोषी न होंगे।

४. पत्रोत्तर के लिए जबाबी कार्ड या टिकट साथ भेजना चाहिये।

५. पत्र—व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता पूरा और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये।

६. भावी ग्राहकों को चाहिये कि वे रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने से ग्राहकों को और हमें, दोनों को कष्ट होता है। पैसे लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है।

७. नमूने का अंक बिना मूल्य किसी को न भेजा जावेगा।

८. प्रबन्ध सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार प्रबन्धकर्ता "अलङ्कार" गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) के पते से करना चाहिये।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

वर्ष ३, अङ्क ३] मास, भाद्रपद [पूर्ण संख्या २७

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळने त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

* निर्वेद *

(ले० श्री पं० गयाप्रसाद जी, श्रीहरि)

बहुत लख्यो, देख्यो बहुत, सुन्यो बहुत दै कान।
नहीं आन कछु चाहिये, तुम बिन हे भगवान! ॥ १ ॥

* * *

करुणामय! तुम बिन अहो, को जानै जन पीर।
करुणा-पाणि बढ़ाय कै, को पोंछै दृग नीर ॥ २ ॥

* * *

हमैं चलौ लै देश वहि, जहां न तुम बिन कोय।
इन दुखिया अँखियान के, सम्मुख अपनो होय ॥ ३ ॥

* * *

प्रिय के प्रेम पियूष की, कबौं न मिटि है प्यास।
प्रियतम श्री हरि एक अब, लगी तुम्हीं ते आस ॥ ४ ॥

जागृति का कवि—"भारवि"

(१)

(ले०—श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति)

'यदि मुझ में कविता करने की शक्ति आ जाय, और फिर कहा जाय कि समयानुकूल कविता करो तो मैं किरातार्जुनीय के बहुत से सर्गों का हिन्दी में अनुवाद करने का प्रयत्न करूँ। यदि कोई जातीय विश्वविद्यालय हो, और उस में पढ़ाने के लिये संस्कृत की पाठविधि बनाने को मुझ से कहा जाय तो भी मैं वाल्मीकि रामायण से दूसरे दर्जे पर किरातार्जुनीय का ही स्थान रक्खूंगा। जो जातियाँ स्वाधीन हैं, धनधान्य से युक्त हैं, वैभव और ऐश्वर्य की सामग्री से अलंकृत हैं, उन के लिये मेघदूत और शाकुन्तल बहुत ठीक हैं, परन्तु जिस दशा में भारत है, उस के रहते किरातार्जुनीय और भगवद्गीता ही सब से उत्तम काव्य हैं। सब के लिये सब दशाओं में एक ही वस्तु उत्तम नहीं होती। जो भोजन एक नीरोग के लिए बहुत पुष्टि देने वाला है, वही एक रोगी के लिये विष हो जाता है। पात्र की दशा वस्तु का मूल्य बदल देती है। "शृङ्गार और ललितोद्गार" में, मधुरता और उपमा में, प्रसाद और सरसता में लौकिक कवियों में कालिदास का स्थान पहला है—पर रोगी भारत को इस समय उनमें से किसी भी गुण की तरस नहीं है—भारत को इस समय उन गुणों की तरस है जिनका अन्तर्भाव ओज शब्द के अन्दर हो सकता हो। अधमरे शिथिल रोगी को ऐसी दवा देनी चाहिये जो उसे उठा कर खड़ा कर सके—जब वह खड़ा हो जायगा तब बालों में इत्र और मुँह में पान भी शोभा देने लगेगा। इसी सिद्धान्त के अनुसार इस समय भारत किरातार्जुनीय जैसे काव्य चाहता है—मेघदूत या ऋतु-संहार जैसे नहीं।

पुराने समालोचकों ने भारवि के अर्थ गौरव की प्रशंसा की है। प्रशंसा की यथार्थता जानने के लिये अधिक नहीं—केवल प्रारम्भ के दो चार पद्यों का पढ़ लेना ही पर्याप्त है। अन्य काव्यों से किरातार्जुनीय की तुलना कर के खूब अच्छी प्रकार बताया जा सकता है कि अर्थ गौरव किसे कहते हैं? और किरातार्जुनीय में किस प्रकार वह समा रहा है; परन्तु इस लेख में उस का अवसर नहीं है। इस लेख में मुझे केवल यह दिखाना है कि भारवि का किरातार्जुनीय एक ओजस्वी काव्य है, उसके उपदेश, चाहे वह स्पष्ट हों चाहे अस्पष्ट, मनुष्य को जीवित और प्रोत्साहित करने वाले हैं, उस में वह भाव भरा है जो मुर्दा जातियों को जीवित किया करता है। निराशा के अन्धकार में आशा का संचार कर देने वाली, निर्बल को बल और बूढे को सहारा देने वाली यदि किसी लौकिक महाकाव्य की कविता है तो वह किरातार्जुनीय की है।

हम सम्पूर्ण से भाग की ओर चलते हैं। भारवि के सम्पूर्ण काव्य का एक मात्र उद्देश्य अर्जुन को पाशुपतास्त्र का दान कराना है, काव्य की समाप्ति में विजय, आशा और आशीर्वाद का हर्ष-गीत सुनाई देता है— और उस हर्ष गीत के जीवन-दायी स्वर में रोती हुई पाण्डव पत्नी का आर्तनाद छिप जाता है। अन्त का दृश्य क्या ही उज्वल है? अर्जुन की युद्धकला से प्रसन्न हो कर महादेव अपना निज-स्वरूप दर्शा रहे हैं। भक्तराज अर्जुन घुटने टेक कर ऐसी प्रार्थना करता है कि भक्ति से प्रसन्न और प्रेम से गद्गद हुए देवाधिदेव पाशुपत धनुर्वेद का उपदेश करते हैं। जब देवाधिदेव प्रसन्न हो गये तो बाकी देवताओं की प्रसन्नता स्वाभाविक थी। अर्जुन पर शस्त्रों के उपहार की बौछार होने लगी। सब लोक वालों ने अपने उत्तम २ अस्त्र तपस्वी के अर्पण किये। इतना ही नहीं— शस्त्रों की शोभा से चमकते हुए तीसरे पार्थ की देवताओं ने मिल कर प्रशंसा की। अन्त में कवि उस विजय पूर्ण चमकीले दृश्य का इस प्रकार वर्णन करता है—

व्रज जय रिपुलोकं पाद पद्मानतः सन्
गदित इति शिवेन श्लाघितो देवसंघैः।
निजगृहमथगत्वा सादरं पाण्डुपुत्रो
धृतगुरु जयलक्ष्मी धर्मसूनुं ननाम।

चरण वन्दना से प्रसन्न हुए महादेव ने आशीर्वाद दिया कि बेटा! घर को जाओ और शत्रुओं का पराजय करो, देवताओं ने एक स्वर से प्रशंसा की-इस प्रकार सफलता लाभ करके जय लक्ष्मी को धारण करने वाला पाण्डु का तीसरा पुत्र अपने घर पर पहुंचा और वहां पहुंच कर धर्म सूर्य्य युधिष्ठिर के चरणों में प्रणाम किया।

कैसा दिव्य दृश्य है—कैसा उज्वल और हर्षदायक अन्त है। परन्तु इस की पूरी दिव्यता और पूरी हर्षदायकता तभी प्रतीत हो सकती है जब अन्त को आदि से मिला कर देखा जाय। जिस घर में विजयी सफल परिश्रम अर्जुन ने पहुंच कर आनन्दोत्सव रचाया, काव्य के शुरु में हम उसे उदासीन खिझा हुआ और निराश पाते हैं। काव्य के अन्त में जिस धर्मसूनु को अस्त्रों से उज्वल भाई की चरण वन्दना लेने का आनन्द प्राप्त हुआ, काव्य के प्रारम्भ में हम उसे स्त्री और छोटे भाई के धिक्कार रूपी तीरों से छिलता पाते हैं। आरम्भ में निराशा है, पराजय है, शोक है, खिझलाहट है; और अन्त में आशा है, विजय है, आनन्द है—और आमोद है। शुरू में काला है, अन्त में उज्वल है। किरातार्जुनीय काव्य अमावस्या की आधीरात से प्रारम्भ होता है-और उज्वल प्रभात के खिले हुए नभो—मण्डल में समाप्त होता है। एक चक्रवर्ती राजपुत्र की निराशा जहाँ तक ले जा सकती है—काव्य के आरम्भ में पाण्डु-पुत्र को निराशा जहाँ तक ले जा सकती है—काव्य के आरम्भ में पाण्डु-पुत्र वहीं है; परन्तु तप अध्यवसाय और वीरता से काव्य के अन्त में वह उस जगह पहुंच जाता है, जहाँ आशारूपी पखेरू बड़ी से बड़ी उड़ारी मार कर पहुंच सकता है। यह काव्य का सार—यह उसका

का रहस्य है। क्या एक निराश, उदास और अस्त्रहीन जाति की कल्पना को उद्भावित करने के लिये इस से उत्तम कथा क्रम चुना जा सकता है ?

समूह रूप से देख कर अब हम काव्य की खण्डशः आलोचना करते हैं। काव्य का आरम्भ इस प्रकार होता है—कि युधिष्ठिर का भेजा हुआ एक दूत दुर्योधन के समाचार लेकर आता है। युधिष्ठिर का राज्य दुर्योधन ने छीन लिया है। दूसरे का राज्य छीन कर शासन करना बड़ा कठिन काम है। दूसरे की जायदाद और भूमि पचाने के लिए बुद्धिमत्ता का मार्ग यही है कि वह प्रजा को प्रसन्न रखे। दुर्योधन चाहता है कि प्रजा युधिष्ठिर को भूल जाय, और उस के राज्य को सुखी समझने लगे ताकि जब युधिष्ठर बनवास से निवृत होकर अपना राज्य मांगे तो दुर्योधन युधिष्ठिर को उस की ही पुरानी प्रजा की सहायता से हटा सके।

दूत ने दुर्योधन की कूटनीति का ऐसा उत्तम वर्णन किया है कि उसे पढ़ कर २० वीं सदी का भारतवासी भारवि को साधुवाद दिए बिना नहीं रह सकता। वर्त्तमान भारत के निवासी को भारवि अपनी ज्ञानचक्षु से २० वीं सदी तक देखता प्रतीत होता है। दुर्योधन की नीति क्या है ? वह बहुत ही गुणी प्रतीत होता है, बहुत ही उदार दिखाई देता है, धन धान्य की वृद्धि में बहुत ही यत्नशील है। योद्धाओं को विशेष आदर देता है, और छोटे छोटे सामन्तों को दया से ही सन्तुष्ट रखता है। ऐसा दुर्योधन है, जिसके गुण अनेक हैं, पर गुण इस लिये नहीं हैं कि वह स्वतः अच्छे हैं; प्रजा पर कृपा है पर कृपा इस लिये नहीं कि वह कृपा है; परन्तु यह सब कुछ इस लिये है कि इस से वह साम्राज्य जो अन्याय और धूर्तता से कमाया था, किसी प्रकार सदा के लिये काबू में रह सके। दुर्योधन की शक्ति अनुपम है—उस की नोति बड़ी गहरी है। उसका समय-विभाग निश्चित है-आजकल की अंग्रेज़ी सरकार के समय पालन की अपेक्षा उस का भी समय-विभाग का पालन प्रसिद्ध है (१।६) सामदान दण्ड का उचित प्रयोग खूब ही होता है (१।१२) दिल में सदा शंकित रहता है—पर मुँह से शंका नहीं दिखाता, पर चारों ओर सेना पुलिस आदि के रूप में रक्षकों से खूब घिरा रहता है (१।१४) छोटे २ सामन्त राजा उस की बड़ी पूजा किया करते हैं (१।१६) कृषि के वृद्धि के वह सब उपाय करता है (१।१७) युद्ध करने वाली जातियों की वह ख़ास ख़ातिर करता है (१।१६) गुप्तदूतों (खुफिया पुलिस) द्वारा वह छोटे और विरोधी राजाओं की खूब खबर रखता है (१।२०) यह सब कुछ है पर किस लिये ? कवि के अपने शब्दों में ही उत्तर लीजिये—

> विशंकमानो भवतः पराभवं
> नृपासनस्थोऽपि वनाधिवासिनः —
> दुरोदरच्छद्मजितां समीहते
> नयेन जेतुं जगतीं सुयोधनः ।१।७।

तुम बनवासी हो— और वह राज्यासन पर विराजमान है। परन्तु तो भी उसे आशंका है कि तुम उस का राज्य पलट दोगे। कारण यह है कि उसने जुए और धोखे से तुम्हारे राज्य पर कबज़ा पाया है। अब वह चाहता है कि जो राज्य उस ने अन्याय और धोखे से जीता है— उसे नीति से जीत ले। क्या ठीक विश्लेषण है! कवि उसे कहते हैं जो दिल के भाव को पहिचाने और गहराई में छुपी हुई सचाई बाहिर ला रखे। जिस ने राज्य अन्याय और छल से लिया है वह सदा शंकित दशा में रहता है और यदि बुद्धिमान् है तो यत्न करता है कि जो जो अधिकार उस ने कुत्सित उपाय से प्राप्त किया है, उसकी रक्षा वह अच्छे उपाय से कर सके।

दूत सब कथा सुना कर चला जाता है। धर्मराज अन्दर जा कर अपने भाईयों को और द्रौपदी को दूत से सुना हुआ सब वृतान्त सुनाता है। पेट में तीर खाई हुई सिंहनी की भाँति, पीठ में चोट खाई हुई काली नागिन की भाँति अपमानिता तिरस्कृता सती साध्वी द्रौपदी के हृदय की आग दुर्योधन का समाचार सुन कर भड़क उठती है। वह द्वापर की क्षत्रानी है, १९२६ की भारत जाति नहीं। क्षत्रानी अपने क्रोध और जोश को नहीं संभाल सकती, और युधिष्ठिर के आगे अपना दुखड़ा रोती है। वह रोना ऐसा है कि उस पर पत्थर को रोना आता है और द्रोपदी की आख़ीरी अपील ऐसी है कि एक सदियों की भूठी धार्मिक अहिंसाओं का मारा हुआ जैनी भी हाथ मे तलवार लेकर खड़ा हो जायगा। वह ऐसा रोना है और वह ऐसी अपील है कि जो एक स्त्री के मुँह में ही आ सकती है। द्रौपदी के मुंह में वाक्य रखता हुआ कवि कवि-पदवी से कहीं ऊपर उठकर एक दिव्यदर्शी की कोटि को पहुंचा हुआ दिखाई देता है। पाठक पढ़ें— और फिर कहें कि कवि ने दिव्य दृश्य देखा या नहीं ?

द्रौपदी बताती है कि स्त्री का पति को उपदेश शोभा नहीं देता पर आपत्ति के समय मर्यादा के सब बन्धन टूट जाया करते हैं। वर्तमान दुर्दशा मुझे इच्छा न रहते भी कहने के लिये बाधित करती है। वह लोग नासमझ है, और नष्ट हो जाते हैं जो मायावियों के साथ भले मानसों का सा व्यवहार करते हैं। ऐसे भले आदमियों के अरक्षित शरीर में धूर्तों के पेच, तीरों की भान्ति सहज में ही घुस जाते हैं—और सब की समाप्ति कर देते हैं। पर जिस औचित्य से इसे कहा गया है, उसकी प्रशंसा किये बिना कोई भी नहीं रह सकता। भारवि के यह दो पद घर घर सचाई की भान्ति प्रसिद्ध हो गये हैं—

> व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवं
> भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः।

दो पद्य आगे चल कर भारवि द्रौपदी के मुख से एक और सचाई प्रकट करता है। वह सचाई भी सदा हृदय में धारण करने योग्य है। द्रौपदी कहती है कि जिस मनुष्य के हृदय

में अपमानित हो कर क्रोध उत्पन्न न हो, और यदि हो भी जाय तो उस का कोई फल न हो—तो न कोई उस की प्रसन्नता की पर्वा करता है और न अप्रसन्नता की। जो दशा मनुष्यों की है, वही जातियों की है।

सृष्ट्युत्पत्ति

(२)

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार)

अहि तथा इन्द्र की अन्य धर्म कथाओं के साथ जो समानता पाई जाती है, उसके बाद सृष्ट्युत्पत्ति-प्रकरण में भिन्न-भिन्न धर्मों में, कई अन्य अचंभे में डाल देने वाली समानताएँ भी मिलती हैं। उनकी तरफ भी हमारा ध्यान गए बिना नहीं रह सकता। बाइबिल में लिखा है—Let us make man in our own image, after our likeness—अर्थात्, परमात्मा ने सोचा, मनुष्य को अपनी शकल का बनाएँ। बुनसेन महोदय की Angel Messiah—पुस्तक के १०४ पृष्ठ में लिखा है कि पारसियों के यहां भी यही भाव पाया जाता है। हमारी धारणा है कि यह भाव वेद के "योऽसावसौ पुरुषः सोऽहमस्मि", इस वाक्य के आधार पर सर्वत्र फैली है। इस समानता के संबन्ध में अधिक न लिख कर हम सृष्टि उत्पत्ति की एक अन्य मुख्य समानता की ओर चलते हैं।

सृष्टि-उत्पत्ति की कथा के सम्बन्ध में यहूदियों तथा ईसाइयों की मान्य धर्म-पुस्तक बाइबिल का कथन है कि स्त्री और पुरुष इकट्ठे उत्पन्न किए गए थे—एक ही शरीर का एक हिस्सा स्त्री का तथा दूसरा पुरुष का था। लिखा है— "Male and female created he them" अर्थात परमात्मा ने उनके दो हिस्से कर दिए।

पारसियों की धर्म-पुस्तक 'बुन्दहेश' में लिखा है, अहुर्मुज़्द ने 'माश्य' तथा 'माश्यान' नामी पुरुष और स्त्री का पीठ की तरफ़ से जुड़ा हुआ, जोड़ा पैदा किया।

इस वर्णन से एक विपरीत वर्णन भी बाइबिल में पाया जाता है, जिसके अनुसार परमात्मा ने मनुष्य को सुलाकर उस की हड्डी से स्त्री की रचना की। हमारी समझ में, स्त्री के विषय में इन दोनों वर्णनों का आधार वैदिक तथा भारतीय साहित्य ही है। पहले हम स्त्री-पुरुष के एक ही शरीर के अवयव होने के विषय में लिखेंगे।

बृहदारण्यकोपनिषद् के ४ र्थ ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा है—

"स वै नैव रेमे। तस्मादेकाकी नैव रमते। स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांसौ संपरिष्वक्तौ। स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नी च अभववाम्।'

अर्थात्, प्रथम-पुरुष इतना बड़ा था, जितना स्त्री-पुरुष मिल कर होते हैं। एक ही शरीर के अंग होने के कारण आनंद-प्राप्ति न होती थी, अतः उन के दो टुकड़े कर दिए गए, जिन्हें व्यावहारिक भाषा में लोग पति-पत्नी कहने लगे। उपनिषद् का यह वाक्य और बाईबिल की कथा एक ही हैं। भागवतपुराण, ३ स्कंध, १२ अध्याय के ५२, ५३, ५४ श्लोकों में भी स्वयंभू के पुत्र सर्वप्रथम पुरुष स्वायंभुव के विषय में भी ऐसी ही कथा आती है। श्लोक इस प्रकार हैं—

कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायमभिचक्षते ;
ताभ्यां रूपविभागाभ्यां मिथुनं समपद्यत्।
यस्तु तत्र पुमान् सोऽभून्मनुः स्वायम्भुवः स्वराट्
स्त्री यासीच्छतरूपाख्या महिष्यस्य महात्मनः।
तदा मिथुनधर्मेण प्रजा ह्येधांबभूविरे॥

'क' अर्थात् 'ब्रह्मा' के दो टुकड़े हो गए—इसी लिये शरीर को काय कहते हैं। उन में जो पुमान्-भाग था, उस का नाम 'मनु' हुआ, तथा जो स्त्री भाग था, उसका नाम 'शतरूपा' रक्खा गया। तब से सृष्टि-उत्पत्ति भी मैथुन द्वारा होने लगी। स्त्री को अर्द्धांगी, वामांगी आदि कहा जाता है। इन शब्दों में भी उपनिषद्, पुराण, बाईबिल तथा कुरान की कथा भरी हुई है। बाइबिल का यह क़िस्सा -जिसे पढ़ कर हम उस की खिल्ली उड़ाया करते हैं—यथार्थ में बहुत पुराना है, और धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन करने वाले विद्यार्थी को उस स्वर्ण-युग की झाँकी दिखलाता है जब इस परम पुनीत देश की सभ्यता के टूटे-फूटे टुकड़े भी दूर दूर देशों में देवता के प्रसाद की तरह पूजे जाते थे। भारत की धूल को संसार स्वर्ण-तुल्य समझता रहा है। इस के लिए किसी दूसरे प्रमाण की आवश्यकता नहीं। अभी हम जिस विषय की चर्चा कर रहे हैं, उसमें, कौन नहीं जानता, कितना आध्यात्मिक तत्व भरा पड़ा है? स्त्री को अर्द्धांगी कहना सत्यता की ऊँची से-ऊँची पहुंच है। इन उच्च भावों से भरपूर भारत की पूजा भला क्यों न होती? प्राचीनकाल में भारत की पूजा इतनी अधिक हो गई थी कि आगे चलकर जब भारत उच्च आदर्शों को भूल गया, तब भी इस देश में प्रचलित अर्थ-हीन शब्दों की भिक्षा लेकर अन्य देश अपने को धन्य मानते रहे और सदियों तक यह समझते रहे कि सचमुच प्रथम स्त्री-पुरुष का शरीर जुड़ा ही हुआ था, तथा परमात्मा ने उसे काटकर दो टुकड़ों में विभक्त कर दिया।

इस के अनंतर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि पुरुष की हड्डी से स्त्री के बनने की कथा का उद्भव-स्थान कहाँ है? इस प्रश्न के उत्तर के लिये हम विचारकों का ध्यान महाभारत, वनपर्व के १०० वें अध्याय के निम्न-श्लोकों की ओर आकर्षित करना चाहते हैं—

दधीचिरिति विख्यातो महानृषिरुदारधीः।
तं गत्वा सँहितासर्वे वरं वै सम्प्रचायत॥]
स वो दास्यति धर्मात्मा सुप्रीतेनान्तरात्मना।
स वाच्यः सहितैः सर्वैर्भवद्भिर्जयकांक्षिभिः॥
स्वान्यस्थीनि प्रयच्छेति त्रैलोक्यस्य हिताय वै।
स शरीरं स्वमुत्सृज्य स्वान्यस्थीनि प्रदास्यति॥
तस्यास्थिभिर्महाघोरं वज्रं संक्रियतां दृढम्।

तेन वज्रेण वै वृत्रं वधिष्यति शतक्रतुः ॥

युधिष्ठिर से लोमश ऋषि कहते हैं कि वृत्र के उपद्रव से जब संसार पीड़ित होगा, तब इन्द्र महाराज दधीचि के पास जाकर अपना रोना सुनाने लगे। दधीचि ऋषि ने अपनी हड्डियाँ दीं, जिनसे वज्र बनाया गया। उस वज्र से ही वृत्र का वध किया गया। महाभारत की इस कथा का मूल वेद की निम्न लिखित ऋचा में है—'इन्द्रो दधीचो अस्थिभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः जघान" (१.८४।१३) अर्थात्, इन्द्र ने दधीचि की हड्डियों से वृत्र का वध किया। 'वृत्र' के लिये दूसरा शब्द वेद में 'अहि' आता है। दोनों पर्यायवाची हैं। अतः अहि के मारने के लिये इन्द्र ने दधीचि की हड्डियों का वज्र बनाकर उसका प्रयोग किया, यह वेद की कथा है। बाइबिल की कथा यह है कि साँप को मारने के लिये जिहोवा या खुदा ने आदम की हड्डियों से बनी 'ईव' नामक शक्ति का प्रयोग किया। दधीचि की हड्डियों से तो अहि मारा गया, और आदम की हड्डियों से साँप। इस मारण कार्य में, वैदिक कथा में, लड़ाई इन्द्र तथा अहि में थी, और बाइबिल की कथा में लड़ाई परमात्मा और साँप में। दोनों कथाओं में लड़ाई का मूल 'ज्ञान-फल' की रक्षा थी।

मज़ेदार बात यह है कि यह दधीचि भी हज़रत आदम की तरह उसी बखेड़े से गुज़र चुके हैं। इन्हें भी आदम की तरह एक चीज़ सिपुर्द की गई थी, जिसके विषय में इन्हें भी इन्द्र ने कह दिया था कि यदि इसकी पूरी-पूरी हिफ़ाज़त न हुई अथवा किसी दूसरे के हाथ में पड़ गई, तो सख़्त सज़ा दी जायगी। सज़ा भी कम नहीं, आदम से कहा गया कि तुम इस वृक्ष की रक्षा न करके यदि इसका फल खा लोगे, तो मौत के शिकार होगे। दधीचि को भी यही भय दिखलाया गया था। आदम को ज्ञान-वृक्ष की रक्षा करने के लिये कहा गया था, और दधीचि को मधु की रक्षा करने के लिये। शतपथ-ब्राह्मण १४।१।१ में लिखा है—

"सह इन्द्रेणोक्त आस। एतं चेदन्यस्मा अनुब्रूयास्तत एव ते शिरश्छिन्द्यामिति।"

अर्थात्, इन्द्र दधीचि से बोले कि यदि तुमने मधु का निर्देश किसी दूसरे को कर दिया, तो सिर काट लिया जायगा।

बाइबिल में आदम ने फल खा लिया, और उसका पतन भी हो गया। ब्राह्मण-ग्रंथ के दधीचि ने भी मधु का निर्देश अश्विनौ को कर दिया, और अपना सिर कटवा लिया। अश्विनौ ने आकर कहा—"मधु का हमें उपदेश दो।" दधीचि ने कहा—"मुझे इन्द्र ने ऐसा करने से मना किया है।" शैतान ने आदम-ईव से आकर कहा—"फल खा लो।" उन्होंने भी यही कहा कि परमात्मा ने हमें ऐसा करने से रोक दिया है। अन्त में दधीचि ने मधु का उपदेश कर दिया, और आदम ने भी फल खा लिया। ब्राह्मण-ग्रंथ की इस कहानी में बाइबिल के साँप की जगह अश्विनौ आ गए हैं। अन्यथा अन्य सब प्रकार से कहानी वही है, जो बाइबिल में ले ली गई है। शतपथ के इस कथानक

को लेकर जब हम दधीचि की हड्डियों से बने वज्र द्वारा वृत्र के वध की कथा वैदिक-साहित्य में पढ़ते है, तब तो ज़रा भी संदेह नहीं रहता कि बाइबिल के जिहोवा तथा शैतान की कथा का इन्द्र तथा अहि (वृत्र) की कथा से, ज्ञान-फल की कथा का सोम-रस तथा मधु की कथा से, आदम और ईव का दधीचि और वज्र की कथासे साधारण नहीं, अपितु असाधारण संबध है। अस्तु, प्रत्यक्ष जान पड़ता है कि बाइबिल और कुरान की सारी कथा का आधार वैदिक है।

फूलो !

(कविराज पं० धर्म्मदत्त जी विद्यालङ्कार, वैद्य भूषण)

फूलो ! खुशी खुशी से अपने ये दिन बिताना।
दिन रात आप हँसना औरों को भी हँसाना॥
आंधी तुम्हें डरावे गर धूप भी सतावे।
चेहरे पै तुमने अपने कुछ भी न ग़म दिखाना॥
जिसने तुम्हें बनाया जिस ने तुम्हें हँसाया।
खुशियों में अपने मालिक को तुम नहीं भुलाना॥
उस के चमन को तुमने सुख का सदन बनाना।
खुशबू से अपनी इस को बाग़-ए-अदन बनाना॥
छोटा हूँ या बड़ा हूँ इस पर न ध्यान लाना।
जो कुछ महक है उस को इस बाग में फैलाना॥
ठण्डी हवा से अपनी अठखेलियों में तुमने।
कर्तव्य को न अपने पल भर कभी भुलाना॥
खुश होके तुम को अपने वो सीस पर चढ़ावे।
ऐसे नज़र को अपने मालिक की तुम लुभाना।
माला में कोई उस के मन्दिर में कोई उस के।
कोइ उस की राह में ही गिर कर के काम आना॥

शुक्रकालीन राष्ट्रीय आय

ले० आचार्य रामदेव जी

वर्तमान समय के अर्थ शास्त्रज्ञों के अनुसार राष्ट्रीय आय व्यय का हिसाब बहुत उन्नत अवस्था तक पहुंच चुका है। आज कल के राष्ट्रीय बजटों में आय व्यय का विश्लेशण जिस ढंग से किया होता है वह स्पष्ट और विस्तृत होता है। इसी कारण शुक्रनीति में वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय की तुलना अगले हम इङ्गलैण्ड के सुप्रसिद्ध अर्थ शास्त्रज्ञ मार्शल द्वारा वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय से करने लगें तो वह हमें बहुत सन्तोषप्रद प्रतीत न होगा। परन्तु यदि हम इस ढाई, तीन सहस्र वर्ष पुराने नीति शास्त्र में वर्णित राष्ट्रीय आय व्यय की तुलना फ्रांस के १६ वीं सदी के सुप्रसिद्ध नीतिशास्त्रज्ञ बोडिन (Jean Bodin) के राष्ट्रीय आय व्यय से करें तो आचार्य शुक्र का विश्लेषण उस की अपेक्षा बहुत उन्नत प्रतीत होगा। बोडिन ने जहां राष्ट्रीय आय के स्रोतों के छः विभाग किये हैं वहां आचार्य शुक्र ने इस के नौ विभाग किये हैं। अस्तु; हम इस तुलना के विस्तार में न जाकर अपने प्रकरण को प्रारम्भ करते हैं।

आय के स्रोत—शुक्रनीति में अमात्य (अर्थ सचिव) के कर्तव्य का निर्देश करते हुए उसे इन नौ साधनों से आय प्राप्त करने का निर्देश दिया गया है—

१. भाग—भूमि कर
२. शुल्क—व्यापार, वाणिज्य पर कर।
३. दण्ड-जुर्मानों की आय।
४. अकृष्टपच्या—प्रकृति द्वारा प्रदत्त पदार्थ।
५. आरण्यक—जंगल की आय।
६. आकर—कानों द्वारा आय।
७. निधि—राष्ट्र ने जो धन अमानत (Deposites) के तौर पर धनी नागरिकों के पास रक्खा हुआ है, उसकी आय।
८. अस्वामिक—जिस सम्पत्ति का कोई मालिक नहीं।
९. तस्कराहित—तस्कर जातियों द्वारा प्राप्त।

---

१. शुक्र० अ० २ श्लोक १०२-१०५।

"तस्कराहित" के दो अभिप्राय हो सकते हैं—सीमा प्रान्त की तस्कर जातियों द्वारा विदेशी राष्ट्रों से लूट कर लाया गया धन, जिस में से कुछ भाग वे सरकार को देतों हैं। अथवा चोरों के पास से पोलीस द्वारा बरामद किया हुवा चोरी का माल, जिस में से कुछ भाग सरकार अपने श्रम के बदले रख लेती है।

इन नौ साधनों में से चौथा, सातवां, आठवां और नौवां ये चार साधन राष्ट्र की आय के स्थिर साधन नहीं हैं। ये साधन मुख्य नहीं अपितु गौण हैं। इन की आय अनिश्चित हैं।

शुक्रनीति के चतुर्थ अध्याय के द्वितीय विभाग में राष्ट्रीय आय की जो तालिका दी है उस के अनुसार राष्ट्रीय आय के १० साधन होते हैं। इन के सम्बन्ध में शुक्रनीति में निम्न लिखित निर्देश प्राप्त होते हैं—

वाणिज्य कर—(शुल्क) यह कर चुंगी और आन्तरिक कर (Excise), इन दोनों रूपों में लगाया जाता था—"ग्राहकों और व्यापारियों के माल पर लगाए राज कर को 'शुल्क' कहते हैं। यह कर सीमा पर (चुंगी) तथा मण्डियों में (Excise) लगाया जाता है। प्रत्येक पदार्थ पर किसी न किसी रूप में एक बार कर अवश्य लग जाना चाहिये। किसी पदार्थ पर दुहरा कर नहीं लगना चाहिये। किसी पदार्थ के मूल्य का $\frac{१}{३२}$ वां भाग उस पर शुल्क लगाना चाहिये। $\frac{१}{२०}$ वां या $\frac{१}{१६}$ वां भाग कर लगाने से भी वस्तुओं के मूल्य में कोई बहुत बड़ा अन्तर नहीं आता। अगर कोई व्यक्ति लागत के दाम से भी कम मूल्य पर अपना सामान बेच रहा हैं तब उस पर कर नहीं लगाना चाहिये। कर तभी लगना चाहिये जब कि बेचने वाले को पर्याप्त लाभ हो रहा हो।"[1]

ये ३ $\frac{१}{८}$ प्रति शत से लेकर ६ $\frac{१}{४}$ प्रति शत कर की दर बहुत अधिक नहीं है।

भूमि कर—(भोग) की दर भूमियों की उपज के अनुसार भिन्न होनी चाहिये—"उन भूमियों पर जो तालाब, नहर, कूआं, वर्षा या नदी से सींची

---

१. विक्रेतृ क्रेतृतो राज भागः शुल्कमुदाहृतम्।
शुल्क देशा हट्टमार्गाः कर सीमाः प्रकीर्तितः ॥ १०८ ॥
वस्तुजातस्यैक वारं शुल्कं ग्राह्यं प्रयत्नतः।
क्वचिन्नैवासकृच्छुल्कं राष्ट्रे ग्राह्यं नृपैश्छलात् ॥ १०९ ॥
द्वात्रिंशांशं हरेद्राजा विक्रेतुः क्रेतुरेव वा।
विंशांशं वा षोडशांशं शुल्कं मूल्याविरोधकम् ॥ ११० ॥
न हीन सम मूल्याद्धि शुल्कं विक्रेतृतो हरेत्।
लाभं दृष्ट्वा हरेच्छुल्कं क्रेतृतश्च सदा नृपः ॥ १११ ॥ (शुक्र० अ० ४ i.E.)

जाती हैं, उन की उपज के अनुसार उपज का चौथाई, तिहाई या आधा भाग कर लगाना चाहिये। जो भूमि अनुपजाऊ और बंजर हो उस की उपज का छटा भाग ही कर रूप में लेना चाहिये।[1]

यह भूमि कर प्रत्येक किसान से अलग अलग नहीं लिया जाता था अपितु गांव के एक धनी व्यक्ति से ही सारे गांव की भूमि का लगान ले लिया जाता था, लगान का सारा उत्तरदायित्व उस पर ही रहता था। किसान लोग उसी को अपने लगान का अंश दे देते थे। इस प्रकार लगान जमा करने का तरीका पूरी तरह केन्द्रित था–"भूमि कर निश्चित होने पर उस की सम्पूर्ण मात्रा राजा को गांव के एक धनी से ले लेनी चाहिये अथवा गांव के एक मनुष्य को ज़ामिन बना कर उस से एक निश्चित समय के बाद लगान लेते रहना चाहिये।"[2]

इस से प्रतीत होता है कि सम्भवतः कुछ वर्षों के लिये लोगों को लगान जमा करने के ठेके दिये जाते होंगे। लगान जमा करने के लिए जो सरकारी कर्मचारी नियुक्त किये जाते थे उनका वेतन प्राप्त लगान का $\frac{१}{१६}$, $\frac{१}{१२}$, $\frac{१}{१०}$, $\frac{१}{८}$ या $\frac{१}{६}$ होता था।[3]

यह अन्तर भी भूमि की उपजाऊ शक्ति के आधार पर ही होता था।

भूमि कर की मात्रा भूमि की उपजाऊ शक्ति के अनुसार सरकार ही निश्चित करती थी। आचार्य शुक्र ने स्पष्ट शब्दों में निर्देश दिया है कि अगर ज़मीदार को खेती करने से पर्याप्त लाभ हो तभी उस पर उपर्युक्त मात्रा में भूमिकर लगाना चाहिये–

"वही कृषि सफल समझनी चाहिये जिस के द्वारा कि ज़मींदार को अपने कुल खर्च–जिस में सरकारी लगान भी शामिल है–से दुगुना लाभ अवश्य हो। इसी के अनुसार उत्तम, मध्यम और निकृष्ट भूमि निश्चित करनी चाहिये। जिस भूमि से इस से कम आय हो वह 'दुःखद' भूमि है।"[4]

---

१. तड़ाग वापिका कूप मातृकाद्देव मातृकात्।
देशान्नदी मातृकात् तु राजानुक्रमतः सदा ॥ ११५ ॥
तृतीयांशं चतुर्थांशमर्द्धांशन्तु हरेत् फलम्।
षष्ठांशमूषरात् तद्वत् पाषाणादि समाकुलात् ॥ ११६ ॥

२. नियम्य ग्राम भूभागमेकस्माद् धनिकाद्धरेत् ॥ १२४ ॥
गृहीत्वा तत्प्रतिभुवं धनं प्राक् तत्समन्तु वा।
विभागशो गृहीत्वापि मासि मासि ऋतौ ऋतौ ॥ २५ ॥

३. षोडश द्वादश दशाष्टांशतो वाधिकारिणः।
स्वांशात् षष्ठांश भागेन ग्रामपान् सन्नियोजयेत् ॥ १२६ ॥

४. बहुमध्याल्प फलतस्तारतम्यं विमृश्य च।
राज भागादि व्ययतो द्विगुणं लभ्यते यतः।
कृषि कृत्यन्तु तच्छ्रेष्ठं तन्न्यूनं दुःखदं नृणाम् ११४ ॥ (शुक्र० अ० ४. ii)

जिस भूमि को अभी ऊपजाऊ बनाने का यत्न किया जा रहा हो उस पर भूमि कर नहीं लगाना चाहिये—"जो लोग अभी नया व्यवसाय शुरु करें, नई भूमि पर कृषि प्रारम्भ करें, अथवा जो लोग कूआं, नहर या तालाब अदि खुदवा रहे हों उन पर तब तक सरकार को लगान नहीं लगाना चाहिये जब तक कि खर्च से आय दुगनी न होने लगे।"[१]

"सरकार को किसानों की आय देख कर ही उन पर लगान लगाना चाहिये।"[२]

"राजा को जमीदारों से लगान इस प्रकार लेना चाहिए जिस प्रकार कि माली वृक्षों से फूल तोड़ता है, ताकि ज़मीन्दारों का नाश न हो। लगान कोइले के व्यापारियों की तरह नहीं लेना चाहिए।"

कोइले के व्यापारी कोइला बनाने के लिये लकड़ी को जला कर उसका नाश कर देते हैं, परन्तु माली सदैव फूल इस प्रकार इकट्ठे करता है कि उस के द्वारा वृक्ष को किसी प्रकार की हानी न पहुंचे। लगान इकट्ठा करने की यह उपमा इतनी अच्छी है कि सम्राट् अकबर के वज़ीर अब्बुल फाज़िर ने भी इसे 'आइने अकबरी' में उद्धृत किया है।

लगान जमा करने का प्रबन्ध बहुत ही उत्तम था, इस में मुगल काल की तरह कोई अव्यवस्था न हो सकती थी—"सरकार को चाहिये कि वह सब किसानों को, उन पर लगाए हुए कर की मात्रा आदि अपनी मुद्रा से अंकित कर के दे।"[४] इसी के अनुसार किसानों से कर लिया जायगा।

आचार्य शुक्र के अनुसार उस समय रैयतवारी नहीं अपितु ज़मीन्दारी की प्रथा ही सिद्ध होती है। परन्तु ये ज़मीन्दार स्वयं किसान हैं; ये जितनी ज़मीन बोते हैं उस पर इन का स्वतन्त्र अधिकार है।

खनिज कर—शुक्रनीति द्वारा यह स्पष्टतया ज्ञात नहीं होता कि कानें राष्ट्र की सम्पत्ति समझी जाती हैं या वैयक्तिक, तथापि कानों की उत्पत्ति पर कर की मात्रा इतनी निश्चित की गई है कि उस की आय का पर्याप्त भाग राष्ट्र के कोश में आजाय। इस साधन से भी सरकार को एक अच्छी रकम प्राप्त होती थी। खनिज कर की दरें इस प्रकार हैं—

---

१. कुर्वन्त्यन्यत् तद्विधं वा कर्षन्त्यभिनवां भुवम्।
तद्व्यय द्विगुणं यावन्न तेभ्यो भागमाहरेत्॥ ११८॥

२. लाभाधिक्यं कर्षकादेर्यथा दृष्ट्वा हरेत् फलम्॥ ११९॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

३. हरेन्न कर्षकाद्भागं यथा नष्टो भवेन्न सः।
मालाकार इव ग्राह्यो भागो नाङ्गारकारवत्॥ ११३॥

४. दद्यात् प्रतिकर्षकाय भाग पत्रं स्वचिन्हितम्॥ १२४१ (शुक्र० अ० ४ ii.)

"सोने पर ५० प्रतिशत, चांदी पर ३३⅓ प्रतिशत, लोहे और जस्त पर ६⅔ प्रतिशत और हीरे, खनिज शीशे तथा सीसे पर ५० प्रतिशत खनिज कर लगाना चाहिये।"[१] सरकार यह धन भी कर रूप में ही लेगी।

जंगलात— राष्ट्रीय आय का चौथा साधन जंगलों की उपज पर लगाया गया कर है। यह कर जंगलों की घास, लकड़ी तथा ऐसी ही अन्य उपजों पर लगता है। इस की दर इस प्रकार है—"वनों की उपज के अनुसार यह दर ३३⅓ प्रतिशत, २० प्रति शत, १४⅔ प्रतिशत, १० प्रतिशत या ५ प्रतिशत होनी चाहिये।"[२]

पशु कर— राष्ट्रीय आय का पांचवां साधन पालतू पशुओं पर लगाया हुवा कर है—"बकरी, भेड़, गौ, भैंस और घोड़ों की जितनी संख्या बढ़े उनके मूल्य पर १२½ प्रतिशत कर लगाना चाहिये; और बकरी, गौ, तथा भैंस के दूध से जो आय हो इस पर ६¼ प्रतिशत कर लगाना चहिये।"[३]

श्रम— राष्ट्रीय आय का यह छटा साधन कुछ विचित्र प्रतीत होता है। राष्ट्र के शिल्पियों और कारीगरों को राष्ट्र के लिये कुछ दिन तक बाधित रूप से कार्य करना पड़ता था।[४] उन का यह कार्य ही उन पर कर समझा जाता था।

चार अन्य साधन— (७) महाजनों को रुपया उधार देने से जो व्याज मिलता है उस पर ३⅛ प्रतिशत कर लगाना चाहिए।[५] (८) मकानों पर कर।[६] (९) दूकानों पर और मण्डियों पर कर।[७] (१०) सड़कों तथा गलियों की मुरम्मत के लिए उन पर चलने वालों पर लगाया गया कर।[८]

---

१. स्वर्णार्द्धं च रजतात् तृतीयांशञ्च ताम्रतः।
चतुर्थांशन्तु षष्ठांशं लोहात् वंगाच्च सीसकात् ॥ ११८ ॥
रत्नार्धं चैव क्षाराद्धं खनिजात् व्यय शेषतः।
२. त्रिधा वा पञ्चधा कृत्वा सप्तधा दशधापि वा ॥ ११९ ॥
तृणकाष्ठादि हरकात् त्रिंशत्यंशं हरेत् फलम्।
३. अजावि गोमहिष्याश्व वृद्धितोऽष्टांशमाहरेत्।
महिष्यजावि गो दुग्धात् षोडशांशं हरेन्नृपः ॥ १२० ॥
४. कारु शिल्पि गणात् पक्षे दैनिकं कर्म कारयेत् ॥ १२१ ॥
५. वार्द्धुषिकाच्च कौसीदात् द्वात्रिंशांशं हरेन्नपः।
६. गृहाद्याधार भूशुल्कं कृष्ट भूमेरिवाहरेत् ॥ १२८ ॥
७. तथा चापणिकेभ्यतु पण्यं भूशुल्कमाहरेत्।
८. मार्ग संस्कार रक्षार्थं मार्गगेभ्यो हरेत् फलम् ॥ १२९ ॥ (शुक्र० अ० ४. ii.)

इन उपर्युक्त १० विभागों में जनता की आय के सभी स्रोत अन्तर्गत हो जाते हैं। कोई भी सम्पत्ति ऐसी नहीं बचती जिस पर किसी न किसी रूप में कर न लगा हो।

इस प्रकरण से यद्यपि यह प्रतीत होता है कि आचार्य शुक्र व्यवसाय तथा वाणिज्य पर सरकार का कठोर नियन्त्रण रखने के पक्ष में हैं, तथापि वह राष्ट्रीय व्यवसाय चलाने के पक्ष में हैं या नहीं–यह बात स्पष्ट प्रतीत नहीं होती। केवल–"मध्यम राजा वैश्यों का अनुसरण करता है।"[1] इस एक पद से राष्ट्रीय व्यवसायों की सत्ता की कुछ झलक मिलती है। परन्तु केवल इसी एक आधार से कोई परिणाम निकालने का साहस हम नहीं कर सकते। इस पद का अभिप्राय सम्भवतः यह भी हो सकता है कि जो राजा अपनी वैयक्तिक आय बढ़ाने लिये व्यवसाय करे वह मध्यम होता है। यहां तक कि नमक की उत्पत्ति पर भी राष्ट्र का एकाधिकार होने का प्रमाण शुक्रनीति में नहीं मिलता।

करों की पूर्वोक्त सब दरें साधारण अवस्था के लिए हैं। आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र के हित के लिये इन दरों को कुछ समय के लिये बढ़ाया भी जा सकता है। धार्मिक संस्थाओं और मन्दिरों की जायदाद पर साधारण अवस्था में कर नहीं लगाया जाता, परन्तु आवश्यकता पड़ने पर उन पर भी कर लगाया जा सकता है।[2] राष्ट्र के धनी पुरुषों से ऐसे समय धन की एक विशेष मात्रा ली जा सकती है।[3]

राष्ट्रीय ऋण— राष्ट्र पर कोई आपत्ति आने पर अथवा कोई अन्य आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्रीय ऋण लेने का विधान शुक्रनीति में हैं। यह ऋण सरकार देश के धनी धनी नागरिकों से लेती थी। वे लोग सरकार को यह ऋण देने के लिये बाधित होते थे। आपत्ति हट जाने पर सरकार उन को यह धन व्याज सहित वापिस कर देती थी।[4]

कर सिद्धान्त—"जिस राष्ट्र की शक्ति जितनी अधिक हो उसका खज़ाना उतना ही बढ़ता है, जिस राष्ट्र का खज़ाना भरा हुआ हो उस की शक्ति बढ़ती है–दोनों बातें परस्पर सहायक हैं। राजा को चाहिये कि वह जिस किसी

१. ......मध्यमो वैश्य वृत्तितः ॥ १९ ॥
२. दण्डभूभाग शुल्कानामाधिक्यात् कोश वर्धनम् ।
अनापदि न कुर्वीत तीर्थ देव कर ग्रहात् ॥ ९ ॥
३. यदा शत्रु विनाशार्थं बल संरक्षणोद्यतः ।
विशिष्ट दण्ड शुल्कादि धनं लोकात् तदा हरेत् ॥ १० ॥
४. धनिकेभ्यो भृतिं दत्वा स्वापत्तौ तद्धनं हरेत् ।
राजा स्वापत्समुत्तीर्णस्तत्स्वं दद्यात्सवृद्धिकम् ॥ ११ ॥ (शुक्र० अ० ४. ii)

प्रकार भी सब उपायों से धन संग्रह करे और उस के द्वारा राष्ट्र की रक्षा करे।"[1] इस प्रकार इस प्रसङ्ग में आचार्य शुक्र ने धन की महिमा बता कर धन-संग्रह के लिये सभी उचित और अनुचित (येन केन प्रकारेण) उपायों को बरतने का निर्देश किया है। कर संग्रह के इन उचित और अनुचित उपायों की उन्होंने स्वयं ही संक्षिप्त व्याख्या करदी है—

"वह मनुष्य जो धन को उचित उपायों से कमाता है और उचित ढंग पर खर्च करता है, पात्र है; इस से उलटा करने वाला व्यक्ति अपात्र है। राजा को चाहिये कि वह अपात्र का सम्पूर्ण धन ज़बरदस्ती ले ले, यह करने से राजा को पाप नहीं लगता है। पापी व्यक्ति का सारा धन राजा को छीन लेना चाहिये। धोखे से, बल से या चोरी से शत्रु राष्ट्र का धन छीन लेना चाहिये। परन्तु इस बात का सदैव ध्यान रखना चाहिए कि जो राजा अपनी प्रजा को धन प्राप्त करने के लिये तंग करता है प्रजा उस के विरुद्ध होजाती है और शत्रु उस देश पर विजय प्राप्त कर लेते हैं।"

इस प्रकरण में तो आचार्य शुक्र एक साम्यवादी प्रतीत होते हैं। उन के अनुसार जो व्यक्ति समाज की रचना का अनुचित उपयोग उठा कर, बुरे उपायों से, धनी बन जाते हैं उन की सम्पत्ति राष्ट्र को ज़ब्त कर लेनी चाहिये। यह कर-सिद्धान्त साम्यवादियों का है।

आय के ये स्रोत कर रूप में नहीं हैं, इन्हें ऊपर की आय समझना चाहिये, इन से पूर्व हमने जिन आय के स्रोतों का वर्णन किया था वे सब कर रूप में ही थे। शत्रु राष्ट्रों को अपने आधीन लाकर उन से भेंट लेने के पक्ष में ही आचार्य

---

१. बल मूलो भवेत् कोशः कोशमूलं बलं स्मृतम्।
बल संरणात् कोश राष्ट्र वृद्धिररि क्षयः ॥ १४ ॥
येन केन प्रकारेण धनं सञ्चिनुयात् नृपः।
तेन संरक्षयेद्राष्ट्रं बलं यज्ञादिकाः क्रियाः ॥ २ ॥

२. स्वागमी सद्व्ययी पात्रमपात्रं विपरीतकम्।
अपात्रस्य हरेत् सर्वं धन राजा न दोषभाक् ॥ ६ ॥
अधर्म शीलात् नृपतिः सर्वशः संहरेद्धनम्।
छलाद् बलाद्दस्यु वृत्या परराष्ट्राद्धरेत् तथा ॥ ७ ॥
त्यक्त्वा मीनि बलं स्वीय प्रजा पीड़नतो धनम्।
सञ्चितं येन तत्तस्य स राज्यं शत्रुसाद्भवेत् ॥ ८ ॥

(शुक्र० अ० ४. ii)

शुक्र ने अपनी राय दी है। इन भेटों से राष्ट्र का कोश बहुत बढ़ता है।[1] इन भेटों को छोड़ कर राष्ट्रीय आय के लिए राष्ट्रीय व्यवसाय आदि किसी अन्य साधन का वर्णन शुक्रनीति में नहीं प्राप्त होता।

इस कर प्रकरण से हम करों के सम्बन्ध में निम्न लिखित परिणाम निकाल इस लेख को समाप्त करते हैं—

१. राष्ट्र भर की सब समाजों, जातियों तथा संघों पर समान रूप से कर लगाना चाहिये।[2] कोई भी समूह करों से वञ्चित न रक्खा जाय।

२. जिस व्यक्ति या समूह पर जो कर निश्चित किया जाय वह उस से शीघ्र ही ले लेना चाहिये। उसको चुकाने की प्रतीक्षा देर तक नहीं करनी चाहिये— "भूमि कर, भृति, आयात निर्यात कर, व्याज और जुर्माना आदि शीघ्र ही चुका लेने चाहिये।"[3]

३. कर संग्रह कर्त्ताओं का यह कर्तव्य है कि वे अपने हिसाब को खूब स्पष्ट रक्खें। कर की दर, वस्तु परिमाण, प्राप्त कर आदि की विस्तृत सूचियाँ उन्हें बनानी चाहिये।

४. कर राष्ट्र के सामूहिक हित के लिये ही लिया जाता है यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिये। इस लिये सदैव लाभ पर ही कर लेना चाहिये। सब प्रकार के करों- चुंगी, आन्तरिक कर और भूमि कर-को उसी अवस्था में पुष्ट किया जासकता है जब कि वे लाभ पर लिये जा रहे हों। भूमि कर तब लेना चाहिये जब कि किसान को अपने व्यय से कम से कम दुगनी आय अवश्य हुई हो। भूमि में या कृषि के साधनों में जब सुधार किया जा रहा हो तब भी कर नहीं लेना चाहिये। नये व्यवसायों से तब तक कर नहीं लेना चाहिये जब तक कि उन से आय न होने लगे।[4] इस प्रकार कर-मुक्ति द्वारा नए व्यवसायों को संरक्षण देना चाहिये। प्रत्येक पदार्थ पर एक बार कर अवश्य लगना चाहिये, साथ ही किसी वस्तु पर दुहरा कर नहीं लगना चाहिये।

---

१. मालाकारस्य वृत्यैव स्वप्रजा रक्षणेन च।
शत्रुं हि करदीकृत्य तद्धनैः कोशवर्द्धनम् ॥ १८ ॥

२. सर्वतः फलभुग् भूत्वा दासवत् स्यात्तु रक्षणे ॥ १३० ॥

३. भूविभागं भृतिं शुल्कं वृद्धिमुत्कोचकं करम्।
सद्य एव हरेत् सर्वं नतु कालविलम्बनैः ॥ १२३ ॥

४. शुक्र० अ० ४. ii. श्लोक १०९, ११४, और ११९।

(शुक्र० अ० ४ ii.)

भयानक बदला

(ले० श्री पं० आनन्द स्वरूप जी विद्यालङ्कार)

ऐ ! गरीब बकरी ! कसाईखाने जाते हुए क्यों कहराती हो ! अपना दुखड़ा किसे सुनानी हो। तुम रोती हो, लोग हँसते हैं। तुम पुकारती हो, वे खिलखिलाते हैं। तुम सहायता के लिये उनके पास जाओगी, वे तुम्हें कसाई के हाथ दे देंगे। फिर भी रोओ जितना रो सकती हो, चिल्ला सकती हो, इस लिये नहीं कि कोई तुम पर रहम करेगा, पर इस लिये कि शायद तुम्हारे रोने से ऊपर से आसमान गिर पड़े, जलता हुआ सूरज इस शैतानी दुनियाँ को जला डाले।

रहम ! रहम किससे चाहती हो ! आदमी खतम हो चुके और शेर ही बसते हैं। जो हर वक्त तुम्हारे खून के प्यासे हैं। फिर भी रोओ जिस से कि इस दुनियाँ पर आग के शोले बरसें और यह दुनियाँ खतम हो जाय।

बेचारी बकरी रो भी न सकी, रोते २ आँखों के आंसू खतम होगए। चिल्लाते २ गला बैठ गया। भागना चाहा पर भागते २ टाँगों में बल ही न रहा कि वे भाग सकें। वह थक कर जल्लाद के पैरों पर ही गिर पड़ी टाँगें बाँध दी गईं। पर वे तो थकान से पहिले ही बंध चुकी थीं। आखिर बकरी ने एक दफा फिर जल्लाद की तरफ देखा कि उस के दिल में रहम आजाय। कहरा न सकी गला बन्द हो चुका था; रो न सकी, आँसू सूख चुके थे। आखीरी तरीका खाली दीन-दृष्टि का था।

यही उसकी आखीरी जबान थी जिससे उसने रहम की याचना की। इस दफा आँखों ने भी जवाब दे दिया। कसाई की छुरी सामने थी। आँखें भी बन्द हो गईं। शरीर भय से सुन्न हो गया। वह हिल भी न सकी, शरीर में कंपकपी भी बन्द हो गई।

कसाई ने छुरी फेरी, पर बकरी पहिले ही इस दुनियाँ को छोड़ चुकी थी। उस पर रहम करने वाला दुनियाँ में न मिला—वह फरियाद करती इस से दूसरी दुनियाँ में चली गई। जाती हुई कह गई "बदला लूँगी" ! पर किसी ने सुना नहीं। सुनाना चाहती थी, पर गला जवाब दे गया था। दिल में कहा—पर कसाई ने नहीं सुना—वह छुरी तेज कर रहा था। उसे मालूम नहीं था कि उसका भी जल्लाद उस के लिये ठीक वैसे ही छुरी तैय्यार कर रहा है।

आज कसाई की बारी है। उसका जल्लाद आया। कसाई डर गया। अपने गुनाहों की माफी माँगने लगा। जवाब था कि क्या तुमने भी किसी पर रहम किया है? गिड़गिड़ाया, पर बेफ़ायदा। रिश्तेदारों को मदद के लिये बुलाया पर कोई न आया। जल्लाद उसे सब के सामने खींच ले गया; माँ, बाप, भाई, बहिन रोये पर किसी की हिम्मत न पड़ी कि जल्लाद के सामने जा सके। उस के हाथ पैर बाँध दिये गये। वह बिस्तरे पर बेसुध पड़ा है। हिलना चाहता है पर टाँग नहीं हिलती। बोलना चाहा पर गुन २ कर के रह गया, आवाज न निकली। आखीरी दफा फिर चिल्लाया—"बचाओ, बचाओ, बकरी मेरी जान लेना चाहती है।" पर बचाने वाला कोई न था। मित्र-दोस्त रोये, चीखें मारी पर उसे बकरी के शिकञ्जे से कोई न बचा सका। आँखें आखीरी दफा खुलीं पर किसी को देख न सकीं। यह दुनियाँ खाली अन्धेरा दिखाई दिया। आँखें बन्द होगईं, जल्लाद की छुरी तय्यार थी। एक २ अंग में से प्राण निकलने लगा। हाथ पैर ठंडे होने लगे। वेदना असह्य थी। पर उसको प्रकट करने की ताकत न थी। शरीर हिला भी नहीं। जबान बन्द हो चुकी थी। चेहरे पर देखने से मालूम होता था कि असीम दुख है, पर उस की कोई दवा न थी। आँखें पलट गईं—उसका भी शरीर श्मशान में वैसे ही भूना गया जैसे कि उसने बकरी को भूना था।

आज अदालत का दिन है। बकरी मुद्दई है और कसाई मुद्दाला। बकरी की तरफ से वेद, शास्त्र, सब वकील हैं। मुद्दाला अकेला है। उसका दिल भी मुद्दई का गवाह बन गया है। जज ने पूछा कि 'तुमने अपराध किया है?' कसाई के पास जवाब न था। सामने नरक की दधकती हुई आग दिखाई देती थी। धीमी आवाज में बोला "माफी"! जज ने कहा—'तुमने बेगुनाह को भी माफ नहीं किया, तुम्हें माफी कैसे'। आज उसको कैद होगई। मानुषिक कैद नहीं जिस में कि २० साल में छुटकारा हो जाता है, पर कई जन्मों की कैद। आज कसाई और बकरी में बड़ा फर्क है; बकरी का दुख से आखीरी छुटकारा कुछ मिनट में हो गया था पर कसाई को नरक में कई जन्म उसी तकलीफ में काटने हैं। ओः! कैसा बदला है! भयानक बदला है!!

"गति"

ले० श्री प्रो० सांभी राम जी एम० एस० ए० एलिज़ोना (अमेरिका)

मनुष्य तभी पूर्ण होता है जब कि वह खेलता है। प्राणियों में गति का होना आवश्यक है। गति शून्य प्राणि का जीवन नष्ट होजाता है।[1]

पिल्ले, बिल्ली के बच्चे, मेमने और बालक की स्वाभाविक रूपसे यदि खेल में प्रवृत्ति नहीं है तो अवश्य ही वे रोगी होंगे। खेल कूद बच्चों का जन्म सिद्ध अधिकार है, उसके बिना ज़िन्दगी मान्दगी है। यदि हम किसी बच्चे को ज़बरदस्ती खेल से वञ्चित करदें तो सदा के लिए उसका दिमाग़ पराधीन रह जायगा अर्थात् वह किसी भी काम में अग्रेसर होने के लिये उत्साहित नहीं होगा और अवश्य ही दूसरों का अनुयायी बनना चाहेगा।

देहाती बच्चों को देखिये कि वे अपने आप ही खेल कूद को अपना धर्म बना लेते हैं। उन को खेल में प्रवृत्त करो या न करो वे स्वयं टोलियाँ बना कर या तो गांव के समीप ही खेलने लग जाएंगे या जंगल में जाकर कुत्तों से खरगोश का शिकार करवाएंगे। पक्षियों को पत्थरों से उड़ाएंगे और बन्दरों की तरह वृक्षों की टहनियों पर झूलेंगे।

खेल का उत्तम से उत्तम लाभ समवयस्कों में ही हो सकता है, क्योंकि यदि वे आपस में लड़ें झगड़ें भी तो इस में बहुत अन्याय नहीं हो सकता। अपने समवयस्कों में बालक नई नई सफलताओं को विजय के शब्दों में प्रकट करता हुआ न केवल अपना उत्साह ही बढ़ाता है अपितु अपनी मातृभाषा में भी निपुणता प्राप्त कर लेता है। बड़ों की संगति में बालक सदैव अपने आप को लज्जित अनुभव करता है, क्योंकि बड़ों की आज्ञा को न चाहते हुए भी उसे मानना पड़ता है; जिस से उस की अपनी बुद्धि के अनुसार आगे बढ़ने का उत्साह नष्ट हो जाता है। यह भी संभव है कि बालक अपने आयुधर्म के विरुद्ध बड़ों की संगति से आलस्य या वैराग्य की शिक्षा प्राप्त करे। फिर जो तेज़ी व फुर्ती अपने समवयस्क बालकों में हो सकती है वह बड़ों की संगति में नहीं प्राप्त हो सकेगी; और जो बाल्यावस्था मनुष्य-जीवन की तैय्यारी के लिये बनाई गई है, नष्ट हो जायगी। अन्त में खेल का पूर्ण लाभ तभी हो सकता है जबकि हम खेलते हुवे आनन्द में खेल के अतिरिक्त दुनियां

(1) "Man is whole only when he plays; and animals must move or cease growing & die–"Youth" by Dr. G. Stanly Hall.

(2) "Child welfare magazine of America" march 1923.

के सब काम काज भूल जायें और ऐसा आनन्द तभी प्राप्त हो सकता है जबकि खिलाड़ियों में कोई बड़ी आयु का आदरणीय मनुष्य न हो क्योंकि उस की उपस्थिति में न तो वे कहकहा मार सकेंगे, न चिल्ला सकेंगे, और नांही वे शब्द जो समवयस्कों में बिलकुल जायज़ हैं, बोल सकेंगे।

इन उपरोक्त पंक्तियों का यह तात्पर्य बिलकुल नहीं है कि बड़ी आयु वाले मनुष्य छोटे बालकों के साथ कभी खेल में भाग ही न लें या उन खेलों का निरीक्षण ही न करें। मतलब यह है कि बालक प्रायः अपनी समान आयु वालों में ही खेलें और यदि बड़ी आयु वाले उनकी खेल में भाग लेना चाहें तो वे भी अपने में बाल-प्रकृति धारण कर लें। अर्थात् बालकों में बालक बन जायें ताकि उन की स्वतन्त्रता में बाधा न पड़े।

खेल नियम पूर्वक होनी चाहिये, ऐसा न हो कि कभी होगई और कभी नहीं। उत्तम तो यह है कि हम प्रतिदिन खेलें। यदि यह कहें कि एक आध दिन की खेल सप्ताह भर के लिये पर्य्याप्त है तो उसी एक आध दिन का भोजन भी सप्ताह भर के लिये काफ़ी होना चाहिए। डाक्टर रौस [3] लिखते हैं कि "हृदय के रोग प्रायः अनियमित व्यायाम की थकावट से होते हैं। बहुत से आदमी कभी २ व्यायाम करते हैं, और वह भी कभी तो आवश्यकता से कम और कभी आवश्यकता से अधिक। हमें प्रतिदिन के व्यायाम में ठीक उतनी थकावट होनी चाहिये जितनी कि रात भर के विश्राम से बिल्कुल उतर जाय।"

बच्चों की प्रत्येक खेल का ढंग और स्थान, माता पिता तथा अध्यापकों के निरीक्षण में रहने चाहिये नहीं तो बच्चों के आचार व्यवहार बिगड़ने का अन्देशा रहता है। निरीक्षित खेलों में बालकों में परस्पर न्याय का मादा पैदा होता है, निरीक्षण रहित खेलों में झगड़ा, मक्कारी आदि अवगुण उत्पन्न हो जाते हैं; खेल में हार मानने की जगह उपद्रव उठने शुरू हो जाते हैं। इस लिये यह आवश्यक है कि खेलों का प्रबन्धक बिना निरीक्षक नियत किये खेल को आरम्भ न होने दे। यदि कोई ख़ास योग्य निरीक्षक न भी मिले तो बालकों में से सब से अच्छे बालक को यह पदवी देकर खेल शुरु कराई जावे। कारण यह है कि सब सामूहिक खेलों में फ़ौज की तरह एक न एक की आज्ञा ज़रूर ही मानी जानी चाहिये।

काम व खेल

जीवन का कुछ लाभ नहीं है यदि उस में कुछ काम न किया जाय। काम करने का शौक बच्चों को प्रारम्भ से ही डालना चाहिये और वह भी ऐसे ढंग से जिस से वे काम को खेल या बाल-धर्म समझें। काम को करवाने के लिये धमकी या फौजी आज्ञा का प्रयोग नहीं करना चाहिये बल्कि बच्चों को प्रेम से

(3) Principles of Sociology By Dr. E. A. Ross, pp. 16,

समझाना चाहिये कि कुटुम्ब का काम अधिक होगया है, पिता धनोपार्जन में लगा रहता है और माता घर के काम से थक जाती है, क्योंकि वह भी परिवार का भाग है अतः शक्ति के अनुसार उस के कुछ काम कर लेने से घर का काम हलका हो जायगा।

मात पिता को स्मरण रखना चाहिए कि चाहे वे गरीब हों या अमीर, बच्चों को काम की आदत डालना उनका पैतृक धर्म है। यदि घर का काम नहीं है तो धनी माता पिता को बच्चों के लिये कला कौशल के छोटे२ अस्त्र (उदाहरणार्थ बढ़ई के औज़ार, लोहार के हथियार, खेती का छोटा २ सामान, चित्रकारी की वस्तुएं, कपड़ा सीने तथा भोजन बनाने का सामान) खरीद देने चाहियें। इस से एक पन्थ दो काज होंगे। ये खेल के सामान जो उनके लिये आज तक नकली हैं, कल असली हो जायँगे; क्योंकि आज की नकल कल की तैय्यारी है। वह बच्चा जो खेल के लिये ऐसे हथियारों का प्रयोग करता है खेल को जीवन का एक भाग बना लेता है, जिस का लाभ किसी स्कूल या यूनिवर्सिटी की विद्या से कम नहीं होता। मिस्टर कैबॅट अपनी पुस्तक में बच्चे के काम के विषय में लिखते हैं कि जो बच्चे बचपन ही से काम करना सीखते हैं वे बडे होकर आदमियों में बड़े आदमी, शिकारियों में बड़े शिकारी, विद्यार्थियों में बड़े विद्यार्थी, धनियों में बड़े धनी और सेवकों में बड़े सेवक बनते हैं। इसके विरुद्ध यदि उन्हें काम से वञ्चित रक्खा जाय तो वे दुनियाँ में दुखियों में से दुखी अपने आप के लिये बोझ तथा समाज के लिये हानिकारक सिद्ध[1] होंगे।

बच्चों को रिश्वत पर काम करने की आदत नहीं डालनी चाहिये। किसी काम से इन्कार करने पर शारीरिक दण्ड देना अनुचित है। जहाँ तक हो सके बच्चों से जबरदस्ती काम न लिया जाय बल्कि उन से ऐसे प्रेम से काम लें जिस से वे अपने आप ही उस काम के करने में गौरव समझें। उदाहरणार्थ एक कथा लिखी जाती है जिस में ब्रेडले[1] नामी बच्चे को उस की माता ने बिना रिश्वत दिये तथा बिना शारीरिक दण्ड दिये कैसे प्रेम से उस के हृदय को जीता है। अमरीका की प्रथाके अनुसार कोई मनुष्य किसी दूसरे मनुष्य का काम बिना मूल्य लिये नहीं करता, चाहे वे मनुष्य परस्पर कितने ही सम्बन्धी क्यों न हों, अर्थात् काम करने

---

1. "What men live by"—By R. C. Cabot, pp. 5, 6 & 65.
1. "Teaching the Boy to-work"—By Wm. A. mc. Keever.
"Child welfare magazine" May 1923, pp. 372-5
"The Constructive Interests of Children" Dr. Kent.
"Gentle measures and Training the Young." pp, 4-43
"Pedagogical Seminany" Dec. 1896, pp 129.

पर पुत्र पिता के पास मज़दूरी का बिल भेज देगा और इसी प्रकार भाई भाई के पास, इत्यादि। इसी प्रथा के अनुसार ब्रेडले भोजन करने के लिये जब टेबल पर आता है तो निम्नलिखित बिल माता के सामने टेबल पर रख देता है—

माता मेरे इस बिल की ऋणी है:—

(१) सन्देश भेजने के लिये......५ पैसे

(२) घर में अच्छे बर्ताव के लिए ५ पैसे

(३) भजन गाने के लिये ......५ पैसे

(४) साधारण सेवा इत्यादि के लिये ५ पैसे

कुल योग .... ५ आने

अपका पुत्र—

ब्रेडले

माता ने यह बिल उठाया और थोड़ी देर मुस्करा कर ५ आने लिफाफे में बन्द करके एक अपना निम्नलिखित बिल बना कर इस लिफ़ाफे के पास ही टेबल पर रख दिया।

ब्रेडले मेरे इस बिल का ऋणी है:—

विषय	रू० आ० पा०
मातृ सेवा के लिए.........	०-०-०
बीमारदारी के लिये...........	०-०-०
वस्त्र तथा खिलौने आदि के लिये	०-०-०
भोजन आदि के लिये	०-०-०

कुलयोग -०-०-०

आप की हितचिन्तका—

माता

इस बिल के पढ़ते ही ब्रेडले की आँखों से आँसू निकल पड़े और बिल के ५ आने लौटाता हुआ माँ के हृदय से चिपट सिसक २ कर कहने लगा-माँ-माँ—आँ—मैं भूल गया। तेरा बिल प्रेम है, विषय विषय में तेरे जितने शून्य हैं, ये सब प्रेम-प्रेम-प्रेम हैं और उन सब का योग प्रेम का सागर है। मैं भी आज से जो तेरी सेवा करूँगा प्रेम के लिये ही करूँगा।

इस कथा से यह हर्गिज़ न समझ लेना चाहिये कि बच्चों को खर्च के लिये पैसा दिया ही न जाये। पैसा तो दो, पर किसी काम के बदले में नहीं। नियमित समय पर थोड़े २ पैसे अपनी आर्थिक अवस्था के अनुसार देना उचित है जिस से कि उन्हें बाजार में खरीदने फ़रोख्त करने में स्वतन्त्र अवसर मिले। बच्चों को कुछ पैसे देने से वे व्यापार आदि ढंग जान जायँगे।

(1) "Children's story Sermons, By Dr. T. Kerr.

"पहिचान"

(ले० श्रीयुत गुप्त विद्यालंकार)

(१)

सार्वजनिक कार्यों में दिन रात लगे रहने वाले लोग प्रायः विवाह कर के एक बड़ी मुसीबत अपने सिर पर डाल लेते हैं। वे स्नेह-प्राप्ति की अभिलाषा से यह सोच कर विवाह करते हैं कि जब हम रोज़ी के लिए आवश्यक कार्य करने बाद शेष समय में जनता और राष्ट्र की सेवा कर के कुछ मिनटों के लिए अपने घर में जाएँगे—तो गृहस्थ की मालकिन के स्नेहपूर्ण व्यवहार से हमारी दिन भर की थकावट शान्त होजावा करेगी। परन्तु दिन भर जी

तोड़ कर परिश्रम करने के बाद घर पहुंच कर जब उन्हें घर वालों के व्यङ्गय पूर्ण उलाहने मिलते हैं, तब उन्हें अपनी भूल साफ़ प्रकट होने लगती है।-स्नेह किसी के हृदय में यूंही, मुफ्त में देने के लिए नहीं भरा होता है, वह कुछ प्रतिदान भी चाहता है।

डाक्टर रामनाथ P. M. S. ने भी विवाह कर के इसी प्रकार की भूल की थी। जब शान्ता घर में आई थी तो वह समझते थे कि दिन भर शहर की सभाओं में लड़ झगड़ कर मेरा हृदय जितना खिन्न होजाता है उसे शान्त करने के लिये शान्ता सचमुच अपने नाम को कृतार्थ किया करेगी। परन्तु प्रातः काल ही घर से विदाई लेकर सूर्यास्त होने के बाद जब डाक्टर साहब घर के आंगन में पधारते थे तब शान्ता सिर झुका कर नाराजगी से जो दो एक वाक्य कहा करती थी उनसे डाक्टर साहब की आशा लता शीघ्र ही मुरझा गई। यह बात नई नहीं है। निरन्तर १८ वर्षों से इसी प्रकार का स्वागत पाकर डाक्टर साहब इस स्वागत के पूर्ण अभ्यस्त होगए हैं। परन्तु इतनी मुद्दत के बाद इन दिनों एक नया प्रश्न खड़ा होगया है, जिस के कारण डाक्टर साहब घर आने से भी घबराने लगे हैं।

रात के आठ बजे थे। त्रयोदशी का चांद पूर्व दिशा में कुछ ऊपर होकर घरों में झांक रहा था। इसी समय डाक्टर साहब ने घर में प्रवेश किया। आंगन में आकर वह एक कुर्सी पर बैठ गए। आज वह बहुत अधिक थके हुए थे, म्युनिसिपैलिटी के आज के अधिवेशन में पानी के नलों का कर बढ़ाने का प्रस्ताव पेश था, डाक्टर साहब इस प्रस्ताव के विरोधियों के अगुआ थे। आज कई बार उन्होंने जोश में आकर बड़े मार्मिक शब्दों में अपीलें की थीं, पानी का दाम बढ़ जाने पर उपस्थित होने वाले कष्टों का वर्णन किया था, इसके लिये अकाट्य दलीलें दी। परन्तु इतना ज़ोर लगाने पर भी आशा यही थी कि प्रस्ताव पास होजायगा।

प्रस्ताव पर बहस कल के लिये मुल्तवी कर दी गई थी। डाक्टरसाहब बहुत थक गए थे। कुर्सी की पीठ पर अपना सम्पूर्ण बोझ डाल कर वह इसी विषय पर विचार करने लगे। मारे गर्मी के उन के माथे से पसीना चू रहा था।

१५ बरस की बालिका लीला अपने पिता जी को आया देख कर एक पंखा लेकर उन पर हवा करने लगी। एक बार लीला की ओर देख कर डाक्टर साहब कुछ सहम से गए। उन के दिमाग़ से पानी की टैक्स वृद्धि का प्रश्न निकल कर उसके स्थान पर एक और पारिवारिक समस्या चक्कर काटने लगी। एक बार स्नेह से लीला के सिर पर हाथ फेर कर डाक्टर साहब ने उस से पङ्खा ले लिया। लीला बिना कुछ कहे वहां से चली गई।

डाक्टर साहब ने पंखे से हवा करते हुए एक ठण्डा श्वास लिया इसी समय शान्ता उन के पास आकर खड़ी होगई। शान्ता ने खूब गम्भीर होकर कहा-"आज मोचीगेट के सामने कोई मीटिङ्ग न होगी? तुम्हीं न जाकर एक लैक्चर दे डालो।" डाक्टर साहब यह ताना सुन कर झल्ला उठे। एक बार दुखित नेत्रों से शान्ता की ओर देख कर वह सामने की दीवार पर बैठी हुई बिल्ली की ओर देखने लगे।

शान्ता ने देखा कि डाक्टर साहब आज कुछ विशेष उदास हैं। उस का अभिप्राय डाक्टर साहब का जी दुखाने का कदापि नहीं था। डाक्टर साहब का मुंह देख कर वह अपने कथन पर स्वयं ही लज्जित हो उठी। थोड़ी देर तक चुप रहने के उपरान्त उस ने बड़ी नम्रता से कहा—"क्यों, आज म्युनिसिपैलिटी की बैठक में क्या निर्णय हुवा?" एक सार्वजनिक कार्य के सम्बन्ध में अपनी पत्नी का सहानुभूति पूर्ण प्रश्न सुन कर डाक्टर साहब को बहुत प्रसन्नता हुई। वह बड़े प्रेम से विस्तार पूर्वक आज के अधिवेशन की कार्रवाई शान्ता को सुनाने लगे। बिल्कुल इच्छा न होते हुए भी शान्ता बड़े धैर्य से "हूं, हां" कर के डाक्टर साहब का लम्बा किस्सा सुनने लगी। शान्ता को यह लम्बा किस्सा बिल्कुल असह्य हो रहा था। मौलवी अशफाकुल्ला की दलीलों का बैरिस्टर विनोद ने किस प्रकार खण्डन किया,—ये सब बातें इसके लिए बहुत क्लिष्ट और अरुचिकर थीं। खैर यह हुई कि बीच में ही नौकर भोजन परोस कर ले आया, नहीं तो न मालूम बेचारी शान्ता को कितनी देर तपस्या करनी पड़ती। नौकर के भोजन धरते न धरते शान्ता वहां से उठ कर भाग खड़ी हुई।

रात को सोने से पूर्व शान्ता ने फिर कहा—"तुम्हें मुल्क भर की तो फिकर है। कभी किसी मीटिङ्ग में जाते हो, कभी किसी जलसे में; कभी किसी का स्वागत करने जाते हो, कभी किसी को विदाई देने। क्या केवल हम घर के लोग ही तुम्हारी इस मेहरबानी से महरूम रहेंगे। देखो, लीला इतनी बड़ी होने में आई, इतने दिनों से मैं तुम्हें यह बात कह रही हूं, तुमने अभी तक उसके लिए वर खोजने का यत्न भी नहीं किया। रोज "हूं, हां' कर के टाल देते हो।"

सचमुच बहुत दिनों से शान्ता लीला के विवाह की बात डाक्टर साहब से कर रही थी। इसी कारण उनको घर जाना भी एक मुसीबत जान पड़ने लगा था। अगर और कोई दिन होता तो वह पहले की तरह शान्ता को टरका देते परन्तु आज शान्ता के व्यवहार से वह बहुत प्रसन्न हुए थे। उन्होंने सोचा—"सचमुच, शान्ता की यह शिकायत बेजा नहीं है। मैं घर के मामलों की ओर बहुत कम ध्यान देता हूं। लीला अब बड़ी होआई। मुझे उस के लिए वर की तलाश करनी चाहिये।" इस के बाद उन्होंने सोचा—"मैं रोज सार्वजनिक कार्यों में सिर खपाता हूं, मुझे इस से लाभ ही क्या है। म्युनिसिपैलिटी के दूसरे मैम्बर मुझे सिड़ी समझते हैं। लोग समझते हैं कि मैं महज़ इज्जत के लिए ये सब कार्य करता हूं। हम रात दिन पब्लिक के लिए दौड़ें, लड़ें, झगड़ें; उस पर म्युनिसिपैलिटी में हमारी ज़रा भी पूछ न हो।" इस के बाद उन्हें फिर आज की म्युनिसिपैलिटी की कार्यवाही याद आगई। उन्होंने सोचा कि क्यों कर मैं भी दूसरे मेम्बरों की तरह महज़ लीडरी का शौक पूरा करने के लिये ही म्युनिसिपैलटी की बैठकों में हिस्सा लिया करूं। यही बातें सोचते २ उन्हें नींद आगई।

(२)

अगले दिन जब म्युनिसिपैलिटी में पानी का टैक्स बढ़ाने के प्रस्ताव पर विचार होने लगा, तब डाक्टर साहब उस अधिवेशन में सम्मिलित नहीं थे। डाक्टर साहब आज तक म्युनिसिपैलिटी की सभी बैठकों में बिलानागा शामिल होते रहे थे। आज उन्हें अनुपस्थित देख कर सभी लोगों ने यही अनुमान किया कि शायद उन के घर में कोई विशेष दुर्घटना होगई है।

अस्तु; जब विरोधी दल का नेता ही उपस्थित नहीं था तब प्रस्ताव फेल होने की की आशा ही कहां थी। डाक्टर साहब के अभाव के कारण आज बहस भी बहुत गरम न हो सकी। शीघ्र ही बहुसम्मति से प्रस्ताव पास होगया।

डाक्टर साहब आज मीटिङ्ग में उपस्थित नहीं थे, प्रातःकाल वह जेल का निरीक्षण करने चले गए थे। उस के बाद वह लीला के लिये वर की खोज करने लगे। सायंकाल जब ५ बजे के करीब डाक्टर साहब घूमते घामते घर के बहुत नज़दीक आ पहुंचे, तब घर की ओर देख कर वह सहसा रुक गए। घर की तरफ जाते हुए उन्हें शर्म मालूम होने लगी। आज से पूर्व सदैव जब वह घर में आते थे उन के मस्तिष्क में जातीय सेवा की नागरिक बातें चक्कर काट रहा हुआ करती थीं, आज खाली हृदय उन्हें घर की तरफ जाते हुए बहुत शर्म मालूम पड़ने लगी। म्युनिसिपैलिटी में जल कर बृद्धि का प्रस्ताव पास होचुका है, यह भी उन्हें मालूम हो गया था, इस कारण भी आज उनका हृदय एक अपूर्व दुख से भरा हुआ था। अगर वह स्वयं आज म्युनीसिपैलिटी में गए होते और बावजूद उन के यत्न के जलकर बृद्धि का प्रस्ताव स्वीकृत होजाता-तब भी उन्हें दुख अवश्य होता;-परन्तु उस दुख और इस दुख में भारी भेद था—इस दुख में आत्मग्लानि की तीव्र ज्वाला मिली हुई थी।

डाक्टर साहब घर की ओर और आगे न बढ़ सके। वह धीरे धीरे ठण्ढी सड़क की ओर सैर के लिए चले गए।

(३)

सार्वजनिक कार्यों के प्रति डाक्टर साहब की यह उदासीनता स्थिर न रह सकी; पब्लिक जल्सों का वह पुराना महारथी उदासीन होकर बैठ न सका। उन्हों ने फिर से इन कार्यों में भाग लेना शुरु किया। लीला के विवाह की बात को वह बीच में ही भूल गए।

जल कर बृद्धि का प्रस्ताव स्वीकृत होचुका था। शीघ्र ही-नए मास से-यह प्रस्ताव क्रिया रूप में लाया जाने वाला था। लोग इस निर्णय से अत्यन्त असन्तुष्ट थे, उन का कहना था कि म्युनिसिपैलिटी में हमारे प्रतिनिधि अल्प संख्या में हैं। सरकारी नामज़द प्रतिनिधियों की संख्या बहुत अधिक है, इस लिये हम इस प्रस्ताव को स्वीकार नहीं कर सकते।

डाक्टर रामनाथ ने देखा कि अगर यत्न किया जाय तो आम पब्लिक बड़ी सरलता से इस प्रस्ताव के विरोध में सब प्रकार का यत्न के लिए तैयार होसकती है। सूखा फूस ढेर रूप में तैयार है, उस में चिनगारी लगाने भर की देर है। दूसरी ओर उन्हों ने सोचा कि चाहे वह कितना ज़ोर ही क्यों न लगालें, म्युनिसिपैलिटी द्वारा वह अपने उद्योग में सफलता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। क्योंकि एक तो उस में प्रजा के वास्तविक प्रतिनिधि हैं ही कम, और जो हैं भी उन में से कुछ पर बेतरह सरकारी खौफ़ की छाप लगी हुई है। यह देख कर डाक्टर साहब ने शीघ्र ही अपने विचार को आन्दोलन का रूप देना शुरु किया। लोग तो तैयार ही थे, एक नेता की ज़रूरत थी। शीघ्र ही इस मांग ने एक ज़बरदस्त आन्दोलन का रूप धारण कर लिया। बड़ी २ सभाएं होने लगी। अधिकारियों पर गालियों की वर्षा की जाने लगी। शासक लोग कुछ डर गए।

डाक्टर रामनाथ आन्दोलन का यह उग्र रूप देख कर स्वयं भी घबरा गये। उन में प्रजा-हित की आकांक्षा तो अवश्य थी, परन्तु इस के लिये अधिकारी वर्ग को नाराज़ करने की हिम्मत उन में न थी। वह स्वयं सरकारी नौकर थे। वह डिस्ट्रिक्ट जेल के निरिक्षक थे, इस के लिये उन्हें २००) रु० मासिक वेतन मिलता था। इस के अतिरिक्त जिले के अन्य चिकित्सालयों का निरीक्षण भी उन्हीं के सपुर्द था, इस कार्य के लिये भी उन्हें २५०) रु० मासिक वेतन मिलता था। इस आन्दोलन के नेता बन कर उन्हें स्वयं चिन्ता होने लगी कि कहीं इन पदों से हाथ न धोना पड़े।

परन्तु जिसे एक बार जनता से सम्मान प्राप्त करने का चस्का लग जाता है-वह उसे सरलता से नहीं भूल सकता। जनता का सम्मान कमज़ोर और नकली नेताओं को बहादुर और असली बना देता है, डाक्टर साहब स्वयं घबराते हुए भी कभी पीछे हटने का भय प्रकट

न करते थे। वह यथासम्भव भविष्य चिन्ता को अपने सामने आने ही न देते थे, अगर कभी अन्य सब विचारों को एक साथ परे ढकेल कर भविष्य चिन्ता उन के मस्तिष्क पर अधिकार कर लेती तो वह अपनी विद्वता और चिकित्सा में निपुणता की बात सोच कर सन्तोष कर लेते। क्या हुवा—अगर सरकार ने मुझे बर्खास्त कर दिया। लोगों में तो मेरी इज्जत और धाक बढ़ ही जायगी। सरकार लोगों को मुझ से दवा लेने से तो बन्द नहीं कर सकती।

परन्तु डाक्टर साहब घर पहुंचते ही बिल्कुल अधीर हो उठते थे। शान्ता के तानों के के मारे उन्हें घर में एक मिनट भी चैन लेना नसीब न होता था। घर पहुंचते ही वह बहुत उदास हो उठते थे। उन्हें अपने पर एक ऐसा भारी बोझ प्रतीत होने लगता था जो उन्हें शीघ्र ही पीस डालेगा; —लोग भड़क रहे हैं, अधिकारी नाराज़ हैं, नौकरी छिनने को है, दूकान पर जाने को भी फुर्सत नहीं मिलती, तिस पर पत्नी नाक में दम कर देती है, बेटो के ब्याह की चिन्ता अलग है।

(४)

क्रमशः जल–कर सम्बन्धी आन्दोलन बहुत उग्र हो उठा। लोग खूब जोश में आकर जलूस निकालते थे;—वन्देमातरम् आदि के नाद से आस्मान को उठा लेते थे। यहां तक कि शुक्रवार के दिन शहर भर में एक व्यापक हड़ताल करने का निश्चय किया गया। अभी शुक्रवार को दो दिन शेष थे। सब लोग हड़ताल को पूर्ण सफल बनाने के लिये यत्न करने लगे। डाक्टर साहब स्वयं इस कार्य के लिए टांगे वालों तक से मिलते थे।

शान्ता का बुरा हाल था। वह बेचारी बहुत चिन्तित थी। वह कई बार तो सोचती थी कि न मालूम मैं अभागी किस दीवाने के हाथ में पड़ी। दुनियां भर चैन की बंसी बजाती हैं, अपने परिवार को खुश करने का यत्न करती है—यहां अपनी लड़की के विवाह तक की सुध नहीं ली जाती। जन्म भर तरसते बीत गया, आज तक इन्होंने कभी मुझ से जी खोल कर प्यार से बात चीत भी नहीं की। खैर, इसे तो मैं जिस किसी प्रकार सह ही रही थी—यह एक नई आफत इन्होंने अपने सिर पर ले ली। न मालूम अगर कहीं कुछ होजाय तो मैं कहीं की न रहूंगी। यह सोचते सोचते उसकी आंखों में आंसू भर आए।

रात को डाक्टर साहब दस बजे के बाद घर लौटे। दिन भर हड़ताल के लिये दौड़ धूप करते रहने के कारण वह बिल्कुल बेदम होगये थे। आते ही वह पलङ्ग पर पड़ गए। शान्ता ने आज भोजन नहीं किया था, अभी तक वह आंगन में सिर झुकाए बैठी थी, डाक्टर साहब के घर में आते ही वह फूट फूट कर रोने लगी। डाक्टर साहब का हृदय भी पिघल उठा। उन की आंखों में भी पानी भर आया। परन्तु वह एक अक्षर भी न बोले। मानो वह शान्ता से बड़े दीन भाव में कह रहे थे—"क्षमा करो। मैं बहुत आगे बढ़ गया हूं।"

(५)

आज की हड़ताल एक अभूत पूर्व हड़ताल थी। शहर भर में एक भी मोटर या टांगा नहीं चल रहा था। एक भी कारखाना या दूकान आज खुली हुई नहीं थी। सब जगह सन्नाटा था। शहर भर में एक व्यापक मातम सा छाया हुआ प्रतीत होता था। लोग क्षण क्षण में घबरा रहे थे कि न मालूम अब क्या हो।

११ बज गए। अब तक कोई उपद्रव नहीं हुवा। डाक्टर साहब आज दो चार साथियों के साथ जगह जगह जाकर शान्तिरक्षा के लिये उपदेश दे रहे थे। वह जहां जाते, लोग "वन्देमातरम्" बोल कर उनका स्वागत करते। ११ बजे डाक्टर साहब चौक बाज़ार में खड़े कर होकर लोगों से कुछ बातचीत कर रहे थे कि उन्हें वहां ठण्डी सड़क पर उपद्रव हो जाने का समाचार ज्ञात हुवा। वह बेतहाशा भागे हुए वहां पहुंचे; उन्होंने देखा कि पुलीस सुपरिण्टेण्डेण्ट की मोटर को घेर कर हज़ारों लोग खड़े हैं। डाक्टर साहब को बताया गया

कि सुपरि० की मोटर पर आठ दस वर्ष की उम्र के कुछ बालकों ने पत्थर फेंके थे, सुपरिण्टेण्डेण्ट ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया, इस पर उन के रिश्तेदार बच्चों को छुड़ाने आए। इसी बातचीत में यह भीड़ जमा होगई है। डर है कि यह मामला कोई भयङ्कर रूप धारण न कर ले।

डाक्टर साहब शीघ्रता से अपने एक मित्र के कन्धों पर चढ़ कर खड़े होगए। उन्होंने उपस्थित जनता को शान्त रहने और बिखर जाने का उपदेश देना प्रारम्भ किया। इस का लोगों पर जादू के समान असर हुआ। लोग अपने २ घरों को लौटने लगे। इसी समय सुपरिण्टेण्डेण्ट ने मोटर से नीचे उतर कर डाक्टर साहब को मजिस्ट्रेट का वारण्ट दिखा कर अपने साथ मोटर पर बैठने का हुक्म दिया। डाक्टर साहब ने लोगों से कहा—"घबराने की कोई बात नहीं है। केवल शान्ति भंग न होने पाए।' लोग समझ गए कि डाक्टर साहब गिरफ्तार कर लिए गये हैं। मोटर चलदी, परन्तु किसी व्यक्ति ने कोई उपद्रव नहीं किया।

(६)

शीघ्र ही वायु के समान वेग से डाक्टर साहब के गिरफ्तार होने की खबर शहर भर में फैल गई। परन्तु कहीं कोई दंगा नहीं हुआ। हां, लोगों में हड़ताल के लिये और भी उत्साह बढ़ गया—डाक्टर साहब पर सब की श्रद्धा दुगनी होगई।

शान्ता ने जब यह हाल सुना तो उसके तलवों के नीचे से ज़मीन निकल गई। वह प्रातः काल से जिस अनिष्ट की आशंका से कांप रही थी, वह असमञ्जस होही गया। शान्ता बेहोश होकर गिर पड़ी। लीला को भी अपार दुःख हो रहा था। परन्तु वह धीरे धीरे सिसक सिसक कर ही रो रही थी। माता को बेहोश देख कर बालक वीरेन्द्र चिल्ला २ कर रोने लगा। लीला माता को सावधान करने का यत्न करने लगी। घर में भयंकर मातम छागया। डाक्टर साहब के अनन्य मित्र श्रीयुत रामनारायण वकील घर में आकर शान्ता और लीला को आश्वासन देने लगे।

सायंकाल का समय था। शान्ता और लीला दोनों ऊपर के कमरे में फर्श पर बिछी हुई दरी पर ही लेटी हुई थीं। सहसा साथ वाली सड़क पर बैण्ड और बाजे की ऊंची और मधुर ध्वनि सुनाई पड़ने लगी। लीला जाग कर उठ बैठी। उसने से सोचा आज इस मातम के दिन में यह क्या होने लगा है। उसने खिड़की से मुंह बाहर निकाल कर देखा, लीला-को जो कुछ दिखाई पड़ा उस पर वह विश्वास न कर सकी; उसने देखा कि लोगों की एक बहुत बड़ी भीड़ बाजे गाजे के साथ चली आ रही है। बीच में लोगों ने एक बड़ा फोटो लिया हुवा है। यह फोटो डाक्टर रामनाथ का है। फोटो को खूब अच्छी तरह सजाया गया है; वह चारों ओर से मालाओं से आवेष्टित है। लोग उस पर फूलों की वर्षा कर रहे हैं। यह जलूस उस के घर की ओर ही बढ़ा आरहा है। लीला ने उत्तेजित स्वर में पुकारा—"मां, मां, ज़रा बाहर देखो।"

शान्ता चौंक पड़ी, वह दोनों हाथों में मुंह देकर कर लेटी हुई थी। लीला की आवाज़ सुन कर वह बड़े अनमने भाव से धीरे धीरे खिड़की के पास आई। उसने सिर बाहर निकाला, सहसा सुनाई दिया—"वन्दे मातरम्!" "महात्मा गांधी की जय!" "डाक्टर रामनाथ की जय!" शान्ता का उदास चेहरा एक दम आत्मभिमान से खिल उठा। वह निर्निमेश नेत्रों ने अपने पति के चित्र की ओर देखने लगी। उस का सारा शोक काफूर होगया! चेहरे पर आत्मिक आनन्द की हलकी मुस्कराहट छागई। झुका हुआ सिर गर्व से तन गया,-उस ने सोचा—"आहा! यही महात्मा मेरे पति हैं!" इस समय तक जलूस डाक्टर साहब के मकान के नीचे आकर ठहरगया। जलूस में शामिल सब लोगों ने शान्ता की ओर देख कर सिर झुका कर उसे प्रणाम किया। इस के बाद सब ने फिर से उन्ही तीनों नारों द्वारा आस्मान को गुंजा दिया। शान्ता इस समय जिस अवस्था में थी उसे वही समझ सकती है। वह इस समय यह अनुभव कर रही थी कि मानो वह सम्पूर्ण उपस्थित जनता की माता है।

(७)

प्रातःकाल डाक्टर साहब ज़मानत पर छूट कर वापिस आए। लोगों ने बड़े उत्साह और समारोह से उनका जलूस निकाला। दोपहर के समय डाक्टर साहब किसी अनिष्ट की आशंका से घबराए हुए घर में प्रविष्ट हुए। वह सोच रहे थे कि इतने सम्मान के बाद अब शान्ता की झाड़ सुननी पड़ेगी।

इसी समय शान्ता ने दौड़ कर उनके चरणों पर सिर रख दिया। शान्ता के चेहरे पर एक विचित्र आत्मभिमान और लज्जा का भाव प्रगट हो रहा था। डाक्टर साहब अचरज में आगए, इसी समय शान्ता ने आवेश से कांपती हुई स्वर में कहा "नाथ, क्षमा करो।" डाक्टर साहब की आंखों में आनन्द के आंसू उछल आये, उन्होंने शान्ता, को उठा कर छाती से लगा लिया और कहा "शान्ता, नौकरी छिन गई।" शान्ता ने लजा कर कहा—"नाथ, इतने दिनों के बाद अब आकर तुम्हें पहिचान पाई हूं।"

नदी

(ले०— कविवर श्री माल)

करने आयी हूं विश्राम।

भर उमंग में मैंने अपना छोड़ा था सुखधाम—
उमड़ पड़ी, भूतल पर उतरी, घर से क्या अब काम।
शैल शिखायें भुजा बढ़ाकर रोक रही थीं द्वार—
घूम घाम कर जैसे कैसे कर पायी हूं पार।
उतर पड़ी भूतल पर आकर, गाती अद्भुत गान—
चली जिधर मुंह उठा उधर ही, दिल में था अभिमान।
भर घमण्ड में यहाँ उजाड़े कितने ही घर बार,
चढ़ नगरों पर मृत्यु-गान है गाया कितनी बार।
घूम घाम कर सभी कहीं हैं देखे बन और ग्राम—
ढूंढा सभी कहीं पर, पाया किन्तु नहीं आराम।
कब से यूं ही भटक रही हूँ, तन में भरी थकान,
कहाँ शरण पाऊँ अब जाकर, उतर गया अभिमान।
शरण न पाकर कहीं विश्व में आयी हूँ इस धाम—
इस सागर में ही मिल मैंने पाया है विश्राम।
चीर हृदय मैं इस के अन्दर समा जाऊँ हो एक समान,
इस में ही मिल, करदूँ अपने जीवन का अन्तिम अवसान।

सम्पादकीय

गुरुकुल—रजत—जयन्ती

अब यह निश्चय हो चुका है कि १६ से २१ मार्च १६२७ को गुरुकुल विश्वविद्यालय, काँगड़ी की रजत-जयन्ती धूम धाम से मनायी जायगी। यह अवसर सम्पूर्ण आर्य जनता के लिये हर्ष का, उल्लास का और गौरव का होगा। इस दिन आर्य जनता के प्रारम्भ किये एक महान् परीक्षण की सफलता की दुन्दुभि दिग्दिगन्त में बजाई जायगी। शिक्षा के जिन आवश्यक सिद्धान्तों की रक्षा के लिये आर्य्य-जनता ने आवाज़ उठाई थी, उन की रक्षा हो गई, और उन सिद्धान्तों के परिपुष्ट करने के लिये स्थापित की हुई संस्था २५ साल तक अपूर्व सफलता प्राप्त करती हुई अब तक चलती रही, यह कम गौरव की बात नहीं है। यह दिन भारतवर्ष के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा और आर्य-समाज के इतिहास में तो बिल्कुल अमर हो जायगा। इस दिन गुरुकुल की सफलता की खुशी में प्रत्येक भारतीय के हृदय में रंग चढ़ जायगा क्योंकि गुरुकुल आर्यसमाज का ही नहीं, भारतवर्ष का है!

गुरुकुल सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय संस्था है। भारत के भावी स्वतन्त्र राष्ट्र को दृष्टि में रखते हुए यहां तय्यारी की जाती है। भारत के राष्ट्र बनने के लिये उदार विचारों का होना अत्यन्त आवश्यक है। इन्हीं उदार विचारों का पुञ्ज गुरुकुल का वायुमण्डल है। 'उदारता' के साथ 'अपनेपन' के लिये प्रेम उससे भी अधिक आवश्यक है, अन्यथा भारतीय जातीयता का आधार रेतीले टीले पर होगा। ये भाव भी गुरुकुल की नींव में पड़े हुए हैं। गुरुकुल, राष्ट्र के लिये एक भाषा का—हिन्दी का—प्रचार आवश्यक समझता है और २५ साल से इसी उद्योग में लगा हुआ है। गुजराती, मराठे, मद्रासी, ब्राह्मी, संयुक्तप्रान्तीय तथा पञ्जाबी—सभी बालकों का उच्च से उच्च शिक्षा हिन्दी में देकर गुरुकुल ने राष्ट्रीयता के निर्माण में क्रियात्मक कदम रक्खा है। गुरुकुल के स्नातकों का जीवन राष्ट्रीयता के यज्ञ में आहुति के रूप में पड़ा हुआ है क्योंकि वे इसी काम के लिये तय्यार हुए हैं।

गुरुकुल जहाँ राष्ट्रीय संस्था है वहाँ धार्मिक संस्था भी है। भारतीय राष्ट्रीयता का आधार यदि धर्म पर न होगा तो वह राष्ट्रीयता खोखली होगी। भारत का धर्म, उस की सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्य है! भारत के नवयुग में प्रवेश करने के लिये वेदों, उपनिषदों तथा दर्शनों के नए प्रकाश में और नये अर्थों में समझे जाने की ज़रूरत है! प्राचीन सभ्यता को छोड़ते ही भारत की अन्य राष्ट्रों से पृथक् सत्ता के अर्थ ही कुछ नहीं रहते। हमारा भारत अपनी सभ्यता, संस्कृति तथा साहित्यके लिये जीता है। संसार भर में नवीन जीवन का सन्देश पहुंचाना हमारा कर्तव्य है! ऋषियों के जंगलोंमें किये गये अनुभवों को आत्म-

तत्व का तिरस्कार करने वाले भूले भाइयों के कानों में सुना देना आवश्यक है। इस के बिना भारतीय जागृति अधूरी ही नहीं निकम्मी है। गुरुकुल में यह कार्य दिन-रात के परिश्रम से निरन्तर हो रहा है। गुरुकुल में वेद, दर्शन, उपनिषद् पढ़ाई जाती हैं परन्तु अर्थशास्त्र, इतिहास, पाश्चात्य विज्ञान तथा दर्शन, अंग्रेजी आदि अन्य विषय साथ ही पढ़ाये जाते हैं। यहां पूर्व—पश्चिम का अद्भुत तथा अनोखा मेल है जो भारतीय जागृति के लिये अत्यन्त आवश्यक है।

'जातीयता' तथा 'धार्मिकता' की भी आधार शिला 'सच्चरित्र'-'सदाचार'-है! अन्य संस्थाओं पर कीचड़ फेंकना हम अपना काम नहीं समझते। हम इतना अवश्य जानते हैं कि गुरुकुल में जाति की सेवा करने वाले बालकों के चरित्र को सुघटित बनाने के लिये पूरी मेहनत की जाती है। गुरुकुल का बड़ा भारी उद्देश्य यह है कि यहाँ रहते हुए हमारे देश के नवयुवक आत्मिक बल का संचय करें, अपने संचित बल को परखें और अपनी त्रुटियों का पता लगा कर उन्हें दूर करें और फिर शक्ति-संचय में लग जांय। देश को उठाने के लिये ऐसे चरित्रवान्, देशभक्त नौजवानों की ज़रूरत है। इस संस्था के युवक बाल्यावस्था में ही जड़ में लग जाने वाले घुन से बचे रहते हैं। उन्हें उच्च विचारों तथा आदर्शों में पाला जाता है। 'सदाचार' की मज़बूत चट्टान उनके जीवन रूपी भवन की नींव में डाल दी जाती है क्योंकि इस के बिना जातीयता की इमारत कच्ची रह जाती है।

इस प्रकार की अद्वितीय संस्था अपने जीवन के २५ साल समाप्त करने वाली है। उस के लिये समारोह-पूर्वक उत्सव मनाना है। १० लाख की अपील की गई है। हम अपने भाइयों से भारतीयता के, राष्ट्रीयता के और सहधर्मिता के नाते अनुरोध करते हैं कि वे इस कार्य में तन-मन-धन से सहयोग देकर इसे सफल बनावें क्योंकि इस संस्था की सफलता हमारे राष्ट्र के विजय की अनेक घोषणाओं में से एक होगी और हमारे मृत प्राय देश में नव जीवन का सञ्चार कर देगी।

गुरुकुल समाचार

ऋतु—आजकल ऋतु सुहावनी है। सूर्य और चाँद बादलों के आँचल में मुंह छिपाये रहते हैं। वर्षा की झड़ी लगी रहती है। आकाश पर विश्वास करना अपने आप को धोखा देना है क्योंकि मालूम नहीं बादल कब बरस पड़ेंगे। सारा जंगल नानाविध वनस्पतियों की हरियाली से हराभरा है। गंगा इस समय अपने यौवन पर है। गंगा में तैरने का ब्रह्मचारी और उपाध्याय गण खूब आनन्द उठा रहे हैं। मलेरिया के लक्षण यत्र तत्र गोचर हो रहे हैं।

अवकाश—सत्रान्तावकाश १६ अगस्त से आरम्भ होंगे। महाविद्या-

लय फिर १६ अक्टूबर को खुलेगा। उपाध्याय और ब्रह्मचारी छुट्टियों में धन संग्रह का कार्य भी करेंगे। मध्यप्रदेश में श्री प्रो० सत्यकेतु जी, और श्री मा० गोपाल जी धन संग्रह के लिए घूमेंगे। क्वेटा में, श्री उपाचार्य पं० विश्वनाथ जी और श्री प्रो० सत्यव्रत जी सम्पादक 'अलंकार' चन्दे के लिये जायंगे। बिहार में श्री पं० धर्मदत्त जी वि० अ० और श्री प्रो० देवराज जी सेठी जांयगे। श्री आचार्य प्रो० रामदेव जी कलकत्ता धन संग्रह के लिये जायंगे। इन के सिवाय अन्य डेपुटेशन भी अन्य जगहों में जांयगे। गुरुकुल महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने रजत-जयन्ती के पुण्य अवसर पर १० हजार की एक थैली कुल माता के चरणों में अर्पण करने का निश्चय किया है। अपने इस पुण्य निश्चय की सफलता के लिये ब्रह्मचारी गण सर्वत्र भ्रमण करेंगे। हमें विश्वास है कि राष्ट्रीय शिक्षा के प्रेमी तथा गुरुकुल के प्रेमी महानुभाव ब्रह्मचारियों के इस अपने शुभ निश्चय को कार्य रूप में परिणत करने में पूरी सहायता देंगे।

पार्लियामेण्ट—गुरुकुलीय पार्लियामेण्ट का अधिवेशन १, २, और ३ अगस्त को होगया। इस वर्ष पार्लियामेण्ट के सभ्य उदार दल, राष्ट्रीय तथा मज़दूर दल, स्वतन्त्र दल और अनुदार दल में बटे हुए थे। इन दलों के नेता क्रमशः ब्र० अवनीन्द्र, ब्र० धर्मानन्द और ब्र० विष्णुमित्र थे। प्रधान मन्त्री ब्र० ओम्प्रकाश ने 'शिक्षा सुधार बिल' पेश किया था। इस का उदार दल के अतिरिक्त स्वतन्त्र दल और और अनुदार दल ने भी समर्थन किया। राष्ट्रीय तथा मज़दूर दल अकेला विरोध में था। कुछ आवश्यक परिवर्तनों के साथ बिल पास होगया।

जन्मोत्सव—कुल की सब से पुरानी सभा साहित्य-परिषद् का नाम भारत में वैदिक अन्वेषण के कार्य में सर्वत्र आदर से लिया जाता है। ४ श्रावण को इस सभा का जन्मोत्सव था। सभापति का आसन श्री उपाचार्य जी ने और श्री स्वामी हरिप्रसाद जी ने ग्रहण किया था। श्री स्ना० गुरुदत्त जी का निबन्ध और श्री स्ना० चन्द्रगुप्त जी की गल्प स्मरणीय वस्तुएं हैं। इस अवसर पर श्री स्ना० देवशर्मा जी द्वारा लिखित 'तरंगित हृदय' पुस्तक सभ्यों को बाँटी गई। सायंकाल प्रीतिभोज के साथ उत्सव सानन्द समाप्त हुआ।

मंसूरी-डेपूटेशन—गुरुकुल के कुछ उपाध्याय पिछले दिनों मंसूरी शैल पर गुरुकुलार्थ धन-संग्रह के लिए गये। डेपुटेशन को बहुत सफलता प्राप्त हुई। महाराज नाभा ने दिवाली पर गुरुकुल में पधाने का वचन दिया है।

यात्रापर—रसायन के विद्यार्थी अपने उपाध्याय के साथ खाँड का कारखाना देखने अमृतसर और लाहौर १४ अगस्त को जा रहे हैं। आशा है ब्रह्मचारियों की यह यात्रा उनके लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

Registered No A ; 1340

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र]

कार्तिक १९८३ अक्टूबर १९२६

वर्ष ३] [अङ्क ५

मुख्य संपादक
प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विदेश से ६ शि० एक प्रति का ।-) वार्षिक मूल्य ३)

विषय सूची

विषय	पृष्ठ से
१. कभी (कविता)—श्री पं बंशीधर विद्यालंकार	१२९
२. जागृति का कवि 'भारवि'—श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति	१३०
३. वर्णव्यवस्था का तुलनात्मक अनुशीलन—पं० धर्मदेव जी विद्यावाचस्पति	११२
४. गायक के प्रति (कविता) पं० सत्यकाम विद्यालंकार	१३६
५. परमेश्वर और उसका स्वरूप—श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार	१३७
६. भारतीय सरकार की विनिमयदर नीति—पं० इन्द्र जी विद्यालंकार	१४४
७. कनक (कविता) —श्री पं० श्रीहरि	१४४
८. भारत साम्राज्य-विस्तार—श्री नारायण रामराव देशपाण्डे	१४६
९. आर्य-धर्म साधारण जनता में कैसे फैल सकता है-श्री प्रो० [illegible]राम जी एम. एम.	१४[illegible]
१०. नामरूप का अन्धेरा और स्वराज्य प्रकाश-श्री पं० भीमसेन विद्यालंकार	१५१
११. सम्पादकीय—हिन्दू और मुसलमान	१५५
१२. साहित्य-वाटिका	१५७
१३. गुरुकुल समाचार	१५९

ग्राहकों से निवेदन

१. अलंकार पत्र प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों के पास पहुंच जावेगा।

२. यदि कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे तो पहले डाकघर से पूछना चाहिये यदि पता न चले तो डाक-घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिये। यह सूचना देशी मास के तृतीय सप्ताह तक अवश्यमेव पहुंच जानी चाहिये। अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य न दी जावेगी।

३. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य देनी चाहिये अन्यथा उत्तर न दिये जाने के हम दोषी न होंगे।

४. पत्रोत्तर के लिए जबाबी कार्ड या टिकट साथ भेजना चाहिये।

५. पत्र—व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता पूरा और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये।

६. भावी ग्राहकों को चाहिये कि वे रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने से ग्राहकों को और हमें, दोनों को कष्ट होता है। पैसे लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है।

७. नमूने का अंक बिना मूल्य किसी को न भेजा जावेगा।

८ प्रबन्ध सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार प्रबन्धकर्ता "अलङ्कार" गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) के पते से करना चाहिये।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा।

वर्ष ३, अङ्क ५] मास, कार्तिक [पूर्ण संख्या २६

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

कभी[1]

(श्री पं० वंशीधर जी विद्यालंकार)

झूम झूम कर अपने विह्वल दिल की बात सुनाए जा,
गाए जा गान बजाए जा-अपनी तान चढ़ाए जा।
कुछ भी समझ नहीं पड़ती हो इस की कुछ परवाह नहीं,
अपनी अमृतमय वाणी की नदियां यहां बहाए जा।
कोना कोना कभी तुम्हारे गानों से भर जावेगा,
दिल सूखे हैं उन्हें सींच कर हरा भरा कर जावेगा।

१. लेखक की अप्रकाशित पुस्तक से।

जागृति का कवि भारवि

[२]

(ले० श्री पं इन्द्र जी विद्यावाचस्पति)

मुनिरूपी इन्द्र और अर्जुन का संवाद भारवि काव्य का एक परमोज्ज्वल अंग है। मैं अब २ उसे पढ़ता हूं—मेरे हृदय में नये उत्साह और नये आवेश का संचार हो आता है। ऐसो प्रतीत होता है कि कवि ने भविष्यादर्शी हो कर व्यंग्यरूप में आज कल की हमारी स्थिति का, पुराने भारत और नये भारत के संवाद मुख से चित्रण किया है। पुराने भारत से मेरा तात्पर्य उस भारत से नहीं, जिसको याद कर के ही हमारे हठीले प्राण अब तक स्थिर हैं। मेरा तात्पर्य उस भारत से है जो आज की राष्ट्रीय बातें करने वाली दुनियाँ को नासमझ मूर्ख और काफ़िर समझता है। वह पुराना भारत राष्ट्रीयता की पुकार मचाने वाले नये भारत से कहता है कि 'भाई! जाति राष्ट्र आदि की पुकार मत मचाओ, हमारी मेहरबान सरकार नाराज हो जायगी। हम स्वतन्त्रता के बिना इतने दिन कृपालु सरकार की छत्रछाया में जिये हैं—आगे भी जी सकेंगे। भारत की शोभा धर्म से है, दया से है-शक्ति से है। वह उन्नत हिमालय, यह शीतल गंगा और यह बूढ़ा भारत सब सन्ध्या और समाधि का स्थान हैं, राजनीतिक हलचल या चल बल का स्थान नहीं'। बूढ़ा मुनि इन्द्र अर्जुन से कहता है—"अरे भाई! संसार अनित्य है, लक्ष्मी चञ्चला है—सार है तो केवल मुनि धर्म है। कवच धनुष और बाण यह सब श्रेयः सिद्धि के बाधक हैं। दूसरे से द्रोह करना महापाप है, उस से किया हुआ तप भी नष्ट हो जाता है। यदि शत्रुओं को जीतने का शौक है तो इन्द्रियरूपी शत्रुओं को जीतने का साहस करो। इस एकान्त पर्वत में, पवित्र गंगा के तट पर मुक्ति का मार्ग ढूंढना ठीक है न कि शस्त्र उठाये फिरना।" यह शुभ और मंगलकारी उपदेश अर्जुन के हृदय पटल पर उतना ही स्थान पा सकता है, जितना कि जल का विन्दु कमल पत्र पर। अर्जुन का हृदय तुला हुआ है, उसने अनुभव किया है, और जिसने अनुभव किया है, वह कभी भूला नहीं करता। उसने अपनी राजसम्पत्ति का छिनना, बनवास का तिरस्कार, शत्रु की उन्नति, अबला का अपमान और पराधीनता, इन का अनुभव किया है। इन का अनुभव करने वाला यदि पत्थर नहीं है और पुरुष है, तो उस पर वैराग्य के उपदेश काम नहीं कर सकते। अर्जुन का उत्तर सुनने योग्य है, वह एक गिरी हुई जाति के ध्यान करने योग्य है और नवयुवकों के मनन की वस्तु है। उस उत्तर में धर्म का अत्युच्च आदर्श नहीं है, सत्वगुण का अत्युज्ज्वल परिपाक नहीं है, आध्यात्मिक बल के महत्व पर व्याख्यान नहीं है। वहां यदि कुछ है तो एक जीते जागते हृदय का उद्गार है, एक क्षत्रिय की

उमंग है और एक नवयुवक का जोश है। वह सब से ऊंचा आदर्श नहीं है–पर पाण्डव जिस अवस्था में थे–भूमण्डल पर सभी समयों में कोई न कोई जाति जिस दशा में रहती है–उस दशा में जो विचार एक जीवित नवयुवक के हृदय में होता है, और होना चाहिये, वही विचार अर्जुन के हृदय में आया है, और वाणी द्वारा प्रकाशित हुआ है, अर्जुन का उत्तर संक्षेप से यह है—

"मैं क्षत्रिय सन्तान हूं–मैं ने पाण्डु के वंश में जन्म लिया है। राजसभा में शत्रुओं ने हमारी अर्धांगिनी और राज्यलक्ष्मी का अपमान किया है, उसे धोने के लिये मैं ने यह तप प्रारम्भ किया है। उस पतिव्रता का सभा में दुष्टों ने जो तिरस्कार किया, क्या वह सत्य हो सकता है? हमारे बड़े भाई की क्षमा ही थी, जिसने उस तिरस्कार का सहन किया किन्तु सब युधिष्ठिर नहीं हैं। मेरे हृदय में उस तिरस्कार के लिए भयंकर क्रोध है। वह क्रोध भी मेरे लिये शुभ है क्यों कि यदि उस का सहारा न हो तो मैं शरीरधारण भी न कर सकूं। हमारी दशा बहुत ही हीन है–एक तिनके से भी गई गुजरी है। शत्रु ने हमें पराजित कर के कुचल दिया है और हंसी उड़ाई है। संसार में मान ही सब कुछ है और वही शत्रुओं ने ले लिया है। जो मनुष्य मान से हीन है, वह जीता हुआ मुर्दे से बदतर है। जो कुल का मान बढ़ाते हैं, वही उत्तम मनुष्य कहलाने के अधिकारी हैं बाकी तो केवल नामधारी मनुष्य हैं। शत्रु जिसकी सम्पत्ति छीन कर आराम से बैठ जाते हैं, वह पशु है। मनुष्य की सम्पत्ति यदि छिन भी जाय तो वह उसे वापिस लिये बिना नहीं छोड़ता। मेरा तो यह प्रण है कि या तो अपने अमोघ बाणों से शत्रु पक्ष में गई हुई राजलक्ष्मी को वापिस लूंगा, और या इसी यत्न में प्राण दे दूंगा। यदि कुल की लक्ष्मी का उद्धार करने से पूर्व मोक्ष भी आयगा तो मैं उसे विघ्न समझूंगा। जो कुल की लक्ष्मी का उद्धार नहीं कर सकता, वह पतित है, कापुरुष है। जो मानशाली हैं, वह मैदान में विजय पाते हैं, मैदान से भागते नहीं।"

अर्जुन के अन्तिम शब्द यह हैं—"मेरा प्रण है कि या तो इस पर्वत के शिखिर पर टूटे हुए बादलों की भांति अपनी हस्ती को खो दूंगा और नहीं-सहस्राक्ष को प्रसन्न कर के अकीर्ति-रूपी कांटे का उद्धार करूंगा"।

पुत्र का यह अटल प्रण, यह वीर वाक्य सुन कर, इन्द्र अपने मुखरूप और बनावटी उपदेश को न रख सका, प्रेम से गद्गद हो कर पुत्र को भुजाओं में लपेट लिया और शिव को प्रसन्न करने का उपदेश करके स्वर्ग का मार्ग लिया।

फिर तप—तप का अन्त नहीं, विजय की प्राप्ति के लिये इतना तप। विलासप्रिय कलियुग सुन कर ही कांपता है, पर इतिहास पुकार २ कर कहता है कि बिना कैदखाने की सैर किये बिना गर्दनें शूली पर रखें, बिना प्राणों की आहुति दिये, बिना भूख और प्यास सहे– सारांश यह कि बिना तप किये कभी लुटी हुई लक्ष्मी का उद्धार

नहीं होता, गया हुआ राज्य वापिस नहीं आता, शत्रु द्वारा किया हुआ तिरस्कार धुल नहीं सकता। अर्जुन फिर तप प्रारम्भ करता है।

इस बार का तप और भी भयंकर है। पहले पिता को प्रसन्न करने के लिये तप किया था, अब देवता को प्रसन्न करना अभिप्रेत है। इस बार का तप पहले तप की अपेक्षा कई गुणा भयानक है। ऋषि और सिद्ध लोग उसे सह नहीं सकते। भूख और प्यास, गर्मी और सर्दी, रात और दिन अर्जुन के लिये समान हो जाते हैं। तपस्वी का तेज असह्य हो उठता है। उस से घबराये हुए तपस्वी शिव की शरण आते हैं और अपना दुखड़ा सुनाते हैं।

भक्त की तपस्या का समाचार सुन कर महादेव बहुत प्रसन्न होते हैं परन्तु विचारते हैं कि 'अर्जुन हमारी कृपा का अधिकारी भी है या नहीं? अपने गणों को साथ ले कर वह ठीक समय पर अर्जुन के आश्रम में आते हैं, क्यों कि उस समय एक दानव सुअर का रूप धारण किये अर्जुन पर प्रहार करने को उद्यत है। अर्जुन वराह को आता देख कर शरसन्धान करता है, और निशाना लगाता है। उसी समय किरात वेषधारी शिव भी बाण का प्रहार करता है। एक ही समय दोनों तीर वराह के शरीर में प्रवेश करते हैं। दो महाबलियों के हथियारों की चोट खा कर प्राण रक्षा करना प्राणी की शक्ति से बाहिर है, दानव के भी प्राणपखेरू उड़ जाते हैं। शत्रु और शिकार, दोनों का अन्त हुआ देख अर्जुन प्रसन्न मन से उस के समीप आता और अपने कामयाब तीर को देखता है, इतने में किरात सेनापति का दूत आ कर अर्जुन को छेड़ता और धमकाता है। दूत का अधिक्षेप निर्मूल है, परन्तु एक क्षत्रियपुत्र को जोश में लाने के लिये पर्याप्त है।

किरात के दूत और अर्जुन का वाद विवाद संस्कृत साहित्य का एक उज्ज्वल अंग है। भारवि सभी जगह ओजस्वी है, पर संवाद में उसे पाना कठिन है। उस का पूरा बल बात चीत में ही प्रकट होता है। यह संवाद किसी से घटिया नहीं। एक छोटे आदमी की गर्वोक्तियों का उत्तर एक महापुरुष जिस गम्भीरता से दे सकता है; एक बनावटी वीर की धमकी का जवाब, एक लाजवाब बहादुर जिस शान से दे सकता है, इस संवाद में उसकी पूरी झलक दिखाई गई है। भाषा, भाव, साहित्य और प्रतिभा की दृष्टि से किरात और अर्जुन का वाग्युद्ध अपूर्व है। उस वाग्युद्ध में भी भारवि ने वही साहस, जीवन और शूरता का पाठ पढ़ाया है जो अन्य स्थानों पर पढ़ाया गया है। किरात के आक्षेपों का उत्तर दे कर अन्त में पाण्डव कहता है—

> मया मृगान्हन्तुरनेन हेतुना,
> विरुद्धमाक्षेपवचस्तितिक्षितम्।
> शरार्थमेष्यत्यथ लप्स्यते गतिं
> शिरोमणिं दृष्टिविषाज्जिघृक्षतः।

मैत्री और द्वेष के योग्य न समझ कर ही मैंने व्याध का आक्षेप सह लिया है। यदि वह तीर के लिये आयगा तो उसी गति को प्राप्त होगा जो सांप से शिरोमणि लेने वाले की हुआ करती है।

इस गम्भीर तिरस्कार भरे वाक्य को सुन कर किरात का नौकर चला गया। सेना जोश में आ गई और अर्जुन का, शिव और शिव की सेना से युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्ध में दोनों दलों का बल विलक्षण था। एक ओर अकेला पाण्डव—दूसरी ओर शिव और उसके हज़ारों सैनिक। घमासान संग्राम हुआ। युद्ध के उतराव चढ़ाव होते रहे, अन्त में शिव की सेना भाग निकली। अकेले महादेव युद्ध करने वाले रह गये। दोनों का द्वन्द्वयुद्ध जारी हुआ। युद्ध का कवि ने जो वर्णन किया है, वह अनुपम है। विशेषतया मल्ल युद्ध का वर्णन शायद संस्कृत साहित्य में एक ही है। और किसी महाकाव्य में ऐसा सुन्दर मल्लयुद्ध का वर्णन नहीं पाया जाता। मल्लयुद्ध हुआ और उस में शिव और अर्जुन ने मस्त हाथियों की भांति एक दूसरे पर आक्रमण किया। युद्ध में जय लाभ प्राप्त करने के लिये महादेव आकाश में कूद कर अर्जुन पर वार करने लगे ही थे कि अर्जुन ने कूद कर उनकी टांगे पकड़ लीं, और खेंच लिया। वीरता का अन्त हो गया—परीक्षा समाप्त हो गई। महादेव का चित्त भक्त की शूरता से गद्गद होगया। जगदीश्वर ने प्रसन्न हो कर अपने निजरूप में पाण्डव को दर्शन दिये और सब देवताओं के साथ मिल कर उस पर विविध शस्त्रास्त्रों और आशीर्वादों की वृष्टि की। अर्जुन का तप सफल हुआ, उसके देवता प्रसन्न हुए, और शत्रु को पराजित करने का सामान पूरा हो गया।

शत्रु को हटाना पुरुष का कर्तव्य है। जो पुरुष है, वह अपमान तिरस्कार या पराजय को भुला नहीं सकता, क्षमा नहीं कर सकता। वह अवश्य ही शत्रु को पराजित कर के नष्टभ्रष्ट हुए वैभव के उद्धार का यत्न करता है। कापुरुष या नपुंसक ही अपमान का विष अमृत कर के पी सकते हैं, वीर पुरुष नहीं। यह भारवि के काव्य का पहला उपदेश है। अपमान को धोने, राज्यलक्ष्मी का उद्धार करने और शत्रु का नाश करने के लिये कोई फूलों का मार्ग नहीं है, कोई ठण्डी सड़क नहीं है, और न कोई सुहावनी मंज़िल है। विजय की प्राप्ति बड़ा दुष्कर कार्य है, उसके लिये घोर तपश्चर्या की आवश्यकता है। यह भारवि का दूसरा उपदेश है। जो विजय पर बद्धिबद्ध है, और उसके लिये कष्ट सहन करता है, वह यदि साहसी है और वीर है, तो उसकी सफलता को कोई रोक नहीं सकता। जहां चाह है, वहां राह निकल आती है। एक दृढ़ इच्छाशक्ति वाले पुरुष या राष्ट्र की इच्छा अवश्य पूरी होती है। आवश्यक केवल इतना है कि उसके लिये काफ़ी यत्न किया जाय। यह भारवि का तीसरा उपदेश है। इन तीनों उपदेशों को जिस उत्तमता, युक्ति और शृंखला की सहायता से समझाया गया है, उसके लिये भारवि की शतमुख से प्रशंसा करने को जी चाहता है।

एक अपमानित और तिरस्कृत जाति को जिस औषधि की आवश्यकता है वह किरातार्जुनीय के काव्य कानन में ही मिल सकती है, अन्यत्र नहीं।

वर्ण व्यवस्था का तुलनात्मक अनुशीलन

[२]

भारतीय और योरपीय साम्यवाद

(पं० धर्मदेव विद्यावाचस्पति आचार्य गुरुकुल मुलतान)

अब हम योरपीय साम्यवाद का संक्षेप से दिग्दर्शन कराकर ,उसकी भारतीय साम्यवाद के साथ तुलना करेंगे। जैसे पहिले लिखा जा चुका है कि योरुप के भिन्न २ साम्यवादी नेताओं का आपस में इतना अधिक मत भेद है कि साम्यवाद के सिद्धान्तों पर कुछ भी निश्चित रूप से लिखना अत्यन्त कठिन होगया है, तथापि हम जर्मनी के साम्यलोकमतवादी दल वा Social Democrat के अभिमत प्रस्ताव उद्धृत करते हैं जो योरुपीय साम्यवाद के प्रायः सब मुख्य तत्वों को लिये हुए हैं। वे प्रस्ताव निम्न लिखित हैं:—

१. साम्राज्य के १० वर्ष से अधिक अवस्था वाले समस्त पुरुषों और स्त्रियों को वोट देने का समान अधिकार प्राप्त हो जावे।

२. कानून बनाने का काम सारी प्रजा प्रत्यक्ष रूप से करे अर्थात् सब लोगों को किसी प्रकार के कानून को प्रस्तुत करने का पूरा अधिकार रहे। राज्य के अधिकारियों का चुनाव प्रजा द्वारा हो और वे प्रजा के सामने उत्तरदायी हों।

३. सब लोगों को सैनिक कार्यों की शिक्षा दी जाय। देश में स्थायी सेना के बदले स्वयं प्रजा की सेना रहे। युद्ध-शान्ति इत्यादि का निर्णय प्रजा के प्रतिनिधि करें।

४. स्वतन्त्रता पूर्वक विचार प्रगट करने, लोगों में एकता फैलाने अथवा सभाएँ आदि करने में जितने कानून बाधक हों वे सब के सब तोड़ दिये जाएँ।

५. सार्वजनिक अथवा व्यक्ति गत बातों में जो कानून पुरुषों के मुकाबले में स्त्रियों को कुछ कम अधिकार देते हों अथवा उन्हें घाटे में रखते हों वे सब कानून तोड़ दिये जावें।

६. जितनी धार्मिक सभाएँ हैं वे सब प्राईवेट सभाएँ समझी जावें। किसी प्रकार के धार्मिक कार्य के लिये सार्वजनिक कोष से कुछ भी धन न लगाया जावे।

७. विद्यालयों में किसी प्रकार की धार्मिक शिक्षा की व्यवस्था न की जावे।

८. न्याय की व्यवस्था बिल्कुल मुफ्त हो जावे। फाँसी की सजा बिल्कुल उठा दी जावे।

९. सब प्रकार के रोगियों की चिकित्सा बिल्कुल मुफ्त हो।

१०. वे सब कर चुंगियाँ आदि हटा दी जावें जो किसी छोटे से वर्ग के हित के विचार से लगाई गईं हों और जिन से समष्टि के हित को हानि होती हों।

इसे योरपीय साम्यवाद का अच्छे से अच्छा रूप कहा जा सकता है। इस में विवादास्पद सम्पत्ति विभाग, उत्त-

राधिकार, परिवार सम्बन्धी व्यवस्था इत्यादि का कोई उल्लेख नहीं है। यदि योरपीय साम्यवादका यही सर्वसम्मति अथवा वहु संख्या से स्वीकृत रूप हो तो इस में हमें कोई बड़ी आक्षेप योग्य बात भी नजर नहीं आती। इसमें कोई सन्देह नहीं कि समानता, स्वतन्त्रता, सार्वजनिक भ्रातृत्व के उच्च सिद्धान्तों को चरितार्थ करने के लिये ही प्रायः ये सब नियम बनाये गये हैं। धार्मिक शिक्षा तथा कार्यों के विषय में यहाँ सर्वथा उदासीनता दिखाई गई है जो कुछ आक्षेप योग्य है पर अधिक इस लिये नहीं कि धर्म से तात्पर्य यहाँ केवल सम्प्रदाय से है और विज्ञान, तर्कशास्त्र विरोधी ईसाई मत की शिक्षा पाकर विद्यार्थी अन्ध विश्वासी हो जायेंगे ऐसा इन नियमों को वनाने वालों को भय मालूम होता है जो बहुत अंश तक ठीक भी है।

मि० वेल्ज़ का नाम योरपीय साम्यवादी समाजशास्त्रज्ञों में बहुत प्रसिद्ध है। उन्होंने वर्तमान आदर्शवाद Modern-utopia इस नाम की एक पुस्तक उपन्यास के ढंग पर लिखी है जिसमें अपने विचारानुसार एक आदर्श साम्यवादी समाज का नकशा खींचा गया है। साम्यवाद के भिन्न २ विषयों के सिद्धान्तों की आलोचना करने से पूर्व उसका निर्देश कर देना अनुचित न होगा। मि० वेल्ज़ के लेख का सारांश यह है कि सारा संसार एक राष्ट्र State के रूप में हो जिस में काकेशियन, नीग्रो, मंगोलियन, सेमिटिक सब जातियों और रंगों के आदमी भाइयों और मित्रों के समान प्रीति पूर्वक मिलकर रहें और एकही भाषा बोलें, खुले तौर पर उनके परस्पर भोजन विवाहादि सम्बन्ध हों। इस सम्पूर्ण विस्तृत राष्ट्रकी राजनैतिक शक्ति समुराइ नामक मनुष्यों के एक ऐसे वर्ग के हाथ में रहे जो बुद्धि, वीरता, आत्मसंयम तथा अन्य गुणों के कारण सब से अधिक प्रसिद्ध हों। वह संसार-राष्ट्र ही सारी भूमि लकड़ी, पानी, बिजली, भोजन, सामग्री इत्यादि का मालिक समझा जाए, सिवाय उन वस्तुओं के जिन्हें वह स्थानीय सरकार और म्युनिसपैलिटियों को दे दे और वे उन्हें व्यक्तियों को देवें। सब विवादों का निर्णय पक्षी प्रतिपक्षी के प्रतिनिधियों की पञ्चायत के द्वारा और जहाँ तक सम्भव हो न्यून से न्यून वेतन लेकर किया जाए। अपराधियों, पक्के शरारतियों और दूसरे सब निकम्मे लोगों को अण्डेमन जैसे द्वीपों में निर्वासित के रूप में रखा जाय और उनकी सन्तान उत्पन्न न हो, इस बात के साधन किये जाएँ। क्यों कि स्वस्थ सन्तान का उत्पन्न करना जनता के हित का वर्धक है इस लिये सब विवाहित स्त्रियों का राष्ट्र की तरफ से पालन किया जाए (सम्भवतः कुछ वेतन देकर) और विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध लगाकर अधिक आबादी के ख़तरे को निर्मूल किया जाय।

संक्षेप से मि० वेल्ज़ के आदर्श साम्यवादी राष्ट्र का नकशा उपर्युक्त है। इसके विषय में इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक उत्तम कल्पना है जो किसी उच्चभावयुक्त दिमाग़ से निकल सकती है और जो पढ़ने और सुनने वालों को आनन्द दे सकती है

पर क्या यह सब कुछ कभी क्रियात्मक रूप में लाया गया है या लाया जा सकता है। सारे संसार को एक राष्ट्र बनाना और सब जातियों के लोगों का एक ही भाषा बोलना, सारे संसार में से चुने हुए कुछ थोड़े से लोगों के हाथ में सारी शासन सम्बन्धी राजनैतिक शक्ति का होना ये सब केवल कल्पना के तौर पर बड़ी सराहनीय बातें हैं पर यह कल्पना तक करना अत्यन्त कठिन है कि इतनी भिन्न भिन्न जातियों, भाषाओं और सभ्यताओं का सारा भेद मिटकर एक ऐसे नवीन अभूतपूर्व युग और समाज का प्रादुर्भाव हो जायगा जिस का निर्देश श्री वेल्ज ने अपनी पुस्तक में किया है।

(क्रमशः)

गायक के प्रति

(ले० श्री पं० सत्यकाम जी विद्यालंकार)

बस कर और न लय ऊंची कर,
बात मान जा प्यारे।
टूट पड़ेंगे एक साथ ही,
हृदय व्योम के तारे॥

* * *

नीची कर उत्ताल तालध्वनि,
सोया रहने दे उन्माद।
उभर पड़ेगा दावानल सा,
निद्रित विकट विषाद॥

* * *

धीमे बहने दे स्वर लहरी,
तैरूं मैं निःसंज्ञ समान।
रहे शेष जीवन प्रपञ्च यह,
केवल स्वप्न समान॥

* * *

अथवा बहुत थक गया मैं,
अब थमने दे स्वर गान।
कम्पन के पलने में झूले,
शिथिल गात निष्प्राण॥

परमेश्वर और उसका स्वरूप

नास्तिकवाद

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

फ्यूरबैच का कथन है कि जिस प्रकार सूर्य्य की सत्ता स्वयंसिद्ध है उसी प्रकार परमात्मा का न होना भी स्वयंसिद्ध है। गास्टेव फ्लोरेन्स कहता है कि परमात्मा का विचार ही हमारा शत्रु है। मानव-समाज की उन्नति नास्तिक-वाद के ही आधार पर हो सकती है। कहते हैं ब्रेडला ने अपने मकान के प्रवेश-द्वार पर "परमात्मा कहीं नहीं है 'God is nowhere' का फट्टा टाँग रखा था। इस प्रकार के, परमात्मा का अभाव मनाने वाले नास्तिक संसार में कम नहीं हैं। ऐसे नास्तिकों के प्रति जान फ़ास्टर का कहना है कि जो मनुष्य परमात्मा के अभाव को सिद्ध करना चाहता है वह पहले अपने को सर्वज्ञ सिद्ध कर ले तभी आगे बढ़ सकता है। जिस बुद्धि से परमात्मा का तिरस्कार किया जाता है उसी में परमात्म-पन आरोपित करना पड़ता है। जब तक मनुष्य सर्वज्ञ न हो तब तक उसे क्या मालूम कि शायद दुनियाँ के किसी कोने मे, जहाँ तक वह अभी नहीं पहुंचा, परमात्मा की सत्ता के निशान मौजूद हों? यदि संसार भर के प्रत्येक 'कर्ता' को वह नहीं जानता तो क्या मालूम जिस को वह नहीं जानता वही संसार का भी 'कर्ता' हो? जब वह कह देगा कि मैं सर्वज्ञ बन कर दुनियां भर में ढूंढ आया और परमात्मा के निशान को मैंने कहीं नहीं पाया तब हम उसी को परमात्मा मान कर उस की पूजा करने लगेंगे। परमात्मा का अभाव सिद्ध करना अपने को सर्वज्ञ कहने से कम नहीं है।

यदि कुछ देर के लिए मान भी लें कि परमात्मा नहीं है तो भी हमारा नास्तिकों से प्रश्न है कि वे संसार की गुत्थी को कैसे सुलझाते हैं? उत्तर मिलता है प्रकृतिवाद' (Materialism) से! वैसे तो 'प्रकृतिवाद' कोई एक सिद्धान्त नहीं है और इस के अवान्तर्गत सैकड़ों वाद मौजूद हैं तथापि उन सब में मुख्य विकास-वाद (Evolution) का सिद्धान्त है। इस मत के अनुसार यह माना जाता है कि प्रकृति में विकास होते २ वर्तमान 'विकृत' जगत् की उत्पत्ति होगई। सांख्यमत इसी पक्ष का पोषक है परन्तु वह कई कारणों से, जिनका यहां वर्णन नहीं किया जा सकता, नास्तिक नहीं कहला सकता। हक्सले तथा टिण्डल का कथन है कि यदि उन्हें संसार के बचपन के समय की झाँकी दिखादी जाय तो वे मृत-प्रकृति से जीवित-जगत् की रचना होते हुए देख सकते हैं—जड़ (Inorganic) से चेतन (Organic) की उत्पत्ति उन की कल्पना में आ सकती है। जीवन की इकाई 'कललरस' (Protoplasm) है जो कि 'कार्बन', 'हाईड्रोजन' 'ऑक्सीजन' और 'नाइट्रो-

जन' के सम्मिश्रण से बना है—इन में परमात्मा का कोई हाथ नहीं। यही मत चारवाकों का है जिसे वे 'देहात्म-वाद' कहते हैं।*

जब से पाश्चात्य देशों में यह विचार उत्पन्न हुआ कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति हो सकती है तब से वहाँ अनेक परीक्षण किये गये। डच तथा इटैलियन लोगों ने † बड़े मज़ेदार परीक्षण किये जिन में से एक यह था कि एक वैज्ञानिक ने पनीर और कुछ गेहूं लेकर एक कपड़े में रख दिए। कुछ दिनों बाद वहाँ चूहे नज़र आये। वैज्ञानिक ने कल्पना की कि पनीर तथा गेहूं के मिलाने से चूहे पैदा हो जाते हैं। हमें आज यह सुन कर हँसी आती है परन्तु उस समय बड़ी संजीदगी से इस बात को माना गया। जड़ से चेतन को उत्पन्न करने का अभी तक कोई परीक्षण सफल नहीं हुआ। यदि मान भी लें कि किसी समय रसायन-भवन की परीक्षा-नलिका में जीवन की उत्पत्ति हो जाय तो भी क्या यह सिद्ध होजायगा कि उस का कारण जड़ प्रकृति ही है?

‡डा० फ़्लिन्ट लिखते हैं कि जड़ से चेतन की उत्पत्ति होती दीख भी पड़े तो भी प्रकृतिवाद सिद्ध नहीं हो सकता क्योंकि आस्तिक कह सकता है कि जिन अवस्थाओं में जीवन अपने को प्रकट कर सकता है उन्हीं का तुमने पता लगा लिया—जीवन को उत्पन्न तो नहीं कर पाये! जड़ तथा चेतन में जो शाश्वत भेद दिखाई देता है, उस का उत्तर प्रकृतिवाद के पास कुछ नहीं है।

प्रकृतिवादियों से हम यह भी कहना चाहते हैं कि कार्बन, हाइड्रोजन, आक्सीजन तथा नाइट्रोजन से जहाँ 'चेतनता' उत्पन्न नहीं हो सकती वहां इस से ज्ञान भी नहीं उत्पन्न हो सकता। क्या कभी कल्पना की जा सकती है कि किसी भी समय ईंटें मिल कर सभा करें और हम लोगों की तरह व्याख्यान देने लगें? यदि मनुष्य में जड़ पदार्थों के अतिरिक्त अन्य कोई शक्ति नहीं है तो वह विचार क्यों कर सकता है? दिमाग़ की आणविक गति (Molicular action) ज्ञान (Sensation-Perception) में कैसे बदल जाती है?

---

* अनिमित्ततो भावोत्पत्तिः कण्टकतैक्ष्ण्यादि दर्शनात्। न्याय, ४ र्थ अध्याय, १ आ०, २२ सूत्र। अत्र चत्वारि भूतानि भूमिवार्यनलानिलाः। चतुर्भ्यः खलु भूतेभ्यश्चैतन्यमुपजायते॥ सर्वदर्शन संग्रहः।

† Seven men of Science—P. 99.

‡ Were spontaneous generation proved, materialism would remain as far from established as before."

('Anti Thiestic theories P. 164)

प्रो० टिण्डल † ने ठीक पूछा है कि दिमाग़ की भौतिक रचना तथा ज्ञान के अनुभव को मिलाने वाला कौनसा रास्ता है ? मान लिया कि दिमाग़ में एक ख़ास विचार तथा एक खास भौतिक परिवर्तन इकट्ठे होते हैं परन्तु किस साधन से, किस युक्ति से, हम दोनों को मिला देते हैं और, एक को दूसरे का कारण कहने लगते हैं ? इस में सन्देह नहीं कि ये दोनों इकट्ठे दिखाई देते हैं परन्तु यह मानना ही पड़ता है कि 'मस्तिष्क' तथा 'चेतनता' दो पृथक् वस्तुएं हैं जिन्हें अभी तक विज्ञान नहीं मिला सका।

नास्तिकों का कथन है कि प्राकृतिक-तत्वों से मस्तिष्क बनता है और वही सोचता है। मस्तिष्क के अतिरिक्त अन्य शक्ति क्यों मानी जाय ? विचार (Thought) तो मस्तिष्क का ही रस (Secretion) है। परन्तु यह विचार ठीक नहीं। फ्लेमेरियन ‡ ने

† "The passage from the physics of the brain to the corresponding facts of Consciousness is unthinkable. granted that a definite thought and a definite molecular action in the brain occur simultaneously; we do not possess the intellectual organ, nor apparently any rudiment of the organ, which would enable us to pass, by a process of reasoning, from The one phenomena To the other. They appear together but we do not know why .... The chasm between the two classes of phenomena would still remain intellectually impassable."

‡ "My learned friend Edmond Perrier presented to the Academy of Sciences, in his lecture of December 22,1913, an observation of Dr, Robinson's concerning a man who had lived nearly a year with almost no suffering and with no apparent mental trouble, with a brain that was nearly reduced to a pulp, and was no longer any thing but a vast purulent abscess. In july, 1914, Dr, Hallopean brought to the Society of Surgery the account of an operation that had been performed at the Necker hospital upon a young girl who had fallen from the Metropolitan Railway: at the Trepanning it was ascertained that large proportion of the brain matter was reduced literally to a pulp. They cleaned, Drained and reclosed the wound; the patient recovered. on March 24, 1917, at the Academy of Sciences, Dr. Guepin showed, through an operation

अपनी पुस्तक "मृत्यु और उसका रहस्य" में ऐसे व्यक्तियों के दृष्टान्त दिये हैं जिनका वृहत् मस्तिष्क (Cerebrum) तथा लघु मस्तिष्क (Cerebellum) गल गया था और वे विचार करते रहे। वेदान्त दर्शन† (अ० ३। पा० ३। सू० ५४) में देह तथा मस्तिष्क के अतिरिक्त आत्मा की सिद्धि कहते हुए लिखा है यदि मस्तिष्क के अतिरिक्त कोई सत्ता नहीं है तो—'मेरा मस्तक'—यह ज्ञान कैसे हो सकता है? क्या अग्नि अपने को जला सकती है? क्या नट अपने कन्धे पर चढ़ सकता है?—यदि नहीं तो मस्तिष्क भी, 'मेरा मस्तक' यह ज्ञान तभी कर सकता है जब उसे अपनाने वाली पृथक् सत्ता मानी जाय। इसी प्रकार की अनेक युक्तियों से भामतीकार वाचस्पति मिश्र‡ ने देह से भिन्न आत्मा की सत्ता को सिद्ध किया है।

अब यदि यह भी मान लिया जाय कि दिमाग़ के बग़ैर मनुष्य सोच नहीं सकता तो भी इसका यही अभिप्राय होगा कि दिमाग़ एक ऐसा साधन है जिस के बिना विचार नहीं हो सकता। यह तो सिद्ध नहीं होगा कि 'विचार दिमाग़ से ही शुरु होता है, उसी में समाप्त हो जाता है और उस से ऊपर नहीं रहता। इसी भाव को सर ऑलिवर लाज * ने अपनी पुस्तक "मस्तिष्क और तत्व"

---

on a wounded soldier, that the partial ablation of the brain does not prevent manifestations of intelligence."

See Death and its Mystery (P, 38-39) by c, Frammarian.

† देखो भाष्य में—"न ह्यग्निरुष्णः सन्स्वात्मानं दहति। न हि नटः शिक्षितः सन् स्वस्कन्धमधिरोक्ष्यति।" (वे०, ३-३-५४)

‡ भामती (पृ० ६)—"न हि बालस्थविरयोः शरीरयोरस्ति मनागपि प्रत्यभिज्ञानगम्यो येनैकत्वमध्यवसीयेत। तस्माद्येषु व्यावर्तमानेषु यदनुवर्तते तत्तेभ्यो भिन्नं यथा कुसुमेभ्यः सूत्रम्। तथा च बालादिशरीरेषु व्यावर्तमानेष्वपि परस्परमहंकारास्पदं वर्तमानं तेभ्यो भिद्यते। अपिच स्वप्नान्ते दिव्यं शरीरभेदमास्थाय तदुचितान्भोगान् भुञ्जान एव प्रतिबुद्धो मनुष्यशरीरमात्मानं पश्यन् नाहं देवो मनुष्य एवेति देव शरीरे बाध्यमाने ऽप्यहमास्पदमाध्यमानं शरीराद्भिन्नं प्रतिपद्यते, । अपि च योगव्याघ्रः शरीरभेदेप्यात्मानमभिन्नमनुभवतीति नाहंकारालम्बनं देहः।"

* "Fundamentally it amonuts to this: that a complex piece of matter called the brain is the organ or instrument of mind and consciousness; that if it be stimulated, mental activity results: that if it be injured or destroyed no manifastation of mental activity is possible……Suppose we grant all this, what then? we have granted that brain is the means whereby mind is made manifest on this mental plane, it is the instrument through which alone

में बड़े अच्छे शब्दों में लिखा है। वे लिखते हैं कि 'विचार' 'दिमाग़' से ही होता है, इसका यह अभिप्राय हुआ कि दिमाग़ हमारी चेतना का साधन है, उपकरण है। उसे उत्तेजना मिले तो मानसिक क्रिया उत्तेजित होजाती है, उसे आघात पहुँचे तो मानसिक क्रिया को भी आघात पहुंचता है। यह सब कुछ मान लेने से क्या सिद्ध हुआ? केवल यही कि मानसिक गति के प्रकट होने के लिये मस्तिष्क एक आवश्यक उपकरण है परन्तु हमने यह कहां माना कि मन ही यह उपकरण है? मन इस उपकरण की सहायता लेता हुआ भी इस से ऊपर हो सकता है।

हमने देखा कि प्रकृतिवाद, 'जीवन' तथा 'ज्ञान' के विषय में 'कहाँ से' और 'कैसे' का उत्तर नहीं दे सकता। इन तथा इसी प्रकार के अन्य आक्षेपों के कारण योरप से नास्तिकता हटती चली जा रही है। इसी लिये "एनसाइक्लोपिडया ऑफ़ रिलिजन एण्ड ईथिक्स"* में नास्तिकवाद' के प्रकरण में लिखा है कि आज कल नास्तिक वाद लग भग बिल्कुल उड़ गया है और उस की जगह अज्ञेयवाद आरहा है।

भारतीय सरकार की विनिमयदर-नीति

(ले० पं० इन्द्र विद्यालङ्कार)

प्रस्तुत लेख में हम हिन्दी पाठकों को भारतीय सरकार की विनिमयदर-नीति से परिचय कराना चाहते हैं। अपने देश की आर्थिक स्थिति का अध्ययन करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है। विशेषतः एक विदेशी सरकार की आर्थिक नीतियों का परिज्ञान रखना हमारा मुख्य कर्त्तव्य है क्योंकि इन्हीं से हमारे ३० करोड़ देशभाइयों के जीवन-मरण का सम्बन्ध है। अर्थ सदस्य की लेखनी की एक चोट से आज सारा भारत कङ्गाल हो सकता है, उसकी एक निर्धारित आर्थिक नीति से देश के २४७३ लाख कृषक अर्थसंकट

---

we know it, but we have not granted that mind is limited to its material manifestation.………Mind may be incorporate or incarnate in matter, but it may also Transcend it."

See Mind and matter by sir oliver Lodge P. 324.

*"At the present time Atheism in the definite form, which it often assumed in the Past has almost entirely Disappeared and an agnostic form of rationalism has taken its place."

Encyclopedia of Religion and Ethics—See "Atheism"

में पड़ सकते हैं। अप्रत्यक्ष से वह अवस्था आज भी हो रही है; जिस को प्रकाश में रखना हमारे लेख का मुख्य उद्देश्य है। वर्तमान भारतीय सरकार की विनिमयदर नीति से कितने ही करोड़ भारतीय आज आधा पेट भोजन करते हैं, कितने ही लाख भारतीय बिना कपड़ों के जीवन व्यतीत करते हैं। यह अत्युक्ति नहीं, यह एक सत्यता है, जिसे अर्थशास्त्र के अध्ययन करने वाले अच्छी तरह समझ सकते हैं।

विनिमयदर नीति का प्रभाव गरीब जनता तक ही सीमित नहीं, देश के मध्यम श्रेणी के लोग भी कितने ही कष्ट, इसके कारण उठा रहे हैं। धनी जनता भी इस के क्षेत्र से बाहर नहीं, वस्तुतः सारे देश के एक २ व्यक्ति के साथ इस नीति का सम्बन्ध है। प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में प्रत्येक भारतीय पर इसका प्रभाव पड़ता है और अवश्य पड़ता है। यदि हमारे देश के लोग, अपने देश की आर्थिक स्थिति की तरफ़ ध्यान रखा करें, तो उन्हें पता लगे कि किस प्रकार वर्त्तमान विदेशी शासन अपनी आर्थिक नीतियों से देश के जीवन तन्तुओं को काटे चला जारहा है।

हमारे देश का ६५ प्रतिशतक सामुद्रिक व्यापार केवल इङ्गलैंड से है। हमारे देश की मुद्राओं तथा इङ्गलैंड की मुद्राओं के मूल्य का आनुमानिक परिमाण हमारी गवर्मेंट से ही निश्चय होता है। आज कल यह आनुमानिक परिमाण १ = १-६ का है। अभिप्राय यह है कि हमारा एक रुपया इङ्गलैण्ड के एक शिलिङ्ग ६ पेन्स के बराबर है। १९२५ में यह परिमाण १: १-४ था। वर्त्तमान अर्थसदस्य ने इस वर्ष इस विनिमय दर को बढ़ा दिया है। भारतीय सदस्यों के घोर प्रतिवाद पर भी इस विनिमयदर नीति को स्थिर किया गया है, अभिप्राय यह कि उच्च विनिमयदर (१ = १७६) के सिद्धान्त को स्वीकृत कर लिया गया है। आगे के लेख से स्पष्ट होगा कि यह उच्च विनिमयदर भारतीय आर्थिक हितों के सर्वथा प्रतिकूल है।

निम्न विनिमयदर-नीति के क्या लाभ हैं? और उच्च विनिमयदर-नीति की क्या हानियाँ हैं? क्यों हम फिर १:१-६ से १: १-४ विनिमयदर स्थापित कराना चाहते हैं?

श्रीयुत वेसील ब्लैकेट हमें बताते हैं कि उच्चविनिमयदर नीति से भारतीय राष्ट्र को २ करोड़ ५६ लाख का अर्थलाभ हुआ है और आशा दिलाते हैं कि इस नीति से आगामी वर्ष में और भी अधिक अर्थलाभ की संभावना है। परन्तु यह अर्थलाभ कैसा है? यह कहाँ से आया है? क्या यह अकस्मात् आकाश से अर्थसदस्य पर आगिरा है? यदि लेखक से पूछा जाय तो यह अर्थ लाभ भारत की गरीब जनता के जेबों को कुतर कर निकाला गया है। यह अर्थलाभ भारतीय [illegible] लाख कृषकों के त्याग से अर्थसदस्य को प्राप्त हुआ है! यह कैसे? लेखक अपनी व्याख्या को निम्न शब्दों में स्पष्ट करता है।

भारतीय कृषक अपने तैयार किये कच्चे माल को बाहर भेजते हैं-इसके बदले में वे पक्के आयात माल को लेते हैं। भारतीय सरकार अपने कृत्रिम स्वरचित प्रबन्ध द्वारा स्थापित विनिमय दर-नीति से उन्हें निर्यात के बदले में दाम चुकाती है। जहाँ पहले एक कृषक १ शि० ४ पैं० का कच्चा माल देकर १) रु० लेता था आज वह १ शि. ६ प. का कच्चा माल देकर १ रु० ले सकता है। अभिप्राय यह कि उसे अपनी कीमत का आज ९वाँ हिस्सा कम मिलता है। अथवा १२॥ प्रतिशतक हानि होती है। यदि गत वर्षों में जूट व्यवसाय वालों को बंगाल में अपने कच्चे माल के निर्यात के लिये ६५ करोड़ रुपया मिलता था तो आज उसे ७ करोड़ रुपया कम मिलता है। क्या यह बगाल के गरीब कृषकों को कम हानि है? क्या यह ७ करोड़ का टैक्स उन पर कम भारी है? क्या यह उनकी कमाई रोटी के टुकड़े को उनसे छीन लेना नहीं है? जो गरीब जनता आज पहले ही भारतीय सरकार की भूमिकर नीति से दबी हुई है, जो जनता नमक कर आदि घृणित टैक्सों से चूसी जारही है, जो अपना सैनिक व्यय आदि के बढ़ाने से अधमरी होरही है, उस जनता की परिश्रम की कमाई पर हाथ फेरना क्या कम अत्याचार है? यह अप्रत्यक्ष अत्याचार जलियाँवाला बाग़ के अत्याचारों से कहीं अधिक है, यदि हम अनुभव करें।

साधारण अनुमान से पता लगता है कि भारतीय कृषक जनता ने साहूकारों को ६०० करोड़ के लगभग प्रति वर्ष ऋण देना होता है। भारत की इस शोचनीय अवस्था पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं। कितने करोड़ कृषक महाजनों के फन्दे में बड़ी दयनीय स्थिति में पड़े हुए हैं! घरबार बिक जाता है तब भी उनका ऋण नहीं चुकता है। वे बिचारे अभागे स्वदेश बन्धु करें भी क्या, वे रुपया कहां से लाएं। भूमिकर उन पर असह्य बोझ है, वह भी पूरा न होगा। इस पर भारतीय सरकार की विनियम दर नीति से उन की अल्प मात्रिक कमाई को और भी कम कर दिया जाता है। उन को अपने परिश्रम का फल-इस नीति द्वारा आगे से भी कम दिया जाता हैं। करें तो क्या करें, अपने भाग्यो को रोएं। वे अबोध कृषक भारतीय सरकार की पेचीदी आर्थिक नीतियों को भला क्या जानें इस नीति का अप्रत्यक्ष, घातक प्रभाव उन कृषकों को अधिक कङ्गाल बनाता चला जा रहा है। यह उच्च विनिमय दर नीति की प्रथम हानि है।

दूसरी हानि हमारे सामुद्रिक व्यापार के सम्बन्ध में है। इस समय हमारा व्यापार हमारे पक्ष में है, अभिप्राय यह कि हमारे निर्यात अधिक हैं अपेक्षा आयात के। यह स्थिति, भारतीय हितों के अनुकूल ही है। अब यदि निम्न विनिमय दर नीति हो तो यह स्थिति स्थिर रह सकती है अन्यथा हमारे हितों के प्रतिकूल स्थिति उत्पन्न हो सकती है। यह स्पष्ट है कि अगर उच्च विनिमय दर नीति हो तो हमारे देश के लोग आयात अधिक मंगाएंगे, क्यों

कि अब उन्हें १) भेजने से १ शि. ४ पें- के माल की बजाय १ शि· ६ पें. का मोल मिलता है: इस लिये इङ्गलैण्ड के माल मंगवाने के प्रलोभन से वे नहीं बच सकते, इस भाँति देश के आयात माल की संख्या अधिक बढ़ती है। उस से हमारे पक्ष के व्यापार में चोट पहुंचती है। जितने भी अधिक हमारे देश में विदेशों के माल अधिक खपने लगेंगे, उतनी हमारे देश की व्यावसायिक हानि होगी, हमारे व्यवसाय बन्द हो जायंगे: क्योंकि उन की मांग कम हो जायगी। संक्षेपतः आयात वृद्धि हमारे व्यावसायिक हितों के लिये घातक होगी। इस के विपरीत इङ्गलैण्ड के व्यवसाय उन्नत होंगे, क्योंकि उन की मांग भारत में बढ़ेगी। इङ्गलैण्ड की फर्में समृद्ध होंगी भारतीय व्यवसायों की मृत्यु की राख पर। जिस नीति से यह परिणाम प्रगट हों, वह किस प्रकार भारतीय आर्थिक उन्नति का कारण बन सकती है। उच्च दर नीति से हमारे व्यवसायों के विकास पर कुल्हाड़ा चलेगा, हमारे कृषक निकम्मे होंगे, हमारी व्यावसायिक जनता बिना पेशे की हो जायगी। देश को भयंकर हानि होगी और वर्त्तमान मे हो भी रही है।

इस के अतिरिक्त देश की दृष्टि से हमारी आर्थिक स्थिति शोचनीय होती जायगी। हमारा देश एक ऋणी देश है। हमारे देश का आर्थिक शोषण जगत्प्रसिद्ध है। कितना ही धन हमें अपने प्रभु ब्रिटिश सरकार को लंडन में भेजना होता है। प्रतिवर्ष कितने ही अधिकारियों के वेतनों, पेन्शनों फर्लो आदि के लिये व्यय यहीं से जाना होता है। यह सब धन, हमारा देश अपने निर्यातों द्वारा पूरा करता है। इङ्गलैंड के अतिरिक्त अन्य देशों को भी इसी विधि द्वारा उनका ऋण प्रदान करता है। अब यदि इस विनिमय दर नीति से हमारे निर्यातों की कमी हो जाय तो हम किस प्रकार अपने वार्षिक ऋण के भारी बोझ को उठा सकते हैं। भारतवर्ष निरन्तर कङ्गाल हो जायगा यदि उस की व्यापारिक स्थिति पर इस तरह चोट लगती रहे। हमारी व्यापारिक स्थिति, उच्च विनिमय दर नीति से बिगड़ेगी ही, सुधरेगी नहीं, यह वही जानते हैं जो अपने देश की आर्थिक समस्याओं का अनुशीलन करते रहते हैं।

एक और हानि विदेशी पूंजी के सम्बन्ध में है। उच्च विनिमय दर होने से कितने ही विदेशियों को केवल विनिमय प्रक्रिया में करोड़ों का मुनाफा हुआ है, जो भारतीयों के ही त्याग पर है। विदेशीयों ने अपनी पूंजी भारत में भेज कर फिर अपने देश में मंगा कर अपनी उच्च विनिमय दर से अपने सिक्कों में परिणत कर बहुत लाभ उठाया है। १९२३ के १) के बदले में आज उन्हें १ शि. ४ पैं. नहीं, प्रत्युत १ शि· ६ पै. मिलता है। श्रीवाडिया ने गणना की है कि इस तरह भारतीयों को ५० करोड़ रुपये का घाटा हुआ है।

सरपुरुषोत्तम ठाकुरदास ने बड़ी व्यवस्थापक सभा में इस विषय पर प्रकाश डालते हुए अर्थ सदस्य से उच्च

विनिमय दर को हटाने के लिये कहा था। अर्थ सदस्य ने इस नीति का समर्थन करते हुए भी कहा था कि यह शीघ्र हटा दी जायगी, जिसका अभिप्राय है कि गवर्मेण्ट स्वयं भी इस नीति की अयुक्तता को अनुभव करती है। परन्तु २९६ लाख रु० का अर्थलाभ कहां से होगा जो अर्थ सदस्य ने वर्त्तमान विनिमयदरनीति से किया है? इस का उत्तर प्रत्येक भारतीय यही देगा कि सैनिक व्यय आदि कम करने से। संसार के पृष्ठ पर किसी अन्य राष्ट्र के इतने ज्यादा सैनिक व्यय नहीं जितने भारतवर्ष के। हमारा देश युद्ध प्रिय भी नहीं। यहां प्राकृतिक सुस्थिति से विदेशी आक्रान्ताओं का भय भी नहीं है, तो किस प्रयोजन से सैनिक व्यय अधिक किये जांय। क्या साम्राज्य हितों के बढ़ाने के लिये भारत अपना सर्वस्व न्योछावर कर दे? अपने को भूखा मार कर वह ऐसा करने को तैयार नहीं है।

बेबस भारतीय कर क्या सकते हैं। दादाभाई नौरोजी तथा गोपालकृष्ण गोखले ने कितनी बार आन्दोलन किया, घोर संग्राम किया, फिर भी सैनिक व्यय कम नहीं किया गया। इस समय भी ६० करोड़ रु० के लगभग सेनाओं पर व्यय होता है- जो कुल भारतीय बजट का लगभग आधा है। इसी भारी व्यय को पूरा करने के लिये सरकार को कितने ही अन्य अन्यायपूर्ण टैक्स लगाने पड़ते हैं। नमक कर, कपड़े पर गृहकर-आदि उदाहरणार्थ रखे जासकते हैं। भारतवर्ष संसार के सब देशों में सब से अधिक गरीब है। जहां अमेरिका में प्रतिवर्ष प्रतिव्यक्ति की ७२० रु० आमदनी है, और जहाँ कैनाडा में यह आमदनी प्रति व्यक्ति ५५० रु० तक है, वहां हमारे गरीब भारत के प्रतिव्यक्ति की वार्षिक आमदनी केवल ५५ रु० ही है। इस शोचनीय आर्थिक स्थिति में भी हमारे सैनिक व्यय संसार के सब देशों से अधिक है, कैसी विपरीत अवस्था है। यदि अर्थसदस्य को बजट में अर्थलाभ के दिखाने की दृढ़ अभिलाषा है तो वह इन बढ़े हुए व्ययों को कम करके दिखाए। इसी में उसकी चतुरता है, उसकी दूरदर्शिता है और उसकी सफलता है। गरीब भारतीयों पर अप्रत्यक्ष रूप से अधिक कर लगा कर अर्थलाभ दिखाने में क्या बड़ाई है।

उक्त विनिमयदर-नीति हमारे कृषकों के हितों के प्रतिकूल है, हमारे व्यापारिक हितों के प्रतिकूल है, हमारे व्यावसायिक हितों के प्रतिकूल है। इससे हमारे देश की आर्थिक उन्नति में क्षति होती है। यह सर्वथा हेय है। इस समय युद्ध शान्त हो चुके हैं। संसार के व्यापार में समतुलता आचुकी है। अब इस कृत्रिम, स्वयं रचित विनिमयदर नीति की आवश्यकता नहीं। विनिमय दर को फिर से उसी १ शि० ४ पैं० पर स्थापित करना चाहिये। इसी में देश के आर्थिक हितों की रक्षा है।

हम समझते हैं हमने यथासम्भव सरल शब्दों में हिन्दी पाठकों के सन्मुख भारतीय आर्थिक स्थिति के गम्भीर प्रश्न पर विचार किया है। हमें पूरी आशा है कि पाठक इससे अवश्य लाभ उठाएंगे और स्वदेश की आर्थिक समस्याओं के अनुशीलन के लिये अधिकाधिक प्रवृत्त होंगे।

* कनक *

हे प्रिय कनक ! कनक भी तुम में नहीं कहीं दोषों की ।
बनी प्रतिष्ठा शोभा तुमसे सकल विश्व के कोषों की ॥
तव अनूप अनुरूप रूप पर सकल लोक छवि वारी है ।
कहें, कहां तक, कृष्णदेव भी पीताम्बर-छवि-धारी हैं ॥ १ ॥

क्या राजा, क्या रङ्क, यती क्या, सती और सुखभोगी क्या ।
गृही, वनी क्या, संन्यासी क्या, योगी और वियोगी क्या ॥
सकल विश्व हे कनकदेव ! तव पूजा करता रहता है ।
ब्रह्म समान तुझे पाने को कष्ट अनेकों सहता है ॥ २ ॥

जिस पर होती कृपा कोर तव वही गुणी वह दानी है ।
बुधि, विद्या की खानि वही, बस, पण्डित, मानी, ध्यानी है ॥
हे सुवर्ण ! इस युग में तुम ही, आशुतोष वरदानी हो ।
"श्रीहरि" स्वर्ग मार्ग के दर्शक, तुम्हीं चतुर गुरु ज्ञानी हो ॥ ३ ॥

(श्री हरि)

भारत साम्राज्य-विस्तार

(ले० —नारायण रामराव देशपांडे)

पाश्चात्य पंडित और अंग्रेजी पढे लिखे कुछ बाबू लोगों को इसके मानने में संदेह है कि "भारत साम्राज्य का विस्तार हिन्दुस्तान के बाहर किसी जमाने में हो चुका था" । इस लिये ऐतरेय ब्राह्मण के आधार पर इस विषय को अपने भाइयों के सामने पेश किया जाता है ताकि वे इसको विचार पूर्वक पढें और अपने प्राचीन साहित्य का परिशीलन कर के योग्य मत को ग्रहण करें—

ऐतरेय ब्राह्मण नें लिखा है कि महाराजा भरत सम्राट् ने अपने दौरे हुकूमत में जो असाधारण और असामान्य कर्म किये वे किसी और मनुष्य मात्र से नहीं हो सकते और न उन के पूर्वजों या वंशजों में से किसी ने ऐसे असामान्य कर्म किए हैं—

महाकर्म भरतस्य
नपूर्वे ना परे जनाः ।
दिवंमर्त्य इव हस्ताभ्यां
नोदापुः पंचमानवाः ॥

भरताभिषेक के प्रभाव में निम्नलिखित मंत्र उद्धृत किया गया है—

हिरण्येन परिवृता
न्कृष्णा ञ्छुक्लदतो मृगान् ।
मष्णारे भरतो ददा
च्छुतेबद्धानि सप्त च ॥

इस में बयान किया गया है कि राजा भरत ने **मष्णार** देश में **सुवर्णसे व्याप्त** १०७ **बद्ध** गज [हाथी] दान दिये—

[१] बद्ध शब्द का अर्थ भाष्यकारोंने शतकोटि संख्या वाचक बतलाया है—यद्यपि बद्ध शतकोटी माना जाने में संदेह हो सकता है परन्तु १०७ बद्ध गज याने इस कदर हाथी की संख्या जो कि हिन्दुस्तान में प्राप्त नहीं हो सकती मानने में सन्देह नहीं हो सकता इस लिए कि यदि यह संख्या हिन्दुस्तान में प्राप्त हो सकती तो उसको मष्णार देश में जाकर दान करने की आवश्यकता न थी—

[२] मष्णार देश हिन्दुस्तान में नहीं है—ऊपर निर्दिष्ट मंत्र से यह तो मालूम होता है कि वह प्रदेश हाथियों से पुर है । यदि किसी देश का नाम मष्णार हो भी परन्तु उस देश में हाथियों की विपुलता न हो या यह भी सिद्ध न हो कि उस देश में प्राचीनकाल में हाथी विपुल थे तो वह प्रदेश भी मंत्र में वर्णन किया हुवा, मष्णार देश सिद्ध नहीं हो सकता—

इंटर नैशनल ज्याग्रफी (International geography) में आफ्रिका खंड के वर्णन में दक्षिण रोडेशिया में मषण (Mashuna) प्रान्त का उल्लेख है— और यह भी लिखा है कि मषण प्रांत में एक काल में हाथियों की इतनी विपुलता थी कि जिस की संख्या का वर्णन कठिन है, यही नहीं किन्तु तद्देशीय और अंग्रेजों के बंदूक और तोपों का शिकार से एक भारी संख्या के नष्ट हो जाने के बावजूद भी माटबिल, मषण प्रान्त व जैंबेजी नदी के किनारे पर अब भी बहुत संख्या हाथियों की मिलती है; इतनी ही नहीं किन्तु हाथियों की विपुलता के कारण यहां के उपनिवेशियों का झंडा गज चिन्हांकित है और एक किनारे का नाम हस्तिदंती किनारा (Ivory coast) रखा गया है—मषण शब्द और मष्णार शब्द में केवल रकोलाप हुआ है--और एक भाषा या प्रान्त से दूसरी भाषा या प्रांत में शब्द जाने से किसी अक्षर का लोप अशक्य नहीं है—

[३] यदि यह सिद्ध भी हो जाय कि भषण और भण्डार एक ही है और हाथियों की संख्या भी उस प्रांत में विपुल है तब भी यावत्काल तीसरी शर्त "सोने से व्याप्त" "हिरण्येन" पूरी न हो सब विचार व्यर्थ है। इस प्रान्त में हाथियों के सिवाय सोने की कानों की भी विपुलता है। इसी कारण एक किनारे का नाम सुवर्ण किनारा Gold coast रखा गया है और एक स्थान का नाम सुवर्ण क्षेत्र (Rand gold field) भी है जहां दक्षिण आफ्रिका का प्रसिद्ध नगर जोहान्सबर्ग बसा हुआ है। पाठकों ने भूगोल में पढ़ा होगा कि दुनियां में सब से अधिक सोना इसी सुवर्ण क्षेत्र से निकाला जाता है।

यहां भारत सदृश किले, देवल, मंदिरों और किलों में सोने के काम की कारीगरी के प्राचीन काल के अवशेष से भी यह सिद्ध होता है कि यहां के निवासी बहुत उन्नत दशा में थे। बोअर युद्ध के पूर्वकाल तक यहां हरसाल चौविस करोड़ का सुवर्ण निकाला जाता था। अस्तु

इसी मंत्र के बाद और एक मंत्र निम्नलिखित है—

भरतस्यैष दौष्यन्ते
रग्निः साचीगुणे चितः।
यस्मिन्सहस्रं ब्राह्मणा
बद्वशो गा विभेजिरे ॥

इस श्लोक में वर्णन है कि दौष्यंति भरत ने **साची गुण** देश में चयन याग किया और हजार ब्राह्मणों के उस याग में हरएक को बद्व गौ, इस तरह पर गौओं को बांट दिया। पहिले श्लोक में साची गुण देश का उल्लेख है। इस समय भषण प्रान्त से मिला हुवा साची गुण नाम का कोई प्रदेश नहीं है परंतु भषण प्रान्त से मिले हुए देश में पोर्गीज ईस्ट अफ्रीका Portugese east Africa साची नदी बहती है और अजब नहीं कि यह नदी जिस प्रान्त से बहती है उस प्रान्त को एक काल में "साची गुण" कहा जाता हो, जैसा सिन्धु नद के कारण सिंध प्रसिद्ध है। इस से पूर्णतया सिद्ध होता है कि महाराजा भरत सम्राट ने आफ्रिका खंड में चयन याग किया और असंख्य गौयें और सुवर्ण व्याप्त हाथी ब्राह्मणों को दान दिए— इस से पता लगा कि भारत साम्राज्य का विस्तार आफ्रिका खंड तक हो चुका था।

आर्य-धर्म साधारण जनता में कैसे फैल सकता है

(ले० प्रो० साँभीरामजी एम० एम० ए० अमेरिका)

वर्तमान आर्य धर्म आम तौर पर शहरों के शिक्षित पुरुषों तक ही सीमित है। इस में ग्रामीण जनता अंश मात्र भी शामिल नहीं है और न ही उसे शामिल करने का विचार अब तक उत्पन्न हुआ है। जब कोई ग्रामीण शिक्षित हो कर शहरों में निवास करने लगता है तो वह स्वयं तो आर्य्य जाति में मिल जाता है परन्तु अपने साथी देहाती भाइयों को भूल जाता है। ऐसी अवस्था कब तक सही जा सकती है। गांव वालों को गंवार तथा अर्ध मूर्ख कब तक करार दिया जा सकता है। ये हमारी धार्मिक तथा सामाजिक भयंकर भूलें हैं, क्योंकि ग्रामीण भाई संख्या, स्वास्थ्य, कुर्बानी गम्भीरता, और अतिथि सत्कार इत्यादि मुख्य मानवीय गुणों में शहर वालों से कहीं बढ़ चढ़ कर हैं। देहाती भाइयों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। भारत की ६० प्रतिशतक जन संख्या गांवों में बस रही है। भारत का स्वास्थ्य इन्हीं के स्वास्थ्य पर जाना जाता है। वस्तुतः! भारत का असली धार्मिक पुरुष भी देहाती ही समझा जा सकता है क्योंकि वह धर्मका जो भाग भी समझ लेता है उस के लिए मरने तक को तैय्यार रहता है। वर्तमान अकाली आन्दोलन इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। ग्रामीण अकाली भाई यद्यपि धर्म से पूर्णतया परिचित नहीं थे तो भी उन में से कोई पुरुष शायद ही निकला होगा जिसने गवर्नमैण्ट से क्षमा याचना की हो, जितने भी धर्म द्रोही हुवे हैं वे अधिक तर शहर निवासी, शिक्षित अकाली थे। हमारा धर्म उतना ही बड़ा होता है जितनी बड़ी कुर्बानी कि हम उस के लिए कर सकते हैं। अकालियों का धर्म भी उतना ही बड़ा है जितनी बड़ी कि उन्होंने इस की रक्षा के लिए कुर्बानी की है। फिर जो कुछ कुर्बानी उन से हुई है वह देहाती भाइयों की ही कृपा है। इस से सिद्ध हुआ कि यदि भारत की सब जातियों की दशा अकालियों की सी समझी जाय तो भारत वर्ष का जीवित धर्म केवल देहातियों तक ही सीमित है। तात्पर्य यह है कि यदि आर्य्य जाति का वृक्ष अपनी जड़ें गांव की जरखेज भूमि तक नहीं पहुंचायगा वह उन्नति से रुक जायगा और पहाड़ के उन वृक्षों की तरह पत्थर हो जायगा जिन को को अंग्रेजी जबान में फौसीलाइज़ड लकड़ी से बना पत्थर (Fossilized) कहते हैं।

हम आर्य्य धर्म को तब तक खतरे में देखते हैं जब तक कि इस की सहायता के लिए आर्य किसान लोग न तैय्यार हो जायँ। प्रश्न उत्पन्न होता है कि किस ढंगसे आर्य किसानों को उनके प्राचीन धर्म की तरफ आकृष्ट किया जाय। इस के कई एक उपाय हैं और प्रत्येक उपाय अपना विशेष महत्व

रखता है। लेखक के विचार में सब से उत्तम उपाय वैदिक मिशन की ओर से औद्योगिक प्राथमिक (Missionary industrial primary) या माध्यमिक स्कूल (Secondary schools) का जारी करना है। ईसाई मिशनों ने भारत, फारस, अरब, मलाया, चीन और जापान आदि मुल्कों में जिस संख्या में ईसाई अनुयायी ऐसे स्कूलों द्वारा प्राप्त किए हैं उतने प्रचार और गिर्जों आदि द्वारा नहीं हो सके। इसी लिये उनकी मिशनरी पत्रिकाओं सन्डे स्कूल, क्रिश्चियन साइन्स मानीटर (Sunday School, Christian Science Manitor, Christian Herald इत्यादि) में चीन को उस के सन्तति द्वारा जीतना "Winning China Through her Children" आदि लेख बड़े जोर शोर से निकल रहे हैं। ऐसे स्कूलों का परिणाम आज यह हुआ है कि जिन चीनियों के बच्चे स्कूल में पढ़ते हैं वही चीनी अधिकतर अपने परिवारों सहित ईसाई धर्म में प्रविष्ट होते हैं। ऐसे प्रविष्ट चीनियों की संख्या लाखों तक पहुँच गई है।

आर्य्य प्राथमिक या माध्यमिक स्कूल जो भारतीय ग्रामों में कामयाब हो सकते हैं उन में वर्त्तमान ढंग की शिक्षा लाभदायक होने के स्थान में सख्त हानिकारक होगी। इन विद्यालयों में वे विषय रक्खे जाने चाहिये जिनको कि ग्रामीण पुरुष न सिर्फ भली भाँति समझ ही सकें, बल्कि उन को ऐसी भाषा में समझाया जाय जो कि निहायत ही सरल हो। देहाती बच्चों को संस्कृत, अंग्रेजी, ऊँची गणित, आदि सिखाने का यत्न न किया जाय। उन के लिये तो सरल आर्य भाषा मोटे अक्षरों में पर्याप्त है।

बहुत से मनुष्य आर्य स्कूलों (Vedic Missionary schools) में धार्मिक तथा मत मतान्तरों का रखना आवश्यक समझते हैं। ऐसी धार्मिक शिक्षाओं का असर अवश्यमेव वही होता है जो कि खंडन मंडन से। सरल आर्य भाषा में देहाती बच्चों को साधारण ज्ञान मात्र ही काफी है। इतने ज्ञान मात्र से ही ग्रामीण बच्चे आर्य धर्म के सिद्धान्त सीखने तथा आर्य मत ग्रहण करने पर उद्यत हो जायगें। जहाँ जहाँ ईसाई मत अपने विद्यालय अन्य धर्मों के देशों में स्थापित करता है वह आज कल इस गरज से नहीं कि उस के धर्म की शिक्षा का विद्यालयों में प्रबन्ध हो जाय बल्कि इस गरज से करता है कि उस के मतानुयायियों की संख्या बढ़े। यह गरज, वर्तमान तजरबों के अनुसार तभी ही ठीक तरह पूरी होती है जब हम इन स्कूलों में देहातों की आवश्यकताओं को पूर्ण करने का प्रयत्न करें।

लेखक को कुछ समय अकाल कालिज (सिक्खों का कोलिज) में ठहरने का अवसर मिला। जिस से सिक्खों के ग्रामीण गुरुद्वारा स्कूलों का परिचय हुआ। इन स्कूलों में गुरुमुखीलिपि द्वारा बहुत मामूली ज्ञान दिया जा रहा है। परन्तु गाँव वालों की श्रद्धा इस स्कूल तथा इसके अध्यापक की ओर इतनी जबरदस्त हो जाती

है कि वे स्वयं खालसा पंथ के हार्दिक सहायक बन जाते हैं। आजकल अकाल कालिज में कोई २५० (अढ़ाई सौ) विद्यार्थी ऐसे ग्रामीण दानियों के अनाज पर निर्वाह कर रहे हैं। कालिज के विद्यार्थियों के लिये कई सौ मन अनाज, कई पशु, और पर्याप्त धन हर रोज इन्हीं ग्रामीण पुरुषों से आरहा है। आर्य देहाती प्राथमिक शिल्प स्कूलों की सहायता भी बहुत हद तक ऐसे ग्रामीण पुरुषों की तरफ से स्वयं होने लग जायगी बशर्ते की हम गाँव में मत मतान्तरों तथा कठिन विषयों से बाज रहें।

उपरोक्त शब्दों से लेखक का यह अभिप्राय नहीं है कि रामायण जैसी पुस्तकों की शिक्षा से हिन्दू जाति को वंचित रक्खा जाय अपितु यह मतलब जरूर है कि अपनी पुरानी पुस्तकों का सारांश रूप में विद्यार्थियों के लिए तैयार किया जाय। सारांश सब सरल भाषा में होंगे। पुराणों तथा अन्य प्राचीन पुस्तकों की रोचक तथा लाभ दायक कथाएं ऐसे ढंग से संग्रह की जा सकती हैं कि जिस से किसी प्रकार का वाद संवाद न हो सके।

इस अवसर पर ऐसे आर्य स्कूलों की परिपाटी पर विशेष लिखने का मंशा नहीं है। यह किसी दूसरे अंक में दिया जा सकता है। इस मौके पर सिर्फ इतना कह कर समाप्त किया जाता है कि यह बहुत हद तक सम्भव है कि हम मुनासिब प्रबन्ध करके कोई ५०) माहवार पर एक स्कूल शुरु कर सकते हैं।

ज्यों ज्यों यह स्कूल पुराना होता जायगा त्यों त्यों इस का खर्च आवश्यकता अनुसार बढ़गा परन्तु उस का हम को फिकर नहीं है क्यों कि गांव वाले खर्च का बोझ अपने सिर पर ले लेंगे। अब इन स्कूलों का ऐसे और स्कूलों से कैसे सम्बन्ध किया जाय और किस प्रकार से एक देहाती (Primary) शिल्प स्कूलों के एक स्वावलम्बी (Self Supporting) विश्वविद्यालय University की नीव रक्खी जाय की बाबत फिर लिखा जायगा।

नामरूप का अन्धेर और स्वराज्य प्रकाश

(ले० पं० भीमसेन विद्यालंकार)

उपनिषदों में लिखा है कि संसार में मनुष्य तथा जातियोंके जीवन में जो ईर्ष्या पूर्ण लड़ाइयां होती हैं उनका मुख्य कारण 'नाम रूप है। नाम रूप के मिट जाने या विस्मृत होजाने पर वैमनस्य तथा झगड़े स्वयं बन्द हो जाते हैं। नाम रूप के कारण पैदा होने वाले झगड़े तब और भी अधिक भयंकर रूप धारण करते हैं जब यह नाम रूप की रूढियाँ अपरिवर्तन शील होजाती हैं। जिस समय जातियां सिद्धान्तों को स्थिर तथा दृढ़ करने

की अपेक्षा नाम की स्थिरता पर अधिक जोर देती हैं उस समय यह पारस्परिक वैमनस्य अधिक तीव्र हो जाता है आज योरपके अन्दर राष्ट्रों में जो पारस्पारिक स्पर्धा तथा ईर्ष्या फैली हुई है इस के अनेक कारणों में से मुख्य कारण यह भी है कि योरपियन जातियों को विशेष नामों से प्यार होगया है। वह उस विशेष नाम को धारण करने वाले गिरोह की खातिर सब कुछ बलि करने को तय्यार होजाते हैं। ऐतिहासिकों ने युरुप के स्लैव गाल काकेशियन आइबेरियन है लेनिक इत्यादि नामों में बांटा हुआ है। संसार के दूसरे भागोंको भी सेमिटिक मगोलियन आदि नामों में विभक्त किया है। यह विभाग किसी समय में शायद ठीक हों, अर्थानुकूल हो परन्तु आज कल मनुष्य जातिके परस्पर मेलजोल के कारण यह नाम भेद नाम मात्र का है परन्तु इन नामों के कारण जो लड़ाइयां होती हैं उन्हें देख कर ऐसा मालूम होता है कि इन भिन्न २ नाम धारण करने वाली जातियों में आकाश पाताल का अन्तर है। जातियों के नामों की अयथार्थता को हम प्रसिद्ध ऐतिहासिक एच जी. वैल्स की आउट लाइन्ज़ आफ़ हिस्ट्री (The Outlines of History) के ६६ पृष्ठ (chapter XIII The Races of Mankind) के उद्धरण से प्रमाणित करते हैं।

And in the present age, man is probably no longer under going differentiation at all. Readmixture is now a far stronger force than differentiation. Men mingle more and more. Mankind from the view of a biologist is an animal species in a state of arrested differentiation and possible readmixture.

It is only in the last fifty or sixty years that varieties of men come to be regarded in this light, as a tangle of differentiations recently arrested or still in progress.

Before that times student of mankind influenced consciously or unconsciously by, the story of Noah and Ark and his three sons. Shem, ham, and Duphat, were inclined to classify men into three on four great races as having always been separate things, descended from originally separate ancestors. They ignored the great possibilities of blended races and of special local isolations and variations. The classification has varied considerably, but there has been rather too much readiness to assume that mankind must be completely divisible into three or four groups. Ethonoligists (students of races) have fallen into grievous disputes about a multitude of minor people as to whether they were of this or that

primary race or mixed or strayed early forms or what not. But all races are more or less mixed.

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि आज जिन प्राचीन नामों की दुहाई की जाती है वह अधिकांश में नाम नाम ही हैं। आज कोई राष्ट्र, किसी प्राचीन जाति का रक्षक या अभिमानी बनता है कोई किसी का, सब नामों का अंधेर है। यदि वह जरा भी सोचे कि जिन के लिये अब हम लड़ रहे हैं वह तो विशुद्ध रूप से कहीं नहीं मिल सकते। जब तक युरोपियन जातियों के विचारों में से यह नाम तथा रूप रंग का अभिमान नहीं मिटेगा तब तक वैमनस्य तथा राष्ट्रों की ईर्ष्या नहीं मिट सकती। नाम रूप के कारण होने वाले अन्धेर को छिन्न भिन्न करने का साधन यही है कि इन नामों को रूढ़ि अर्थों में प्रयुक्त न किया जाय। इन के मौलिक अर्थों पर प्रकाश डाला जाय। जब तक हमारी विचार धारा संकीर्ण, संकुचित, तथा पक्ष पात पूर्ण है तब तक इन नामों का मौलिक रूप में प्रयोग नहीं हो सकता। जातियों का इतिहास बताता है कि जातियों के स्वभावादि में जो भेद है इस का मुख्य कारण देश की मौलिक परिस्थिति तथा समीपवर्ती वातावरण है। यह समझना कि अपने जन्म देश को छोड़ कर भी उनके अन्दर दूसरे देशों में जाकर पुरानी वृत्तियां बनी रहती हैं ठीक नहीं है। जिस प्रकार आर्यावर्त में रहने वाली आर्य जाति ने ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र चार यौगिकार्थ परक वर्णों को, नाम रूढ़ि बना कर, कास्टसिस्टम जातिभेद की बुराई पैदा की, इसी ने देश में कई बुराइयों को जन्म दिया। संसार का इतिहास लिखने वालों ने या यह कहिए कि मध्यकाल के संकीर्ण संकुचित दृष्टि वाले ऐतिहासिकों ने अपनी २ जाति को ईश्वर प्रेरित समझ कर, हृदयों में विषमता के भाव पैदा कर दिए। इसी का परिणाम था कि ग्रीस के नगर राष्ट्रों में रहने वालों को सब प्रकार से योग्य होने पर भी नागरिकता के अधिकार नहीं दिए जाते थे।

यहूदी लोग कई सदियों से अपने जन्म देश को छोड़कर भिन्न २ स्थानों पर रहे, व्यापार किया, धन कमाया, वंश चलाए परन्तु इस रूढ़ि वाद ने उन्हें कहीं का नागरिक नहीं बनने दिया। मध्य काल में स्पेन वालों तथा युरोप वालों ने मूर जाति को इसी संकीर्ण भाव से प्रेरित होकर स्वदेश से बहिष्कृत किया। आज युरोपियन, भिन्न २ उपनिवेशों में जन्म लेने वाले वहीं की मट्टी से पलने वाले भारतीयों को नाम तथा रूप के अभिमान से प्रेरित होकर भारतीयों को औपनिवेशिक अधिकार नहीं देते।

इसी मिथ्याभिमान के कारण जर्मन सम्राट् तथा अन्य यूरोपियन महत्वकाँक्षी, एशिया वालों को अपने समकक्ष नहीं बनाना चाहते थे। यदि यह नियम स्वीकार किया जाय कि जो व्यक्ति जिस देश में रहे, जहाँ का वासी हो वह वहीं का सभ्य गिना जाय तो आज बहुत से झगड़े शान्त हो जांय। इस के बाद जो झगड़े हों वह राजनैतिक होंगे। उनके अन्दर सभ्यता

के ऊंचे सिद्धान्तों का खून नहीं किया जाएगा। अभी तक अमेरिका इस जातीयता के रूढ़िवाद से बचा हुआ था परन्तु अब धीरे २ वह भी इस में उळझ रहा है। यह समय की संक्रामक बीमारी है।

यह तो दूर देश की बात हुई। हम अपने देश का उदाहरण इस विषय में देकर अपने आपको और भी अधिक स्पष्ट करेंगे। युरोपियन विद्वानों के जातियों तथा सभ्यता सम्बन्धी अधूरे विश्लेषणों के वर्णन पढ़ कर भारत के बड़े२ विद्वान् तथा व्याख्याता, हिन्दुओं को सैमिटिक सभ्यता के आक्रमण से बचने की चेतावनी देते हैं, और मुसलमान-लोग मुसलमानों को अरब तथा सैमिटिक सभ्यता की रक्षा के लिये तय्यार करते हैं। इस प्रकार एक दूसरे पर अविश्वास प्रकट करते हैं। सैमिटिक आदि के विश्लेषण नाम मात्र के हैं इन में सत्य बहुत थोड़ा है। जो कुछ दिखाई देता है वह स्थानीय भौगोलिक परिस्थिति का है। स्थानीय तथा भौगोलिक परिस्थिति के असर को स्थान तथा भौगोलिक प्रभाव जल्दी बदल देते हैं। भारत में रहने वाले-आर्य, शक हून तथा मुसलमान या अरब और अब अंग्रेज़ हज़ार कोशिशें करने पर भी यहां के भौगोलिक असर से नहीं बच सकते। यह भौगोलिक तथा परिस्थिति सम्बन्धी अवस्थाएँ ही नयी जातियों तथा नये समुदायों को पैदा करती हैं। भारतीय सभ्यता स्थिर चीज़ नहीं है। अनन्त समुद्र की तरह निरन्तर परिवर्तनशील है। परिवर्तनशील समुद्र परिवर्तित होता हुआ भी अपने गर्भ स्थित रत्न तथा बहुमूल्य तत्वों को धारण किए रहता है उसी प्रकार भारतीय सभ्यता तथा अन्य देशों की सभ्यताएँ सत्यतत्व को धारण करती हुई नए रूप बदलती हैं। यह सत्यतत्व प्रायः सब सभ्यताओं में समानरूप से पाए जाते हैं। निरन्तर होने वाले परिवर्तनों के कारण हम लोग इन तत्वों को भूल कर परिवर्तनों को ही सब कुछ समझ लेते हैं। तत्वदर्शी ऐतिहासिक ही इन तत्वों को देख सकते हैं। वही सभ्यतोओं की व्यापक समानताओं को प्रकट कर सकते हैं। यदि हम इन विचारों को ध्यान में रखते हुए ऋषि दयानन्द के इस लक्षण को ध्यान से पढ़ें तो हमें मालूम होगा कि ऋषि दयानन्द कितने बड़े तत्व दर्शी ऐतिहासिक तथा दार्शनिक थे। उनके लेख का भाव यह है जो आर्यवर्त में रहता है वही आर्य है। ऋषि दयानन्द की दृष्टि से भारत में रहने वाले हिन्दु, मुसलमान, पारसी, युरोपियन जिन्होंने इसे अपना लिया है सब आर्य हैं। इसी व्यापक उद्देश्य को सामने रख कर ऋषि दयानन्द आर्य शब्द के व्यवहार पर जोर देते थे। ऋषि दयानन्द जिस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र को रूढ़िवाद को तोड़ना चाहते थे उसी प्रकार वह भारत में, स्वदेश में एकता स्थापित करने के लिए इस रूढ़िवाद को तोड़ना चाहते थे। इसी लिए हम देखते हैं कि ऋषि दयानन्द जहाँ दूसरों के विचारों का खण्डन करते हैं वहाँ वह

बुराइयों का ही खंडन करते हैं। क्योंकि वह देखते हैं कि युरोपियन सभ्यता की बुराइयां केवल उसी सभ्यता की नहीं है। भारत में महाभारत काल में वाममार्ग काल में वह सब बुराइयां थीं। सभ्यताओं के कल्पित नाम ले कर, विशेष तरह के रूढिवाद का वे समर्थन नहीं करते। इसके विपरीत, मनुष्य मात्र को आर्य और अनार्य के व्यापक विभागों में बांटना चाहते हैं। जो व्यक्ति स्वतन्त्र विचार करना चाहता है उसे इस नाम रूप के अन्धकार से बचना चाहिए। जब तक हमारे सामने अथवा दूसरों के हृदयों में यह नाम रूप का अंधेर छाया रहेगा तब तक एक देश में रहते हुए भी हम एक दूसरे को म्लेच्छ, काफ़िर हिन्दु मुसलमान, हूंण, काला आदमी आदि नामों से पुकारते रहेंगे और पारस्परिक वैमनस्य को तूल दे कर देश तथा स्वदेश की प्राचीन कीर्ति में बट्टा लगाएंगे। प्राचीन लोगों ने आध्यात्मिक क्षेत्र में इस नाम रूप की अंधियारी को दूर कर ब्रह्म या स्वराज्य को पाया था। आज हमने व्यावहारिक संसार में इस नाम रूप की अंधियारी को छिन्न भिन्न कर, स्वतन्त्र-ब्रह्म तथा स्वराज्य को पाना है। जब तक हम आर्यावर्त निवासियों को एक आर्यनाम तथा भारतीय रूप में नहीं देखेंगे तब तक भारत में स्वाधीनता तथा विचार स्वातन्त्र्य का प्रसार नहीं हो सकता।

सम्पादकीय

हिन्दू और मुसल्मान

जुलाई मास के माडर्न रिव्यू में प्रो० जदुनाथ सरकार ने 'दि एनसाइक्लोपीडिया आफ इस्लाम' के आधार पर लिखा है कि इन्डो-चायना के 'अनाम' प्रदेश में १२० लाख आदमी रहते हैं, जिन में से १५ लाख कम्बोडियन, १२ लाख लाओ, २ लाख चाम और मलय, १ हज़ार हिन्दु और ५० लाख जंगली हैं। जंगली लोग तो भूत-प्रेत की पूजा करते हैं परन्तु अनामी, कम्बोडियन आदि बुद्ध तथा कन्फूशियस के मत को मानने वाले हैं। 'चाम' लोगों में कुछ ऐसे हैं जिन्होंने अपने पूर्वजों से अपना सम्बन्ध अभी तक नहीं तोड़ा और उनमें से कई मुसलमान हैं। मुसलमान 'चाम' अपने हिन्दू देश भाइयों को 'काफिर' शब्द से पुकारते हैं, परन्तु इस शब्द का प्रयोग वे घृणा से नहीं करते। मुसलमान-चाम शिया सम्प्रदाय के हैं। वे 'ओवलाह' (अल्लाह) की पूजा करते हैं। इस के साथ वे 'पो-देवता-ध्योर' (ईश्वर-देवता) को पूजते हैं। इस के अतिरिक्त वे 'यो-ओवलाह तक-अला' पर दो अण्डे, एक प्याला चावल की शराब और तीन पान के पत्ते चढ़ाते हैं। यह शब्द 'अल्ला-ताला' का अपभ्रंश है जिसे उन्होंने शरीर धारी पर-

मेश्वर के रूप में परिणत कर लिया है। वे हिन्दुओं की उमा-भगवती को 'यो-इनो-नोगर' तथा शिव को 'यो-यङ्गो-अमो' नाम से पूजा करते हैं, जिन में से पहली पृथ्वी की माता तथा दूसरा उस का पिता है। इन्हीं को वे सृष्टि के प्रवर्तक आदम और ईव का नाम देते हैं।

जहां अनाम के मुसलमान—चामों ने हिन्दु देवताओं को अपने पूज्य देवताओं में स्थान दिया है वहां उस जगह के हिन्दु—चामों ने मुसलमानी 'ला इला इल्लिल्ला मुहम्मद रसूलिल्ला' को अद्भुत तरीके से अपने देवताओं में स्थान दिया है। वे 'पो-ओवलाह' 'पो-रसूलक' और 'पो-ला तिल' की पूजा करते हैं जो उक्त वाक्य को तीन खण्डों में बांट लेने से बने हैं।

अनाम के मुसलमान अपने धार्मिक गुरू को 'पो-ग्रु' कहते हैं जो 'गुरु' शब्द का अपभ्रंश है। 'ग्रु' के नीचे 'इमाम'—'खातिब' और 'मुअज्ज़िन' आते हैं और उस के नीचे 'अचार'। यह 'आचार', 'आचार्य' का अपभ्रंश है। अनाम-देश में मस्जिद की देख-रेख करने वाले मुल्ला को सर्वत्र 'अचार' ही कहा जाता है। हिन्दुओं के धर्म गुरुओं को 'बशाई' कहते हैं। अनाम में 'अचार' और 'बशाई' बड़े प्रेम से रहते हैं और एक दूसरे के धार्मिक कृत्यों में सम्मिलित होकर सहयोग से धार्मिक उत्सवों को निबाहते हैं। वे परस्पर मेल में यहां तक बढ़े हुए हैं कि एक दूसरे के धार्मिक मनोभावों को दुःख न पहुंचाने के लिये हिन्दु सूअर का मांस नहीं खाते और मुसलमान गौ का मांस नहीं खाते।

इसे कहते हैं धार्मिक-सहिष्णुता! अनाम की यह अवस्था कई शताब्दियों से है और इधर भारत वर्ष में यह कई शताब्दियों के बाद आने वाला स्वप्न बनी हुई है। मुसलमानों में तो असहिष्णुता का अंश इतना बढ़ गया है कि प्रो० जदुनाथ के उक्त लेख को पढ़ कर 'इस्लामिक वर्ल्ड' के एक लेखक का खून खौल उठा है। जून के अंक में 'उठो' शीर्षक देकर उक्त पत्र में एक लेखक ने अनाम के मुसलमानों की अवस्था पर दुःख के आँसू बहाए हैं और लिखा है:—

"अनाम के मुसल्मानों की तरफ किसी का ध्यान न होने के कारण उन की गिरावट पर्ले सिरे तक पहुंच गई है। क्या भारत के मुसल्मान इस समय भी नहीं चेतेंगे? परमात्मा ही जानता है कि 'चाम' लोगों की तरह और कितने मुसल्मान परिस्थिति के विष-मय प्रभाव में आकर गिर गये हैं क्योंकि उन के शिक्षित भाइयों ने उन की तरफ़ आंख उठा कर नहीं देखा! क्या कोई अञ्जुमन 'अनामी' लोगों में काम करने के लिए अपने प्रचारकों को नहीं भेज सकती? 'अनामी' लोगों की अवस्था 'मलकानों' से भी शोकजनक है और यदि इस कार्य में कुछ भी देरी हुई तो उस दूरवर्ती प्रान्त में इस्लाम के जो निशान दीख पड़ते हैं वे भी आंखों से ओझल हो जायंगे।"

क्या मुस्लिम-पत्र के इस लेखक महोदय के कथन का यह अभिप्राय नहीं है कि वे अनामी हिन्दुओं और मुसलमानों का पारस्परिक शान्तिमय व्यवहार पसन्द नहीं करते, उन्हें मुसलमानों का गोहत्या छोड़ देना अखरता

है? सहयोगी 'माडर्न-रिव्यू' ने ठीक लिखा है कि चाम के मुसलमानों का सुधार करने की अपेक्षा 'इस्लामिक वर्ल्ड' के लेखक का सुधार करना अधिक आवश्यक है। मुसलमानों को अपने पड़ौसियों के साथ शान्ति पूर्वक रहना सीखना चाहिये परन्तु भारतवर्ष के कुछ बिगड़े दिमाग के मुसलमान जीवन के इस सरल नियम पर चलना नहीं चाहते। उन्हें समझ लेना चाहिये कि यदि वे अपने विधर्मी पड़ौसियों के साथ शान्ति पूर्वक रहना सीखने के लिये तय्यार नहीं हैं तो समय की चोट उन्हें यह पाठ पढ़ा कर छोड़ेगी और तब उन का झीखना किसी काम न आयगा।

साहित्य-वाटिका

कायाकल्प—लेखक श्री प्रेमचन्द। प्रकाशक भार्गव पुस्तकालय, गायघाट, काशी। पृष्ठ संख्या ६२२। सजिल्द का मूल्य साढ़े तीन रुपया।

'कायाकल्प' श्रीयुत् प्रेमचन्द का नवीन उपन्यास है। इस में प्रेमचन्द जी के आदर्श—समाज की कल्पना के स्वप्न जगह २ दिखाई देते हैं। रंगभूमि की तरह इस उपन्यास में भी सेवा के मन्त्र को फूंका गया है। अत्याचारों के बोझ को प्रजा किस प्रकार सहती है, और फिर किस प्रकार वह फूट पड़ती है, इस का जीता-जागता चित्र खींचने में प्रेमचन्द जी की लेखिनी में जादू भरा हुआ है। इस प्रकार के अनेक चित्र 'कायाकल्प' में दिखाई देते हैं। देश की वर्तमान परिस्थिति का भी अच्छा नकशा खींचा गया है। एक जगह आप लिखते हैं—'कहीं बनिये ने डण्डी मार दी और मुसल्मानों ने उस की दुकान पर धावा कर दिया, कहीं किसी जुलाहे ने किसी हिन्दु का घड़ा छू लिया और मुहल्ले में फ़ौजदारी हो गई। एक मुहल्ले में मोहन ने रहीम का कंकौआ लूट लिया और इसी बात पर मुहल्ले भर के हिन्दुओं के घर लुट गये, दूसरे मुहल्ले में दो कुत्तों की लड़ाई पर सैंकड़ों आदमी घायल हुए, क्योंकि एक सोहन का कुत्ता था, दूसरा सईद का।' आज कल की अवस्था का क्या ही अच्छा ख़ाका खींचा है! हिन्दु-मुसलमानों को शान्त करने में चक्रधर ने जिस प्रकार धैर्य से काम लिया इसी प्रकार यदि देश के नेता किया करें तो इस समस्या की जटिलता इतनी विषम न रहे।

प्रेमचन्द जी के अन्य उपन्यासों की अपेक्षा इस उपन्यास में एक विशेषता है। दूसरों में जहां सेवाभाव आदि आदर्शों का चित्र है वहां इस में आध्यात्मिक तत्व (mysticism) का भी प्रवेश किया गया है। कर्मों के अन्धकारावृत मार्ग की जगह २ झाँकियां दिखलाई गई हैं। इस जन्म के पीछे की अवस्था तक हम नहीं पहुंच सकते परन्तु प्रेमचन्द जी ने अपनी कल्पना शक्ति की सहायता से महेन्द्र और देवप्रिया का 'कायाकल्प' करके उन्हें शंखधर और कमला बना दिया है। जिस रूप में पात्र उपन्यास के प्रारम्भ में प्रवेश करते हैं

उस से अत्यन्त परिवर्तित रूप में वे अन्त में दिखाई देते हैं—यह भी एक प्रकार का 'कायाकल्प' ही है। उपन्यास में आध्यात्मिक-तत्व का प्रवेश प्रेमचन्द जी ने प्रथम वार ही किया है परन्तु इस से उपन्यास की रोचकता घटने के स्थान में बढ़ ही गई है और हमें आशा है कि प्रेमचन्द जी इसके बाद जिन उपन्यासों में अध्यात्मिक तत्व का प्रवेश करेंगे वे इस से ज्यादह रोचक होंगे। हम प्रेमचन्द जी के इस उपन्यास का हार्दिक स्वागत करते हैं।

प्रेम-प्रतिमा—लेखक श्री प्रेमचन्द। प्रकाशक भार्गव पुस्तकालय, बनारस। पृष्ठ संख्या ३३२। मूल्य दो रुपया। यह प्रेमचन्द जी की १६ गल्पों का, जो हिन्दी की भिन्न २ पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं, संग्रह है। ये प्रेमचन्द जी की चुनी २ गल्पें हैं और साहित्य-प्रेमियों के संग्रह करने के योग्य हैं। पुस्तक सजिल्द है और छपाई सुन्दर तथा कागज़ बढ़िया है।

प्रेम द्वादशी—लेखक श्रीयुत् प्रेमचन्द। प्रकाशक-गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय, लखनऊ। पृष्ठ संख्या २०६। मूल्य सवा रुपया। गंगा पुस्तक माला ने उत्तम साहित्य को सुन्दर टाईप तथा अच्छे कागज़ पर छपवा कर हिन्दी की अमूल्य सेवा की है। प्रेमचन्द जी की १२ मनोहर कहानियों का 'प्रेम-द्वादशी' एक मनोहर गुटका है। इस संग्रह की भूमिका में श्रीयुत् प्रेमचन्द लिखते हैं, 'ऐसी कहानी, जिस में जीवन के किसी अङ्ग पर प्रकाश न पड़ता हो, जो सामाजिक रूढ़ियों की तीव्र आलोचना न करती हो, जो मनुष्य में सद्भावों को दृढ़ न करे या जो मनुष्य में कुतूहल का भाव जाग्रत् न करे, कहानी नहीं है।' ये शब्द प्रेमचन्द जी की कहानियों के इस संग्रह पर अक्षरशः चरितार्थ होते हैं। 'प्रेम-प्रतिमा' तथा 'प्रेम-द्वादशी' की कई कहानियां एक ही हैं।

निबन्ध-निचय—लेखक श्रीयुत् जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी। प्रकाशक गंगापुस्तकमाला—लखनऊ। पृ० सं० २०८। मूल्य सवा रुपया। सुन्दर भाषा में, हिन्दी-सम्बन्धी-सुन्दर विचारों का, सुन्दर टाइप में, सुन्दर कागज़ पर छपा हुआ यह सुन्दर संग्रह है। इस में चतुर्वेदी जी के सात निबन्ध हैं जिन्हें हिन्दी-साहित्य में सुरक्षित रखने के लिए गंगा पुस्तक माला ने प्रकाशित कर दिया है।

हमें गंगा-पुस्तक-माला से निम्नलिखित पुस्तकें भी प्राप्त हुई हैं जो बच्चों के पढ़ने के काम की हैं और जिन के लिए हम उक्त पुस्तक—माला के कृतज्ञ हैं:—

१. इतिहास की कहानियां
२. खिलवाड़
३. लड़कियों का खेल
४. वनिता विलास

हिन्दु-पञ्च का विजयांक—सम्पादक पं० ईश्वरी प्रसाद शर्मा। 'माधुरी' के आकार का। मूल्य ६ आना। मिलने का पता—हिन्दू-पञ्च कार्यालय, बर्म्मन प्रेस, कलकत्ता। 'हिन्दूपञ्च' साप्ताहिक पत्र है और उसका वार्षिक मूल्य केवल २) है, इस लिए इस के

सस्ते होने में कोई सन्देह नहीं। इस विशेषाङ्क में हिन्दू संगठन आदि पर उत्तमोत्तम लेख हैं और अनेक चित्र भी दिये गये हैं। अंक संग्रह के योग्य है।

दैनिक देशबन्धु— यह दैनिक पत्र खण्डवा (सी. पी) से प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है। यह स्वराज्य दल की नीति का पोषक है। वार्षिक मूल्य दस रुपया मात्र।

गुरुकुल समाचार

ऋतु— गुरुकुल में मौसम बदल रहा है। दिन में गर्मी होती है परन्तु रात को काफ़ी शीत पड़ने लगा है इस लिए कुल में मलेरिये का प्रकोप होना स्वाभाविक है। मायापुर में छोटे ब्रह्मचारियों पर मलेरिये का आक्रमण विशेष प्रतीत होता है। सर्दी के कारण गंगा का प्रवाह थोड़ा ही रह गया है। वर्षा ऋतु में जो नदी गुरुकुल के लिये भय का कारण बनती है वही आजकल छोटा नाला रह गई है। बंगले के सामने की धार और काङ्गड़ी का नाला दोनों इस वर्ष जाड़े भर चलते रहेंगे इस लिये गुरुकुल एक टापू बना रहेगा।

पढ़ाई— दो महीने का सत्रान्तावकाश समाप्त हो गया है। महाविद्यालय के ब्रह्मचारी तथा उपाध्याय दोनों ही लौट आये हैं और नियम पूर्वक पाठ आरम्भ हो गये हैं।

कुल में विजयादशमी— विजया दशमी का त्यौहार कुल का विशेष त्यौहार है, इसे कुलवासी बड़े प्रेम से मनाते हैं, खेलें तथा सभा की जाती है। इस वर्ष विजया का उत्सव छुट्टियों के अंत में पड़ा। ब्रह्मचारियों के खेल हुए सब खेलों में वालीवाल का खेल विशेष आनन्ददायक रहा। सायंकाल को पंडित चन्द्रमणि जी के सभापतित्व में एक सभा हुई, ब्रह्मचारियों तथा अन्य सज्जनों के रामचरित्र पर व्याख्यान हुए। सभा के बाद एक सहभोज होकर विजया का त्यौहार धूमधाम से समाप्त हुआ।

यात्री— गुरुकुल के प्रेमी प्रोफेसर साँझीराम जी अकाल कालिज में काम करते हैं। वहाँ से अवकाश लेकर वे पिछले दिनों कुल में आये। वे यहाँ सात दिन रहे, उनके सत्संग से कुलवासियों ने अच्छा लाभ उठाया। प्रोफेसर जी अलङ्कार से विशेष प्रेम रखते हैं उन्होंने अलङ्कार के लिये समय २ पर लेख देने का बचन दिया है। पंजाब आर्यप्रतिनिधि सभा के प्रधान श्री बद्रीदास जी भी अन्तरंगसभा के लिये गुरुकुल आये थे और एक दिन रह कर चले गये।

गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ तथा कुरुक्षेत्र में भी छुट्टियाँ समाप्त हो गई हैं और पाठ प्रारम्भ हो गये हैं।

कन्या गुरुकुल इन्द्रप्रस्थ— का वार्षिकोत्सव इस बार दिवाली के दिनों में न होकर बड़े दिनों की छुट्टियों में होगा। वहाँ छुट्टियों में ब्रह्मचारिणियों को मलेरिया के कारण काफ़ी तकलीफ़ उठानी पड़ी अब आराम है। गुरुकुल मुलतान के भी सब समाचार भले हैं।

गुरुकुल-रजत-जयन्ती

गुरुकुल की रजत-जयन्ती का कार्य अच्छी उन्नति कर रहा है। जयन्ती विषयक समाचार अलंकार के ग्राहकों को समय २ पर महीने मिलते रहेंगे। इन दो महीनों में गुरुकुल के डेपुटेशन भिन्न २

स्थानों पर भेजे गये थे उनका समाचार दिया जाता है—

बिहार— के दानापुर, झरिया, जमशेदपुर स्थानों में पंडित धर्मदत्त जी विद्यालंकार तथा प्रोफेसर देवराज जी सेठी गये थे। आपको इन स्थानों में धन सग्रह के कार्य में अच्छी सफलता मिली। जमशेदपुर किसी कारण कार्य न हो सका। झरिये से ८ हजार रुपया प्राप्त हुआ, दानापुर से भी दो हज़ार रुपया प्राप्त हुआ।

ग्वालियर तथा मध्यभारत— प्रोफेसर गोपाल जी तथा प्रोफेसर नन्दलाल जी भेजे गये थे। ग्वालियर पहुंचते ही दोनों को ज्वर ने आ घेरा। महीने भर बीमारी का दुःख भोग कर दोनों को वापिस आना पड़ा। कुल राशि १०००) प्राप्त हुई।

डेरागाज़ीखाँ तथा मुजफ़रगढ़में— प्रोफेसर सत्यकेतु विद्यालंकार तथा पंडित चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार गये थे। छोटे २ स्थानों से भी आप लोग १॥ हज़ार नकद लाने में समर्थ हुए, २ हज़ार के वायदे इस से अलग हैं।

महाविद्यालय के ब्रह्मचारी भी इस वार घरों के आसपास धन एकत्र करते रहे। ब्रह्मचारियों ने श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी के स्मारक में एक भवन (Hall) बनाने के अर्थ दस हजार रुपया एकत्र करने का प्रण किया था जिसे एकत्र करने में वे सफल हुए हैं। ब्रह्मचारियों का उत्साह तथा कार्य प्रशंसनीय है। भीमसेन, कृष्णदत्त, देवनाथ, सिंहेश्वर तथा श्वेतकेतु आदि ब्रह्मचारियों का कार्य बहुत ही उत्तम तथा अनुकरणीय रहा है।

क्वेटा—प्रो० विश्वनाथजी विद्यालंकार तथा प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार गये थे। आर्य समाज का उत्सव होने पर भी उनको अच्छी सफलता मिली।

ऊपर जयन्ती के डेपुटेशनों का कार्य दिया गया है। आजकल कौंसिलों के चुनाव की धूम है। बड़े२ नेता ब्रिटिश सरकार से दिये गये खिलौने के लिये जीजान से आपस में लड़ रहे हैं, उन का सारा समय तथा धन इस खिलौने की प्राप्ति के लिये स्वाहा हो रहा है। जनता को भी चुनाव दंगल से फुरसत नहीं है इस लिये गुरुकुल के डैपुटेशनों को पूरी सफलता नहीं मिल सकी। नवम्बरतक चुनाव समाप्त हो जायेंगे। गुरुकुल के डेपुटेशन भारत के भिन्न २ प्रान्तों में उसी समय भेजे जायेंगे। आशा है भारतीय जनता भारत के सब से बड़े राष्ट्रीयविश्वविद्यालय गुरुकुल की पूर्णरूपेण सहायता करेगी ताकि गुरुकुल आर्थिक चिन्ता से मुक्त हो कर अपने उद्देश्य को जो धनाभाव के कारण अभी तक अधूरा है पूर्ण करने में समर्थ हो सके।

लाहौर में— गुरुकुल रजत जयंती कार्यालय गुरुदत्त भवन लाहौर में खोल दिया गया है, इस से लाहौर वालियों को जयन्ती प्रचार में अच्छी सफलता मिल सकेगी। यदि इसी प्रकार अन्य स्थानों के गुरुकुल प्रेमी स्थानिक जयन्ती कार्यालय खोल लें तो जहाँ उनको भी कार्य में सुभीता रहेगा वहां मुख्य कार्यालय का काम भी हलका हो जायगा।

देखिए, अमूल्य ग्रन्थ-रत्न संपूर्ण छप गया

वेद के प्रेमी अवश्य पढ़ें!

प्रो० चन्द्रमणि विद्यालङ्कार, पालीरत्न

वेदोपाध्याय गुरुकुल कांगड़ी का बनाया

वेदार्थदीपक निरुक्तभाष्य

अवश्य पढ़ें। यह यास्क मुनि के प्रसिद्ध 'निरुक्त' का हिन्दी में सरल, सरस तथा सुबोध भाष्य है जो कि दो भागों में समाप्त हुआ है और डाक-व्यय रहित कीमत केवल ७) रुपया है। अनेक सूचीपत्र देकर ग्रन्थ को बहुत अधिक उपादेय बनाया गया है। श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज, श्री महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ जी झा एम. ए. पी. एच. डी वाइस-चान्सलर इलाहाबाद युनिवर्सिटी, प्रिन्सिपल गवर्नमैण्ट कालेज काशी, प्रिन्सिपल हिन्दू विश्वविद्यालय काशी, श्री रामदेव जी आचार्य गुरुकुल कांगड़ी, श्री पं० घासीराम जी एम. ए. प्रधान आर्यप्रतिनिधि सभा युक्त-प्रान्त, श्री सातवलेकर जी संपादक वैदिक धर्म, श्री मा० आत्माराम जी राज्यरत्न बड़ोदा, भारत के अत्यन्त प्रसिद्ध विद्वान् श्री चिन्तामणि विनायक वैद्य एम. ए. एलएल. बी. वाइस चान्सलर तिलक-विद्यापीठ पूना, इत्यादि प्रसिद्ध महानुभावों ने पुस्तक की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है, और सभी ने वेदप्रेमियों से अनुरोध किया है कि वे इस ग्रन्थ को अवश्य पढ़ें। महाभारत में लिखा है कि निरुक्त शास्त्र के प्रचार के बिना वैदिक कर्म-काण्ड लुप्त हो गया था। यदि आप वेद का सच्चे अर्थों में प्रचार करना चाहते हैं, तो इस निरुक्तभाष्य को अवश्य पढ़िए। वेदार्थ करने की कुञ्जी 'निरुक्त' को प्राप्त किए बिना वेद के खजाने को पाना केवल स्वप्न देखना है।

मिलने का पता—प्रबन्धकर्ता 'अलंकार'

डा० गुरुकुल कांगड़ी (बिजनौर)

कदाकत खुद ब खुद कर देती है शोहरत ज़माने में।
मुनाफ़ा इस क़दर रखिये नमक जितना हो खाने में॥

(१) गंगाविष्णु नैनामृताञ्जनः—यह सफ़ेद सुरमा शिरीष की जड़ में ६ महीने रख कर तथा अन्य वैज्ञानिक तरीकों से शुद्ध करके १ साल की लगातार मेहनत के पश्चात् तय्यार किया गया है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि यह सुरमा आंखों की भिन्न बीमारियों में अकसीर साबित हो चुका है—

नेत्रों में खारिश का उठना, रतौंधी, दूर अथवा समीप की वस्तु का साफ़ २ नज़र न आना, धूप में जाते ही आंखों का गरमी से चौंधिया जाना, देर तक किसी वस्तु अथवा पुस्तक की ओर नज़र का न टिकना, आंखों से पानी का गिरना, नज़ले की वजह से आंखों की कमज़ोरी और विशेष करके आजकल के नवयुवकों तथा वृद्धों के लिये यह सुरमा अकसीर साबित हो चुका है। कीमत २) तोला रखी गई है। ३ माशा ॥), ६ माशा १), १ तोला २)

(२) कुक्करों का शर्तिया इलाजः—एक आश्चर्य जनक औषधि। यह कोई शास्त्रीय नुस्खा नहीं है। परन्तु किसी अनुभवी वृद्ध सन्यासी का जादू है। देखने में बिलकुल मामूली खाली बत्तियें नज़र आती हैं परन्तु इसके ४, ५ दिन के इस्तेमाल से ही आपको निहायत फ़ायदेमन्द साबित होंगी—

यह बत्तियाँ आंखों के पुराने से पुराने रोहें, सुर्खी तथा पड़वाल और पानी के झर २ गिरने के लिये अकसीर है। फ़ायदे इसके अन्य भी हैं परन्तु आप इसकी एक बार परीक्षा करके हमेशा के लिये इसको अपने पास रखना चाहेंगे। सेवन विधि दवाई के साथ भेजी जाती है।

(३) मस्तिष्क पौष्टिकः—विद्यार्थी, अध्यापक, वकील, क्लर्क और व्याख्याता आदि जिन्हें काम करके काफ़ी देर के लिये आराम की ज़रूरत पड़ती है, उनकी दिमाग़ी ताकत को स्थिर रखनेके लिये यह दवाई अद्वितीय है। कम से कम १५ दिन या १ महीना इसके सेवन करने से आश्चर्यजनक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे आप अपने काम को दिल से कर सकेंगे तथा दिमाग़ी ताकत को ज्यादा नहीं खर्च करना पड़ेगा। विद्यार्थियों के लिये अमृत है। केवल एक बार परीक्षा की ज़रूरत है। १ शीशी १५ दिन के लिये २)

(४) केशरञ्जन खिज़ाबः—जहां अन्य खिजाबों के लगाने से काली चमड़ी होने के सिवाय बालों की जड़ें कमज़ोर होकर झड़ने लग जाती हैं, वहां इस के सेवन से बाल काफ़ी अरसेके लिये काले तथा खास चमकीले मालूम देते हैं। यह दो चीज़ें हैं--एक खुश्क, दूसरी तर। दोनोंको उचित मात्रामें मिला कर ब्रशसे इस्तेमाल करने से बालोंमें खास चमक आती है। १ शीशी १।)

आधे दाम में !!!

१. महावीर गेरीवाल्डी—ले०श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति । आधा मूल्य॥=)

मौडर्न रिव्यू—गेरीवाल्डी का जीवन केवल व्यक्ति का जीवन नहीं परन्तु स्वाधीनता का जीता जागता इतिहास है । पुस्तक की भाषा अत्यन्त रोचक है— पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी है । हम इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करते हैं ।

माधुरी—विशेष महापुरुषों के जीवन चरित्र नवयुवकों के लिये विशेष शिक्षाप्रद होते हैं । यह जीवन चरित्र भी अच्छे ढंग से लिखा गया है । भाषा रोचक और मर्मस्पर्शिनी है । नवयुवकों को इस का अध्ययन अवश्य करना चाहिए

श्री शारदा—इसकी भाषा ऐसी फड़कती हुई और सजीव है कि इस में उपन्यास का सा आनन्द आता है । मनोरञ्जन के साथ २ उपदेश की भी मात्रा रक्खी है । विषय का क्रम भी यथोचित रीति से जमाया गया है । पुस्तक में उन्हीं घटनाओं का उल्लेख है जो महत्त्वशालिनी हैं, जिनका ज्ञान सर्वसाधारण को अपेक्षित है । यह पुस्तक भाषा के लालित्य, भाव की भंगी, विषय के समुचित वर्णन के अभिप्राय से हिन्दी साहित्य में अनूठी है । हमारा आग्रह है कि पाठक इसे अवश्य पढ़ें । पुस्तक में इटली के आठ महान् व्यक्तियों के चित्र भी हैं ।

२. प्राचीन भारत में स्वराज्य लेखक—श्री पं० धर्मदत्त जी सिद्धान्तालङ्कार—आधा मूल्य ॥)

प्रो० विधुभूषण दत्त जी M.A.—हमारे आर्य प्रजासत्तात्मक तथा प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन प्रणालियों से अपरिचित न थे, प्रजा ही राजा को चुनती थी इत्यादि बातों को सिद्ध करने के लिये प्रमाणों और उदाहरणों को इकट्ठा करने में लेखक ने सराहनीय परिश्रम किया है । पुस्तक की लेखनशैली मनोरञ्जक है । विचार करने के लिये सभी को इस पुस्तक में बहुत सामग्री प्राप्त हो सकती है ।

३. वैदिक विवाह का आदर्श—ले० श्री पं० नन्दकिशोर जी विद्यालंकार—आधा मूल्य ।-)

बाबू भगवान दास जी काशी—विवाह क्या है, किस से, कैसे, किस लिए और कब विवाह करना चाहिए—यह पुस्तक में बतलाया गया है । वैदिक विवाह पद्धति अन्य विवाह पद्धतियों से क्यों श्रेष्ठ है, यह अच्छी तरह बतलाया गया है । इस पुस्तक का समाज में अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए ।

४. सन्तजीवनी—ले० स्व० श्री गिरिजा कुमार घोष—भारत के प्रसिद्ध महात्माओं-कबीरदास, गुरुनानक, गोस्वामी तुलसीदास आदि के विस्तृत जीवन चरित्र बड़ी मनोरंजकता से लिखे गए हैं । आधा मूल्य ।)

५. बिखरे हुए फूल-यह पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की बिल्कुल नए ढंग का, नए विषयों पर अद्भुत कविताओं का संग्रह है । आधा मूल्य ≡)

मैनेजर—साहित्यपरिषद् पुस्तक भण्डार; गुरुकुल काङ्गड़ी (हरिद्वार)

Registered No A ; 1340

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल कांगड़ी का मुख-पत्र]

मार्गशीर्ष १९८३ नवम्बर १९२६

वर्ष ३] [अङ्क ६

मुख्य संपादक
प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

विदेश से ६ शि० एक प्रति का ।-) वार्षिक मूल्य ३)

विषय सूची

ग्राहकों से निवेदन

१. अलंकार पत्र प्रत्येक देशी मास के प्रथम सप्ताह में ग्राहकों के पास पहुंच जावेगा।

२. यदि कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे तो पहले डाकघर से पूछना चाहिये यदि पता न चले तो डाक-घर से जो उत्तर आवे उसे प्रबन्धकर्ता के पास भेज देना चाहिये। यह सूचना देशी मास के तृतीय सप्ताह तक अवश्यमेव पहुंच जानी चाहिये। अन्यथा दूसरी प्रति बिना मूल्य न दी जावेगी।

३. पत्र व्यवहार करते समय अपनी ग्राहक संख्या अवश्य देनी चाहिये अन्यथा उत्तर न दिये जाने के हम दोषी न होंगे।

४. पत्रोत्तर के लिए जवाबी कार्ड या टिकट साथ भेजना चाहिये।

५. पत्र—व्यवहार में ग्राहकों को अपना पता पूरा और सुवाच्य लिपि में लिखना चाहिये।

६. भावी ग्राहकों को चाहिये कि वे रुपये मनीआर्डर द्वारा भेजें। वी. पी. भेजने से ग्राहकों को और हमें, दोनों को कष्ट होता है। पैसे लगने पर भी समय बहुत नष्ट होता है।

७. नमूने का अंक बिना मूल्य किसी को न भेजा जावेगा।

८. प्रबन्ध सम्बन्धी सब पत्र व्यवहार प्रबन्धकर्ता "अलङ्कार" गुरुकुल कांगड़ी (जि० बिजनौर) के पते से करना चाहिये।

प्रो० सत्यव्रत जी प्रिन्टर तथा पब्लिशर के लिये गुरुकुल यन्त्रालय कांगड़ी में छपा

वर्ष ३, अङ्क ६] मास, मार्गशीर्ष [पूर्ण संख्या ३०

अलंकार

तथा

गुरुकुल-समाचार

स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

गान में विलीन

(श्री सत्यकाम जी विद्यालंकार)

मस्त हुआ गाने में तेरे, तू गाये जा इस ही स्वर में।
छिपे हुये हैं, गान सहस्रों-
तेरी लहर लहर में॥ १॥

सुलाये जा जीवन उन्माद, जगाये जा चिरसुप्त विषाद।
भरी हुई है गहन वेदना-
तेरी इस कल कल में॥ २॥

मेरे सुख दुख भूत भविष्यत्, जग का यह सारा विस्तार।
तेरे एक बिन्दु भर जल में,
धुलता सब पल भर में॥ ३॥

शेष रहे इन व्यथा भरे-गानों का कम्पनमात्र विभो।
मैं विलीन हो रहूँ सदा बस-
उस ही अजर अमर में॥ ४॥

ईश्वर का स्वरूप

संदेहवाद तथा अज्ञेयवाद

२

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

हमने अभी देखलिया कि नास्ति-क वादने संदेह के लिये जगह खाली कर दी। संदेहने दो पृथक् २ रूपधारण किए—'संदेहवाद' (Scepticism) तथा [Agnosticism] 'अज्ञेयवाद'। संदेह वाद का मुख्य प्रवर्त्तक ह्यूम कहा जा सकता है, भारत में जैनियों का 'स्याद्वाद' † इसी का रूपांतर है। संदेहवाद में आत्म-व्याघात के अंश मौजूद हैं, इसलिये यह ठहर नहीं सकता। संदेह में तो संदेह होता नहीं, वह तो निश्चित है। फिर संदेहवाद कहाँ रहा? इसी बात को वेदांत में जैनियों के स्याद्वाद का खंडन करते हुए 'नैकस्मिन्नसम्भवात्' इस सूत्र से प्रकट किया है।

आधुनिक काल में संदेहवाद का विचार अज्ञेयवाद (Agnosticism) के रूप में प्रकट हुआ, और प्रोफ़ेसर हक्सले ने अपने को नास्तिक कहलाने से बचाने के लिये इस शब्द का निर्माण किया। अपनी पुस्तक 'मैथड ऐंड रिज़ल्ट' * में वह एकजगह लिखते हैं कि मुझे निर्बल शक्ति में सृष्टि की अंतिम सत्ता तक पहुंच पाना असंभव प्रतीत होता है। परमात्मा के गुणों की व्याख्या

---

† वेदांत० (२, २, ३३) "सर्वत्र चेमं सप्तभङ्गीन्यायमवतारयन्ति। स्यादस्ति, स्यान्नास्ति, स्यादस्ति च नास्ति च, स्यादवक्तव्यः, स्यादस्ति चावक्तव्यश्च, स्यान्नास्ति चावक्तव्यश्च, स्यादस्ति च नास्ति चावक्तव्यश्चेति।...नह्येकस्मिन्धर्मिणि युगपत्सदसत्वादिविरुद्धधर्मसमावेशः सम्भवति शीतोष्णवत्। य एते सप्त पदार्था निर्धारिता एतावन्त एवंरूपाश्चेति ते तथैव वा स्युर्नैव वा तथा स्युः।"

* "The problem of the ultimate cause of existance seems to me hopelessly out of reach of my poor powers, Of all the senseless babble I have ever had occassion to read, the demonstrations of these philosophers, who undertake to tell us all about the nature of God, would be the worst, if they were not surpassed by the still greater absurdities of the philosophers, who try to prove that there is no God." Method and Results, page 245.

करने वाले मुझे बेवकूफ मालूम पड़ते हैं, और उनसे बढ़कर मूर्ख वे, जो उस की सत्ता के खंडन करने का दम भरते हैं। हक्सले का कथन था ‡ कि प्रकृति तथा परमात्मा, दोनों 'हौआ' हैं। इन के पीछे भागने से मनुष्य का कुछ नहीं बन सकता। जब मशीन † को चलता हुआ पाकर, उसमें काम करने से हमें फुर्सत नहीं, तब उसकी रचना आदि विकट प्रश्नों को सोचने में समय क्यों खोया जाय?

परंतु हक्सले का यह विचार ठीक नहीं। मनुष्य की रचना इस प्रकार की नहीं है कि वह अंतिम सत्ताओं पर विचार करना ही छोड़ दे। ऐसा मान लेना मानव-प्रकृति से अनभिज्ञता प्रकट करना है। मनुष्य जब तक मनुष्य है, तब तक वह अन्य बातों के साथ इन पर भी विचार करता ही रहेगा। और किसी २ समय तो अन्य सब कुछ छोड़ कर इन्हीं पर बड़ी प्रबलता से विचार करेगा। प्रो० हक्सले मनुष्य को मशीन का पुर्ज़ा बना देना चाहते हैं। किन्तु मनुष्य की रचना इस भाव के विरुद्ध है। मनुष्य इन पर विचार करेगा, विचार अंततक संदिग्ध अवस्था में ही रहेगा, इस बात को मानने के लिये भी मनुष्य को तैयार नहीं किया जा सकता। विचार का अभिप्राय निश्चय पर पहुंचना है, संदेह में पड़े रहना ही नहीं। अज्ञेयवाद ही यदि संसार की समस्याओं का अंतिम उत्तर होता, तो मानव-समाज कभी का आत्मघात कर इस समस्या को हल कर चुका होता। इसीलिये शॉपेनहार आदि अज्ञेयवादियों ने आत्मघात में कोई दोष नहीं देखा। कई लोग भूल से उपनिषदों को अज्ञेयवाद का प्रतिपादक समझते हैं। बुद्ध को अज्ञेयवादी कहा जासकता है, यद्यपि बहुतों की उसके विषय में यह सम्मति नहीं है। परंतु उपनिषदों को अज्ञेयवाद का प्रतिपादक कहना बड़ी भारी भूल है। उनमें स्पष्ट लिखा है—"इह चेदवेदीदथ

---

† "For what after all do we know of this terrible 'matter except as a name for the unknown and hypothetical causc of states of our consciousness......"

‡ "Why trouble oneself about matters, which are out of reach, when the working of the mechanism itself, which is of infinite practical importanee, affords scope for all our opportunities." Huxley's Critiques and Addresses, page 307.

सत्यमस्ति न चेदवेदीन्महती विनष्टि :" उसे न जानने से तो नाश-ही नाश है * !

जिस प्रकार नास्तिकवाद का ह्रास हुआ, संदेहवाद नष्ट हो गया, उसी प्रकार अब योरप से अज्ञेयवाद भी लुप्त होता चला जा रहा है। 'इनसाइक्लोपीडिया आफ् रिलिजन एंड एथिक्स' में अज्ञेयवाद पर लिखते हुए स्पष्ट कहा है कि आधुनिक दार्शनिक विचारों का झुकाव अज्ञेयवाद को पीछे छोड़ जाने की ओर है। †

आस्तिकवाद

३

१ परमात्मा की सिद्धि

हमने देख लिया कि नास्तिकवाद, संदेहवाद तथा अज्ञेयवाद हमें संतोष नहीं दे सकते। अब प्रश्न होता है कि ऐसी अवस्था में सृष्टि की उत्पत्ति कैसे समझी जाय? हमारा विचार है कि आस्तिकवाद ही इस विकट समस्या का सबसे बढ़िया समाधान है। ईश्वर की सत्ता निम्नलिखित युक्तियों से सिद्ध की जा सकती है—

(क) जगत्कार्यत्ववाद (Cosmological Argument)— मीमांसकों मानते हैं कि संसार का स्थूल रूप अनादि है। परन्तु विज्ञान से सिद्ध हो चुका है कि प्रकृति का यह स्थूल रूप अनादि नहीं। यह किसी-न-किसी समय बना, और किसी-न-किसी समय नष्ट हो जायगा। छिन्न भिन्न परमाणुओं से यह सुन्दर संसार कैसे पैदा होगया? कई प्रकृतिवादियों का कथन है कि परमाणुओं के मिलने से 'ऐसे ही (Fortuirous concourse of atoms) यह जगत् पैदा हो गया है। यह कल्पना ऐसी ही है, जैसे कोई कहे कि बहुत से अक्षरों को जोड़ देने से ऐसे ही एक पुस्तक तैयार हो गई! हम जानते हैं, संसार में ऐसे ही कुछ नहीं होता। कार्य-कारण का नियम अटल है। जो बनता है, उसका बनानेवाला भी होता है। यदि संसार बना, तो इसे किसने यह शकल दी? यह परिवर्तन कैसे हुआ? इस परिवर्तन का कारण कौन

* उपनिषदों में अज्ञेयवाद के प्रतिपादक ये वाक्य कहे जाते हैं—

"न विद्मो न विजानीमो—यस्यामतं तस्य मतं-मतं यस्य न वेद सः। अविज्ञातं विजानतां विज्ञातमविजानताम्। इत्यादि"।

परन्तु इनका अभिप्राय यही है कि जिस प्रकार का लोग उसे बता रहे हैं, वह वैसा नहीं है। तभी उपनिषदों में लिखा है—"नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा। अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते। इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति...। कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षत्।"

† "More recent philosophical developments encourage the expectation that Agnosticism will soon be a superseded mode of thought." Encyclopedia of Religion and Ethics—See, "Agnosticism"

है? जो कारण है, वही परमात्मा है।

त्रिकालवादी कहते हैं कि प्रकृति स्वयं इस परिवर्तन का कारण है। परंतु वह स्वयं इसका कारण नहीं हो सकती। यदि प्रकृति ही कारण हो, तो मानना पड़ेगा कि परिवर्तन प्रकृति का स्वाभाविक गुण है। परन्तु 'परिवर्तन' किसी वस्तु का स्वाभाविक गुण नहीं हो सकता। स्वाभाविक गुण का अर्थ है 'नित्य गुण'। जो गुण किसी वस्तु का 'स्वभाव' हो, वह उसमें सदा—'नित्य' रहना चाहिए जब एक गुण सदा रहेगा, तो उसका विरोधी गुण उसमें नहीं रह सकता। 'परिवर्तन' का अर्थ है 'अनित्य'—बदलने वाला। अस्तु, परिवर्तन के स्वाभाविक होने का मतलब हुआ अनित्य का 'नित्य' होना। भला अनित्य को नित्य कहने वाले की बुद्धि ठिकाने हो सकती है? यदि किसी प्रकार परिवर्तन को प्रकृति का स्वाभाविक धर्म मान भी लिया जाय, तो भी प्रकृति में एक ही प्रकार की यान्त्रिक गति (Mechanical movement) होनी चाहिए—या तो वह बनती ही जाय, या बिगड़ती ही जाय। परंतु ऐसा नहीं होता। सृष्टि का प्रारंभ करने वाली प्रकृति में तो उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय—ये Primordial matter तीन विरोधी धर्म पाए जाते हैं। मैं एक पत्थर फेंकता हूं। चूंकि उसे बाहर से गति मिली है, इसलिये वह चलता है, फिर ठहर जाता है। सृष्टि में उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय परस्पर-विरोधी गुण हैं, जो यही सिद्ध करते हैं कि प्रकृति के इन गुणों का कारण प्रकृति से बाहर है, उसका यह स्वभाव नहीं। यही भाव हरिदासीय कुसुमांजलि में इस प्रकार प्रदर्शित किया गया है— "क्षित्यादि सकर्तृकं कार्यत्वात् घटवत्। सकर्तृकत्वञ्च उपादानगोचरापरोक्षज्ञानचिकीर्षाकृतिमज्जन्यत्वम्।"

(ख) आयोजन-धृतिवाद (Teleological Argument)— विज्ञान से पता चलता है कि जहां संसार सादि और सांत है, वहाँ वर्तमान संसार में अखंड नियम तथा व्यवस्था (Law, order, design) चल रही है। ज्योतिष शास्त्र, भूगर्भ-शास्त्र रसायन-शास्त्र, जीवन-विद्या—जहाँ कहीं भी हम आँख उठाकर देखते हैं, हमें नियम तथा व्यवस्था ही दिखाई देते हैं। हमें बगीचेमें क्रमशः वृक्षों की पंक्ति लगाने में माली की ज़रूरत पड़ती है, तो क्या ब्रह्माण्ड* के उद्यान की व्यवस्था बिना माली

* यदि पृथ्वी की सूर्य से दूरी १०० संख्या से सूचित की जाय, तो अन्य ग्रहों की दूरी इस प्रकार होगी—Mercury (बुध) ३९; Venus (शुक्र) ७२; Earth (पृथ्वी) १००; Mars (मंगल) १५०; Jupiter (बृहस्पति) ५२०; Saturn (शनि) ९५०; Uranus (अरुण) १९२०; Neptune (वरुण) ३०००;—Seven Men of Science पृ० ३८; (मार्स और जुपिटर के बीच अन्य ग्रह भी हैं, इसलिये इनकी दूरी में चौगुने के लगभग अंतर पाया जाता है)

के हो रही है ? डॉ० फ्लेमिंग 'सेवन मेन आफ् साइन्स' में कहते हैं कि सूर्य के इर्दगिर्द जो आठ मुख्य ग्रह हैं, उन की सूर्य से दूरी एक दूसरे की अपेक्षा लग भग दुगनी के है। यह अनुपात बोड के नियम से प्रसिद्ध है। क्या इन ग्रहों की इस प्रकार नियमित और व्यवस्थित गति बिना किसी चेतन-शक्ति के हो रही है ? विकासवादी कहते हैं कि ये सब तो प्रकृति के नियम हैं। परंतु क्या नियम कभी नियन्ता के बिना रह सकते हैं ? विश्व की इसी धृति को वेद में—"स दाधार पृथिवीमुतद्याम्'–कहकर प्रकट किया है। कुसुमाञ्जलि में इसी अनुमान को इस प्रकार प्रकट किया है— "सर्गाद्यकालीनद्व्यणुकारम्भकपरमाणुद्वयसंयोगजनकं कर्म, चेतनप्रयत्नपूर्वकं, कर्मत्वात्, अस्मदादिशरीरक्रियावत्। ब्रह्माण्डादिपतनप्रतिबन्धकीभूतप्रयत्नवदधिष्ठितम् धृतिमत्वात् वियति विहङ्गमधृतकाष्ठवत्।"

प्रो० हक्सले 'क्रिटिक्स ऐंड ऐड्रेसेज़" † में लिखते हैं–"विकासवाद से संसार के नियमों तथा व्यवस्था को हल करने का प्रयत्न निरर्थक है। तुम जितना ही नियमों की महत्ता तथा गहनता का पता लगाते जाओगे, उतना ही आस्तिक कहेगा कि यह सब परमात्मा की महानता का प्रदर्शक हैं। संसार में अमुक-अमुक नियम है—यह कहकर नियन्ता परमात्मा का खंडन नहीं किया जा सकता।"

(ग) अदृष्ट नियामकत्ववाद (Moral Argument)— कार्य-कारण का नियम हमें बतलाता है कि अच्छे कर्म का अच्छा और बुरे का बुरा फल होना चाहिए। मनुष्य इस कर्म-फल का नियंता नहीं है. परन्तु वह नियमित

† "No doubt it is quite true that the doctrine of evolution is the most formidable opponent of all the commoner and coarser forms of Teleology...The teleolgical and the mechanical views of nature are not, however, of necessity, mutually exclusive. On the contrary, the more purely a mechanist the speculator is, the more firmly does he assume a primordial molecular arrangement, of which all the phenomena of the universe are the consequences; and the more completely is he thereby at the mercy of the teleologist, who can always defy him to disprove that this primordial molecular arrangement was not intended to evolve the phenomena of the universe." See, Critiqes and Addresses of professor Huxley, pages 305. 307,

अवश्य है। कर्म के जड़ वस्तु होने के कारण उसमें भी यह शक्ति नहीं हो सकती। जो इस अदृष्ट का नियामक है, वही ईश्वर है। इसी भाव को न्याय-दर्शन में लिखा है—"ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात्।" कुसुमांजलि में इसी पर निम्न अनुमान बनाया गया है-"अदृष्टं बुद्धिमच्चेतनकारणाधिष्ठितं, अचेतनत्वे सति कारणत्वात्, छेतृपुरुषाधिष्ठितवास्यादिवत्।"

ईसाई लोग जीवात्मा को उत्पन्न किया हुआ मानते हैं, इसलिये उन्होंने इस युक्ति को दूसरे रूप में रक्खा है। वे कहते हैं कि पशु-जगत् में मत्स्य-न्याय (Struggle for existance) दिखाई देता है; परंतु मनुष्य-जगत् में न्याय, प्रेम, दया तथा कर्तव्याकर्तव्य के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। मनुष्य की प्रकृति में 'यह करो और यह न करो' का भाव (Conscience) कहाँ से आया? ईसाईयों का कथन है कि इस भाव को हमारे अंदर परमात्मा ने पैदा किया!

(घ) निरतिशयवाद (Outological or A Priori Argument)—प्रत्येक मनुष्य के हृदय में सर्वज्ञता अनंतता, अनादित्व आदि के विचार वर्तमान हैं। प्रश्न यह है कि ये विचार कहाँ से आए, और किस सत्ता के विषय में ठीक हैं? हम पहले देख आए हैं कि संसार में एक ऐसी सत्ता है, जो इस सृष्टि का कारण है, चेतन है, ज्ञान-स्वरूप है, और जिसका कार्य ऐसा महान् है कि उसे यदि हम अनंत नहीं, तो सांत भी नहीं कह सकते। ऐसा ही युक्ति-युक्त भी प्रतीत होता है कि उसी सत्ता के विषय में इन विचारों को ठीक समझा जाय। प्लेटो, एन्सलम डेकार्टे आदि ने इसी युक्ति से परमात्मा को सिद्ध किया है। ये विचार मिथ्या नहीं कहे जा सकते; क्योंकि ये सदा और सब मनुष्यों में पाए जाते हैं। यदि ये विचार असत्य हैं, तो फिर मनुष्य की बुद्धि ही क्यों असत्य नहीं? इसी को योग-दर्शन में बहुत ही अच्छे प्रकार से "तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम्" इस सूत्र की व्याख्या करते हुए इस प्रकार लिखा है—"अस्ति काष्ठाप्राप्तिः सर्वज्ञबीजस्य सातिशयत्वात् परिमाणवत्। यत्र काष्ठाप्राप्तिः ज्ञानस्य स सर्वज्ञः।"

इसके अतिरिक्त इसलिये भी इस ज्ञान को भ्रमात्मक नहीं कह सकते कि जितना भ्रमात्मक ज्ञान होता है, उसका सारा हिस्सा अलग-अलग कहीं न कहीं हमने देखा होता है। स्वप्न में हम आदमी के सूँड़ लगी हुई देखते हैं, परंतु प्रत्यक्ष में हमने आदमी और सूँड़ को अलग-ही-अलग देखा है। जब हमें पूर्णता, सर्वज्ञता, अनादिता और अनंतता का ज्ञान उठता है, तब प्रश्न होता है कि यह ज्ञान कैसे हुआ? हमने इन गुणों को कहाँ देखा? अतएव मानना पड़ेगा कि इनका ज्ञान अन्य

भ्रमात्मक ज्ञानों के समान नहीं, प्रत्युत इनमें तथा उनमें बहुत भेद है।

(ङ) ज्ञानकारणवाद—यद्यपियह युक्ति A Priori Argument के अंदर ही समाविष्ट हो सकती है, तथापि भारतीय दर्शनों में इस युक्ति पर बहुत ज़ोर दिया है। इसलिये इसको अलग लेना ही उचित जान पड़ता है।

जब तक ज्ञान का देनेवाला कोई न हो, तब तक मनुष्य बोल तक नहीं सकता। सारा-का-सारा ज्ञान धारा रूप में कहीं से आता है। परीक्षणों के आधार पर ये बातें सिद्ध की गई हैं। इस विषय में अकबर तथा सीरिया के राजा असुर बेनीपाल के परीक्षणप्रसिद्ध हैं। बच्चों को पैदा होते ही, गूँगी दाइयों के साथ जंगलों में रक्खा गया। वे कुछ न बोल सकते थे, हाँ, बकरियाँ पास से गुज़रती थीं, इसलिये वे बकरी की-सी आवाज़ ज़रूर निकाल सकते थे। प्रो० मैक्समूलर भी इस बात को स्वीकार करते हैं। इसी को भिन्न-भिन्न दर्शनकारों ने बड़ी प्रबल युक्ति के रूप में दिया है। योग-दर्शन कहता है—"स सर्वेषामपि गुरुः कालेनान वच्छेदात्। वेदान्त का कथन है। "शास्त्र योनित्वात्।" वैशेषिक में लिखा है—"बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।"

(च) योगि-प्रत्यक्षवाद (Intuitional Argument)—जैसे मनुष्य की आँख, नाक आदि ज्ञानेन्द्रियाँ हैं, वैसे अंतःकरण (Intuition) भी एक इन्द्रिय है, जिससे मनुष्य उन सत्ताओं का अनुभव करता है, जिनका बाह्य इन्द्रियों से ज्ञान नहीं हो सकता। पूर्वीय तथा पश्चिमीय देशों में ऐसे-ऐसे संत, योगी, महात्मा हो चुके हैं, जिनका दिमाग़ बिलकुल ठीक है, जो हमसे हज़ार दर्जे ऊँचे हैं, और जो बतलाते हैं कि हमने उस सत्ता को 'अंतःप्रत्यक्ष किया है। क्या हम उनकी साक्षी का तिरस्कार कर सकते हैं? क्या हम साधारण वस्तुओं में भी नहीं देखते कि अनेक ऐसी वस्तुओं का हमें पता तक नहीं चलता, जिनका दूसरों को साक्षात अनुभव होता अथवा यंत्रादि द्वारा ज्ञान हो सकता है? कई लोगों को ख़ास-ख़ास तरह के रंग नहीं देख पड़ते। कईयों को कोई-कोई स्वाद नहीं मालूम होता तो क्या हम परमात्मा का ज्ञान न होने से उसके न होने पर विश्वास कर सकते हैं? नहीं। शक्तियों की सीमा को अब तक किसी ने नहीं बाँधा। संसार में विलक्षण तथा असीम शक्तियाँ मौजूद हैं, ऐसे महात्माओं की भी कमी नहीं, जो ब्रह्म के सन्मुख अपने को ऐसे खड़ा देखते हैं, जैसे हम अपने को किसी मूर्तिमान् पदार्थ के सामने। ठीक है, उसका आँख, नाक आदि इन्द्रियों से ज्ञान नहीं होता। परंतु हो सकता है, वह इन्द्रियों का विषय ही न हो। यदि

कोई आँख से सूँघना चाहे, और नाक से देखना चाहे, तो वह मूर्ख कहा जायगा। हम भी इन्हीं आँखों से, जिन का विषय मूर्त पदार्थ को देखना है, अमूर्त को देखना चाहते हैं, इस में हमारा ही दोष है। मनुष्य की उस शक्ति को, जिससे भगवान् का दर्शन किया जा सकता है, 'ऋतंभरा प्रज्ञा' का नाम दिया गया है। इस ऋतंभरा प्रज्ञा की सिद्धि योग-दर्शन में इस प्रकार की गई है—

"श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यां अन्यविषया विशेषार्थत्वात्।

साम्राज्य समस्या

(ले० श्रीकृष्णचन्द्र विद्यालंकार)

साम्राज्य शब्द के अर्थ से ज्ञात होता है कि सभी साम्राज्य कतिपय राज्यों के मिश्रण हैं। परन्तु वस्तुतः इन दो प्रकार के-ऐसे साम्राज्य जिन के सभी अंग सम्पूर्ण में भिन्न २ स्थिति रखते हुए अपनी पृथक् भी सत्ता रखते हैं और दूसरा ऐसा साम्राज्य जिस के अंगों में यह भाव नहीं है—साम्राज्यों में बड़ा भेद है। जापान ने जब तक जबर्दस्ती से फ़ारमोसा और कोरिया को छीन कर अपने में नहीं मिला लिया तब तक वह साम्राज्य शब्द के सच्चे अर्थों में एक साम्राज्य था। परन्तु इन देशों को जबर्दस्ती दबाने के कारण वह भी एक मिश्रित साम्राज्य (Composite empire) बन गया है।

परन्तु ऐसे शुद्ध रूप के साम्राज्य का होना बहुत ही कठिन है। अमेरिका ऐसे सच्चे साम्राज्य का एक उदाहरण कहा जा सकता है यद्यपि वह एकसत्तात्मक राजा से शासित न होकर जनता द्वारा निर्वाचित राष्ट्रपति द्वारा शासित होता है। राजा से शासित न होने के कारण यदि उसे साम्राज्य न कह सकें तो भी अगर किसी साम्राज्य के राष्ट्र समूह (Imperial aggregate) ने राजनीतिक इकाई से मानसिक इकाई (psychoelogical unit) के रूप में बदलना हो तो उसे अमेरिका जैसी ही पद्धति स्वीकार करनी पड़ेगी जिस से उस का प्रत्येक अवयव स्थानीय आत्मनिर्भरता और पृथक् स्वतन्त्रता का उपभोग कर सके और ऐसा होते हुए भी वह एक अभिन्न समूह का अंग रह सके। परन्तु यह वहीं हो सकता है जहाँ कि उस के सब अवयव सजातीय हों जैसे ग्रेट ब्रिटेन और उस के उपनिवेश।

ऐसा सजातीय (Homogenious) साम्राज्य बनाने का संसार के इतिहास में बहुत प्रयत्न किया गया है। जर्मनी का जर्मन साम्राज्य (Pan Germanic empire) की स्थापना का विचार और मुसलमानों का मुस्लिम साम्राज्य

बनाने का स्वप्न इसी के उदाहरण हैं। परन्तु वह अपने प्रयत्न में सफल नहीं हो सके क्योंकि वे सजातीय साम्राज्य को बनाते हुवे विजातीय राष्ट्रों को भी हड़पने के लोभ को संवरण न कर सके। रूस ने मंगोलियन प्रजा को अपने आधीन किया, जर्मनी ने विजातीय राष्ट्रों और प्रान्तों को अपने वश में करना चाहा और ख़लीफ़ा ने गैर मुस्लिम प्रजा पर भी अपना प्रभुत्व कायम करना चाहा। यदि ऐसी महत्वाकांक्षाएँ न होतीं तो संसार का वर्तमान संगठन, जाति और सभ्यता के आधार पर बनता। रूस केवल बलकान न लेता उसे रूमानिया, ग्रीस, अलबानिया को भी मिलाना पड़ता। साम्राज्य निर्माण में एक वास्तविक समस्या यह है कि विजातीय साम्राज्य (Hetrogenious empire), जिस के अवयव संगठन, भाषा और सभ्यता में परस्पर भिन्न २ हैं, की कृत्रिम राजनीतिक एकता को सच्ची मानसिक एकता में किस तरह परिणत किया जाय?

जिन अवस्थाओं में जिस समस्या का मुकाबला आज के बड़े २ विजातीय साम्राज्य (Hetrogenious empires) कर रहे हैं, उन्हीं अवस्थाओं में और उसी समस्या को हल करने का केवल एकमात्र प्रयत्न हम प्राचीन इतिहास में पाते हैं। पाँच राष्ट्रों को मिला कर चीन ने भी एक साम्राज्य संगठित किया था, लेकिन उस के सब अवयव जाति में मंगोलियन ही थे और इस लिये इन राष्ट्रों को मिलाने में उसे बहुत कठिनता नहीं हुई। परन्तु साम्राज्यप्रिय रोम ने उस समस्या का मुकाबला किया था जिसका मुकाबला आज के साम्राज्यवादी देशों को करना पड़ रहा है और उसने उनमें से कई समस्याओं को सफलतापूर्वक सुलझा भी लिया था। रोम साम्राज्य कई सदियों तक दृढ़ और स्थिर रहा, यद्यपि उसे इस में कई आपत्तियों का सामना करना पड़ा, परन्तु उस ने उन सब आपत्तियों को झेल लिया। रोम का पूर्वीय और पश्चिमीय साम्राज्यों में विभक्त हो जाना उसकी एक असफलता थी। रोम का अन्त आभ्यन्तरिक फूट के कारण नहीं हुआ, परन्तु जीवन केन्द्र के शनैः २ नष्ट हो जाने से हुवा और वह भी तब, जब कि बर्बरजातियों ने इस की दृढ़ एकता को नष्ट कर दिया था।

रोम ने अपना शासन सैनिकविजय और सैनिक उपनिवेशों को स्थापित करके किया था। एक बार विजय करने के बाद रोम किसी देश को कृत्रिम राजनीतिक एकता से बाँध कर ही सन्तुष्ट नहीं रहा और न ही अपने योग्य और सुसंगठित शासन पर उसने पूर्ण विश्वास किया, जो आर्थिक तथा शासन प्रबन्ध की दृष्टि से लाभकर था। अन्य देशों ने उस के साम्राज्य को इसी लिये स्वीकृत किया

क्योंकि उस में एक राजनीतिक बुद्धि (Political instinct) थी, जिससे सब देश संतुष्ट हो गये। यह निश्चित है कि अगर रोम उन देशों में कुछ काल तक और रहता, तो साम्राज्य बहुत पहले ही टूट जा ा, क्योंकि रोमीय शासन के नीचे रह कर वे भी उसी की तरह एक पृथक राष्ट्रीयता को अनुभव करने लगते और एक स्वतन्त्र राष्ट्र की तरह अपने पृथक् योग्य शासन की प्रबल अभिलाषा उन के दिल में पैदा हो जाती। रोम की पृथक् राष्ट्रीयता के भाव ने ही उसे कई स्थानों से दूर कर दिया। रोम को जो सफलता मिली, वह उस के क्रूर भौतिक बल की योग्यता से नहीं, परंतु उस के शान्तिपूर्ण दबाव से मिली। संसार में पहली बार रोम ने अपनी एक प्रतिस्पर्धी सभ्यता को, जो उस से कई अंशों में अधिक ऊँची थी, अपनी सभ्यता का एक अंश बना कर एक ग्रीकरोमन सभ्यता का निर्माण किया। उस ने ग्रीकभाषा को पूर्व में फैलने तथा सुरक्षित रहने देकर अन्य सब जगह इस सभ्यता को लैटिनभाषा और लैटिनशिक्षा द्वारा फैलाया और गाल तथा अन्य विजित प्रांतों की नीची और प्रारम्भिक सभ्यता को जीतने में सफल हुवा। रोम भी पृथक्त्व की प्रवृत्ति को उखाड़ने में समर्थ न होता, इसलिये उसने अपनी लातीनी हुई प्रजा (Latinised subjects) को न केवल उच्चतम सैनिक और शासक पदों पर ही रक्खा, परन्तु साम्राज्य के बड़े २ पदों पर भी नियुक्त किया। यहाँ तक कि आगस्टस के बाद एक सदी भी गुज़रने न पाई थी कि पहले एक इटैलियन, गाल और उसके बाद आइबेरियन स्पेनिअर्ड ने सम्राट् पद धारण किया। इस के बाद उस ने अपनी सब प्रजाओं—एशियन, यूरोपियन और अफ्रीकन प्रजाओं को रोम की नागरिकता का अधिकार देकर भेद भाव के सब दर्जे उखाड़ने शुरु किये।

इसका परिणाम यह हुआ कि रोम का सम्पूर्ण साम्राज्य केवल राजनीतिक दृष्टि से ही नहीं किन्तुमानसिक रूपमें भीएक हो गया। रोम केवल अपने सुशासन तथा शान्तिस्थापना के कारण ही उच्च नहीं हो गया, परन्तु उसके समाज गौरव और अभिलाषाओं ने भी उसे सम्पूर्ण साम्राज्य में सब से ऊँचा कर दिया। सभ्यता के सम्बन्ध में सब प्रान्तों को सभ्यता सिखाने वाले रोम ने अपने प्रति आकृष्ट कर लिया। इसी लिये जो प्रान्तीय शासक या सेनाध्यक्ष स्वार्थ-वश किसी प्रान्तीय राज्य को चलाने का प्रयत्न करता था, सफल नहीं हो सकता था क्योंकि उसका कोई आधार न था, न कोई राष्ट्रीय भाव उसका साथ देते थे और न प्रजा को रोम से संबन्ध छोड़कर उस शासक की प्रजा बनने से कोई भौतिक या अन्य प्रकार

का लाभ होता था। रोम अन्य राष्ट्रों की पृथक् जीवित सभ्यताओं का शनैः शनैः अपहरण करके शासन करता था, और इस तरह कुछ काल में वह उन की जीवनी शक्ति ले लेता था जिससे उन में विरोध करने का सामर्थ्य भी नहीं रहा। रोम की यह नीति बहुत समय तक रही और यहाँ तक कि वह उन प्रान्तों से, जब उसे स्वयं आवश्यकता हुई, शक्तिशाली आदमी न ले सका जिनकी जीवनी शक्ति वह अपनी सभ्यता देकर छीन चुका था। इस के लिये उसे बर्बर जातियों का मुँह ताकना पड़ा। जब रोम साम्राज्य टुकड़े टुकड़े हो गया तो इन बर्बर राष्ट्रों ने ही उस का स्थान लिया जो उस की संरक्षा में रह कर बहुत कुछ सीख चुके थे

रोम के आदर्श पर यूरोप में बार २ साम्राज्य विस्तार के कई प्रयत्न किये गये हैं। रोम का यह उदाहरण केवल शार्लेमान के पवित्र रोमन साम्राज्य, नैपोलियन के महाप्रयत्न और जर्मनी के संसार साम्राज्य के स्वप्न का ही आधार नहीं रहा, परन्तु सभी वर्तमान साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने इस का अनुकरण करने का प्रयत्न किया है, परन्तु प्रतिष्ठा के साथ रोमन सफलता को प्राप्त करने का प्रत्येक प्रयत्न असफल हुआ है। रोम ने जिस पद्धति का अनुकरण किया था, उस पर चलते हुवे वर्तमान राष्ट्र पारस्परिक संघर्ष से टूट गये हैं। यह ऐसा ही हुवा है मानो प्रकृति ने कहा कि परीक्षण एक बार पूर्ण सफल हो चुका है, और एक बार ही काफी है। अब मैंने नवीन परिस्थितियाँ बनादी हैं, अब तुम भी नये साधन बनाओ या कम से कम पुराने साधनों में कुछ सुधार करो।'

वर्तमान यूरोपीय राष्ट्रों ने अपने साम्राज्यों को केवल रोमन पद्धति पर सैनिक विजय और उपनिवेश स्थापना द्वारा ही नहीं बढ़ाया, किंतु कुछ अन्य मार्गों का भी अवलम्बन किया है। वर्तमान उपनिवेश केवल शुद्ध रोमन पद्धति के उपनिवेश नहीं हैं, परन्तु कार्थेजियन और रोमन दोनों की मिश्रित पद्धति पर स्थापित हैं, वे केवल शासन सम्बन्धी या सैनिक उपनिवेश ही नहीं हैं, परन्तु वे अधिकतः व्यापारिक हैं।

जिस समस्या को रोम ने सुलझाया था, आज के राष्ट्र उसे नहीं सुलझा सके। आजके साम्राज्यवादी राष्ट्र विजित राष्ट्रों की सभ्यता और राष्ट्रीयता को नष्ट नहीं कर सके। इन सब राष्ट्रों ने अपने झण्डे के साथ अपनी सभ्यता भी पहराने का प्रयत्न किया है। पहले तो केवल विजेता की स्वाभाविक बुद्धि और राजनीतिकस्थिरताके लिये यह प्रयत्न हुआ और पीछे अपने से नीची जातियों में सभ्यता बढ़ाने के इरादे से। यह प्रयत्न सभी जगह सफल

हुआ हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। आयर्लैंड में इङ्गलैंड ने अपनी सभ्यता फैलाने का निष्ठुरता और उत्साह से पूर्ण प्रयत्न किया, उनकी भाषा, उनके जातीय चिन्ह सभी नष्ट कर दिये गये। आयरिश जाति ने भी अपनेपन की रक्षा करने के लिये बहुत प्रयत्न किया। आयरिश भाषा और रीति रिवाज नष्ट होने पर भी आयर्लैंड ने अंग्रेज बनने से साफ इन्कार कर दिया। दबाव के कुछ हटते ही आयरिश भाषा, आयरिश संस्कृति तथा आयरिश सभ्यता को पुनर्जीवित करने का बड़ा भारी आन्दोलन किया गया। जर्मनी भी पोलैंड को जर्मन न बना सका, यहाँ तक कि जर्मन भाषा बोलने वाले अलसेशियन्स को भी वह अपने में नहीं मिला सका। इसी तरह अन्य जातियों ने भी अपनी सभ्यता फैलाने के बहुत प्रयत्न किये, परन्तु कोई भी सफल नहीं हुआ। अपनी सभ्यता फैलाने के लिये बहुत बार बलप्रयोग किया गया है, परन्तु इससे एक जातीय भाव पैदा हो जाता है और साम्राज्यवादी राष्ट्र के प्रति घृणा भी हो जाती है जो साम्राज्य के लिये भयावह हैं। यूरोप में सभ्यताओं के मूलतत्व समान हैं अगर वहाँ भी भिन्न भिन्न सभ्यताओं को नष्ट कर एक सभ्यता बनाना असम्भव है तो उन साम्राज्यों में तो यह प्रश्न करना ही कठिन है जिन का सम्बन्ध एशियाटिक देशों से है और जहाँ की जातियाँ कई सदियों तक सुसंगठित राष्ट्रीय सभ्यता में रह चुकी हैं। यदि वास्तव में संस्कृति विषयक (Cultural) एकता स्थापित करनी है तो उसके लिये अन्य उपाय ढूँढने पड़ेंगे।

इस समय सभ्यताओं के एकीकरण के उस तरीके को निस्संदेह छोड़ा जा रहा है परन्तु साथ ही संसार वर्तमान अवस्थाओं में इस की ओर बढ़ भी जरूर रहा है। वर्तमान संसार एक ऐसी लचीली सभ्यता की खोज में है जिसे सारी मानव-जाति स्वीकृत कर ले; जिस में सभी प्राचीन और अर्वाचीन सभ्यताएँ सम्मिलित हों और प्रत्येक सभ्यता उस का एक आवश्यक भाग हो। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये निर्बल और प्रबल सभ्यताओं में एक महान् संघर्ष होगा, परन्तु इस में सफलता सैनिक विजयों और राजनैतिक दबाव से नहीं हो सकती। आज की नवीन परिस्थितियों में केवल वही साम्राज्यवादी राष्ट्र सफल हो सकते हैं, जो इस नवीन सत्य को, कि संसार फिर प्राचीनता की ओर जा रहा है, समझ लें। परिवर्तन और नवीन सत्य की महत्ता स्वीकृत की जाने लगी है और सब सभ्यताओं को नष्ट करने के घमण्ड भरे दावे नष्ट हो रहे हैं। अब सर्विया और बेलजियम— जैसे छोटे राष्ट्रों की भी संस्कृति-विषयक इकाई (Cultural unit) मानी जाने लगी है। अब लोग एशिया की सभ्यताओं

की भी कद्र करने लगी हैं। उच्चजातियों के उच्चता और नीचता के सिद्धान्त को भी गहरा धक्का लगा है, इस समय संसार में नवीन व्यवस्था के बीज बोए जा रहे हैं। सभ्यताओं का नवीन मिश्रण वहाँ स्पष्टतया दीख जाता है, जहां यूरोप और एशिया परस्पर मिलते रहे हैं। उत्तरी अफ्रीका में फ्रेंच और भारत में इंगलिश सभ्यताएँ, फ्रेञ्च और अंग्रेजी न होकर एशिया के सामने केवल यूरोपियन ही मालूम होती हैं। यहाँ साम्राज्य के राष्ट्र नहीं मिल रहे, परन्तु एक महाद्वीप दूसरे महाद्वीप से मिल रहा है। एशिया इस समय यूरोपियन सभ्यता से विज्ञान, अन्वेषण की उत्सुकता, शिक्षा प्रेम, विचार स्वातन्त्र्य समानता आदि बहुत सी बातें सीख रहा है। यह सब बातें सीखता हुआ भी एशिया अपनी सभ्यता के मूल तत्व, जो मानव-जाति के लिये बहुत ही महत्वपूर्ण हैं को नहीं छोड़ रहा। यह सब सैनिक विजय और पारस्परिक विनिमय नहीं हो रहा परन्तु पारस्परिक सहयोग, समझौते और एक दूसरे को अच्छी तरह समझने से ही परस्पर सभ्यताएँ मिल रही हैं।

अब तक भी वह दकियानूसी ख़्याल कुछ लोगों के दिलों से दूर नहीं हुवा। अब तक भी ऐसे व्यक्ति विद्यमान् हैं जो अब भी सारे भारत को ईसाई बना लेने और सब देशी भाषाओं को नष्ट करके अंग्रेजी के प्रचलित होने के स्वप्न देखते रहते हैं। परन्तु ऐसे व्यक्ति वही हैं जो संसार की वर्तमान प्रगति को समझ नहीं सकते हैं। ईसाईमत का वहीं प्रचार हुआ है, जहाँ क्रिश्चियैनिटी अपनी एक या दो विशेषताओं के कारण साधारण जनता को कुछ लाभ पहुंचा सकी है या जहाँ हिन्दुओं ने छुआछूत के कारण दलित जातियों को दूसरे धर्म में जाने पर बाधित कर दिया है। परन्तु जहाँ यह धर्म दलित जातियों को उन्नत नहीं कर सका, वहाँ ईसाई मत कुछ भी नहीं फैला। आजकल तो भारत में पुनः जागृति के कारण क्रिश्चियैनिटी के फैलने का अवसर और भी कम होगया है। अब भारत में स्वतन्त्रता और समानता के भाव फैल रहे हैं, यह परिवर्तन, यह नवीन जागृति एक उदार और विस्तीर्ण एशियन समाज के बनने की प्रारम्भिक तैयारी है। सभी जगह इस बात के चिह्न हैं, सभी शक्तियाँ ऐसा कर रही हैं। अब न फ्राँस और न इंग्लैंड यह शक्ति रखते हैं कि अफ्रीका से इस्लामिक, और भारतवर्ष से हिन्दूसभ्यता को नष्ट कर सकें।

प्राचीन साम्राज्यवाद का अपनी सभ्यता फैलाने का सिद्धान्त नष्ट हो रहा है क्योंकि वह अक्रियात्मक है, जैसा कि पहले दिखाया जा चुका है। रोम की पद्धति इस समस्या का कुछ न कुछ हल ज़रूर है, परन्तु उस

अवस्थाओं में महान् परिवर्तन हो जाने से वह भी उपयुक्त नहीं है, अब तो नवीन आदर्श और नवीन पद्धति ही चाहिये। वर्तमान संसार की राजनीतिक और सामाजिक अवस्थाओं को देखते हुवे आजकल साम्राज्य का एक रूप तैयार किया जा सकता है और वह है संघात्मक साम्राज्य (Federal empire) का रूप। अब केवल एक समस्या रह जाती है कि क्या भिन्न २ जातियों और सभ्यताओं का बना हुवा एक संघात्मक साम्राज्य बन सकता है ? अगर यह मान लिया जाय तो क्या यह कृत्रिम संगठन, स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक इकाई बन सकता है ? अगर इस समस्या का हल हो जाय तो एक स्थिर साम्राज्य बन सकता है।

हमारे ख़याल में निकट भविष्य में इस समस्या का हल नहीं हो सकता। हाँ, यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि संसार इसकी ओर प्रगति कर रहा है। अन्तर्राष्ट्रीय संघ आदि इसी के चिह्न हैं। एशिया और यूरोप का परस्पर मिश्रण इसके लिये अत्यन्त आशाजनक है। यूरोप के विचार स्वातंन्त्र्य, समानता, लोकमत आदि गुण और एशियन सभ्यता के प्रेम, निस्पृहता और साम्राज्य के बढ़ाने के प्रति विशेष अलिप्सा आदि गुणों से मिल कर जो एक सभ्यता बनेगी, उसी को नींव पर एक विस्तृत और सच्चा साम्राज्य बनेगा, जिस में सब राष्ट्र उस के अङ्ग रहते हुवे भी अपनी भिन्न भिन्न सत्ता रख सकेंगे।[१]

१ श्री अरविन्द घोष के एक लख के आधारपर.

मायावी

(श्री धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

जित देखों तित तेरी माया ॥

आनन्द घन ! तूही वन-उपवन, निखिल भुवन में छाया,
पत्ता है सरसाया, फूल फूल हरसाया ।
जल-तल की कल कल में तेरा कलरव मधुर समाया,
भूतल पर पद पद पर तेरे पदचिन्हों को पाया ।
ऊपर देखूं तो सिर पर है तेरी शीतल छाया,
इत उत देखूं तो चहुंदिस ही आनन्द तैं बरसाया ।
मायावी ! यह मायामय सब तेरा खेल रचाया,
इस नाटक के पट के पीछे तुझ को ही नट पाया ।
सूरज तारे नयन तुम्हारे, सकल विश्व है काया,
चहुं दिस मैंने विश्वरूप में तेरा दर्शन पाया ।

विषमता का पाठ

[ले० श्रीयुत गुप्त विद्यालंकार]

(१)

छोटा बालक पवित्रता और भोलेपन की ठोस प्रतिमा होता है। उसका हृदय दर्पण की अपेक्षा भी अधिक निर्मल होता है; जो व्यक्ति हंस हंस कर दो एक बार भी उस के साथ खेल ले, उसे वह 'अपना' समझने लगता है। उसे संसार भर का कोई भी व्यक्ति अगम्य या बड़ा नहीं जान पड़ता। महेन्द्र भी इसी श्रेणी का बालक था। वह एक पनिहारिन का लड़का है तो क्या हुवा; वह अपने को किसी साम्राट् से कम नहीं समझता। वह अपनी मां पर मनमाना हुकम चलाया करता है; बाकी दुनिया के लोग क्या उस को माता से भी अधिक बड़े हैं। आज बाबू लोगों के घर जाते समय माता महेन्द्र को अपने साथ नहीं लेगई, आज वह आज़ाद होकर जहां चाहे घूमफिर सकता है।

अपनी छोटी सी पतङ्ग हाथ में उठा कर महेन्द्र धीरे धीरे सड़क पर चला जा रहा था कि उस की नज़र मैदान की हरी हरी घास पर बैठे हुए कुछ बालकों पर पड़ी। महेन्द्र का ध्यान सड़क पर आने जाने वाले लोगों पर से हट कर पूरी तरह उन लड़कों की ओर आकृष्ट होगया। वह स्वाभाविक प्रसन्नता से भर कर उन बालकों के पास पहुंचा। वे बालक भी उस की अपनी उमर के हैं,—महेन्द्र के लिये यही परिचय पर्याप्त था, वह उनके पास खड़ा होकर मुस्कराने लगा। ये बालक अलाहाबाद के बड़े २ रईसों के बालक हैं; आज यहां रविवार का मज़ा लेने आए हैं—यह बात उस की कल्पना में भी न आ सकती थी। महेन्द्र ने देखा कि बालक कुछ खा रहे हैं; वे क्या खा रहे हैं, इस बात का उसे ज्ञान न हो सका, उन बढ़िया २ मिठाइयों को उस ने कभी देखा तक न था। सहसा जलेबी देख कर उसे भक्ष्य पदार्थ की मधुरता का ध्यान हो आया, उस की माता कई बार बाबू लोगों के घर से पुरानी जलेबियां लाकर उसे खिला चुकी थी।

महेन्द्र के समदर्शी दिमाग में 'अधिकार' शब्द की सत्ता ही नहीं थी। जलेबी को देखते ही उस की इच्छा उसे खाने को हुई, इसी आधार पर वह हिस्सा बँटाने के लिये पंक्ति में जा बैठा। मिठाई खाने वाले बालक कौतुहल से उस की ओर देखने लगे। परन्तु कोई भी महेन्द्र से कुछ न बोला। वे अपने माता पिता की देखा देखी घर के नौकरों की सन्तानों को अपनी अपेक्षा बहुत छोटा समझते थे, परन्तु महेन्द्र उन्हें उतना मैला न जान पड़ा,

शायद इसी से वे निर्धारित न कर सके कि उस के साथ कैसा व्यवहार किया जाय।

इसी समय बालकों के एक नौकर की नज़र महेन्द्र पर पड़ी। वह क्रोध से झपट कर महेन्द्र के पास पहुंचा, और ज़ोर से बोला "यहाँ से उठ जाओ!" महेन्द्र को नौकर की इस आज्ञा का मतलब बिलकुल समझ नहीं आया। जब उस के समान दूसरे बालक मिठाई खारहे हैं तब उसे इस प्रकार क्यों उठाया जा रहा है। महेन्द्र उठा नहीं, बल्कि बालकोचित रोष के साथ नौकर की ओर देखने लगा। नौकर को अपना रोब दिखाने का अच्छा मौका मिला, उस ने महेन्द्र का हाथ पकड़ कर एक झटका दिया। बेचारा महेन्द्र दूर जा पड़ा, उसके कन्धे और टांगों पर हलकी चोट आगई। मिठाई के बदले अचानक यह अपमानजनक व्यथा पाकर बालक महेन्द्र दर्द से चिल्ला उठा। कुछ देर तक इसी प्रकार रोते रहने के बाद वह वहां से उठ कर सिसकियां भरता हुआ अपने घर की ओर चला। बालक के इस रुदन में दर्द की अपेक्षा क्रोध का भाव अधिक था। महेन्द्र रोता हुआ अपने घर की ओर चला जा रहा था, वह समझता था कि अब वह माता के न्यायालय में आकर अपने इस अपमान की नालिश करेगा, तब उस का अपराधी अवश्य दण्डित होगा।

मुंह ढांप कर रोते हुए धीरे धीरे चल कर महेन्द्र सड़क पर आ पहुँचा, उसी समय बाबू लोगों के यहाँ पानी भर कर उसकी माता अपने घर की ओर वापिस आ रही थी। महेन्द्र को सड़क पर अकेला रोता हुआ देख कर वह सन्न सी रह गई, मानो किसी ने अचानक चपेट मार दी हो। वह लपक कर महेन्द्र के पास पहुँची। उस के सिर पर प्रेम से हाथ रख कर उस निस्सहाया ने पूछा—"बेटा, रोता क्यों है?" महेन्द्र और भी अधिक ज़ोर से रोने लगा, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

माता का हृदय कांप गया; उसने महेन्द्र को उठा कर छाती से लगा लिया, फिर अपने आंचल से उस के गरम गरम आंसू पोंछते हुए उसने वही प्रश्न किया। अपने राज सिंहासन पर सवार होकर महेन्द्र का आत्माभिमान जागृत हो उठा। उस ने मां की गोद में बैठे २ अटक अटक कर अपनी सारी कहानी सुनादी। उसे पूर्ण भरोसा था कि माता उस के अपमानकर्ता को पूरा दण्ड देगी। परन्तु जब उस की माता सरोष आंखों से दूर बैठी हुई उस बालक मण्डली की ओर देखते हुए केवल इतना ही कह कर कि "बेटा, इन लोगों के पास मत जाया करो", अपने घर की ओर चल दी तब महेन्द्र का मुख [illegible] नितान्त उदास हो उठा; मां की छाती में मुंह देकर वह फिर से रोने लगा। [illegible] सारे

वह अपनी माता सेभी रुष्ट होगया। वह बेचारा क्या जानता था कि उस की माता कितनी असमर्थ है।

घर पहुंच कर माता ने अपने प्राणाधिक महेन्द्र को बहुत मनाने का यत्न किया परन्तु वह प्रसन्न नहीं हुआ। वह सारा दिन रूठा रहा। उस की माता किसी के सन्मुख उस का अपमान सह सकती है, यह बात उसे आज पहली बार ही अनुभव हुई। माता महेन्द्र को बहुत फुसलाती रही, मनाती रही, परन्तु बालक महेन्द्र को इस बात का ज्ञान क्योंकर हो सकता था कि साधारण लोगों के घर पानी भरने वाली उस की अभागिनी विधवा माता किस प्रकार बड़े धनियों के बालकों की भर्त्सना कर सकती है।

(२)

छोटी जमातों के लड़के स्कूल के हैड मास्टर से उतना नहीं डरते जितना कि वह अपने गणित के मास्टर से डरते हैं। अगर कहीं किस्मत से गणित का मास्टर कोई पका हुआ पुराना खुर्राट हो तो कहना ही क्या है, लड़के उस से अधिक भयंकरता की कल्पना ही नहीं कर सकते। अगर लड़कों से कहा जाय कि तुम 'भय' की तस्वीर खींचो तो शायद वे सब के सब अपने उस बूढ़े मास्टर का चित्र बनाने का यत्न ही करने लगेंगे। अलाहाबाद के सरकारी हाई स्कूल में छोटी जमातों के गणित के शिक्षक एक मौलवी महाशय थे। परन्तु सौभाग्य से वह उतने भयंकर नहीं थे कि उन्हें देख कर लड़के समझ में आया हुआ सवाल भी भूल जायें। फिर भी लड़कों पर उनका बहुत रोब था, लड़के उन्हें ईश्वर के समान न्यायकारी और संसार का सब से बड़ा गणितज्ञ समझते थे।

महेन्द्र की माता ने महेन्द्र को इसी सरकारी स्कूल में भरती करा दिया था। वह प्रतिभाशाली बालक था, अतः वज़ीफा मिलते देर न लगी। अपनी जमात में वह प्रायः पहले या दूसरे नम्बर पर रहता था, गणित के सवाल हल करने में तो उसे वह मज़ा आता था जो मज़ा बालकों को कहानियां सुनने में आता है। पढ़ाई में अच्छा होने के कारण गरीब होने पर भी अध्यापक उस से अच्छा सलूक करते थे। खास कर मौलवी साहिब तो उस से बहुत प्रेम करते थे। इन दिनों महेन्द्र तीसरी जमात में पढ़ता था।

गरमियों के दिन थे और प्रातः काल का समय। मौलवी साहब स्कूल के आंगन में लगे हुए एक वृक्ष के नीचे बैठ कर तीसरी जमात की गणित की परीक्षा ले रहे थे। वह बहुत दिनों से इस परीक्षा के लिए लड़कों को तैयार कर रहे थे। उन्होंने परीक्षा में प्रथम, द्वितीय और तृतीय निकलने वाले विद्यार्थियों के लिये इनाम भी रक्खे हुए थे।

एक दूसरे के पीछे कतार में बैठे

हुए लड़के बड़े ध्यान से मौलवी साहब का दिया हुआ दूसरा सवाल निकाल रहे थे; सहसा महेन्द्र पीछे की ओर मुंह कर करके ज़ोर से बोल उठा—"नकल मत करो!" इस के दूसरे ही क्षण महेन्द्र के पीछे बैठे हुए विद्यार्थी ने महेन्द्र के सिर पर अपनी सलेट दे मारी; इस विद्यार्थी का नाम 'राजबलि' था। महेन्द्र के सिर से खून टपकने लगा, परन्तु वह चिल्ला कर रो नहीं उठा। एक बार राज बलि के क्रोध पूर्ण मुख की ओर देख कर वह न्यायाभिलाषिणी आंखों से मास्टर साहब की ओर देखने लगा। उस की दृष्टि में मास्टर साहब सर्व शक्तिमान् थे, उन की उपस्थिति में राजबलि का यह कार्य उसी के लिये बुरा परिणाम पैदा करने वाला था। मास्टर साहब कुछ दूरी पर बैठे हुए थे, वह शीघ्रता से रूल हाथ में उठा कर महेन्द्र के पास पहुंचे। परन्तु सहसा राजबली की ओर देखते ही उनका हाथ एकदम रुक गया। वह बड़ी गुस्ताखी के साथ उन की ओर घूर रहा था। मास्टर साहब उसे छूने की भी हिम्मत न कर सके; उन की क्रोध भरी आंखें नीचे की ओर झुक गई। वह बहुत अधिक दुखित होकर अपने स्थान पर आकर बैठ गए। विद्यार्थियों की दृष्टि में ईश्वर के समान न्यायकारी मास्टर भी आज इतने बड़े अन्याय पर चुप क्यों बैठे रहे; आखिर कारण क्या था, कारण यही था कि राज बलि एक बहुत बड़े ताल्लुकेदार का सुपुत्र था, उसे घर से स्कूल तक छोड़ने के लिए मोटर आया करती थी, उसके पिता से बड़े २ अफसर ख़ौफ खाया करते थे; ३० रुपया मासिक वेतन पाने वाले मास्टर साहब किस हिम्मत पर राजबलि से कुछ कह सकते थे।

महेन्द्र अब तक चुप था, परन्तु जब उस ने देखा कि मास्टर साहब ने इतने सफेद अन्याय पर भी राजबलि से कुछ नहीं कहा, तब वह इस प्रकार रो उठा जिस प्रकार कि मोम का एक बड़ा ढेला एक दम तीक्ष्ण ताप पाकर पिघल उठे। वह हिचकियां भर भर कर चीखती हुई आवाज़ में रोने लगा। बूढ़े मौलवी साहब भी अपनी असमर्थता पर अत्यन्त लज्जित थे, वह महेन्द्र के पास आकर बैठ गये और उसे पुचकार २ कर आश्वासन देने लगे। मास्टर साहब के प्रेम भरे शब्दों के प्रभाव से महेन्द्र चुप तो अवश्य होगया, परन्तु मौलवी साहबका यह प्रेम उस की उन करुणापूर्ण सिसकियों को बन्द न कर सका जो कि उस के दिल की सब से निचली तह को फाड़ कर ज़बरदस्ती ऊपर आरही थीं।

महेन्द्र आज फिर इस लायक न हो सका कि वह परीक्षा में दुबारा शामिल होसके।

(३)

बालक महेन्द्र आज महेन्द्र से 'मुख्ता-

सिंह' बन चुका है। बचपन में ही इस संसार सागर की बड़ी बड़ी थपेड़ों ने उसे कुछ से कुछ बना दिया है। अब वह एक साधारण अपठित गरीब आदमी से बढ़ कर कुछ नहीं है। वह आज समझ चुका है कि जिस समाज में वह रहता है उस में उस की कोई पूछ नहीं है। इस समाज में 'बड़े आदमी' नाम से जो लोग शामिल हैं, महेन्द्र को उनके आगे सिर झुकाना चाहिये, उनकी जूतियां साफ करनी चाहियें, उनकी प्रशंसा के गीत गाने चाहिये; तभी जाकर वह उन्नति कर सकता है।

महेन्द्र की अभागिनी माता की मृत्यु हो चुकी है, महेन्द्र अपने स्कूल में पांच श्रेणियों से अधिक नहीं पढ़ सका था। अचानक माता की मृत्यु होजाने से वह स्कूल छोड़ने को बाधित होगया था।

आज २० बरस की उमर में बड़े यत्न के बाद अपने मजबूत शरीर और ५ बरस तक स्कूल में शिक्षा प्राप्त करने के आधार पर वह एक जिले की अदालत में अर्दली बन सका है। महेन्द्र आज अदालत का अर्दली है। वह अदालत के सभी कर्मचारियों को झुक-झुक कर सलाम करता है, उनकी सभी आज्ञाओं का बिना विरोध पालन करता है।

अदालत के दूसरे चपरासी महेन्द्र से चिड़ते हैं क्योंकि महेन्द्र उन में पूरी तरह घुल नहीं गया है क्योंकि वह गरीब किसानों को धमका कर, डरा कर उन से रुपया लूटना नहीं सीखा है। अब सायंकाल को दिन भर की छोटी मोटी लूट खसोट के बाद अदालत के सायन में जमा होकर सब चपरासी अपनी दिन भर की कारस्तानियाँ एक दूसरे को सुनाते थे, महेन्द्र उस समय सीधा अपने घर की राह लेता था। महेन्द्र स्वयं गरीब था, वह दूसरे गरीबों के दुःख को समझता था अतः वह उन पर किसी प्रकार का जुल्म करने की हिम्मत नहीं करता था। दूसरे चपरासी तथा अदालत के छोटे-मोटे लेखकों की आंख में महेन्द्र का यह स्वभाव खटका करता था वे उसे तङ्ग करने की कोशिश करते थे। परन्तु महेन्द्र जैसे फरमाबरदार और काम से जी न चुराने वाले आदमी को तंग करना भी बहुत आसान नहीं था। दूसरे चपरासी अपना काम उस पर डाल देते थे और वह खुशी से उसे कर दिया करता था।

अभी तक महेन्द्र ने विषमता के पाठ का केवल एक ही पहलू पढ़ा था, वह था समाज में अपने से बड़ों की इज्ज़त करना; धनियों, कुलीनों और पढ़े-लिखों की लातें फूल के समान सहना। विषमता के पाठ का दूसरा पहलू वह अभी तक नहीं पढ़ा था। जो पहलू है– अपने से गरीबों और छोटे कुल

वालों को तंग करना, उन्हें गाली देना; उनकी गाढ़ी कमाई को अपने लिये ही समझना।

(४)

दोपहर का समय था। यद्यपि अभी वैशाख मास प्रारम्भ ही हुआ था तथापि दिन को दोपहर के समय इतनी प्रचंड गर्मी हो उठती थी कि धूप में चलना बहुत कष्टसाध्य हो जाता था। अदालत के सहन में दो पीपल के वृक्ष थे, इनके नीचे बैठ कर गरीब किसान अपनी अपनी पुकार की प्रतीक्षा कर रहे थे। चपरासी बारी बारी से एक एक को बुलाता था; पेड़ों के नीचे काफी भीड़ जमा थी। आजकल फसल के दिन थे, इन दिनों मुकद्दमों की भरमार रहती है।

इन दो पीपल के वृक्षों से कुछ दूर हट कर उत्तर की ओर एक शीशम का वृक्ष था इसकी छाया बहुत घनी नहीं थी, इसलिये प्रायः कोई मुवक्किल या गवाह इस पेड़ के नीचे नहीं बैठता था। महेन्द्र अकेला इसके नीचे सिर नीचा किये कुछ सोच रहा था– शायद अपना वेतन बढ़वाने के उपायों पर विचार कर रहा था।

इसी समय ५, ७ गरीब आदमी उस पेड़ के नीचे आये। इन में से एक व्यक्ति की पीठ पर खून जमा हुआ था, उसके माथे तथा टाँगों पर भी गहरी चोट के निशान मौजूद थे। इन सब आदमियों के कपड़े बहुत ही मैले और फटे हुए थे। वे देखने से अत्यन्त दरिद्र और नीच कुल के जान पड़ते थे– शायद इसी से वे साधारण मुवक्किलों की भीड़ में न जाकर इस एकान्त में चले आये थे। अदालत के एक चपरासी को वहाँ बैठा देखकर उन लोगों ने झुक कर उसे सलाम किया, इसके बाद वे उस से कुछ दूर हटकर बड़े अदब से बैठ गये। आज महेन्द्र को अपने बड़प्पन का कुछ गर्व हुआ।

महेन्द्र थोड़ी देर तक चुपचाप उन गरीबों के वेश, हाव-भाव तथा चेहरों को देखता रहा। आहत व्यक्ति तथा उन की दरिद्रता पर उसे कुछ दया आई। उसने उन लोगों को अपने पास बुलाया। वे बड़े अदब से उसके पास आकर बैठ गये।

महेन्द्र के पूछने पर एक व्यक्ति ने अपनी दुख-कथा कह सुनाई। वे लोग गरीब चमार थे, गाँव के नम्बरदार ने उनकी ज़रा सी गुस्ताखी पर उन्हें इस प्रकार पीटा था, यही उनकी लम्बी कहानी का सारांश था। उनकी दुख-कथा सुनकर महेन्द्र ने एक बड़े कानूनदाँ की स्वर में कहा— "अर्जी दायर कर दो।"

उन लोगों ने महेन्द्र की बात को बड़ी श्रद्धा तथा सम्मान से सुना। इसके बाद एक व्यक्ति ने पूछा—"हजूर

मुकद्दमे में हमारा कुल खर्च क्या होगा ?"

महेन्द्रने अर्दली, चपरासो, मुहर्रिर, अर्जीनवीस, वकील आदि के खर्च की लम्बी फिरहिस्त सुनानी आरम्भ की। वे गरीब आदमी इतनी रकमें सुनकर घबरा उठे उन्होंने बड़ी नम्रता से कहा—"हजूर, इतनी बड़ी रकमें हम कहाँ से दे सकेंगे।"

महेन्द्र अभी तक विषमता का पूरा पाठ नहीं पढ़ा था अतः उसे इन गरीबों पर दया आगई; उसने बड़े रोब से कहा—"अच्छा, चपरासियों का कुछ न देना। इस खर्च से मैं तुम्हें बरी करवा दूँगा।"

ठीक इसी समय अब्दुल्ला नाम का एक और चपरासी इस गिरोह के पास आकर खड़ा हो गया, उसने महेन्द्र की अन्तिम बात सुन ली; और वह दो तीन चपरासियों को बुला लाया। अब्दुल्ला ने उन चपरासियों से जाकर कहा—"देखो यार! बड़ा ईमानदार बना फिरता था; आज इसकी ईमानदारी की पोल खुल गई। ५, ७ मुवक्किलों को लूट कर उन्हें उपदेश देरहा है कि चपरासियों को कुछ मत देना।" चपरासियों ने आकर देखा कि महेन्द्र एकान्त में ५, ७ व्यक्तियों से बातकर रहा है। यह देखकर उन्होंने अब्दुल्ला के कथन पर विश्वास कर लिया। उन्होंने सोचा कि अगर महेन्द्र ने इन लोगों से रिश्वत नहीं ली तो इन्हें एकान्त में लाने की क्या आवश्यकता थी।

चारों चपरासी जोश में भरे हुए महेन्द्र के पास पहुँचे और उस से बोले—"क्यों, महात्मा जी! यह क्या स्वाँग है?" महेन्द्र कुछ न बोला। एक ओर चपरासी ने गाली देकर चमारों से कहा—"सच-सच बताओ, यह तुम्हें क्या कह रहा था।" चमार बेचारे काँप गये। एक ने कहा—"हजूर, हम इनसे अपनी शिकायत कर रहे थे।"

एक चपरासी ने डाँट कर कहा—"सच बताओ, ये तुम्हें चपरासियों के बारे में क्या कह रहे थे।"

एक चमार ने इस प्रश्न का वास्तविक अभिप्राय न समझ कर कहा—"ये हम से कह रहे थे कि तुम्हें चपरासियों को कुछ न देना पड़ेगा।"

अर्दलियों ने एक दूसरे की ओर इस दृष्टि से देखा कि मानों उन्होंने विजय प्राप्त कर ली। एक अर्दली ने कड़क कर कहा—"ठीक २ बताओ उन्होंने तुम से क्या लिया है।"

चमारों ने डरते डरते कहा—"कुछ भी नहीं।" महेन्द्र अब तक चुप बैठा था, किसी से लड़ना-झगड़ना वह पसंद नहीं करता था। परन्तु चमारों के सामने बड़ा बनने के बाद सहसा यह अपमान उसकी सहन शक्ति से बाहर था। उसने डांट कर कहा। "क्या गरीब चमारों पर रोब दिखा रहे हो, मुझ से बात करो।" यह

कह कर वह उठ खड़ा हुवा। चार में से तीन चपरासी तो सहसा महेन्द्र को इस असम्भावित रूप में देख कर सहम गये। परन्तु अब्दुला महेन्द्र का यह रूप देख कर और भी जल उठा। उस ने आगे बढ़ कर महेन्द्र को एक धक्का दिया। बाकी अर्दलियों ने भी उस पर गालियों की बौछार प्रारम्भ की, शोरगुल मच गया।

यह हुल्लेबाजी सुनकर अदालत के कमरे से एक छोटे दर्जे का क्लार्क बाहर निकल आया, उस ने पासआकर पूछा— "क्यों भाई क्या मामला है?"

एक अर्दली ने खूब नमक मिरच लगा कर बाबू जी से महेन्द्र की शिकायत की और अन्त में कहा कि अब्दुला अगर आज उसे हमला करने से रोक न देता तो हमारी खैर नहीं थी।" बाबू जी भी महेन्द्र को छकाने का मौका ढूंढने वालों में से एक थे, उन्हों ने महेन्द्र की लम्बी चौड़ी शिकायत लिखी। गरीब चमारों को डरा धमका कर उन्होंने उनसे लिखवा लिया कि महेन्द्र ने हम से रिश्वत ली और हमें बाकी चपरासियों के बखिलाफ भड़काया।

शिकायत बड़े बाबू के पास पहुंची, उन्होंने चमारों को बुला कर उन की गवाही ली। चमारों ने छोटे बाबू तथा अब्दुला के घुटाये हुए वाक्य सुना दिए। इतना ही नहीं अदालत के सहन में जो खोंचे वाला मिठाइयाँ बेचा करता था, उस ने भी महेन्द्र के विरुद्ध ही शहादत दी। बड़े बाबू रहम दिल थे, उन्होंने महेन्द्र पर दया कर के उसे नौकरी से बरखास्त न कर के उस पर २५) रु० जुर्माना कर दिया। उन्होंने महेन्द्र को हिदायत कर दी कि अगर भावि में तुम्हारी कभी कोई शिकायत सुनी तो तुम्हें अवश्य बरखास्त कर दिया जायगा।

सारी उम्र में आज महेन्द्र तीसरी बार फूट २ कर रोया। उसे आज एक नई शिक्षा मिली—गरीबों पर रहम करना भी मनुष्य की उन्नति में बाधक है।

महेन्द्र आज विषमता के पाठ का दूसरा पहलू भी सीख गया। वह जान गया कि जहां बड़े आदमियों की चापलूसी किये बिना उन्नति नहीं हो सकती वहां अपने से गरीबों और नीची जात वालों को दबाए बिना, उन्हें डांटे बिना अपनी स्थिति तथा अपने रोब दाब की रक्षा नहीं हो सकती। अपनी मर्यादा की रक्षा के लिए किसी छोटे आदमी को अपने सामने मुंह न खोलने देना चाहिये।

(५)

महेन्द्र अब नया आदमी बन चुका है। अपनी अदालत का वह सब से अधिक क्रूर और पाषाण-हृदय अर्दली है; गरीबों पर अत्याचार करने तथा अदालत के अधिकारियों की चापलूसी

करने में वह अदालत भर में अपना जोड़ीदार नहीं रखता।

आज प्रातः काल जब अदालत के कर्मचारियों ने यह सुना कि महेन्द्र ने अदालत की ७० वर्ष की बुढ़िया नथिया भंगिन को उसकी ज़रा सी अवज्ञा पर पीट २ कर अधमरा कर दिया है– तब उन के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। नथिया भंगिन जैसी गौ सी भंगिन कोई बड़ी गुस्ताखी कर ही नहीं सकती इस बात को सभी लोग भली प्रकार जानते थे।

बड़े बाबू बहुत बुद्धिमान थे। वे महेन्द्र के मनोविज्ञान का शुरु से ही अध्ययन कर रहे थे। यह घटना सुन कर उन्होंने केवल इतना ही कहा– "महेन्द्र वास्तव में अब जाकर सोसाइटी में रहने लायक आदमी बन पाया है, सोसाइटी में रहने के लिये मौके २ भेड़ और शेर दोनों बनना आवश्यक है।"

गुब्बारा

(श्री वागीश्वर जी विद्यालंकार)

मस्तक उन्नत किये हुवे यह उड़ा गुब्बारा।
चला गगन की ओर वेग से अति मतवारा।
फूला अपने अङ्ग अङ्ग में नहीं समाता
देखो तो किस अजब शान से है यह जाता ॥ १ ॥

गोरा गोरा रंग, मनोहर शोभा सारी
देख देख कर मुदित हो रहे हैं नरनारी।
छोटे छोटे बालक ताली बजा रहे हैं
कर कर के जयकार व्योम को गुँजा रहे हैं ॥ २ ॥

सब के सिर सोपान समान बना कर मानी
ऊपर है उठ रहा, चाल चलता मनमानी।
इसे जिन्होंने जन्म दिया, ऊँचा पहुँचाया
देखो हँसने लगा उन्हें ही, यह इतराया ॥ ३ ॥

देखा सब संसार, नहीं नर ऐसा पाया
पाकर भी अधिकार जिसे अभिमान न आया।
आने पर अभिमान, पतन में देर नहीं है
अब भी सम्हल अबोध ! यहां अन्धेर नहीं है ॥ ४ ॥

सुनले मेरी बात, खोलकर कान, गुब्बारे
आवेगा कुछ हाथ नहीं पीछे सिर मारे।
ईश्वर न करे, कभी दुर्दशा होवे तेरी
यह तनु सुन्दर, मलिन राख की बने न ढेरी ॥ ५ ॥

माना, प्रतिपल उदय होरहा है अब तेरा
देखो जिसे, वही सहायक है सब तेरा।
सब से उज्वल और बड़ा दिखता तू तारा
आँख उठाकर तुझे देखता है जग सारा ॥ ६ ॥

तूने इस के दिये स्नेह को अरे ! जलाया
और जला कर इस के मुख पर ही बरसाया।
फिर भी यह तो हित ही तेरा चाह रहा है
तेरा ऊपर चढ़ना देख सराह रहा है ॥ ७ ॥

तू उसका अपमान भूल कर भी मत करना
इसने जो उपकार किया वह मन में रखना।
अब तू जल्दी गर्व छोड़कर आजा नीचे
काल नहीं तो अभी टाँग लेता है खींचे ॥ ८ ॥

गरमहवा जो भरी हुई है सिर में तेरे
तुझ को चक्कर खिला रही है बिना बसेरे।
निकल जायगी ज़रा देर में ही यह सारी
जहाँ बुझ गई तुच्छ अग्नि की यह चिनगारी ॥९ ॥

अब जो तेरी मित्र समान बनी है वायू
नष्ट करेगी यही शत्रु बन तेरी आयू।
तोड़ फाड़ कर तुझे गिरा देगी जंगल में
विषम झाड़ झंखाड़ झुण्ड में अथवा जल में ॥ १० ॥

कण्टक कुल में पड़ी देह यह छिल जावेगी
पर पद दलित हुई धूल में मिल जावेगी
यह न हुवा यदि, कभी अकड़ कर तनिक चलेगा
अपनी ही इस अग्नि शिखा में शीघ्र जलेगा ॥ ११ ॥

इसी लिये मैं समझता हूँ मत इतरा तू
पाकर भी पद उच्च दर्प कर नहीं जरा तू।
शक्ति और संपति समझ बादल की छाया
किसे इन्होंने नहीं हँसाया और रुलाया ॥ १२ ॥

—:o:—

"महर्षिकृत अष्टाध्यायी भाष्य"।

(ले० श्री निम्बार्क)

परोपकारिणी के जखीरे में से महर्षिकृत अष्टाध्यायी भाष्य प्राप्त हुआ। हमें दुख से कहना पड़ता है कि यह अपूर्व पाणिनि व्याकरण का भाष्य खण्डित हो गया। इस की पूर्ण हस्तलिपि भी प्राप्त नहीं हुई। आज से ३।४ वर्ष पूर्व भी इस अष्टाध्यायी भाष्य के विषय में चर्चा चली थी। पं० लेखराम जी ने भी इस को प्रकाशित करने की ताकीद की थी, परन्तु वह प्रकाशित न हुआ। मध्य में अंक २ करके कुछ अंक पं० भगवद्दत्त जी की सम्पादकता में प्रकाशित हुए पर वह उद्योग भी सफल न हो सका। अब पुनः श्री रघुवीर जी एम० ए० की सम्पादकता में से वह प्रकाशित होना प्रारम्भ हुआ है जिस के विषय में पंजाब के 'आर्य' और 'प्रकाश' पत्रों में स्वा० वेदानन्द जी तीर्थ ने कुछ लेख प्रकाशित किए हैं जिन में इस भाष्य को महर्षिकृत होने का खण्डन किया है इस कारण पंजाब के पत्रों में परस्पर घोर "तू-तू मैं मैं" चल पड़ी है जो शिष्टता की सीमा से भी बाहर होगयी है। उक्त

तीर्थ महाशय जिन युक्तियों से उक्त अष्टाध्यायी भाष्य को ऋषिकृत नहीं मानना चाहते हम अपने अलंकार के पाठकों को इन युक्तियों की निःसारता मात्र दर्शायेंगे जिससे वे निष्पक्ष होकर विचार करें और महर्षिकृतभाष्य को प्राप्त करने से वञ्चित न रहें।

श्री वेदानन्द जी की पहली युक्ति यह है कि-(१) ग्रन्थकार 'इत्' संज्ञा, और 'हल' का भेद नहीं जानता (२) तद्भावित और अतद्भावित शब्दों को नहीं जानता क्योंकि वह लिखता है कि यौगिक शब्दों में जो आ, ऐ, औ हैं उन को तद् भावित कहते हैं और रूढ़ि शब्दों में जो हैं वे अतद्भावित हैं। (३) 'अस्मान्त्सु' तत्र चोदयं० यहां 'अस्मान्सु' में 'न् सु' के मध्य के 'त्' को यम कहा है। महर्षि इस को 'यम' नहीं मानते। (४) शब्द का लक्षण 'अथ शब्दानुशासनम्' पर न लिख कर 'अइ उण्' पर लिखा है इस से ग्रन्थकार प्रसंग नहीं जानता। (५) महाभाष्यकार पतञ्जलि ने 'अइउण्' सूत्र पर 'प्रत्याहारे ऽनुबन्धानां' इत्यादि प्रकरण लिखा है। वह इस ग्रन्थकार ने हल् सूत्र पर लिखा है इस से भी यह प्रसंगवित् नहीं है।

संक्षेपतः ये युक्तियां है जिन को लेकर श्री वेदानंद जी इस ग्रन्थ को महर्षिकृत मानना नहीं चाहते और पं० भगवद्दत्त जी बी०ए० को पलचर और कलिचर (कवाब खोर–शराब खोर) आदि गालियों से आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के मुख पत्र आर्य पत्र के पृष्ठ आतिरञ्जित करते हैं।

परन्तु वास्तव में देखने पर हमें यह युक्तियां सर्वथा निःसार प्रतीत होती हैं क्योंकि क्रम से (१ म) 'इत्' और हल् के भेद का अज्ञान भाषान्तरकार का है न कि मूल संस्कृत भाष्यकार का। दूसरे 'इत्' को यदि 'हल्' भी लिखा तो क्या अनर्थ हुआ। क्या श्री वेदानन्द जी का संन्यास लेकर मनुष्यत्व भंग हो जाता है? नहीं, तो फिर 'इत्' संज्ञा होने पर भी उसका हल्त्व कैसे नष्ट हुआ। हल् 'अनुबन्ध' 'व्यंजन' आदि शब्दों का प्रयोग करना इस स्थल पर कोई दोषकर नहीं है। तीसरे भाषान्तरकार अनुवाद नहीं करता प्रत्युत भावाशय लेकर लिखता प्रतीत होता है।

दूसरा आक्षेप भी भाषान्तरकार पर जाता है, मूल भाष्यकार पर नहीं। इसी प्रकार तीसरा दोष भी भाषान्तरकार पर है मूल भाष्यकार पर ये दूषण सर्वथा नहीं आते।

चौथा आक्षेप बिलकुल थोथा है क्योंकि 'अथशब्दानुशासनम्' पर तो शब्द का लक्षण किया ही नहीं गया। श्री वेदानन्द जी जो कीलहार्न सम्पादित' व्याकरण महाभाष्य का प्रमाण देते हैं वह सब धोखा है। तीर्थ महोदय ने 'शब्द शब्दाभिधेय' को शब्द लक्षण कह कर पाठकों को चक्कर में डालने का प्रयत्न किया है। 'प्रतीत पदार्थक-ध्वनि' को या "येनोच्चरि सारस्ना-दियत: संप्रयत्यो भवति सशब्द: "इसको शब्द लक्षण किसी भी विद्वान् ने नहीं माना। कैयट के प्रदीप और नागेश ने उसको केवल शब्दशब्दाभिधेय पदार्थ माना है। फलतः 'प्रतीत पदार्थक ध्वनि' यह पर्याय मात्र है लक्षण नहीं क्योंकि ध्वनि के स्वरूप ज्ञान की भी आकांक्षा शेष है। महर्षि के ग्रन्थ देखे होते तो श्री वेदानन्द जी को मालूम होजाता कि महर्षि दयानन्द "श्रोत्रोपलब्धि बुद्धिः निर्ग्राह्य" इस को ही शब्द का लक्षण मानते हैं। वेदांगप्रकाश के सन्धिविषय, वर्णोच्चारण शिक्षा आदि भी देखी होती तो पाठकों को इतनी गलती में न डालते। फलतः वह लक्षण तो महाभाष्य कारने और अष्टाध्यायी भाष्यकार ने भी 'अइउण्' पर ही लिखा है। जब भाष्यकार को अप्रासांसिक नहीं लगा तो फिर इस ग्रन्थकार को क्यों अप्रासंगिक जंचता।

पाँचवीं युक्ति इस से भी अधिक निसार है। 'प्रत्याहारेऽनुबन्धानां०' प्रकरण में अनुबन्ध व्यंजनों का प्रत्याहारों में 'ग्रहण क्यों नहीं होता इस का समाधान किया है। इस प्रकरण के प्रत्यहार सूत्रों के व्याख्यान में आदि मध्य अवसान तीनों प्रसंग हैं। अष्टाध्यायी भाष्यकार ने हल पर लिखा तो क्या अनर्थ किया। यह महर्षि की शैली है कि वे प्रत्यहारप्रस्तार के साथ इस प्रकरण को दर्शाते हैं। वैसा ही सन्धि विषय में किया है और वैसा ही इस भाष्य में किया है। इस प्रकरण का खास किसी सूत्र से सम्बन्ध नहीं है प्रत्युत सभी प्रत्याहार सूत्रों से है।

इस प्रकार श्री वेदानन्द जी की पांचों युक्तियां कट जाती हैं। और वह भाष्य महर्षि कृत नहीं है इस में कोई साधक युक्ति शेष नहीं रह जाती।

इसी प्रसंग में श्री वेदानन्द जी ने पं० रघुवीर जी एम. ए पर भी बड़ी टीका टिप्पणी की है। उनके लिखे टिप्पणों में से दोष दर्शाएं हैं। वे भी इतने कच्चे हैं कि देख कर आक्षेपक पर हंसी आती है।

टिप्पणी में कहीं लिखा मिल गया "दयानन्दसरस्वतिना", तीर्थ जी इसको अशुद्ध मानते हैं ? कारण नहीं दर्शाया क्यों अशुद्ध है ? क्या शुद्ध रूप दयानन्द सरस्वत्या है । क्या है दयानन्द छोकरी है । इसी प्रकार 'ददामः' 'महृदनु-संधान' इत्यादि स्थल जो 'वृद्धदाम' 'महा-नुसंधान' इत्यादि शुद्ध रूपों के रूपान्तर केवल प्रेस के भूतों के हाथों से हुए हैं उन पर खिल्ली उड़ाने बैठे हैं । यदि उन को ये दोष प्रेस के भूतों के या 'मानुषस्लिप' नहीं भासते तो जिस कीलहार्न को आप लेकर मैदान मारने आये थे उन पर उनके सजातियों के सम्पादित सामवेद संहिता (स्टीवन्सन एच० एच् विल्सन, लण्डन) की काहिं जेन्डा एट् एडेण्डा तो देख लेते कि संशो धकों और प्रेस भूतों की लीला त्रुटियां किस प्रकार की होती हैं । और यदि विना संशोधन पत्र के वह सामवेद संहिता हाथ लगजाय तो कहीं ये तीर्थ महोदय उन को पाठ भेद मानने लगजांय । इस संहिता में 'कृष्टि' को 'वृष्टि' प्राण को 'आण' वभ्रो को 'वश्रो' पुरुहूत को 'पुरुदूतं' कदामृतं को 'कदाभृतं' छापा गया है । बम्बई कलकत्ता के छापेखानों की लीला और भी विस्मयकर है ।

उक्त भाष्य महर्षिकृत ही है इस पर अभी हम कुछ नहीं लिखते परन्तु इतना अवश्य कहेंगे कि इस भाष्य पर महर्षि के होने के और भी नानापुष्ट प्रमाण हैं ।

तीर्थजी ने पुस्तक के छूटे पत्रे देख कर ही कुठार उठा लिया । यदि संशोधन पत्र सहित पुस्तक को देखते तो स्यात् इतना रोष रघुवीर जी पर न करते । खैर जो हो, व्यर्थ कूंजड़ों की सी 'तू तू मैं मैं, में क्या फल होता है समझ में नहीं आता । आर्यपत्रों में निराधार बातों पर व्यर्थ एक दूसरे की पगड़ियां उछाल ना बड़ा लज्जाजनक है । इस तरह से भयंकर परिणाम भी हो सकते हैं । अस्तु हम पाठकों को सचेत करते हैं कि वे व्यर्थ शोर से उद्विग्न न होकर निष्पक्ष होकर विचार किया करें ।

साहित्य वाटिका

बाल जीवन—(गुजराती) यह बालोपयोगी सचित्र मासिक पत्र बड़ोदे से प्रकाशित होता है । इस में बालकों के लिए मनोरंजक सामग्री रहती है । कथाएँ तथा बोधप्रद जीवन चरित्र आदि रहते हैं । गुजराती बालकों की ज्ञान वृद्धि के लिए यह अच्छा प्रयत्न कर रहा है । मूल्य ३) रु०

दक्षिणामूर्ति—(गुजराती) संपादक श्री नृसिंहप्रसाद भट्ट—यह त्रैमासिक पत्र भावनगर के श्रीदक्षिणामूर्ति विद्यालय से प्रकाशित होता है। यह पत्र शिक्षा के मनोवैज्ञानिक तरीके पर विशेष विचार करता है। मान्टीसोरी की शिक्षण-पद्धति द्वारा बालकों को किस प्रकार शिक्षित किया जा सकता है इस पर इस में मननीय लेख छपते हैं। शिक्षक कैसा होना चाहिए और उसके क्या कर्तव्य हैं आदि बातों पर उसमें अच्छी चर्चा रहती है। वार्षिक मूल्य ४) रुपये।

साबरमती—(त्रैमासिक गुजराती) यह गुजरात राष्ट्रीय विद्यापीठ अहमदाबाद के विद्यार्थियों का मुखपत्र है और इस में उन्हीं के लेख रहते हैं। नवयुवकों के लिए इसमें पर्याप्त पाठ्य सामग्री रहती है। सामान्य लोग भी लाभ उठा सकते हैं। मूल्य २) रुपये। गुजरात विद्यापीठ से प्राप्य।

प्रस्थान (गुजराती) संपादक श्री रामनारायण पाठक, गुजरात विद्यापीठ। यह गुजराती भाषा का एक उन्नत मासिक पत्र है। साहित्य, विज्ञान, धर्म तथा कला पर विद्वानों के उत्तमोत्तम लेख तथा सुन्दर कवितायें इसमें रहती हैं। ऐतिहासिक खोज विषयक लेख भी कभी कभी छपते हैं। पत्र संग्रह के योग्य है। अलंकार के गुजराती पाठक इस से लाभ उठा सकते हैं। वार्षिक मूल्य ५) रुपये।

पता—गुजरात साहित्य भण्डार, रीचीरोड, अहमदाबाद

कौमुदी—(गुजराती) सम्पादक श्री विजयराय। यह सचित्र त्रैमासिक पत्रिका है। जो स्थान हिन्दी-भाषा में साहित्य समालोचक का है गुजराती भाषा में वही स्थल कौमुदी का है। इस में साहित्य और कला की गंभीर समीक्षा की जाती है। प्रान्तीय तथा विदेशी भाषा के साहित्य के विषय में भी चर्चा रहती है। पत्रिका उच्च कोटि की है। संपादन योग्यता पूर्ण होता है। मूल्य ४)।

प्राप्तिस्थान—कुमार कार्यालय, अहमदाबाद॥

स्वदेश—हिन्दी का साप्ताहिक पत्र है पं० दशरथप्रसाद जी द्विवेदी के सम्पादकत्व में गोरखपुर से निकलने लगा है राजनीति में प्रतिसहयोगी नीति का पोषक है। इस के लेख गम्भीर तथा विचार पूर्ण होते हैं आकार प्रताप का सा पृष्ठ संख्या १२ वार्षिक मूल्य ४)

आर्य मित्र-प्रभा आर्य जगत् के [illegible] [illegible] के अवसर पर यह दोनों पत्र ऋषि दयानन्द की स्मृति में अपने विशेषांक निकाला करते हैं इस बार भी ऐसा ही किया गया है दोनों के अंक अच्छे निकले हैं लेख [illegible] पठनीय हैं आर्य जनता को इन्हें अपनाना चाहिये।

गुरुकुल-समाचार

ऋतु—गुरुकुल में सर्दी पड़ने लगी है दिन में थोड़ी गर्मी होती है परन्तु रात को अच्छा जाड़ा पड़ता है। मायापुर तथा कांगड़ी दोनों स्थानों के चिकित्सालयों में कोई बीमार नहीं है

दिवाली—इस बार की दिवाली गुरुकुल में खास ढंग से मनाई गई। महाविद्यालय के ब्रह्मचारियों ने आपस में टूर्नामैंट किया जिस में चार दल शामिल थे हाकी के सान्मुख्य में हीरक दल तथा हनुमान दल बराबर रहे। वाली बाल में चार दल शामिल हुए इस खेल में पटियाला दल ने अच्छा खेल खेला परन्तु प्रतिद्वन्द्वी श्री नाथ जी के दल से परास्त हो गया। सायंकाल को कुलवासियों की एकवृहत् सभा श्री आचार्य रामदेव जी के सभापतित्व में हुई। ब्रह्मचारियो तथा अन्य सज्जनों के ऋषि चरित्र तथा राम के जीवन पर व्याख्यान हुए। सहभोज के बाद दिवाली की गई।

अतिथि—दिवाली के दिनों में मिस लेस्टर अपने भतीजे श्रीहौग के साथ सत्याग्रहाश्रम से गुरुकुल देखने आई थीं। आप लंडन स्कूल सपोलटी की मैम्बरमैन हैं तथा ब्रिटिश लेबर पार्टी की प्रमुख सदस्य हैं। महात्मागान्धी के सत्याग्रह सिद्धान्त के प्रचार के लिये इङ्गलैंड में एक सभा है जिस की आप प्रमुख कार्य कर्त्री हैं। आप तीन दिन तक गुरुकुल में रहीं, ब्रह्मचारियों के साथ नित्य के सब कार्यों में शामिल हुईं। गुरुकुल की इंग्लिश यूनियन की ओर से आप का एक व्याख्यान "विश्वप्रेम तथा हमारे आदर्श" पर हुआ था। आप गुरुकुल से बहुत प्रभावित हुई हैं। यहीं से आप शान्ति निकेतन जायेंगी।

गुरुकुल का नया स्थान—हरिद्वार स्टेशन से तीन मील पश्चिम की ओर गुरुकुल के लिये नया स्थान ले लिया गया है, नवम्बर की २ तारीख को उसको नियमानुसार रजिष्ट्री हो गई है। इस भूमि पर कूएँ की खुदाई प्रारम्भ करदी गई है। यह स्थान हिमालय की गोद में है और अत्यन्त सुहावना है।

इलाहाबाद में इसबार दिवाली की छुट्टियों में पूर्वीय साहित्य विशारदों का वार्षिक सम्मेलन हुआ था, जिस में गुरुकुल की ओर से भी तीन प्रतिनिधि पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार, पण्डित चन्द्रमणि जी विद्यालंकार तथा पण्डित ईश्वरचन्द्र जी भेजे गये थे, आप तीनों वहां से लौट आये हैं, सम्मेलन में आप तीनों के निबन्ध खूब पसन्द किये गये। इस प्रकार गुरुकुल के विद्वानों का बाहर के विद्वानों से भी परिचय बढ़ रहा है।

गुरुकुल रजत जयन्ती

गुरुकुल की रजत जयन्ती का कार्य अच्छी उन्नति कर रहा है। लाहौर में रजत जयन्ती का कार्य करने के लिये वहां की समाज की ओर से पृथक् कार्यालय खोल दिया गया है, इस के मंत्री पंडित भीमसेन जी विद्यालंकार नियत हुए हैं। इस कार्यालय द्वारा लाहौर में गुरुकुल के लिये धन संग्रह का काम ज़ोर शोर से प्रारम्भ कर दिया गया है। इस कार्यालय ने ३५ हज़ार जयन्ती के नोट मंगवाये हैं और अधिक मंगवाने का वचन दिया है। लाहौर समाज का यह कार्य अति प्रशंसनीय है, यदि अमृतसर, दिल्ली, आदिस्थानों के गुरुकुल प्रेमी भी अपने कर्तव्य को समझें तो वे अपने यहां अच्छा कार्य कर सकते हैं। आशा है आर्य जनता इस विषय में लाहौर समाज का अनुकरण करेगी।

जयन्ती के डेपुटेशन—धन संग्रह का कार्य करने के लिये पण्डित सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार तथा पण्डित धर्मदत्त जी विद्यालंकार का डेपुटेशन जोधपुर उदयपुर आदि रियासतों में भेजा गया है।

बरमा, मध्यप्रदेश, मध्य भारत, मालवा तथा सिन्ध के डेपुटेशनों के लिये भी पत्र व्यवहार हो रहा है, यहां शीघ्र ही डेपुटेशन भेजे जायेंगे।

आज कल गुरुकुल में पाठ प्रारम्भ है यहां से उपाध्याय तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं को बाहर भेजने में कठिनता है फिर भी समय २ पर उन को भेजा जा रहा है परन्तु जयन्ती जैसे महान् कार्य के लिये जब तक आर्य समाज की सारी संगठित शक्ति गुरुकुल के अधिकारियों के कार्य में सहायक नहीं होती तब तक इस कार्य को पूरा करना कठिन है। जयन्ती में केवल चार मास बाकी हैं गुरुकुल के लिये १० लाख रुपये की अपील की गई है इन चार मासों में इस राशि का पूर्ण होना आवश्यक है, आशा है आर्यजनता तथा राष्ट्रीय शिक्षा के प्रेमी अपने कर्तव्य को समझेंगे तथा शीघ्र से शीघ्र गुरुकुल के लिये धन संग्रह के कार्य में लग जावेंगे।

मुख्याधिष्ठाता जी सूचित करते हैं कि नये बालकों को गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी में प्रविष्ट करवाने वाले सज्जनों को अपने बालकों के प्रवेश पत्र ३१ दिसम्बर १६२६ तक कार्यालय में भेज देने चाहिये। गुरुकुल के नियम और प्रवेश के फार्म कार्यालय गुरुकुल काँगड़ी जिला बिजनौर से मंगवालें।

बदाक़त खुद ब खुद कर देती है शोहरत ज़माने में।
मुनाफ़ा इस क़दर रखिये नमक जितना हो खाने में॥

(१) गंगाविष्णु नैनामृताञ्जनः—यह सफ़ेद सुरमा शिरीष की जड़ में ६ महीने रख कर तथा अन्य वैज्ञानिक तरीकों से शुद्ध करके १ साल की लगातार मेहनत के पश्चात् तय्यार किया गया है। हम दावे के साथ कह सकते हैं कि यह सुरमा आंखों की निम्न बीमारियों में अकसीर साबित हो चुका है—

नेत्रों में खारिश का उठना, रतौंधी, दूर अथवा समीप की वस्तु का साफ २ नज़र न आना, धूप में जाते ही आंखों का गरमी से चौंधिया जाना, देर तक किसी वस्तु अथवा पुस्तक की ओर नज़र का न टिकना, आंखों से पानी का गिरना, नज़ले की वजह से आंखों की कमज़ोरी और विशेष करके आजकल के नवयुवकों तथा वृद्धों के लिये यह सुरमा अकसीर साबित हो चुका है। कीमत २) तोला रखी गई है। ३ माशा ।।), ६ माशा १), १ तोला २)

(२) कुक्करों का शर्तिया इलाजः—एक आश्चर्य जनक औषधि। यह कोई शास्त्रीय नुस्खा नहीं है। परन्तु किसी अनुभवी वृद्ध सन्यासी का जादू है। देखने में बिलकुल मामूली खाली बत्तियें नज़र आती हैं परन्तु इसके ४, ५ दिन के इस्तेमाल से ही आपको निहायत फ़ायदेमन्द साबित होंगी—

यह बत्तियाँ आंखों के पुराने से पुराने रोहें, सुर्खी तथा पड़वाल और पानी के झर २ गिरने के लिये अकसीर है। फ़ायदे इसके अन्य भी हैं परन्तु आप इसकी एक बार परीक्षा करके हमेशा के लिये इसको अपने पास रखना चाहेंगे। सेवन विधि दवाई के साथ भेजी जाती है।

(३) मस्तिष्क पौष्टिकः—विद्यार्थी, अध्यापक, वकील, क्लर्क और व्याख्याता आदि जिन्हें काम करके काफ़ी देर के लिये आराम की ज़रूरत पड़ती है, उनकी दिमाग़ी ताकत को स्थिर रखनेके लिये यह दवाई अद्वितीय है। कम से कम १५ दिन या १ महीना इसके सेवन करने से आश्चर्यजनक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। इससे आप अपने काम को दिल से कर सकेंगे तथा दिमाग़ी ताकत को ज्यादा नहीं खर्च करना पड़ेगा। विद्यार्थियों के लिये अमृत है। केवल एक बार परीक्षा की ज़रूरत है। १ शीशी १५ दिन के लिये २)

(४) केशरञ्जन खिज़ाबः—जहां अन्य खिज़ाबों के लगाने से काली चमड़ी होने के सिवाय बालों की जड़ें कमज़ोर होकर झड़ने लग जाती हैं, वहां इस के सेवन से बाल काफ़ी अरसेके लिये काले तथा ख़ास चमकीले मालूम देते हैं। यह दो चीज़ें हैं—एक खुश्क, दूसरी तर। दोनोंको उचित मात्रामें मिला कर ब्रशसे इस्तेमाल करने से बालोंमें ख़ास चमक आती है। १ शीशी १।)

आधे दाम में !!!

१. महावीर गैरीवाल्डी—ले०श्री पं० इन्द्र जी विद्यावाचस्पति । आधा मूल्य ॥=)

मौडर्न रिव्यू—गैरीवाल्डी का जीवन केवल व्यक्ति का जीवन नहीं परन्तु स्वाधीनता का जीता जागता इतिहास है । पुस्तक की भाषा अत्यन्त रोचक है—पुस्तक अच्छे ढंग से लिखी है । हम इस पुस्तक का हार्दिक स्वागत करते हैं ।

माधुरी—विशेष महापुरुषों के जीवन चरित्र नवयुवकों के लिये विशेष शिक्षाप्रद होते हैं । यह जीवन चरित्र भी अच्छे ढंग से लिखा गया है । भाषा रोचक और मर्मस्पर्शिनी है । नवयुवकों को इस का अध्ययन अवश्य करना चाहिए

श्री शारदा—इसकी भाषा ऐसी फड़कती हुई और सजीव है कि इस में उपन्यास का सा आनन्द आता है । मनोरञ्जन के साथ २ उपदेश की भी मात्रा रक्खी है । विषय का क्रम भी यथोचित रीति से जमाया गया है । पुस्तक में उन्हीं घटनाओं का उल्लेख है जो महत्वशालिनी हैं, जिनका ज्ञान सर्वसाधारण को अपेक्षित है । यह पुस्तक भाषा के लालित्य, भाव की भंगी, विषय के समुचित वर्णन के अभिप्राय से हिन्दी साहित्य में अनूठी है । हमारा आग्रह है कि पाठक इसे अवश्य पढ़ें । पुस्तक में इटली के आठ महान् व्यक्तियों के चित्र भी हैं।

२. प्राचीन भारत में स्वराज्य लेखक—श्री पं० धर्मदत्त जी सिद्धान्तालङ्कार—आधा मूल्य ॥) .

प्रो० विधुभूषण दत्त जी M.A.—हमारे आर्य प्रजासत्तात्मक तथा प्रतिनिधिसत्तात्मक शासन प्रणालियों से अपरिचित न थे, प्रजा ही राजा को चुनती थी इत्यादि बातों को सिद्ध करने के लिये प्रमाणों और उदाहरणों को इकट्ठा करने में लेखक ने सराहनीय परिश्रम किया है । पुस्तक की लेखनशैली मनोरञ्जक है । विचार करने के लिये सभी को इस पुस्तक में बहुत सामग्री प्राप्त हो सकती है ।

३. वैदिक विवाह का आदर्श—ले० श्री पं० नन्दकिशोर जी विद्यालंकार—आधा मूल्य ।-)

बाबू भगवान दास जी काशी—विवाह क्या है, किस से, कैसे, किस लिए और कब विवाह करना चाहिए—यह पुस्तक में बतलाया गया है । वैदिक विवाह पद्धति अन्य विवाह पद्धतियों से क्यों श्रेष्ठ है, यह अच्छी तरह बतलाया गया है । इस पुस्तक का समाज में अधिकाधिक प्रचार होना चाहिए ।

४. सन्तजीवनी—ले० स्व० श्री गिरिजा कुमार घोष—भारत के प्रसिद्ध महात्माओं-कबीरदास, गुरुनानक, गोस्वामी तुलसीदास आदि के विस्तृत जीवन चरित बड़ी मनोरंजकता से लिखे गए हैं । आधा मूल्य ।)

५. बिखरे हुए फूल-यह पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार की बिल्कुल नए ढंग का, नए विषयों पर अद्भुत कविताओं का संग्रह है । आधा मूल्य =)

मैनेजर—साहित्यपरिषद् पुस्तक भण्डार; गुरुकुल काङ्गड़ी (हरिद्वार)

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल—समाचार

❀ स्नातक-मण्डल गुरुकुल-काँगड़ी का मुख-पत्र ❀

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

आँसू!

(श्री पं० निरञ्जनदेव जी आयुर्वेदालङ्कार)

मोती ये मेरी माला के॥
बिखर गये सब हँसते हँसते,
कुछ मेरी आँखों के रस्ते,
छलक छलक दिल में जा बसते,
ये अमूल्य, पर अब तो सस्ते, ले लेगा क्या कोई आके॥ मोती०
चलो, नहीं कोई यह मेला,
करो भई! सब दूर झमेला,
रहने दो बस मुझे अकेला,
मैं न इन्हें बेचूं ले धेला, कोई मत इनको अब ताके॥ मोती०
जो चाहे लेना वह आवे,
अपना साथ हृदय दे जावे,
फिर कोई न इसे लौटावे,
सौदा यह जिसके मन भावे, ले जाये वह देख दिखाके॥ मोती०

गीता का सन्देश

(ले०-प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

मनुष्य किसी काम को भी करता हुआ 'मनन' करता है, विचारता है—'यह काम करना चाहिये या नहीं करना चाहिये'। कई वार सन्देह की मात्रा साधारण होती है। संशय-मेघ के दो-एक टुकड़े मानसिक क्षितिज के किनारे किनारे चक्कर काट कर ही निश्चयात्मिका बुद्धिरूपी वायु के धक्कों से तितर-बितर हो जाते हैं। इस प्रकार की सन्देहावस्था मन को विक्षिप्त नहीं करती, इस में धैर्य्य बँधा रहता है। कभी २ तो इस में मज़ा ही आता है। इसके बिना जीवन फीका-सा लगने लगता है। परन्तु मानवजीवन के अन्तरिक्ष में जहां शरदृऋतु के क्षुद्र मेघखण्ड दिखाई देते हैं वहां पावस की प्रलयकारी घनघोर घटाएँ भी उमड़ पड़ती हैं, आशा-सूर्य्य के प्रकाश की एक एक किरण के लिये मनुष्य तरसता है परन्तु अन्धकार से घिरे होने के कारण रास्ता ढूढने के लिये जितना अधिक हाथ पैर मारता है उतना ही अधिक भटकता जाता है। इस अवस्था में मनुष्य का दिमाग़ ठिकाने नहीं रहता। उसका चित्त विक्षिप्त हो जाता है। वह पागल-सा बन जाता है। दुःख की सीमा इससे परे नहीं आ सकती। इस अवस्था में वह किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर जीवन को भार-रूप समझने लगता है। मनुष्य दुःख को निमन्त्रण देता है, सुख तक पहुंचने के लिये; अन्धकार का आनन्द उठा सकता है प्रकाश का मज़ा लूटने के लिये; निराशा में अपने को छोड़ सकता है, आशा को पाने के लिये! वह इसी लिये जीता है क्योंकि उसे मालूम है कि दुःख के पीछे सुख, अन्धकार के पीछे प्रकाश और निराशा के पीछे आशा आ सकती है। यदि मानव-समाज का आज यह अनुभव हो जाय कि दुःख दुःखरूप में ही अनन्त काल तक बना रहेगा, अन्धकार के छिन्न-भिन्न करने के लिये प्रकाश की किरणों का उदय नहीं होगा, निराशा के तप्त झोंके प्रलय तक हमारे हृदयों को दग्ध करते रहेंगे तब तो सारा मानव-समाज मिलकर आत्मघात कर ले। जिन व्यक्तियों के जीवन में कभी कभी ऐसी लहर चल जाती है, वे फिर जी भी नहीं सकते। उनके लिये प्राण भारी हो जाते हैं और वे शीघ्र ही संसार से विदाई लेने का अवसर ढूंढ निकालते हैं।

मनुष्य के मन की दोनों अवस्थाएँ दीख पड़ती हैं। कभी कभी तो थोड़ा बहुत तर्क-वितर्क करने के बाद शीघ्र ही निश्चय की अवस्था आ पहुंचती है, परन्तु कभी कभी मनुष्य जितना तर्क

करता जाता है, जितना दिमाग़ पर बोझ डालता है, उतना ही सन्देह के जाल में उलझता जाता है—एक ही मार्ग उसे नहीं दिखाई देता, एक की जगह दो और दो की जगह दस दीख पड़ने लगते हैं। ऐसी अवस्था के लिये भगवान् कहते हैं—

"व्यवसायात्मिका बुद्धिरेकेह कुरुनन्दन
बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्।"

हे कुरुनन्दन! जीवन का सीधा रास्ता तो एक ही है। जीवन में डाँवा-डोल हो जाने पर अनन्त रास्ते दिखाई देते हैं, परन्तु सब भटकाने वाले हैं। सन्देह में से निकलो, तभी जी सकते हो; सन्देह में पड़े रहना मृत्यु के लक्षण हैं। प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में किसी न किसी समय, विक्षेप की अवस्था आती है। लाख कोशिश करने पर भी मनुष्य अपने कर्तव्य का निश्चय नहीं कर सकता है। इस प्रकार सन्देह सागर में गोते खाता हुआ प्राणी अपने ऊपर किये हुए सारे भरोसे को खो बैठता है और अपने से किसी ऊँची शक्ति की तरफ़ टिकटकी बाँधे हाथ-पैर मारना छोड़ कर अनन्त की शय्या में अपने को छोड़ देता है। इसी निस्सहाय अवस्था में, जब वह बिल्कुल निराश हो चुका होता है, कोई अदृश्य हाथ उसकी अँगुली पकड़ लेता है, डूबते को तिनके का सहारा मिल जाता है। यह विश्वव्यापी अनुभव है। इस अनुभव का अभिप्राय इतना ही है कि निराशा का अन्त निराशा में ही नहीं है, अन्धकार का अन्त अन्धकार में ही नहीं है, सन्देहों का अन्त सन्देहों में ही नहीं है। कृष्ण भगवान् सन्देहों की आंधी के झोकों से डावांडोल अर्जुन को सम्बोधन करके कहते हैं – "अर्जुन! घबड़ा मत, सन्देहों में मत पड़ा रह, निश्चय की तरफ़, व्यवसायात्मक बुद्धि की तरफ़ बढ़ने का प्रयत्न कर!" कृष्ण भगवान् की सहायता से अर्जुन के सन्देह निवृत्त हुए। वह चिल्ला उठा :—

"नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव।"

हे कृष्ण! तेरे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हो गया, दिमाग़ ठिकाने आ गया, सन्देह छिन्न भिन्न हो गये। मैं अब अपने कर्तव्य को समझने लगा हूं, मेरी बुद्धि व्यवसायात्मिका हो गई है।

गीता की यही शिक्षा है। नाक की सीध में चलते चलते जब मनुष्य दोराहे पर पहुंचता है, और वहां पर भी बीसियों रास्ते इधर-उधर फटते हुए पाता है, तो घबड़ा जाता है, सन्देहों से घिर जाता है। उसे समझ नहीं पडता कि क्या करे? ऐसी अवस्था में कई व्यक्ति निराश हो कर हिम्मत हार देते हैं, उनकी कमर टूट जाती है, वे एक कदम भी आगे नहीं रख सकते। गीता में एक इसी प्रकार के व्यक्ति का चित्र हमारी आंखों के सामने खींचा गया है। वह किंकर्तव्य-

विमूढ़ होकर, सन्देहों से घिरा जाकर ठीक रणक्षेत्र में मट्टी की तरह ढेर हो जाता है। उस समय अर्जुन की अवस्था ठीक ऐसी हो जाती है जैसी पाद-कन्दुक की क्रीड़ाक्षेत्र में उसकी फूंक निकल जाने से होती है। ऐसी अवस्था में मुर्दे को ज़िन्दा बनाना और ज़िन्दा हुए को शेर बना देने का काम गीता ने किया है। भटके को मशाल बन कर रास्ता दिखला दिया, डूबते को तिनका बन कर सहारा दे दिया, मरते को जीवनसुधा बन कर प्राण का दान कर दिया। यदि सदियों पहले गीता ने यह काम किया था तो आज भी वह इस काम को कर सकती है। अर्जुन को जिस मोह ने आकर घेर लिया था, वह जिन सन्देहों का शिकार बन गया था उस प्रकार के सन्देह आज भी मानव-समाज के मानस को घेरे हुए हैं। यदि उस समय वृन्दावन-विहारी की वंशी की मधुर तान ने सूखे हृदय में जीवन का अमृत रस भर कर उसे सरसा दिया था तो आज भी उसमें दिव्य-शक्ति विद्यमान है। वह जादूगर अपनी जादू करने वाली वंशी को पीछे छोड़ गया है। जिसका जी चाहे उस वंशी को उठाये और बजाये! इसकी मधुर तान सुन कर एक बार तो अवश्य ही सूखे हृदय से भी शान्ति का झरना फूट कर बह निकलेगा।

सन्देहों से व्याकुल अर्जुन को गीता ने रास्ता दिखलाया। उसे कृष्ण ने जो शब्द कहे वे सन्देहों से दोलाय-मान प्रत्येक व्यक्ति के लिये कहे गये थे। भगवान् कहते हैं:—

"कुतस्त्वा कश्मलमिदं विषमे समुपस्थितम्
अनार्यजुष्टमस्वर्ग्यमकीर्तिकरमर्जुन।
क्लैब्यं मास्मगमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप!"

हे मूढ़! हे विक्षिप्तहृदय! इस नाज़ुक मौके पर तुझे किस पाप ने आ घेरा है। इससे तेरा कभी भला न होगा। यह तुझे नामर्द बना देगा। सन्देहों के जाल को झाड़ कर उठ खड़ा हो, दिल को मज़बूत बना और काम में जुट जा। कैसे उत्साह से भर देने वाले शब्द हैं! सन्देहों की उलझन में लिपटे हुए व्यक्ति के कान में जब ये जीवन का रस टपकाने वाले अमृतमय शब्द पड़ते हैं तो आधी निराशा तो ऐसे-ही भाग जाती है, उसकी मुर्दा नसों में खून बहने लगता है और वह अन्धकार के पर्दे में से मुख निकाल कर प्रकाश की किरणों की प्रतीक्षा करने लगता है। ऐसा व्यक्ति जब गीता को हाथ लगाता है तो उसके सन्देह कट कट कर गिरने लगते हैं। यह समझना भूल है कि गीता का उद्देश्य केवल अर्जुन के सन्देहों को दूर करना है। अर्जुन को तो मानव जाति के उपलक्षक एक व्यक्ति के रूप से सम्मुख रख लिया गया है। यथार्थ में

मनुष्य के हृदय की जो दोलायमान अवस्था होती है उस में से निकाल कर व्यवसायात्मिका-एक-बुद्धि तक पहुंचाना ही गीता का उद्देश्य है। गीता में जीवन के उन मौलिक सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है जिन से सब प्रकार के सन्देहों की निवृत्ति हो जाती है। यह निराश व्यक्ति के लिये जीता-जागता आशा का सन्देश है। इस दृष्टि से गीता का अध्ययन प्रत्येक व्यक्ति के जीवन को आशामय तथा प्रकाशमय बना सकता है। गीता के विषय में निस्संकोच भाव से कहा जा सकता है:—

"असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मा अमृतं गमय"

खुशामद !

(लेखक— आचार्य गड़बड़ानन्द)

अरे भाई खुशामद करो, खुशामद ! इस दुस्तर संसार में यदि जीना चाहते हो तो खुशामद से बढ़िया दूसरा मन्त्र नहीं, नुस्खा नहीं, जादू नहीं। खुशामद सृष्टि का सार है; खुशामद सफलता की अचूक चाबी है; खुशामद छोटे-बड़े सबके लिये ब्रह्मास्त्र है। यह बुरी चीज़ हर्गिज़ नहीं है। यह तो प्रखर बुद्धि का एक दाँव है, एक पैंतरा है। बेवकूफ़ लोग 'आत्मा'-'आत्मा' रटा करते हैं। आत्मा का खुशामद से क्या सम्बन्ध ? खुशामद तो जीवन संग्राम में हाथ मार ले जाने का एक 'आर्ट' है; यह एक कला है; एक कोशल है; सिद्ध-हस्तता है ! ऐसी नाज़ुक आत्मा भी किस काम की कि ज़रासी खुशामद की और आत्मा पर दाग़ लगा ! मज़ा तो यही है कि भरपेट खुशामद कर काम भी निकाल लिया जाय और आत्मा भी दर्पण की तरह शुद्ध-पवित्र बनी रहे। और देखो तो, यह सोचने की बात है कि यदि खुशामद बुरी ही चीज़ होती तो यह ज़िन्दगी के लिये इतनी ज़रूरी क्यों होती कि इसके बिना दम लेना भी मुश्किल हो जाता। दुनियाँ को देखो ! परमात्मा को मानने वाले अपने असली जीवन से ढिंढोरा पीट २ कर कह रहे हैं कि खुशामद 'लॉ ऑफ गॉड' है; प्रकृति को मानने वाले चिल्ला रहे हैं कि खुशामद 'लॉ ऑफ़ नेचर' है। यदि अब भी मानने की सलाह न हो तो न मानो पर यह बात गाँठ बाँध लो कि यदि खुशामद के चप्पू के बग़ैर जीवन-नौका को संसार-समुद्र के पार लगाना चाहोगे तो अपने से बड़ों के अभिमान की घुमरघेरियों में फँस कर डूब जाओगे,—बस, डूब जाओगे !!

मैं उन में से हूं जिन्हें कई लोग डाह से 'खुशामदी-टट्टू' कहा करते हैं। मैं अच्छी तरह से जानता हूं कि जीवन में मेरी असाधारण सफलता को देखकर वे लोग चिढ़ते हैं। मुझ में और दूसरे लोगों में यही फ़रक है कि मैं जहाँ जीवन के मूलभूत सिद्धान्तों का गहरी दृष्टि से अध्ययन कर उनके अनुकूल अनुष्ठान करता हूं वहाँ कई बुद्धू उन सिद्धाँतों की तरफ़ आँख तक नहीं उठाते। मेरे सारे जीवन के परिश्रम का एक ही निष्कर्ष है। मैं समझ गया हूं कि 'खुशामद' कितना अमोल हीरा है। आत्मा, परमात्मा, प्रकृति—सृष्टि के मौलिक-तत्व समझे जाते हैं परन्तु मेरी फ़िलासफ़ी में 'खुशामद' ही सृष्टि का अनादि-अनन्त-सनातन तत्व है। मुझे खूब याद है। जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था मुझे कुछ न आता था पर मैं रोज़ शाम को मास्टर साहेब के पाँव दाब आता था। मौके २ पर उनके घर में भाजी-तरकारी-मिठाई दे आता था। उनके बच्चे के लिए खिलौने ले जाता था। बस, मास्टर साहब मुझ पर मस्त रहा करते थे। मैं कभी फ़ेल नहीं हुआ। जो लड़के मुझ से ज़्यादह रटा करते थे, इम्तिहान के दिनों में वे मुझ से कई नम्बर पीछे रहा करते थे। लड़के मुझे खुशामदी कहते थे और मास्टर साहेब मुझे सुशील कहते थे। साल भर की कड़ी मेहनत वह काम न कर सकती थी जो मेरी ज़रा सी खुशामद कर लेती थी। मैं पढ़-लिख कर एक स्कूल में मास्टर हो गया। सब मास्टर लोग मुझसे ज़्यादह पढ़े हुए थे, इसलिए मुझ पर रोब जमाते थे। मैं स्कूल की 'मैनेजिंग कमेटी' के मेम्बरों के घरों में जाकर रोज़ उनको सलाम कर आता था—बस, और कुछ नहीं, केवल सलाम कर आता था। नतीजा यह हुआ कि साल ही भर में मुझे सैकन्ड—मास्टर बना दिया गया, मेरी तनख्वाह दुगुनी हो गयी और रोब जमाने वाले मास्टर बग़लें झाँकते ही रह गये। खुशामद के नुस्खे का यह मामूली सा चमत्कार था। सब मास्टर मुझे खुशामदी कहते थे लेकिन कमेटी के मेम्बर मुझे विनयशील और साधु स्वभाव वाला कहते थे। मैं अपने प्रभुओं के जूते तक उठाने में नहीं कतराता था; जो काम मुझे सौंपा गया हो उसे छोड़कर उनका निजू काम पहले करता था, उनके मुख से बात निकलने के पहले ही हाथ जोड़कर 'जी-हज़ूर' की झड़ी लगा देता था—मेरे जीवन की अभूतपूर्व सफलता का यही रहस्य था। नीचे वाले इसे चाटुकारिता या खुशामद कहते हैं, ऊपर वाले इसे विनय और शील कहते हैं—मैं इसे बुद्धिमत्ता, जीवन का गुर या सफलता की कुञ्जी कहता हूं। जो लोग मेरी इस विवेकशीलता को खुशामद का नाम देकर मुझे बदनाम करते हैं उनसे मैं पूछना चाहता हूं कि ज़रा मुझे यह तो बता दें कि दुनियाँ का कौनसा कोना इससे ख़ाली है?

* * *

मैं जब भी किसी साधु-संत के यहाँ उसकी फूंस की छत के नीचे गया हूं, मैंने देखा है कि उसका हृदय मुझसे प्रणाम की भिक्षा माँग रहा होता है। मैं उसके सामने हाथ जोड़ दूँ तो उसका चेहरा खिल उठता है, न जोड़ूं तो उस पर निराशा की रेखाएँ घनीभूत हो जाती हैं। कोई-कोई महात्मा तो ऐसे निकलते हैं कि उन्हें नमस्कार न भी किया जाय, वे हाथ उठाकर आशीर्वाद पहले ही देने लगते हैं। शायद उनके दिल में यह होता है कि यदि भगत ने सिर झुकाने का अपना 'कर्तव्य' पालन नहीं किया तो हम उसके सिर झुकने की कल्पना ही करके आशीर्वाद देने के बड़प्पन के 'अधिकार' का इस्तेमाल क्यों न कर लें? सब एषणाओं को छोड़ देने का दावा रखने वाले साधुओं के झोंपड़ों से आवाज़ आ रही है—'खुशामद'-'खुशामद'-'खुशामद के बिना हम नहीं जी सकते!' 'हमारे सामने सिर झुकाओ, नहीं तो हम मरे जाते हैं' !!

* * *

मैं सभा सोसाइटियों में जाता रहता हूं। कई अपने को बड़ा समझने वाले सभाओं में सब से पीछे जूतियों पर बैठ जाते हैं और चारों तरफ़ इस आशा से कनखियाँ चलाते रहते हैं कि कोई आकर उनका हाथ पकड़ कर उन्हें सब से आगे ले जाय और कुर्सी पर बिठा दे। यदि उन्हें कोई न पूछे तो उनके दिल में आग सुलग जाती है और जी करने लगता है कि शिव की तरह उनके तीसरा नेत्र होता तो वे उस सभा के सञ्चालकों को क्षण भर में भस्म कर देते। ऐसे लोगों के दिल की बीमारी के लिये खुशामद ही सबसे बढ़िया मरहम है। वे खुशामद के बिना नहीं जी सकते। यदि ज़रासी खुशामद से ऐसे महापुरुषों के जीवन की रक्षा की जा सके तो इसमें हर्ज क्या है? आखिर इन्हीं के प्रताप से तो बड़ी २ संस्थाएँ चलती हैं। प्राचीन ऋषियों का वर मालूम नहीं पूरा उतरता था या नहीं, पर कलियुग के इन ऋषियों का वर तो सोलहों आने पक्का होता है। यदि इन की कृपा दृष्टि हो जाय तो संस्थाओं के भाग्य जग जाँय। इन सब के लिए खुशामद की ज़रूरत है। खुशामद के बिना ये नहीं जी सकते और इन के बिना 'पब्लिक वर्क' नहीं जी सकता।

* * *

क्या मज़े की बात है! आज छोटा आदमी अपने से बड़े के चढ़े-मिजाज़ को देख कर नाक-भौंह सिकोड़ने लगता है, परन्तु खुद उस हालत में पहुंचते ही अपना मिजाज़ बिगाड़ लेता है। आज हम अपने से दो इञ्च लम्बे

आदमी के सामने सिर झुकाने में खुशामद की बू पाते हैं लेकिन अपने से एक इञ्च छोटे आदमी से साष्टाङ्ग दण्डवत् प्रणाम की आशा रखते हैं। सब अपने ऊपर वाले के सामने झुके हुए और नीचे वाले के सामने तने हुए हैं। हुक्कामों की जूती खाते और मातहतों के जूती लगाते हैं। किसी सरकारी आफिस में चले जाओ, यही नज़ारा है। हरेक बाबू, बड़े बाबू के सामने बिल्ली और छोटे के सामने शेर है। बड़े की खुशामद करता और छोटे से खुशामद करवाता है। 'हजूर' कहलाने के लिये बेचैन और कहने के लिये हिचकिचाता है। खुशामद के बग़ैर रेल का बाबू टिकट नहीं देता; खुशामद के बग़ैर म्यूनीसिपैलिटी वाला दस रुपये महीने की नौकरी नहीं देता; खुशामद के बग़ैर अदालत का कारिन्दा अर्जी पेश होने नहीं देता; खुशामद के बग़ैर किसी अफ़सर का चपरासी बात नहीं करता। खुशामद के बग़ैर दुकान नहीं चलती, ठेका नहीं मिलता, हमारे अपने हक़ हमें कोई नहीं देता। जब परमात्मा को यही मन्जूर है, फिर बतलाओ खुशामद क्यों न की जाय?

* * *

खुशामद का अर्थ है, हरेक बात में हुक्काम के ओहदे के मुताबिक़—'जी हाँ'—या—'जी हजूर' कहना! खुशामद एक लैन्स है जिसमें से अल्पज्ञ जीव अपने को सर्वज्ञ देखने लगता है, बेवकूफ़ अपने को बुद्धि का अगाध समुद्र समझने लगता है, अशक्त मनुष्य अपने को सर्वशक्तिमान् अनुभव करने लगता है! खुशामद से हरेक भलेमानस को उल्लू बनाया जा सकता है। जीवन-संग्राम में विजय प्राप्त करने का इस-सरीखा अमोघ-शस्त्र न किसी ने बनाया है, न बना सकता है, न बना सकेगा। इसके सामने बली निर्बल हो जाते हैं, संयमियों का वर्षों का संयम टूट जाता है, तपस्वियों के तप ढीले पड़ जाते हैं, विवेकी पुरुष हतबुद्धि हो जाते हैं, राजाओं के सिंहासन डगमगा जाते हैं। इससे आँखों को अन्धा किया जाता और कानों को 'भरा' जाता है। जो जितना बड़ा है उसके इर्द-गिर्द उतने ही खुशामदियों का गिरोह घिरा रहता है। इसी बात को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि जिसके इर्द-गिर्द जितने ज़्यादह खुशामदी हों वह उतना ही बड़ा होता है। नौकरी में भिन्न २ दर्जों की रचना खुशामदियों की संख्या बढ़ाने के लिए ही की जाती है। दस आदमियों में बीस ओहदे क़ायम किये जाते हैं ताकि खुशामद के लिये सिरतोड़ 'कम्पीटीशन' हो। सबसे मुख्य चाटुकार को 'बड़ी सरकार' टैलीफ़ोन की तरह अपने कान के पास रखती है और उसका काम सरकार

की बेवकूफियों में हामी भरने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं होता। इसी के लिये उसे तनख्वाह दी जाती है। 'बड़े हजूर' की समझ में यह नहीं आ सकता कि दो बेवकूफ मिलकर अक्ल की बात कैसे पैदा कर लेंगे। वे इसी बात से सन्तुष्ट हैं कि उनकी हरेक बेवकूफी को 'अक्ल' बताने वाला कोई है! इस में शक नहीं कि खुशामद करने से मनुष्य की आत्मा उसे काटती है, वह अपने को छोटा अनुभव करती है, पर उसका इलाज भी तो खुशामद ही है। खुशामदी को जो बीमारी हो जाती है उसे खुशामद ही दूर कर सकती है। वह अपने महाप्रभु के सब से बड़े दर्जे पर पहुंच कर अपने से छोटों से खुशामद करवाता है। जो करने लगते हैं उनसे तो उसके दिल की बीमारी कुछ कुछ शान्त होती ही है परन्तु जो नहीं करते उन्हें मज़ा चखाने के लिये वह दिन रात स्कीमें बनाया करता है। बदला लेना उसके जीवन का मुख्य उद्देश्य हो जाता है। खुशामद से आत्मा के जिस खोखलेपन को वह अनुभव करता है उसे दूर करने के लिये उसकी आत्मा तड़पती रहती है, पर भाई साहेब; उसका इलाज भी तो खुशामद ही है। खुशामद के रास्ते पर चलने वाला एक गोल घेरे पर घूमता है—वह अगलों की खुशामद करता है और पिछले उसकी खुशामद करते हैं—इससे जीवन का, जीवन का नहीं तो कम-से-कम रोटी-दाल का, गुज़ारा तो खूब हो ही जाता है!

* * *

खुशामद की फ़िलासफी को लोग समझते नहीं। खुशामद तो नफ़े ही नफ़े का सौदा है; इसमें घाटा कहाँ है? हाँ, आत्मा को भी कोई चीज़ माना जाय तो खुशामद से कुछ 'आत्म-ग्लानि' ज़रूर होती है, अन्यथा इसमें मज़ा ही मज़ा है। लेकिन जो इस सन्मार्ग पर कदम उठाएगा वह आत्मा से सरोकार ही क्यों रखेगा? जिन्हें आत्मा हो उन्हें आत्मा-ग्लानि भी हो, इधर तो आत्मा की ही कोई ज़रुरत नहीं। जिन भूले भटकों के आत्मा होगा उनके लिए भी सबसे अच्छा नुस्खा है, कि एकान्त में बैठकर आत्म-निरीक्षण जैसी कोई बेवकूफी न करें। दूसरों का ही निरीक्षण करते रहें! इस प्रकार खुशामदपूर्वक दिवस बिताते हुए जीवन का जो आनन्द प्राप्त होता है वह परमात्मप्राप्ति के आनन्द से किसी प्रकार कम नहीं है। हमने यह आजमा कर देखा है, दूसरे जिनका जी चाहे आजमा कर देख सकते हैं।

काकोरी अभियोग के पश्चात्

फाँसी की तख़्ती पर

[१]

विश्व खड़ा ताकता—स्वतन्त्रता के मञ्च पर,
ख़ून की ये कौन होली खेलने को आया है।
प्याला देशभक्ति का पिया है, मस्तहाल हुआ
फूल से करों को बेड़ियों से बाँध लाया है।
तान सुन बैठना न भूल से, छिलेगा दिल
गीत 'सरफ़रोशी' का इसी ने नित्य गाया है,
आँख ज़रा फेर ऐसे पागलों को देख डालो
देखो तो ज़माने में ये कैसा रंग लाया है!

[२]

कञ्चन सी काया मिली, शान्त मुख-मुद्रा बनी
आंखों में न जाने ज्योति कौन सी जलाई है,
कहता है—"बहुत दिन हुये माँ की पूजा किये,
भैरवी का आज नाच करने की समाई है।
आज होली खेलूं बलि कालिका पै भेंट डालूं
जुआ खेलने को भी उमङ्ग उठ आई है,
पासा मातृभूमि की स्वतन्त्रता का फेंकता हूँ
देखूं, आज बाजी निज प्राणों की लगाई है।

[३]

"कितने अरमान निज छाती में छिपाये रहा,
सीस बेचने की धुन कब से समाई है।
शून्य में विलोक चुप चाप आँसू डाल डाल,
कितनी घनी रातें मैंने 'आह' से बिताई हैं।
आज गरवीला चमकीला ये प्रभात आया,
अग्नि चण्डिका ने यज्ञ-कुण्ड में जलाई है।
बाना धार केसरी, लगाऊँ टीका खून का, लो,
पूर्णाहुति डालने की बारी आज आई है॥

[४]

"फाँसी की पवित्र वेदिका पै चढ़ा झूमूंगा मैं,
चारों ओर देख ज़रा मीठे मुसकाऊंगा।
आँख बन्द किये माता भारता का ध्यान धरूं,
उसी 'वन्दिनी' के चरणों में झुक जाऊंगा।
कण्ठ से गिरेगी रक्तधार मेरे बार बार,
आंख से किसी की अश्रुधार गिरवाऊंगा।
'आह' कोई कहेगा, औ 'हाय हाय' कोई कहे,
किसी न किसी के मुंह से 'वाह' कहलाऊंगा"

प्रियहंस

बौद्ध धर्म की चार महासभायें

(ले०-प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालङ्कार)

प्राचीन भारत के धार्मिक इतिहास में बौद्ध धर्म की चार महासभाओं का बड़ा महत्त्व है। बौद्ध धर्म को संगठित, विश्वव्यापी और विशुद्ध बनाने में इन से बहुत सहायता मिली। हम इस लेख में इन महासभाओं का संक्षिप्त परिचय देने का प्रयत्न करेंगे।

प्रथम महा सभा

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के पश्चात् (४७७ इस्वी पूर्व में) बौद्ध संघ का नेता आचार्य महाकाश्यप बना। इसने अनुभव किया कि भगवान् की शिक्षाओं को विशुद्ध रूप से लेख बद्ध करने की आवश्यकता है। बुद्ध ने अपने जीवन काल में कोई ग्रन्थ नहीं लिखा था। भिन्न भिन्न स्थानों पर वे जो उपदेश दिया करते थे, जिन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया करते थे, शिष्य गण उन्हें स्मरण कर लेते थे। अनेक शिष्य होने के कारण वास्तविक सिद्धान्तों में मतभेद हो सकता था। साथ ही, बुद्ध के साथ निरन्तर निवास करने वाले शिष्य भी निर्वाणपद प्राप्त करते जाते थे। इसी लिये उस समय लोगों ने कहना प्रारम्भ कर दिया था कि "भगवान् की शिक्षायें धूम्र की तरह लुप्त होती जाती हैं, पुराणे सब भिक्षुओं का स्वर्गवास होगया है अतः भगवान् द्वारा उपदिष्ट सूत्रान्त, विनय और मात्रिका का पाठ अब बन्द होगया है।"

इस जनापवाद को दृष्टि में रख कर आचार्य महाकाश्यप ने भिक्षु पूर्ण को आदेश दिया कि सब भिक्षुओं को एकत्र करो। पूर्ण के प्रयत्न से ५०० प्रधान भिक्षु मगध को राजधानी राजगृह में एकत्रित हुए। उस समय मगध के राजसिंहासन पर राजा

अजात शत्रु विराजमान था। वह स्वयं बौद्ध धर्म का अनुयायी था। अतः इस महासभा के लिये उस ने राजगृह के न्यग्रोधगुहा नामक विहार में सब प्रकार का प्रबन्ध कर दिया। सात मास तक न्यग्रोधगुहा में निरन्तर इस महासभा के अधिवेशन होते रहे। इस बीच में 'विनय' 'धम्म' और 'अभिधम्म' पिटकों का संग्रह किया गया। अभी तक अनेक इस प्रकार के भिक्षु जीवत थे, जो महात्मा बुद्ध के साथ निवास कर चुके थे और जिन्हें बुद्ध के बहुत से उपदेशों को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुवा था। विशेषतः बुद्ध के साथी भिक्षु आनन्द और उपाली की सहायता से इन पिटकों को संगृहीत किया गया। अन्य भिक्षुओं ने भी उनका अनुमोदन किया और इस प्रकार प्रथम महासभा में त्रिपिटकों को निश्चित रूप से लेख बद्ध कर दिया गया।

द्वितीय महासभा

बौद्ध धर्म की द्वितीय महासभा बुद्ध के परिनिर्वाण के ११० साल पश्चात् (३६७ ई०पू० में) वैशाली में हुई। यद्यपि पहली महासभा में धर्म के सिद्धान्तों का पूर्णतया निश्चय होचुका था, पर उनकी व्याख्या तथा पालन करने में अब निरन्तर शिथिलता आ रही थी। विशेषतया, वैशाली के भिक्षु लोगों ने बौद्ध धर्म में दस नवीन बातों (दस वत्थुनि) का समावेश कर दिया था। ये दस नवीन बातें निम्न लिखित हैं:—

(१) वैशाली के भिक्षु लोग सम्बोधन के लिए 'अलल' इस शब्द का प्रयोग करने लग गये थे। यह सम्बोधन असली धर्म और पुराणी प्रथा के प्रतिकूल था।

(२) वैशाली के भिक्षु आनन्द भोग में लग गये थे। वे भोग को धर्म विरुद्ध नहीं समझते थे।

(३) वैशाली के भिक्षु अपने हाथ से ज़मीन खोदने लग गये थे। वे स्वयं ज़मीन खोदने या अपने लिए ज़मीन खुदवाने को धर्मानुकूल समझते थे।

(४) वैशाली के भिक्षु अपने पास नमक सञ्चित करके रखना धर्म के विरुद्ध नहीं समझते थे।

(५) वैशाली के भिक्षु अपने 'विहार' से एक योजन या आधा योजन दूर जाकर एकत्रित होने, तथा वहाँ मिलकर भोजन करने को धर्म के अनुकूल समझने थे।

(६) वैशाली के भिक्षुओं ने नरम और कड़ा-दोनों प्रकार का भोजन खाना प्रारम्भ कर दिया था। वे केवल दूसरों द्वारा अवशिष्ट भोजन ही नहीं खाते थे। साथ ही भिक्षुओं की पुरानी प्रथा को छोड़ कर उन्होंने दो उँगलियों से भोजन करना शुरू कर दिया था।

(७) वैशाली के भिक्षुओं ने आराम

आदि मादक द्रव्यों का सेवन प्रारम्भ कर दिया था।

(८) वैशाली के भिक्षुओं ने समय समय पर कच्ची लस्सी प्रभृति आहार भी नियमानुकूल समझ लिया था।

(९) वैशालीके भिक्षुओं ने पुरानी भिक्षुप्रथा के प्रतिकूल एक नई प्रकार की चटाई का प्रयोग करना भी स्वीकृत कर लिया था।

(१०) वैशाली के भिक्षु गोलाकृति भिक्षापात्र को नानाविध सुगन्धों से सुगन्धित तथा पुष्पों से सुशोभित करना धर्मके प्रतिकूल नहीं समझते थे।

इन दस बातों में अनेक इस प्रकार की भी हैं, जो बहुत साधारण हैं, जिन का धर्म से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं प्रतीत होता। परन्तु वे एक भाव को सूचित करती हैं। इनसे प्रतीत होता है कि वैशाली के भिक्षु बुद्ध द्वारा उपदिष्ट तपस्यामय जीवन को त्याग कर भोग की तरफ़ झुक रहे थे। परमार्थ की अपेक्षा सांसारिक विषयों का उन्हें अधिक ध्यान था। धर्मों के इतिहास का अनुशीलन करते हुए हम देखते हैं कि प्रायः सभी धर्मों में इसी प्रकार धीरे २ शिथिलता आती रहती है। कुछ समय बाद साधु, भिक्षु व सन्यासी लोग अपनी स्थिति को भूल कर सांसारिक प्राणी बन जाते हैं और धर्म को बहुत क्षति पहुँचाते हैं। इस प्रवृत्ति से बौद्धधर्म की रक्षा करने के लिये आचार्य यश ने प्रयत्न किया। वैशाली के इन भिक्षुओं के विरुद्ध यशके नेतृत्व में एक भारी आन्दोलन प्रारम्भ हुवा। बौद्ध साहित्य द्वारा ज्ञात होता है कि आचार्य यश ने इसी प्रयोजन के लिये बहुत से देशों में भ्रमण किया और सब स्थानों के भिक्षुओं को इस प्रवृत्ति के विरुद्ध आन्दोलन में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। इसी तरह वैशाली के भिक्षुओं ने भी आन्दोलन शुरू किया। वे भी अपनी बातों का प्रचार करने के लिए नानाविध उपायों का आश्रय लेने लगे। इस प्रकार बौद्ध जगत् में एक महत्त्वपूर्ण समस्या उत्पन्न होगई। इसी को हल करने के लिये वैशाली नगरी में यह द्वितीय महासभा की गई। इसमें ७०० प्रसिद्ध अर्हत व भिक्षु लोग एकत्रित हुवे। वैशाली के भिक्षुओं की 'दस वत्थूनि' पर इसमें विचार किया गया और यह निर्णय किया गया कि ये दसों बातें धर्म के विरुद्ध हैं। वैशाली के भिक्षुओं की इस महासभा में पराजय हुई।

परन्तु इस वादविवाद का यहीं अन्त नहीं होगया। इस महासभा के समाप्त होते ही पराजित दल ने नई सभा का आयोजन किया। उसमें कुल मिलाकर दस हजार भिक्षु सम्मिलित हुवे। इस सभा को बौद्ध साहित्य में महासंगीति नाम से कहा जाता है।

दीपवंश में इस महासंगति का

वृत्तान्त लिखा है। उसके अनुसार इसमें सम्मिलित भिक्षुओं ने बुद्ध की शिक्षाओं को तोड़मोड़ कर धर्म-ग्रन्थों की नई व्याख्या शुरू कर दी। भगवान् बुद्ध के वास्तविक अभिप्राय को भुला कर मनमाने अर्थ करने प्रारंभ कर दिये। परिणाम यह हुवा कि बौद्ध-धर्म में 'दो बड़े भाग होगये। इस 'महासंगति' में सम्मिलित भिक्षु एक नये सम्प्रदाय में परिवर्तित होगये, जिसे 'महासांघिक'' कहा जाता है। ये लोग पुराने सनातन विचार रखने वाले सम्प्रदाय को 'थेरवाद' वा स्थविरों (Conservatives) का सम्प्रदाय और अपने आपको 'आचार्य-वाद' वा विद्वानों (Learned) का सम्प्रदाय कहने लगे।

इस तरह वैशाली की महासभा के बाद बौद्धधर्म में पहली फूट (Schism) होकर थेरवाद और महासांघिक (आचार्यवाद) सम्प्रदायों का जन्म हुवा। थेरवाद का दूसरा नाम 'विभज्यवादिन्' सम्प्रदाय भी है। यह फूट की प्रक्रिया यहीं समाप्त नहीं होती। हम देखते हैं, कि इन दो सम्प्रदायों से और अनेक सम्प्रदायों की उत्पत्ति होती है। तिब्बती ग्रन्थ भव्य के अनुसार वैशाली की महासभा के पश्चात् बौद्धधर्म १८ सम्प्रदायों में विभक्त होगया। धीरे २ महासांघिक सम्प्रदाय ८ भागों में और थेरवाद सम्प्रदाय १० भागों में विभक्त होगया। महासांघिक सम्प्रदाय के ८ भाग निम्न-लिखित हैं—

(१) महासांघिक
(२) एकव्यावहारिक
(३) लोकोत्तरवादिन्
(४) बहुश्रुतीय
(५) प्रज्ञाप्तिवादिन्
(६) चैत्यिक
(७) पूर्वशैल
(८) अवरशैल

इसी तरह स्थविरवाद वा थेरवाद निम्नलिखित दस सम्प्रदायों में विभक्त हुवा—

(१) स्थविर या हेमवत
(२) सर्वास्तिवादिन् या हेतुविद्य
(३) उत्तरीय व संक्रान्तिवादिन्
(४) सद्धर्मवर्षक या काश्यपीय
(५) वत्सीपुत्रीय
(६) धर्मोत्तरीय
(७) भद्रायनीय
(८) सम्मतीय
(९) महीशासक
(१०) धर्मगुप्तक

इन सम्प्रदायों के सिद्धान्त क्या थे और ये किस प्रकार विभक्त हुवे, इसे यहाँ लिखने की कोई आवश्यकता नहीं है। ३६७ ई० पू० से लेकर २४६ ई० पू० तक—एक सदी के लगभग समय तक—बौद्धधर्म इसी प्रकार नानाविध सम्प्रदायों में विभक्त होता रहा। उसे मिला कर एक करने के लिये—उसमें नई

स्फूर्ति उत्पन्न करके लिये कोई प्रयत्न नहीं किया गया। इस बीच में बौद्धधर्म की उन्नति बहुत कुछ रुक सी गई। सम्पूर्ण उत्तरीय भारत में भी बुद्ध की शिक्षाओं का प्रचार नहीं हुवा। मध्य और प्राच्यदेशों के बौद्ध भिक्षुओं ने परस्पर वादविवाद और साम्प्रदायिक झगड़ों में ही अपनी शक्ति को लगा दिया।

तृतीय महासभा

२४६ ई० पू० में इस अवस्था को दूर करने के लिए आचार्य मोद्गलिपुत्र तिष्य ने प्रयत्न किया। इस समय प्रायः सम्पूर्ण भारत मगधसाम्राज्य के अधीन हो चुका था। प्रताप शाली मौर्य्य सम्राट् भारत में राजनीतिक एकता स्थापित करने में समर्थ हुवे थे। सम्राट् अशोक स्वयं बौद्ध था। उसके शान्तिमय और 'धर्म्म' प्रचार में निरत शासन में बौद्ध सम्प्रदायों को एकता के सूत्र में बांधकर सम्पूर्ण संसार में भगवान् बुद्ध की शिक्षाओं को फैला देने की प्रवृत्ति प्रारम्भ हुई। इस का नेता आचार्य मोद्गलिपुत्र तिष्य बना। उसने पाटलि पुत्र में अशोक की सहायता से बौद्ध भिक्षुओं को एकत्र किया। आचार्य तिष्य थेरवाद सम्प्रदाय (विभज्यवादिन्) का था, अतः इस महासभा में भी इसी सम्प्रदाय व इस के अन्तर्गत सम्प्रदायों के भिक्षुओं को एकत्रित किया गया था। महासांघिक सम्प्रदाय के जो बहुत से भिक्षु इस महासभा में सम्मिलित होने के लिए आगये थे, उन्हें 'मिथ्या भिक्षु' समझ कर बहिष्कृत कर दिया गया। इस प्रकार जो भिक्षु बहिष्कृत हुवे, उनकी संख्या महावंश के अनुसार ६० हज़ार है। अब यह महासभा केवल एक दल वा एक सम्प्रदाय की ही रह गई। दूसरा मुख्य सम्प्रदाय इस में न रहा। मालूम पड़ता है कि महासांघिक और थेरवाद-इन दो सम्प्रदायों में मतभेद इतना बढ़ चुका था, कि उसे दूर कर सकने की कोई सम्भावना नहीं थी। इसी लिए मौद्गलिपुत्र तिष्य ने थेरवाद के आन्तरिक भेदों को दूर करना ही पर्याप्त समझा था। इस के लिए प्रयत्न करने और धार्मिक विचार के लिए १००० विद्वान् भिक्षुओं को चुन लिया गया। पाटलिपुत्र के प्रसिद्ध आशोकाराम में ये विद्वान् भिक्षु ६ मास तक सभा करते रहे। अन्त में उनके आन्तरिक भेद मिट गये और आचार्य तिष्य ने सब विवादग्रस्त विषयों पर निर्णय देने के लिए एक ग्रन्थ तैयार किया, जिस का नाम 'कथावत्थु' है। इस में थेरवाद सम्प्रदाय के सब विवाद ग्रस्त विषयों पर व्यवस्था दी गई है।

इस महासभा में थेरवाद सम्प्रदाय के आन्तरिक भेदों को ही मिटाने का प्रयत्न नहीं किया गया अपितु बौद्धधर्म को विश्वव्यापी धर्म बनाने के लिए बड़ा भारी आयोजन किया गया। सर्वत्र

बौद्ध धर्म का प्रचार करने के लिए ६ प्रचारक मण्डल तैयार के किए गये। इन प्रचारक मण्डलों तथा उन्हें समर्पित देशों की सूचि इस प्रकार है—

देश

कश्मीर और गान्धार
महीशमण्डल (माइसूर)
बनवासी (उत्तरीय कनारा)
अपरान्तक (बम्बई का उत्तर तट)
महारट्ठ (महाराष्ट्र)
योन (भारत से उत्तरपश्चिम के प्रदेश)
सुवर्न्न भूमि (पेगू और मौलमीन)
लङ्का (सीलोन)

मण्डल का नेता

मज्झन्तिक
महादेव
रक्खित
योनक धर्मरक्खित
महारक्खित
मज्झिम, कस्सप
सोण, उत्तर
महिन्द

इन प्रचारकों ने किस प्रकार बौद्धधर्म का विभिन्न देशों में विस्तार किया, इस पर प्रकाश डालने की कोई आवश्यकता नहीं है। इतना लिखना पर्याप्त है, कि इसी तृतीय महासभा के द्वारा थेरवाद सम्प्रदाय का विस्तार प्रारम्भ हुवा, और इसी से बौद्धधर्म में एक ऐसी शक्ति उत्पन्न हुई, जिस से कि वह विश्वव्यापी धर्म बन गया। इस दृष्टि से तृतीय महासभा का बड़ा महत्त्व है।

चतुर्थ महासभा

बौद्धधर्म की चतुर्थ महासभा सम्राट् कनिष्क के शासनकाल में ईसा के एक सदी पश्चात् हुई। कनिष्क कुशानजाति का प्रसिद्ध सम्राट् हुवा है। इसका राज्य सम्पूर्ण पश्चिमीय भारत के सिवाय अफ़गानिस्तान, कान्धार, काशगर, यारकन्द और खोतान तक विस्तृत था। पाटलीपुत्र और तिब्बत तक भी कनिष्क की सेनाओं ने विजय यात्रा की थी। इस शक्तिशाली सम्राट् ने बुद्ध की शिक्षाओं से प्रभावित होकर बौद्धधर्म को स्वीकृत कर लिया। इसके गुरु का नाम आचार्य पार्श्व था। बौद्धधर्म का अनुशीलन करते हुवे कनिष्क ने अनुभव किया कि धार्मिक ग्रन्थों में अनेक मतभेद उपलब्ध होते हैं। नानाविध सम्प्रदायों की सत्ता ने उसके हृदय को आन्दोलित कर किया और इसी लिए अपने गुरु आचार्य पार्श्व की सलाह से उसने बौद्धधर्म की चतुर्थ महासभा का आयोजन किया। यह महासभा काश्मीर की राजधानी श्रीनगर में हुई। बहुत बड़ी संख्या में भिक्षु लोग एकत्रत हुवे। परन्तु सभा के लिये ५०० विद्वान् भिक्षुओं को चुन लिया गया। आचार्य वसुमित्र सभापति चुने गये तथा उपसभापति के पद पर आचार्य अश्वघोष को नियत किया गया। इस महासभा में बौद्धधर्म के सम्पूर्ण धार्मिक साहित्य का

गम्भीर अनुशीलन किया गया और पिटक ग्रन्थों की नई व्याख्या की गई। सूत्र पिटक की व्याख्या के लिए उपदेश शास्त्र, विनयपिटक की व्याख्या के लिए विनय विभाषाशास्त्र, अभिधर्म पिटक की व्याख्या के लिये अभिधर्मविभाषा शास्त्र नाम की टीकायें तैय्यार की गईं। प्रत्येक प्रश्न पर इन टीकाओं में विचार किया गया। सम्राट् कनिष्क की आज्ञा से इन ग्रन्थों को ताम्रपत्रों पर खुदवा कर एक मजबूत सन्दूक में बन्द कर रखवा दिया गया और ऊपर से एक स्तूप का निर्माण कर दिया गया। यह स्तूप श्रीनगर के समीप ही बनवाया गया था।

बौद्धधर्म के इतिहास में इस चतुर्थ महासभा का बड़ा महत्त्व है। महायान और हीनयान इन दो सम्प्रदायों का स्पष्ट भेद इसी महासभा के पश्चात् हुवा। इस विषय पर हम फिर कभी प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

जीवन-पथ

(श्री शंकर)

जीवन पथ में कहीं किसी के-
साथी तुम भी बनते जाना।
यदि न किया उपकार किसी का
पर अपकारी ना हो जाना॥

श्रावण की घनघोर घटा में,
झंझा वातों की विपदा में,
चञ्चु उठाये चातक को तुम,
एक बूँद ही बस दे जाना॥

* * * * * *

जीवन के गुरुतर भावों से,
झुके हुए जो जन जाते हैं।
उन वृद्धों की आश्रय लठिया,
बन कर आश्वासन दे जाना॥

* * *

स्वतन्त्रता के रण में डट कर,
वैरी दल के दिल दहला कर।
मातृभूमि के जय घोषों से-
स्वर्गालय को थर्रा जाना॥

जीवन-पथ से विचलित होकर,
घोर निशा में भटक रहे हों।
भग्न-हृदय उन भ्रान्त जनों को,
ज्योति-दीप दिखलाते जाना॥

* * * * * *

सेवा-पथ है दुर्गम राही !
इस जीवन का सार यही है।
जग में आकर यह न किया तो,
निष्फल मानव तन में आना॥

मौसम का बदलना !

[लेखक— पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार]

(१)

"नहीं," यह हरगिज़ न होगा। हुसैन! मैं अपने मालिक के साथ नमकहरामी नहीं कर सकता। लाला ने बचपन से मुझे पालापोसा है। मैं उन्हें दग़ा नहीं दे सकता। मैं कुछ पढ़ा-लिखा भले ही नहीं हूं पर यह मैं ख़ूब जानता हूं कि बुराई बुराई ही है चाहे वह मुसलमान के साथ की जावे, चाहे ग़ैर मुसलमान के।"

हुसैन ने कहा—"मौसम! तुम बड़े कमज़ोर दिल के आदमी हो। ऐसे सवाब का मौका तुम्हें हासिल है पर तुम हिचकिचाते हो और बगलें झाँकते हो! देखो, लाला रूपचन्द ने आज अब्दुल्ला को बरख़ास्त किया है, कल अहमद का नम्बर होगा और परसों तुम्हारी भी बारी आसकती है। लाला इस बात पर आमादा मालूम होते हैं कि और हिन्दुओं की तरह वे भी अब किसी मुसलमान को नौकर न रक्खेंगे। अच्छा यही सही। हम भी देख लेंगे।"

मौसम ने कहा— "भाई! अब्दुल्ला ने जब लाला के काम में कई बार बेई-मानी की तो लाला ने मजबूरन उसे अलग किया है। इस बेईमानी को तो कोई मुसलमान मालिक भी बरदाश्त नहीं कर सकता। इसमें लाला का क्या कसूर है?"

हुसैन— "काफ़िर को धोखा देना गुनाह में शामिल नहीं।"

मौसम— "हुसैन! क्या मुसलमानों के सिवाय सभी काफ़िर हैं? अगर यह ठीक है तब तो ख़ुद रसूल साहब के माँ बाप भी काफ़िर ठहरेंगे। क्या तुम उनकी इज़्ज़त नहीं करते हो।"

हुसैन— "इस सबका क्या मतलब है?"

मौसम— "इसका मतलब यह है कि सारे अच्छे आदमी मुसलमानों में ही नहीं होते। इस्लाम से बाहर भी बहुत नेक आदमी हो सकते हैं। मेरे मालिक भी उन्हीं में से एक हैं। मैं उन्हें काफ़िर नहीं समझता।"

हुसैन— (ज़रा जोश में आकर) "मौसम! तुम अजीब खोपड़ी के आदमी हो। यहाँ अपनी समझ की बात ही क्या है। हमें तो कुरानपाक का हुक्म पत्थर की लकीर है। उसके मुताबिक अगर ख़ुद मुहम्मद साहब के बाप भी काफ़िर ठहरें तो हमारे लिये वे वैसे ही हैं जैसे और हिन्दू वगैरह। अगर ज़रूरत पड़े तो हम उनके साथ भी वैसे ही पेश आवें जैसे कि और काफ़िरों के साथ आते हैं। ख़ैर यह सब रहने दो। हमारे मज़हब में अक़्ल का दख़ल नहीं। हरेक आदमी सयाना नहीं हो सकता। इसलिये जो राह सयाने

बतलावें उसपर चलना हम सब का फ़र्ज़ है। अब मतलब की बात करो। मैं 'हाँ' या 'ना' में जबाब माँगता हूँ। बोलो, तुम सरला को चाहते हो या नहीं।"

अब तो मौसम चक्कर में पड़ गया। सरला की भोलीभाली सूरत उसकी आँखों के सामने नाचने लगी। यह प्रश्न उसके लिये बिल्कुल नया था। अभी तक मौसम खुद भी ठीक ठीक न जानता था कि वह सरला को चाहता है या नहीं। वह सरला के साथ बहुत दिनों खेला है। वह उससे अब भी उसी तरह मुहब्बत करता है। वह नहीं चाहता कि सरला का तनिक बाल भी बाँका हो। पर इन सब शुभ कामनाओं के पीछे कोई और भी छुपा हुवा भाव काम कर रहा है या नहीं यह उसे खुद मालूम न था। पर आज हुसैन के ऊपर वाले सवाल ने इस मामले को ऐसे साफ़ कर दिया जैसे कि हवा का एक झोंका बादल को हटा कर आसमान को साफ़ करदे। मौसम ने अपने दिल को बारबार टटोला तो भी उसे उसमें एक ज़र्रा भी खुदगर्ज़ी का निशान न दीखा। उसने कड़क कर जबाब दिया—"हुसैन! मैं सरला को नहीं चाहता। मैं उसे अपनी छोटी बहिन की तरह प्यार ज़रूर करता हूं। मेरी यह दिली ख़्वाहिश है कि मैं किसी तरह भी उसका कुछ भला कर सकूं। पर मैं उसे उन मायनों में नहीं चाहता जिनमें कि तुम सवाल कर रहे हो।"

हुसैन—"मौसम! मैं देखता हूं कि हिन्दू की रोटी खाकर तुममें भी वहम का माद्दा बहुत बढ़ गया है। इसका नतीजा तुम्हारे लिये ही बेहतर न होगा। तुम फिर भी हमारी बात मानोगे। फ़ज़ूल वक्त क्यों खोते हो। अभी बहुत से काम बाकी हैं। मैं पहिले पहिल तुम्हारे ही पास आया हूं। तुम बिसमिल्ला ही ग़लत किये देते हो। देखो इसमें तो शक है ही नहीं कि मेरे आदमी हिन्दू मुहल्लों में आग लगावेंगे, उनकी औरतों और लड़कियों और बच्चों को भगायेंगे और उनके बाज़ारों को लूटेंगे। तुम सारी उमर नौकरी करके जो नहीं पा सकते वह सिर्फ़ दो घण्टे के फेर में पाजावोगे। लाला रूपचन्द लखपति आदमी हैं। उनकी दौलत का एक बहुत बड़ा हिस्सा तुम्हारे हाथ लगेगा। उनकी परीजमाल लड़की तुम्हारी बीबी बनेगी। बोलो और क्या चाहते हो? इतनी बड़ी नियामत को ठुकराना अक़्लमन्दी का काम न होगा। सरला को तुम कबूल न करोगे तो वह ज़रूर ही किसी और मुसलमान के पल्ले बाँध दी जावेगी। उसकी तो किस्मत में यही बदा है; और यही होकर रहेगा। हाँ, तुम अलबत्ता ऐसे मौके से हाथ धो बैठोगे और पीछे अपनी बेवक़ूफ़ी पर पछतावोगे। तुम मेरे दोस्त हो इसीलिये मैं

तुम्हारे साथ इतनी मगजपच्ची कर रहा हूं। अब तो तुम सरला के साथ निकाह करके ही उसका भला कर सकते हो और किसी तरीके से नहीं।"

यह सब कुछ सुनकर मौसम चौंक पड़ा। उसने अपने आपको एक अजब शशोपञ्ज में पड़ा हुआ पाया। वह कुछ देर तक चुपचाप खड़ा सोचता रहा। आखीर में उसने मन-ही-मन उस साज़िश का भण्डाफोड़ करना ही तय किया। उसने यह पक्का इरादा कर लिया कि वह ठीक मौके पर, यानि मुहर्रम के दिन ही, अपने मालिक को और दारोग़ा साहिब को इसका भेद देदेगा। मगर ऐसा करने में उसे अपनी जान जाने का पूरा ख़तरा है क्योंकि बदमाश उसे हरगिज जीता न छोड़ेंगे। उस ने हुसैन से पूछा—"भाई मुझे इस काम में कोई आगापीछा नहीं। मगर हरेक काम के सारे पहलुओं पर पहिले ही ग़ौर कर लेना दानाई है। मैं डरपोक नहीं हूँ। मगर सिर्फ़ दूर-अन्देशी के ख़याल से एक बात पूछता हूँ।"

हुसैन—"बड़े शौक से पूछो।"

मौसम—"अगर हम में से कोई फूट पड़े या और ही किसी तरह से हिन्दुओं को या सरकार को ही हमारी इस चाल का पता चल जावे तब तो बड़ी मुश्किल का सामना करना पड़ेगा।"

हुसैन—"बस इतनी ही सी बात है। इसीलिये तुम इतने कतराते हो। यह तो कुछ भी बात नहीं। बेफ़िकर रहो। सब बन्दोबस्त पक्का है। यह तो तुम जानते ही हो कि सारी पुलिस, मय दारोग़ा साहिब के मुसलमान है। उस पर तुर्रा यह कि डिप्टी साहिब भी मुसलमान हैं। अब तो "सैय्याँ भये कोतवाल फिर डर काहे का" तिस पर भी दारोग़ा साहिब ने ख़ुद मदद करना कबूल कर लिया है।"

मौसम ने देखा कि अब कोई चारा नहीं है। होनहार ज़बरदस्त है। उसके आगे सिर झुकाना ही पड़ेगा। उसने मन-ही-मन कुछ सोचा और अन्त में कहा—"अच्छा देखा जावेगा"। हुसैन ने ताना देते हुये कहा—"अब आये बच्चू सीधे रास्ते पर। मैंने पहिले ही कहा था कि 'मियाँ जी पछतायेंगे वही चने की खायेंगे' अब भी तो कबूल करना ही पड़ा। देखो, तुम बड़े ख़ुशकिस्मत हो। ख़ुदा ने चाहा तो तुम देखते ही देखते एक बहुत बड़े आदमी बन जावोगे। अच्छा, अब आराम करो। मैं कल फिर मिलूंगा।"

(२)

लाला रूपचन्द शहर के नामी ग्रामी रईसों में से हैं। लक्ष्मी की भी आप पर विशेष कृपा है। ज़मींदारी और लेन-देन के साथ २ सर्राफ़े की एक दूकान भी ख़ूब अच्छी चल रही है। सब लोग आपकी इज़्ज़त करते हैं। आप की आयु अब लगभग चालीस साल के होगी। सन्तान केवल एक कन्या है

जिसका नाम है-सरला। सरला को यदि पूर्णयुवती नहीं कहा जासकता तो इसमें भी सन्देह नहीं वह अब बालिका नहीं है। वह देखने में १४, १५ साल की मालूम होती है। लाला जी उसे बहुत प्यार करते हैं। उसको शिक्षा-दीक्षा का भी विशेष ध्यान रखते हैं। आपके विचार बहुत उदार हैं। हिन्दु होते हुवे भी, हिन्दुओं की सम्मति में आप मुसलमानों से विशेष सौहार्द रखते हैं। रामलीला के चन्दे के लिये कभी तंग हाथ होने की शिकायत भले ही करदें पर खिलाफ़त के फंड में जी खोल कर देते हैं। चारों ओर से जब हिन्दु-मुसलमानों के झगड़ों के समाचार आते हैं तो आप उनकी उत्तरदायिता हिन्दुओं पर ही डालने की भरसक कोशिश करते हैं। यह स्वीकार करने में भी आप संकोच नहीं करते कि इन झगड़ों का मूल कारण हिन्दुओं की ज़्यादती ही है जो उन्होंने शुद्धि और संगठन का आन्दोलन चलाकर मुसलमानों पर की है। अपने इन विचारों के लिये उन्हें कभी २ अपने जातिभाइयों के आक्षेप भी सुनने पड़ते हैं तथापि आप अपने विचारों पर दृढ़ हैं।

आपका यह भी विचार है कि ज़मींदारी के काम में हिंदू कर्मचारी उनकी उतनी सहायता नहीं कर सकते जितनी कि मुसलमान। इसीलिये लगान आदि वसूल करने के लिये उन्होंने प्रायः सारे मुसलमान नौकर ही रख छोड़े हैं। उन्हें अपने इन कर्मचारियों पर पूरा विश्वास है। प्रश्न उठने पर वे प्रायः कहा करते हैं कि दुनियाँ भरके मुसलमान अपने मालिकों को भले ही धोखा देदें पर ये मेरे आदमी ऐसा नहीं कर सकते। मैं इन्हें २०, २० बरसों से आजमा रहा हूं। अजी मैं तो आँख देखकर नस्ल पहचानता हूँ-इत्यादि। उनका यह भी विचार है कि मुसलमान कर्मचारी अपनी मुस्तैदी से जितना फ़ायदा अपने मालिक को पहुंचाता है उसके एवज़ में यदि वह अपनी मुट्ठी भी गरम करले तो कुछ हर्ज़ नहीं क्योंकि एक हिंदू नौकर से वह फिर भी सस्ता पड़ता है। यद्यपि उन्होंने अभी कुछ दिन हुवे अपने एक नौकर अब्दुल्ला को कई वार ठीक हिसाव न देसकने के कारण अलग कर दिया है तथापि उनके विचारों में कोई परिवर्तन नहीं हुवा है।

मौसम पर उनकी विशेष कृपा है। उसके माँ बाप जुलाहे का काम करते थे और उनके ही किसी गाँव की रैयत थे। बहुत दिन हुवे कि बीमारी में दोनों को ही अपनी जिन्दगी से हाथ धोना पड़ा। उस वक्त मौसम ७, ८ बरस का लड़का था। तब से लाला ने उसे अपने घर पर रखकर ही इतना बड़ा किया है। वह लालाजी का ख़ास नौकर है। उसके लिये मकान, दुकान, बाहर भीतर कहीं बन्दिश नहीं है। अपनी

ख़ास तालियाँ भी उसके हाथ में देते हुये उन्हें संकोच नहीं होता। मौसम भी उन्हें अपने बाप से बढ़कर मानता है। लाला के नौकरों के साथ वह अलग जगह नहीं रहता घर पर ही खाना खाता है और बाहरली बैठक में सो रहता है। वह और सरला साथ २ खेले हैं। दोनों ही आपस में एक दूसरे को भाई बहिन की तरह प्यार करते हैं। धर्म का भेद उनके मेल मिलाप में कोई दीवार खड़ी नहीं करता। मौसम प्रायः कहा करता है कि परमेश्वर ने किसी भूल से उसे मुसलमान घर में जन्म देदिया है। वह नाम मात्र को ही मुसलमान है क्योंकि उसका रहन-सहन खाना पीना सब हिन्दू ढंग का ही है। उसका यह काफ़िरपना उसके जातिभाइयों को बहुत खटकता है। इधर कुछ दिनों से हुसैन नाम के एक कसाई ने उससे बहुत मेलमोल पैदा कर लिया है। हुसैन के मां बाप कसाई ज़रूर थे मगर हुसैन का दिमाग़ तेज़ था, वह कुछ पढ़कर म्युनिसपैलिटी में नौकर होगया था। सड़कों का काम उसके हाथ में था। मगर रिश्वत ख़ोरी के कसूर में उसे वहाँ से अलग कर कर दिया गया। तब से उसने मिट्टी के तेल की दूकान करली है। शहर भर के गुण्डों का वह सरदार समझा जाता है। हिन्दुओं से उसे ख़ास नफ़रत है क्योंकि कुछ हिंदू मैम्बरों की वजह से ही उसे नौकरी से हाथ धोना पड़ा था। इसी मुहर्रम के मौके पर हिंदुओं की दुकानें लूटने तथा उन्हें नीचा दिखाने के लिये उसने एक बड़ा गिरोह तैय्यार कर लिया है। उसी गिरोह में मौसम को भी शामिल करने के लिये वह कल कोशिश कर गया है। बाज़ार में जहाँ २ मुसलमानों की दुकानें थी वहीं २ लाठियों और छुरों का प्रबन्ध होरहा है।

(३)

जुम्मे की नमाज़ ख़तम होचुकी तो एक मशहूर लीडर थाज़ के लिये खड़े हुवे। आपने कहा—"भाइयो! आज इस्लाम की हस्ती ख़तरे में पड़ी हुई है। मुसलमानों की ज़िन्दगी या मौत का सवाल सिर पर है। इन मुट्ठी भर आर्यों ने हमारी नाक में दम कर रक्खा है। इनकी देखादेखी हिंदुओं की बासी कढ़ी में भी उबाल आया है। इन्होंने भी संगठन और शुद्धि के काम में हाथ लगाया है। यही हालत रही तो वह दिन दूर नहीं कि हिंदुस्तान में काफ़िर-ही-काफ़िर नज़र आवेंगे। खुदा के बन्दों को यहाँ एक पल भर ठहरना मुश्किल होजावेगा। क्या तुम्हें यह मंज़ूर है कि जिस बड़े मुल्क को हमारे बुज़ुर्गों ने अपना ख़ून बहा कर हमारे ऐशोआराम के लिए फ़तह किया था आज उसमें तुम्हें हिंदुओं के रहम का भिखारी होकर रहना पड़े। वे चाहें तो तुम उनके गुलाम बनकर किसी

कोने में अपनी हेच ज़िन्दगी के दिन पूरे कर सको नहीं तो अपना बोरिया बँधना उठाकर यहाँ से कूच करना पड़े। क्या तुम्हें मंजूर है कि कल जो तुम्हारे पैरों की जूतियाँ चाटते फिरते थे वे ही आज तुम्हारी छाती पर मूंग दलें।"

"नहीं-नहीं, यह हमें हरगिज़ मंजूर नहीं।"

"क्या तुमने हिंदुओं को तलवार के ज़ोर से फ़तह नहीं किया था?"

"क्यों नहीं किया था?"

"तो क्या उस इस्लामी तेग़ को अब जंग लग गया?"

"नहीं-नहीं, यह तेग़ अब भी काफ़िरों के ख़ून की वैसी ही प्यासी है।"

"अच्छा, तो मैं देखता हूँ कि अब भी तुममें ज़िन्दगी के निशान बाक़ी हैं। तुम मर नहीं सकते। मगर हाँ, इस वक़्त भी तुम्हें हिंदुओं के दिल पर अपना रोब फिरसे जमाने के लिये जी तोड़कर यत्न करना पड़ेगा। इसके लिये ख़ून ख़राबी से भी नहीं डरना होगा। अब मौलाना हुसैनबख़्श आपके रूबरू मुहर्रम के जुलूस के मुतल्लिक़ अपने ख़यालात का इज़हार करेंगे। मुझे उम्मीद है कि आप उनकी तजवीज़ों पर ज़रूर ग़ौर फ़रमायेंगे।"

इसके बाद हमारा पूर्व परिचित हुसैन खड़ा हुआ और उसने थाड़े से, मगर बहुत ही गैरज़िम्मेवार शब्दों में, लोगों के वहिशयाना जोश को भड़का दिया। कुरान के हवाले देकर उसने लोगों को समझाया कि काफ़िरों का सब कुछ तुम्हारे लिये हलाल है। उसने यह भी कहा कि काफ़िरों के साथ मेल मिलाप रखने और उनकी नौकरी करने से दोज़ख़ में जाना होता है। जिन्होंने अब तक यह गुनाह ग़लती से या जान-बूझ कर किया है उन्हें चाहिए कि वे अब उससे तोबा कर डालें। इस काम के लिये मुहर्रम से बढ़कर और कौनसा मौका होगा। एक काफ़िर के ख़ून या एक काफ़िर औरत के साथ निकाह से ही यह पाप धुल जासकता है-इत्यादि। अख़ीर में उसने ख़ुदा और कुरान के नाम लोगों को कसम दिलवाई कि वे अपने वायदे पर पक्के रहेंगे और इस कार्रवाई का भेद किसी को न देंगे।

(४)

मौसम को सरला के सामने जाने और उस से बात चीत करने का साहस और दिनों की तरह आज न हुवा। उसे अपनी अन्तरात्मा रह रह कर धिक्कारती थी। जो पाप करने का निश्चय उसने आज कर लिया था वह उसे बार बार लज्जित करने लगा। उसके शरीर मे ख़ून तेज़ी से चक्कर काटने लगा। अब बैठक में अधिक बैठना उसके लिये असम्भव हो गया। वह उठा और कम्पनी बाग़ में आकर छाया में पड़ी एक बैञ्च पर बैठ गया।

उसने सोचा कि यदि यह काम बुरा नहीं तो मेरा दिल इतना डरता क्यों है।

सुमति— मौसम ! यह काम वस्तुतः बुरा है। जिसके सोचने से भी तुम्हें इतनी बेचैनी हो रही है उस के कर लेने से तुम्हारा क्या हाल होगा ?

कुमति— कितने ही अच्छे काम भी जब पहिले पहिल शुरु किये जाते हैं उन में घबराहट सी मालूम होती है। कुछ समय बाद वह हट जाती है।

सुमति— रात के अंधेरे में मैले और साफ़ कपड़े में भेद नहीं मालूम होता, इसका यह मतलब नहीं कि मैला कपड़ा मैला ही नहीं।

कुमति— यदि तुम्हें इतनी ही शंका है तो अपने सुख स्वप्नों पर ख़ाक डालो। कोल्हू के बैल की तरह सारी उमर तुम्हें पिसना ही पसन्द है तो मेरे पास तुम्हारे लिये कोई इलाज नहीं। सरला की काली नागिन सी ज़ुल्फ़ों को भूल जावो। लाला की खन-खनाती हुई थैलियों को भूल जावो। चैन से जिन्दगी बसर करने के मन्सूबों को भूल जावो।

सुमति— हां भूल जावो। पाप के पेड़की जड़ गहरी नहीं होती। तुम्हें इन चीज़ों को लेकर क्या करना है। जिस लाला रूपचन्द को तुमने बाप से बढ़ कर माना है, जिसने तुम्हारी अब तक परवरिश की है उसे धोखा देना कहां तक ठीक है। सरला तुम्हें भाई की तरह प्यार करती है। अब तुम राक्षस बन कर उसके सामने आवोगे तो उसे कितना दुःख होगा ?

कुमति— तो, अच्छा मैं जाती हूं। तुम धर्म पर दृढ़ रहो और दर दर जूतियां चटकाते फिरो। तुम्हारी किस्मत ही ऐसी है। सरला तुम्हारे देखते २ दूसरे की बीबी बनेगी–तुम उसके कोई न होगे। मछली पानी के अन्दर भी प्यासी रहे तो किसी और का क्या दोष है। अपना बोया अपने आप काटो।

अबतो कुमति की विजय हुई। मौसम अब भी सब कुछ छोड़ सकता है लेकिन सरला का ख़याल छोड़ना शायद उसके लिये असम्भव है। परमात्मा के सबसे नाज़ुक लेकिन सब से मज़बूत जाल में उस का दिल उलझ गया। वह एक बन्द गाड़ी साथ लिये घर-पर पहुँचा। भीतर जाकर उसने सरला से कहा–"बहिन ! कल मुहर्रम का दिन है। शहर भर बड़ा भारी दंगा होने की अफ़वाह गरम है। इस लिये लाला जी दुकान से उठ कर सीधे शहर से बाहर वाली कोठी में चले गये हैं और उसकी सफ़ाई वगैरह करवा रहे हैं। मुझे तुम्हारे लेने के लिये यहां भेजा है। अब देर का काम नहीं। गाड़ी तय्यार खड़ी है। कपड़े पहिरो और चल बैठो।" सरला को अपने चिरसंगी, विश्वास-पात्र, भ्रातृतुल्य सेवक पर सन्देह करने का कोई कारण नहीं था। वह सीधे

स्वभाव से गाड़ी में जा बैठी। गाड़ी रवाना हुई और कुछ ही देर में किसी मुसलमानी मुहल्ले में एक घर के आगे जा लगी। अब सरला को मालूम हुवा कि उसे धोखा दिया गया है। किन्तु अब रक्षा का क्या उपाय है। हाय, अभागी सरला!

(५)

सारे शहर में कुहराम मचा हुवा है। लोग दुकान बढ़ा २ कर अपने घरों की ओर भागे जा रहे हैं। पकड़ो मारो का शोर मच रहा है। बदमाश लोग घन बजा २ कर ताले तोड़ते हैं और बहुमूल्य वस्तुयें, कपड़े, लोहे की पेटी वग़ैरह को ठेलों पर लाद २ कर ले जा रहे हैं। लूटपाट करके दुकान में आग लगा देते हैं। उन्हें रोकने वाला कोई नहीं।

लाला रूपचन्द दुकान बन्द कर रहे थे कि इसी समय कुछ आदमियों के साथ मौसम भागा हुआ वहाँ आपहुंचा। लालाजीने पूछा—क्या बात है मौसम!

मौसम ने कहा—"लालाजी आप फ़िकर न करें। मेरे जीते जी आपका बाल भी बाँका नहीं हो सकता। यह कहते हुवे मौसम ने लालाजी को दुकान से बाहर धकेल दिया और तिजोरी को खोल डाला। नीचे गिरते गिरते लालाजी ने बड़ी करूणापूर्ण दृष्टि से मौसम की ओर देखते हुवे कहा —"मौसम! क्या तुम भी ऐसे होगये।" उस बदमाश ने कड़ककर कहा—"लाला जी! अब मौसम बदल गया है।"

सारे बाज़ार में गुण्डेशाही का राज्य था। किसी को किसी का डर न था। ये बदमाश भी अपने लालच को न रोक सके। इतने रुपये देख कर इनकी आँखें खुल गईं। नोटों की गड्डियाँ निकाल २ कर ये वहीं बँटवारा करने लगे। लालाजी का किसी को खयाल ही न रहा। लालाजी ने भी मौका देख धीरे से संकल चढ़ा दी। अब बदमाशों को अपनी भूल पर पछताना पड़ा। वे भीतर से ही किवाड़ तोड़ने की कोशिश करने लगे पर फल कुछ न हुवा। पुलिस ने आकर सबको गिरिफ़ार कर लिया।

* * *

शहर के लोगों में अब जब कभी इस दंगे की चर्चा चलती है तो कुछ लोग कहते हैं कि इन बदमाशों के पकड़े जाने में ईश्वर का हाथ था कुछ कहते हैं कि नहीं, मौसम की सुमति कारण थी। खैर कुछ भी हो लालाजी का नशा उतर गया है और सरला का विवाह अपने 'भाई' के साथ नहीं हुवा है।

सम्पादकीय

आर्यसमाज और गोरा अख़बार

बम्बई के 'टाइम्स ऑफ इन्डिया' में उसके किसी सम्वाददाता का एक लेख छपा है जिस पर पत्र के सम्पादक ने निम्न टिप्पणी की है:—

"हमारे संवाददाता की सम्मति में आर्य-समाज ही उन तमाम लड़ाई झगड़ों तथा दंग

की जड़ है जो देश के भिन्न भिन्न भागों में बार बार हुआ करते हैं और जिन में गवर्नमेंट निहत्थे आदमियों पर गोली चला कर अत्यन्त निन्दनीय कार्य करती है। आगे चल कर हमारा संवाददाता कहता है कि या तो सरकार को चाहिये कि वह आर्य समाज को बिल्कुल दबा दे और अगर वह ऐसा करने में असमर्थ है और जनता के जानोमाल की रक्षा नहीं कर सकती और, शान्ति स्थापित नहीं रख सकती तो उसे चाहिये कि अपनी असमर्थता को खुल्लमखुल्ला स्वीकार करले और शासन का काम एक दम छोड़ दे। हमारी सम्मति में इन जातिगत लड़ाई-झगड़ों के कारणों की जांच ज़रूर करनी चाहिये और साथ ही साथ यह भी जांच करने की जरूरत है कि तंज़ीम, शुद्धि और संगठन इत्यादि आन्दोलनों का देश पर क्या असर पड़ता है। हम अपने संवाददाता के सभी परिणामों को स्वीकार नहीं कर सकते पर इतना अवश्य कहेंगे कि यदि जांच करने पर गवर्नमेंट को यह पता लग जावे कि आर्यसमाज ही तमाम झगड़ों की जड़ है तो फिर बिना किसी हिचकिचाहट के गवर्नमेंट को आर्यसमाज दबा कर बन्द कर देनी चाहिए। ऐसा करने पर अनेक लोग यह आन्दोलन उठायेंगे कि सरकार हमारे धर्म में हस्ताक्षेप कर रही है पर इस प्रकार के आन्दोलन से किसी भी गवर्नमेंट को जो अपने को न्याय के पक्ष में समझती है, नहीं डरना चाहिए।"

जब से आर्य-समाज ने देश के कार्यक्षेत्र में पदार्पण किया है तब से चारों तरफ़ जागृति के चिन्ह दीखने लगे हैं। चारों पहलुओं में देश उन्नति कर रहा है। आर्य समाज ने शिक्षा में, राजनीति में, समाज में क्रान्ति न मचा दी होती तो हिन्दु-धर्म पचास ही साल में इतिहास की चीज़ हो गया होता। इस समय भारत सचेत दीखता है, भारतवासी जगे हुए हैं और यह सब आर्यसमाज की ही सिपाहीगिरी का परिणाम है। भला यह बात भारत के लुटेरों को कैसे पसन्द आ सकती है? चोर कब चाहता है कि घरवाला जाग जाय? इसी लिए समय २ पर हिन्दु जाति के शत्रुओं की तरफ़ से आवाज़ उठती रहती है—'आर्यसमाज को दबाओ, आर्यसमाज ही सब झगड़ों की जड़ है'! मुसलमान आर्यसमाज को दबाना चाहते हैं क्योंकि यह हिन्दुओं को अपने पूर्वजों के धर्म पर दृढ़ रखने में कमर कस कर प्रयत्न कर रहा है; ईसाई आर्यसमाज को अपनी आंखों का काँटा समझते हैं क्योंकि उन के दांव भी यह नहीं चलने देता; सरकार भी आर्य समाज को अपने लिये ख़तरनाक समझती है क्योंकि आर्यसमाज देश की स्वतन्त्रता चाहता है। परन्तु क्या इस देश के शत्रु मिल कर आर्यसमाज को दबा लेंगे? आर्यसमाज पर इस थोड़े से जीवन काल में जितनी विपत्तियां पड़ी हैं और उसने जिस वीरता से उनका मुकाबिला किया है क्या उसे देख कर भी आर्यसमाज के शत्रुओं की आँखें नहीं खुलीं? आर्यसमाज को पाशविक बल से दबाने का स्वप्न लेने वालों को, चाहे वे मुसलमान हों, ईसाई हों या पशुबल की प्रतिनिधि सरकार हों, याद रखना चाहिये कि आर्यसमाज का प्रवर्तक ऋषि दयानन्द-घुला हुआ काँच पीकर मरा था, आर्यसमाज का सिपाही लेखराम छुरी खाकर मरा था और आर्यसमाज

का प्राण श्रद्धानन्द अभी छाती पर गोली खा कर विदा हुआ है। आर्यसमाज देश में क्रान्ति करने के लिये, हिन्दु सभ्यता पर हो रहे आक्रमणों को अपनी छाती पर लेकर उसकी रक्षा करने के लिये जन्मा है और इस काम में आर्यसमाज अपने एक २ बच्चे को न्यौछावर कर देने के लिये तय्यार है। 'टाइम्स' का संवाददाता और सम्पादक शायद दोनों आर्यसमाज के इतिहास से अपरिचित हैं। नहीं तो उन्हें पहले से ही मालूम होना चाहिए था कि आर्य समाज पर की गई एक-एक चोट आर्यसमाज के बल को दुगुना करती चली जायगी और आर्यसमाज की तपस्या का बल उसे सर्वथा अजेय बना देगा।

रही शुद्धि, संगठन और तबलीग की बात। 'टाइम्स' के संवाददाता को विदित होना चाहिए कि शुद्धि और संगठन के शस्त्रों को हिन्दुओं ने अपनी रक्षा के लिये उठाया है। मुसलमान अपने धर्म के पहले दिन से तबलीग करते आये हैं। उन की तबलीग ज़बर्दस्ती भी होती रही है। यदि मुसलमानों की तबलीग और ईसाइयों के मिशन रोके बिना किसी सरकार ने शुद्धि और संगठन को रोकने की बेवक़ूफ़ी की तो शक्ति के मद से मस्त उस सरकार को पता चल जायगा कि निश्शस्त्र प्रजा भी अत्याचारों से पीड़ित हो कर क्या २ कर सकती है। साथ ही, अब शुद्धि और संगठन का काम हिन्दुओं की प्रतिनिधि सभा हिन्दु महासभा की ओर से हो रहा है तो इस में आर्य समाजियों को सब से अलग कर के गालियाँ निकालने लग जाना कहां की बुद्धिमत्ता है। शुद्धि और संगठन अब हिन्दु-समाज की आर्यसमाज के साथ साझी सम्पत्ति है और उस पर हाथ चलाना बाईस करोड़ व्यक्तियों के अधिकार पर हस्तक्षेप करना है। हमारा विश्वास है कि भारत सरकार ऐसी अन्धी नहीं है कि किसी एक गोरे अख़बार के लिखने से अक्ल खो बैठे अतः हम इस प्रकार के अख़बारों को ही चेतावनी देना चाहते हैं कि वे जो कुछ लिखा करें उस के परिणामों को पहले सोच लिया करें। यदि सरकार ने आर्य समाज को दबाने की किसी प्रकार की नाजायज़ हरकत की तो इतना ही नहीं होगा कि 'अनेक लोग यह आन्दोलन उठाएँ कि सरकार धर्म में हस्तक्षेप क्यों कर रही है'; उस समय जो कुछ होगा उस के लिये 'आन्दोलन' शब्द काफ़ी नहीं होगा। वह आन्दोलन नहीं होगा परन्तु उत्कट तपस्या में शान्ति-पूर्वक अपने खून का बलिदान होगा!

ऋषि दयानन्द का पत्र

१६ दिसम्बर १६२६ के कानपुर के 'प्रताप' में यू० पी० आर्य प्रतिनिधि के अन्तरङ्ग सदस्य पं० अर्जुनदेव जी ने ऋषि दयानन्द का एक अप्रकाशित

पत्र प्रकाशित करवाया है। उनका कहना है कि उन्हें यह पत्र एक नैपाली से मिला है। इस पत्र में स्वामी जी के हवन, जात पाँत, नियोग, विधवा विवाह तथा स्मृतियों के सम्बन्ध में विचार मिलते हैं। यदि यह पत्र सत्य है, और जो कुछ इस में पाया जाता है उस के युक्तियुक्त होने में हमें तो कोई सन्देह नहीं दीखता, तो यह पत्र स्वामी जी के उदात्त उदार विचारों का निदर्शक है। पत्र इस प्रकार है:—

विक्रमी संवत् १९४०, कार्तिक बदी प्रथमा श्रीयुत कल्याणानन्द जी आनन्दित रहो।

रुग्णावस्था के कारण आप के पत्र का उत्तर देने में विलम्ब हुआ। स्वास्थ्य दिन पर दिन ख़राब हो रहा है। विदित होता है कि आपने सत्यार्थ प्रकाश का अध्ययन भली प्रकार किया। आपके प्रश्नों का उत्तर क्रमवार दिया जाता है।

(१) यदि प्रति दिन हवन करने का सामर्थ्य न हो तो गृह सम्मुख आवार में अच्छे अच्छे सुगंधित फूल व बूटियों के पौदे लगाने चाहिये। फूल बूटियों के गन्ध से भी वायु शुद्ध होता है। ऐसा आयुर्वेद का मत है।

(२) गुण कर्मानुसार वर्ण व्यवस्था के विषय में यह आवश्यक है कि वर्तमान जन्म मूलक जात पाँत के बन्धनों को तोड़ कर विवाह हो। इस कार्य की सिद्धि के लिये प्रत्येक प्रान्त की समाजें मिल कर यत्न करें। जन्म-मूलक जात पाँत जब तक कायम है, देश तथा आर्यों की उन्नति नहीं हो सकेगी। जात पाँत तोड़े बिना वर्णव्यवस्था तो आर्यों के लिये मरण व्यवस्था बन गई है। देखें इस डाकिन से आर्यों का पीछा कब छूटता है।

(३) यदि आपका विचार है कि नियोग की व्याख्या मैंने ठीक नहीं की है, तो मैं आपके ममत्यानुसार यह प्रश्न विद्वानों के सम्मुख रख कर उसका यथार्थ अर्थ जो सर्व सम्मति से स्वीकृत होगा, उसे सत्यार्थ प्रकाश की आगामी आवृत्ति में छपवा दूँगा। मैं सदा सत्य को ग्रहण करने के लिये उद्यत हूं। देश की अवस्था को देखते हुए यह उचित है कि अनाथों की रक्षा करना, अनाथ बच्चों को गोद लेकर उन्हें शिक्षा देकर योग्य बनाना, अधिक सन्तान की इच्छा से श्रेयस्कर है। मैं सच्चा नियोग उसे समझता हूं कि "एक पुरुष वा स्त्री न्यारा अनाथ बच्चों का पुत्रवत् पालन कर उन्हें सुयोग्य बनावें" यही सच्चा नियोग है। स्वास्थ्य ठीक न होने से विद्वानों की सभा अभी नहीं कर सकता।

(४) विधवा विवाह करना न करना स्त्रियों के अधिकार में रखना उचित है। स्त्री जाति को उनके अधिकारों से वञ्चित रखना पाप है। अतः धर्मार्य सभा में जहाँ पुरुष प्रतिनिधि रहें वहाँ स्त्रियाँ भी अपनी उन्नति, अधिकारों की रक्षा, तथा सुधारार्थ प्रतिनिधि रहें। फिर यह प्रश्न निश्चित हो जाना चाहिये कि विधवा तथा रँडुओं को पुनर्विवाह का मार्ग श्रेयस्कर है या नहीं। स्त्रियों की अनुमति सिवाय विधवाओं के लिये कोई भी निर्णय ठीक न होगा। प्राचीन समय में गार्गी, सुलभादि सभाओं में अपने मत देती थीं। अब भी ऐसा ही होना चाहिये।

(५) स्मृतियों के अध्ययन से पता लगता है कि परिस्थिति के अनुसार स्मृतियाँ अर्थात् कानून बदलते रहे हैं। अब भी ब्रिटिश राज्य में नये २ कानून बन रहे हैं। समय चक्र सदा बदलता रहता है। अतः जो कुछ कहा या लिखा, उसे बाबा वाक्यम् प्रमाण न समझते

हुए अपनी बुद्धि, विद्या, समय, तथा परिस्थिति का लाभ सबको उठाना चाहिये।

—ह० दयानन्द सरस्वती

स्थान अजमेर

गिरावट की पराकाष्ठा

श्रीयुत् अमृतलाल ठक्कर ने दो पत्र 'हिन्दी नवजीवन' में छपवाए हैं। कठियावाड के एक गांव की घटना है। वहाँ एक अध्यापक जो अन्त्यज जाति के ही हैं रहते हैं। वे ठक्कर महोदय को लिखते हैं:—

प्रथम पत्र

ता० ९–४–२७

नमस्कार के साथ वि० है कि ता० ५–४–२७ को मेरी धर्मपत्नी प्रसूत हुई। ता० ७–४–२७ के दो पहर के बाद वह बहुत बीमार होगई। कई जुलाब हुये और ज़बान भी बंद होगई। सांस बढ़ गया, छाती सूख गई, और पसलियां भी दुखने लगीं। इस लिये मैं यहां के मिहरबान डॉ ....को बुलाने के लिये गया। परन्तु उन्होंने कहा कि मैं ढेडवाडे में नहीं आऊंगा। ढेड को छूकर उसकी जांच नहीं करूंगा। अन्त में नगरसेठ और गरासिया दरबार को लेकर मैं डॉ० सा० के पास गया। २ नगरसेठ से फीस देना कुबूल कराया तब उन्होंने इस शर्त पर आना कुबूल किया कि मरीज़ को ढेड वाडे से बाहर लाओ तो चलता हूं। दो दिन की प्रसूता जच्चा को ढेड वाडे से बाहर लाया गया। तब डा० साहब ने मुसलमान को थर्मामिटर दिया और उन्होंने मुझे दिया। मैंने उसे लेकर अपनी पत्नी की बगल में रक्खा और निकाल कर फिर मुसल्मान को दे दिया। मुसल्मान ने पुनः उसे डा० सा० को लौटा दिया। उन्होंने अंधेरे में दूर से, बिना देखे ही कह दिया कि इसे न्यूमोनिया हो गया है। रात के आठ बजे होंगे। डा० साहब गये, हम लोग दवा लाए, अलसी के लेप का डिब्बा मैं दूकान से खरीद कर लाया, दवा कर रहे हैं। डा० साहब ने शरीर की जांच नहीं की, दूर से देख कर चले गये। २) फी० के दे दिये। ऐसी गंभीर बीमारी है।........से मेरी स्त्री के कुशल समाचार लेने के लिए आये हैं। परमात्मा करेगा सो होगा। अब क्या करना चाहिए, कृपया लिखें।

आपका नम्र सेवक......

द्वितीय पत्र

विशेष यह है कि चिराग गुल होगया। मेरी स्त्री आज दो पहर के दो बजे चल बसी।

सेवक......

एक पढ़ा-लिखा डाक्टर अपने अन्त्यज भाई को थर्मामीटर एक मुसल्मान के हाथ से देता है और उसे उसी के हाथ से वापिस लेता है। थर्मामीटर को पाक रखने का यही उपाय है। क्या वह मुसलमान जिस के द्वारा थर्मामीटर दिया गया, हिन्दु धर्म पर घृणा पूर्वक अट्टहास न कर रहा होगा? क्या, यदि सचमुच कोई ऐसा धर्म है ही तो उस के समूलोन्मूलन में क्षण भर की भी देरी करनी चाहिये? और यदि कोई धर्म ऐसी आज्ञा नहीं देता तो जिस धर्म को उस व्यक्ति ने बदनाम किया उस में से उसे बहिष्कृत न कर देना चाहिये? धर्म! तेरे नाम पर इतना पतन और इतना अत्याचार!

गुरुकुल–समाचार

ऋतु— आकाश और ज़मीन दोनों दिन में तप जाते हैं। लू इस साल अभी तक चलनी आरम्भ नहीं हुई है। गगन में मण्डराते बादलों की टुकड़ियां भी नज़र आ जाती हैं। रात ठण्ड होती है। केवल चद्दर से अभी गुज़ारा नहीं होता। गङ्गा की धारा अभी क्षीण काय है। पहाड़ से बर्फ़ ढुलक ढुलक कर आनी आरम्भ नहीं हुई है फिर भी ब्रह्मचारी गङ्गा स्नान का आनन्द उठा ही लेते हैं। गर्मी के बढ़ जाने के कारण महाविद्यालय का समय १ मई से प्रातः काल हो गया है। सब ब्रह्मचारी स्वस्थ हैं। कुछ छोटे ब्रह्मचारियों की आँखें दुःखने आगई हैं वरना छोटे ब्रह्मचारी भी सर्वथा स्वस्थ हैं।

परिणाम— महाविद्यालय की १९८३ वि० का परीक्षा परिणाम निकल आया है। यह सन्तोष के साथ सुना जायगा कि कोई भी ब्रह्मचारी सर्वथा अनुत्तीर्ण नहीं हुआ है। केवल कुछ एक ब्रह्मचारियों की एक विषय में दुबारा परीक्षा होगी जिस का निश्चय १९ मई की शिक्षा पटल की बैठक में होगा।

मान्य दर्शक— इस मास प्रतिष्ठित दर्शकों के आगमन से कुल वञ्चित नहीं रहा। सर्व प्रथम स्वामी सर्वानन्द जी महाराज पधारे। आप बम्बई और कलकत्ता यूनिवर्सिटी के व्याख्याता हैं। आपने 'वेदान्त क्या है' इस विषय पर एक सारगर्भित व्याख्यान वर्तमान विज्ञान को आधार में रख कर दिया। आप की व्याख्यान शैली नवीन, आकर्षक तथा मनोरञ्जक थी। आपने फिर आने का वचन दिया है तथा विश्वविद्यालय व्याख्यान माला में आप वेदान्त विषय पर व्याख्यान देंगे।

दूसरे सज्जन गुजरात विद्यापीठ के वाइस चाँसलर आचार्य कृपलानी महोदय थे। आपने ११ बजे से ५ बजे तक निरन्तर वर्तमान भारत की भिन्न २ समस्याओं पर अपने विचार प्रगट किए। हिन्दु-मुस्लिम ऐक्य, राष्ट्रीय शिक्षा और राष्ट्रीय शिक्षणालयों में विद्यार्थियों की कमी का कारण, चर्खा और मैशीनरी पर प्रश्नोत्तर के रूप में बहुत मनोरञ्जक व्याख्यान दिया। सब आप के विचारों की मौलिकता और उनको प्रगट करने की रीति पर मुग्ध थे। आपने कुल को प्रत्येक हिन्दू के लिए तीर्थ बताया और इस से पहले न आने के लिए खेद प्रकाशित किया। आप दो दिन तक कुल में रहे और फिर आने की आशा दिला गए हैं।

तीसरे महानुभाव पूना के महिला विश्वविद्यालय के संस्थापक और सर्वे सर्वा श्री प्रो० कर्वे थे। आप ने स्त्री शिक्षा की वर्तमान समय में अवस्था और आवश्यकता तथा महिला विश्वविद्यालय की उत्पत्ति वृद्धि और

आगे की योजनाओं को बताया। आप इस समय महिला विश्व विद्यालय के लिए धन संग्रहार्थ निकले हुए हैं। आपने ब्रह्मचारियों से इस मिशन में योग देने की अपील की और कार्य क्षेत्र में सफलता लाभ के लिए आशीर्वाद दिया।

सम्मेलन—गुरुकुल की सब सभायें नियम पूर्वक उत्साह से चल रही हैं। पिछले दिनों वेद परिषद् का भी चुनाव हो गया है। क्रमशः इनके मन्त्री ब्र० शिवप्रसाद और ब्र० इन्द्रसेन चतुर्दश चुने गये हैं। इस मास सभाओं ने अपने विशेष सम्मेलनों की योजना भी की।

श्री उपाचार्य पं० विश्वनाथ जी वि० अ० की अध्यक्षता में १२ अप्रैल को आर्य-धर्म-सम्मेलन हुआ। इस में स्वामी जी की यादगार में दिल्ली में एक विशाल भवन बनाने का, निकट-वर्ती ग्रामों में प्रचार का, वेद प्रचार, छूआछूत हटाने, नगर कीर्तनों के विषय में सरकारी नीति के विरोध में प्रस्ताव स्वीकृत हुए। ब्रह्मचारियों ने आस पास के गांवों में कार्य आरम्भ कर दिया है। इस दिशा में ब्र० श्वेतकेतु और ब्र० केशवदेव सराहनीय कार्य कर रहे हैं।

इस वर्ष पहिले ही पहिले कुल में श्री प० प्रियव्रत वि० अ० की अध्यक्षता में संस्कृत साहित्य सम्मेलन हुआ। संस्कृत साहित्य सम्मेलन का होना ब्रह्मचारियों के संस्कृत प्रेम का परिचय देता है। सम्मेलन में संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि और उसके प्रचार के साधनों पर विचार हुआ। ब्रह्मचारियों ने इस सम्मेलन के फल स्वरूप एक देव मण्डली की स्थापना की है जिसके सदस्य सदा संस्कृत में बोलते हैं। इस प्रकार कुल में संस्कृत-प्रेम का वातावरण उत्पन्न हो रहा है।

१ और २ मई को हिन्दी साहित्य सम्मेलन श्री पण्डित निरञ्जनदेव जी आयुर्वेदालंकार उपसम्पादक 'अर्जुन' के सभापतित्व में सफलता के साथ हुआ। स्वागत समिति के अध्यक्ष ब्र० शंकरदत्त थे। दो बैठकों में अध्यक्षों के भाषणों के सिवाय नागरी प्रचार, हिन्दी प्रचार, विश्वविद्यालयों में हिन्दी आदि विषयों के प्रस्तावों पर विचार हुआ।

२ मई को कवि दर्बार हुआ जिस में शिवाजी महाराज के दर्बार में भूषण, तुलसी, पद्माकर, कबीर, हरिऔध, श्री पन्त, श्री गुप्त, श्री त्रिवारी आदि कवियों के प्रतिनिधियों ने उनकी कृतियां सुनाईं। रात्रि को हिन्दी साहित्य मंडल का जन्मोत्सव हुआ। इस मे कवियों और अन्य लेखकों ने अपनी कवितायें और गल्पें सुनाईं। कुल का साहित्य कितना सरस और मधुर है इसका परिचय उस दिन मिला। श्रोताओं का दिल ही नहीं मुंह भी मीठा किया गया।

शिवाजी जयन्ती—३ मई को खूब उत्साह के साथ शिवाजी त्रिशत जयन्ती का महोत्सव मनाया गया। बैण्ड के साथ राष्ट्रीय-पताका का

जुलूस निकाला गया। श्री आचार्य जी की अध्यक्षता में सभा हुई। वक्ताओं ने शिवाजी को हिन्दू संस्कृति-सभ्यता का पुनरुद्धारक बताया। उनकी बहादुरी राजनीतिज्ञता और अन्य गुणों की ओर निर्देश करते हुए उनके आदर्शों को इस समय जीवन में ढालने की आवश्यकता बताई।

नवीन प्रस्तोता—१६ मई को गुरुकुल कांगड़ी में शिक्षा पटल की बैठक होगी। श्री० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार प्रस्तोता (Registrar) नियुक्त हुये हैं।

साहित्य वाटिका

तामिल वेद— दक्षिण देश में तिरुवल्लुवर नाम के एक प्रसिद्ध सन्त होगये हैं। प्रस्तुत पुस्तक में इन्हीं महात्मा तिरुवल्लुवर के धर्म, नीति, राजा, राजतन्त्र, तपस्वी जीवन, गृहस्थ जीवन आदि विषयों पर लिखे हुए उत्तमोत्तम विचारों का हिन्दी भाषा में अनुवाद किया गया है। स्वाध्याय प्रेमियों के लिए यह पुस्तक बहुत अच्छा है। मूल्य केवल ॥) है। प्रकाशक—सस्ता साहित्य मंडल अजमेर।

बालक— संपादक, श्री रामवृक्ष शर्मा। यह बालोपयोगी सचित्र सुन्दर मासिक पत्र है। हिन्दी भाषा में निकलने वाले बाल साहित्य विषयक पत्रों में 'बालक' सर्वश्रेष्ठ है। यह वस्तुतः बालकों का राजकुमार है। वार्षिक मूल्य केवल ३) हिन्दी पुस्तक भण्डार, लहेरिया सराय, बिहार।

खिलौना— संपादक-श्री रामजीलाल शर्मा। खिलौने में आने वाले लेख, कथायें, कविताएँ तथा चित्र छोटे बालक बालिकाओं के लिये बहुत शिक्षाप्रद होते हैं। टाइटल पेज विश्वविख्यात चित्रकार रैफल के चित्रकारी अनुकृति है। वार्षिक मूल्य २) हिन्दी प्रेस, प्रयाग से प्राप्त होता है।

इन्दु— (मासिक पत्र) संपादक श्री अम्बिका प्रसाद गुप्त। इन्दु के अब कई वर्षों के उपरान्त दर्शन हुए हैं। अब तक निकले हुए अङ्कों से ज्ञात होता है कि यह शीघ्र ही हिन्दी साहित्य में अच्छा स्थान प्राप्त कर लेगा। लेख कथाएँ तथा कविताएँ उच्च कक्षा की हैं। मूल्य ४॥) । पता— प्रबन्धक 'इन्दु' बनारस सिटी॥

मनोरमा— (सम्मेलनांक)-संपादक श्री ज्योतिप्रसाद निर्मल। मनोरमा हिन्दी की श्रेष्ठ पत्रिका है। हाल में ही इसका सम्मेलनांक प्रकाशित हुवा है, इस अङ्क को हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'गाइड' कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। इस सर्वाङ्ग सुन्दर अङ्क का मूल्य १) है। संपादक महोदय ऐसे बढ़िया अङ्क प्रकाशित करने के लिये धन्यवादाई हैं। बेलवेडीयर प्रेस, प्रयाग से प्राप्य।

चाँद (अछूताङ्क)— सम्पादक श्री नन्दकिशोर तिवारी। मूल्य २)। मिलने का पता—फाइन आर्ट प्रिन्टिंग काटेज इलाहाबाद। चाँद के सञ्चालकों ने मौके पर मौके की चीज़ निकाली है। यह अंक हरेक वाचनालय में और हरेक प्रचारक के हाथ में होना चाहिये।

स्नातक मण्डल का विशेषाधिवेशन—२८ मई को गुरुदत्त भवन लाहौर में रात्रि के ८ बजे स्नातक मण्डल का विशेषाधिवेशन होगा। स्नातक भाई अधिक संख्या में पहुँचने की कृपा करें। विषय ये हैं—

(१) अलङ्कार पत्र (२) सार्वदेशिक सभा का प्रस्ताव (३) अन्य आवश्यक

चन्द्रमणि-मंत्री स्नातक मण्डल

Regd. N0. A. 1340.

वर्ष ४] आषाढ़ १९८४ [अङ्क १

ओ३म्

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल समाचार

[स्नातक-मण्डल गुरुकुल-कांगड़ी का मुख-पत्र]

मुख्य संपादक

प्रो० सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

* विषय सूची *

विदेश से ४) एक प्रति का ।-) वार्षिक मूल्य ३)

वर्ष ४ अङ्क १]　　　　आषाढ़　　　　[पूर्ण संख्या ३७

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल—समाचार

* स्नातक-मण्डल गुरुकुल-काँगड़ी का मुख-पत्र *

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अलंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५ ।

* प्रेमभिक्षा *

(श्रीहरि)

(१)

अलि ! मञ्जु गुञ्जन से, विनय की छोड़ दे अब चाल को ।
यह विश्व सारा जानता, तेरे प्रणय के जाल को ॥
तू है निठुर, चञ्चल चतुर निज स्वार्थ का ही दास है ।
जिसका हुआ, उस को किया, तू ने सदैव निरास है ॥

(२)

यह पुण्यपावन प्रेम-पथ, तुझ से कलङ्कित हो रहा ।
रस-लालची रस के लिए, विष-बीज तू है बो रहा ॥
जाकर पपीहे से प्रथम तू, प्रेम प्रण की सीख ले ।
इस प्रेम मन्दिर द्वार पर फिर, प्रेम की यह भीख ले ॥

मोअज़ा अर्थात् चमत्कार

(ले० श्री कृष्णानन्द जी)

ईश्वरीय नियम (कानून कुदरत) को न जान कर बड़े विद्वान् भी भारी भूल कर बैठते हैं। उदाहरणार्थ मोअज़ों † (चमत्कारों) पर दृष्टि डालिए। किसी व्यक्ति को मोअज़ा (अलौकिक शक्ति या चमत्कार) मिलना ईश्वरीय नियम के विपरीत है। ईश्वर कभी किसी को मोअज़ा नहीं देता परन्तु पौराणिक, बौद्ध, जैन, ईसाई, यहूदी और मुसलमान आदि सब मतों के विद्वान् भी अपने अपने मत या ग्रन्थ के मोअज़ों पर विश्वास रखते और अपने से भिन्न किसी मत के किसी मोअज़े को सत्य नहीं मानते। इस बात पर ध्यान दीजिये कि कोई मतवादी अपने से भिन्न मत के मोअज़ों को सत्य क्यों नहीं मानता? मेरे विचार से इसका कारण पक्षपात और दुराग्रह है। सब सम्प्रदाय के मोअज़ों में अन्ततः अलौकिकता और सृष्टिक्रम विरुद्धता है। इस का कारण यह कभी नहीं हो सकता कि किसी एक मत का मोअज़ा सत्य हो और शेष सब मतों के मोअज़े असत्य हों। यदि किसी मत का मोअज़ा सत्य होता तो उस मत के लोग अब भी मोअज़े दिखला सकते, क्योंकि उस मत के लोग भी मौजूद हैं और ईश्वर भी मौजूद है। यदि ईश्वर ने पहले उन लोगों को मोअज़ा दिया तो अब क्यों नहीं देता? और आश्चर्य यह कि मोअज़ों के द्वारा भी कोई सम्प्रदाय सारे संसार में न फैल सका। यदि हमारे पौराणिक भाइयों के देवी-देवता सचमुच अद्-

† जैसे हनुमान जी का सूर्य को निगल जाना, देवताओं का पर्वताकार शरीर धारण कर लेना, अगस्त्य का समुद्र को पी जाना, श्री कृष्ण के मुख में तीनों लोक देखना या ऊंगली पर पर्वत उठा लेना, अथवा द्रौपदी की साड़ी को लाखों गज लम्बा कर देना, रामचन्द्र के जन्म के समय ७२० घन्टे का एक दिन होना, रामचन्द्र का वनवास से वापस आने पर हजार रूप धारण करके लाखों मनुष्यों से अलग अलग क्षण भर में मिलना, ईसा का कुमारी कन्या से पैदा होना और इच्छा मात्र से मुरदों को जिन्दा कर देना या एक रोटी व एक मछली से हजारों मनुष्यों का पेट भर देना, मुहम्मद साहब की ऊँगली के इशारे से चन्द्रमा के टुकड़े कर देना या सेर भर छुहारे से सैंकड़ों मनुष्यों का पेट भर देना, मुहम्मद साहब को देख कर दीवार व वृक्षों का कलमा पढ़ना, तीर्थंकर का पैर के अँगूठे से पृथिवी को हिला देना, मूसा के डंडे का अजगर बन जाना। इत्यादि और सन्तों के ऐसे चमत्कार जैसे पानी को तुरन्त दूध या घी बना देना, मुट्ठी में से हजारों रुपया या अशर्फी पैदा कर लेना, गायब होकर क्षण भर में हजारों कोस की दूरी पर चले जाना इत्यादि चमत्कारों का वर्णन ईसाईयों, मुसाइयों मुहम्मदियों तथा हिन्दुओं में पाया जाता है।

भुत अलौकिक शक्ति वाले होते तो वे संसार में प्रकट होकर पौराणिक धर्म का प्रचार क्यों नहीं करते और दुष्टों को दण्ड क्यों नहीं देते ? जब कि ये देवता पर्वताकार राक्षसों को मार डालने में समर्थ हैं और क्षण भर में लोप होजाने तथा पर्वताकार शरीर धारण करने की सामर्थ्य रखते हैं तो उन्हें कौन सी रुकावट है जो वे प्रकट होकर पौराणिक धर्म का प्रचार नहीं करते या पौराणिक धर्म के विरोधियों का विध्वंस नहीं करते ? वे तो अमर हैं, उन्हें कोई मार सकता नहीं, उन्हें किस बात का डर है जो वे संसार में नहीं आते ? यदि तीर्थंकर पचास पचास और सौ सौ गज़ के लम्बे जवान और अमर व अद्भुत शक्तिशाली होते तो उन्हें संसार में प्रकट होकर जैनमत का प्रचार करने में ज़रा भी कठिनाई या रुकावट न होती। यदि महात्मा बुद्ध ईश्वर होते तो बार बार संसार में प्रकट होकर धर्म की ध्वजा फहराते।

यदि ईसामसीह मोअज़ों से युक्त होता तो अब भी वह संसार में अवश्य आता और ईसाई मत का प्रचार करता। उसे यहाँ आने में कोई रुकावट न हो सकती, क्योंकि वह ईश्वर का इकलौत बेटा है। तिस पर ईश्वर और उसका पुत्र दोनों संसार में धर्म प्रचार करना चाहते हैं। ऐसी दशा में ईश्वर अपने पुत्र को दुबारा क्यों नहीं भेजता। क्या ईश्वर या उसका पुत्र अब संसार में धर्म को प्रचार करना नहीं चाहते ? यदि पैग़म्बर लोग मोअज़ों से युक्त होते तो अब भी संसार में आते और मोअज़ों के द्वारा सारे संसार को मुस्लिम बना डालते। क्योंकि मोअज़ों (अद्भुत शक्ति) के कारण कोई आदमी रत्ती भर भी उन्हें हानि न पहुंचा सकता। जिस का मददगार ख़ास ख़ुदा हो और वह अलौकिक शक्ति से स्वयं युक्त हो, क्या मजाल कि कोई आदमी उसे कुछ भी हानी पहुंचा सके ? परन्तु यह मतवादियों का माया जाल है जो ईश्वर को अपने सम्प्रदाय का सहायक सिद्ध करने के अभिप्राय से अपने ग्रन्थों में मोअज़ों का उल्लेख कर दिया। अगर यह कहा जाय कि अब ईसा को या मुहम्मद को ख़ुदा दुनियाँ में भेजना नहीं चाहता, तो प्रश्न यह उठता है कि क्या ख़ुदा ईसाई मज़हब को दुनियाँ में फैलाना नहीं चाहता? आख़िर ईश्वर ने अपने प्रिय पुत्र को संसार में किस लिए भेजा था ? जिस लिए पहले भेजा था उसीलिए अब क्यों नहीं भेजता ? उसे कौन सी रुकावट है ? और अचरज है हज़रत ईसा के चुपचाप बैठ जाने पर, वह अपने पिता से बिनती नहीं करते कि—"ऐ पिता! तू मुझे संसार के कल्याणार्थ फिर भेज, जिस से मैं पुनः सारे संसार को धर्मोपदेश देकर स्वर्ग का

अधिकारी बनाऊँ।" इसी प्रकार यदि खुदा को मज़हब इस्लाम फैलाने की ज़रा भी ख्वाहिश होती तो वह मुहम्मद साहब को दुबारा, तिबारा संसार में अवश्य भेजता, क्योंकि क़ादिर मुतलक़ खुदा को कोई रुकावट नहीं हो सकती। और आश्चर्य है कि हज़रत मुहम्मद भी चुपचाप आसमान पर बैठे देख रहे हैं कि सैकड़ों, करोड़ों आदमी [काफ़िर] मज़हब इस्लाम फैलाने का इरादा नहीं करते और खुदा से भी ऐसी प्रार्थना नहीं करते कि ऐ खुदा! तू हमें फिर दुनियां में भेज ताकि मैं सब काफ़िरों को पक्का मुसलिम बना डालूँ। "मुद्दई सुस्त गवाह चुस्त" वाला मामला है। खुदा और हज़रत मुहम्मद दोनों तो चुप चाप बैठे हैं, उन्हें अपना मज़हब फैलाने की तनिक भी चिन्ता नहीं और हमारे मुसलमान भाई समझ बैठे हैं कि खुदा मज़हब इस्लाम फैलाने का भूखा है। वे नहीं सोचते कि अगर खुदा को मज़हब इस्लाम परम प्रिय होता तो वर्तमान समय में भी वह हज़रत मुहम्मद को जरूर भेजता। चूंकि खुदा क़ादिर मुतलक़ है इस लिए मुहम्मद साहब को दुनियाँ में भेजने में जरा भी रुकावट न होती। मैं सच कहता हूँ कि अगर हज़रत मुहम्मद दुनियाँ में आकर [कुरान के लेखानुसार] मोअज़े दिखलाना शुरु करदें तो सब लोग उन के मोअज़ों को देख कर ही मुसलमान बन जायंगे। लेकिन असल बात यह है कि उनको मोअज़ा हरगिज़ नहीं मिला था। मुसलमान विद्वानों ने भी इस बात का अनुभव कर लिया है कि अब विद्या व ज्ञान का प्रकाश फैल रहा है। अब लोग थोथी बात (कि खुदा ने अपना मजहब फैलाने के लिए पैगम्बर को भेजा था) पर विश्वास न करेंगे, उन्होंने झट एक सिद्धान्त गढ़ लिया कि "मुहम्मद साहब आख़िर रसूल थे अब कोई रसूल न आवेगा"। क्यों न आवेगा? क्या दुनियाँ भर में मज़हब इस्लाम फैल गया? क्या दुनियाँ में अब काफिर नहीं रहे? मैं कहता हूँ जब तक दुनियाँ में करोड़ों काफ़िर मौजूद रहें तब तक पैग़म्बर का दुनियां में रहना जरूरी है। चूंकि इस्लाम मत के विरोधियों की संख्या १४० करोड़ होने पर भी खुदा पैगम्बर को नहीं भेज रहा है इस से साबित है कि खुदा मजहब इस्लाम को फैलाना नहीं चाहता।

अस्तु, मेरा निश्चय है कि आरम्भ में किसी एक मज़हब वाले ने अपने ग्रन्थों में मोअज़ों का वर्णन लिख दिया, उसे देखकर दूसरे मज़हब वालों ने सोचा होगा कि यदि लोग हमारे मज़हब में चमत्कारों का वर्णन न पावेंगे तो लोग हमारे मज़हब को निर्बल व तुच्छ समझेंगे। ऐसा विचार कर उन्होंने अपने अपने ग्रन्थों में भिन्न भिन्न प्रकार के अद्भुत कर्मों

(मोअज़ों) का उल्लेख कर दिया। उनकी आशा भी पूर्ण हुई। क्योंकि वह समय उन के अनुकूल था पर अब अन्धविश्वास का समय नहीं रहा। अब ऐसी बातों पर कोई नवशिक्षित विश्वास नहीं करता। विज्ञान (साइन्स) से भी मोअज़ों का मिथ्यात्व सिद्ध है। मनः शशि और मैस्मरेज़्म के द्वारा जो आश्चर्य कर्म देखे जाते हैं उन से भी प्राचीन मोअज़ों की (जैसे सूर्य को निगल जाना, चन्द्रमा को उँगली के इशारे से काट देना, इच्छा मात्र से मुरदे को जिन्दा कर देना, इत्यादि) सिद्धि नहीं होती। तर्क और दूरदर्शिता से विचार करने से पता लगता है कि ईश्वर ने किसी मज़हब को फैलाने का ठेका नहीं ले रक्खा है। वह संसार को रचता, धारण करता और अपने न्याय-नियम के अनुसार सब जीवों को शुभाशुभ कर्मों का फल देता है। ईश्वर को कुछ भी आवश्यकता नहीं कि वह लोगों को मोअज़ा दे। असल में यह मज़हब वालों की कारस्तानी है जो अपने मज़हब को खुदा का मज़हब सिद्ध करने के लिए और अपने मज़हब की प्रतिष्ठा व प्रसिद्धि के लिए मोअज़ों की मिथ्या कल्पना कर ली है।

पुराणों के देवता हमारे प्राचीन पूर्वज आर्य थे। और धर्मात्मा, सुशील, जितेन्द्रिय, शूरवीर, विद्वान्, ईश्वरभक्त, परोपकारी और कलाकौशल के प्रेमी थे। दैत्य, दानव और राक्षस मनुष्य ही थे। लेकिन वे अधर्मी, अन्यायी, दुष्ट और दुराचारी थे। आर्यों और अनार्यों की लड़ाई का नाम देवासुर संग्राम है। लिखने का ढंग निराला है। पुराणों में जो देवासुर संग्राम का वर्णन है वह वास्तव में आर्यों और उनके शत्रुओं का पारस्परिक घोर युद्ध है। मेरा मुख्य अभिप्राय यह है कि वे सब मनुष्य ही थे। पुराण के लेखकों ने असल घटनाओं में नमक-मिर्च मिला दिया है—मोअज़ों (चमत्कारों) का वर्णन लिखा दिया है लेकिन वे सब मोअज़े कल्पित और मिथ्या हैं।

जैनियों के तीर्थंकर हमारी तरह मनुष्य थे, दस दस हाथ या पचास पचास गज़ के लम्बे नहीं थे। हम में और उन में अन्तर इतना ही है कि वे अहिंसक, त्यागी, योगाभ्यासी और तपस्वी थे परम महात्मा थे, उन के हृदय में विश्वप्रेम का भाव भरा हुआ था। ईसामसीह हमारी तरह मनुष्य थे, कुवारी कन्या से पैदा नहीं हुए थे और न उन्हें मोअज़ा मिला था। वह एक महात्मा थे। उन में दया, प्रेम, परोपकार, उदारता आदि उच्चभाव भरे थे। वह ब्रह्मचारी और ईश्वर के भक्त थे। परन्तु उन के शिष्यों ने उन्हें ईश्वर का पुत्र मानकर उन के जीवन चरित में कल्पित मोअज़ों को बढ़ा दिया। हज़रत मुहम्मद हमारी तरह मनुष्य थे। वह ईश्वर के दूत नहीं

थे और न मोअज़ों से युक्त थे। वह एक सुधारक, दृढ़निश्चयी और शूरवीर पुरुष थे। उन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता और शूरता से इस्लाम मज़हब को फैलाकर अरबवालों का सुधार और संगठन कर दिया। मुहम्मद के शिष्यों और अनुयायियोंने उन्हें ईश्वर का दूत मान-कर उनके चरित में मोअज़ों को बढ़ा दिया। हज़रत मूसा भी एक सुधारक मनुष्य थे। निदान जिन्हें लोग देवता, अवतार, पैगम्बर, तीर्थंकर और ईश्वर पुत्र मानते हैं वे सब मनुष्य थे। मोअज़ों (अद्भुत चमत्कारों) की बातें बनावटी और मनगढ़न्त हैं। कोई मत-वादी यह नहीं कहता कि सब मत के सब मोअज़े सच्चे हैं। परन्तु किसी मतवादी का अपने मज़हब के मोअज़े को सत्य मानना और दूसरे मत के मोअज़ों को असत्य मानना पक्षपात और अन्याय है। किसी एक मत के मोअज़ों को सत्य मानने में अकाट्य युक्ति और प्रबल प्रमाण क्या है ? हमें कोई सज्जन बतलावें कि इसका क्या सबूत है कि उसी एक मत के मोअज़े सत्य हैं और शेष सब मतों के मोअज़े असत्य हैं। मेरा निश्चय है कि जब तक लोग ऐसे मोअज़ों से विश्वास न हटा लेंगे तब तक सत्यमत को प्राप्त नहीं हो सकते।

अस्तु, मैं यहां पर मनस्वी लाला लाजपतराय के एक अमृत वचन को उद्धृत करना उचित समझता हूं—

"औरों के सुख से अपना सुख तथा औरों के दुःख में अपना दुःख जानकर अपने जीवन को परमात्मा की सृष्टि की सेवा में अर्पण करने वाले, दृढ़ता और पुरुषार्थ से अपने उद्देश्य पर स्थिर रहने वाले महापुरुषों का होना किसी भूमि विशेष अथवा जाति विशेष में नियत नहीं है किन्तु हर एक जाति में समय समय पर वे उत्पन्न होते रहते हैं। ऐसे महापुरुषों की असाधारण शिक्षा, असाधारण शक्ति, असाधारण साहस, असाधारण ज्ञान, असाधारण परोपकार और अकारणिक प्रेम को देख कर लोग उन्हें रसूल, पैगम्बर, वली अल्लाह, अवतार, देवता, महात्मा आदि भिन्न भिन्न नामों से प्रेम पूर्वक स्मरण करते हैं और उन की शिक्षा का अनुगामी होना अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते हैं और उनके नाम से स्मारक चिन्ह स्थापित करते हैं, उन के उपदेशों को प्रमाण मान कर उनका पालन करना परम कर्तव्य समझते हैं।"

नवद्वीप–यात्रा

(लेखक श्रीयुत पं० दीनानाथ जी सिद्धान्तालंकार, कलकत्ता)

कलकत्ता से उत्तर-पश्चिम की ओर लगभग ६६ मील दूर यह स्थान है जो भारत का और विशेषतः बंगाल का मुख्य तीर्थ क्षेत्र है। गतमास हमें वहां जाने का अवसर मिला। "अलंकार" के बहुत से पाठकों के लिये इस स्थान का वृत्तान्त कुछ नवीन होगा- इस लिये उसका कुछ संक्षिप्त वर्णन अनुचित न होगा।

प्राकृतिक स्थिति

जैसा कि "नवद्वीप" इस नाम से ज्ञात होता है, यह एक द्वीप होगा जब कि इस नगर की स्थापना की गई थी परन्तु आजकल यह द्वीप नहीं है अपितु 'प्राय द्वीप' है। अर्थात्–इस समय यह स्थान तीन ओर से गंगा द्वारा घिरा हुआ है। रेलवे स्टेशन पर उतरते ही सामने एक छोटा सा नाला नज़र आता है जो थोड़ी दूर जाकर ही रह गया है। किसी समय में वहां भी गंगा की धारा होती थी। और यदि उस क्षीण जल-धारा को भी मान लिया जावे तब तो यह स्थान वस्तुतः द्वीप ही है और अगर उसे छोड़ दिया जावे तब यह प्राय द्वीप ही है। कुछ ही हो, भागीरथी के तट पर और उसी की धारा तीन ओर से आवृत होने के कारण इस स्थान की प्राकृतिक शोभा बड़ी चित्ताकर्षक है।

इस से पहले कि नवद्वीप यात्रा के विषय में अन्य कुछ लिखा जाय यह बतलाना उचित प्रतीत होता है कि यह स्थान तीर्थ क्यों कर गिना जाता है?

भागीरथी-तट पर आबाद होने के कारण तो यह तीर्थ है ही पर इस के अतिरिक्त कुछ और कारणों से भी यह महत्त्व पूर्ण समझा जाता है जो संक्षेपतः ये हैं:—

१. प्राचीन इतिहास देखने से प्रतीत होता है कि नवद्वीप संस्कृत विद्या का बड़ा भारी केन्द्र था। इस स्थान का प्रसिद्ध नाम = 'नदिया' है और "नदिया के नैय्यायिक" "काशी के वैय्याकरणियों" की तरह सदा से विख्यात रहे हैं। अब भी न्याय-शास्त्र का मुख्य केन्द्र नदिया वा "नवद्वीप" ही माना जाता है। काशी की टक्कर का संस्कृत विद्या का अगर कोई अन्य केन्द्र भारत में अब भी है तो वह नवद्वीप ही है। गदाधर, रघुनाथ जैसे प्रसिद्ध नैय्यायिक यहीं हुए थे।

२. वैष्णव-मत के संस्थापक गौराङ्ग देव (निमाई वा चैतन्यदेव) की जन्म भूमि भी इसी स्थान में मानी जाती है। इस शहर के किस विशेष भाग में इस महापुरुष का जन्म हुआ था—यह अभी तक निश्चित नहीं हो सका है, यद्यपि इस के लिये सरकारी और गैर-सरकारी–सभी प्रयत्न हुए हैं।

इस विषय में अभी तक विद्वानों का बड़ा मतभेद है। कुछ भी हो, गौरांगदेव के जन्म स्थान होने से नवद्वीप वैष्णवों का एक बड़ा भारी गढ़ है। हरिद्वार-वृन्दावन की तरह यहां पर भी सैंकड़ों मन्दिर हैं। प्रतिमास की पूर्णिमा को मेला होता है, पर माघ-पूर्णिमा का मेला विशेष प्रसिद्ध है। इन अवसरों पर भारत के और विशेषतः बंगाल-उड़ीसा और आसाम के यात्री दूर दूर से आते हैं। गत माघ-पूर्णिमा के मेले पर हम नवद्वीप में ही थे। इन मेलों की विशेष उल्लेखनीय बात-जो उत्तर भारत के अन्य तीर्थों पर प्रायः नहीं पाई जाती-वैष्णवमतानुयायी पुरुषों का इकट्ठा—ढोल की और छन्नों की ताल पर उछल २ कर कूदना और नाचना है। बहुधा, यह भक्ति के प्रबल वेग में ही होता है।

३. वैष्णवों की तरह शाक्तों का भी यह केन्द्र स्थान है। उनके माघ-पूर्णिमा मेले की तरह इनका कार्त्तिकी पूर्णिमा को बड़ा भारी मेला होता है। उस अवसर पर देवी की १८ प्रकार की पुराण वर्णित भिन्न २ आकृति की मूर्त्तियां १५ और २० फीट तक ऊंची निकाली जाती हैं और गंगा में विर्जित की जाती हैं। नवद्वीप के ठीक केन्द्र स्थान में शाक्तों का एक प्रधान मन्दिर है जिसका नाम-"पोड़ा-माताला" है। स्थान के पण्डितों की अधिक संख्या शाक्तमतानुयायी है इस लिये वे और उनके सब छात्र भी प्रतिदिन प्रातः सायं इस मन्दिर में देवी की पूजा करते हैं और जब कोई छात्र यहां से विद्याध्ययन समाप्त करके घर को वापस जाता है तब उसे देवी को प्रणाम करना अनिवार्य होता है।

पहिले शाक्तों और वैष्णवों में प्रायः झगड़े हो जाया करते थे पर आजकल दोनों मतों के अनुयायी शान्ति से अपने उत्सव कर लेते हैं। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि इन सब कारणों से इस तीर्थ स्थान का महत्त्व कितना अधिक है! इसी लिए, काशी सेवन की तरह बंगाली भद्र पुरुष वृद्धावस्था में नवद्वीप में निवास करना पुण्य समझते हैं।

विधवाओं की दुर्दशा

यूं तो सभी तीर्थ स्थानों पर विधवाओं की दुर्दशा होती है पर जैसी करुणाजनक अवस्था यहाँ देखी गयी है ऐसी हमें उत्तर भारत के अन्य किसी तीर्थ पर देखने को नहीं मिली। अगर आप नवद्वीप के बाज़ारों, सड़कों, चौरस्तों और घाटों पर जावें तब आप को विधवायें ही नज़र आयेंगी, पुरुष बहुत कम दीखेंगे। आबादी की दृष्टि से भी यहाँ पर स्त्रियों की-उनमें भी विधवाओं की-संख्या पुरुषों की अपेक्षा अधिक है और इसलिए, अगर इस स्थान का नाम "नवद्वीप" की जगह "विधवा द्वीप" रख दिया जावे तो

उसमें तनिक भी अत्युक्ति नहीं है ! इस अवस्था में दुराचार और व्यभिचार सम्बन्धी जितने पाप कल्पित किये जा सकते हैं, यहाँ पर उन सब का नग्न चित्र देखा जा सकता है। विधवाओं के सुधार के लिए यहाँ पर निम्नलिखित संस्थायें खुली हुई हैं—

भजन आश्रम—भिवानी के एक मारवाड़ी सज्जन ने इस आश्रम की स्थापना की है। यहाँ पर प्रतिदिन औसतन ३०० विधवायें प्रातः ३ से १० तक और शाम को ५ से रात के ९ बजे तक "हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे" का एक साथ उच्च स्वर से पाठ करती हैं और इसके फलस्वरूप इन्हें दोनों समय १ पाव चावल, दाल, कुछ नमक-मिर्च और कभी २ हरी तरकारी दी जाती है। पुरुषों के बैठने के लिये पृथक् स्थान बना हुआ है पर वे इस कीर्तन में दर्शक रूप से ही भाग लेते हैं। यद्यपि यह संस्था परोपकार भाव से खोली गई है तथापि इससे वस्तुतः विधवाओं का कुछ भला होता है-यह सन्दिग्ध है। रात को इन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता है कि वे जहाँ चाहें रहें। फलतः दुष्टों के पञ्जे में फँसने का फिर भी बड़ा अवसर रह जाता है। इस के अतिरिक्त यहाँ पर वास्तविक हरिभजन की अपेक्षा आडम्बर की अधिकता प्रतीत होती है।

मातृ मन्दिर (Maternity-Home)—नवद्वीप में बँगाल, उड़ीसा और आसाम के भिन्न २ ज़िलों से ऐसी विधवायें—कभी २ कुमारी कन्यायें भी-बहुत आती हैं जो गर्भवती होती हैं। वहाँ रहने वाली भी कई इस अवस्था को प्राप्त होजाती हैं। ऐसी घटनाओं में अधिक दोष पुरुषों ही का होता है। इन गर्भवती विधवाओं की रक्षा के लिये कुछ सज्जनों की ओर से एक "मातृ मन्दिर" स्थापित है जिसमें गर्भ-रक्षा की जाती है और प्रसव काल के कुछ समय बाद तक विधवा को वहाँ रहना पड़ता है। परन्तु इस "मन्दिर" में १७ आसन ही (Beds) हैं और माँग इतनी है कि उसके मुकाबिले में ये बहुत थोड़े हैं। फल यह है कि यह मातृ मन्दिर तो सिर्फ अमीरों के लिए रह गया है और बहुत से गुप्त मातृ-मन्दिर खुल गये हैं। अनुमान से इन की संख्या ५० के लगभग है। गर्भवती विधवायें इनमें रक्खी जाती हैं और जब सन्तान होती है तब उसे प्रायः मार दिया जाता है। ९० फी सदी बच्चे इस प्रकार मार दिये जाते हैं। अब बचे हुओं में से अधिकाँश कहाँ जाते हैं यह भी ज़रा हृदय पर पत्थर रखकर सुन लीजिये। गंगा के दूसरे तट पर कृष्णनगर बसा हुआ है। नदिया ज़िले की कचहरियाँ इत्यादि इसी स्थान पर हैं। यहाँ पर ईसाइयों की ओर से

एक अनाथालय खुला हुआ है। इस अनाथालय के आदमी नवद्वीप में घूमते रहते हैं। उन्हें इन गुप्त मातृमन्दिरों का भी पता है। फलतः हिन्दुओं की अबोध और निर्दोष सन्तानें उन ईसाइयों के हाथ ३) या ४) फ़ी सन्तान के हिसाब से बेच दी जाती हैं। यही बच्चे बड़े होकर फिर और हिन्दुओं को ईसाई बनाने का काम करते हैं। नवद्वीप में हमने यह भी सुना था कि कभी २ ऐसे बच्चे मुसलमानों के हाथ भी बेच दिये जाते हैं। हिन्दुओं की भयंकर पतित अवस्था का यह कुत्सित रूप है। क्या इस पर भी कुछ टीका टिप्पणी की आवश्यकता है?

विधवा आश्रम—यहाँ पर लाला माधोराम रोहतक निवासी की ओर से एक विधवा आश्रम भी खुला हुआ है जिसका मुख्य कार्यालय लाहौर में है। इस आश्रम के द्वारा विधवा-विवाह भी होते रहते हैं।

अन्य सार्वजनिक संस्थायें

नवद्वीप में उपर्युक्त संस्थाओं के अतिरिक्त निम्नलिखित उल्लेखनीय सार्वजनिक संस्थायें भी खुली हुई हैं—

१. वेद-विद्यालय—संस्कृत पढ़ने वाले निर्धन छात्रों के लिए यह एक निवास-स्थान है जिसमें आजकल ८ के लगभग विद्यार्थी रहते हैं। मारवाड़ी समाज की ओर से ३) प्रतिछात्र और सरकार की ओर से ४) प्रतिछात्र मासिकवृत्ति मिलती है। विद्यार्थियों से बातचीत करने पर ज्ञात हुआ कि यह छात्रवृत्ति वर्तमान समय के अनुसार, सर्वथा अपर्याप्त है। संस्कृत पढ़ने वाले निर्धन छात्रों के लिये इस के अतिरिक्त यहाँ अन्य कोई विशेष प्रबन्ध नहीं है।

२. सेवाश्रम—एक कमेटी की ओर से स्थापित है जिस के मन्त्री श्री सदानन्द महाचार्य हैं। मेले वा अन्य समयों पर भी यहाँ से रोगियों को मुफ़्त दवा दी जाती है और विशेष रोगियों को अस्पताल में रक्खे जाने का भी प्रबन्ध है। इन रोगियों को भोजन भी दिया जाता है। जनता के लिए इसके साथ ही, अस्पताल के बीच में एक देव-मन्दिर भी है।

३. एँग्लो-संस्कृत पुस्तकालय—सरकार की ओर से संस्कृत-ग्रन्थों का यहाँ एक छोटासा पुस्तकालय खुला हुआ है। इसमें बंगला और अँग्रेजी की भी थोड़ी सी पुस्तकें हैं।

विविध चर्चा

१. ललिता सखी—यह एक ऐसा दर्शनीय पदार्थ है जो पाठकों को अन्य तीर्थों पर देखने को नहीं मिलेगा। यह कोई मन्दिर, मठ वा सभा नहीं है अपितु एक दाढ़ी-मूछ वाले हम आप

जैसे बंगाली-ब्राह्मण महाशय हैं जिन्होंने कृष्ण महाराज की उपासनाके लिये अपने को पत्नी मान स्त्रीरूप धारण कर लिया है। दाढ़ी-मूछ साफ़, स्त्रियों के से ही सिर पर लम्बे बाल, कान, नाक और हाथ में इन्हीं से आभूषण पहरे हुए तथा सदा साड़ी पहिने स्त्रीलिंग में ही बात चीत करते हैं। पहिले ये यहां पर एक बाबा जी के शिष्य थे पर अब सखी भाव धारण कर लिया है। अन्ध-बुद्धि और विश्वासों में डूबी हुई हिन्दू जनता में तो सभी बातों के लिए गुंजाइश है। इस लिए, इन ललिता-सखी जी की खूब पूजा होती है। इन्होंने कुछ ही सालों में यहां पर बड़ी जायदाद खड़ी करली है जिस में प्रतिदिन भागवत पाठ होता है। स्त्री रूपधारी इन "सखी" जी के विषय में यहां पर कई बातें सुनी गईं जिनका यहां पर उल्लेख अनावश्यक प्रतीत होता है।

२. तीर्थ स्थान होने से यहाँ पर मन्दिरों की भरमार तो है ही पर इन में कई मन्दिर ऐसे भी हैं जिनमें ब्राह्मणातिरिक्त जनता से =),।) और मेले के अवसरों पर ॥) तक की पुरी मिलती है। यहां आदमी के प्रवेश की फीस भी ली जाती है।

३. यहां पर पण्डे और बन्दर कहीं भी देखने को नहीं मिले। अन्य तीर्थ स्थानों से यह विभिन्नता है।

४. दक्षिण देश के मन्दिराधीशों की तरह यहां के वैष्णव मन्दिराधिकारियों ने भी देवदासियां रक्खी हुई हैं जिनकी संख्या छ से लेकर दस तक और कहीं २ इससे अधिक भी है। इस का अनिवार्य परिणाम व्यभिचार की वृद्धि है।

———*———

* विश्वनाटक *

(पं० गयाप्रसाद शास्त्री साहित्याचार्य 'श्रीहरि')

जिन को हँसाता है अभी, उन को रुलाता फिर कभी,
ठुकरा दिया जिनको अभी, उनको बुलाता फिर कभी।
जो प्रेम सागर-मग्न थे, दुःखदाव वे डाले गए,
हैं वे अनाथ, सनाथ जो कल प्रेम से पाले गए॥ १॥
तव प्रेम रस की प्यास से, जो आज तेरे पास हैं,
सन्ताप की मरु भूमि में कल पा रहे वे वास हैं।
नट राज! निशि दिन विश्व में नाटक नए यों हो रहे,
हैं हंस रहे कोई कहीं, कोई कहीं पर रो रहे॥ २॥

भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क
और विचार प्रणाली में भेद

(ले० प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

Pococke महाशय अपनी पुस्तक India in Greece में लिखते हैं–'The primitive history of Greece is the primitive history of India'– अर्थात् भारत का प्राचीन इतिहास ही ग्रीस का प्राचीन इतिहास समझना चाहिये। उनके कथनानुसार मगधदेश के राजा जिनकी राजधानी राजगृह थी भारतवर्ष से जाकर ग्रीस में बसे थे। राजगृह के लोग ग्रैहिक कहलाते थे। वे ही युरुप में जाकर ग्रीक कहे जाने लगे। ऐतिहासिकों के कथनानुसार ग्रीक लोगों के ग्रीस में पहुंचने से पूर्व वहां Pelasgi (पैलसगी) नामक एक जाति निवास करती थी। पोकोक महोदय का कथन है कि पैलसगी जाति के लोग भी मगध से ही गये थे। प्राचीन काल में मगधराज्य के विहार प्रान्त का नाम पैलास था। यही विहार प्रान्त के पैलासी लोग पैलसगी नाम से प्राचीन ग्रीस में पाये जाते हैं। ग्रीस के एक प्राचीन कवि एसियस के कथनानुसार ग्रीस का राजा पिलासगस 'गया' में उत्पन्न हुआ था। स्मरण रहे, 'गया' प्राचीन भारत में मगध राजा के पैलास या विहार प्रान्त की राजधानी थी। एलैग्ज़ेन्डर की राजधानी मैसिडोन थी, मैसिडोन और मगध इन दोनों शब्दों की समानता को देख कर ही कई लोग यह कहने के लिए बाधित हो जाते हैं कि मगध के कुछ लोगों ने ही मैसिडोन को बसाया था। हमारे पूर्वज कूपमण्डूक की भांति चार दिवारी में ही बन्द नहीं रहे। वे इतने कमज़ोर नहीं थे कि किसी दूसरे का सम्पर्क उन्हें अपवित्र कर देता। जब उनकी समृद्धि भारत सरीखे विशाल एवं विस्तृत देश में भी न समा सकी तब वे अपने विमानों तथा जहाज़ों की सहायता से दूर २ देशों में उपनिवेश बनाकर रहने लगे। (यजुर्वेद–६ अ० १२ मं०) में लिखा है—'समुद्रं गच्छ स्वाहा, अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा'—समुद्र द्वारा, अन्तरिक्ष द्वारा जिस प्रकार भी हो सके दूर २ जाकर उपनिवेश बना कर रहो।

पोकोक महोदय के प्रबल प्रमाण इस बात को सिद्ध कर देते हैं कि फैलते हुए भारतीयों के उपनिवेशों में से ग्रीस भी उनका एक उपनिवेश ही था। जो लोग इतनी बड़ी बात मानने के लिये तय्यार नहीं वे भी इस कथन से तो किसी प्रकार इन्कार नहीं कर सकते कि अत्यन्त प्राचीन काल से भारत तथा

ग्रीस में परस्पर सम्बन्ध अवश्य था।

प्राचीन इतिहास लेखक जोजेफस का कथन है कि एशिया में एरिस्टोल की एक यहूदी से बात चीत हुई। यह यहूदी सीरिया की राजधानी डेमास्कस के एक ऐसे पन्थ का अनुयायी था जो अपने को हिन्दु विचारकों को चेले कहते थे। एरिस्टोटल ने उस यहूदी से बात चीत कर के कहा कि हम उसके ज्ञान में जितनी वृद्धि कर सके, उस से कई गुणा ज्यादह उसने हमारे ज्ञान में वृद्धि की—अर्थात् उसने हमें बहुत कुछ नया ज्ञान दिया। (See Budhist and Christian Gospels by Albert J. Edmunds M. A. I Vol. Philadelphia 908 P. 116).

इस ऐतिहासिक कथन से स्पष्ट है कि जिस समय ग्रीस में दार्शनिक विचार प्रौढ़ावस्था में आने का प्रयत्न कर रहा था उस समय ग्रीस का माना हुआ प्रौढ़ विद्वान् ऐरिस्टोटल किसी न किसी तरह भारतीय विचारकों के सम्पर्क में आ चुका था। यह कथन एक और तरह से भी पुष्ट होता है। डायोडोरस के कथनानुसार एलेग्ज़ैन्डर दि ग्रेट का यह भी इरादा था कि युरुप तथा एशिया को अन्तर्विवाह तथा स्थान परिवर्त्तन द्वारा एक कर दिया जाय। वह लिखता है:—

"(He decreed) that there should be interchanges between cities, and that people should be transferred out of Asia, to the end that the two great continents, by inteamarriages and exchange of good offices, might become homogeneous and established in mutual friendship." (See Budhist and Christian Gos. P. 1 14).

एलेग्ज़ैन्डर ने भारत पर आक्रमण किया और ११ महीने के लगभग वह भारतवर्ष में ही पड़ा रहा। यदि एलेग्ज़ैन्डर के उल्लिखित विचार थे तो क्या इस में कोई संशय रह जाता है कि जब ग्रीस तथा भारत में ११ मास तक लगातार सम्बन्ध रहा, उस समय इस मार्ग से भारत का बहुत कुछ-सभ्यता, साहित्य, कला, दर्शन, विज्ञान—ग्रीस में पहुंच गया होगा। इसके अतिरिक्त जब हम यह स्मरण करते हैं कि एरिस्टोटल एलेग्ज़ैन्डर का गुरु था तब एरिस्टोटल के भारतीय विचारों से प्रभावित होने में तनिक भी सन्देह नहीं रहता।

एरिस्टोटल के बाद भी ग्रीस भारतवर्ष से बहुत कुछ पढ़ता रहा है। साइरिल तथा एपिफ़ेनियस के कथनानुसार टेरिबिन्थस का पूर्वज सीथियेनस भारत के साथ व्यापार करता हुआ जब खूब मालदार होगया, तब बहुतसी हिन्दू पुस्तकों को एलेग्ज़ैन्ड्रिया में अपने साथ ले आया।

(Ibid p. 138) एलेग्ज़ेंड्रिया में ग्रीक लोगों के अध्ययन का यही एक मुख्य स्थान था। सम्भव हो सकता है कि एलेग्जैन्ड्रिया में लाई हुई हिन्दू पुस्तकों से ग्रीक लोगों को अपने विचरों की उन्नति करने में पर्याप्त सहायता मिली हो। जब मुसलमानों ने इजिप्ट पर आक्रमण किया तब एलेग्जैन्ड्रिया के पुस्तकालय को यह कह कर जला दिया गया कि यदि ये पुस्तकें कुरान के अनुकूल हैं तो इन में जो कुछ है वह कुरान में मौजूद ही है–अतः इन की कोई ज़रुरत नहीं और यदि कुरान के प्रतिकूल हैं, तब तो इन्हें रहने ही नहीं देना चाहिये। यह कह कर एलेग्ज़ैन्ड्रिया के पुस्तकालय में आग लगादी गई, नहीं तो आज ग्रीस विचार पर भारतीय प्रभाव को सिद्ध करने की आवश्यकता न पड़ती–एलेग्ज़ेन्ड्रिया का भारी पुस्तकालय इसी बात की साक्षी स्वयं देता।

एरिस्टोटल ग्रीस के विचार-क्रम को ढालने वाला है। ग्रीस ने युरोप के विचार क्रम को ढाला है परन्तु अरस्तु तथा ग्रीस दोनों पर भारतीय विचारकों की छाप लगी हुई है। यही कारण है कि जिन विचारों को हम भारतीय कहते हैं वही विचार उसी रूप में पश्चिम में भी पाये जाते हैं। दर्शन का विद्यार्थी न्यायदर्शन पढ़ता हुआ, अचानक से एरिस्टोटल के विचारों को अपने सन्मुख घूमता हुआ देखता है। साँख्य दर्शन का अध्ययन करते हुये डार्विन और स्पेन्सर के विकास-वाद के विचार सामने आजाते हैं। हमारा दृढ़ विश्वास है कि संसार में ज्ञान का विस्तार भारत से ही हुआ है और इसी लिए पूर्वीय तथा पाश्चात्य देशों के विचारों में अत्यधिक समानता पायी जाती है। पूर्व तथा पश्चिम के देशों में आना-जाना टूट जाने के कारण उन के दर्शन, भाषा, धर्म तथा जीवन का विकास भिन्न भिन्न दिशाओं की तरफ़ होगया है और उन्हीं भिन्नताओं में से दार्शनिक विचार प्रणाली की भिन्नता पर ही इस लेख-माला में विचार किया जायगा।

दार्शनिक विचार प्रणाली की भिन्नता एक मुख्य भिन्नता है परन्तु इस से सम्बद्ध अन्य भी अनेक भिन्नताएं हैं जिनका वर्णन भी संक्षेप से करने का प्रयत्न किया जायगा।

१ उद्देश्य ।

सब से प्रथम प्रश्न जो प्रत्येक विचारक के सन्मुख उपस्थित होता है, यह है कि दर्शन का प्रयोजन क्या है? किस उद्देश्य को लेकर इस की प्रवृत्ति है?

इसका उत्तर न्यायदर्शनकार ने बड़े स्पष्ट रूप से प्रथम अध्याय के दूसरे तथा तीसरे सूत्रों में दिया है। वे कहते हैं:—

"प्रमाण प्रमेय संशय प्रयोजन दृष्टान्त सिद्धान्तावयव तर्क निर्णय

वाद जल्प वितण्डा हेत्वाभास छल जाति निग्रह स्थानानां तत्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः"-अर्थात् इन पदार्थों के तत्वज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होगी। इस से अगले सूत्र में लिखते हैं-"दुःखजन्मप्रवृत्ति दोष मिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः"—न्यायकार की सारी प्रवृत्ति का प्रयोजन अपवर्ग की प्राप्ति प्रतीत होता है।

वैशेषिक दर्शन का प्रारम्भ भी इसी प्रकार के सूत्रों से होता है। प्रथम सूत्र है:-"अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः" दूसरे सूत्र में लिखा है "यतोऽभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः"। वैशेषिक का ध्येय भी निःश्रेयस के अतिरिक्त और कुछ प्रतीत नहीं होता।

'सांख्य कारिका' को "दुःखत्रयाभिघाताज्जिज्ञासा तदपघातके हेतौ" इसी से प्रारम्भ किया गया है। सांख्यकार को संसार में सर्वत्र अधिभौतिक, आधिदैविक, तथा आध्यात्मिक दुःख ही दुःख दिखाई देता है, इसी लिये "व्यक्ताव्यक्तज्ञ विज्ञानात्"—अर्थात् व्यक्त, अव्यक्त तथा ज्ञ के ज्ञान से सुखप्राप्ति को दृष्टि में रख कर उन्होंने अपने दर्शन को प्रारम्भ किया है।

योगदर्शन में "क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्ट जन्म वेदनीयः" "सतिमूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगः" "परिणामताप संस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः" इत्यादि सूत्रों से संसार में दुःख को देखकर उसे दूर करने के उपाय ढूंढने की तरफ़ ही इशारा किया है।

वेदान्त में स्थल २ पर दुःख दूर करने की इच्छा विद्यार्थी को संसार की असारता का परिचय कराती है। "तरति शोकमात्मवित्" "इति सोऽहं भगवः शोचामि तं मां भगवाँञ्छोकस्य पारं तारयतु" इत्यादि उपनिषद् वाक्य सर्वत्र वेदान्त सूत्रों की व्याख्या में बिखरे हुये हैं।

इससे क्या परिणाम निकलता है? यही कि भारत के सम्पूर्ण दार्शनिक विचारकों का एक मात्र आधार दुःख निवृत्ति तथा निश्रेयसाधिगम है। भारतीय विचारक के लिये छोटी से छोटी क्रिया का भी और कोई उद्देश्य दिखाई नहीं देता। संसार की अद्भुत लीलामयी रङ्गस्थली को देख कर भारतीय विचारक का हृदय एकदम ऊपर को उछलता है। वह केवल तना ही प्रश्न नहीं करता कि यह क्या है? यह क्यों है? वह इन शब्दों को करता हुआ एक बड़ा प्रश्न करता है। वह प्रश्न है 'इस सब का मेरे साथ क्या सम्बन्ध है'? उसके सामने बड़ा भारी प्रश्न उपस्थित होता है—वह पूछता है-'यह दुःख कहां से आया' 'इसकी निवृत्ति का क्या उपाय है?'। भारत का न्यायदर्शन सचाई को इसलिए नहीं ढूँढना चाहता क्योंकि सचाई सचाई है-वह इसलिए ढूँढना चाहता

है क्योंकि इससे निःश्रेयस की प्राप्ति होती है।

इस विचार को दृष्टि में रखते हुए आप पाश्चात्य दार्शनिकों से पूछिये कि वे Logic का क्या उद्देश्य समझते हैं। वे आपको स्पष्ट शब्दों में बतायेंगे कि Logic का मुक्ति से कोई सम्बन्ध नहीं। Logic का उद्देश्य केवल इतना है कि वह आप को हेत्वाभासों से बचना सिखादे, आप शुद्ध युक्तियुक्त बोलना सीख जांय, इससे अधिक Logic का कोई उद्देश्य नहीं। Professor Minto का कथन है:—

"The Main aim of Logic is not the attainment of truth but the organisation of reason against confusion and falsehood; Logic does not so much beckon a man into the right path as beckon him back from the wrong. The existence of Fallacies calls Logic into existence. As a practical science Logic is needed as a protection against fallacies."

Logic की एकमात्र आवश्यकता मनुष्य को हेत्वाभासों से बचाने के लिये है। यह मनुष्य की बुद्धि को अच्छा व्यायाम कराती है। Logic के विषय में यह पाश्चात्य विचार है।

भारतीय विचारकों के अनुसार प्रत्येक कार्य का उद्देश्य मुक्ति होना चाहिये इसलिए Logic का उद्देश्य भी मुक्ति माना गया है। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार Logic का उद्देश्य बुद्धि का परिमार्जन मात्र है, मुक्ति Mataphysics, Ethics या Religion का विषय है। भारतीय विचारकों ने धर्म को सर्वोच्च आसन दिया है—पाश्चात्य विचारकों ने युक्ति को सब से ऊपर रक्खा है।

एक भ्रम दूर करके मैं आगे बढ़ूंगा। शायद कोई यह समझ ले कि भारतीय विचारकों ने Logic के पूरे २ महत्व को नहीं समझा इसीलिए उन्होंने इसके उद्देश्य को पाश्चात्य विचारकों के उद्देश्य से भिन्न समझा। मैं इस विचार को भ्रम कहता हूं। कारण यह है कि Logic का जो उद्देश्य पाश्चात्य समझते हैं उस उद्देश्य से भारतीय विचारक इन्कार नहीं करते। न्यायदर्शन में सब से पूर्व कहा है-"प्रमाणतोऽर्थ प्रतिपत्तौ प्रवृत्तिसामर्थ्यादर्थ वत्प्रमाणम्"। प्रमाण की अर्थवत्ता इसलिए है क्योंकि उसी के कारण सब प्रकार की प्रवृत्ति हो सकती है। मनुष्य के विचार को परिष्कृत करना न्याय का मुख्य उद्देश्य है। मेरी समझ में इस उद्देश्य में जहां तक न्यायदर्शन सफल हुआ है, वहां तक Logic को सफलता प्राप्त नहीं हुई। Logic जितना काम करना चाहता है, न्याय उससे इन्कार नहीं

करता, उसे बड़ी अच्छी तरह करता है। परन्तु इस सम्पूर्ण कार्य को अद्वितीय सफलता से निबाहता हुआ न्याय Logic से एक कदम आगे बढ़ता है, वह बुद्धि को परिष्कृत करता हुआ उसे एक ऊंचे उद्देश्य की तरफ ले जाना चाहता है, जो उसके शब्दों में है:— 'तदत्यन्त विमोक्षोपवर्गः'।

न्याय का उद्देश्य है 'मुक्ति'— Logic का उद्देश्य है 'बुद्धि की परिष्कृति'। न्याय का उद्देश्य बड़ा है, Logic का छोटा है। Logic के सब उद्देश्यों को न्यायदर्शन पूर्ण कर देता है परन्तु न्याय के सब उद्देश्यों को Logic पूर्ण नहीं कर सकता। अब हमें यह देखना है कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वे किन मार्गों का अवलम्बन करते हैं।

२. प्रत्यक्ष

जो लोग भारतीय दर्शनों से परिचित हैं उनसे छिपा हुआ नहीं है कि हमारे यहां, प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा शब्द-ये चार प्रमाण माने गये हैं। इन्हीं से न्याय का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है। पश्चिम की परिभाषाओं में इन्हीं को क्रमशः Observation, Inference, Analogy तथा Testimony कहते हैं।

प्रत्यक्ष पर यहां बहुत कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। जो कुछ कहना होगा वह 'शब्द प्रमाण' पर विचार करते हुए ही कहा जायगा। इस समय इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि Observation तथा Experiment पर Logic की पुस्तकों में जो कुछ प्रपञ्च से लिखा हुआ है वह सब न्यायदर्शन के—'इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्'—इस सूत्र में आ जाता है।

प्राचीन काल में Observation तथा Experiment दोनों के आधार पर Inductive method द्वारा बहुत कुछ अन्वेषण होता था, इसके सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं। भारतवर्ष का ज्योतिष शास्त्र तथा वैद्यक शास्त्र जो सर्वथा Observation तथा Experiment पर आश्रित हैं-इस कथन की पुष्टि करते हैं। प्रो० विल्सन का कथन है:—

"The Science of astronomy at present exhibits many proofs of accurate observation and deduction, highly creditable to the science of Hindu astronomers. The division of the ecliptic into lunar mansions, the solar Zodiac, the mean motions of the planets, the procession of the equinox, the earth's self-support in space, the diurnal revolution of the earth on its axis, the revolution of the moon on her axis, her distance from the earth, the dimensions

of the orbits of the planets, the calculations of eclipses, are parts of a system which could not have been found among an unenlightened people."

इस तरह के जबरदस्त प्रमाण सिद्ध करते हैं कि भारतीय दर्शन में लिखा 'प्रत्यक्ष' किताबी बात ही नहीं था, परन्तु यही भारत के 'विज्ञान' का पिता था।

——:०:——

अनुराग

(श्री पं० रमाशङ्कर जी मिश्र)

हम मूक हैं तो भी हृदय में है भरी शुभ भावना,
यदि पङ्गु हैं तो भी चरण रज की हमें है चाहना।
होकर बधिर भी सुन रहे हम हैं सुरीली तान को,
दर्शन बिना ही मुग्ध हैं रखते तुम्हारे मान को ॥

* * * *

मम कामना के कुञ्ज की कलियाँ अनूठी अध खिलीं,
तव स्नेह सिञ्चित हैं लखो मन भावनी कैसी भलीं।
आओ अहो प्राणेश! पहिनो इस मनोहर माल को,
अनुराग-लाल-गुलाल से आकर सजा लो भाल को॥

* * * *

निज भक्त पर अनुरक्त यदि हो भी न तो मैं दास हूं,
हृदयेश! समझो दूर ही तुम क्यों न पर मैं पास हूँ।
विश्वास है तुम पर अटल करता सदा गुण गान हूं,
है प्रेम श्रद्धा भक्ति भी धरता तुम्हारा ध्यान हूं ॥

प्राचीन शिक्षा प्रणाली

(प्रो० विश्वनाथ जी विद्यालङ्कार, उपाचार्य)

शिक्षा का प्रश्न बड़े महत्व का है। शिक्षा बीज है और आचार-व्यवहार उस के फल हैं। मनुष्य को जैसी शिक्षा दी जायगी वैसे ही उस के आचार-व्यवहार होंगे। यह नियम जातियों में भी लगता है। भिन्न २ देशों की भिन्न २ जातियों में आचार और व्यवहार के भेद का मूल कारण, उन २ जातियों की जातीय शिक्षाओं के भिन्न २ प्रकारों में देखना चाहिए। अतः "प्राचीन भारत में शिक्षा का प्रकार क्या था" यह प्रश्न वैयक्तिक और जातीय दोनों दृष्टियों से बड़े महत्व का है। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली पर संक्षेप से विचार करने के लिए हमें 'आचार्य' शब्द के रहस्यार्थ पर गहरा विचार करना चाहिए।

भारतीय शिक्षा प्रणाली में आचार्य शब्द का स्थान विशेष गौरवान्वित है। इस शब्द के अर्थ में शिक्षा का सम्पूर्ण रहस्य छिपा पड़ा है। "शिष्य के प्रति आचार्य के शिक्षा-सम्बन्धी क्या कर्तव्य हैं" इसका दिग्दर्शन आचार्य शब्द द्वारा कराया गया है। निरुक्तकार यास्काचार्य ने आचार्य शब्द का जो निर्वचन किया है उस से प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत में शिक्षा के तीन विभाग किये गये थे। यास्काचार्य ने आचार्य शब्द का निर्वचन निम्नलिखित शब्दों में किया है। यथाः—

"आचारं ग्राहयति, आचिनोत्यर्थान्, आचिनोति बुद्धिम्"।

इसका अर्थ यह है कि आचार्य वह है जो कि शिष्य के आचार को ठीक करे, शिष्य के मस्तिष्क में पदार्थों का संचय करे, तथा उस में बुद्धि-शक्ति को जागृत करे।

इस निर्वचन में शिक्षा के तीन विभाग दर्शाए हैं। १. आचारशिक्षा २. अर्थशिक्षा ३. बुद्धिशक्ति का जागरण। भारत की वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में शिक्षा के इन तीन विभागों में से केवल एक विभाग पर ही अधिक बल है और वह है "अर्थशिक्षा"। अध्यापक की यह इच्छा कि विद्यार्थियों के मस्तिष्कों में संख्या की दृष्टि से अधिक अर्थों अर्थात् पदार्थों का बोध भर दिया जाय—"अर्थ शिक्षा" कहलाती है। वर्त्तमान अंग्रेज़ी ढंग के चले हुए भारतीय स्कूलों की विशेषतया, तथा कालिजों की सामान्यतया यही अवस्था है। इन संस्थाओं में विद्यार्थियों के मस्तिष्कों को Lumber Room अर्थात् कबाड़िये की दुकान बनाने पर जितना ज़ोर दिया जाता है उस की शतांश ज़ोर भी विद्यार्थियों को "श्रेष्ठ मनुष्य" बनाने में नहीं दिया

जाता। परन्तु भारतीय शिक्षा प्रणाली का यह हाल न था। भारतीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षा का उद्देश्य था "पूर्ण मनुष्यत्व" । इसी लिए भारत के आचार्य शिक्षा के तीन विभागों के उपाध्याय समझे जाते थे जिन में पहला विभाग था "आचार शिक्षण" । आचार के बिना पदार्थबोध अति हानिकारक है । आचार, जीवन-पुष्प का उत्तम सुगन्ध है और सूखे देह-वृक्ष का सुन्दर पुष्प-शृंगार है। वर्त्तमान युग में आचार-शिक्षण के अभाव के साथ जो पदार्थ-बोध पर ज़ोर दिया जाता है— इस का ही यह परिणाम है कि संसार में अशान्ति का राज्य दिनोंदिन अधिक हो रहा है। चाहिए तो यह था कि विज्ञान की उन्नति के साथ २ मनुष्यों के दुःखनिवारण के उपायों का अधिक अन्वेषण किया जाता, परन्तु वर्त्तमान युग में इस से उलटा हो रहा है। वर्त्तमान युग में विज्ञान ही दुःखों का उग्र कारण बन रहा है। विज्ञान की उन्नति का प्रयोग मनुष्यों के दुःख निवारण के लिए नहीं हो रहा, अपितु इस का प्रयोग उन दुःखों के अधिक बढ़ाने में हो रहा है। इस का यही कारण है कि वर्त्तमान समय में "अर्थशिक्षा" के साथ "आचार शिक्षा" पर बल नहीं दिया जाता। आचार-शिक्षण के इस रहस्य को जान कर ही मनु महाराज ने "ब्रह्मचर्याश्रम में प्रविष्ट होते हुए बालक को पहले क्या शिक्षा देनी चाहिए" इस सम्बन्ध में निम्न लिखित एक श्लोक लिखा है:-

उपनीय गुरुः शिष्यं शिक्षयेच्छौचमादितः।
आचारमग्निकार्यं च संध्योपासन मेव च ॥

इसका अर्थ यह है कि गुरु शिष्य का उपनयन संस्कार करने के पश्चात् उसे आरम्भ में शुद्धि का पाठ पढ़ावे। तदनन्तर सदाचार, अग्निहोत्र तथा संध्योपासन का उपदेश दे।

इस श्लोक में "अर्थशिक्षा" और "बुद्धि के जारण" का वर्णन नहीं किया। शिक्षा के इन दो प्रक्रमों का स्थान शुद्धि, सदाचार, अग्निहोत्र और सन्ध्योपासन के शिक्षण के पश्चात् का है।

शुद्धि में, रहन सहन के स्थान, वस्त्रों, शरीर और इन्द्रियों को साफ़ रखना शामिल है। इस शुद्धि के उपदेश के पश्चात् सदाचार शिक्षण का आरम्भ होता है । सदाचार शिक्षण के भी दो विभाग हैं । एक तो "व्यवहार-शिक्षण" जिसे कि शिष्टाचार या सभ्यता कहते हैं, और दूसरा "इंद्रिय-निग्रह" जिस में कि सत्य, अहिंसा ब्रह्मचर्य, तप आदि यमनियम सम्मिलित हैं। जब यह देख लिया जाय कि शिष्य अब शुद्धि की कसौटी पर पूरा उतर आया है तब उसे सदाचार का उपदेश देना चाहिए। इस सदाचार के शिक्षण में प्रथम शिष्टाचार पर बल देना चाहिए और तत्पश्चात् यम नियमों के आचरण पर। शुद्धि और सदाचार के शिक्षण के पश्चात् अग्नि-

होत्र के नियमन द्वारा स्थूल नियमों का अभ्यास करा कर पुनः शनैः २ संध्योपासन के सूक्ष्म विषयों तथा अन्तर्ध्यान का बोध कराना चाहिये। इस प्रकार मनु महाराज के मत के अनुसार शिष्य के प्रति शुद्धि सदाचार, धर्म के स्थूल तथा सूक्ष्म-नियमों का उपदेश देना ही आचार शिक्षा है। इस आचार शिक्षा के पश्चात् भारतीय शिक्षा प्रणाली में "अर्थ शिक्षा" का प्रारम्भ होता था। इस अर्थ शिक्षा में व्याकरण, साहित्य, शिल्प, ज्योतिष, गणित आदि विषयों का परिज्ञान कराया जाता था। आचार शिक्षा के दृढ़ आधार पर खड़ा किया गया अर्थशिक्षा का यह प्रासाद अत्यन्त सुखकारी तथा हितकारी हुआ करता था। इसी अर्थ शिक्षण के साथ २ भारत का प्राचीन आचार्य यह भी देखा करता था कि यह अर्थशिक्षा विद्यार्थी में स्वतः परिस्फुरण होने वाली तथा ऊहापोह कर सकने वाली बुद्धि को भी अङ्कुरित कर रही है या नहीं। अंग्रेज़ी रंग में रङ्गी हुई भारत की वर्त्तमान शिक्षा विद्यार्थियों में इस बुद्धि-शक्ति को जागृत नहीं होने देती। भारत की वर्तमान शिक्षा का बी० ए० युरोप के पढ़े बी० ए० के मुकाबिले में कुछ भी नहीं है। इस का कारण यही है कि भारत की वर्तमान शिक्षा प्रणाली का ढंग ऐसा भद्दा और अस्वाभाविक है कि जिस से बुद्धि शक्ति सहज स्वभाव से परिस्फुटित हो ही नहीं सकती। भारत की प्राचीन शिक्षा प्रणाली में यह बात न थी। इस प्रणाली में बुद्धि के विकास पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता था।

इस प्रकार आचार्य शब्द के आधार पर मैंने यह दर्शाने की कोशिश की है कि प्राचीन भारत वर्ष में शिक्षा के तीन विभाग हुआ करते थे, 'आचार शिक्षा'; 'अर्थशिक्षा' और बुद्धि, का जागरण'। इन तीन विभागों से ही शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण हो सकता है। केवल किसी एक विभाग पर ज़ोर देने से शिक्षा का उद्देश्य पूर्ण नहीं हो सकता।

अब वे सुख के दिन जाते रहे

कोकिल के कलकूजन के संग, कोमल कण्ठ से गाते रहे।
मञ्जुल मालती का मकरन्द, अमन्द अनन्द से पाते रहे॥
पीकर प्रेम सुधा नित ही, नव नेह का नाता निभाते रहे।
"श्री हरि" प्रेमी मिलिन्द अहो अब वे सुख के दिन जाते रहे॥

नालन्दा का विश्वविद्यालय

(ले०– एक इतिहास प्रेमी)

प्रथम प्रभात उदय तव गगने, प्रथम सामरव तव तपो वने,
प्रथम प्रचारित तव वन भवने, ज्ञान धर्म्म कत काव्यकाहिनी।

रवि बाबू की यह उक्ति नालन्दा विश्वविद्यालय सदृश विश्वविद्यालयों के प्राचीन भारत में अस्तित्व ने ही चरितार्थ की है। भारत को ज्ञान और धर्म के कारण संसार का गुरु बनाने का श्रेय नालन्दा सदृश विश्वविद्यालयों को ही है। चीन, कोरिया, जापान, इन्डोचाइना, तुर्किस्तान और तिब्बत यदि भारत को आज भी आदर की दृष्टि से देखते हैं और भारत को अपनी धर्मभूमि मानते हैं, तथा भारत की यात्रा कर अपने जन्म को सार्थक करते हैं तो इसका श्रेय नालन्दा, उदन्तःपुर और बिक्रमशिला सदृश बौद्ध काल में स्थापित विश्वविद्यालयों को प्राप्त है। इन्हीं विद्यालयों से हजारों की संख्या में भारत से बाहर महात्मा बुद्ध की शिक्षाओं और भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति को ले जाने वाले बौद्ध भिक्षुओं का प्रवाह प्रवाहित हुआ जो निरन्तर मुसलमानों के आक्रमण से पूर्व तक जारी रहा। इन प्राचीन विश्वविद्यालयों में नालन्दा का विश्वविद्यालय सर्व प्रथम स्थापित हुआ था। इस समय जब कि हम भारतीय संस्कृति के आधार पर स्वतन्त्र शिक्षणालयों की स्थापना करने में प्रयत्नशील हैं ऐसे समय नालन्दा विश्वविद्यालय का संस्मरण हमारे अन्दर स्फुर्ति और हमारे आदर्शों के अन्दर सजीविता उत्पन्न करेगा।

स्थान— नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेष इस समय भी नष्ट भ्रष्ट अवस्था में विहार प्रान्त के बड़गांव से ३०० फीट की दूरी पर पाये जाते हैं। 'बड़गांव' 'राजगिर' से ८ मील दूर है। नालन्दा विश्वविद्यालय के अवशेषों के दर्शनोत्सुकों को बिहार–बख्तियारपुर रेलवे से जाना चाहिए और बड़गांव स्टेशन पर उतरना चाहिए। इससे एक मील पर नालन्दा विश्वविद्यालय के प्राचीन गौरव की स्मृति को फिर से ताजा बनाने वाले अवशेष दीख पड़ेंगे।

इतिहास— नालन्दा विश्वविद्यालय कब स्थापित हुआ और किसने किया यह अभी तक निश्चय पूर्वक नहीं कहा जासकता। इस का प्रारम्भ एक साधारण बौद्ध बिहार के रूप में हुआ, जिस में कि अनेक स्थविर और

भिक्षु लोग निवास करते थे। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य सारिपुत्र इसी स्थान पर निवास करता था। बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार उस ने इसी स्थान पर अपने ८० हज़ार शिष्यों और अर्हतों के साथ निर्वाणपद को प्राप्त किया था। बौद्ध विहार और संघाराम के रूप में नालन्दा की कीर्ति भगवान् बुद्ध के काल से ही प्रारम्भ होती है। प्रसिद्ध तिब्बती ऐतिहासिक तारनाथ के अनुसार सम्राट् अशोक ने यहां पर एक विशाल मन्दिर और विहार का निर्माण कराया और अशोक के प्रयत्नों से ही नालन्दा एक शिक्षाकेन्द्र के रूप में परिवर्तित होना प्रारम्भ हुवा। इस के बाद धीरे धीरे नालन्दा की उन्नति होती गई। सुविष्णु नामक एक ब्राह्मण ने यहां १०८ मन्दिरों का निर्माण कराया और 'अभिधर्म' की शिक्षा के लिये १०८ शिक्षणालयों की स्थापना की। इस के बाद अनेक सदियों तक नालन्दा एक शिक्षाकेन्द्र के रूप में धीरे धीरे विकसित होता रहा। पीछे से राजशक्ति का ध्यान भी इस ओर आकृष्ट हुवा और सब से पूर्व शक्रादित्य नाम के राजा ने नालन्दा में अनेक इमारतों का निर्माण कराया। इसी तरह उसके पीछे बुद्धगुप्तराज तथा गतगुप्तराज और बालादित्यराज ने नालन्दा की उन्नति में बहुत सहायता पहुंचाई। बालादित्यराज प्रसिद्ध हूण आक्रान्ता मिहिरकुल का समकालीन था और छठी सदी में मगध का राजा था। गुप्त सम्राटों द्वारा सहायता को प्राप्त कर नालन्दा ने बड़ी उन्नति की और शीघ्र ही विश्वविदित विश्वविद्यालय बन गया। अनेक चीनी तथा अन्य विदेशी विद्यार्थियों का ध्यान इसकी ओर आकृष्ट हुवा और बड़ी सख्या में विदेशी विद्यार्थी यहां पर विद्याध्ययन के लिये आने लगे। नालन्दा में शिक्षाप्राप्त विदेशी विद्यार्थियों में कुछ के नाम निम्नलिखित हैं-

१. शर्मण् ह्वून चिन,—प्रकाश मनि, ७ वीं सदी में आया और तीन वर्ष तक यहां रहा।

२. थो-ही,—श्रीदेव, इस ने यहाँ रह कर महायान धर्म का अध्ययन किया।

३. आर्यवर्मन्—यह एक कोरियन था और नालिन्दा में ही मरा।

४. ६८८ में एक कोरियन भिक्षु आया।

५. स्वी हाँग—७ वीं सदी में आया और यहां ८ वर्ष तक रहा।

६. ओ-कोग,—धर्मदत्त, यहां तीन वर्ष तक रहा।

७. इत्सिंग— बुद्धकर्मा, १० साल तक नालिन्दा में रह कर शिक्षा पाई।

८. तोफांग-चन्द्रदेव, यह नालन्दा के दर्शनों को आया था।

९. तांगतांग- महायान सम्प्रदाय का था। नालन्दा के दर्शनों को आया था।

१०. ह्यून सांग-२ साल के लगभग यहां रह कर इसने अध्ययन किया।

११. ह्यून सन-यह एक कोरियन भिक्षु था। यह प्रयाणवर्मा नाम से ज्यादा मशहूर है। यह भी नालिन्दा के दर्शनों को आया था।

१२. किंग-चू-शीलप्रभ-यहां रह कर कोष का अध्ययन किया।

१३. ह्यून ताता—१० साल तक यहां रह कर अध्ययन किया।

१४. वान हॉग-प्राज्ञ देव, यहां रह कर कोष का अध्ययन किया।

इन आगत विद्यार्थियों के द्वारा ही नालिन्दा विश्वविद्यालय के बारे में बहुत सी ज्ञातव्य बातें हमें मालूम होती हैं। विशेषतः ह्यूनसांग और इत्सिंग के यात्रा वृत्त विशेष तौर से इस प्रसंग में सहायक हैं। हम उन्हीं के यात्रा वृत्त के आधार पर संक्षेप से नालन्दा विश्वविद्यालय का वर्णन यहां देते हैं।

संचालन— इस महान् विश्वविद्यालय का संचालन अनेक राजाओं के द्वारा दिए गए निरन्तर दान से होता था। राजाओं ने इस के संचालन के लिए सैकड़ों गावों की आमदनी विश्वविद्यालय के आधीन कर दी थी। ह्यूनसांग के समय विश्वविद्यालय के पास २०० गांव थे। गांवों से ही आवश्यक सामग्री प्राप्त होती थी। प्रत्येक विद्यार्थी को नियमित परिमाण में भोजन मिलता था जो कि इस प्रकार था— १२० जम्बीर, २० पूगा, महाशाली चावलों का एक पैक। तैल, मक्खन इत्यादि भी नियमित परिमाण में दिया जाता था।

शिक्षा क्रम— नालिन्दा विश्वविद्यालय में केवल ऊंची ही शिक्षा दी जाती थी। इस में प्रविष्ट होने के लिए एक अधिकारी परीक्षा ली जाती थी जिस में उत्तीर्ण होने के बाद ही विद्यार्थी विश्वविद्यालय में प्रविष्ट हो सकते थे। इस परीक्षा के लिए निम्न विषयों में उत्तीर्ण होना आवश्यक था:-

१. व्याकरण-इस के पाठ्य विषय में ५ मुख्य ग्रन्थ थे। प्रथम सिद्ध, दूसरा धातु, इस ग्रन्थ में एक हजार श्लोक थे, तीसरा सूत्र, चौथा खिल, खिल मन्त्र अष्ट धातु, मंड और उणादि इन तीन विभागों में विभक्त होता था। इस में कुल तीन हजार श्लोक थे। पांचवा ग्रन्थ वृत्ती सूत्र था जो कि पाणिनी अष्टाध्यायी के भाष्य का नाम था।

२. गद्य और पद्य--इस परीक्षा में विद्यार्थियों के लिए धारावाहिक रूप से संस्कृत में गद्य लिखना आना आवश्यक था, साथ ही पद्य रचना की योग्यता भी आवश्यक थी।

३. हेतु विद्या—इस में 'न्याय द्वार तर्क शास्त्र' नामक ग्रन्थ का अनुशीलन कर उस में उत्तीर्ण होना आवश्यक था।

४. अभिधर्म कोष-(Metaphysics)

यह परीक्षा 'द्वार पंडित' नामक विश्वविद्यालय के अधिकारी द्वारा ली जाती थी। ह्यूनसांग ने लिखा है कि यह अधिकारी परीक्षा बहुत कठोर होती थी, इस में अनुत्तीर्ण विद्यार्थियों की संख्या ४० प्रतिशतक से कम नहीं होती थी। इस से प्रतीत होता है कि नालिन्दा विद्यालय के संचालकों को अपने विश्वविद्यालय का स्टैन्डर्ड ऊंचा रखने का हमेशा ध्यान रहता था। विश्वविद्यालय में कौन से विषय मुख्यतया पढ़ाये जाते थे इसका वृत्तान्त भी चीनी विद्यार्थियों के लेखों से मिलता है। बौद्ध धर्म का ऊंचे से ऊंचा अध्ययन इस विश्वविद्यालय का मुख्य कार्य था। इसी लिए बौद्ध धर्म के सभी प्रसिद्ध शास्त्र यहां पर पढ़ाये जाते थे। पर केवल बौद्ध धर्म के शास्त्र ही नहीं अपितु अन्य विद्याओं को पढाने का भी यहां समुचित प्रबन्ध था।

शिक्षा प्रबन्ध—इत्सिंग के अनुसार इस विश्वविद्यालय में इस प्रकार के शिक्षक थे जो सब सूत्रों और शास्त्रों का अध्यापन करते थे। ५०० ऐसे विद्वान् जो ३० 'विद्यासंग्रहों' को पढ़ा सकते थे, और १० ऐसे विद्वान् थे जो ५० 'विद्यासंग्रहों' की व्याख्या कर सकते थे। इन्हीं दस विद्वानों में एक कुलपति आचार्य होता था। विश्वविद्यालय में ऐसी १०० वेदियां थी जहां से शिक्षक लोग व्याख्यान दिया करते थे। ह्यून सांग के समय शीलभद्र नाम का आचार्य नालिन्दा विश्वविद्यालय का प्रधान था। यह शीलभद्र बंगाल का राज कुमार था परन्तु इसने राज्य की आंकाक्षा छोड़ कर शिक्षा में ही अपना सम्पूर्ण जीवन लगा दिया था।

ह्यूनसांग के अनुसार १०००० विद्यार्थी इस विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त करते थे। नालन्दा में शिक्षकों और विद्यार्थियों का पारस्पारिक संबन्ध बड़ा घनिष्ठ होता था। विद्यार्थी लोग अपने गुरुओं की सेवा करते थे, और गुरु केवल विद्यादान ही नहीं करते थे प्रत्युत् विद्यार्थियों के चारित्र्य को उन्नत करना अपना कर्तव्य समझते थे। नालिन्दा के स्नातकों की उपाधि को राज्यद्वारा स्वीकार किया गया था। उन्हें राज्य की ओर से कार्य मिलता था।

पुस्तकालय— इस महान् विश्वविद्यालय का पुस्तकालय भी एक विराट् पुस्तकालय था जो संसार के प्राचीन पुस्तकालयों में एक अनुपम था। यह पुस्तकालय भी नालन्दा के 'धर्मगंज' नामक विभाग में स्थित था। यह भवन तीन विभागों में विभक्त था जिन के नाम क्रमशः 'रत्नसागर' 'रत्नोदधि' और 'रत्नरञ्जक' थे। ये तीनों भवन बड़े विशाल थे। इनकी

विशालता का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि रत्नोदधि नव मञ्जिला था । इस में विशेषतया धार्मिक साहित्य प्रचुर मात्रा में था। मुसलमान आक्रन्ताओं ने इस पुस्तकालय को भी अछूता नहीं छोड़ा और आग की ज्वालाओं के यह अर्पित हो गया।

वैभव— इस विश्वविद्यालय का वैभव अपार था। ह्यून सांग ने इस के वैभव के विषय में लिखा है—

इस विश्वविद्यालय के विशाल भवनों के ऊँचे बुर्ज और सुन्दर रमणीक मीनारें पर्वत की चोटियों की तरह शोभायमान हैं । इस की वेधशालायें प्रातः कालीन वाष्प में विलीन रहती हैं, इस के ऊंचे भवन बादलों को छूते हैं । खिड़कियों से मेघ और वायु द्वारा निरन्तर चित्रित किए जाते हुए आकाश को देखा जा सकता है, तथा रोशनदान से सूर्य और चन्द्रमा के सम्मेलन का अपूर्व दृश्य दिखलाई देता है। निर्मल पारदर्शी जलाशयों पर नील इन्दीवर, लाल कनक पुष्प अनुपम शोभा उत्पन्न करते हैं। आम्र कुञ्जों की सघन छाया द्वारा दृश्य और भी अपूर्व तथा सुन्दर हो जाता है । उपाध्यायों के मकान एक ही प्रकार के चौमञ्जिले बनाये गए हैं । सीढ़ियां मोड़दार बनाई गई है। यह विशाल वैभव किसी भी जाति के लिए गर्व का कारण हो सकता है।

अन्त —नालन्दा के विश्वविद्यालय के समीप ही एक और विश्वविद्यालय विक्रमशिला नामक विकसित हो रहा था। पाल वंशी राजाओं के बढ़ते वैभव, प्रताप और श्री के साथ साथ विक्रम शिला का वैभव और श्री तथा गौरव बढ़ता गया । पालवंशी राजाओं ने नालन्दा के स्थान पर विक्रम शिला को राजकीय विश्वविद्यालय बनाया और उसी को उन्नत करने और बढ़ाने में अपना ध्यान दिया। राज्य-सहानुभूति के अन्त हो जाने से नालन्दा विश्वविद्यालय की प्रभा भी क्षीण होने लगी। फिर भी बहुत समय तक यह विक्रम शिला के सामने प्रतियोगिता में टिका रहा और उन्नति करता रहा । महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री की सम्मति में १०वीं और ११ वीं शताब्दी तक नालन्दा विश्वविद्यालय शक्ति शाली विश्वविद्यालय था जो न केवल विक्रमशिला की प्रतियोगिता में खड़ा रहा पर अपने प्राचीन गौरव को भी कायम रख सका। मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी के बिहार और बंगाल पर आक्रमण के समय में भी नालन्दा विश्वविद्यालय विद्यमान था। मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी के आक्रमणों ने ही इस विश्वविद्यालय का अन्त किया।

'कलयुगी दान'

(पं० माता प्रसाद द्विवेदी, अध्यापक, गुरुकुल कांगड़ी)

परिडत दीनानाथ पाण्डे, बी. ए., एल. एल. बी. वकील हाई कोर्ट कुर्सी से एक फिट ऊँचा उछल कर मेज़ पर ज़ोर का घूसा जमाते हुये बोले "महाशय पहले गाँठ ढीली कीजिये, पीछे इतिहास शुरु करना, मेरे पास इतना टाईम नहीं जो आप के साथ फिज़ूल मगज़ पच्ची कर समय खराब करूँ"।

देहाती— "सरकार यह तो बतलाइये, कि इस मामले में कुछ जान भी है, या नहीं ?"

वकील— (लापरवाही से) "जान वान की तुम्हें क्या फ़िकर, जान डालना और निकालना तो हमारे हाथ में है।"

वकील साहब के दाहने हाथ पर ही करीब १½ गज़ की दूरी पर दलाल करीम बकस जी विराजमान थे, यह महानुभाव ग़रीब भोले भाले देहातियों को अपने चंगुले में फँसा कर लाया करते, और इसी प्रकार अपना निर्वाह किया करते थे। यह झट बोल उठे,—"खैर जान वान की तो सब देख ली जावेगी, स्याह का सफ़ेद और सफेद को स्याह कर दिखाना तो हमारे वकील साहब का बांयें हाथ का खेल है, अभी जुम्मा २ आठ दिन भी नहीं हुवे एक मुकदमे में कामयाब हुवे थे, जो कि सोलहों आने झूठा था।"

वकील— "अच्छा, तुम अपना केस किलियर करो, क्या मामला है ?"

देहाती— "एक आदमी पर मेरे ५०० रुपये चाहियें, उन्हीं की मैंने नालिश करनी है"।

वकील— "हुन्डी पर दिये थे या रुक्के पर ?"

देहाती— "साहब" रुक्का, वुक्का तौ कछू नाहीं; ऐसे ही इतबार पै दै दये हते !"

वकील— "कोई गवाह है ?"

देहाती— "साहब, गवाहन को तौ कछू फ़िकर नाहीं; एक नाहीं २० तैयार कर लीवे, साँची बात है, कछू झूंठी तो है ही नाहीं, मुल आप ऐसी किरपा करें, कि वाके आगे हमारी मूंछ न झुक पावे, रुपैय्यन की तो इती कछू परवाह नाहीं है। रही मेहनताने की तो हम आप का खुश कर दीवे"

वकील— "कुछ पढ़े लिखे हो ?"

देहाती— "पढ़ा तो छुटपन में बहुत कछु रहा, मुदा अबतो सब कछु भूल गवा।"

वकील— "दस्तखत भी नहीं कर सकते"

देहाती— "अब तो काला अच्छर भैंस बरब्बर है।"

वकील— "यह तो मुशकिल है"

उपरोक्त वाक्य कहते हुये वकील साहब ने, अपने दलाल करीम बक्स की ओर निगाह दौड़ाई और आँखों ही आँखों में कुछ इशारे हुये, जिनको भोला भाला देहाती न समझ सका, बस दलाल साहब झट बोल उठे,— "अंगूठे का निशान तो बना ही सकते हैं, फिर दस्तखत की क्या जरूरत है?"

वकील— "यह लोग देहात में खेती किसानी का काम करते हैं और इस काम में अंगूठे की लकीरें ठीक नहीं रहती हैं घिस जाती हैं।"

करीम बक्स— "अजी हाथ कंगन को आरसी क्या, बनवा कर देख न लीजियेगा।"

वकील साहब ने एक काग़ज़ का टुकड़ा और स्याही की डिब्बी दलाल को दे कर कहा—"अच्छा बनवा लो।"

दलाल— "हाँ, ज़रा देखें तो सही, तुम्हारा अंगूठा कैसा आता है।"

यह कहते हुये दलालराम ने अंगूठे का निशान उस कागज़ के टुकड़े पर लिया और उसे वकील साहब की मेज पर रख कर बोले-"देखिये ऐसा आया है"

वकील— (गौर से देखकर) "ठीक तो है पर स्टाम्प (Stamp) पर भी ऐसा ही आवे तब बात है"।

दलाल— "तो स्टाम्प (Stamp) पर भी देख लीजिये, एक टिकट ही तो खराब होगा, और क्या?"

वकील साहब लापरवाही से सिर हिला कर बोले-"देख लो"। दलाल ने एक लम्बा फ़ुलिसकेप का कागज़ और चार पैसे का टिकट निकाल कर दिया, और वकील साहब ने उस पर टिकट चिपका कर देहाती का अंगूठा लगाने के लिये दे दिया और स्वयं मेज़ पर पड़ी हुई पुस्तक के पृष्ठ लौटने लगे। इतने में दलालराम उस का अंगूठा लगवा कर स्वयं गौर से देख कर वकील साहब से बोले—"साहब, टिकट भी खराब हुआ और काम भी न बना।"

वकील— "क्या हुआ देखें?"

दलाल ने कागज़ वकील साहब को दिया।

वकील साहब देखकर— "इम्प्रेशन (Impression) तो ठीक नहीं बैठा, मगर हाँ सावधानी से लिया जावे तो ठीक आजावेगा।"

इतने में दलाल करीम बक्स देहाती के कुर्ते की ओर घूर कर देखते हुये बोला, "भाई ! देखो !! देखो !!! तुम्हारे कुर्ते पर यह क्या मकड़ी आ पड़ी," देहाती इधर उधर देखने लगा। इतने में वकील साहब ने उस कागज़ को झट पट मेज़ पर पड़ी हुई पुस्तक में छिपा दिया, और उतना ही बड़ा एक दूसरा कागज़ जो पहिले से ही मेज़ पर पड़ा था, हाथ में ले लिया और ध्यान पूर्वक देखकर यह कहते हुये— "खैर काम चल जायगा"–फाड़ कर रद्दी की टोकरी में डाल दिया, और बोले,—"अच्छा तो अब तुम कल आकर नालिश लिखा देना, इस समय तो कोई मुहर्रिर है नहीं।"

देहाती—"बहुत अच्छा सरकार" कह कर चला गया। देहाती के चले जाने पर वकील साहब तथा दलाल ने मिल कर उसी कागज पर जिसको पुस्तक में छुपा दिया था ५००) का रुक्का लिखा लिया और दूसरे दिन जब देहाती राम आये, यह कहकर चलता किया,—"मुझे आज कल मरने तकको फ़ुरसत नहीं है, पुराने मुकदमे ही इतने पड़े हैं कि निबटने में नहीं आते हैं, अच्छा हो यदि आप किसी और वकील का इन्तजाम कर लें।"

* * * *

उपरोक्त घटना को ४ मास व्यतीत हो गये। दलालों की धूर्तता तथा भागीरथ प्रयत्न से पाण्डे जी की वकालत अच्छी चौकड़ियाँ भरने लगी, और उचित तथा अनुचित उपायों से खासी आमदनी भी होने लगी। इधर सार्वजनिक कामों में भी इनके ढोंग की अच्छी धाक जम गई, यही नहीं कि खास, खास आदमियों से ही इनकी परिचिति हो वरन् सर्व साधारण भी इनका सिक्का मानते थे। चार महीने बाद वकील ने उसी देहाती पर (जिससे अंगूठे का निशान लगवाया था) नालिश ठुकवा दी और स्वयं, पैरवी पर खड़े हो गये। केस अदालत में चला। यद्यपि देहाती राम ने धोखे से उस कागज़ पर अंगूठा लगवा लेने के लिये सब कुछ कहा परन्तु नगाड़ खाने में तूती की आवाज़ कौन सुनता है ? उसकी भोली भाली सच्ची बातों पर कुछ भी ध्यान न दिया गया और दलाल को डिगरी दे दी गई। देहाती को रुपया जमा करना पड़ा।

* * * *

पं० दीनानाथ जी सभामें जलियान वाले बाग़ में हुये शहीदों के फंड के लिये ज़ोर दार अपील करते हुये बोले— "सज्जनो आप लोगों को भली प्रकार से मालूम है, कि किस तरह से हमारे सैंकड़ों प्यारे भाई अपने देश के लिये

काम आये और सैंकड़ों रमणियों को, बच्चों को, अनाथ कर गये। इस समय आप लोगों का जो कर्तव्य है उसे आप लोग स्वयं विचारिये ! हम सब लोग परस्पर भाई भाई हैं। उन विधवाओं तथा अनाथों की सहायता करना हमारा सब से पहला धर्म है जिनके पति तथा पिता हमारी खातिर देश के लिये अपनी जान देकर स्वर्ग लोक को प्राप्त हो गये हैं। आप लोगों का इस समय यह मुख्य कर्तव्य है, कि अपने पसीने की कमाई इस धर्म कार्य में अर्पण करदें, यही धन का सदुपयोग है।" यह कह कर वकील साहब ने अपनी पाकेट से १००) के नोट निकाल कर कहा कि—"मैं इन अनाथ और विधवाओं की सहायातार्थ १००) देता हूं।" वकील साहब की उदारता तथा देश भक्ति पर मुग्धता देखकर लोगों की तालियों से सभा मण्डप गूंज उठा। लोग आपस में कानाफूसी करने लगे कि, वकील साहब बड़े उदार हैं, बड़े धर्मात्मा हैं, अपनी कमाई सदा शुभ कार्यों में खरच करते हैं। कई बोले, और कमाल तो यह है कि वकील साहब हमेशा सच्चे ही मुकदमों की पैरवी करते हैं, झूठा मुकदमा तो आज तक इन्होंने कभी लिया ही नहीं है।

* * * *

वकील साहब ने १००) उन ५००) में से दिये थे जो उन्होंने उस देहाती पर झूठी नालिश करके प्राप्त किये थे।

सम्पादकीय

कुरान में मुहम्मद की घरेलू बातें

ईश्वरीय-ज्ञान के नाम से प्रचलित पुस्तकों में से कुरान भी एक है। परन्तु कुरान की, अन्य धर्म-पुस्तकों की अपेक्षा एक विशेषता है। दूसरी इलहामी पुस्तकों में या तो पैग़म्बरों का नाम तक नहीं और यदि है तो उन का जीवन चरित्र ही है परन्तु कुरान में मुहम्मद साहब के जीवन-चरित्र के स्थान में उन की घरेलू बातों का ज़िक्र है। घरेलू बातें भी ऐसी जिन्हें पढ़ कर हंसी आती है कि ऐसी बातों को सुन कर कुरान को कौन आदमी इलहाम मान सकता है।

मुहम्मद साहब ने ज़ैद को अपना दत्तक पुत्र माना हुआ था। एक बार वे उस के घर पर उसे मिलने गये। ज़ैद घर पर नहीं था। हज़रत घर में घुस गये। अचानक से ज़ैद की स्त्री ज़ैनब पर नज़र पड़ गई और वे मुग्ध हो गये। ज़ैद को पता चला तो वह

ज़ैनब को तलाक देने के लिये राज़ी हो गया। यह देख कर मुहम्मद साहब भी शादी के लिये तय्यार हो गये और एक दिन जब अपनी प्रिया धर्मपत्नी आयशा के पास बैठे हुए थे तब एक दम चिल्ला उठे-'खुदा ने मेरा ज़ैनब के साथ निकाह कर दिया है'। अन्त में मुहम्मद की ज़ैनब से शादी होगई। यह देख कर कुरैशी लोग उसे बुरा-भला कहने लगे क्योंकि अरब जैसे गिरे हुए मुल्क में भी दत्तक-पुत्र की वधू से शादी करना बिल्कुल ही नयी चीज़ थी। यह देख कर मुहम्मद साहब को आयत उतरी जो इस प्रकार थीः—

"तू तो परमात्मा को जो बात मंन्जूर है उसे छिपाना चाहता है क्योंकि तू मनुष्य से डरता है। जब ज़ैद ने ज़ैनब को तलाक कर दिया तब हमने उस की तुझ से शादी कर दी-ताकि आगे से दत्तक-पुत्र की वधू से शादी करना पाप न समझा जाय। जिस बात की खुदा ने पैग़म्बर को इजाज़त दी हो, वह बुरी नहीं समझनी चाहिये।" (सूरत्तुल्ल हज़ाब-३७ आयत)

कुरान के अनुसार ४ स्त्रियों से ही शादी कर सकते हैं परन्तु हज़रत ने १० के लग भग स्त्रियों से शादी की थी। इस के लिये भी खुदा को चिन्ता हुई और निम्न आयत (सूरत्तुल्ल हज़ाब-४६) भेजी गईः—

"अरे नबी, जिन २ को भी तूने दहेज़ दिया है उन सब औरतों को रखने की हम तुझे इजाज़त देते हैं। जिन औरतों को तूने लड़ाई में जीता वे भी तुझे देते हैं। तुम्हारे चचा की, बूआ की लड़कियों को भी हम तुझे देते हैं। ईमान लाने वाली हरेक औरत को हम तुझे देते हैं। तू जिस से शादी करना चाहे कर सकता है। तुझे यह दूसरों पर तरजीह है।"

परमात्मा की तरफ़ से इस प्रकार का लाइसेन्स हज़रत मुहम्मद साहब ही ले सकते थे। दूसरा कोई तो ऐसी बातों को सुन कर ही शर्म से सिर नीचा कर ले।

इसी अध्याय की ५६ अयात में और मज़ेदार बात आती है। वहां लिखा हैः—

"अरे मुसलमानो, नबी के घर में उस के बग़ैर पूछे मत घुसो। जब वह तुम्हें खाने को बुलाये तभी उस के घर में जाओ और तब भी भोजन करते ही चले आओ। घर में धन्ना मार कर मत बैठ जाओ। उस के साथ ऐसे बात मत करो जैसे वह तुम्हारे साथ का आदमी हो, क्योंकि इस से नबी को तकलीफ़ होगी, वह तो शर्म के मारे तुम्हें कुछ न कहेगा परन्तु खुदा को तो सच बोलने से शर्म नहीं आती।"

एक वार अबूबकर और उमर हज़रत मुहम्मद के सामने ही बड़ी ज़ोर से बहस करने लगे। बड़े २ आदमियों के सामने छोटों का इस प्रकार झगड़ पड़ना शिष्टाचार के विरुद्ध था परन्तु

अबूबकर और उमर ने इसका ख़्याल ही न किया। यह देख कर एक आयत उतरी जो सूरतुल हुजरात (२-५) में में इस प्रकार है:—

"अरे मुसलमानो, नबी की आवाज़ से ऊंची आवाज़ मत किया करो। जैसे दूसरों के सामने ज़ोर से बोलते हो वैसे नबी के सामने मत बोला करो। कहीं ऐसा न हो कि ऐसा करने से तुम्हारा सब किया कराया फ़िज़ूल जाय और तुम्हें मालूम ही न हो। जो लोग नबी के सामने अपनी आवाज़ धीमे रखते हैं उनके हृदय पर खुदा का असर है।"

कहते हैं कि कुछ कुरैशियों ने मुहम्मद को मार डालने का जाल रचा था। उन्हें लक्ष्य में रख कर एक आयत उतरी जो इस प्रकार है:—

"वे तुझे जाल में फंसाना चाहते हैं, उन्हें याद रहे कि जो ईमान नहीं लाते वही जाल में बधेंगे।"

जैसा हमने पहले कहा, अन्य धर्म-ग्रन्थों में अनेक ऐसी बातें हैं जिन से उन के ईश्वरीय ज्ञान अथवा इलहाम होने में सन्देह होता है परन्तु कुरान में इस प्रकार की बातें ख़ास तौर पर पायी जाती हैं जिन्हें देख कर मालूम पड़ता है कि यह तो नबी के घर का कच्चा चिट्ठा है। एक ख़ास आदमी के घरेलू मामलों को नज़र में रख कर उसे अपने-दत्तक पुत्र की स्त्री से शादी करने की इजाज़त देना, बेशुमार औरतों के साथ निकाह कर सकने तक की इजाज़त दे देना, उस के मकान में बग़ैर पूछे न जाने का उपदेश देना आदि ऐसी बातें हैं जो मुसलमानों की इलहामी किताब के सिवाय दूसरी किताबों में नहीं पायी जातीं।

गुरुकुल—समाचार

ऋतु—ग्रीष्म ऋतु अपने पूरे ज़ोर पर है। दिन को गरम लू चलती है, आकाश में धूली चढ़ी रहती है। कभी २ सवेरे और सायंकाल को ठण्डी हवा के झोंके आ जाते हैं। रात को भी गरमी कम नहीं होती, जिससे नींद आनी तक दूभर हो जाती है। चारों ओर प्रकृति मुरझाई हुई सी प्रतीत होती है। वृक्ष, लता, पल्लव झुलसे हुए हैं। समीपस्थ पर्वत पर इस महीने ग्वालों की खूब बहार रही है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। चिकित्सालय खाली पड़ा है।

गंगा—प्रचण्ड गर्मी के कारण पर्वत की बर्फ पिघलने लगी है, अतः गंगा में पानी बढ़ रहा है। पुल टूटते जा रहे हैं, उन के स्थान पर यात्रियों के लिए नौका चलती है। गंगा में पानी बढ़ने से स्नान का सुविधा होगया है। ब्रह्मचारी प्रतिदिन गंगा से तैरने का खूब आनन्द लेते हैं। गंगा का जल स्वच्छ है।

सभाएँ— कुल की सब सभाओं के अधिवेशन नियम पूर्वक हो रहे हैं। इस मास में भी इन सभाओं की ओर से कई एक विशेष सम्मेलन हुए हैं।

साहित्य परिषद् की ओर से वैशाख पूर्णिमा को श्री पं० चन्द्रमणि जी पालिरत्न विद्यालंकार के सभापतित्व में कुल में बुद्ध जयन्ती बड़े उत्साह के साथ मनाई गई। बहुत से वक्ताओं ने भगवान् बुद्धदेव के जीवन पर उत्तमोत्तम व्याख्यान दिए और उन का गुण-कीर्तन किया।

पिछले दिनों संस्कृतोत्साहिनी सभा की ओर से "प्रतिभा सम्मेलन" नामक एक विशेष अधिवेशन बड़ी सफलता के साथ किया गया। इस में ब्रह्मचारियों ने दो दल बनाकर स्वरचित संस्कृत श्लोकों में अन्त्याक्षरी की। ब्र० प्रकाशचन्द्र तथा ब्र०शंकरदेव के दो दल थे जिन में श्लोकों की सरसता और मधुरता के कारण ब्र० शंकरदेव का दल विजयी माना गया। श्री पं० वागीश्वर जी विद्यालंकार श्री० पं० सत्यकेतु जी विद्यालंकार तथा श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालंकार, निर्णायक सभापति थे। यह सम्मेलन बहुत वर्षों के उपरान्त इस वर्ष किया गया था। अतः यह सम्मेलन इस बार विशेष उत्साह के साथ संपन्न हुआ। महा० वाग्वर्धिनी सभा की ओर से हाल में ही एक 'कविता सम्मेलन' अर्जुन के उपसंपादक श्री पं० सत्यकाम जी के सभापतित्व में हुवा। इस में ब्रह्मचारियों ने सरस एवं भावभरी कविताएँ तथा कथाएँ सुनाई। इस के अतिरिक्त उत्साहिनी की ओर से भी एक संस्कृत कविता सम्मेलन हुआ।

प्रो० सत्यव्रत प्रिंटर और पब्लिशर के लिये गुरुकुल-यन्त्रालय कांगड़ी में छपा।



सम्पादक प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

* विषय सूची *

विषय	पृष्ठ सं०

प्रो० सत्यव्रत प्रिंटर और पब्लिशर के लिये गुरुकुल-यन्त्रालय काँगड़ी में छपा।

अलङ्कार

तथा

गुरुकुल-समाचार

* स्नातक-मण्डल गुरुकुल-काँगड़ी का मुख-पत्र *

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः ।
हविष्मन्तो अलंकृतः ॥ ऋ० १. १४. ५ ।

सुमन की आत्म-कथा

(श्री पं० रमाशंकर मिश्र)

तेरी सघन लोनी लता में थे शरण पाते रहे,
झोंके सुखद मञ्जुल मलय के झूम-झूक खाते रहे ।
लोभी मधुप-मन मुग्ध मधु के हेतु थे आते रहे,
मकरन्द पा तव गोद में, यश गीत थे गाते रहे ॥१॥

* * *

होकर विलग, वैराग्य का नव बीज मन में बो चले,
पावन परम प्रिय-प्रेम पथ, प्रेमाश्रुओं से धो चले ।
सुषमा सने सुस्नेह का शुभ सौख्य सारा खो चले,
अबतक तुम्हारी आस थी, पर अब पराए हो चले ॥२॥

* * *

भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क और विचार प्रणाली में भेद

(लेखक—श्रीयुत प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालङ्कार)

३ अनुमानः—

अनुमान हमारे जीवन का मुख्य अङ्ग है—ज्ञान का यही सब से लम्बा रास्ता है—इसलिए न्याय-दर्शन तथा Logic की पुस्तकों में इस पर बहुत कुछ लिखा गया है। इस पर तुलनात्मक दृष्टि से कुछ लिखना आवश्यक प्रतीत होता है।

(क) पाश्चात्य दर्शन दो भागों में विभक्त है। एक का नाम है Deductive Logic तथा दूसरे का नाम है Inductive Logic.

Deductive logic में अनुमान के उस स्वरूप का वर्णन है जिसका प्रवर्त्तक एरिस्टोटल था। Deductive inference का आधार सामान्य नियम है। हम एक सामान्य नियम को जानते हैं-उसी के आधार पर पक्षसिद्धि करते हैं; 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वन्हिः' इस ज्ञान से परिचित हैं—उसी के आधार पर 'पर्वतोऽयं वन्हिमान्' यह समझ जाते हैं। सामान्य से विशेष के अनुमान को ही Deduction कहते हैं।

Inductive logic में अनुमान के उस स्वरूप का वर्णन है जिस का प्रवर्त्तक बेकन था। मिल ने भी इस पर बहुत कुछ लिखा है। Inductive logic की आधार, विशेष घटनाएं हैं। हम घटना विशेषों को जानते हैं—उन्हीं के आधार पर एक सामान्य नियम निकाल लेते हैं। उदाहरणों तथा दृष्टान्तों को जानते हैं-उन्हीं के आधार पर व्याप्तिनिरूपण कर लेते हैं; बाज़ारों, रसोईघरों में धूम्र तथा अग्नि के संयोग को देख चुके हैं अतः 'यत्र यत्र धूमस्तत्र तत्र वन्हिः' इस नियम को समझ जाते हैं। विशेष से सामान्य के अनुमान को ही Inductive कहते हैं। जब से योरप में विज्ञान ने उन्नति प्रारम्भ की तब से Inductive inference को प्रधानता मिलने लगी, क्योंकि इसी के बताए नियमों के आधार पर, विज्ञान के परिणामों को परखा जा सकता था। इसीलिए कई लेखकों ने इसका नाम Material logic भी रख दिया है।

स्वभावतः प्रश्न उत्पन्न होता है कि पाश्चात्य विचारकों के लिए ये दोनों भेद कहां तक युक्तियुक्त हैं? Deduction तथा Induction को अलग २ रखना स्वाभाविक है या अस्वाभाविक?

हमारी सम्मति में अनुमान-खण्ड के ये दोनों भेद अत्यन्त कृत्रिम हैं, अत्यन्त अस्वभाविक हैं। हमारा अनुमेय

ज्ञान जितना भी है उस सब में Deduction तथा Induction दूध और पानी की तरह मिले हुए हैं, उन्हें अलग अलग नहीं किया जा सकता। Deduction में Induction मिला हुआ है, Induction में Deduction मिला हुआ है, दोनों एक दूसरे के ऊपर आश्रित हैं, एक दूसरे के बिना नहीं रह सकते। उदाहरणार्थ, जब हम कहते हैं–'यत्र २ धूम्रस्तत्र २ वन्हिः'-तब हम एक Deduction या व्याप्ति का प्रतिपादन करते हैं। परन्तु क्या यह व्याप्ति कभी सम्भव हो सकती है जब तक हमने अनेक जगह अपने अनुभव से धूएँ और आग को इकट्ठा न देखा हो! क्योंकि हम धूम्र तथा वन्हि को अनेक स्थलों पर इकट्ठा देख चुके हैं अतः उन Inductions के कारण ही हमें 'यत्र २ धूम्रः तत्र २ वन्हिः' इस Deduction अर्थात् व्याप्ति का ज्ञान होता है। जिस तरह Deduction के लिए Induction ज़रूरी है उसी तरह Induction के लिए Deduction ज़रूरी है। रसोई में धूएँ को देख कर अग्नि को देखते समय मैं इस बात पर विचार नहीं करता कि कहीं मेरी आँखों ने मुझे धोखा न दे दिया हो–कार्य कारण के नियम पर भी उस समय मैं शंका नहीं करता। उस समय मैं Induction करता हुआ Deduction का आश्रय लेता हूँ। सारांश यह है कि अनुमान करते हुए Deduction तथा Induction इन दो भेदों का करना सर्वथा कृत्रिम है-ये भेद स्वाभाविक नहीं जान पड़ते।

भारतीय दर्शन में अनुमान खण्ड के ये कृत्रिम भेद नहीं किए। न्याय दर्शन में अनुमान के पांच अवयव दिखाए गए हैं–प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनयन तथा निगमन। पञ्चावयव के प्रतिज्ञा, हेतु, तथा उदाहरण-ये तीन हमें व्याप्ति तक पहुंचाने में सहायक हैं। उदाहरणों द्वारा हम व्याप्ति को ढूँढ निकालते हैं–विशेष द्वारा सामान्य की तरफ जाते हैं–Logic के शब्दों में Inductive method of inference का आश्रय लेते हैं। परन्तु उसी अनुमान के पिछले दो अवयव–उपनय तथा निगमन–व्याप्ति का आश्रय लेकर उसे स्थल विशेष में घटाते हैं, सामान्य द्वारा विशेष की तरफ जाते हैं, Logic के शब्दों में Deductive method of inference का आश्रय लेते हैं। न्यायदर्शन के पञ्चावयव में Induction तथा Deduction दोनों आ जाते हैं। प्रतिज्ञा, हेतु तथा उदाहरण से व्याप्ति का निकालना Induction है और व्याप्ति, उपनयन तथा निगमन से पर्वत में वन्हि का सिद्ध कर देना Deduction है। भारतीय दार्शनिकों ने इन दोनों में कृत्रिम भेद उत्पन्न करने का प्रयत्न नहीं किया। अनुमान करते हुए प्रथम तीन Inductive तथा पिछली तीन Deductive बातों का आना आवश्यक है। इसी से अनुमान

सर्वाङ्गपूर्ण बनता है। जब Induction तथा Deduction एक ही अनुमान के अङ्ग हैं तब जो दर्शन Syllogism अर्थात् अनुमान में इन दोनों अंगों को इकट्ठा रखता है वह दूसरे दर्शन की अपेक्षा अवश्य उत्कृष्टतर है और इसी लिये भारतीय दर्शन पाश्चात्य-दर्शन की अपेक्षा उत्कृष्टतर है।

भारतीय दर्शन का गौरव और भी बढ़ जाता है जब हम देखते हैं कि यहां Deduction तथा Induction के भेदों को सर्वथा भुला नहीं दिया गया।

न्याय दर्शन में अनुमान के दो भेद किए गए हैं। एक का नाम है स्वार्थानुमान, दूसरे का नाम है परार्थानुमान। स्वार्थानुमान में केवल तीन अवयव होते हैं-परार्थानुमान में पांच। स्वार्थानुमान का प्रकार निम्नलिखित है:—

१. यत्र २ धूम्रस्तत्र २ वन्हिः।

२. धूमवाँश्चायं पर्वतः।

३. अतः पर्वतोऽयं वन्हिमान्॥

यदि ध्यान से देखा जाय तो प्रतीत होगा कि एरिस्टोटल की Syllogism का भी यही तरीका है—

1. All men are mortal.
2. Socrates is a man.
3. Therefore Socrates is mortal.

स्वार्थानुमान तथा एरिस्टोटल के Deductive inference की तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि स्वार्थानुमान तथा Deductive Inference एक ही बात हैं, दोनों में अनुमान के केवल तीन अङ्गों का वर्णन किया जाता है। परार्थानुमान दूसरे को समझाने के लिये होता है, अतः उस में विशेष से सामान्य अर्थात् व्याप्ति किस प्रकार प्राप्त हुई-फिर व्याप्ति से विशेष ज्ञान किस प्रकार हुआ-यह सब कुछ बताने की जरूरत पड़ती है और इसीलिए परार्थमान में Induction तथा Deduction दोनों मिले रहते हैं। स्वार्थानुमान में केवल Deduction ही होता है क्योंकि स्वार्थानुमान दूसरे को समझाने के लिए नहीं किया जाता-यह अपने ही लिये है। अपने लिये अनुमान करने में Deductive method ही उपयुक्त है, अतः स्वार्थानुमान में एरिस्टोटल के अनुमान की तरह तीन ही अवयव रखे गये हैं। स्वार्थानुमान अर्थात् Deductive inference में लम्बे चौड़े सिलसिले का क्या आवश्यकता है? इसीलिए बौद्ध दार्शनिक अनुमान के केवल दो अवयव मानते हैं। उन के मत में 'क्योंकि पहाड़ पर धूँआ दिखाई देता है इस लिए वहां अग्नि अवश्य है,' एतावन्मात्र अनुमान के लिये पर्याप्त है। इसी भाव को वेदान्त की निम्न परिभाषा में बड़े स्फुट शब्दों में कहा गया है:—

तत्र पञ्चतयं केचिद् द्वय मन्ये वयं त्रयम् ।
उदाहरण पर्यन्तं यद्वोदाहरणादिकम् ॥

वेदान्तियों के मत में प्रतिज्ञा, हेतु तथा उदाहरण, अथवा उदाहरण, उपनयन तथा निगमन इन दोनों में से किसी तरह का अनुमान किया जा सकता है। यदि अनुमान में प्रतिज्ञा हेतु तथा उदाहरण मात्र दिये जांय तो यही Inductive methed of inference कहलायगा; यदि उदाहरण, उपनयन तथा निगमन मात्र दिये जाँय तो यही Deductive Method of Inference कहलायगा।

इस में कोई सन्देह नहीं कि यूरोप में एरिस्टोटल ने Deductive logic का दृढ़ प्रचार किया। एरिस्टोटल के बाद १६-१७ वीं शताब्दी में फ्रान्सिस बेकन ने और १९वीं शताब्दी में J. S. Mill ने Inductive logic की आधार-शिला को रक्खा। बेकन तथा मिल ने कहा कि सामान्य से विशेष परिणाम निस्सन्देह निकल सकते हैं, परन्तु हम सामान्य तक कैसे पहुंचे ? विशेष से सामान्य तक पहुँचने अर्थात् व्याप्ति का पता लगाने के नियम क्या हैं ? वर्त्तमान युग के बढ़ते हुए विज्ञान की सब से बड़ी आवश्यकता भी यही थी। कैमिस्ट्री, फ़िज़िक्स इन सब Empirical Sciences में विशेष अर्थात् Particular से सामान्य अर्थात् General तक पहुँचने का ही प्रयत्न हो रहा था अतः विज्ञान के युग ने पश्चिम में Inductive Logic का आभार मान कर उस का हृदय से स्वागत किया। युरुप के 'दर्शन के इतिहास' में कई सदियों तक Inductive logic का अभाव पाया जाता है। बेकन तथा मिल ने उसी अभाव को दूर किया।

Deductive Logic का मुख्य विषय Syllogism है। Syllogism द्वारा विचार को विरोधों से दूर करना ही Deductive logic का काम है। प्राचीन ग्रीक लोगों का विचार यदि दोष शून्य (अर्थात् Consistent) सिद्ध हो जाता तो वे सन्तुष्ट हो जाते थे। बेकन तथा मिल को इतने से सन्तुष्टि नहीं हुई। उन्होंने कहा कि दोष शून्य विचार (Consistent thought) में क्रियात्मिक जगत् में पायी जाने वाली घटनाओं से अनुकूलता (Conformity to facts) भी होनी चाहिये। इसी उद्देश्य से Inductive logic का प्रादुर्भाव हुआ। Inductive Logic के मुख्य विचार निम्नलिखित हैं:—

1. Observation and Experiment.
2. Generalization or Induction or Inference.
3. Analogy.
4. Testimony.

बेकन तथा मिल ने एरिस्टोटल की अपेक्षा क्या अधिक बताया ? केवल यही

कि Observation तथा Experiment ही विचार में आधार हैं। Analogy तथा Testimony भी मनुष्य के ज्ञान में बड़े साधन हैं। यद्यपि एरिस्टोटल का Syllogism बिना Observation, experiment, analogy तथा testimony के हो ही नहीं सकता, तथापि उसने इनकी अपने दर्शन में पृथक् गणना नहीं की। मिल तथा बेकन Observation आदि पर अधिक बल डालना चाहते थे अतः उन्होंने अपने दर्शन में इनकी पृथक् गणना कर दी है। Deductive Logic में Observation, Experiment, Analogy और Testimony को उनका पर्याप्त गौरव नहीं दिया गया; Inductive Logic में उन्हें गौरव काफ़ी दे दिया गया है।

भारतीय दर्शन को कई लोग भूल से Formal या Deductive Logic कह बैठते हैं। हम पहले दिखा चुके हैं कि भारतीय दर्शन के अनुमान के पञ्चावयव में Inductive तथा Deductive दोनों मौजूद हैं अतः इसे Deductive Logic कहना भूल है। इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि भारतीय दर्शन में एरिस्टोटल का Syllogism या Deductive Method नहीं। वह तो है ही। हां, उस के साथ Inductive method भी शामिल है। इसी लिए तो १६वीं तथा १६ वीं सदी में आविष्कृत किये गए तरीके भारतीय दर्शन में एरिस्टोटल से भी पहले के चले हुए हैं। उन्हीं को प्रमाण चतुष्टय कहते हैं जो कि निम्न लिखित हैं—

१. प्रत्यक्ष।
२. अनुमान।
३. उपमान।
४. शब्द।

न्याय का प्रत्यक्ष ही बेकन तथा मिल का Observation और Experiment है। न्याय का अनुमान ही पाश्चात्य दर्शन का Generalization या Inference है। न्याय का उपमान ही Analogy तथा शब्द ही Testimony है। पश्चिमीय दर्शन के विषय में कहा जा सकता है कि वहां पहले Deductive और तदन्तर Inductive Logic चली। भारतीय दर्शन तो Inductive Logic ही है, Deductive उस के भीतर समाई हुई है। भारतीय दर्शन में इन दोनों के साहचर्य्य को प्रारम्भ से ही समझा गया है। प्रत्यक्षादि प्रमाणों का पृथक् परिगणन यदि भारतीय दर्शन को Inductive सिद्ध करता है तो शंका हो सकती है कि क्या भारतीयों ने पाश्चात्यों की तरह Inductive Logic से कोई उपयोग लिया या नहीं? पश्चिम में Inductive Logic का उदय विज्ञान के विकास के साथ हुआ। Observation तथा Experiment से Science बढ़ी। भारत में भी क्या Inductive Logic से कोई लाभ उठाया गया? इस प्रश्न का उत्तर बड़ी अच्छी तरह "हाँ" में दिया जा सकता है। ज्योतिषशास्त्र तथा वैद्यक-शास्त्र की जो उन्नति भारत ने

की थी वह अब तक पश्चिम में नहीं हुई। क्या यह सब कुछ बिना प्रमाणों का प्रयोग किये हो गया था? नहीं, कदापि नहीं। ज्योतिष-शास्त्र तथा वैद्यक-शास्त्र स्वयं प्रमाणों का प्रतिपादन करते हैं। उनकी आन्तरिक साक्षी सिद्ध करती है कि भारतीय दार्शनिक Inductive Logic का पूरा पूरा उपयोग करते थे।

सारांशतः जैसे पाश्चात्य Logic के उद्देश्य को अपना भी उद्देश्य मान कर मोक्ष का प्रतिपादन करते हुये भारतीय विचारक पाश्चात्य दार्शनिकों से एक कदम आगे बढ़ जाते हैं, वैसे Inductive तथा Deductive के भेद को समझने हुए कहीं २ उन्हें पृथक् रख कर वे जब न्याय दर्शन में दोनों को परार्थानुमान में मिला देते हैं तब भी पाश्चात्य दार्शनिकों से एक कदम और आगे निकल जाते हैं। इस के अतिरिक्त प्रमाण चतुष्टय का मानना सिद्ध करता है कि वे लोग Inductive Logic से भली भांति परिचित ही नहीं परन्तु अपने दर्शन का यही रूप देते थे-उनके दर्शन को Inductive Logic कहा जा सकता है, परन्तु यह कहते हुये ध्यान में रखना चाहिये कि Inductive-Deductive के कृत्रिम भेद को वे स्वीकार नहीं करते थे।

(ख) इन दोनों भेदों के अनन्तर अब हम दूसरे भेद पर विचार करते हैं। व्याप्ति ज्ञान यदि ठीक हो तो आगे अनुमान कर लेना सहज बात है इसी लिए deductive के ऊपर झगड़े हैं ही नहीं। यदि Induction ठीक है तो Deduction ठीक होगा ही अतः दार्शनिक विचार का युद्ध सदा से व्याप्ति के साथ रहा है। "यत्र २ धूमस्तत्र २ वन्हिः" यह एक व्याप्ति है, इसकी सत्यता का निर्णय कैसे किया जाय? हेतु ठीक है या नहीं? यह न्याय दर्शन तथा Inductive Logic (जो कि व्याप्ति तक पहुंचाने का तरीका है) दोनों के सामने बड़ा भारी प्रश्न है जिस का निर्णय करना आवश्यक है, इस के बिना अनुमान ही नहीं चल सकता। इसका निर्णय कैसे किया जाय? J.S. Mill ने इस के लिये ५ तरीके बताए हैं जो कि निम्न लिखित हैं:—

[१] Method of agreement- Jevons ने इस तरीके का संक्षेप में रूप बताते हुए कहा कि "The sole invariable antecedant of a phenomenon is probably its cause."

उदाहरणार्थ—

यदि अ ब स ण क ख का कारण है।

यदि अ र च ण ल य का कारण है।

यदि अ ग घ ण ट ठ का कारण है।

तो हम अनुमान करेंगे कि अ सदा 'ण' को पैदा करता है क्योंकि 'अ' जब २ भी आता है, ण अवश्य पैदा होता है।

क्या इसी को संस्कृत भाषा में 'यत् सत्वे यत् सत्वं" नहीं कह सकते? यदि कह सकते हैं तो क्योंकि "यत्सत्वे यत्सत्वम्" केवलान्वयी अथवा पूर्ववत् अनुमान है; अतः मिल का "Method of Agreement" केवलान्वयी अनुमान से मिलता जुलता ही है। व्याप्ति के परिष्कार में मिल का दूसरा तरीका:—

[२] Method of difference कहाता है। इस नियम की व्याख्या करते हुए Jevons का कथन है कि "The antecedent which is invariably present when the phenomenon follows, and invariably absent when it is absent, other circumstances remaining the same, is the cause of the phenomenon in those circumstances."

क्या यह वर्णन "यदसत्वे यदसत्वम" इस पंक्ति का ही भावानुवाद नहीं? न्यायदर्शन में इसी को शेषवत् अनुमान कहा है। दूसरे शब्दों में इस प्रकार को केवल-व्यतिरेकी अनुमान से मिलता जुलता नियम कह सकते हैं।

[३] मिल का तीसरा नियम Joint Method of Agreement and Difference के नाम से प्रसिद्ध है। यह "यत्सत्वे यत्सत्वं, यदसत्वे यदसत्वं" सामान्यतो दृष्ट-अथवा अन्वय-व्यतिरेकी अनुमान से मिलता जुलता नियम है। कहीं पर केवलान्वयी; कहीं पर केवल-व्यतिरेकी तथा कहीं पर दोनों अर्थात् अन्वयी तथा व्यतिरेकी अनुमान लगाते हैं, यह सिद्धान्त न्याय शास्त्र का तथा मिल का बहुत-कुछ समान है। मिल के नियमों में Method of Concomitant Variations तथा Method of Residue ये दो और भी नियम हैं जो कि कुल पाँच नियमों की सँख्या को पूरा करते हैं। मुझे यहाँ अधिक गहराई में जाने की आवश्यकता नहीं। इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि कई पाश्चात्य दार्शनिक भी मिल के पिछले दोनों नियमों को Method of difference के अन्तर्गत ही मानते हैं, हमारे यहां तो उन का पृथक् परिगणन न होने के कारण ये केवल व्यतिरेकी के ही अन्तर्गत समझने चाहिये।

मिल के पाँचों Methods तथा न्याय के त्रिविध अनुमान में एक भेद है। मिल ने Methods को कार्य कारण का पारस्परिक सम्बन्ध ढूँढने के लिये प्रयुक्त किया है। न्याय ने अनुमान के हो तीन भेद कर दिये हैं जिन में ये Methods घट जाते हैं। केवलान्वयी अनुमान Method of agreement [यत्सत्वे यत्सत्वं] के बिना नहीं बन सकता। केवल व्यतिरेकी अनुमान Method of difference

[यद्भावे यद्भावः] के बिना नहीं बन सकता। नाही अन्वय व्यतिरेकी अनुमान Joint method of agreement and difference [यत्सत्वे यत्सत्वं यद्भावे यद्भावः] के बिना बन सकता है। परन्तु फिर भी मिल के Methods तथा न्याय के त्रिविध अनुमान में भेद है और वह वही है जो अभी उपर कहा गया है। मिल ने कार्य कारण सम्बन्ध जानने के लिये तीन Methods निकाल लिये हैं, न्याय के त्रिविध अनुमान में ही तीनों Methods स्वयं आजाते हैं। मिल का अनुमान अलग है, तीन 'मैथोड' अलग हैं; न्याय ने Methods को अलग नहीं रक्खा, उन्हें अनुमान का ही अङ्ग बना दिया है। नैय्यायिक अनुमान करता है, उस के अनुमान में मिल के Methods स्वयं लग जाते हैं; मिल अनुमान करता है परन्तु उसे अनुमान कर के देखना पड़ता है कि उस के अनुमान पर कौन सा Method लगता है। नैय्यायिक को एक ही क्रिया करनी पड़ती है, मिल को दो क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, उद्देश्य दोनों का समान है।

(ग) भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क में तीसरा भेद व्याप्ति विषयक है। पश्चिम का तार्किक कहाता है- "All men are mortal" भारत का तार्किक कहता है, "यत्र २ मनुष्यत्वं तत्र तत्र मर्त्यत्वम्"। पहला दार्शनिक मनुष्य को देखता है, फिर मनुष्यों को देखता है। अनेक मनुष्यों को देख कर वह सब मनुष्यों के विषय में अपनी व्याप्ति को-"सब मनुष्य मरण धर्मा हैं"-इस प्रकार का शाब्दिक रूप देता है। दूसरा दार्शनिक भी मनुष्य को देखता है और फिर मनुष्यों को देखता है। अनेक मनुष्यों को देख कर वह अपनी व्याप्ति को शब्दों का रूप देता है और कहता है—"मनुष्यत्व और मर्त्यत्व एक ही अधिकरण में रहते हैं"। भारतीय दार्शनिक 'सब मनुष्य' इस शब्द का प्रयोग नहीं करता; वह 'मनुष्यत्व' इस शब्द का प्रयोग करता है। इस बात को सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि "सब मनुष्य" तथा "मनुष्यत्व" इन दोनों भावों में से "मनुष्यत्व" रूप में प्रगट किया हुआ भाव ही दार्शनिक दृष्टि से अधिक महत्व का भाव है। Deduction तो सामान्य से विशेष की तरफ आना है। "सब मनुष्य" इस शब्द का प्रयोग Deduction के भाव के विरुद्ध है, इस में "विशेष" की गन्ध पाई जाती। "मनुष्यत्व" इस शब्द का प्रयोग ही Deduction के भाव के अनुकूल है, क्योंकि इस में "विशेष" की नहीं परन्तु "सामान्य" की गन्ध है।

अनुमान खंड को जिस तरह से Inductive Logic में बढ़ाया है उस से कम से कम सौ गुणा अधिक

में उपाधि आदि भिन्न २ रूपों से न्याय तथा नवीन न्याय में उसे बढ़ाया गया है। नवीन न्याय ने अपने को इतना बोझल बना लिया है कि न्याय दर्शन का उद्देश्य ही उस से ओझल हो गया है। मेरा दृढ़ सिद्धान्त है कि अवच्छेदक वाद के विद्यार्थियों को मुक्ति कभी नहीं मिलेगी, क्यों कि उन्हें न्यायउदर्शन का उद्देश्य ही स्मरण नहीं रह सकता।

अनुमान के अनन्तर उपमान को प्रमाण माना जाता है। इस पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि हमारे यहाँ उपमान को उतना ही प्रामाणिक समझा जाता है जितना Logic में Analogy को।

——:#:——

दीर्घ जीवन के उपाय

"जीवेम शरदः शतम्"

(ले०—कविराज सत्यदेव जी विद्यालंकार वैद्यभूषण)

आज हम अपने पाठकों के सामने दीर्घ जीवन के उपायों के विषय में कुछ विचार करना चाहते हैं। परन्तु आयु किन कारणों से घटती है वा बढ़ती है यह बतलाने से पूर्व विज्ञान की दृष्टि से जीवन और मृत्यु के स्वरूप पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। अतः पहिले उसी को स्पष्ट करने का यत्न करते हैं—

मनुष्य का शरीर छोटे २ Cells वा कोष्ठों से बना हुआ है, जोकि विज्ञान की दृष्टि में जीवित हैं। क्यों कि चेतनता के (१) उत्तेजना, प्रतिक्रिया, वा Response, (२) आत्मीकरण वा Assimilation, (३) वृद्धि वा Growth (४) उत्पादन शक्ति वा Reproduction, और (५) मल त्याग वा Excretion, ये पाँच लक्षण हैं। प्रत्येक Cell वा कोष्ठ इन ५ शर्तों को पूरा करता है। उदाहरण के लिये हम एक-कोष्ठ-धारी अमीबा को लेते हैं। इस प्राणी का शरीर एक ही कोष्ठ से बना होता है किन्तु यह सभी काम करता है। जब Cell इन कामों को नहीं करता तभी वह मृत कहा जाता है। हर्बर्ट स्पेन्सर ने गीता के—

"देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः,
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ"

इस वचन के अनुसार जीवन का लक्षण "अध्यात्म और अधिभूत में समता, एकता, अर्थात् अध्यात्म में अधिभूत को Respond करने की शक्ति होना" किया है, जो कि उपरि वर्णित ५ शर्तों में से केवल एक को ही व्याप्त करता है। अन्य वैज्ञानिक लोगों का कथन है कि ये कोष्ठ Cells

प्रतिक्षण नष्ट होते रहते हैं और इनका स्थान भोजन से बने हुए नए कोष्ठ लेते रहते हैं और नष्ट कोष्ठ मल के रूप में शरीर से निकलते रहते हैं। इन में से पहिली क्रिया को वे 'आत्मीकरण' और दूसरी को 'मलत्याग' कहते हैं। जब तक ये दोनों क्रियाएँ ठीक रहती हैं तब तक ही जीवन है, अन्यथा मृत्यु हो जाती है। अर्थात् जिस प्रकार एक तालाब में शुद्ध पानी का आना और गन्दे पानी का निकलना तालाब को खराब नहीं होने देता, उसी प्रकार शुद्ध आहार और मल तथा विषों का त्याग भी इस शरीर को नष्ट होने से बचाते हैं। यह लक्षण २य, ३य शर्तों को पूरा करता है। आयुर्वेद के विद्यार्थी जानते हैं कि व्यापक दृष्टि से आहार की प्राप्ति वा Assimilation प्राण और मलों का त्याग अपान की ही क्रिया से होते हैं। जब तक इस प्राण और अपान की क्रियाओं में समता वा सहयोग बना रहता है तब तक ही जीवन भी सुरक्षित रहता है। यही कारण है कि अन्य वायुओं की समता पर इतना बल न देकर, संस्कृत साहित्य में इन की समता पर ही विशेष बल दिया गया है। जैसा कि कृष्ण भगवान् ने भी कहा है कि—

"प्राणापानौ समौ कृत्वा नासाभ्यन्तर चारिणौ"

अथर्ववेद में भी प्राण अपान का मृत्यु के साथ सम्बन्ध दर्शाने वाला एक मंत्र पाया जाता है। उस में प्राण अपान को सम्बोधित कर मृत्यु से रक्षा करने के लिये प्रार्थना की गई है। वह मंत्र इस प्रकार है—

"प्राणपानौ मृत्योर्मा पातं स्वाहा"

उत्पादन वा Reproduction जाति की वृद्धि के लिए आवश्यक है किन्तु वह भी चेतनता में प्रमाण अवश्य है।

इस विवेचना से, विज्ञान की दृष्टि में जीवन और मृत्यु क्या है, इस प्रश्न पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। एक शब्द में, जब ये कोष्ठ सम्मिलित रूप से इन सब कामों को छोड़ देते हैं तब पूर्ण, और जब स्थानिक कोष्ठ ही ऐसा करते हैं तब स्थानिक मृत्यु हो जाती है।

जिन महानुभावों की यह स्थापना है कि "जिस प्रकार Ether में भिन्न २ संख्याओं में वेपन होने से ताप, प्रकाश, वा शब्द उत्पन्न होते हैं, और निश्चित संख्या से कम वेपन होने पर हमको इनका अनुभव नहीं होता; इसी प्रकार जीवन भी इन Vibrations की निश्चित संख्या से व्यक्त होता है, और उस से कम होने पर जीवन अव्यक्त होजाता है;" उन से भी किसी प्रकार की हमारी विमति नहीं है क्योंकि वेपन भी गति का ही एक प्रकार है।

जिस प्रकार पुराणों में एक ही प्रजापति परमेश्वर के कार्य भेद से ब्रह्मा, विष्णु और महेश, ये तीन देव बतलाए गए हैं; उसी प्रकार आयु-

वेद में वात प्रजापति के भी ये ही तीन स्वरूप है। अर्थात् जिस प्रकार परमात्मा ब्रह्मा रूप से प्रकृति से जगत् को को बनाता है. विष्णु रुप से इसका धारण करता है, और महेश या रुद्र रूप से इसका संहार करता है. उस ही प्रकार बाल्यकाल में वात, श्लेष्मरूपी प्रकृति से शरीर को बनाता, विष्णुरूप से इसका धारण और वृद्धावस्था में रुद्ररूप से नाश करता है।

यह वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि रज और वीर्य के संयोग के सम-क्षण क्रिया और जीवन शक्ति सब से अधिक होती है और वह उत्तरोत्तर कम होती जाती हैं। मनुष्य की वृद्धि भी उत्तरोत्तर कम होती जाती है। यही कारण है कि आयुर्वेद में बाल्यकाल को श्लेष्म काल और वृद्धावस्था को वात का काल कहा-गया है। दोनों में अन्तर केवल इतना है कि बालक में वृद्धि normal तथा यथार्थ होती है और वृद्ध में वात रुद्र रूप धारण करके श्लेष्मा से विषाक्त पदार्थ उत्पन्न करता है जो कि शरीर के भाग बनने के स्थान में उस को नुकसान पहुँचाते हैं। यही कारण है कि कई महानुभाव विशेष २ रासायनिक पदार्थों की उत्पत्ति को ही मृत्यु का कारण बतलाते हैं। इस के विशेष विवरण को मैं आगे के लिये छोड़ता हुआ यहां पर केवल इतना ही बतलाना चाहता हूं कि इस त्रिदोष की ठीक प्रकृति रहना ही स्वास्थ्य तथा जीवन, और विकृति ही रोग एवं मृत्यु है।

इस सँक्षिप्त विवेचना से बुढ़ापे और मौत की पारस्परिक समता पर भी कुछ प्रकाश पड़ता है। बुढ़ापे के अतिरिक्त नींद की भी घटना मृत्यु से बहुत मिलती जुलती है। मौत नींद की बड़ी बहिन कही जा सकती है। लोक में भी "वह मर गया" आदि मुहाविरे बोले जाते हैं। फलतः मृत्यु की घटना के कारणों को स्पष्ट करने के लिये हम इन पर भी थोड़ा सा विचार करना चाहते हैं।

हमने आपको बतलाया कि भ्रूण की अवस्था में क्रिया और जीवन शक्ति सब से अधिक होती हैं, और यह उत्तरोत्तर कम होती जाती हैं; फलतः जब यह शक्ति इन में बहुत ही कम हो जाती है तब बुढ़ापा आ घेरता है। यह क्रिया शक्ति क्या है? यह क्रिया वही है जिसे कि हम Assimilation वा (आहार) आत्मीकरण और Excretion वा मलत्याग की अथवा दूसरे शब्दों में प्राण और अपान की क्रिया कह आए हैं। अर्थात् कोष्ठ Cell के अन्दर जन्म के समय यह शक्ति एक निश्चित मात्रा में होती है और जब उन में यह शक्ति कम हो जाती है तब मनुष्य की वृद्धावस्था का आरंभ होता है। यह क्रिया क्यों कि २५ साल तक ही अधिक होती है और फिर ४०

के बाद सर्वथा ही नहीं होती, इस लिये वनने का समय भी यही है। बूढ़े लोगों के विचार रुक जाते हैं। उनको बदला नहीं जा सकता। इनकी भी व्याख्या इसी सिद्धान्त से होती है। व्रण भी इस उमर में इसी लिये देर से भरते हैं।

परन्तु प्रश्न होता है कि Cell कोष्ठ की शक्ति को निश्चित करने में कौन २ कारण हैं। एक आस्तिक संभवतः इसका उत्तर अपनी कर्म फल की कल्पना से, और एक नास्तिक शायद आकस्मिकता से इस का उत्तर देगा, परन्तु एक वैज्ञानिक की दृष्टि में यह काम वंशानुक्रमिता से होता है। मैथुन के समय शुक्र और रज में जो बीज वा कीटाणु सब से प्रबल होते हैं वे ही मिल कर संतान का निर्माण करते हैं। इन के शक्तिशाली होने पर संतान के Cells भी बलवान् होते हैं। परन्तु इस से यह न समझना चाहिये कि निर्बल पिता की संतान सर्वदा निर्बल ही होगी; क्योंकि संतान का बल गर्भाधान के समय निकले हुए वीर्याणु पर निर्भर है और उस समय प्रयत्न से सबल कीटाणु भी आ सकता है।

हमारे शरीर में एक विशेष प्रकार की कुछ ग्रन्थियां वा (Glands) भी पाई जाती हैं जो कि शरीर के पोषण को नियमित करती हैं। उदाहरण के लिये Thymus gland, Fat metabolism और Thyroid gland, Nitrogen metabolism को नियममित करता है। इन में विकार उत्पन्न होने से शरीर का ठीक पोषण नहीं होता, Puberty जल्दी आने लगती है और यह शरीर रूपी फल समय से पहिले ही पक कर गिर पड़ता है।

इन्हीं के समान एक और ग्रन्थि है जिसे अण्ड व testes कहते हैं। इन अण्ड कोशों से एक शुक्र के अतिरिक्त अन्तः स्राव बनता है जिसे कि वीर्य, ओज वा Internal secretion कहते हैं। यह स्थानिक शिराओं के द्वारा हृदय में जाता है और फिर सारे शरीर की शक्ति Vitality को बढ़ाता है। इस के विषय में वाग्भट्ट में लिखा है कि

ओजस्तु तेजो धातूनां शुक्रान्तानां परं स्मृतम्
हृदयस्थमपि व्यापि देहस्थिति निबन्धनम्।
स्निग्धं सोमात्मकं शुद्धमीषल्लोहित पीतकम्
यन्नाशे नियतं नाशो यस्मिं स्तिष्ठति तिष्ठति।
निष्पद्यन्तेयतोभावाःकोपचुद्धयान शोक श्रमादिभिः

डाक्टरों का कहना है कि कम से कम २५ वर्ष तक इन अण्डकोशों से ओज बनाने का ही काम लेना चाहिए, शुक्र का नहीं। अथर्ववेद के शब्दों में इस ओज की रक्षा करते हुए ही ब्रह्मचर्य्य के बल से मृत्यु को जीता जा सकता है।

"ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत"
ब्रह्मचर्य्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः॥

अब हम दूसरी घटना नींद की ओर आते हैं। नींद के विषय में आयुर्वेदाचार्यों का मत है कि "जब संज्ञावाही स्रोतसों में तमोगुणी श्लेष्मा अधिक हो जाता है तब नींद का आगमन होता है। तमोगुणी लोगों को (जिन में कि श्लेष्मा से विजातीय द्रव्यों की वृद्धि होती है) दिन रात नींद आती है। रजो गुणी कभी भी सो सकते हैं और सात्विक पुरुषों में (जिन में कि श्लेष्मा से सूक्ष्म तत्वों की वृद्धि होती है) आधी-रात में निद्रा आती है। अर्थात् तामसी पुरुष हमेशा सोते रहते हैं और सात्विक पुरुषों को नींद की बहुत ही कम आवश्यकता होती है। यहाँ पूछा जा सकता है कि यह तमोगुणी श्लेष्मा क्या है? और तमो गुणी अधिक क्यों सोते हैं? आइये, देखें डाक्टर लोग इन प्रश्नों का क्या उत्तर देते हैं।

ऐसा विचार है कि वनस्पतियों की Reproduction के द्वारा स्वाभाविक मृत्यु के समय अन्दर ही एक प्रकार का विष पैदा हो जाता है जिस से कि वनस्पति की मृत्यु हो जाती है। इस क्रिया को Auto-intoxication कहते हैं। इस क्रिया से एक प्रकार के पदार्थ उत्पन्न हो जाते हैं जिन्हें कि Ponogenes कहते हैं। इन ही पदार्थों से हमें थकावट का अनुभव होता है। नींद के समय ओषजन की क्रिया Oxidation से ये पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। इन पदार्थों में Lactic acid प्रधान होता है और इस का प्रभाव विषाक्त होता है।

इन पदार्थों के अतिरिक्त क्षारीय पदार्थ (Leucomains) वात चक्रों (Nervous centres) पर जम जाते हैं जिनसे कि नींद तथा थकावट का अनुभव होता है। इन में से Supra-renal gland में बनने वाली Adernaline मुख्यतम है। क्यों कि अधिक मात्रा में यह विष काम करती है, किंच कुत्तों में इसका Injection करने से नींद आती देखी गई है। नींद के समय ये पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं। जिन लोगों में ये पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे ही तमोगुणी हैं और उनको ही नींद अधिक आती है। इस विवेचना से हम इस परिणाम पर पहुंचे कि जीवन के लिए नींद अनिवार्य है तथा च मृत्यु इन विषयों का ही परिणाम स्वरूप है।

इसी प्रकार इस घटना के अन्यान्य भी कारण हैं परन्तु हम केवल एक का ही वर्णन करके इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। उस का वर्णन यद्यपि हम मलत्याग वा Excretion के रूप में कर चुके हैं परन्तु फिर भी कुछ व्याख्या की अपेक्षा है। प्राणिशास्त्र के वेत्ता हमें बतलाते हैं कि Mammals, पक्षियों तथा Lower Vertebrates की अपेक्षा मनुष्य की आयु कम होती है और उस की आँत बड़ी होती है। इस से वे कल्पना करते हैं कि बृहदंत्र

का आयुष्य के साथ अवश्य कोई संबन्ध है। वे कहते हैं कि आँत के अधिक लंबा होने से उस में मल अधिक देर तक जमा रहता है। फलतः इस में microbes पैदा हो जाते हैं जिन से कि Fermentation तथा Putrefaction के द्वारा शरीर को हानि होती है। मलबन्ध से Malnutrition होता है, आदमी कमज़ोर तथा रोगी हो जाता है, शरीर में नानाविध विष हो जाती हैं, जिह्वा मलिन, शुष्क तथा बेस्वाद हो जाती है। इस विष का प्रभाव वात संस्थान पर भी मालूम होता है, जिस के कि शिरोवेदनादि लक्षण सूचक हैं। ओज वा ब्रह्मचर्य की रक्षा नितान्त असंभव हो जाती है। परिणामतः मनुष्य सब रोगों का घर बन कर अकाल मौत का शिकार बनता है।

प्रिय पाठको! नींद, बुढ़ापे और मौत के कारणों पर विचार करते हुए हमने अर्थापत्ति से दीर्घ आयुष्य के उपाय भी बतला दिए। हमने आप को बतलाया कि प्राण और अपान, आहार और मलत्याग, Assimilation और Excretion, ओज और ब्रह्मचर्य्य की रक्षा और उचित निद्रा, दीर्घ आयुष्य के सीधे कारण हैं। चरक भगवान् कहते हैं कि—

"त्रय उपष्टम्भा इत्याहारः स्वप्नो ब्रह्मचर्यमिति"

अर्थात् आहार, निद्रा तथा ब्रह्मचर्य ये तीन उपष्टंभ हैं। इनके सदुपयोग से मनुष्य स्वस्थ रहता हुआ देर तक जी सकता है।

विक्रमशिला का विश्वविद्यालय

(ले०—श्री अवीनन्द्र)

भारत के प्राचीन गौरव को स्मरण दिलाने वाले प्राचीन काल के विश्वविद्यालयों में से विक्रमशिला का विश्वविद्यालय अन्यतम था। 'नालन्दा' विश्वविद्यालय की विश्वविख्यात कीर्ति-प्रभा को अपनी प्रखर-प्रभा से मन्द करने वाला विक्रमशिला का राजकीय विश्वविद्यालय ही है। पालवंशी राजाओं के विद्यानुराग-धर्म प्रेम और उनकी कीर्ति की गौरव कथा सुनाने वाला 'विक्रमशिला' का ही राजकीय विश्वविद्यालय है। इस विश्वविद्यालय को प्रारम्भ से ही राजकीय संरक्षण प्राप्त रहा। दूसरा यह कि इस में तन्त्रों का अध्ययन विशेष तौर पर किया जाता था। इस विश्वविद्यालय के विषय में ह्युनसांग और इत्सिंग सदृश चीनी यात्रियों के यात्रा वृत्तान्त के सदृश सहायता देने वाले यात्रा-वृत्तान्त हमें उपलब्ध नहीं। 'तारानाथ' द्वारा लिखित वृत्त ही इस विश्वविद्यालय के इतिहास लिखने में हमारा सहायक और एक मात्र आधार है।

स्थान — विक्रम शिला विश्वविद्यालय का स्थान अभीतक ऐतिहासिक लोग निश्चित नहीं कर सके हैं। कनिंगम ने बड़गांव के समीप ही इसका भी स्थान बताया है, पर यह युक्ति संगत प्रतीत नहीं होता। प्रो० नन्दलाल दे और प्रो० समाद्दार के मत से भागलपुर से १४ मील पूर्व और अङ्ग की राजधानी चम्पा से २८ मील पूर्व 'पाथरघाट' के नाम से मशहूर सीधे टीलों से युक्त पहाड़ी आती है। यही स्थान विक्रम शिला विश्वविद्यालय का बताया जाता है। यह स्थान सुल्तान गञ्ज से जल द्वारा एक दिन का मार्ग है। यह स्थान एक विशाल विश्व विद्यालय के लिए उपयुक्त है। यह स्थान बौद्ध विहारों के लिए भी उत्तम है। दृश्य रमणीक हैं। खुला मैदान है। आराम के साथ ८००० आदमी बस सकते हैं। गंगा टीलों के पास होकर ही बह रही है। पहाड़ियां बहुत ऊंची नहीं। सब प्रकार से एक विश्वविद्यालय और बौद्ध बिहारों के लिये यह स्थान उपयुक्त है।

इतिहास— विक्रम शिला विश्वविद्यालय का आरम्भ पाल वंशी राजाओं के द्वारा हुआ। प्रसिद्ध जन श्रुति तथा तिब्बती ऐतिहासिक लेखकों के अनुसार 'परमसौगत परमेश्वर परम भट्टारक धर्मपाल' ने नवम शताब्दी के आरम्भ में १०८ प्रोफेसरों के साथ राज्यसंरक्षण में इसे स्थापित किया। इस विश्वविद्यालय के नाम के बारे में कहा जाता है कि यहां पर कभी विक्रम नाम का यक्ष मारा गया था। पर तिब्बती लेखक कहते हैं कि बौद्ध ग्रन्थों के एक प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य काम्पिल्य, हुये हैं। आचार्य काम्पिल्य ने तान्त्रिक सिद्धियां प्राप्त की थीं। इन को महामुद्रा भी प्राप्त थी। एक बार आचार्य ने बड़ी भारी शिला को जल में तैरते हुए देखा। आचार्य ने इस शिला को विश्व विद्यालय के उपयुक्त समझ कर यहां पर विश्व विद्यालय बनाने का संकल्प किया, पर इस को अपने जन्म काल में पूरा न कर सके। जन्मान्तर में आचार्य धर्म पाल नाम से राजा हुए और विक्रम शिला के विश्वविद्यालय को स्थापित कर अपने पूर्व जन्म के मनोरथ को सिद्ध किया।

प्रारम्भ में १०८ प्रोफेसरों के सिवाय अनेक आचार्य और तीन अध्यक्ष [Superintendents] थे। राज्य संरक्षा में सफलता के साथ ४०० साल तक यह चलता रहा। यहां के शिक्षा समाप्त स्नातकों को राजा की ओर से 'पण्डित' की उपाधि से सम्मानित किया जाता था। इन स्नातकों में से कुछ प्रसिद्ध स्नातकों-पण्डितों-के नाम हमें ज्ञात हैं—

१. रत्न व्रज— यह काश्मीर का निवासी था। विश्वविद्यालय में

'द्वार पंडित' के सम्मानित पद पर नियुक्त हुआ।

२. आचार्य जेतारि— इसने भी इस विश्वविद्यालय से 'पण्डित' की उपाधि राजा महिपाल से प्राप्त की थी। यह प्रसिद्ध विद्वान् 'दूर्वीपङ्कर' का गुरु था।

३. रत्नकीर्ति— यह उपाधि प्राप्त कर इसी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुआ। यह विश्वविद्यालय के 'स्तम्भ' पद पर था।

४. ज्ञान श्री मित्र —यह भी स्नातक होकर इसी विश्व विद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हुआ। यह विश्व विद्यालय के 'स्तम्भ' पद पर था। यह 'द्वार-पण्डित' के पद पर भी रहा। 'अतिष' के तिब्बत चले जाने पर यह विश्वविद्यालय का कुलपति बनाया गया।

५. रत्नाकर शान्ति— इस ने आचार्य जेतारि से 'श्रवहिवाद' का विशेषतः अध्ययन किया था। यह 'द्वार पण्डित' रहा। यह बाद में निमन्त्रित होकर सीलोन गया। वहां बौद्ध धर्म के प्रसार में उत्तेजना दी।

६. रत्नाकर कीर्ति— यह भी यहां का स्नातक था।

संचालन— यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इस विश्व विद्यालय का संचालन पालवंशी मगध सम्राटों द्वारा होता था। इस विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए निःशुल्क सत्र खुले हुए थे। ये सत्र इनकी अन्य ज़रूरियात को भी पूरा करते थे। अन्य राजाओं तथा देश के अन्य भद्र पुरुषों के दान प्रचुर मात्रा में प्रारम्भ से ही इस विश्वविद्यालय को मिलने लगे थे। वारेन्द्र के राजा सनातन के नाम से विश्वविद्यालय में सत्र खुला हुआ था। पालवंशी राजाओं की संरक्षा प्राप्त करने के कारण इसने अन्य राजाओं और धनाढ्यों की शीघ्र ही क्रियात्मक सहानुभूति प्राप्त कर ली थी।

निवास स्थान— विद्यालय के संगठन के सम्बन्ध में विक्रमशिला का स्तर 'नालन्दा' विश्वविद्यालय की अपेक्षा अधिक उच्च था। परन्तु इसने नालन्दा के समान विस्तृत प्रभाव उत्पन्न नहीं किया। क्यों कि देश में उस समय हलचल थी, अशान्ति थी और अव्यवस्था थी। मगध सम्राटों के शक्ति ह्रास पर ग्रहण लगा हुआ था। गौड़ नरेश प्रबल हो रहे थे और मगध को धीरे धीरे अपने झण्डे के तले ला रहे थे। इन सब बातों के बावजूद भी सम्राट् धर्मपाल ने इसका उद्घाटन बड़े समारोह से किया था। प्रारम्भ में ही चार निवास स्थानों-आश्रमों-की स्थापना की। प्रत्येक में २७ भिक्षुओं को नियुक्त किया। ये चार बौद्ध सम्प्रदायों के थे। विद्यार्थियों

और पुरोहितों के निर्वाह के लिए उस ने प्रभूत राशि में दान दिया, उनके लिए भत्ता निश्चित किया। इसके अतिरिक्त वहां अस्थायी निवासस्थान थे। यह विश्वविद्यालय चारों ओर से परकोटे से घिरा हुआ था। इस परकोटे में ६ द्वार थे, जिन में से प्रत्येक के साथ एक एक कालेज था। इस विश्वविद्यालय के मध्य में एक विशाल भवन था जो विज्ञान गृह (House of Science) के नाम से विख्यात था। इस के अलावा खुली जगह थी जहां एक साथ ८००० आदमी बैठ सकते थे। विश्वविद्यालय में मुख्य द्वार के दोनों ओर दो प्रतिमायें थीं। द्वार के दाहिनी ओर नालन्दा विश्वविद्यालय के आचार्य नागार्जुन की मूर्ति प्रतिष्ठित थी और बांई ओर आचार्य अतिष्य की प्रतिमा स्थापित थी। विश्वविद्यालय के बाहर अतिथियों के लिए धर्मशालायें बनी हुई थी।

शिक्षा-क्रम— नालन्दा विश्वविद्यालय के समान इस विश्व विद्यालय में भी उच्च विषयों की शिक्षा दी जाती थी। उच्च शिक्षा को प्राप्त करने की इच्छा वालों को इस विश्वविद्यालय की 'प्रवेश परीक्षा' का पास करना आवश्यक था। इस विश्वविद्यालय में अन्यान्य विषयों के साथ साथ तन्त्रों का अध्ययन मुख्यता के साथ कराया जाता था। बौद्ध धर्म में ५ वीं सदी से तान्त्रिक धर्म ने प्रवेश करना आरम्भ कर दिया था। अन्य शास्त्रों के समान 'तन्त्र शास्त्र' भी बन चुके थे और बौद्ध धर्म के विशेषतः महायान सम्प्रदाय के धर्मग्रन्थ बन चुके थे। इस कारण तन्त्रशास्त्र की शिक्षा का प्रबन्ध समयोचित था। इस के अतिरिक्त व्याकरण, न्याय, अभिधर्म कोष [Metaphysics] और अध्यात्म शास्त्र का अध्ययन विशेषतः कराया जाता था। 'न्याय' का बड़ा आदर था क्यों कि 'द्वार पण्डित' उच्च कोटि के तार्किक होते थे।

शिक्षा-प्रबन्ध—इस विश्व विद्यालय का प्रबन्ध बहुत संगठित था। पालवंशी मगध सम्राट् इसके चांसलर होते थे। मगध सम्राट् ही स्नातकों को विश्वविद्यालय की 'पण्डित' उपाधि से सम्मानित करते थे। चांसलर के निरीक्षण में ६ आदमियों का एक शिक्षा पटल (Educational board) होता था। इस पटल का सभापति प्रधान पुरोहित होता था इस विश्वविद्यालय में छ कालेज थे। प्रत्येक कालेज का एक अध्यक्ष होता था जिसे 'द्वारपण्डित' कहते थे। तारानाथ अपने समय के द्वारपण्डितों के नाम इस प्रकार बताता है

१ प्रज्ञानकार मति—
दक्षिण द्वार का अध्यक्ष

२ रत्नकारशान्ति—
पूर्वीय द्वार का अध्यक्ष

३ वागीश्वरकीर्ति—
पश्चिमीय द्वार का अध्यक्ष

४ नरो पन्त—
उत्तरीय द्वार का अयध्क्ष

५ रत्न वज्र—
प्रथम मुख्य द्वार का अध्यक्ष

६ ज्ञान श्री मित्र—
द्वितीय मुख्य द्वार का अध्यक्ष

प्रत्येक कालेज में १०८ प्रोफेसर पढ़ाने के काम पर नियुक्त थे। शिक्षक और विद्यार्थियों का सम्बन्ध आदर्श सम्बन्ध था। शिष्य अपने गुरु को पिता समझता था। गुरु शिष्य को अपने पुत्र के समान देखता था। इस प्रकार गुरु शिष्य दृढ़ स्नेह सूत्र से परस्पर सम्बद्ध थे।

दीक्षान्त संस्कार— तिब्बत नरेश द्वारा भेजे गए तिब्बती दूत ने जो आचार्य तिष्य को लेने आया था विश्वविद्यालय की एक धार्मिक सभा का वर्णन किया है जो वर्तमान काल के दीक्षान्त संस्कार (Convocation) से मिलता जुलता है। वह लिखता है "८ बजे प्रातः काल भिक्षु लोग सभा भवन में जमा होने लगे और 'स्थविर' द्वारा बताये गए स्थानों पर चुप चाप शान्ति के साथ बैठते गए। मुझे विद्वानों की श्रेणी में स्थान दिया गया। सब से प्रथम पूज्य 'विद्या कोकिल' ने प्रवेश किया और सभापति का आसन ग्रहण किया। उस की मुखाकृति आकर्षक और भद्र थी। वह सुमेरु पहाड़ के समान उन्नत आसन पर आसीन था। मैंने अपने पास वालों से पूछा क्या यह आचार्य अतिष्य हैं! उस ने जवाब दिया आयुष्मन्! तुम क्या कहते हो? यह विद्याकोकिल नाम का बहुत पूज्य भिक्षुक है। आचार्य चन्द्रकीर्ति का शिष्य था अब उस के ही पद पर वर्तमान है। आचार्य अतिष्य का गुरु रह चुका है। एक और आचार्य की ओर इशारा करके पूछा क्या यह आचार्य अतिष्य है? मुझे बताया गया कि यह पूज्य नरोपन्त है। अपनी धार्मिक पुस्तकों की विद्वत्ता के लिए यह सारे बौद्ध संघ में प्रसिद्ध है। इस की बराबरी का इस विषय में संघ में कोई नहीं है। यह भी आचार्य अतिष्य का शिक्षक रह चुका है। इस समय जब मेरी आँखे आचार्य अतिष्य को ढूंढ रही थी सहसा विक्रमशिला के नरेश का सभा में पदार्पण हुआ, और एक उच्च आसन पर आसीन हो गया। परन्तु कोई भी भिक्षु, बूढ़ा या जवान अपने स्थान से न उठा। एक और पण्डित ने धीरे धीरे शान से चलते हुए गम्भीरता के साथ प्रवेश किया। नौजवान आयुष्मन् अपने स्थान से उसके स्वागत के लिए उठे। उन्होंने उसकी अपनी भेंटों से यथाविधि पूजा की। राजा भी उसके सन्मान में उठ खड़ा

हुआ। राजा के खड़े होते ही और पण्डित भी क्रमशः उठ खड़े हुए। यह पण्डित अपने निश्चित आसन पर बैठ गया। यह सोच कर कि इस को इतना सन्मान दिया गया है मैंने सोचा शायद यह कोई राजकीय भिक्षु होगा या कोई पूज्य स्थविर होगा अथवा स्वयं आचार्य अतिष होगा। मैंने जानना चाहा कि यह कौन है। मुझे बताया गया कि यह 'धीर-वज्र' है। बताने वाला इस से परिचित नहीं था। इसकी कितनी विद्वत्ता है इस से भी ये लोग परिचित नहीं थे।

"जब सब आसन भर गए, सब पंक्तियां पूरी होगई, तब पूज्यों के पूज्य यशस्वी आचार्य अतिष्य का आगमन हुआ। एक वार नजर डालने पर हटाने को दिल नहीं करता था। बार बार देख कर भी आंखें तृप्त नहीं होती थीं। उसका उदार और स्मित हास्ययुक्त मुखमण्डल सभाके प्रत्येक सभ्य को अपनी ओर खींच रहा था। उस की कमर से एक तालियों का गुच्छा लटक रहा था। भारतवासी, नैपाली और तिब्बती सब उसको अपना देश वासी समझते थे। उस के चेहरे का तेज सरलता के साथ मिल कर दर्शक के ऊपर जादू का असर डालता था।"

अतिष्य— आचार्य अतिष्य का जन्म गौड़ प्रदेश के राजकीय घराने में हुआ था। इस का पहिला नाम 'चन्द्रगर्भ' था। आचार्य 'जेतारि' के चरणों में बैठ कर पांच प्रकार के विज्ञानों के अध्ययन के लिए अपने आपको उपगुरु बनाया। महायान सम्प्रदाय के तीनों पिटकों माध्यमिक सम्प्रदाय और योगाचार्य सम्प्रदाय के अध्यात्म शास्त्र और अभिधर्म कोष में, और चारों प्रकार के तन्त्र शास्त्रों में पूर्ण पाण्डित्य सम्पादित किया। सब शास्त्रों में अनुरक्त हो कर, संसार त्याग दिया और बौद्ध दर्शन के मनन में अपना चित्त लगाया। 'गुह्य ज्ञान वज्र' नामक जगह पर समाधि लगाई और बौद्ध धर्म के गूढ़ रहस्यों से परिचित हो गया। १९ वर्ष की अवस्था में 'उदन्तापुर विश्वविद्यालय के आचार्य 'शील रक्षित' से दीक्षा ली। इस का नाम इस समय 'दीपंकर श्री ज्ञान' रक्खा गया।

दीक्षा लेने के अनन्तर सुवर्ण द्वीप चला गया। उस समय यह पूर्व में बौद्धों का केन्द्र था। बारह साल वहां रह कर मगध वापिस आगया। 'जयपाल के राज्य कालमें सर्वोच्च पुरोहित के पद को स्वीकार किया। धर्म के विषय में पूर्व की की तरह मगध के गौरव को स्थिर रक्खा। तिब्बत में दो मिशनों की असफलता के बाद इस को तिब्बत में भेजा गया। महायान धर्म का फिर से संशोधन किया। तिब्बत के बौद्ध धर्म को संस्कृत किया और उसे विदेशी प्रभावों से मुक्त किया।

इस के निरीक्षण में सत्य, पवित्र और श्रेष्ठ पथ का लामा ने ज्ञान प्राप्त किया। तेरह साल तक निरन्तर तिब्बत में घूम घूम कर सत्य धर्म का प्रचार किया। तिब्बती लोगों की श्रद्धा और भक्ति तथा प्रेम को प्राप्त किया। ७३ साल की अवस्था में तिब्बत में ही मर गया। आज भी तिब्बती लोग उस के नाम को आदर और सन्मान तथा श्रद्धा और भक्ति के साथ स्मरण करते हैं।

नालन्दा और विक्रमशिला के विश्वविद्यालयों का एक समय ही अस्तित्व में होना देख कर स्वभावतः प्रश्न उठता है कि क्या उन दोनों विद्यालयों में परस्पर कोई सम्बन्ध था। इस विषय में निश्चित तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता। प्रसिद्ध तिब्बती ऐतिहासिक तारानाथ ने लिखा है कि विक्रमशिला का एक प्रोफेसर नालन्दा विश्व विद्यालय के मामलों को देखता था। अतिष्य को लेने के लिए आया हुआ दूत नालन्दा में ठहरा था। ये दोनों ऐसे पुष्ट प्रमाण नहीं जिन से हम इन विश्व-विद्यालयों के किसी आन्तरिक सम्बन्ध को जान सकें। यह बात ख्याल रखने की है कि नालन्दा के पतन के साथ साथ विक्रम शिला का उदय होता है।

इस का अन्त भी नालन्दा विश्व-विद्यालय के समान मुसलमानों के आक्रमण के कारण हुआ।

कृतज्ञता

(ले० प्रो० पं० चन्द्रगुप्त विद्यालंकार)

इस वार मैं अपने मित्र के निमन्त्रण को टाल नहीं सका। मेरे मित्र का नाम अजित था, वह जात के काश्मीरी ब्राह्मण थे। काश्मीर की स्वर्गोपम घाटी के उत्तरीय भाग में वैरीनाग के जगत्प्रसिद्ध चश्मे से ८,१० मील दूर उनकी एक बड़ी भारी ज़मीन्दारी थी। मैं अलाहाबाद का निवासी हूं; अजित से मेरी परिचिति यहीं अलाहाबाद में ही हुई है। वह प्रतिवर्ष सरदियों के दिनों में कुछ मास के लिए अलाहाबाद आया करते थे। उन जैसे साधु स्वभाव नवयुवक संसार में बहुत कम होंगे। मुझे उन की मित्रता पर अभिमान है। अजित से से मेरा किसी प्रकार की रिश्तेदारी का सम्बन्ध नहीं है, मैं उनके घर आज तक कभी गया भी नहीं था; तथापि मेरी उन से अत्यन्त घनिष्ठता है। वह अलाहाबाद आकर प्रतिवर्ष मुझे काश्मीर आने का निमन्त्रण देते थे, उस समय मैं उन्हें इस बात का वचन भी दे देता था, परन्तु मौका आने पर मुझे सदैव अपना वायदा तोड़ने के लिए बाधित होना पड़ता था। इस वार सम्पूर्ण बाधाओं

के एक साथ परे ठेल कर मैं काश्मीर की ओर प्रस्थान कर गया।

काश्मीर पहुंच कर मानो मेरी आंखों से परदा उठ गया। यह संसार कहीं इतना अधिक सुन्दर होगा इस की मुझे कल्पना भी न थी। देवदार, चीड़ और अखरोटों के बड़े २ वृक्षों के कारण सघन श्याम वर्ण वाली सुनसान घाटियों में बादलों के छोटे २ टुकड़े, माता की गोद में छोटे बच्चे के समान, लुड़का करते थे। स्थान २ पर शुद्ध जल वाले बड़े २ झरने हृदय में कौतुहल का भाव कर देते थे। मेरे मित्र का निवास स्थान फलों के एक बड़े बाग में था। मुझे तो ऐसा अनुभव होता था कि मानो मुझे भूलोक से स्वर्ग लोक में ले आया गया है। प्रकृति भी इस नीरव शोभा में हम दोनों मित्र प्रतिदिन किसी न किसी बात पर ज़ोर ज़ोर से बहस किया करते थे। मेरा स्वभाव वादविवाद करते हुए जोश में आजाने का है। मैं कोई भी विवाद शुरु होने पर खूब जोश में वक्तृता प्रारम्भ कर देता था। मेरे मित्र भो इस बात में मुझ से पीछे नहीं रहते थे। हमारे वादविवाद का विषय प्रायः हिन्दुमुस्लिम समस्या होता था। मैं हिन्दू संगठन आदि हिन्दू अन्दोलनों का कट्टर पक्षपाती हूं। मैं कहा करता था कि मुसलमान स्वभाव से ही मूर्ख और असहिष्णु हैं–ये लोग भारत वर्ष को अपना देश नहीं समझते। भारतवर्ष की स्वाधीनता के लिए सब से प्रथम यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण मुसलमानों को शुद्ध करके हिन्दू बना लिया जाय। मेरे मित्र का विश्वास था कि मुसलमान लोग स्वभाव से बुरे नहीं हैं, वे धारण अवस्था में हिन्दुओं की तरह ही ईमान्दार और सच्चे होते हैं। मुसलमानों को पापी कहना भारी अपराध है। हां, इस में संदेह नहीं कि बहुत से मुसलमान नेता वैयक्तिक स्वार्थ वश मुसलमानों को गुमराह करने का यत्न कर रहे हैं, परन्तु हिन्दुओं में भी आजकल इस प्रकार के नेताओं की कमी नहीं है।' इस कारण मैं अपने मित्र को कभी २ 'आधा मुसलमान' कहा करता था। अजित इस बात को बुरा नहीं मानते थे। उन्हें सचमुच मुसलमानों से प्रेम था।

प्रातःकाल जल्दी उठना मेरे स्वभाव में शामिल नहीं। प्रतिदिन जब प्रातः मैं अपने शयनागार से बाहर आता था तब अजित मुझे समीपस्थ पहाड़ी के एक सुनसान भाग की ओर से आता हुआ दिखाई देता था। उस समय अजित के मुंह पर भारी गम्भीरता छाई होती थी। मैंने अजित से कई बार यह पूछने का यत्न किया कि वह प्रतिदिन इतनी सवेरे कहां जाता है, परन्तु उसने कभी मुझे इस बात का ठीक उत्तर नहीं दिया। मैंने अपने मित्र के नौकरों से भी यह

बात जानने का यत्न किया, परन्तु मुझे सफलता प्राप्त नहीं हुई। धीरे धीरे मेरी उत्सुकता बढ़ने लगी। एक दिन मैंने अजित को तंग करने करने के लिये छिपे तौर से उसका पीछा करने का निश्चय किया।

(२)

मैंने अत्यन्त आश्चर्य के साथ देखा कि समीपस्थ जंगल के एक बहुत ही घने भाग में एक छोटे से पहाड़ी झरने के किनारे पत्थर की बनी हुई एक कबर के पास मेरा अनन्य मित्र अजित घुटने टेक कर बैठा है। वह हाथ जोड़ कर अलक्षित भाव से नीले आस्मान की ओर ताक रहा है, उस की आंखों में आंसू भरे हैं। सामने कबर पर कुछ ताज़े फूल बिखरे हुए पड़े हैं। मैं यह दृश्य देख कर स्तम्भित रह गया। मुझे यह समझ नहीं आया कि अजित जैसा विद्वान् और विवेकी पुरुष क्योंकर एक कबर के सन्मुख हाथ जोड़ कर बैठा है। यह सोच कर मुझे और भी अधिक आश्चर्य हुआ कि अजित प्रतिदिन प्रातःकाल उठते ही सब से पूर्व यही कार्य करता है। पहले पहल तो मेरी यह इच्छा हुई कि सहसा अजित को चौंका कर उसे खूब हैरान करूं; परन्तु अपने मित्र का वह गम्भीर चेहरा देख कर मुझे इस बात का साहस नहीं हुआ। मैं सन्नटा खींच कर चुपचाप उस के पीछे खड़ा रहा। थोड़ी देर के बाद अजित ने एक बार कबर की ओर सिर झुका कर अपनी शान्त समाधि भंग की। मुंह फेरते ही उसकी नज़र मुझ पर पड़ी। मुझे देख कर पहले तो वह कुछ झेंप सा गया परन्तु अगले ही क्षण उसने मुस्करा कर कहा—"विनय, आज इतनी शीघ्र कैसे जाग गये ?" अब मेरे झेंपने की बारी थी। अगर मैं चाहता तो इस समय अजित से कोई बहुत बढ़िया मखौल कर सकता था परन्तु उस की वह भाव मुद्रा मखौल करने लायक न थी। मुझे अधिक देर तक असमञ्जस में न डाल कर अजित ने स्वयं ही कहा—"विनय, आज अपने जीवन का रहस्य मुझे तुम्हें सुनाना ही होगा। मुसलमानों के प्रति तुम्हारा विशेष विद्वेश भाव देख कर जो बात मैं तुम से आज तक नहीं कह सका था वह अब सुनानी होगी।" मुझे इस पर भी कुछ कहने योग्य बात नहीं सूझी। यह घटना मुझे एक भारी अचम्भा सी प्रतीत हो रही थी। अजित मेरा हाथ पकड़ कर मुझे झरने के किनारे की एक जंगली गुलाब की बेल के नीचे लेगया। वहां एक बड़ी शिला हम दोनों मित्र गम्भीर भाव से बैठ गये।

(३)

अजित ने अपनी निगाह झरने के अस्थिर पानी में गढ़ा कर कहना प्रारम्भ किया—"विनय, आज मैं तुम्हें अपने जीवन की एक अत्यधिक महत्व-पूर्ण घटना सुनाता हूं। यह सामने

वाली कबर एक सचमुच के फरिश्ते की हैं, जिसका मज़हब इस्लाम था। मैं बचपन में इस व्यक्ति को "उस्मान काका" कह कर बुलाया करता था। उस्मान काका का जर्जरित शरीर इस कबर के नीचे दबा दिया गया था। परन्तु मुझे पूरा विश्वास है कि यदि स्वर्ग वास्तव में कोई चीज़ है तो उस्मान की पुण्य आत्मा वहां आराम से विराजमान होगी। उस्मान काका मेरी निगाह में मेरे पिता के समान पूज्य हैं। जब तक उस्मान काका का पवित्र नाम मेरे हृदय में विद्यमान है तब तक मैं कभी यह कहने को तैयार नहीं हो सकता कि मुसलमान स्वभाव से धोखेबाज होते हैं। उस्मान की पुण्य स्मृति मेरे हृदय से कभी मिट नहीं सकती। आज लगातार बीस बरस से मैं प्रायः प्रतिदिन इस स्थान पर अपनी श्रद्धाञ्जली समर्पित करने आया करता हूँ।

मेरा जन्म श्रीनगर के निकट एक छोटे से गाँव में हुवा था। अपने बचपन का विस्तृत इतिहास सुनाना मैं व्यर्थ समझता हूँ। संक्षेप में इतना ही पर्याप्त है कि मेरा बचपन बहुत लाड़ प्यार में कटा है। मैं अपने पिता की एक मात्र सन्तान था। वह उस सम्पूर्ण गांव के मालिक थे। उन्हें किसी बात की चिन्ता नहीं थी। उन का अपना सगा भाई तक भी न था। जिस समय मेरा जन्म हुआ उस समय उन की आयु ४२ वर्ष की थी। वह एक तरह से सन्तान प्राप्ति से सर्वथा निराश हो चुके थे। उस्मान काका मेरे पिता का बचपन से सहायक था। वह हमारे घर का एक स्थिर सदस्य था। मेरे पिता उस पर पूर्ण विश्वास करते थे। उस्मान काका उस समय यद्यपि वास्तव में हमारे घर के नौकर थे, तथापि मेरे पिता उन की बड़ी इज्जत करते थे। उस्मान जैसे पाक दिल व्यक्ति आजकल की दुनियाँ में ढूंढे न मिलेंगे। वह अपनी सम्पूर्ण कामनाओं को मेरे पिता के लिये समर्पित कर चुके थे। मेरा जन्म होने पर उन्हें मेरे पिता की अपेक्षा भी अधिक सुख अनुभव हुवा था। मैंने अपना बचपन का अधिकांश भाग उस्मान काका की गोद में ही काटा है। माता की गोद की अपेक्षा भी उस्मान की गोद में जाना मुझे अधिक प्रिय अनुभव करता था। मेरा बचपन इस प्रकार आनन्द से व्यतीत होने लगा।

हमारे गांव के निकट ही एक दूसरे गांव में मेरा मामा रहता था। मेरे मामा का स्वभाव बहुत ही क्रूर था। वह धन का अत्यन्त लोभी था। मेरे पिता की वह बहुत चापलूसी किया करता था। मेरे उत्पन्न होने से पूर्व उसे यही आशा थी कि मेरे पिता आजन्म निस्सन्तान ही रहेंगे; उसे विश्वास था कि मेरे पिता की मृत्यु के बाद उस की सन्तान ही हमारी सम्पत्ति

की मालिक बनेगी परन्तु मेरे जन्म के बाद उसकी सम्पूर्ण आशाओं पर तुषारपात होगया।

धीरे धीरे मेरे मामू को यह पाप-चिन्ता मेरे प्रति विद्वेष भाव के रूप में परिपक्व होने लगी। मैं उस के मार्ग का एक मात्र कण्टक था। मुझे मार कर वह निष्कण्टक होकर मेरे पिता का वैभव अपने वंशजों के अर्पित कर सकता सकता था। उसने एक वार उस्मान काका को अपने यहां बुला कर उसे धन का प्रलोभन देकर मुझे विष दे देने के लिए फुसलाने का यत्न किया। उस्मान ने मेरे पिता से यह बात सच्चे रूप में कहदी। मेरे पिता चिन्तित हो उठे। उहोंने मेरे मामू पर इस सम्बन्ध का अभियोग भी चलाया, परन्तु मामू की कार्रवाइयों से वह इस अभियोग में सफल न होसके। बस इसी घटना द्वारा दोनों घरानों में जो विद्वेषाग्नि अन्दर अन्दर ही सुलग रही थी वह भभक कर जल उठी।

इस का पहला परिणाम उस्मान काका पर ही आफ़त लाया। एक दिन मेरे मामू के आदमियों ने उस्मान को खूब पीटा; खुश किस्मती से उस की जान तो बच गई परन्तु उन चोटों की बदौलत वह पहले जैसा बलिष्ट न रह सका। घावों के ठीक होते ही उस्मान काका मेरे प्रति और भी अधिक आकुल हो उठा, अब वह रात दिन मेरी ही फिकर में रहता, हर समय मुझे अपनी आंखों के सामने रखता।

(४)

इन्हीं दिनों काश्मीर की रियासत में एक भारी उथल-पुथल मचनी प्रारम्भ हुई। रियासत के महाराज उदयसिंह के विरुद्ध उन के छोटे भाई सरदार वीरसिंह ने एक षड्यन्त्र तैयार किया। महाराज पर बहुत से राजनीतिक अभियोग स्थापित किये गये। वीरसिंह ने बहुत से अमीर और ज़मीन्दारों को प्रलोभन देकर अपने साथ मिला लिया। मेरा मामू भी इन षड्यन्त्र कारियों में एक था। मेरे पिता परम राजभक्त थे, वह बड़ी दृढ़ता से महाराज के पक्ष में थे। धीरे धीरे महाराज का पक्ष कमज़ोर पड़ने लगा, परन्तु मेरे पिता ने कभी उनका साथ छोड़ने का विचार तक भी नहीं किया। महाराज पर दो अभियोग थे। पहला तो यह कि वह छिपे तौर से तिब्बत के साथ कुछ अनुचित सम्बंधी कर रहे हैं, दूसरा अभियोग यह था कि उन्होंने सरदार वीरसिंह को सपरिवार मार डालने का यत्न किया है।

मामला बहुत तूल पकड़ गया। श्रीनगर के आस पास के गांवों में दोनों पक्षों के लोगों की आपस में लट्ठम लट्ठा होने की नौबत भी आगई। दुर्भाग्य से हमारे आस पास के अनेक गावों के ज़मीन्दारों में केवल मेरे पिता ही महा-

राज के पक्ष में थे। आस पास के अन्य ज़मीन्दार प्रायः वीरसिंह की अभिसन्धि में शामिल थे। हम लोग बड़ी आफ़त में पड़ गये। एक रात हमारे घर डाका डालने का यत्न किया गया। इस के कुछ दिन बाद ही हमारे खेतों के खलिहान में आग लगा दी गई। हम लोग रात दिन बड़े खतरे में रहते थे। इन दिनों उस्मान मेरे लिए बहुत अधिक चिन्तित दिखाई दिया करता था।

अन्त में मेरे पिता ने यही निश्चिय किया कि वह मुझे उस्मान की संरक्षकता में किसी सुरक्षित स्थान पर भेज दें। तदनुसार मुझे छिपे तौर पर उस्मान काका के साथ १०,३० मील दूर के एक गांव में भेज दिया गया। मैं उस समय ८ बरस का बच्चा था, अतः मुझे तब की पूरी घटनाएँ तो याद नहीं हैं परन्तु इतना भली प्रकार स्मरण है कि उस्मान उन दिनों मेरे लिए अत्यधिक चिन्तित रहा करता था। वह प्रायः मेरी भलाई के लिये खुदा से दुआ मांगा करता था।

एक दिन रात के समय जब हम लोग एक कमरे में सोए हुए थे, हमारे मकान में आग लगी। यह आग मेरे मामू के आदमियों की ही लगाई हुई थी। वह दिन मैं अपनी इस ज़िन्दगी में एक दिन के लिए नहीं भूल सकता। मुझे भली प्रकार याद है-मैं और उस्मान का छोटा लड़का लतीफ़, दोनों जमीन पर ही एक गलीचे के ऊपर सो रहे थे। इतने में उस्मान काका ने हमारे पास आकर घबराई हुई स्वर में आवाज़ दी-"अजित!" मैं जाग उठा। मेरे साथ ही लतीफ भी जाग उठा। उस्मान ने हाथ बढ़ा कर हम दोनों को एक साथ गोद में उठाने का यत्न किया। वह बेचारा बूढ़ा और कमज़ोर आदमी था। उसकी शक्ति ने जबाब दे दिया। उस्मान चिन्तित होकर कुछ क्षण तक बड़ा असमञ्जस में पड़ा रहा। इतने में आग फैल कर उस कमरे की छत पर भी आने लगी। कमरे में धुंधला २ उजेला होगया। मैंने उस समय देखा कि उस्मान काका की आंखों से आंसू टपक रहे हैं। उस्मान काका ने एक ठण्डा श्वास लेकर अपनी गोद से लतीफ़ को नीचे उतार दिया। लतीफ़ और मैं दोनों चारों ओर आग देख कर हतबुद्धि हो चुके थे। उस्मान ने जब लतीफ़ को ज़ोर से उतारा तब वह घबरा कर रो उठा। उस्मान ने एक बार लतीफ़ का मुंह चूमा। समय अधिक नहीं था, अतः वह दायें हाथ की सहायता से मुझे अपनी छाती से चिपका कर और बांये हाथ में लतीफ़ का हाथ पकड़ कर दरवाज़े की ओर भागा। कमरे से बाहर जाते हुए बरामदे की जलती हुई छत के नीचे से गुज़रना ज़रूरी था; छत से आग के बड़े २ अंगारे बरस रहे थे। अचानक इस स्थान पर लतीफ़ का हाथ उस्मान के हाथ से छूट गया।

आग की लपटों की तेज़ भों भों ध्वनि में एक बार लतीफ़ का करुण क्षीण कण्ठ स्वर सुनाई दिया-"काका!" इस के बाद मुझे ज्ञात नहीं क्या हुआ।

इतना कह कर अजित थोडी देर के लिए चुप हो रहा, उसका गला भर आया था।

(५)

थोड़ी देर बाद अपना गला साफ करके अजित ने फिर कहना शुरू किया—उस्मान काका बूढ़ा था, बीमार था। आग की तेज़ गर्मी से उस का शरीर भी झुलस गया था, उस पर तीव्र पुत्र वियोग उस का हृदय चीर रहा था। यह सब होते हुए भी वह प्रतिदिन किसी न किसी गांव में जाकर अपने अधजले शरीर के साथ भीख माँग कर मेरा पेट भरता था। दो एक दिन किसी गांव में ठहर कर वह अगले गांवों में चल देता था। उस्मान काका मुझे साथ लेकर जिस गांव में पहुंचता था, वहां के लड़कों और अवारागर्दों को एक तमाशा मिल जाता था। उस्मान के जले हुए बालों तथा झुलसी हुई चमड़ी को देख कर ये लोग अपनी हंसी के लोभ का संवरण नहीं कर सकते थे। मुझे उसके साथ पाकर लोगों का कौतूहल और भी बढ़ जाता था। लड़के उसके पीछे २ गोला बांध कर तालियां बजाते हुए चलते थे, लोग ताने कसते थे। परन्तु काका ने कभी इन कठिनाइयों की ओर ध्यान नहीं दिया। स्वयं हंसी और दया का पात्र बन कर वह जो कुछ पाता था, मुझे समर्पित कर देता था।

वह मुझे मेरे पिता के गांव की ओर नहीं लेगया। मेरे माता पिता की हत्या कर दी गई है, यह बात उसे ज्ञात होगई थी। वह मुझे इसी दशा में, बैरी नाग की ओर, लाने लगा। इन दिनों वह मुझ से अनन्त प्रेम करता था। रात दिन वह मुझे अपनी छाती से चिपटाए रहने का प्रयत्न करता था। मेरे लिये भी उस वृद्ध गरीब की छाती ही एक सुरक्षित स्थान था।

धीरे २ हम लोग इसी स्थान पर आ पहुँचे। हम लोग यहाँ पूर्व दिशा की ओर से आए थे। दुर्भाग्य से या सौभाग्य से उस्मान काका उस दिन मार्ग में भटक कर ही यहाँ पहुंचे थे। सौभाग्य से इस लिये कि यहाँ पहुंच कर मुझे सदा के लिये एक स्थिर आश्रय मिल गया। उस्मान काका उस दिन बहुत थक गए थे, उन्हें अब चारों ओर निराशा ही निराशा दीखने लगी थी। इस झरने के निकट काका बेदम हो कर लेट गये। मैं छोटा बालक था, इस सुनसान जंगल में मुझे भय प्रतीत होने लगा। मैं हट कर मूर्छित उस्मान की छाती से लिपट गया। मुझे याद है उस दशा में भी उस्मान काका का दांयां हाथ स्वयं मेरे माथे पर आगया था। विनय! जिस शिलापर बैठकर मैं तुम्हें उस्मान

काका की कठिन कथा सुना रहा हूं, वही शिला उनकी मृत्यु शय्या है।

इतना कह कर अजित ने भक्तिभाव से थोड़ी देर के लिये आँखें मून्द लीं, इस के बाद धीरे २ कहना शुरु किया- "थोड़ी देर तक यहीं शिला पर बेदम पड़े रहने के बाद उस्मान ने धीरे से कहा 'पानी'। मैं उनकी गोद से निकल कर अपनी अञ्जलियों में इसी झरने का पानी भर कर उन के मुँह में डालने लगा। इसी समय एक बहुत ही सम्भ्रान्त वृद्ध पुरुष का यहाँ आगमन हुआ। वह बिल्कुल अकेले थे। मैंने जब पहले पहल उन्हें देखा तभी मेरे हृदय में उन के प्रति श्रद्धा का भाव उत्पन्न हुआ। पानी पीकर उस्मान भी कुछ स्वस्थ हो गये थे। यह नया आगन्तुक उन्हें ईश्वर का भेजा हुआ दूत जान पड़ा! विनय! यह वृद्ध महानुभाव मेरे धर्मपिता कल्याण सिंह ही थे। उन्होंने आते ही उस्मान काका के मृतप्राय शरीर की जांच आरम्भ की। उस्मान ने अपने सम्बन्ध में कोई चिन्ता प्रकट न करके मेरा हाथ उन के हाथ में सौंप दिया।

वृद्ध कल्याणसिंह के लिये यह घटना बिल्कुल अज्ञेय थी। वे आश्चर्य चकित थे कि यह माजरा क्या है। एक दीन वृद्ध और मृतप्राय मुसल्मान इस सुन्दर बालक को अपने साथ कहाँ से लाया है। बालक की चोटी है, वह किसी अच्छे हिन्दू घराने का प्रतीत होता है। कुछ देर तक किं-कर्तव्य विमूढ़ से खड़े रह कर अपने आदमियों की मदद लेने के लिए वह अपने निवास स्थान की ओर चले गये। इस सुनसान स्थान में फिर से केवल हम दोनों प्राणी ही बचे रह गए।

प्यारे मित्र विनय! वह दिन आज भी मेरी आँखों के सामने प्रत्यक्ष सा घूम रहा है। तब भी यह छोटा सा झरना इसी प्रकार मर्मर ध्वनि करता हुआ बह रहा था, आकाश में बादल छाये हुए थे, सब ओर तीव्र सन्नाटा था। इस समीप के जंगल में कभी कभी मोर कूक उठते थे। काका उस्मान इसी शिला पर लेटा हुआ था। मैं उस समय बिल्कुल हत बुद्धि सा हो रहा था, अपार दुख और भय अनुभव होते हुए भी मैं रो नहीं सका। रुलाई आती ही न थी। दिल पर एक भारी पत्थर रखा हुवा सा प्रतीत होता था। पाँच सात मिनट तक मैं इसी प्रकार पड़ा रहा। इस के बाद उस्मान मूर्छित अवस्था में ही बोल उठा "बेटा लतीफ़"! हाय! पिता की उस भग्न स्वर में अपने पुत्र के लिए कितना असीम दुःख भरा हुआ था। लतीफ़ का नाम सुनते ही मेरी रुलाई फूट उठी। काका उस्मान का पुत्र लतीफ़ मेरा भी तो भाई ही था। मैं उस्मान की छाती पर मुँह रखे हुए ही सिसक सिसक कर रोने लगा। मेरी रुलाई सुनकर उस्मान फिर

चेतनावस्था में आ गया। मुझे रोता देख कर उस्माननने मुझे कस कर अपनी छाती से चिपटा लिया। मुझे अपनी छाती पर जिरह बख़्तर के रूप में पहिन कर उस्मान बहुत ही प्रेम पूर्ण शब्दों में बोल उठा— "बेटा अजित, तुम्हीं मेरे लतीफ़ हो।" इस के बाद अपने रहम दिल खुदा से मेरे लिए दुआ माँग कर काका उस्मान बहिश्त की ओर चले गए। ऐसा प्रतीत होता है कि मुझे किसी ठिकाने लगाने के लिए ही वह अब तक प्राण धारण किये हुए थे।

इसी समय सरदार कल्याणसिंह अपने कुछ आदमियों के साथ उस स्थान पर आ पहुंचे। मुझे बड़ी कठिनता से उस्मान की मृतदेह से जुदा किया गया। सचमुच मैं उस दिन पितृहीन हुआ। सरदार साहब ने उसी समय अपने आदमियों की सहायता से काका का पवित्र शरीर इस समीपस्थ स्थान पर दफना दिया और तभी यह टेड़ी मेड़ी पत्थरों की कबर इस स्थान पर निर्माण की गई है।

सरदार कल्याणसिंह बिना सन्तान के थे। उन्होंने मुझे अपना धर्मपुत्र बना लिया। वह बहुत यत्न करने पर भी यह न जान सके कि काका उस्मान के साथ मेरा क्या सम्बन्ध था। मैंने कभी उसके सम्बन्ध में उन से कुछ भी नहीं कहा। वह स्वयं भी लोकापवाद के भय से इस बात को प्रसिद्ध नहीं करना चाहते थे कि मैं एक मुसलमान द्वारा यहाँ लाया गया था। उस दिन से मैं मौका पाकर सदैव अपनी हार्दिक श्रद्धा के फूल चढ़ाने इस स्थान पर आता रहा हूँ। इस घटना के आठ दस बरस बाद मेरे धर्मपिता सर्दार कल्याणसिंह भी बीमारी से यह लोक छोड़ कर चल बसे। उस दिन के बाद से तो यहाँ आना मेरा प्रतिदिन का प्रथम कर्तव्य हो गया है। भाई विनय! मेरे जीवन का यह गूढ़ रहस्य सुन कर तुम जान गये होगे कि मैं सचमुच ही आधा मुसलमान हूँ।

इतना कहकर अजित चुप हो रहा। उस ने आँसू भरी आँखों से अपनी नज़र उठा कर उस पवित्र कबर की ओर देखा। अपने मित्रके साथ मैंने भी उस ओर अपनी निगाह उठाई। मुझे यथार्थ में ऐसा प्रतीत हुवा कि कबर पर रखे हुए उन फूलों पर वृद्ध और रहम दिल काका उस्मान की छाया-मूर्ति खड़े होकर मेरे मित्र को सैकड़ों आशीर्वाद दे रही है।

सम्पादकीय

हिन्दु मुस्लिम समस्या

भारत का आजकल का वायुमण्डल जाति-गत विद्वेष से भरा हुआ है। इस विद्वेष का आधार धर्म बताया जाता है। धर्मों में भी हिन्दु तथा मुसलमानी धर्मों का तनाव शिखर पर पहुँचा हुआ है। न हिन्दु अपने त्यौहारों को शान्ति पूर्वक मना सकते हैं, न मुसलमान। दोनों धर्मों के अनुयायी धर्म के नाम पर एक दूसरे से अलग और सहधर्मियों से मिले हुए हैं। उन के लिए एकता का आधार धर्म है, विद्वेष का कारण धर्म-भेद है। देश का प्रत्येक हित-चिन्तक सोच रहा है कि इस ईर्षाग्नि को किस प्रकार शान्त किया जाय। हमें इस समस्या के दो ही हल नज़र आते हैं: या तो भारत के सब हिन्दु मुसलमान हो जायँ, या सब मुसलमान हिन्दू हो जायँ; अथवा धर्म को वैय्यक्तिक वस्तु समझ कर एकता का आधार 'देश' को समझा जाय।

मुसलमानों के लिए यह सोचना कि किसी समय भारत में एक भी हिन्दू नहीं रहेगा पागलपन है। ना ही हिन्दू यह सोच सकते हैं कि वे मुसलमानों का नामोनिशान मिटा देंगे। रहना दोनों को है, इस लिए एकता का आधार बदलने की आवश्यकता है। इस समय 'धर्म' एकता का आधार बना हुआ है, इस का परिणाम यह है कि वह वस्तु जिसका सीधा आत्मा से सम्बन्ध है, एक दिखावट की चीज़ बन रही है। नमाज़ पढ़ने का फ़िक्र थोड़ों को है पर मस्जिद के सामने बाजा न बजने देने की ज़िद्द हरेक मुसलमान बच्चे को है। धर्म से जो आत्मिक शान्ति मिलनी चाहिये उस की तरफ़ किसी का ध्यान नहीं। यह सर्वथा भुलाया जा रहा है कि धर्म का व्यक्ति से सम्बन्ध है और जितना धर्म को सामाजिक रूप दिया जा रहा है, जितना उसे बाज़ारू बनाया जा रहा है, उतना ही धर्म, धर्म न रह कर झगड़े की जड़ बनता चला जा रहा है। इस में अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि लोग जितने ही धार्मिक होंगे उतने ही वैय्यक्तिक विचारों की स्वतन्त्रता के पक्षपाती होंगे। परन्तु आज 'धर्म' और 'वैय्यक्तिक विचार स्वातन्त्र्य' परस्पर विरोधी बने हुए हैं।

भारत के मुसलमान भाई इस बात को नहीं समझते कि धर्म का प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा से सम्बन्ध है। मुसलमानों को देखा देखी हिन्दुओं में भी यह प्रवृति जाग रही है। वे मुसलमानों को मुंहतोड़ जवाब देना चाहते हैं परन्तु यदि कुछ हिन्दु यह

कसूर करते हैं तो इस की ज़िम्मेवारी भी मुसलमानों के कन्धों पर है। इस समय हिन्दु तथा मुसलमान दोनों को समझने की ज़रूरत है कि उन की एकता का आधार 'देश' हो सकता है, 'धर्म' नहीं।

भारत के मुसलमानों को छोड़ कर दुनियां भर के मुसलमान इस बात को समझ रहे हैं। केवल भारतीय मुसलमान ही दुनियाँ भर को मुसलमान बनाने का दावा रखते हैं। टर्की ने जो कुफ़र की बातें कीं उन से टर्की के मुसलमानों का रुख़ क्या नहीं पहचाना जाता? जिन बातों को भारत के मुसलमान अपनी धार्मिक एकता का आधार समझ रहे हैं उन्हें टर्की ने जड़ से उखेड़ फेंका है। अरब के लोग खुदा के निजू लोग थे और उन्हीं ने १९१६ में तुर्कों से विद्रोह करते हुए ख़िलाफ़त को धक्का पहुँचाया। यह समझना भूल है कि भारत के मुसलमानों को छोड़ कर दूसरे मुसलमान पाश्चात्य सभ्यता के रंग में रंगे जा रहे हैं। उन देशों में जातीय भाव पैदा हो रहा है जो कि किसी देश की सफलता का एकमात्र आधार हो सकता है। १९०६ में अरब की 'अरेबियन नैशनल कमिटि' ने उद्घोषित किया कि, 'हम लोगों पर अब तक तुर्कों ने भिन्न २ पन्थों तथा सम्प्रदायों के कारण अत्याचार किये हैं, अब हम में जातीय भावना उत्पन्न हो गई है अतः हम अपना राज्य कायम करना चाहते हैं।' कर्नल लोरन्स का कथन है कि लड़ाई के दिनों में अरब के लोगों ने तुर्कों से इसलिए विद्रोह नहीं किया क्योंकि वे तुर्कों को घृणा की दृष्टि से देखते थे। परन्तु इस लिए क्योंकि वे अपने देश की स्वतन्त्रता चाहते थे। १९०८ में पर्शिया में विद्रोह हुआ जिस का मुख्य कारण भी स्वतन्त्रता थी। उन्हें ईसाई, मुसलमान किसी की पराधीनता न चाहिए थी, उन्हें अपने देश की स्वतन्त्रता अभीष्ट थी। ईजिप्ट ने भी टर्की को कभी नहीं चाहा। शेखसैनूसी जैसे लोगों का कहना था कि, 'तुर्की या ईसाई, मैं एक ही पत्थर से दोनों का सिर फोड़ दूँगा क्योंकि मेरे देश के लिए दोनों विदेशी हैं।' ईजिप्ट के ईसाई तथा मुसलमानों की पारस्परिक सन्धि इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि 'देश' ही उन के लिए सब कुछ है। उनकी सन्धि हिन्दु मुसलमानों की क्षणिक सन्धि के समान नहीं क्योंकि हिन्दू-मुसलमान दोनों अपने देश के लिए उतना अनुभव नहीं करते जितना ईजिप्ट के ईसाई तथा मुसलमान। ईजिप्ट में रहने वाली एक फ्रेञ्च महिला का कथन है कि 'इस देश में हमने विचित्र बातें देखीं। पादरी लोग मस्जिदों में प्रचार करते हैं और उलेमा लोग गिर्जों में बोल आते हैं।' एक इटैलियन का कथन है कि संसार के इतिहास में सब से पहले ईजिप्ट के झण्डे पर

मुसल्मानों के चाँद और ईसाइयों के क्रौस के चिन्ह इकट्ठे दिखाई दिए। आज ईजिप्ट में धार्मिक झगड़े दिखाई ही नहीं देते। सब मिसर के निवासी मिसरी ही हैं और उस देश को ही अपना समझते हैं—यद्यपि धर्म सब का भिन्न २ है। चीन के मुसल्मानों ने भी अपने को उस देश के निवासियों के साथ एक कर लिया है। १६११-१२ के चीनी विद्रोह में वहाँ के मुसल्मानों ने चीनी लोगों की जो सहायता की उस पर सन-यात-सेन ने कहा कि चीनी लोग अपने देशबन्धु मुसल्मानों की स्वतन्त्रता के लिए की हुई सहायता को कभी न भूलेंगे।

संसार के मुसल्मानों की प्रगति की दिशा भारत के मुसलमानों से भिन्न है। भारतीय मुसलमान, धर्म से धर्म का काम न लेकर उसे झगड़े का कारण बनाना चाहते हैं। जिस देश में रहते हैं उस देश के निवासियों के साथ अपने स्वार्थों को एक कर देने के लिए तय्यार नहीं, इसी लिए यह समस्या दिनों दिन विकट होती जा रही है। जिस दिन हिन्दू और मुसलमान दोनों-'धर्म' को वैय्यक्तिक रूप देंगे और 'देश' को एकता का आधार समझने लगेंगे उसी दिन वे आज की अपेक्षा अधिक धार्मिक हो जायँगे और देश में आये दिन होने वाले जाति-गत झगड़े बन्द हो जायँगे।

—*—

गुरुकुल—समाचार

ऋतु— गुरुकुल में आजकल पावस का राज्य है। वर्षा के कारण कुल भूमि के दृश्य बहुत रमणीय और नयनाभिराम हो गये हैं। वन, पर्वत और मैदान हरे भरे दृष्टिगोचर होते हैं। ग्रीष्म के आतप से झुलसे हुए वृक्ष, लता, पल्लव सब प्रफुल्लित हो गये हैं। आकाश प्रायः बादलों से घिरा रहा है दिवस ठण्डे और सुहावने हैं। इस महीने गुरुकुल के सामने की पर्वतमाला और वन में जामुनों की खूब बहार रही। ब्रह्मचारी प्रायः प्रतिदिन भ्रमणार्थ वनों में जाते हैं। मयूरों और कोयल की मधुर ध्वनि से कुल भूमि गूँजती रहती है। ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है। चिकित्सालय में कोई रोगी नहीं है।

गंगा— गङ्गा में भरपूर पानी आ रहा है। प्रातः सायं दोनों समय ब्रह्मचारी उस में खूब तैरते हैं। कभी कभी दूर से बेड़े बना कर भी लाते हैं। आवागमन के लिए तमेड़ें नियम पूर्वक चलतीं हैं। सायंकाल को गङ्गा-तीर पर बैठने से अपूर्व शान्ति का अनुभव होता है।

सभाएँ— इस महीने गुरुकुलीय सभाओं के विशेष अधिवेशनों की

खूब धूम रही। अनेक विद्वानों ने भिन्न भिन्न विषयों पर उत्तमोत्तम व्याख्यान तथा निबन्ध पढ़े। उपाध्याय श्री नन्दलाल जी खन्ना ने विज्ञान परिषद् मे 'विश्वास का मनोवैज्ञानिक आधार' इस विषय पर एक बहुत सारगर्भित एवं मनोहर निबन्ध पढ़ा। प्रो० सत्यकेतु जी विद्यालंकार ने "इस्लाम का प्रारम्भिक विस्तार" विषय पर एक ऐतिहासिक गवेषणा से पूर्ण व्याख्यान दिया। पिछले दिनों कुलवासियों के चिर परिचित श्री डाक्टर सुखदेव जी गुरुकुल में पधारे हुए थे आपने वाग्वर्धिनी सभा में "शुद्धि के क्रियात्मक अनुभव" इस विषय पर मनोहर एवं उपयोगी व्याख्यान दिया। आपने आयुर्वेद परिषद् में भी "स्वास्थ्यविज्ञान" पर एक व्यावहारिक भाषण दिया।

वाग्वर्धिनी तथा संस्कृतोत्साहिनी के अधिवेशन भी नियम पूर्वक होते हैं। अभी हाल में ही वाग्वर्धिनी सभा में श्री पं० सत्यव्रत जी के सभापतित्व मे "ईसाईयत और इस्लाम में से जगत् को किसने अधिक लाभ पहुँचाया है" इस विषय पर एक मनोहर वाद विवाद हुवा था। संस्कृतोत्साहिनी सभा का जन्मोत्सव श्री पं० प्रियव्रत जी विद्यालंकार के सभापतित्व में बड़े आनन्द और सफलता से हो गया है।

देशबन्धु स्मृति दिवस— महाविद्यालय वाग्वर्धिनी सभा की ओर स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजन दास की स्मृति में कुलवासियों की एक बड़ी सभा हुई। जिस में वक्ताओं ने देशबन्धु के जीवन पर विचार करते हुए उनका गुण कीर्तन किया। श्री आचार्य जी ने बतलाया कि बंग देश ने भारत को अनेक विभूतियाँ दी हैं उन में से भारतीय देशबन्धु का स्थान बहुत ऊँचा है। वे स्वराज्य संग्राम के कमान्डर इन चीफ़ [मुख्य सेनापति] थे। उनका हृदय विशाल था। वे देशबन्धु ही नहीं साथ ही दीनबन्धु भी थे।

साहित्यपरिषद्— साहित्य परिषद् गुरुकुल की सर्वश्रेष्ठ और सब से पुरानी सभा हैं। इस के अधिवेशन नियमपूर्वक हो रहे हैं। इस महीने इस सभा में अनेक उत्तमोत्तम निबन्ध पढ़े गये। श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धालंकार ने "वर्णव्यवस्था और हिन्दु जाति" इस विषय पर एक मननीय निबन्ध पढ़ा। इसी प्रकार श्री प्रो० देवमित्र जी तथा श्री पं० देवराज जी विद्यावाचस्पति के क्रमशः "वर्तमान वैज्ञानिक तत्व और पञ्चभूतों का सिद्धान्त" तथा "सृष्टि का कारण तथा प्राकृतिक विकास"।

इन विषयों पर उत्तमोत्तम निबन्ध हुए।

इस मास श्री आचार्य जी के सभापतित्व में साहित्य-परिषद् का जन्मोत्सव बड़ी सफलता के साथ संपन्न हुवा। उत्सवमें हिन्दी के प्रख्यात

उपन्यासलेखक श्री प्रेमचन्द जी तथा सुप्रसिद्ध साहित्य-विमर्शक श्री पं० पद्मसिंह शर्मा उपस्थित थे। पं० पद्मसिंह जी शर्मा के सभापतित्वमें एक कविता सम्मेलन भी किया गया। श्री प्रेमचन्द जी ने "साहित्य में उपन्यास" तथा "हिन्दु-मुसलिम एकता" इन दो विषयों पर बहुत रोचक एवं उत्तम व्याख्यान दिए। श्री प्रेमचन्द्र जी गुरुकुल को देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

आगामी १४ अगस्त को साहित्य परिषद् की ओरसे गुरुकुलीय पार्लियामेंट का अधिवेशन भी बड़े समारोह से होने वाला है। इस अवसर प्रसिद्ध विद्वान् श्री एन. एम. जोशी, प्रताप संपादक श्री पं०गणेश शङ्कर विद्यार्थी तथा श्री प्रेमचन्द्र जी श्री डा० केशवदेव शास्त्री, श्री मन जीतसिंह जी राठौर आदि महानुभाव गुरुकुल में पधारने वाले हैं। राष्ट्र-प्रतिनिधि सभा [पार्लियामेंट] में भारतीय कारखाना विधान [Indian acory Bill] प्रस्तुत होगा।

विश्वविद्यालय व्याख्यान — इस मास कलकत्ता विश्वविद्यालय में दर्शन के प्रोफेसर श्री० महेन्द्रनाथ जी सरकार महोदय गुरुकुल में पधारे थे। आपने गुरुकुलीय विश्वविद्यालय व्याख्यानमाला में "ब्रह्मचर्य" और "अद्वैतवाद" इन दो विषयों पर विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिए। आप गुरुकुल में तीन दिवस तक रहे। इसके अतिरिक्त श्री डा० राधाकृष्ण जी M. B. B. S. का भी इसी व्याख्यानमाला में "घरेलू मक्खी" विषय पर एक अत्युत्तम व्याख्यान हुवा और गुरुकुल के वेदोपाध्याय श्री पं० विश्वनाथ जी विद्यालंकार ने "ब्राह्मण ग्रन्थों" पर एक विद्वत्तापूर्ण व्याख्यान दिया। आजकल कुल में लाहौर के प्रसिद्ध डाक्टर श्री रोशनलाल जी M. S., F. R. C. S. पधारे हुए हैं। आप गुरुकुलीय आयुर्वेदिक कालेज में व्याख्यान दे रहे हैं।

अलंकार

तथा

गुरुकुल समाचार

✽ स्नातक-मण्डल गुरुकुल-काँगड़ी का मुख-पत्र ✽

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अलंकृतः॥ ऋ० १. १४. ५।

रे मन !

(श्री पं० धर्मदत्त जी विद्यालंकार)

रे मन ! तोहे कछु समझ न आवे।
जित जित तोहे निस दिन रोकूँ तित ही तित तू धावे॥
चूस चूस कर देख लियो रस इस में ना कछु आवे।
रे मन कुकर ! सूखी अस्थी पर फिर भी ललचावे॥
टुकड़ों के बदले में खाकर मार जिधर से आवे।
श्वान समान उन्हीं दरवाजों पर फिर फिर तू धावे॥
जाकर देख लियो जिस थल पर जल की बून्द न पावे।
रे मन मृग ! लखि लखि कै तिहि दिसि पुनि पुनि क्यों तरसावे॥
जल की बूँद बिना जो तुझ को योंही नाच नचावे।
रे मन मोर ! उसी बादल पै फिर क्यों आस लगावे॥

मुरली और सुदर्शन चक्र

(लेखक—एक कृष्णभक्त)

हज़ारों साल बीत गये, मथुरा और वृन्दावन में वंशी बजी थी और उसे सुन कर गडरिये, ग़रीब और अनाथ दूर दूर से इकट्ठे हो गये थे। वंशी बजाने वाला ऊँचे घराने का था पर उसे अपने बड़प्पन का घमण्ड न था। वह ग्वालों और ग्वालिनों के साथ, हाथ में मुरली लिये, कांटेदार झाड़ियों में उलझता फिरता था; गडरियों के साथ गौओं को चराता हुआ सुबह से शाम निकाल देता था। उसकी मुरली में एक सन्देस था, और वह सन्देस था एकता, समानता और भ्रातृभाव का। उसकी मुरली की तान के सुनते ही, ऊँच-नीच का भेद मिट जाता था और छोटे-बड़े सब एक हो जाते थे। वह बड़ा था परन्तु बड़ा होता हुआ भी छोटों में मिल गया था और अपने 'अहंकार' को मसल चुका था। दूसरे शब्दों में, वह इतना बड़ा था कि उसे अपने बड़प्पन का ख़्याल ही न था। वह चिन्ताओं से मुक्त हुआ हुआ सांसारिक विषमताओं को अपनी मुरली की मधुर तान से उड़ा देता था और इन्सान के, इन्सान के बीच में पैदा किए हुए भेद को मिटा देता था। वह शान्ति और प्रेम का पैग़ाम लेकर आया था परन्तु यदि शान्ति के लिये ख़ून का दरिया बहाना पड़ता तो वह उससे भी झिझकता न था। एक हाथ में मुरली लिये प्रेमियों के मनों को हरने वाला मोहन दूसरे हाथ से तलवार के वार करता हुआ अपने रिश्तेदारों तक के गलों को धड़ से उड़ा सकता था। उसे शान्ति चाहिये थी, फिर परवाह नहीं उसके लिये कितनी ही अशान्ति में से क्यों न गुज़रना पड़े। संसार में फैले हुए गन्द को, अनर्थ को, देख कर वह चुप नहीं बैठ सकता था। प्रेमोद्गारों को बरसाने वाली मुरली ही आग के शोले उगलने लगती थी। अन्याय और अधर्म को देखकर कृष्ण चुप नहीं रह सकता था। इस अवस्था को वह अकर्मण्यता, निकम्मापन और अपाहिजपन समझता था। अन्याय, अधर्म, बलात्कार और अत्याचार को देखते ही मुरली छुट जाती और सुदर्शन चक्र घूमने लगता था। फिर कम और ज़्यादह की परवाह नहीं। अधर्म और अन्याय करने वाले कितने भी क्यों न मिल जाँय, श्रीकृष्ण का सुदर्शन-चक्र सब के लिये काफ़ी था। मुरलीधर की मनोहर मुरली पर मरने वाले हिन्दवासी क्यों भूल जाते हैं कि उसके दूसरे हाथ में हर समय सुदर्शन-चक्र घूमा करता था।

'मुरली' और 'सुदर्शन–चक्र' भगवान् कृष्ण के दो अमिट सन्देस हैं जिन्हें भुला कर आर्य–जाति सुख की नींद नहीं सो सकती। ये दो मिलकर ही उसके सन्देश को पूर्ण बनाते हैं। आज हिन्दु–जाति 'मुरली' और 'सुदर्शन–चक्र' दोनों को भुला चुकी है। समय था जब मुरली की आवाज़ सुन कर ऊँच-नीच का भेद मिट गया था। उस की तान में कृष्ण, गोपी, गोप और गौ तक—सब एक हो गये थे—उस में से तो प्राणी–जगत् की एकता का राग फूट-फूट कर निकल रहा था। समता का वह राग आज भारत में सुनाई नहीं देता। घर २ में फूट का राज्य है। हमारी सामाजिक व्यवस्था, हमारी जात–पाँत, हमारी एकता की जड़ में घुन बन कर लगी हुई है। हिन्दु हिन्दु में प्रेम नहीं, हिन्दु-मुसलमान में प्रेम नहीं। सब अपने को बड़ा और दूसरे को छोटा गिन रहे हैं। मानसिक तुच्छता और स्वार्थ के इस राज्य में मुरली–मनोहर की बाँसुरी के आलापों को सुनने वाला कोई नहीं दिखाई देता। आज सभ्य जगत् में भारतवर्ष का नाम लेते ही उस का जो चित्र आँखों के सामने उपस्थित होता है वह बड़ा भयंकर है। भारतवर्ष वह देश है जहाँ ब्राह्मण लोग अपने बड़प्पन के मद में ब्राह्मणेतरों पर अमानुषिक अत्याचार करते हैं, ब्राह्मण तथा ब्राह्मणेतर दोनों मिल कर पञ्चम जाति के लोगों पर पाशविक अत्याचार करते हैं। एक २ जाति के अन्तर्गत सैंकड़ों उप-जातियाँ बनी हुई हैं जिन में से एक-एक, दूसरे पर अत्याचार करने का मौका हर वक़्त ताकती रहती है। इस देश में मुसलमान हिन्दुओं के जानी दुश्मन से बने हुए हैं और उनकी किसी प्रकार की आज़ादी को सहन नहीं कर सकते। मनुष्यों के साथ जब ऐसा बर्ताव हो रहा है तो पशुओं का तो कहना ही क्या है? यह अवस्था उस देश की है जो कृष्ण को अवतार मानता है और कहता है कि कृष्ण भगवान् मुरली की तान देते जाते थे और बड़े-छोटे के भेद-भाव को भूल गडरियों और किसानों के साथ गौओं को वनों में चराते फिरते थे! कहाँ मुरली का राग और कहाँ तू–तू, मैं–मैं का बेसुरा आलाप!

भारतवासी जहाँ मुरली के सन्देस को भुला चुके वहाँ सुदर्शन चक्र को भी भूल गये! आज वे सब के ग्रास बने जा रहे हैं। अंग्रेज़ उन्हें नहीं छोड़ते। नये २ तरीके निकाल कर उन के बचे–खुचे भोजन को झपटते जा रहे हैं; मुसलमान उन्हें नहीं छोड़ते, उन के देखते देखते, दिन-दहाड़े, उन की जाति रूपी नैय्या के कर्णधारों को गोली का शिकार बनाते हैं और कानून के शिकञ्जों से बाल २ बच जाते हैं। पर अभी तक हिन्दू मुलायम बने

बैठे हैं। अरे मक्खन के दिल वाले हिन्दुओ! यह धर्म नहीं, अधर्म है। तुम अपनी इस ठण्डी तबीयत के कारण इन्सान तथा खुदा के सामने इन गुनाहों के जवाबदेह होगे। अपना घर-बार लुटा देना इन्सानियत नहीं है। तबीयत में ज़रा जोश पैदा करो, इतना ठण्डा आदमी दुनियाँ की जद्दोजहद में जी नहीं सकता। कृष्ण भगवान् के सुदर्शन-चक्र के सन्देस को सुनो! खून का एक कतरा बहाना भी पाप है परन्तु दब्बू बन कर अपनी औरतों और लड़कियों की बेइज़्ज़ती देखना उस से बढ़ कर पाप है। हुङ्कार भरना सीखो, पापी और अत्याचारी को आँखे दिखाना सीखो। सिर नीचा कर सब की जूती ही न खाते जाओ। यही कृष्ण भगवान् के सुदर्शन-चक्र का सन्देस है। जब हिन्दू जाति मुरली और सुदर्शन-चक्र के सन्देस को सुनेगी तभी से इस के दिन पलटने लगेंगे।

भारतीय तथा पाश्चात्य तर्क और विचार प्रणाली में भेद।

(ले० श्री प्रो० सत्यव्रत जी सिद्धान्तालंकार)

शब्द प्रमाण

शब्द प्रमाण का विषय एक अत्यन्त आवश्यक विषय है। Testimony या Authority की पाश्चात्य विद्वानों के यहां वह कदर नहीं जो कि शब्द-प्रमाण की हमारे यहाँ है। भारतीय दर्शन की दृष्टि से शब्द प्रमाण का अभिप्राय आप्तोपदेश है। प्रश्न हो सकता है कि "आप्त कौन है?" वात्स्या-यन का कथन है कि—'आप्तः खलु साक्षात्कृतधर्मा यथा दृष्टस्यार्थस्य चिख्यापयिषया प्रयोक्ता उपदेष्टा'। आप्त वही है जिस ने किसी अर्थ का साक्षात्कार किया हो, उसे देखा हो—उस में उसे कुछ भी संदेह न हो। शब्द प्रमाण में आप्तता आवश्यक है। आप्तोपदेश दो प्रकार का है:—

१. परमेश्वर का उपदेश— वेद अथवा श्रौत-धर्म।

२. मनुष्य का साक्षात्कार पूर्वक उपदेश—शास्त्र अथवा स्मार्त्त-धर्म।

पहले पहल वेद की प्रामाणिकता को लीजिये। न्यायदर्शन में वेद की प्रामाणिकता को बड़े ज़ोर दार शब्दों में माना गया है। द्वितीय अध्याय के प्रथमान्हिक में शंका उठाई गई है- 'तदप्रामाण्यं अनृत व्याघात पुनरुक्तदोषेभ्यः'।

इसका उत्तर 'न कर्मकर्तृ साधन वैगुण्यात्'— 'अभ्युपेत्य कालभेदे दोष-वचनात्'- 'अनुवादोपपत्तिश्च'-'वाक्य-विभागस्य चार्थ ग्रहणात्'— 'विध्यर्थ वादानुवादवचन विनियोगात्'-'मन्त्रा-युर्वेदप्रामाण्य वच्च तत् प्रामाण्यं आप्त प्रामाण्यात्' इन सूत्रों में दिया गया है। वैशेषिक में 'तद्वच-नादाम्नायस्य प्रामाण्यम्'- 'तस्मादा-गमिकः'— 'वेदलिंगाच्च'— इत्यादि सूत्रों में वेद की प्रामाणिकता को स्वतः सिद्ध ठहराया गया है। पर-मात्मा के गुण का ज्ञान किस प्रकार किया जाय इसका उत्तर योगदर्शन ने यही दिया है कि 'तस्य संज्ञादि विशेष प्रतिपत्तिरागमतः पर्यन्वेष्या'। वेदान्त के अधिक दृष्टान्त देने की आवश्यकता नहीं। वह तो 'न वा तत्सहभावाश्रुते'—'न वियदश्रुतेः'— 'नाणुरतच्छ्रुतेरिति'— 'नात्मा श्रुते-र्नित्यत्वाच्च'—'श्रुतेश्च'— 'शब्दाच्च'- इत्यादि सूत्रों से भरा पड़ा है। हमारे दर्शनों की दृष्टि से वेद की सर्वोपरि प्रामाणिकता सर्व सम्मति से मानी गई है।

परन्तु यह बात पाश्चात्य-दर्शन में नहीं। जिस युग में ईसाइयत के सिद्ध करने पर ही सारे दर्शन-शास्त्र का बल लगा हुआ था—उस समय निस्सन्देह बाइबल को आधार मानकर तत्प्रतिद्वन्द्वी अन्य सब प्रमाणों को निर्बल माना गया है—परन्तु अब ऐसी अवस्था नहीं। युक्ति रूपी घोड़ा बिना लगाम लगाये खुला छोड़ दिया गया है-वह जिधर जाय उधर जाने के लिये पाश्चात्य विचारक उद्यत हैं। युक्ति की भी कोई सीमा है—कोई ऐसा भी स्थल है जहाँ युक्ति नहीं चल सकती, इस सचाई को अत्यन्त थोड़े रूप में अनुभव किया गया है। न्याय के हेतु परिष्कारक पाँच प्रकारों में 'अबाधितत्व' भी गिना गया है। 'अबाधितत्व' का अभिप्राय यह है कि वही युक्ति ठीक है जिसके समान बलवती दूसरी युक्ति हमें न मिले। यदि एक युक्ति से परमात्मा की सिद्धि हो जाय-दूसरी उतनी ही प्रबल युक्ति से उसका खण्डन हो जाय तो ऐसी अवस्था को बाधित कहेंगे। 'बाधित अवस्था' को क्यों माना गया है? इस लिए कि युक्ति को सीमित समझ लिया गया है। यदि अनुमान असीमित है तो कोई न कोई अनुमान अवश्य प्रबल रहेगा। परन्तु ऐसा नहीं। अनुमान की ऐसी अवस्था भी आती है, जहाँ यह चुप खड़ा हो जाता है, जहाँ एक पक्ष को साधन करने वाली जितनी प्रबल युक्तियाँ मिलती हैं उतनी ही प्रबल युक्तियाँ उस पक्ष का खण्डन करने वाली भी मिल जाती हैं। ऐसी अवस्था का अनुभव सब दार्श-निकों ने किया है। हर्बर्ट स्पेन्सर की अज्ञेय-मीमांसा में ऐसे अनुमान भरे पड़े हैं। इसका प्रतीकार क्या

किया जाय ? भारतीय विचारक कहता है कि मनुष्यों की ऐसी अवस्था निरन्तर नहीं रह सकती, यह अवस्था सृष्टि के सारे उपक्रम के विरुद्ध है। मानना पड़ता है कि इस सृष्टि के रचयिता ने स्वयं ज्ञान दिया होगा जो मनुष्य को इस अवस्था से निकालता होगा। ऋषियों का असन्दिग्ध शब्दों में कथन है कि ऐसा ज्ञान मिला है, उन्होंने उसका अनुमान नहीं, साक्षात्कार किया है-वह ज्ञान 'वेद' है। बस इतने से सन्देह की अवस्था निश्चय में परिणत हो जाती है, जिन बातों पर युक्ति ठहर जाती है उन पर श्रुति का प्रमाण ढूँढा जाता है। इसी लिये ज्यों २ भारतीय दर्शन ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों २ अनुमानादि प्रमाण को छोड़ कर श्रुति प्रामाण्य बढ़ता जाता है। उत्तर मीमांसा में तो श्रुति ही श्रुति रह जाती है और कुछ रहता ही नहीं।

पाश्चात्य विचारकों की यह अवस्था नहीं। उन्हें युक्ति पर बहुत विश्वास है। परन्तु क्योंकि एक समय ऐसा आता है जब युक्ति चुप हो खड़ी हो जाती है, तब क्या किया जाय ? पाश्चात्य विचारक का उत्तर है—'कुछ नहीं'। युक्ति चुप हो गई इसी लिए हमें भी चुप हो जाना चाहिये। यही अवस्था सन्देहवाद की अवस्था है। इसीलिये पाश्चत्य विचारकों का किसी बात पर भी विश्वास नहीं। उनके लिये प्रत्येक बात अनिश्चित है। परन्तु मनुष्य की आकांक्षा सन्देहवाद के परिमित वायुमण्डल में रहने की नहीं। इस में मनुष्य का दम घुटता है और वह इस से बाहर निकलना चाहता है। क्या किया जाय ? 'सन्देह' से निकलने का एक ही उपाय हो सकता है और वह उपाय 'निश्चय' की भूमि पर आने के अतिरिक्त और कोई नहीं। 'निश्चय' पर पहुँचने के लिये तीन ही उपायों का अवलम्बन किया जा सकता है:—

१. या तो अपना कोई एक विश्वास निश्चित कर लिया जाय।
२. या अपने से अधिक किसी विद्वान् के कथन को ठीक मान लिया जाय।
३. और या ईश्वरीय ज्ञान का आधार लिया जाय।

क्योंकि मनुष्य सन्देह की अवस्था में नहीं रह सकता अतः भारतीय विचारकों ने पिछले दो को स्वीकार कर लिया है और पाश्चात्य विचारकों ने पहले दो को स्वीकार कर लिया है। युक्ति के क्षेत्र से दोनों निकल कर श्रद्धा के क्षेत्र में प्रविष्ट हो जाते हैं। कहने के लिये दोनों को अन्धविश्वासी कहा जा सकता है परन्तु यदि ईश्वरीय ज्ञान होता हो तो ऐसी अवस्था में पाश्चात्य विचारकों को ही अन्धविश्वासी कहा जायगा। भारतीय विचारकों का कथन है कि

पहली दो बातों में विश्वास करना परतःप्रमाण बात पर विश्वास करना है तथा पिछली बात पर विश्वास करना स्वतः प्रमाण बात पर विश्वास करना है।

प्रश्न हो सकता है कि ईश्वरीय ज्ञान कौन है—इसका निर्णय कैसे किया जाय। जब ईश्वरीय ज्ञान में वर्णित बातों का यथार्थ रूप से अनुभव अर्थात् प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, तब ईश्वरीय ज्ञान की प्रामाणिकता कैसे मानें?

इस का उत्तर बहुत विचित्र है जो कि आप ने कई बार भिन्न २ रूपों में सुन रक्खा होगा। भारतीय विचारक कहते हैं कि वेद की 'वेदत्वेन' प्रामाणिकता उसी के लिये कही जाती है जो कि स्वयं उसका प्रत्यक्ष नहीं कर सकता, उनका कथन है कि चाक्षुष प्रत्यक्ष ही प्रत्यक्ष नहीं—इन्द्रियों की सहायता से प्रत्येक पदार्थ तक पहुँचने की इच्छा करना मूर्खता है। इन्द्रियाँ ज्ञान को प्रकट करने की अपेक्षा छिपाती अधिक हैं। वास्तविक ज्ञान अनैन्द्रियक ज्ञान ही है। इस प्रत्यक्ष का नाम 'आर्ष प्रत्यक्ष' है। इसी प्रत्यक्ष से वेदों के रहस्यों का प्रत्यक्ष किया जा सकता है। यह बात देखने की है, बहस करने की नहीं।

आप्तोपदेश के दो भेदों को करते हुए मैंने कहा था कि एक तो ईश्वरदत्त ज्ञान है और दूसरा मनुष्यदत्त। ईश्वरदत्त ज्ञान के प्रामाण्य के विषय में हम विचार कर चुके। मनुष्यदत्त ज्ञान के भारतीय दार्शनिकों ने दो भेद किये हैं।

१. जिस उपदेश का 'इन्द्रिय-प्रत्यक्ष' पर आश्रय हो।

२. जिस उपदेश का 'आर्ष-प्रत्यक्ष' पर आश्रय हो।

इन्द्रिय प्रत्यक्ष पर अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं, इसे पाश्चात्य विद्वान् मानते हैं—और शायद् आवश्यकता से अधिक मानते हैं। पाश्चात्य दार्शनिकों की अपेक्षा भारतीय दार्शनिक आर्ष प्रत्यक्ष को अधिक प्रबल मानते हैं। आर्ष प्रत्यक्ष का वर्णन प्रत्यक्ष प्रकरण में इस लिये नहीं किया गया, क्योंकि इस का ज्ञान हमें बहुत कुछ शब्द प्रमाण द्वारा ही होता है। आर्ष प्रत्यक्ष के विषय में लिखते हुए वैशेषिक की टीका में लिखा है:—

"यत्प्रातिभं ज्ञानं यथात्म निवेदन मुत्पद्यते तदार्षमित्याचक्षते। तत्तु प्रस्तावेनदेवर्षिणां कदाचिदेव लौकिकानाम्। यथा कन्यका ब्रवीति श्वो मे भ्राताऽऽगन्तेति। हृदयं मे कथयतीति"। बहिन कहती है कि कल मेरा भाई आयगा, मेरा हृदय कहता है कि वह कल आजायगा। अगला दिन होते ही उसका भाई दरवाज़े पर आ खड़ा

होता है। यह ज्ञान किसी बाह्य इन्द्रिय द्वारा नहीं हुआ—परन्तु यह भी ज्ञान है-इसी को आर्ष-प्रत्यक्ष कहते हैं।

योगदर्शन में 'श्रुतानुमान प्रज्ञाभ्यां अन्य विषयाविशेषार्थत्वात्' इस सूत्र की व्याख्या करते हुये भाष्यकार लिखते हैं 'न चास्य विशेषस्य अप्रामाणिकस्य अभावोऽस्तीति समाधि प्रज्ञा निग्राह्य एव स विशेषो भवति'। इस उद्धरण में समाधि-प्रज्ञा-प्रत्यक्ष अर्थात् योगप्रत्यक्ष एक विलक्षण प्रत्यक्ष माना गया है।

जो भारतीय विचारों से परिचित हैं वे इस बात से भी परिचित होंगे कि हमारे यहाँ इन्द्रियों को पदार्थज्ञान में बहुत अधिक साधन नहीं माना गया, कम से कम आत्मप्रत्यक्ष एक स्वतन्त्र प्रत्यक्ष माना गया है, जिसका इन्द्रियों पर आधार बिल्कुल नहीं। इन्द्रियों के बिना कार्य होता है। कहते हैं:—

'अन्धो मणिमविन्धत् तमनङ्गुलिरावयत्।
अग्रीवस्तं प्रत्यमुञ्चत् तमजिह्वोऽभ्यपूजयत्॥'

इस आशय के मन्त्र वेद में, उपनिषद् में यत्र तत्र सर्वत्र आते हैं। 'अपाणिपादोजवनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः' इत्यादि मन्त्र इसी भाव के अभिव्यञ्जक हैं।

यौगिक प्रत्यक्ष कोई नई बात नहीं। इन्द्रियों के बिना ज्ञान प्राप्त करना भारतवासियों की ही कल्पना नहीं। चीन के प्राचीन धर्म Taoism की पुस्तकों में एक कथा आती है जिस में लीन शू को कीन बू कहता है 'मैंने एक आदमी को बड़ी ऊटपटांग बातें करते हुए सुना है। वह एक विचित्र व्यक्ति का वर्णन सुना रहा था। वह कहता था कि एक आदमी मौजूद है जो अन्न नहीं खाता, बादलों पर चढ़ जाता है, समुद्रों के पार उड़ जाता है—क्या ये बातें अनाप शनाप नहीं हैं?' यह सुन कर लीन शू कहता है कि ये सब बातें सत्य हैं, तू जानता नहीं—लेकिन यह सब कुछ हो सकता है।

आर्ष तथा योग प्रत्यक्ष को पाश्चात्य दर्शन दबदबे तौर से मानता है, खुले तौर से नहीं। Locke का कथन है कि पाँच बाह्य इन्द्रियों के अतिरिक्त एक आन्तरिक इन्द्रिय भी है। 'Intuition' केवल आर्ष प्रत्यक्ष का ही नामान्तर है। 'Telepathy' की घटनाएँ भी इन्द्रिय व्यतिरिक्त प्रत्यक्ष को ही सिद्ध करती हैं।

Psychology के वर्त्तमान अन्वेषण इसी तरफ इशारा कर रहे हैं। परन्तु अभी तक वर्त्तमान विचार भारतीय विचार से बहुत दूर है। भारतीय विचारकों ने आर्षप्रत्यक्ष को बड़ी प्रबलता से माना ही नहीं परन्तु उसी को वास्तविक निर्भ्रान्त प्रत्यक्ष माना है। उनका यह भी कथन है कि मनुष्य योग शक्तियों को अपने भीतर उत्पन्न कर सकता है। इसके मार्ग आदि सब विशद रूप से उन्होंने एक विशेष दर्शन की पुस्तक में लिख दिये हैं जिस

का नाम 'योगदर्शन' है। पाश्चात्य तथा भारतीय दर्शन में यह बड़ा भारी भेद है। इस भेद को मैं सब भेदों से मुख्य भेद समझता हूँ। हमारे दार्शनिकों ने सब तत्वों का दर्शन किया था। केवल बुद्धि से ही उन तक नहीं पहुंचे थे। यही कारण है कि भारतीय फिलासफी का नाम 'दर्शन' है। इस शब्द में बड़ी भारी गहराई और सचाई है। 'दर्शन' का अर्थ है—देखना। न्याय भी दर्शन है-वैशेषिक भी दर्शन है-वेदान्त भी दर्शन है। सब कुछ उन का देखा हुआ है—अटकलपच्चू बात कोई नहीं। क्या इतना बड़ा दावा पाश्चात्य फिलासफी कर सकती है। जहाँ तक मुझे मालूम है, अभी तक इस दावे को पाश्चात्य फिलासफी ने नहीं किया। (अपूर्ण)

स्पार्टा की शिक्षण-प्रणाली

(ले०—ब्र० शंकरदेव)

यूरोप के इतिहास में स्पार्टा का बहुत महत्व है। स्पार्टा ग्रीस प्रदेश के लेकोनिया प्रान्त का मुख्य नगर था। यहां के निवासियों को इस नगर के नाम पर स्पार्टन कहते थे। ये स्पार्टन लोग-यूरोटस नदी की तराई में रहने वाले डोरियन लोगों के वंशज थे। इन स्पार्टनों के अतिरिक्त स्पार्टा नगर में अन्य जातियों के लोग भी निवास करते थे। इन लोगों में पेरीकोई तथा हेलट नाम की दो श्रेणियाँ थी। सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से हेलट लोग सब से नीचे की श्रेणी के लोग थे। इन लोगों की संख्या अधिक होने पर भी इनकी सामाजिक स्थिति अत्यन्त दयाजनक थी। इनको किसी प्रकार के भी सामाजिक किंवा राजनैतिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। ये लोग खेती तथा गुलामी का धंधा करते थे। थोड़े में कहें तो यों कह सकते हैं कि ये लोग स्पार्टा के शूद्र थे। पेरीकोई लोगों की अवस्था बहुत अच्छी थी। स्पार्टा की व्यापार आदि की शक्तियाँ इन्हीं लोगों के हाथ में थी। यद्यपि राजनैतिक दृष्टि से उनको किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त न थे तथापि नागरिक होने के अधिकार से उनको सब प्रकार की स्वाधीनता थी। इन सब के ऊपर स्पार्टन लोग अपने अधिकारों का भोग करते थे। संख्या में अल्प होते हुए भी इन स्पार्टन लोगों की अन्य लोगों पर बहुत धाक थी। स्पार्टन लोगों को व्यापार करने की सख्त मनाही थी। हेलट लोगों की खेती की उपज से ये लोग अपना जीवन-निर्वाह करते थे।

इन जातियों पर अपना एकाधिकार बनाये रखने के लिये स्पार्टन लोग सदा यत्नशील रहते थे। पेरीकोई तथा हेलट लोगों को सदा के लिए अपने अंकुश के नीचे रखने के लिए ये अहर्निश सचेत रहते थे। हेलट लोगों की संख्या के अधिक होने के कारण इन लोगों को इस बात का सदा भय बना रहता था कि कहीं ये लोग संगठित होकर हम पर धावा न करदें, अतः स्पार्टन लोग उनको सदा दबाये रहते थे। हेलट लोगों के इस भय के कारण स्पार्टन लोगों में "क्रिप्टिया" नामक एक अत्यन्त क्रूर रिवाज चला हुवा था। इस रिवाज के अनुसार स्पार्टा के युवकों को हथियार तथा भोजन दे कर स्पार्टा के समीप इधर उधर छिपने को कहा गया था। ये युवक रात्रि के समय फिरते हुए हेलट लोगों का नाश करते थे और यदि उन्हें यह ज्ञात हो जाता था कि हैलट लोग प्रतिकार करना चाहते हैं तब तो वे उनको बीन बीन कर मारते थे। कितनी ही बार दिवस के समय में भी ये युवक लोग खेतों में जाकर हेलट लोगों का संहार करते थे।

एक समय स्पार्टनों तथा एथिनियन लोगों के बीच में युद्ध छिड़ा। एथिनियन लोगों ने ४२० स्पार्टनों को स्फेकटेरिया के टापू में घेर लिया। इस समय हेलट लोगों ने स्पार्टनों के छुटकारे के लिये जीजान से उद्योग किया और उन के लिये भोज्य सामग्री पहुँचाते रहे। हेलट लोगों की यह सेवा देख कर स्पार्टनों ने उनको स्वाधीनता के अधिकार दे दिये। परन्तु थ्युसिडाईटस् लिखता है कि स्वतन्त्रता देने के थोड़े समय के उपरान्त ही ये दो हज़ार से अधिक गुलाम [दास] कहाँ गये और उनका क्या हुआ इसका कुछ पता नहीं मिला। ऐसी गुप्त रीति से उन सब का एक बार में ही संहार कर दिया गया। जिस प्रकार मध्यकाल में भारत में शूद्रों को वेदादि शास्त्रों के पढ़ने का अधिकार नहीं था उसी प्रकार हेलट लोगों को भी गान करने तथा नृत्य करने की मनाही थी।

इन स्पार्टन लोगों के जीवन में से अनुभव तथा प्रेरणा प्राप्त करके प्लेटो जैसे महान् विचारक ने जगत् को "रिपब्लिक" नाम का अपूर्व ग्रन्थ दिया। उसने अपनी रिपब्लिक में आदर्श राज्य का तथा राज कर्त्ताओं का वर्णन किया है। प्लेटो द्वारा प्रतिपादित आदर्श राज्यकर्त्ताओं के गुणों में से केवल एक गुण ही ऐसा था जिस का स्पार्टन लोगों में अभाव था, और वह यह कि उनको केवल शारीरिक शिक्षण ही दिया जाता था, उनका आत्मा अशिक्षित ही रहा। परिणाम यह हुआ कि वे स्वार्थी, संकुचित दृष्टि वाले और जड़ हृदय वाले हो गए। इस अपूर्णता के कारण ही वे ग्रीस देश का एक राष्ट्रसंघ [Federation]

नहीं बन सके । स्पार्टनों की इस अपूर्णता को देख कर प्लेटो ने अपनी रिपब्लिक में इस बात को बलपूर्वक प्रतिपादित किया है कि राजकर्त्ताओं को दार्शनिक अवश्य होना चाहिए।

इन स्पार्टन लोगों ने अपने को एक बलवान् प्रजा बनाने के लिए जो जो प्रयत्न, जो जो कानून-कायदे बनाये और जो कठोर तपस्या और संयम किया उस का वर्णन बहुत आश्चर्य-कारक है। आज 'स्पार्टन नियन्त्रण' यह एक कहावत सी बन गई है। 'युद्ध चातुर्य्य' यह उनका ध्येय था। प्रत्येक स्पार्टन का स्वभाव मधुमक्षिका की तरह सर्वदा सामान्य लाभ (Common good) की ओर रहता था। वे अपने को स्वतन्त्र व्यक्ति न समझते थे अपितु सारे स्पार्टन संघ का मैं एक अङ्गमात्र हूँ यह अनुभूति उनके दिलों में बनी हुई थी। सारे ग्रीस में शायद ही कोई दूसरी ऐसी प्रजा होगी जिसने राष्ट्र के हित के लिए अपने व्यक्तियों के व्यक्तित्व का इतना अधिक बलिदान किया जितना स्पार्टनों ने किया। उनका संपूर्ण शिक्षण-क्रम उनको बलवान् योद्धा बनने के लिए ही बनाया गया था। उन का मूल ध्येय आज्ञापालन, सहनशीलता, और सैनिक विजय था, अन्य ध्येय गौण थे। एक ऐतिहासिक विद्वान का कहना है कि सम्पूर्ण जगत् के इतिहास में किसी भी राष्ट्र ने अपना आदर्श इतनी स्पष्टता से रखकर उसको पूर्ण करने के निमित्त सतत प्रयत्न नहीं किए, जितने स्पार्टन लोगों ने किए हैं। स्पार्टा की महत्ता यही है कि उसने अपने आदर्श को पूर्ण करने का सतत उद्योग किया।

स्पार्टन लोगों में एकता स्थापित करके उन में राष्ट्रीय अहंभाव के तत्व को भरने के भगीरथ-प्रयत्न करने वालों में लाईकरगस का नाम प्रथम है। इस लाईकरगस के विषय में ऐतिहासिकों बहुत मतभेद हैं, जिस प्रकार भारत में मनु आदि स्मृतिकार अथवा कानून-निर्माता माने जाते हैं उसी प्रकार स्पार्टनों की यह मान्यता थी कि लाईकरगस ने ही सब कायदे कानून बनाये हैं। लाईकरगस का पहला सुधार भूमि विषयक था। उसने देखा कि बहुत सी ज़मीन कुछ एक धनिकों के पास ही सीमित है और स्पार्टन लोगों में निर्धनों की संख्या बहुत अधिक है। इस अतिसंपत्तिमत्ता और निर्धनता के कारण लोगों में बहुत असमानता, लोभ तथा ईर्षा थी। पूंजीपतियों की विलासिता और उद्धतपने के कारण राष्ट्र की बहुत बुरी हालत थी। लाईकरगस ने प्रजा की संमति से भूमि के स्वामित्व के पहिले के सब नियमों को रद्द कर दिया और ऐसी नवीन व्यवस्था बनाई जिस से स्पार्टन नागरिकों की आर्थिक-स्थिति, रीतिरिवाज, आदि समान हो जाँय। [इन सुधारों के साथ वर्तमान

साम्यवाद की कुछ समता की जा सकती है]।

इन सुधारों का परिणाम यह हुआ कि सम्पत्ति के कारण उत्पन्न असमानता नष्ट हो गई। द्रव्य-लोभ तथा मौज-शौक़ को पूर्णतया रोकने के लिए तथा स्पार्टन लोगों की राष्ट्रीय अस्मिता के बनाये रखने के लिए एक और नियम बनाया गया था जिससे कोई भी स्पार्टन व्यक्ति अपने घर भोजन नहीं कर सकता था, सब स्पार्टन लोगों को प्रतिदिवस नियत समय पर एक निश्चित सार्वजनिक भोजनशाला में भोजन करना होता था। इस नियम द्वारा स्पार्टनों की आन्तरिक एकता बहुत दृढ़ हो गई। इसके द्वारा उन को अपना सैनिक-भ्रातृ-संघ (Military Brotherhood) बनाने में बहुत सहायता मिली।

इस के अतिरिक्त लाइकरगस ने एक और भी महत्व-पूर्ण सुधार किया और लोगों की लोभवृत्ति को रोका। उस ने सुवर्ण और चाँदी की मुद्रा को कानूनन बन्द कर दिया और उसके स्थान पर लोहे की मुद्राएँ चलाईं। इस का परिणाम यह हुआ कि स्पार्टा के बहुत से निरुपयोगी धन्धे तथा विलासता स्वयं बन्द होगईं। ग्रीस के अन्य प्रदेशों के साथ स्पार्टा का जो व्यापार चलता था वह भी बन्द हो गया। प्लुटार्क लिखता है कि इसके द्वारा विदेशी वस्तुओं को खरीदने का स्पार्टनों के पास कोई साधन न रहा। स्पार्टा के बन्दरगाहों पर व्यापारियों के जहाज़ आने बन्द हो गए। संपूर्ण प्रदेश में पैसा लेकर विद्या या कलाकौशल सिखाने वाला, फिरन्दर भविष्य बतलाने वाला, तथा आभूषण बेचने वाला फेरीवाला ढूंढ़ने पर भी नहीं मिलता था। अभियोग मुकद्दमे बन्द हो गए, अमीरी और गरीबी का अन्त हो गया। प्रत्येक व्यक्ति को जितने द्रव्य की जरूरत होती थी उतना ही मिलता था। विलासिता को उत्तेजना देने वाली कोई भी वस्तु स्पार्टा में नहीं रही। लोगों में कला, और सौन्दर्य के जो भाव विद्यमान थे वे उनके जीवन में प्रकट होने लगे। आज सम्पूर्ण संसार में अमीरी और गरीबी का जो महान् संघर्ष चल रहा है, असमानता के कारण मानवसमाज में जो बुराईयाँ फैल रही हैं वे सब स्पार्टन लोगों ने अपनी कार्यक्षमता, तपस्या, दृढ़ संयम तथा दृढ़ निश्चय के द्वारा अपने में से निकाल दीं थीं।

ग्रीस में अपना स्थान सब से उन्नत रखने के लिए उनको बलवान् प्रजा की आवश्यकता थी। इस के लिए लाइकरगस ने विवाह विषयक बहुत से नियम बनाये। कन्याओं को भी युवकों जैसी ही शिक्षा दी जाती थी। प्लुटार्क लिखता है कि—"लाइकरगस ने कुमारिकाओं के लिए दौड़ने, कुश्ती लड़ने, मुद्गर फेरने तथा भाला चलाने की

व्यायाम निश्चित की ताकि उनके शरीर दृढ़ और बलवान् बनें, वे प्रसव वेदना को सहन कर सकें। उन की सन्तान भी मज़बूत और सशक्त उत्पन्न हो। परदे में रहने से नारियों में जो अत्यन्त कोमलता, लज्जा और निर्बलता आती है उसको हटाने के लिए लाइकरगस ने कई ऐसे त्योहार रक्खे जिन में कुमारियों का युवक पुरुषों के आगे गाना और नाचना नियत किया। इन उत्सवों तथा समाजों में सब प्रकार के लोग उपस्थित होते थे। उत्सवों में कुमार और कुमारियों के अनेक शारीरिक खेल होते थे। शारीरिक उन्नति में प्रथम आने वालों की बहुत प्रसंशा होती थी। इन उत्सवों में बहुत वार नग्न नृत्य भी होते थे।"

स्पार्टन् लोगों की यह नग्न नाच की प्रथा हमें नैतिक दृष्टि से उचित न लगती होगी, परन्तु स्पार्टन लोगों को इस में कोई अनीति नहीं प्रतीत होती थी। उनका इतना ही लक्ष्य था कि हमने शारीरिक उन्नति करके सुदृढ़ और बलवान प्रजा पैदा करनी है। अविवाहित पुरुषों को निन्दा से देखा जाता था। कन्याओं के विवाह के लिए सख़्त नियम बना हुवा था। कुमारिकाओं का विवाह उनकी कोमल आयु में नहीं होता था। पूर्ण अवस्था आने पर ही उनका विवाह होता था। जब स्पार्टनों को बलवान सन्तान की आवश्यकता होती थी तब विवाहित स्त्रियों को अपने पति के बलवान न होने पर अपनी पसन्दगी के अनुसार किसी अन्य सशक्त पुरुष द्वारा सन्तति उत्पन्न करने की छूट दी जाती थी। इस कार्य के लिए स्त्रियों को उनके वास्तविक पति की ओर से भी पूर्ण स्वाधीनता होती थी। क्यों कि स्पार्टन लोग अपनी स्त्री से किसी प्रतिष्ठित सशक्त पुरुष के द्वारा उत्तम सन्तान पैदा करने में कोई बुराई नहीं समझते थे। वास्तविक लज्जा तो संतान न पैदा होने में अथवा निर्बल सन्तान पैदा होने में ही मानी जाती थी। वस्तुतः यह प्रथा स्पार्टनों के आत्मसमर्पण का अपूर्व नमूना है। आचार की दृष्टि से यह प्रथा ठीक थी या नहीं यह दूसरी बात है। जो बालक उत्पन्न होते हैं वे स्पार्टा के गौरव हैं, ये किसी व्यक्ति के नहीं हैं अपितु समष्टि के हैं, ऐसी उनकी मान्यता थी। और इस प्रकार देखने से यदि उनको यह प्रथा अनीति पूर्ण न लगती तो इस में आश्चर्य ही क्या है? इसी प्रकार की विचार श्रेणी से प्रेरित होकर प्लेटो अपनी 'रिपब्लिक' में गार्डियनों (राजकर्ताओं) के लिए विवाह की प्रथा होनी ही नहीं चाहिए इस प्रकार लिखता है। वस्तुतः-"यह बालक मेरा है" इस प्रकार न मान कर "मेरे राज्य का है, सौभाग्य से इस को पालन पोषण करने का मुझे अवसर मिला है, जिस से भविष्य में यह मेरे देश की रक्षा करेगा और उसे यशस्वी करेगा" इस प्रकार के विचार करने वाले पिता जिस देश में हों, उस देश की राष्ट्रीय अस्मिता को धन्य है!

तथापि यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि नग्न नृत्य करने तथा पति के सिवाय अन्य पुरुष द्वारा सन्तान उत्पन्न करने की इस प्रथा के द्वारा स्पार्टा को अन्त में हानि ही हुई। इस प्रथा को प्रचलित करते समय यद्यपि उन के भाव शुद्ध थे लेकिन साधन विशुद्ध नहीं थे। आगे चल कर साध्य का रूप बिगड़ गया और साधन ही साध्य बन गये, और स्पार्टा में अनीति का प्रवेश होगया। साधारणतया यूरोपीय राजनीतिज्ञों तथा विचारकों का यह मत है कि साध्य शुद्ध रहना चाहिए चाहे साधन कैसा भी हो। तोभी वान· ट्राट्स्की जैसे विख्यात् राजनीतिज्ञ का कथन है कि स्पार्टा के अधःपतन का कारण उपरोक्त प्रथाएँ ही हैं।

स्पार्टन लोगों के सुधार यहाँ तक सीमित नहीं रहे। उन्होंने देखा कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति अथवा अवनति का वास्तविक आधार उस देश के बालकों को मिलने वाली शिक्षा पर अवलम्बित है। इसलिए शिक्षा के लिए भी लाईकरगस ने बहुत से नियम बनाए। पिता को अपने बालकों के पालन का अधिकार नहीं था। बालक के पैदा होते ही उस के पिता को उस को स्पार्टा नगर के सार्वजनिक-सूचना-स्थान पर ले जाना पड़ता था, वहाँ पर उस बालक के गोत्र के वृद्ध पुरुष एकत्रित होकर नवजात बालक के शरीर का निरीक्षण करते थे। यदि बालक मज़बूत होता था तो उस के पालन का प्रबन्ध किया जाता। यदि बालक निर्बल और रोगी प्रतीत होता था तो उस को "जिस को प्रकृति ने ही बल नहीं दिया उस के जीने से राष्ट्र का क्या उपकार होगा?" यह कह कर को टेगीटस पर्वत के समीप वाली ऐपीथेटी नामक अन्धेरी गुफा में फैंक दिया जाता था। इस कारण स्पार्टन माताएँ बालक के उत्पन्न होते ही उस को पानी स्नान न करा कर शराब से स्नान कराती थीं, क्यों कि उन का ऐसा विचार था कि निर्बल या रोगी बालक ही मद्यस्नान से मर जाता है, जो तन्दुरुस्त होता है उसे उससे फ़ायदा ही होता है।

बालकों की शारीरिक उन्नति के लिए एक दूसरी परीक्षा भी होती थी। आठ वर्ष की उमर होने पर बालक को एक परीक्षा में से गुजरना होता था। इस के लिए स्पार्टन लोग देवी डायना के मंदिर में एक उत्सव करते थे। इस उत्सव में आठ वर्ष की आयु वाले बालक एकत्रित किए जाते थे और उन सब को वेदी पर चाबुक से मारा जाता था। जब तक उन के शरीर से रक्त न निकले तब तक उन को इसी प्रकार पीटा जाता था। चाबुक मारते समय तनिक भी आवाज अथवा शोर नहीं करना होता था। जिस समय अपने पुत्र को चाबुक से पीटा जा रहा हो उस समय यदि उस के माता पिता शोकित अथवा चिन्ताग्रस्त मालूम पड़ते थे तो अन्य लोग उन का उपहास करते थे। इस परीक्षा के समय कितने

ही लोग इस दृश्य को देख कर मर जाते थे। जो बचते थे, वे स्पार्टा के नागरिक होने के अधिकारी समझे जाते थे।

बालकों की शिक्षा उन के माता पिता के हाथ में नहीं थी। जब बालक सात वर्ष की वय के हो जाते थे तब उन की श्रेणी (टोली) बनादी जाती थी। ये सब बालक साथ ही खाते पीते, खेलते कूदते, पढ़ते लिखते, कसरत करते तथा एक जैसा नियमित जीवन व्यतीत करते थे। श्रेणी में जो बालक विशेष उत्साही और दृढ़ होता था उसे उस श्रेणी का मुखिया [नायक] बनाया जाता था। अन्य बालक उस को अपना आदर्श समझते थे और उस का कहना मानते थे। बड़ी उमर वाले स्पार्टन लोग इन बालकों में परस्पर संघर्ष करवाते थे तथा उन के साहस, उत्साह दृढ़ता आदि गुणों का निरीक्षण करते थे।

आज कल जिस को शिक्षा कहा जाता है वह तो उन को बहुत थोड़ी ही दी जाती थी। उन की शिक्षा का मुख्य ध्येय उन को आज्ञापालक, परिश्रमी, सहनशील, लड़ाका, विजयी तथा संयमी बनाना था। ज्यों ज्यों उन को उमर बढ़ती उन का नियन्त्रण कठिन होता जाता था। उन को सादा और तपस्वी जीवन व्यतीत करना होता था। आराम पसन्द होने से उन को बहुत बचाया जाता था। चोरी किस प्रकार करनी चाहिए यह भी उन को सिखाया जाता था तथा चोरी करते हुए जो बालक पकड़ा जाता था उस को उस की इस गफलत के लिए दण्ड मिलता था। बालक चोरी करने में कितनी सावधानी रखते थे उस का एक सुन्दर उदाहरण प्लुटार्क ने दिया है:—

एक बार कोई लड़का एक सियार का बच्चा अपने कम्बल में छिपा कर लाया। इस बच्चे ने अपने दाँतों और नखों से लड़के का पेट चीर दिया और उस की अन्तड़ियाँ बाहर निकल आईं इतने पर भी बालक ने इस बात को प्रकट न किया और पकड़े जाने की अपेक्षा मृत्यु को अधिक उचित समझा।

सारांश यह कि स्पार्टन लोगों ने एक बलवान जाति बनने के लिए जो प्रयत्न करने चाहिएँ, उन के करने में कोई कसर न छोड़ी। परन्तु वे मानव जीवन के एक ही पार्श्व को पुष्ट कर सके जिस का परिणाम यह हुवा कि उन के सारे प्रयत्न विफल हुए। यह बात केवल स्पार्टा के इतिहास में ही लागू नहीं होती, परन्तु यूरोप के इतिहास में भी लागू होती है। यूरोप ने अपने जीवन में अपने देह को ही प्रधान पद दिया, आत्मा की ओर ध्यान नहीं दिया। और इसी लिए उसके सारे प्रयत्न वस्तुस्थिति तथा मनुष्य के बाह्य जीवन के सुधार की ओर ही झुकते हुए प्रतीत होते हैं। आज भी यूरोप बोल्शेविज्म आदि बाह्य साधनों द्वारा अपनी मुक्ति के

लिए प्रयत्न कर रहा है। परन्तु महात्मा गाँधी और श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों में जब तक आन्तरिक सुधार अथवा हृदय ने पलटा नहीं खाया सब प्रयत्न निष्फल ही जायेंगे। स्पार्टन लोगों ने केवल देह की ही उपासना की, जीवन का वास्तविक मर्म नहीं समझा। यदि इस शरीर की उन्नति का आधार आध्यात्मिक होता तो आज यूरोप का इतिहास और ही होता। तथापि अपने ध्येय की साधना के लिए जो महान् प्रयत्न उन्होंने किए, देह की उपासना करते हुए भी उन्होंने जो तपश्चर्या की है वह मानवीय शक्ति का भव्य और ज्वलन्त उदाहरण है। आज भी संपूर्ण जगत् उस से प्रेरणा और शिक्षा ले सकता।

'ज़िन्दावस्था' और 'वेद' की भाषाओं की समानता

(ले०—एक वैदिक विद्वान्)

मुसलमानों के अत्याचरों से पीड़ित होकर पारसियों के गरोह-के-गरोह अपनी मातृभूमि—'पर्शिया'—को अंतिम नमस्कार कर, अखिल विश्व के धर्मों में दैवी सत्य स्वीकार करने वाली भारत-भूमि को ही शरण में आए थे। पश्चिमी भारत के तटों पर उन्होंने अपने जहाज़ लगाए, और इस पुण्यभूमि ने उन भयभीत प्राणियों को अपने अंचल में छिपाकर शत्रुओं के क्रूर आक्रमणों से बचा लिया। ये लोग इधर आते हुए अपनी धर्म-पुस्तकों को, मुसलमानों से छिपाकर, अपने साथ लेते आए थे, और इन्हीं में से एक विद्वान् पारसी पुरोहित ने—जिसका नाम नर्योसंघ धवल था—अपने धर्म के अनेक ग्रंथों का पहलवी-भाषा से संस्कृत में अनुवाद भी किया, जिससे भारतीयों को पारसियों के धर्म का कुछ परिचय हो जाय। इस प्रकार पारसी-धर्म ने पर्शिया से सताए तथा भगाए जाने पर पश्चिमी भारत की संरक्षा में अपने प्राणों को बचाया।

पाश्चात्य विद्वानों को पारसी-धर्म का परिचय तब मिला, जब योरप का भारत के पश्चिमी भाग से व्यापारिक सम्बन्ध उत्पन्न हुआ। वैसे तो १७ वीं शताब्दी में ही ज़िन्दावस्था की कुछ हस्त-लिखित प्रतियाँ योरप में पहुँच चुकी थीं; परन्तु उनका महत्व पुरानी भोजपत्रों पर लिखी दूसरी पुस्तकों से बढ़कर न था। इन्हीं हस्त-लिखित पुस्तकों के कुछ पृष्ठों की छपी हुई प्रतिलिपि, अजूबा चीज़ के तौर पर, हाथोंहाथ फिरती एक फ्राँसीसी सज्जन—एनक्विटिल डूपरान—ने भी देखी। उसके हृदय में यह प्रबल

अभिलाषा उत्पन्न हुई कि योरप में 'ज़िन्दावस्था' के अर्थ खोलकर विद्वानों के सम्मुख रखने के गौरव का सेहरा उसके मस्तक पर बँधे। बस, इसी अभिलाषा को हृदय में लेकर वह 'ज़िन्दावस्था' की पुरानी हस्त-लिखित प्रतियों को खोजने तथा ख़रीदने के लिये सन् १७५४ में, 'फ़्रेंच-इण्डियन कम्पनी' के जहाज़ में, बम्बई को रवाना हुआ। बेचारा निर्धन था, इसलिये उसने जहाज़ में ख़लासी का काम किया, और बम्बई पहुँच कर अपने उद्योग में लग गया। उसके इस साहस-पूर्ण उद्योग को देखकर फ़्रेंच-सरकार ने भी उसे सहायता दी। पारसी दस्तूर (पुरोहित) योरपियन लोगों को संदेह की दृष्टि से देखते थे, इसलिए डूपरान के हाथ अपनी पुस्तकें बेच देने को कोई तैयार न होता था। अंत में उसने सूरत के दस्तूर-दाराब को रिश्वत देकर बहुत-से प्राचीन ग्रन्थ ख़रीदे, और उसी से 'अवस्था' तथा 'पहलवी' भाषा का अध्ययन भी किया। पीछे से उन पुस्तकों को लाकर पेरिस की नेशनल लाइब्रेरी में रख दिया गया।

इस प्रकार योरप में 'ज़िंदावस्था' का अध्ययन आरंभ हुआ। परन्तु अभी तक एनक्विटिल डूपरान का कार्य अत्यंत प्रारंभिक अवस्था का था। उसे 'अवस्था' तथा 'पहलवी'-भाषा पढ़ाने वाले पारसी दस्तूर स्वयं इन भाषाओं के विद्वान् नहीं थे। सदियों से इस भाषा का पठन-पाठन छूट चुका था। जिस प्रकार 'ज़िंदावस्था' की प्राचीन हस्त-लिखित प्रतिलिपियों को खोजा गया, उसी प्रकार इस भाषा का भी खोज निकालना आवश्यक था। एनक्विटिल के सराहनीय उद्योग के ५० साल बाद डेन्मार्क के विद्वान् रास्क ने—जो स्वयं बंबई आकर 'अवस्था' तथा 'पहलवी' की हस्त-लिखित पुस्तकें ख़रीद ले गया था—१८२६ ई० मे एक पुस्तक प्रकाशित की, जिस में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया कि 'ज़िन्दावस्था' की भाषा को संस्कृत से प्रगाढ़ समानता है। एनक्विटिल से कुछ लोगों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि पारसियों ने तुम्हें धोखा देकर मनगढ़न्त भाषा सिखा दी है; जो भाषा तुम सीख कर आए हो, उसका 'ज़िन्दावस्था' से कोई सम्बन्ध नहीं। परन्तु यदि रास्क का कथन ठीक था, तो एनक्विटिल को कुछ सहारा मिल जाता था। ऐसी अवस्था मे ज़िन्दावस्था' की भाषा के व्याकरण का संस्कृत की सहायता से पता लगाने का प्रयत्न किया जा सकता था। संस्कृत का ज्ञान इंगलैंड से फ्रांस तथा जर्मनी तक पहुंच चुका था, और उसके ग्रीक तथा लैटिन से निकट संबन्ध का पता लगाया जा चुका था। संस्कृत का 'ज़िन्दावस्था' से भी घनिष्ट संबंध देख कर योरप के विद्वानों का ध्यान इस

ओर एकदम आकृष्ट हुआ। योरप में संस्कृत तथा 'ज़िन्दावस्था' के पारस्परिक संबन्ध की तरफ़ सबसे पहले ध्यान आकर्षित करने वाले मि० रास्क ही थे; परन्तु वह इस विषय पर निर्देश-मात्र देकर चुप हो गए। इस संबध पर प्रकाश डालने का श्रेय एक दूसरे फ्रेंच विद्वान् को मिला। आपका नाम यूज़ोन बर्नफ़ था। मि० बर्नफ़ पैरिस में संस्कृत के अध्यापक थे। आपने नर्योसंघकृत पारसी-ग्रन्थों के संस्कृत-अनुवादों से बहुत सहायता ली और अपने संस्कृत-भाषा ज्ञान के आधार पर 'ज़िंदावस्था' के शब्द-शास्त्र की आधार-शिला रक्खी। बर्नफ़ लौकिक संस्कृत के पण्डित थे; परन्तु वैदिक संस्कृत से आपका परिचय अत्यन्त साधारण था। 'जिंदावस्था' का लौकिक संस्कृत से इतना सादृश्य नहीं, जितना वैदिक संस्कृत से; इसलिये इनका परिश्रम शब्दों के धात्वर्थ खोजने में उतना सफल नहीं हुआ, जितना 'अवस्था' तथा 'संस्कृत' के विभक्ति-प्रत्यय आदि की समानता का पता लगाने में। इनके किए अनुवादों में दोष रहने पर भी वे अपने ढंग के पहले ही अनुवाद हैं। इन्होंने सबसे प्रथम 'यस्न' के दो अध्यायों का अनुवाद प्रकाशित किया, जिससे 'अवस्था-शब्द-शास्त्र' के निर्माण में पर्याप्त सहायता मिली। बर्नफ़ के समय तक 'ज़िंदावस्था' के सम्बन्ध में यथेष्ट खोज नहीं हुई थी। उन्हें इतना तक ज्ञात न था कि 'ज़िंदावस्था' के 'गाथा'-भाग की वेदों की भाषा तथा उनके छन्दों के साथ असाधारण समानता है; फिर भी रास्क-प्रदर्शित मार्ग पर चलकर, संस्कृत की सहायता से, 'अवस्था' की भाषा का पता लगाने में बर्नफ़ ने पूर्ण परिश्रम किया, जिसके कारण 'प्राचीन-तत्त्व-ज्ञान' पर आपका ऋण सदा बना रहेगा।

इसी बीच में, योरप में, अन्य अनेक विद्वानों ने 'ज़िंदावस्था' के शब्द-शास्त्र के निर्माण में हाथ बटाने का प्रयत्न किया। इनमें से अध्यापक स्पीगल का कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय है। स्पीगल ने 'ज़िंदावस्था' के संस्कृत से सम्बन्ध को कुछ और अधिक समझने का प्रयत्न किया। उसके ग्रन्थों को देखने से पता लगता है कि उसने 'गाथाओं' का वेदों की तरह छन्दोबद्ध होना समझ लिया था। परंतु उसने अपनी गवेषणाओं का आधार अधिकतर पहलवी अनुवादों तथा एनक्विटिल के ग्रन्थों को ही रक्खा। हैनोवर के संस्कृत के अध्यापक थियोडोर बेनफ़ी ने स्पीगल की पुस्तकों की समालोचना करते हुए फिर से संकेत किया कि यदि 'ज़िंदावस्था' के अनुवादक इधर-उधर न भटक कर संस्कृत की सहायता से ही चलने का प्रयत्न करेंगे, तभी उन्हें इस विषम कार्य

में सफलता की आशा हो सकती है। संस्कृत तथा अवस्था-भाषाओं का अत्यन्त गहन सादृश्य है, इसलिये इसी दृष्टिकोण से इस गहन मार्ग में प्रवेश करना चाहिए। 'ज़िंदावस्था' की भाषा, उसका व्याकरण, शब्द-कोष, सबको शब्द-शास्त्र के मौलिक सिद्धांतों के आधार पर फिर से खोज निकालना एक नवीन भाषा के प्रथम वार निर्माण से भी अधिक कठिन कार्य था। परंतु धन्य है पाश्चात्य विद्वानों की लगन, जो दिन-रात एक-एक करके ऐसे-ऐसे कार्यों के लिये जीवन तक अर्पण करने को तैयार हो जाते हैं। अन्त को उन्होंने अपने परिश्रम के सहारे इस भाषा को, इसके व्याकरण तथा शब्द-कोष को खोज ही निकाला!

१८५२ में डॉ० मार्टिन हॉग ने 'ज़िंदावस्था' के पन्नों को अज्ञात क्षेत्र से ज्ञात क्षेत्र में लाने का संकल्प किया। रास्क तथा बर्नफ़ की तरह इन्हें भी विश्वास था कि आर्यन भाषाओं में 'ज़िंदावस्था' तथा वेदों की भाषाएँ ही सबसे अधिक पारस्परिक सामीप्य के सूत्र में बँधी हुई हैं। इसलिए आपने वेदों का—उनमें भी विशेष रूप से ऋग्वेद का—स्वाध्याय आरम्भ किया। उस समय तक ऋग्वेद का केवल आठवाँ हिस्सा प्रकाशित हुआ था। आपने बाकी सात हिस्से प्रो० बेनफ़ी की हस्त-लिखित प्रति से नक़ल किए। फिर वर्णक्रमानुसार वेद-मन्त्रों की सूची तैयार की गई। इसके अनन्तर अवस्था-भाषा के एक-एक शब्द को लेकर 'ज़िंदावस्था' तथा वेद में जहाँ-जहाँ वह शब्द पाया जाता था, उन स्थलों का संग्रह किया गया। 'ज़िंदावस्था' में सब जगह उस शब्द का जो अर्थ प्रतीत हुआ, उसे वेद-मन्त्रों से परखा गया। जब 'ज़िंदावस्था' तथा वेद, दोनों में उस शब्द का एक ही अर्थ प्रतीत हुआ, तब उसका अर्थ निर्द्धारित कर दिया गया। डॉ० हॉग का कथन है कि 'ज़िंदावस्था' के शब्दों के अर्थ का पता लगाने के लिये वर्तमान पर्शियन की अपेक्षा—यद्यपि वर्तमान पर्शियन अवस्था-भाषा का ही परिणत स्वरूप है—वैदिक संस्कृत ही अधिक सहायक है। अवस्था के 'ज़रदय'-शब्द का वर्तमान पर्शियन में 'दिल' बन गया है, जो संस्कृत में 'हृदय' है; अवस्था के 'सरद' का पर्शियन में 'साल' बन गया है, जो संस्कृत में 'शरद' है; अवस्था के 'करेनोति' का पर्शियन में 'कुनद' बन गया है, जो वैदिक संस्कृत में 'कृणोति' है; अवस्था के 'आतर्श' का पर्शियन में 'आतश' (अग्नि) बन गया है, जो वैदिक संस्कृत में 'आथर्' है, जिससे 'आथर्वन्' शब्द बना है। कारक, लकार तथा उनके प्रत्यय आदि का वर्तमान पर्शियन में नाम-निशान तक मिट चुका है; परन्तु 'ज़िंदावस्था'

तथा वेद की भाषाओं में दोनों वैसे-के-वैसे मौजूद हैं। विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि 'ज़िंदावस्था' के अध्ययन में वर्तमान पर्शियन उतनी सहायता नहीं दे सकती, जितनी संस्कृत, और उसमें भी लौकिक संस्कृत उतनी सहायक नहीं, जितनी वैदिक संस्कृत। डॉ० हॉग ने संस्कृत की सहायता से जो परिणाम निकाले हैं, उनसे सिद्ध है कि 'ज़िंदावस्था' तथा वेद की भाषाओं में जितनी समानता है, उतनी शायद ही अन्य किन्हीं दो भाषाओं में हो। हम डॉ० हॉग के निकाले कुछ परिणामों को पाठकों के सम्मुख रखते है, और उनसे अनुरोध करते हैं कि वे इन समानताओं पर विचार करते हुए सोचें कि संस्कृत का कितना भारी गौरव है।

अवस्था-भाषा के मुख्यतया दो विभाग किए जा सकते हैं। एक भाषा वह है, जो पारसियों की प्राचीनतम धर्म-पुस्तकों—गाथाओं—में पाई जाती है, और बहुत पुरानी है; दूसरी भाषा वह है, जो गाथाओं से पीछे की पुरानी पुस्तकों में पाई जाती है, यह भाषा 'विस्पराद', 'वेंदीदाद' आदि पारसी धर्म-पुस्तकों में पाई जाती है। सुविधा के लिये हम यहाँ पर पहली को गाथा-भाषा तथा दूसरी को अवस्था-भाषा कहेंगे। वास्तव में दोनों ही अवस्था-भाषाएँ हैं; क्योंकि गाथाएँ, वेंदीदाद, विस्पराद आदि सभी ज़िंदावस्था के भिन्न-भिन्न हिस्से हैं। अस्तु। गाथाओं की भाषा वेदों की भाषा के अत्यन्त निकट है। संज्ञाओं के तीन वचन तथा आठ विभक्तियाँ दोनों भाषाओं में एक-समान पाई जाती हैं। वैदिक संस्कृत के वैदिक लकारों को निकाल कर लौकिक संस्कृत में क्रियाओं के लकार निश्चित किए गए हैं; परन्तु वैदिक संस्कृत तथा गाथाओं की भाषाओं में लकार भी एक-समान हैं। ज्यों-ज्यों हम गाथाओं से विस्पराद, वेंदीदाद आदि की तरफ़ आते हैं, त्यों-त्यों उस भाषा की वैदिक संस्कृत से समानता कम होती जाती है। 'ज़िंदावस्था' के पिछले साहित्य में व्याकरण का लोप-सा होना दिखाई देता है—विभक्तियों को भुलाकर प्रकृति मात्र का प्रयोग दृष्टिगोचर होता है। जहाँ तृतीया विभक्ति सूचित करने के लिये 'देवेन' इस सविभक्तिक पद का प्रयोग होना चाहिए था, वहाँ 'देव' इस निर्विभक्तिक पद का ही प्रयोग किया गया है। संस्कृत में जहाँ दीर्घ आकारान्त तथा ईकारान्त शब्दों को देखकर उनके स्त्री-लिंग होने का सहज ज्ञान किया जा सकता था, वहाँ इस साहित्य में दीर्घ करने का प्रयोग छोड़ दिया गया है। तृतीया तथा चतुर्थी के बहुवचन का समान प्रयोग पाया जाता है। इस प्रकार की गड़बड़ अवस्था-भाषा में तो पाई जाती है, पर गाथा-भाषा

में नहीं। जिस प्रकार वैदिक संस्कृत को सरल बनाने के लिये लकारों में कुछ संक्षेप करके लौकिक संस्कृत का विकास हुआ, उसी प्रकार शायद गाथाओं की भाषा को सरल बनाने के उद्देश्य से, पीछे से, विभक्ति आदि का लोप किया जाने लगा। भेद इतना ही है कि लौकिक संस्कृत तो सरल हो जाने पर भी व्याकरण के नियमों से बँधी रही, परन्तु अवस्था-भाषा में व्याकरण को शिथिल करके ही सरलता उत्पन्न की गई। फिर भी गाथाओं तथा अवस्था की अन्य पुस्तकों की भाषा का लौकिक संस्कृत से उतना अधिक सादृश्य नहीं, जितना वैदिक संस्कृत से है। उदाहरणार्थ, 'मैं करता हूँ' के लिये वेद में 'कृणोमि' पाया जाता है, और 'ज़िंदावस्था' में 'करेणोमि'; परन्तु लौकिक संस्कृत में 'करोमि' प्रयुक्त होता है। वेद में 'वह जाता है' के लिये 'गमति' पाया जाता है, और 'ज़िंदावस्था' में 'जमति'; परन्तु लौकिक संस्कृत में 'गच्छति'। वेद में 'ग्रहण करता हूँ' के लिये गृभ्णामि' आता है, और 'ज़िंदावस्था' में 'गरिवनामि'; परन्तु लौकिक संस्कृत में 'गृह्णामि' पाया जाता है। क्या ये दृष्टान्त 'ज़िंदावस्था' की भाषा को वेदों के निकट की सिद्ध नहीं कर देते? अवस्था-भाषा की अपेक्षा गाथाएँ पुरानी हैं, इसलिए गाथाओं की भाषा, अवस्था-भाषा की अपेक्षा भी, वेदों के अधिक निकट है। वैदिक तथा गाथा-भाषा में 'करवै' का प्रयोग मिलता है, जिसके लिये अवस्था- तथा लौकिक संस्कृत में 'करवाणि' पाया जाता है। इसी प्रकार वेद तथा गाथा में 'मह्या' पाया जाता है, तथा लौकिक संस्कृत में 'मम'। वेद तथा गाथा में ई—ईम्—हिम का प्रयोग प्राचुर्य से मिलता है; परन्तु ये शब्द अवस्था-भाषा तथा लौकिक संस्कृत में पाए ही नहीं जाते। वेद तथा गाथा में उपसर्ग तथा क्रिया का पृथक्-पृथक् प्रयोग मिलता है; पर अवस्था-भाषा तथा लौकिक संस्कृत में ऐसा नहीं होता। वेद तथा गाथा के छंदों का पाठ करते हुए ह्रस्व अकार और इकार को स्तोता दीर्घ पढ़ देता है, और कहीं-कहीं संयुक्ताक्षरों को अलग २ करके पढ़ता है; पर लौकिक संस्कृत तथा अवस्था-भाषा में ऐसा नहीं होता। वेदों की भाषा की गाथाओं की भाषा से इतनी समानता और वैदिक भाषा का व्याकरण से नियमित होना तथा गाथा-भाषा का अनियमित होना देखकर हमारी तो यह सम्मति है कि वैदिक संस्कृत से ही गाथाओं की भाषा उत्पन्न हुई है। तदनन्तर पर्शिया में गाथाओं की भाषा बिगड़ कर अवस्था-भाषा बन गई, और इधर भारत में वैदिक संस्कृत से लौकिक संस्कृत का विकास हुआ। भाषाओं के क्रमिक विकास का अध्ययन

करने से यही प्रतीत होता है कि अवस्था-भाषा से गाथा-भाषा पुरानी है, और गाथा-भाषा से वेदों की भाषा। अन्य सब भाषाओं में विकास के चिह्न पाये जाते हैं; परन्तु वेदों की भाषा विकास की छाप से ऊपर उठी हुई है। वह हमें विकसित रूप में दिखाई देती है, विकास में से गुज़रती हुई नहीं, इस लिए उसे गाथा-भाषा तथा उसके द्वारा अवस्था-भाषा की जननी कहा जा सकता है।

डॉ० हॉग ने कुछ ऐसे नियमों का उल्लेख किया है, जिन के आधार पर संस्कृत के शब्दों को 'ज़िन्दावस्था' का और 'ज़िन्दावस्था' के शब्दों को संस्कृत का बनाया जा सकता है। इसका अभिप्राय यह है कि उच्चारण-भेद के कारण एक ही शब्द का दोनों जातियों में भिन्न भिन्न रूप बन गया। पर वास्तव में वह शब्द एक ही था। वे नियम निम्न प्रकार हैं—

(क) शब्द के प्रारम्भ में संस्कृत का 'स' अवस्था में 'ह' हो जाता है। सोम=होम (सोमरस); स=ह (वह); सम=हम (इकट्ठा); सप्त=हप्त (सात); मास=माह (महीना); सेना=हेना (फ़ौज); सन्ति=हन्ति (वे हैं)। शब्द के बीच में 'स' आ जाय, तो उस का भी अवस्था में 'ह' हो जाता है। अस्मि=अह्मि (मैं हूं); विवस्वत्=विवंहवत् (सूर्य); असु=अंहु (जीवन)। अवस्था में कभी-कभी शब्द के अन्त के 'स' का 'ह' नहीं होता। यजेः=यजेश (तू पूजा करेगा)।

(ख) संस्कृत के 'ह' का अवस्था में 'ज़' हो जाता है। हि=ज़ि (निश्चय); हिम=ज़िम (बर्फ); ह्वे=ज़्वे (पुकारना); आहुति=आज़ुति; हृदय=ज़रदय (दिल); हस्त=ज़स्त (हाथ); वराह=वराज़ (सुअर); होता=ज़ोता (आहुति डालनेवाला); बाहु=बाज़ु; अहि=अज़ि (साँप); मेधा=मज़्दा (बुद्धि, सर्वज्ञ ईश्वर)। कभी २ संस्कृत का 'ज' अवस्था में 'ज़' बन जाता है। जन=ज़न (उत्पन्न करना); जिह्वा=हिज़्वा (जीभ); वज्र=वज़्र (बिजली); अजा=अज़ा (बकरी); जानु=ज़ानु (घुटना); यज्ञ=यस्न (पूजा); यजत=यज़त (देवदूत)।

(ग) संस्कृत के 'श्व' का अवस्था में 'स्प' हो जाता है। अश्व=अस्प (घोड़ा); विश्व=विस्प (संसार)। श्वा=स्पा (कुत्ता)। कभी २ 'श्व' तथा 'स्व' के लिये ज़ंद में 'क़' हो जाता है। श्वसुर=क़सुर (ससुर); स्वप्न=कफ़्न (ख़्वाब); स्वाप=ख़्वाब।

(घ) संस्कृत में 'ऋत' का 'अर्त' बन जाया करता है, और इसी लिये 'मृत्' से 'मर्त्य' बनता है; परन्तु अवस्था में 'थ' हो जाता है। मित्र=मिथ्र; त्रित=थ्रित; त्रैतान=थ्रैतान (फ़रीदून); मन्त्र=मन्थ्र।

डॉ० हॉग लिखते हैं—अवस्था

तथा संस्कृत के व्याकरण संबन्धी रूपों में इतनी समानता है कि संस्कृत से थोड़ा-सा परिचय रखने वाला व्यक्ति भी उसे पहचान सकता है। संस्कृत तथा अवस्था के व्याकरण-संबन्धी रूपों की समानता का सुदृढ़ प्रमाण यह है कि दोनों भाषाओं में अपवादों में भी समानता है। जहाँ संस्कृत के 'कस्मै' के लिए अवस्था में 'कह्मै', 'अस्मै' के लिये 'अह्मै', 'येषाम्' के लिए 'यैषाम्' है, वहाँ संज्ञा-वाचक रूपों की समानता भी असाधारण है। नीचे 'श्वा' तथा 'पथिन्' शब्दों के संस्कृत तथा अवस्था में रूप दिए जाते हैं, जो हमारे कथन की पुष्टि करते हैं—

'श्व'-शब्द के रूप

विभक्ति	संस्कृत	अवस्था
प्र०—एकवचन	श्वा	स्पा
द्वि०— "	श्वानम्	स्पानम्
च०— "	शुने	सुने
प०— "	शुनः	सुनो
प्र०—बहुवचन	शुनः	सुनो
ष०— "	शुनाम्	सुनाम्

'पथिन्'-शब्द के रूप

प्र०—एकवचन	पंथाः	पन्ता
तृ०— "	पथा	पथा
प्र०—बहुवचन	पंथानः	पन्तानो
द्वि०— "	पथः	पथो
ष०— "	पथाम्	पथाम्

अवस्था-भाषा की वैदिक भाषा के साथ इस गहरी समानता को देखते हुए एक हिंदू का मस्तक आत्म-गौरव से उन्नत हो जाता है। इस समानता को देख कर क्या इस कथन में अणु-मात्र भी अत्युक्ति समझी जा सकती है कि भारतवर्ष संसार-भर के धर्मों का ही नहीं, अपितु अखिल विश्व में ज्ञान प्रसार का केन्द्र-स्थान है? यहाँ की भाषा सर्वत्र फैली, यहाँ के धर्म ने इस देश की परिधि को पार किया, यहाँ की फ़िलासफ़ी ने सब देशों की विचार तथा तर्क-शक्ति को उत्तेजना दी। पर इतने गौरव को प्राप्त कर भी हमने उसे अपने ही हाथों खो दिया! अवस्था-भाषा के शब्द भारतीय विजयों के भग्नावशेष हैं। क्या इन शब्द-रूप खँडहरों में अपने पूर्वजों के विशाल गौरव की झलक देख कर हम फिर से उसे प्राप्त करने का प्रयत्न न करेंगे? अवश्य करेंगे।

मुन्नी

(ले०—श्री पं० चन्द्रगुप्त जी विद्यालंकार)

मुन्नी बचपन से ही अत्यधिक चञ्चल स्वभाव की थी। यद्यपि एक बहुत छोटे घराने में उस का जन्म हुआ था, परन्तु अपने बालकोचित मनोहारी चपल स्वभाव के कारण वह गांव भर के लोगों की प्रिय होगई थी। मुन्नी के माता पिता किसी ऐसी जाति के थे जिन के साथ द्विज लोगों का हुक्का पानी नहीं हो सकता। जब वह चार साल की ही थी तभी उस के पिता का देहान्त हो गया था। मुन्नी के पिता की मृत्यु के बाद उसकी माता अपनी परम्परागत कुम्भकार की आजीविका को छोड़कर कागज़ के खिलौने बनाने का काम करने लगी थी। इस छोटे से घर में मुन्नी और उसकी अभागिनी माता को छोड़ कर और कोई प्राणी न रहता था। मुन्नी अपनी मां की लाड़ली बेटी थी, उस अभागिनी विधवा की एकमात्र सहायका थी।

मुन्नी अब ९ साल की लड़की हो चुकी है। वह गांव भर के प्रत्येक निवासी से परिचित है। इस का स्वभाव दिनभर ऊधम करने का है; अपने से छोटी उमर के लड़कों पर शासन करने में उसे अपूर्व आनन्द अनुभव होता है, वह बालकों की नेतृ बन कर किसी को पीटती है, किसी को प्यार करती है, किसी को तंग करती है। इस उमर में भी उसने अपनी माता की आजीविका में किसी प्रकार की सहायता देना प्रारम्भ नहीं किया है, अपितु वह सदैव माता के कामों में बाधा ही पहुंचाया करती है, कभी वह मौज में आकर खिलौने बनाने के लिये रंग कर रखे हुए कागज़ों पर काली या लाल स्याही के छींटे डाल देती है, कभी बने बनाये खिलौनों को उठा कर अपने साथियों में बांट देती है, परन्तु यह सब करने पर भी उसे अपनी माता से कभी डांट नहीं सुननी पड़ती। लोग कहते हैं कि मुन्नी की माता उसे राजकुमारी की तरह पालती है। मुन्नी देखने सुनने में अच्छी है, इस कारण उसे किसी भी घर में जाने की रोक टोक नहीं है; वह गांव भर के लड़कों की मुखिया बनी हुई है। उसका स्वभाव अत्यन्त कौतूहलपूर्ण और निर्भय है, जहां पांच सात लोगों को इकट्ठा जमा देखती है, चट से वहां जा पहुंचती है। गांव के बूढ़ों की पञ्चायत में, तहसीलदार की अदालत में, पटवारी की महफिल में—सब कहीं बालिका मुन्नी का अप्रतिहत प्रवेश है। वह किसी से डरना नहीं जानती।

नीच कुल की अनाथ बालिका मुन्नी के दिन इसी प्रकार आनन्द पूर्वक कटने लगे।

(२)

पञ्चतन्त्रकार पण्डित विष्णु शर्मा अगर भविष्य द्रष्टा होते तो वह यह कभी न लिखते कि युवावस्था एक मद है जिसे पीकर मनुष्य सब कुछ भूल जाता है। आज कल हिन्दुओं के अधिकांश गरीब घरों में जब लड़की की युवावस्था आजाती है तब उसके घर वाले घोर चिन्ता में मग्न हो जाते हैं। स्वयं वह लड़की भी एक विचित्र दशा में डाल दी जाती है। युवावस्था उसे कोई मद तो नहीं पिलाती, अपितु उसे चेतनावस्था का एक ठोस रूप प्रत्यक्ष करा देती है। घर के लोगों को नींद लेना हराम हो जाता है।

मुन्नी अब १४ बरस की हो चुकी है, उस का रूप अब ऐसा नहीं रहा जिसे लेकर वह घर घर घूमे फिरे। जिस प्रकार कच्ची अम्बियां वायु के छोटे २ झोकों द्वारा भी खूब हिलती डुलती हैं, परन्तु वही अम्बियां पक्के आम बन कर आंधी के प्रबल वेग के साथ भी हिण्डोले में बैठ कर झूमने से इन्कार कर देते हैं, उसी प्रकार मुन्नो भी अब प्रायः सारा दिन अपने घर में अपनी माता के निकट ही व्यतीत करती है, उस के स्वभाव की चञ्चलता अब भी कम नहीं हुई परन्तु वह चञ्चलता अब शिल्प कुशलता के रूप में परिणत हो चुकी है, उस के बनाये हुए खिलौने बहुत ही सुन्दर होते हैं।

मुन्नो आजकल पहले की तरह असंयत स्वच्छजल के पहाड़ी झरने के समान यथेष्ट इधर उधर नहीं घूमती, इसका एक और कारण भी है। अब जब कभी वह बाहर निकलती है तब लोग, विशेष कर गांव की औरतें, उसे अभी तक कुमारी रहने के कारण ताने देते हैं। शुरु शुरु में तो वह इन तानों का बड़े क्रोधके साथ उत्तर दिया करती थी, परन्तु कुछ दिनों से उस ने अपनी पराजय स्वीकार कर ली है, अर्थात् बाहर अधिक घूमना फिरना ही छोड़ दिया है। वह सोचती है, ये लोग कितने मूर्ख हैं, मानो मेरे ब्याह किये बिना संसार में प्रलय हो जायगा। मुन्नी की माता भी आज कल इसी चिन्ता में निमग्न रहती है।

इसी गाँव में करतार नाम का एक नवयुवक रहता था। करतार के मां बाप गांव की दृष्टि में गरीब नहीं थे। गांव में उनका यथेष्ट मान था, परन्तु करतार अपने मां बाप का कुपूत वंशधर था। उस ने शराब जूआ आदि में मां बाप की सम्पूर्ण जायदाद समाप्त कर डाली। वह जात का जुलाहा था। उस के बुरे स्वभाव के कारण ही, २६ बरस की उमर हो जाने पर भी, कोई व्यक्ति उसके साथ अपनी लड़की की शादी करने का साहस न करता था।

मां बाप की जायदाद पर हाथ साफ कर के आज कल उस ने एक नया पेशा अख्तियार किया था। महीने में पांच सात दिन गांव से बाहर रह कर वह भिन्न २ प्रकार का सामान गांव में बेचने के लिये लाया करता था, एक सप्ताह में यह सामान बेच कर वह इतना धन प्राप्त कर लेता था कि उस से वह महीना भर आराम से रह सके। करतार का लाया हुआ माल देख कर लोग आश्चर्य चकित होते थे। वह कपड़े, बरतन, कोट, कमीज़ आदि सभी प्रकार की वस्तुएं लाया करता था, गांव के अन्य दूकानदारों की अपेक्षा उस का माल कम कीमत में मिलता था। यह देख कर लोग हैरान हो रहे थे। कुछ लोग तो उस की व्यापारिक बुद्धि पर श्रद्धा भी करने लगे थे।

इसी करतार ने मुन्नी की अनाश्रिता दुखिया माता का उद्धार कर दिया; उसे और उसकी मुन्नी को नरक से बचा लिया। उसने बिना कोई दहेज लिये ही गरीब मुन्नी से विवाह कर लिया।

(३)

मुन्नी नये घर में गई तो थी, परन्तु उस के कर्म तीन मास बाद ही उसे फिर से अपनी माता के घर घसीट लाए। विवाह के तीन मास बाद ही अचानक उसके पतिदेव न जाने कहां गुम होगये। एक दिन वह किसीको सूचना दिये बिनाही घरसे गायबहोगये थे, उस के बाद उनका पता मालूम नहीं होसका। पुलिस ने करतार के नाम वरण्ट जारी किया हुवा है, परन्तु बहादुर करतार पुलीस को भी चकमा दे गये है।

बात यह हुवी थी कि एक दिन करतार अपने पेशे के लिए ही कहीं गांव से बाहर गया हुआ था; उस के जाने के दो दिन बाद ही दोपहर के समय थानेदार दो सिपाहियों को लेकर उस के घर आया। करतार को आवाज़ दी गई, परन्तु वह तो बाहर गया हुआ था। मुन्नी परदा करके दरवाजे पर आ खड़ी हुई। थानेदार ने मुन्नी से पूछा कि करतार कहां गया हुवा है ? करतार कहां जाता है, इस बात को उसे छोड़ कर और कोई नहीं जानता था, इसलिये मुन्नी इस प्रश्न का जवाब न दे सकी। थानेदार करतार के घर की तालाशी लेकर उस में से बहुत सा माल बरामद कर के सिपाहियों के साथ वापिस चला गया। मुन्नी को अब रहस्य समझने में देर न लगी। वह समझ गई कि उस के पतिदेव गांव में जिस माल का सफलता पूर्वक व्यापार करते हैं, उस के लाने में उन्हें एक पाई भी व्यय नहीं करना पड़ता; वह सब सामान वे विनिमय मुद्रा द्वारा नहीं अपितु बल की मुद्रा द्वारा ही लाते हैं। करतार जो कपड़े बेचा करता था, उन में से किसी पर धोबी द्वारा बनाये गए निशान द्वारा ही उसकी चोरी पकड़ी गई थी।

पुलीस को मालूम था कि करतार जब बाहर जाता है तब ५, ६ दिन से पहले कभी वापिस नहीं आता। इस लिये वे लोग उस की ओर से निश्चिन्त थे। परन्तु सौभाग्य वश करतार इस बार उसी दिन रात के समय घर आपहुंचा। करतार के लिए दरवाजा खोलने जाकर मुन्नी ने देखा कि आज उसका चेहरा बहुत प्रसन्न है; आज वह कोई भारी गठरी उठा कर भी नहीं लाया है। उसके हाथ में एक मज़बूत डण्डे के सिवाय और कोई चीज़ नहीं है। मुन्नी उस के चेहरे की ओर देख कर और भी अधिक भयभीत हो उठी।

चांदनी रात थी। आंगन में आकर करतार ने अपने कोट के अन्दर की दोनों जेबों में से दो छोटी २ पोटलियां निकालीं। इन पोटलियों को उसने मुसकराते हुए खोला। पोटली के खुलते ही मुन्नी और भी अधिक डर गई। उसने चांदनी के उजेले में देखा कि उसके सामने सोने के बहुत से आभूषण चमक रहे हैं। मुन्नी को इस की कल्पना भी न थी। आभूषण देख कर वह सहसा सिसक २ कर रोने लगी। करतार भौंचक सा रह गया, उस ने सोचा—यह क्या मामला है। करतार को बहुत अधिक देर तक सोच विचार में डूबे रहने का अवसर न मिला। मुन्नी ने धीरे-धीरे आज की सम्पूर्ण घटना सुनादी। इस के बाद कोई कुछ नहीं बोला। दोनों अपने २ स्थान पर सोने के लिए चले गये। प्रातः काल उठ कर मुन्नी ने देखा कि करतार कहीं गायब होगया है। सोने के वे आभुषण भी घर में नहीं रहे हैं। मुन्नी समझ गई है कि अब पतिदेव के दर्शन इस जन्म में होने दुर्लभ हैं।

इस घटना के कुछ दिन बाद ही मुन्नी अपने घर चली आई। पुलीस अब भी उस से करतार के सम्बन्ध में पूछ ताछ करने का बहुत यत्न करती है, परन्तु वह उस के सम्बन्ध में कुछ जानती ही नहीं, बताये सो क्या बताये।

मुन्नी माता के घर रहती है। परन्तु इस मुन्नी और कुमारी मुन्नी में बड़ा भारी अन्तर है। मानो मुन्नी का नया जन्म हुआ है। उस का यह जन्म यन्त्रणा के गर्भ से हुवा है, इसी कारण तो यह मुन्नी इतनी अधिक सहन शीला है। मां और बेटी दोनों दुखिया हैं, पहले अगर बुढ़िया अन्धी थी तो मुन्नी उस की जीवित जागृत लाठी थी, परन्तु अब तो वह लाठी भी एक भारी लोह दण्ड का रूप धारण कर चुकी है। मां और बेटी दोनों लोगों

के ताने सुनती हैं, परन्तु किसी का जवाब नहीं देतीं।

हत भागिनी मुन्नी की मानसिक दशा आज कल क्या है, इसे समझना कठिन है। वह स्त्री है और शायद अबला है। परन्तु अबला होने से क्या; उसके पास एक ऐसा प्रेममय दिल है, जो बलवान पुरुषों के पास भी नहीं होता। समाज के अत्याचारी कानून के अनुसार वह अपना दिल एक अनाचारी चोर को देचुकी है; वही चोर उस का हृदय देव है। संसार की आंखों में करतार चोर है परन्तु मुन्नी के हृदय पर वह एक देवता के समान अंकित है। वह हिन्दू नारी है। पति ही उसका एक मात्र आराध्य देव है।

इसी प्रकार अभागिनी अनाश्रिता मुन्नी अपने दिन काटने लगी। बरस पर बरस बीतने लगे।

(४)

करतार जब घर से भाग कर बिना किसी लक्ष्य के चला, तब वह अत्यन्त उदास था। गहनों की पोटली उसकी छाती पर बँधी हुई थी। वह बड़ी तेज़ी में भागा जारहा था, परन्तु उसके हृदय में ज़रा भी उत्साह न था, उसके दिल पर मानो एक भारी बोझ रक्खा हुआ था। उसे इस बात का दुख नहीं था कि उसके पेशे की सूचना पुलीस को मिल गई है। क्रान्तिकारी लोग जिस प्रकार क्राँति-वादी दल में सम्मिलित होकर अपने प्राणों की ममता त्याग देते हैं, चोर लोग भी उसी प्रकार चोरी का पेशा स्वीकार करके जेलखाने को अपना मुख्य-निवास (Head Quarter) समझ लेते हैं। करतार बहुत अधिक दुखित इस लिए था कि आज उसे अपनी भारी भूल मालूम होगई थी। आज उसने अनुभव किया कि उसने मुन्नी का स्वभाव समझने में ज़रा भी सफलता प्राप्त नहीं की थी।

करतार जब मुन्नी को ब्याह करके उसे अपने घर लाया था, तब वह समझता था कि मुन्नी को प्रसन्न रखने के लिए उसे अपनी आर्थिक दशा को खूब सुधारना होगा। जब वह देखता था कि मुन्नी रात-दिन उदास रहती है तब वह समझता था कि मैंने उसे यथेष्ट आभूषण नहीं दिये इसी से वह मुझसे पराँमुख है; मेरे यहाँ वह हँसती नहीं, मुस्कराती नहीं, खुल कर बातचीत नहीं करती। अपनी पत्नी की यही मूक-माँग पूरा करने के लिये वह ये गहने चुरा कर लाया था; इन आभूषणों को चुराकर वह समझा था कि मानो मैंने मुन्नी का दिल चुरा लिया है; परन्तु कल रात उसे सहसा अपनी भयंकर भूल मालूम हुई। मुन्नी तो इन गहनों से घृणा करती है! इस समय उसने मुन्नी को पहिचाना। अपने बिस्तरे पर जाकर वह अश्रुपूर्ण नेत्रों से, इस बात पर पश्चात्ताप करता रहा कि वह मुन्नी को पहले ही क्यों नहीं पहचान पाया— यह मुन्नी गहनों को प्यार नहीं करती, यह तो मुझे प्यार करती है। कुछ देर इन्हीं भावों में मग्न रहकर उसे पुलिस की याद आई, उसने सोचा— वह घड़ी कितनी असह्य होगी, जब मुन्नी के सामने मेरे हाथों में हथकड़ी डाली जायगी। वह उस दृश्य की कल्पना ही न कर सका इसी से वह रातों-रात भाग खड़ा हुआ।

करतार जिस ओर से बचना चाहता था वही दिशा उसे चुम्बक की तरह खींच रही थी। वह चाहता था कि अब चोरी न की जाय। परन्तु इसके अतिरिक्त वह भी करे तो क्या। वह जादूगर की पुतली की तरह अपने सहायक चोरों के पास पहुंचा। अब से वह भी उनके समूह का स्थिर सदस्य बन गया। करतार का शरीर अच्छा था चोरी करने का हुनर भी उस में

कूट-कूट कर भरा हुआ था, अतः शीघ्र ही चोरों में उसकी स्थिति बहुत उच्च होगई।

करतार चोर था, चोरों का सरदार था। वह अपनी दृष्टि में आप ही गिरा हुआ था। उसने स्वयं अपनी आत्मा का घात किया था। धीरे-धीरे इस समूह में रहकर क्रूरता, नृशंसता आदि प्रवृत्तियाँ उसके स्वभाव के रूप में परिणत होने लगीं। परन्तु इस अवस्था में भी उसके हृदय के एक कोने में प्रकाश की एक रेखा दिखाई देती थी। यह प्रकाश की रेखा, उसकी मुन्नी की पुण्य-स्मृति थी। कभी वह सोचता था कि मुन्नी को भी किसी तरह यहाँ बुला लिया जाय परन्तु मुन्नी का वह अन्तिम दिन का स्वरूप उसकी आँखों के सामने बिल्कुल ताज़ा हो उठता था। इस स्वरूप को देखकर उसे मुन्नी एक अगम्य देवी-सी जान पड़ती थी।

धीरे धीरे करतार अपनी हृदय-देवी की प्रकाश-पूर्ण मूर्त्ति को भुलाने लगा। आख़िर चोरों की संगत में रहकर वह कहाँ तक पवित्र रह सकता था। पहले पहल वह अपने दल पर स्त्रियों के ऊपर अत्याचार न करने के लिए कड़ा निरीक्षण रखता था; वह जहाँ भी डाका डालता था, वहाँ किसी स्त्री पर किसी प्रकार का अत्याचार न होने देता था परन्तु धीरे-धीरे उसके स्वभाव में ढील आने लगी। इस मामले को लेकर बहुत बार उनके दल में झगड़ा होजाता था अतः वह इस ओर से तटस्थ होगया; वह दूसरों के प्रति उदासीन होकर भी स्वयं स्त्री-जाति की इज्ज़त करता था। इसके बाद धीरे-धीरे वह स्वयं भी मौक़ा पाकर दूसरों की तरह स्त्रियों को भी अपमानित करने का यत्न करने लगा। करतार का सम्पूर्ण अधः पतन होगया। मुन्नी की पवित्र स्मृति उसके दिल से मिट गई।

(५)

करतार को घर से भागे हुए लग-भग १३ बरस बीत गए। सायंकाल का समय था। गरमियों के दिन थे, दिन भर गरमी के कारण सम्पूर्ण बन में सन्नाटा छा रहा था। इस समय नई स्फूर्ति पाकर प्रत्येक वृक्ष नाना प्रकार के पक्षियों के कलरव से गूंज उठा। सूर्य्य अस्त हो रहा था, सूर्य्य देव का पराजय देख कर मानो सम्पूर्ण बन के असंख्य पक्षी चिल्ला-चिल्ला कर उन्हें चिढ़ा रहे थे। अँधेरा नहीं हुवा था। अन्धकार होने में अभी पर्याप्त समय शेष था, इसी समय एक संन्यासिनी खड़े उस निर्जन जंगल में एक शोक-गीत गाने लगी। वह संन्यासिनी बिल्कुल अकेली थी; शायद मार्ग भकट कर इस जंगल में चली आई थी। संन्यासिनी की आयु लगभग २६ बरस की होगी। उसके प्रत्येक अंग से सुंदरता फूट रही थी।

सन्यासिनी का गीत अभी समाप्त नहीं हुवा था कि ५, ७ लाठी-बन्द डाकुओं ने उसे घेर लिया। संन्यासिनी अत्यन्त भयभीत होगई। परन्तु अगले ही क्षण उसने सँभल कर कहा— "मेरे पास तो कुछ नहीं है मैं संन्यासिनी हूं।" एक डाकू ने हँसकर संन्यासिनी की इस बात पर बड़ी अश्लील टिप्पणी की। इसी समय एक डाकू ने हाथ बढ़ाकर उस संन्यासिनी को पकड़ना चाहा; वह बेचारी चिल्ला कर एक ओर भागी। सब डाकुओं ने उस निस्सहाया को पकड़ लिया; वह अबला यथा शक्ति अपना बचाव करने का यत्न करने लगी। संन्यासिनी अपूर्व सुन्दरी थी अतः उसके लिये डाकुओं में परस्पर झगड़ा खड़ा होगया। वह बेचारी ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगी। इसी समय एक और व्यक्ति

वहाँ आया। उसके आते ही तीन डाकू उस अबला को छोड़कर अलग खड़े होगये। दो व्यक्ति अभी तक आपस में छीना झपटी कर रहे थे। नवागन्तुक डाकुओं का सरदार था, परन्तु संन्यासिनी ने उसे अपनी तरह कोई यात्री ही समझा, उस की ओर देखकर वह "बचाओ! बचाओ!!" चिल्लाने लगी। सरदार सहसा ठिठक कर खड़ा होगया। उसे कुछ प्राचीन अतीत स्मरण हो आया। इसके अगले ही क्षण वह चीखती हुई आवाज़ में चिल्ला उठा— "मुन्नी!" संन्यासिनी की आँखों के सामने से मानो परदा हट गया; उसने पुकारा— "प्राणनाथ!"

बिजली के समान वेग से करतार ने तलवार म्यान से निकाल कर एक दम दोनों आक्रमणकारियों का सिर काट गिराया। शेष तीनों डाकू अचानक अपने सरदार का यह भयंकर स्वरूप देख कर समझे कि वह पागल होगया है। उन्होंने करतार पर हमला किया, परन्तु करतार में उस समय न जाने कहाँ से अनन्त स्फूर्ति आगई थी; तीनों डाकू चोट खा भागे।

इसके बाद किसी को मालूम नहीं हुआ कि वे दोनों कहाँ गये।

सम्पादकीय

शुद्धि

शुद्धि के सम्बन्ध में भारतवर्ष के इतिहास में भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ दिखलाई देती हैं। कभी तो बड़ी उत्सुकता से शुद्धि की जाती थी और कभी बड़े-बड़े मौकों को हाथ से गवाँ दिया जाता था। शुद्धि के सम्बन्ध में १६ जुलाई के 'कर्मवीर' में एक इतिहास-प्रेमी लिखते हैं—

"अतिवृष्टि, अनावृष्टि, टिड्डीदल आदि अनेक कारणों से काठियावाड़ में आज तक कई 'अकाल' पड़ चुके हैं। इन 'अकालों' की भयंकरता इतनी अधिक थी कि आज भी कई अकालों का स्मरण वहाँ के बूढ़े लोगों को है। सम्वत् १७८७ में—आज से लग-भग २०० वर्ष पहिले—काठियावाड़ में भयंकर अकाल उपस्थित हुआ था। मनुष्य-मनुष्य का भोजन करने पर तुल पड़ा था। अनेक मृत्युएँ हुईं, अनेक बीमारियों ने आक्रमण किया। मनुष्यों के इष्ट-मित्रों के बन्धन टूट गये। भोजन ही एक मात्र बन्धन रह गया। जिसने दो टुकड़े दिये, वही माता, वही भाई, वही स्नेही समझा जाने लगा। स्त्रियों-पुरुषों के लिये धर्म नाम की कोई चीज़ ही नहीं रह गई। प्राण-रक्षा ही उस समय का धर्म था और इसीलिए जिसने रोटी के दो टुकड़े दे दिये, वही धर्मात्मा समझा जाता था।

* * *

'तारीख़-इ-सोरठ' का मुसलमान

लेखक इस भयंकर अकाल का वर्णन करते हुए कहता है—"उस समय मारवाड़ के कई पुरुषों ने मुसलमान स्त्रियों को अपने घर में आश्रय दिया। सिर पर जौ जलाकर तथा गौ-मूत्र पिला कर उनकी शुद्धि की। इस तरह वे स्त्रियाँ हिन्दू बनाई गईं। उस समय मारवाड़ी लोग कहते थे कि औरङ्गज़ेब बादशाह ने जोधपुर को फ़तह किया। फ़तह के बाद बादशाह ने जोधपुर के अनेकों हिन्दुओं को तलवार का भय दिखाकर मुसलमान धर्म की दीक्षा दी थी। मुसलमान स्त्रियों को शुद्ध करने वाले मारवाड़ी कहते थे कि हम उसी औरङ्गज़ेबी करतब का बदला चुका रहे हैं।"

* * *

'तारीख़-इ-सोरठ' का लेखक कहता है—"अनेक मुसलमान स्त्रियाँ इस तरह शुद्ध की गईं। इसके पहले भी, जब महमूद ग़ज़नवी हिन्दुस्तान में आया था, तब अनहिलवाड़ा के राजा भीमदेव ने उसकी फ़ौज के कई मुसलमानों को गिरफ़ार किया था। उन मुसलमानों की शुद्धि की गई! उस समय हिन्दुओं को तुर्की, अफ़ग़ानी, मुग़ल आदि अनेक अविवाहित मुसलमान स्त्रियाँ प्राप्त हुईं-उन्होंने उन सबों से विवाह किये! अन्य स्त्रियों को वमन और जुलाब की औषधि देकर शुद्ध किया और हिन्दू राजपूतों ने उन्हें अपने यहाँ आश्रय दिया!"

* * *

और इन 'शुद्धों' की जाति का क्या हुआ? शुद्धि इतनी कठिन नहीं। असली कठिनाई शुद्ध किये हुओं को जाति में मिलाने की है। उक्त 'तारीख़-इ-सोरठ' के लेखक का कहना है—"बुरी स्त्रियाँ बुरे आदमियों को गईं और सौंदर्यवान् स्त्रियों को बड़े घरों में प्रवेश मिला और दास-दासियों को हिन्दू सेवकों के घरों में। जिन लोगों की सुन्नत हो चुकी थी वे वाढेल राजपूतों में शामिल कर दिये और जिनकी सुन्नत नहीं हुई थी वे शेखावतों में सम्मिलित किये गये! इनसे भी नीची श्रेणी के मुसलमानों को कोली, खाँट, मेर, बारबारिया आदि हिन्दू जातियों में मिला लिया गया।"

जहाँ शुद्धि के विषय में इस प्रकार के उदार विचार पाये जाते हैं वहाँ अनुदार विचारों की कमी भी नहीं दिखलाई देती। प्रसिद्ध है कि अकबर हिन्दु-धर्म ग्रहण करना चाहता था परन्तु बीरबल ने यह दृष्टान्त देकर कि गदहा घोड़ा नहीं बन सकता उसे शुद्ध नहीं होने दिया। इसी प्रकार की एक घटना का उल्लेख म० सन्तराम ने जुलाई की 'माधुरी' में निम्न प्रकार से किया है—

"काश्मीर-राज्य में इस समय सैंकड़े पीछे ८० से भी अधिक मुसलमान हैं। परन्तु जिस समय की बात हम करते हैं, उस समय वहाँ हिन्दुओं की ही प्रधानता थी। मुसलमान आटे में

नमक के बराबर भी न थे। उस समय सिकन्दर नाम के एक सिदियन राजा ने काश्मीर पर अधिकार कर रक्खा था। सिकन्दर न हिंदू था और न मुसलमान। पर वह चाहता था कि हिंदू मुझे अपने धर्म में मिला लें। उसे इस धर्म पर हार्दिक श्रद्धा थी। वह नित्य गीता की कथा सुना करता था। पर ब्राह्मण लोग उसे हिंदू-धर्म की दीक्षा देने से इन्कार करते थे। एक दिन गीत में यह श्लोक आया—

"श्रेयान् स्वधर्म्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्;
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

कथावाचक ब्राह्मण ने इसका अर्थ करते हुए कहा—"दूसरे के उत्तम धर्म से अपना गुण-हीन धर्म भी कल्याणप्रद है। अपने धर्म में ही मरना श्रेष्ठ है और दूसरे का धर्म भयावह है।"

सिकन्दर यह सुनकर चौंक उठा। उसने ब्राह्मण से श्लोक का अर्थ दुबारा करने को कहा। ब्राह्मण ने फिर वही शब्द दुहरा दिए। तब सिकन्दर ने पूछा—क्या आप का अभिप्राय यह है कि मैं आपके धर्म को ग्रहण नहीं कर सकता? ब्राह्मण ने उत्तर दिया—जी हाँ। अपने-अपने धर्म में रहना ही अच्छा है, क्योंकि भगवान् ने कहा है—

'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः'।

यह सुनते ही सिकन्दर की विचार-धारा का पथ एकदम परिवर्तित हो गया। वह हिंदू-धर्म से निपट निराश हो गया। हताश होकर उसने निश्चय किया कि कल सबेरे जो मनुष्य मुझे सबसे पहले दृष्टिगोचर होगा, मैं उसी का धर्म ग्रहण करूँगा। दूसरे दिन सबेरे उठकर वह अपने राजमहल की खिड़की में बैठ गया। दैवयोग से सबसे पहले उसकी दृष्टि एक बुड्ढे पर पड़ी। वह मिट्टी का लोटा लिए जा रहा था। उसने उस बुड्ढे को अपने पास बुलाया और पूछा—

"तुम्हारा क्या नाम है?"

"बुलबुल शाह।"

"तुम कौन हो?"

"मुसलमान।"

"क्या तुम मुझे अपने धर्म की दीक्षा दे सकते हो?"

"मेरे लिये इससे बढ़कर प्रसन्नता का विषय और क्या हो सकता है कि काश्मीर-नरेश मेरा धर्म-भाई बने। इस्लाम का दरवाज़ा मनुष्य-मात्र के लिये खुला है।"

बस, फिर क्या था, सिकन्दर मुसलमान बन गया और इस्लाम के प्रचार में यत्नवान् हुआ। सबसे पहला काम उसने यह यह किया कि काश्मीरी ब्राह्मणों को बोरियों में बन्द करके झेलम नदी में डुबा दिया। उसके प्रयत्न से अल्प ही काल में समस्त देश मुसलमान हो गया। यह कोई कल्पित कथा नहीं, एक ऐतिहासिक सचाई है। बुलबुल शाह की कब्र अब तक श्रीनगर में मौजूद है।"

गुरुकुल—समाचार

ऋतु—कुल में आजकल ऋतु बहुत रमणीय है। आकाश मण्डल मेघों से आच्छादित रहता है, प्रायः प्रतिदिन वृष्टि हो जाती है। हरी-भरी द्रुमावली और मैदान लोचनों को बहुत आनन्द देते हैं। कुल की वाटिका के कुसुमों की सुगंधि से वायु-मण्डल सुवासित रहता है। कुलभूमि प्रकृति का क्रीड़ा-स्थल बनी हुई है। कविता और सुषमा ने सदेह होकर कुलभूमि को अपनी वासभूमि बनाया हुवा है।

गंगा—गंगा में आजकल पुष्कल पानी आ रहा है। इसलिए तैरने की ख़ूब मौज है। ब्रह्मचारीगण प्रतिदिन दूर-दूर से तैर कर आते हैं। आवागमन के लिए तमेड़ें नियम पूर्वक चलती हैं।

पढ़ाईयाँ— पढ़ाईयाँ नियम पूर्वक चल रही हैं। पिछले सप्ताह श्री प्रो. विधुभूषण दत्त जी का 'कालविज्ञान' विषय पर एक सारगर्भित खोज पूर्ण तथा मौलिक व्याख्यान विश्वविद्यालय व्याख्यान माला में हुवा।

लोकमान्य दिवस— गत प्रथम अगस्त को लोकमान्य तिलक जी की पुण्यतिथि के उपलक्ष्य में कुल वासियों की एक सभा हुई। जिस में वक्ताओं ने लोकमान्य के जीवन, उनके कार्यों और सेवाओं पर विचार किया और उनके चरणों में श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित कीं। वक्ताओं ने कहा कि लोकमान्य भारत की राष्ट्रीय जागृति के पिता थे। सामान्य लोगों में राष्ट्रीय भावों का प्रचार सब से पहले लोकमान्य ने ही आरम्भ किया। वे सच्चे कर्मयोगी थे। उन्होंने वर्तमान भारत को फिर से गीता का संदेश सुनाया है। उनका जीवन भारत के लिए था। वे प्रत्येक भारतीय के लिए आदर्श थे।

पार्लियामेन्ट— गुरुकुलीय साहित्य परिषद् की ओर से १४ अगस्त को गुरुकुलीय राष्ट्रप्रतिनिधि सभा का अधिवेशन शुरू हुआ। प्रधान मन्त्री श्री ब्र. अवनीन्द्र जी ने भारतीय कारखाना विधान (Indian Factory Bill) पेश किया। विरोधी दल के नेता श्री ब्र. शंकरदेव थे। राष्ट्र प्रतिनिधि सभा में सम्मिलित होने के लिए श्रीयुक्त नारायण मल्हार राव जोशी तथा श्रीमान् नारायण स्वामी जी, पधारे। बिल संशोधनों सहित स्वीकृत हो गया। इसी अवसर पर कुल के पुस्तकालयमें श्रद्धेय श्रीस्वामी श्रद्धानन्द जी के एक तैलचित्रका उद्घाटन श्रीयुक्त नारायण स्वामी जी द्वारा किया गया।

दीर्घावकाश—इस बार दो मास का दीर्घावकाश १८ अगस्त से प्रारम्भ होगा। इस वर्ष ब्रह्मचारियों की एक मण्डली कुछ उपाध्यायों के साथ सरस्वती-यात्रा के लिए काश्मीर के पर्वतों पर जाने वाली है। कुछ ब्रह्मचारी अपने घरों पर जायेंगे।